नई किताब

गंगा से गोमती तक

......' मुजीब की कहानियों की विशेषता उनकी शैली भी है. मामूली पढ़ा लिखा आदमी इन्हें बिना किसी की मदद के समझ सकता है. सरलता के साथ भाषा में व्यंग और ज़िन्दादिली इस तरह है जिस तरह ऊँचे पाए के लेखकों में मिलती है.

इन कहानियों में हास्य भी है, करुणा भी है. कहीं हंसते हंसते पेट में बल पड़ेंगे, तो कहीं पढ़ते-पढ़ते आप दुःख से स्तंभित रह जाएंगे. मुजीब की कहानियाँ हमारी कोमल भावनाएँ जगाती हैं, हमें अच्छा इनसान बनाती हैं."

—डाक्टर राम बिलास शर्मा

........'वह (मुजीब) मार्ग साफ़ करना चाहते हैं, समाज को सम्भालना चाहते हैं. इसलिये वह कला को कामकाजी चाहते हैं और ऐसी नुकीली कि धार करती चली जाए···यह कहानियां जगह जगह हमारा ध्यान समाज में होने वाले अन्यायों और अत्याचारों की तरफ़ खींचती हैं···संग्रह की कहानियों में एक सीधी अकृत्रिमता है, जो अच्छी लगती है."

—जैनेन्द्र कुमार

लगभग हिन्दी के सभी बड़े लेखकों ने "गंगा से गोमती" को सराहा है.

"गंगा से गोमती तक" में १८० सफ़े हैं, तिरंगा सुन्दर कवर, बढ़िया जिल्द, दाम केवल दो रुपया. जल्दी आर्डर भेजिये.

— मैनेजर नया हिन्द

मिलने का पता—

मैनेजर 'नया हिन्द' 145, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद.

ب...نا

گنگا سے گومتی تک

......"مجیب کی کہانیوں کی وشیشتا اُنکی شیلی ...ہے . معمولی پڑھا لکھا آدمی اِنہیں بنا کسی کی ...کے سمجھ سکتا ہے. سرلتا کے ساتھ بھاشا میں ویَنگ ...ندہدلی اس طرح ہے جس طرح اُونچے پائے کے ...وں میں ملتی ہے .

...ن کہانیوں میں ہاسیہ بھی ہے' کرونا بھی ہے. کہیں ...ے ہنستے پیٹ میں بل پڑینگے' تو کہیں پڑھتے ... آپ دکھ سے استمبھت رہ جائینگے . مجیب کی ...ں ہماری کومل بھاونائیں جگاتی ہیں' ہمیں اچھا ...ن بناتی ہیں."

—ڈاکٹر رام بلاس شرما

.. .." وہ (مجیب) مارگ صاف کرنا چاہتے ہیں' ...ج کو سنبھالنا چاہتے ہیں. اِس لئے وہ کلا کو کام کاجی ...تے ہیں. اور ایسی نوکیلی کہ دھار کرتی چلی جائے ... کہانیاں جگہ جگہ ہمارا دھیان سماج میں ہونے والے ...وں اور اتیاچاروں کی طرف کھینچتی ہیں...سنگرہ ...کہانیوں میں ایک سیدھی اکرترمتا ہے' جو اچھی ...ہے."

—جینندر کمار

...لگ بھگ ہندی کے سبھی بڑے لیکھکوں نے "گنگا سے ...ی" کو سراہا ہے .

..."گنگا سے گومتی تک" میں 180 صفحے ہیں' ترنگا ...ر کور' بڑھیا جلد' دام کیول دو روپیہ . جلدی آرڈر ...جئے .

—مینیجر نیا ہند

...پتہ—

مینیجر 'نیا ہند' 145 مٹھی گنج الہ آباد

हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी

मक़सद

(1) एक ऐसी हिन्दुस्तानी कलचर का बढ़ाना, फैलाना और प्रचार करना जिसमें सब हिन्दुस्तानी शामिल हों.

(2) एकता फैलाने के लिये किताबों, अख़बारों, रिसालों वग़ैरा का छापना.

(3) पढ़ाई घरों, किताब घरों, सभाओं, कानफ़रेन्सों, लेक्चरों से सब धर्मों, जातों, बिरादरियों और फ़िर्क़ों में आपस का मेल बढ़ाना

—:०:—

सोसाइटी के प्रेसीडेन्ट मि० अब्दुल मजीद ख्वाजा; वाइस प्रेसीडेन्ट—डा० भगवानदास और डा० अब्दुल हक़. गवर्निंग बाडी के प्रेसीडेन्ट डा० भगवानदास; सेक्रेटरी—पं० सुन्दरलाल.

गवर्निंग बाडी के और मेम्बर—

डा० सैयद महमूद, डा० ताराचन्द, मौलवी सैयद सुलेमान नदवी, मि० मंज़र अली सोख्ता, श्री बी० जी० खेर, पं० विशम्भर नाथ, महात्मा भगवानदीन, सेठ पूनम चन्द रांका, क़ाज़ी मोहम्मद अब्दुल ग़फ़्फ़ार और श्री ओम प्रकाश पालीवाल.

मेम्बरी के क़ायदों के लिये लिखिये—

सुन्दरलाल

सेक्रेटरी, हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी

145, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद

नोट—सोसाइटी के नए क़ायदे के अनुसार मेम्बरी की फ़ीस सिर्फ़ एक रुपया कर दी गई है. "नया हिन्द" के जो गाहक मेम्बर बनना चाहें उनको सिर्फ़ छै रुपया चन्दा देने पर ही मेम्बर बना लिया जायगा. अलग से मेम्बरी की फ़ीस देने वाले सोसाइटी की निकली हुई कोई किताब जो एक रुपया दाम की होगी मुफ़्त ले सकेंगे या ज़्यादा दाम की किताबें लेने पर एक बार एक रुपया कम करा सकेंगे.

ہندستانی کلچر سوسائٹی

مقصد

(1) ایک ایسی ہندستانی کلچر کا بڑھانا' پھیلانا اور پرچار کرنا جس میں سب ہندستانی شامل ہوں ۔

(2) ایکتا پھیلانے کے لئے کتابوں' اخباروں' رسالوں وغیرہ کا چھاپنا ۔

(3) پڑھائی گھروں' کتاب گھروں' سبھاؤں' کانفرنسوں' لیکچروں سے سب دھرموں' جاتوں' برادریوں اور فرقوں میں آپس کا میل بڑھانا ۔

—:o:—

سوسائٹی کے پریسیڈنٹ—مسٹر عبدالمجید خواجہ؛ وائس پریسیڈنٹ—ڈاکٹر بھگوان داس اور ڈاکٹر عبدالحق ۔ گورننگ باڈی کے پریسیڈنٹ — ڈاکٹر بھگوان داس؛ سکریٹری — پنڈت سندرلال ۔

گورننگ باڈی کے اور ممبر—

ڈاکٹر سید محمود' ڈاکٹر تارا چند' مولوی سید سلیمان ندوی' مسٹر منظر علی سوختہ' شری بی جی کھیر' پنڈت بشمبھر ناتھ' مہاتما بھگوان دین' سیٹھ پونم چند رانکہ' قاضی محمد عبدالغفار اور شری اوم پرکاش پالیوال ۔

ممبری کے قاعدوں کے لئے لکھئے ۔

سندرلال

سکریٹری' ہندستانی کلچر سوسائٹی'

145' مٹھی گنج' الہ آباد ۔

نوٹ—سوسائٹی کے نئے قاعدے کے انوسار ممبری کی فیس صرف ایک روپیہ کردی گئی ہے ۔ "نیا ہند" کے جو گاہک ممبر بننا چاہیں اُن کو صرف چھہ روپیہ چندہ دینے پر ہی ممبر بنا لیا جائیگا ۔ الگ سے ممبری کی فیس دینے والے سوسائٹی کی نکلی ہوئی کوئی کتاب جو ایک روپیہ دام کی ہوگی مفت لے سکیں گے یا زیادہ دام کی کتابیں لینے پر ایک بار ایک روپیہ کم کرا سکینگے

हमारे यहां मिलने वाली कुछ और किताबें
ہمارے یہاں ملنے والی کچھ اور کتابیں

नोट:—यह किताबें सिर्फ़ हिन्दी में हैं

نوٹ:— یہ کتابیں صرف ہندی میں ہیں۔

नाम किताब	लेखक	दाम			لیکھک	نام کتاب
1 शेर ओ शायरी	श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय	8	0	0	شری ایودھیا پرساد گوئلیی	1. شعر و شاعری
2. शेर ओ सुखन	,,	8	0	0	,,	2. شعر و سخن
3. गहरे पानी पैठ	,,	2	8	0	,,	3. گہرے پانی پیٹھ
4. हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	3	0	0	شری بنارسی داس چترویدی	4. ہمارے آرادھیہ
5. संस्मरण	,,	3	0	0	,,	5. سنسمرن
6. दो हज़ार वर्ष पुरानी कहानियां	श्री जगदीशचन्द्र जैन	3	0	0	شری جگدیش چندر جین	6. دو ہزار ورش پرانی کہانیاں
7. ज्ञान गंगा	श्री नारायण प्रसाद जैन	6	0	0	شری نارائن پرساد جین	7. گیان گنگا
8. पथ चिन्ह	श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी	2	0	0	شری شانتی پریہ دویدی	8. پتھ چنہ
9. पंथ प्रदीप	शान्ति एम. ए.	2	0	0	شانتی ایم۔ اے	9. پنتھ پردیپ
10. आकाश के तारे धरती के फूल	श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	2	0	0	شری کنہیالال مشر پربھاکر	10. آکاش کے تارے دھرتی کے پھول
11. मुक्ति दूत	श्री वीरेन्द्र कुमार जैन एम. ए.	5	0	0	شری ویریندر کمار جین ایم۔ اے	11. مکتی دوت
12. मिलन यामिनी	श्री बच्चन	4	0	0	شری بچن	12. ملن یامنی
13. रजत रश्मि	डाक्टर रामकुमार वर्मा	2	8	0	ڈاکٹر رام کمار ورما	13. رجت رشمی
14. मेरे बापू	श्री तन्मय बुखारिया	2	8	0	شری تنمے بکھاریا	14. میرے باپو
15. विश्व संघ की ओर	पंडित सुन्दरलाल भगवानदास केला	3	0	0	پنڈت سندرلال، بھگوان داس کیلا	15. وشو سنگھ کی اور
16. भारतीय अर्थशास्त्र	श्री भगवानदास केला	5	0	0	شری بھگوان داس کیلا	16. بھارتیہ ارتھ شاستر
17. भारतीय शासन	,,	3	0	0	,,	17. بھارتیہ شاسن
18. नागरिक शास्त्र	,,	2	4	0	,,	18. ناگرک شاستر
19. साम्राज्य और उनका पतन	,,	2	8	0	,,	19. سامراج اور اُن کا پتن
20. भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन	,,	1	4	0	,,	20. بھارتیہ سوادھینتا آندولن
21. सर्वोदय अर्थ व्यवस्था	,,	1	8	0	,,	21. سرووَدے ارتھ ویوستھا
22. हमारी आदिम जातियां	श्री भगवानदास केला और श्री अखिल विनय	3	8	0	شری بھگوان داس کیلا اور شری اکھل ونے	22. ہماری آدم جاتیاں
23. अर्थशास्त्र शब्दावली	श्री दया शंकर दुबे, एम. ए. एल एल. बी. गजाधर प्रसाद, अम्बिष्ट, भगवानदास केला	2	0	0	شری دیا شنکر دوبے ایم۔ اے۔ ایل ایل۔ بی۔ گجادھر پرساد، امبشٹ، بھگوان داس کیلا	23. ارتھ شاستر شبداولی
24. नागरिक शिक्षा	भगवानदास केला श्री दयाशंकर दुबे	1	8	0	شری بھگوان داس کیلا دیا شنکر دوبے	24. ناگرک شکشا
25. राष्ट्र मंडल शासन	श्री दयाशंकर दुबे	1	8	0	دیا شنکر دوبے	25. راشٹر منڈل شاسن
26. जवानी	महात्मा भगवानदीन	3	0	0	مہاتما بھگوان دین	26. جوانی
27. मारने की हिम्मत !	,,	1	0	0	,,	27. مارنے کی ہمت
28. सलौना सच	,,	0	8	0	,,	28. سلونا سچ
29. मेरे साथी	,,	1	0	0	,,	29. میرے ساتھی

मिलने का पता—
मैनेजर 'नया हिन्द'
145, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद-3.

ملنے کا پتہ
مینیجر 'نیا ہند'
145، مٹھی گنج، الہ آباد-3

गीता और क़ुरान

लेखक–पंडित सुन्दरलाल

इस किताब में हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनों के मेल की बातें है. गीता का बड़प्पन, गीता के एक एक अध्याय का निचोड़, क़ुरान का बड़प्पन, लगभग 15 ख़ास ख़ास मज़मूनों पर क़ुरान की क़रीब 500 आयतों का लफ़्ज़ी तर्जुमा वग़ैरा दिया गया है.

जो लोग सब धर्मों की बुनियादी एकता को जानना और समझना चाहें उनके लिये यह किताब अनमोल है.

पौने तीन सौ सफ़े की सुन्दर जिल्द बंधी किताब की क़ीमत सिर्फ़ ढाई रुपया, डाक ख़र्च अलग.

हिन्दू मुसलिम एकता

इस किताब में वह चार लेक्चर जमा किये गए हैं जो पंडित जी ने कन्सीलियेटरी बोर्ड ग्वालियर की दावत पर ग्वालियर में दिये थे.

सौ सफ़े की किताब. क़ीमत सिर्फ़ बारह आने.

महात्मा गांधी के बलिदान से सबक़

साम्प्रदायिकता यानी फ़िरक़ापरस्ती की बीमारी पर राजकाजी, मज़हबी और इतिहासी पहलू से विचार और उसका इलाज. इसी ने आख़िर में देश पिता महात्मा गांधी तक को हमारे बीच में न रहने दिया.

क़ीमत बारह आने.

पंजाब हमें क्या सिखाता है

अक्तूबर सन् 1947 में पच्छिमी और पूरबी पंजाब के बटवारे के बाद वहां की भयंकर बरबादी और आपसी मार काट के कारन लोगों पर जो जो मुसीबतें आइं उन का दर्दनाक आंखों देखा बनन. इस छोटी सी किताब में आजकल की मुसीबतों को हल करने के लिए कुछ सुझाव भी पेश किये गए हैं. क़ीमत चार आने.

बंगाल और उससे सबक़

इस छोटी सी किताब में 1949-50 में पूरबी और पच्छिमी बंगाल के फ़िरक़ेवाराना झगड़ों पर रोशनी डाली गई है और ऐसे झगड़ों को हमेशा के लिए ख़त्म करने की तरकीब भी सुझाई गई है. क़ीमत सिर्फ़ दो आने.

मिलने का पता—

मैनेजर, 'नया हिन्द' 145, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद.

گیتا اور قران

لیکھک—پنڈت سندر لال

اِس کتاب میں ہندو دھرم اور اِسلام دونوں کے میل کی باتیں ہیں. گیتا کا بڑپن' گیتا کے ایک ایک ادھیائے کا نچوڑ' قرآن کا بڑپن' لگ بھگ 15 خاص خاص مضمونوں پر قرآن کی قریب 500 آیتوں کا لفظی ترجمہ وغیرہ دیا گیا ہے .

جو لوگ سب دھرموں کی بنیادی ایکتا کو جاننا اور سمجھنا چاہیں اُن کے لئے یہ کتاب انمول ہے .

پونے تین سو صفحے کی سندر جلد بندھی کتاب کی قیمت صرف ڈھائی روپیہ' ڈاک خرچ الگ .

ہندو مسلم ایکتا

اِس کتاب میں وہ چار لیکچر جمع کئے گئے ہیں جو پنڈت جی نے کنسیلیٹری بورڈ گوالیار کی دعوت پر گوالیار میں دئے تھے .

سو صفحے کی کتاب . قیمت صرف بارہ آنے .

مہاتما گاندھی کے بلیدان سے سبق

سامپردایکتا یعنی فرقہ پرستی کی بیماری پر راج کاجی' مذہبی اور اِتہاسی پہلو سے وچار اور اُسکا علاج. اِسی نے آخر میں دیش پتا مہاتما گاندھی تک کو ہمارے بیچ میں نہ رہنے دیا .

قیمت بارہ آنے .

پنجاب ہمیں کیا سکھاتا ہے

اکتوبر سن 1947 میں پچھمی اور پوربی پنجاب کے بٹوارے کے بعد وہاں کی بھینکر بربادی اور آپسی مار کاٹ کے کارن لوگوں پر جو جو مصیبتیں آئیں اُن کا دردناک آنکھوں دیکھا ورنن . اِس چھوٹی سی کتاب میں آجکل کی مصیبتوں کو حل کرنے کے لئے کچھ سجھاؤ بھی پیش کئے گئے ہیں . قیمت چار آنے .

بنگال اور اُس سے سبق

اِس چھوٹی سی کتاب میں 1949-50 میں پوربی اور پچھمی بنگال کے فرقہ وارانہ جھگڑوں پر روشنی ڈالی گئی ہے اور ایسے جھگڑوں کو ہمیشہ کے لئے ختم کرنے کی ترکیب بھی سجھائی گئی ہے . قیمت صرف دو آنے .

ملنے کا پتہ--

منیجر 'نیا ہند' 145 مٹھی گنج' الہ آباد

हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी की किताबें

पचास रुपए से ज़ियादा दाम की किताबें ख़रीदने वालों को और बुकसेलरों को ख़ास रिआयत दी जायेगी. पूरी जानकारी के लिए लिखिये.

डाक या रेल ख़र्च हर हालत में गाहक के ज़िम्मे होगा.

भारत का विधान

पूरा हिन्दी अनुवाद

जो 26 जनवरी सन 1950 से सारे भारत में लागू हुआ. 'भारत में अंगरेज़ी राज' के लेखक पंडित सुन्दरलाल द्वारा मूल अंगरेज़ी से अनुवादित.

हर भारतवासी का फ़र्ज़ है कि जिस विधान के अधीन स्वाधीन भारत का शासन इस समय चल रहा है उसे अच्छी तरह समझे. भारत के हर घर में इस पुस्तक का रहना ज़रूरी है.

आसान बामुहावरा भाशा. रायल अठपेजी बड़ा साइज़. लगभग चार सौ पन्ने. कपड़े की सुन्दर जिल्द. क़ीमत केवल साढ़े सात रुपए.

फ़िरक़ाबन्दी पर बापू

सम्पादक—श्री श्रीकृश्न दास

इस पुस्तक में 1921 से सन 1948 तक गांधी जी ने साम्प्रदायिता के सवाल पर जो कुछ कहा या लिखा वह सब आपको एक जगह मिलेगा.

भारत के आज़ाद होने पर यह और भी ज़रूरी हो गया है कि हर भारतवासी साम्प्रदायिकता के नुक़सानों को समझे और इस ज़हर को अपने अन्दर से साफ़ करे.

सुन्दर जिल्द. अच्छा काग़ज़. दो सौ सफ़े. क़ीमत दोरुपया.

विनोबा का सन्देश

लेखक—सुरेश रामभाई

एक शब्द—महात्मा भगवानदीन

विनोबाजी के भू-दान-यज्ञ से आज सारा देश वाक़िफ़ है. इस छोटी सी किताब में आपको मिलेगा कि यह भू-दान-यज्ञ कब और कैसे शुरू हुआ और इसका मक़सद क्या है.

पहला एडीशन हाथों हाथ निकल गया. यह दूसरा एडीशन है. सफ़े 25, दाम केवल दो आने.

मिलने का पता—

मैनेजर, 'नया हिन्द' 145, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद.

ہندستانی کلچر سوسائٹی کی کتابیں

پچاس روپئے سے زیادہ دام کی کتابیں خریدنے والوں کو اور بکسیلروں کو خاص رعائت دی جائیگی ۔ پوری جانکاری کے لئے لکھئے ۔

ڈاک یا ریل خرچ ہر حالت میں گاہک کے ذمے ہوگا ۔

بھارت کا ودھان

پورا ہندی انوواد

جو 26 جنوری سن 1950 سے سارے بھارت میں لاگو ہوا ۔ 'بھارت میں انگریزی راج' کے لیکھک پنڈت سندرلال دوارا مول انگریزی سے انووادت ۔

ہر بھارت واسی کا فرض ہے کہ جس ودھان کے ادھین سوادھین بھارت کا شاسن اِس سمے چل رہا ہے اُسے اچھی طرح سمجھے ۔ بھارت کے ہر گھر میں اس پستک کا رہنا ضروری ہے ۔

آسان بامحاورہ بھاشا. رایل اٹھ پیجی بڑا سائز ۔ لگ بھگ چار سو پنّے ۔ کپڑے کی سندر جلد ۔ قیمت کیول ساڑھے سات روپئے ۔

فرقہ بندی پر باپو

سمپادک—شری شریکرشن داس

اِس پستک میں سن 1921 سے سن 1948 تک گاندھی جی نے سامپردایکتا کے سوال پر جو کچھ کہا یا لکھا وہ سب آپکو ایک جگہ ملیگا ۔

بھارت کے آزاد ہونے پر یہ اور بھی ضروری ہو گیا ہے کہ ہر بھارت واسی سامپردایکتا کے نقصان کو سمجھے اور اِس زہر کو اپنے اندر سے صاف کرے ۔

سندر جلد ۔ اچھا کاغذ ۔ دو سو صفحے ۔ قیمت دو روپیہ ۔

ونوبا کا سندیش

لیکھک—سریش رام بھائی

ایک شبد—مہاتما بھگوان دین

ونوبا جی کے بھودان یگیہ سے آج سارا دیش واقف ہے. اِس چھوٹی سی کتاب میں آپکو ملیگا کہ یہ بھودان یگیہ کب اور کیسے شروع ہوا اور اِس کا مقصد کیا ہے ۔

پہلا ایڈیشن ہاتھوں ہاتھ نکل گیا ۔ یہ دوسرا ایڈیشن ہے ۔ صفحے 25' دام کیول دو آنے ۔

ملنے کا پتہ—

مینیجر' 'نیا ہند' ,145 مٹھی گنج' الہ آباد.

है जिसकी एक राजधानी नागपुर हो और दूसरी बम्बई. हमारा तो ख़्याल था कि सर्वोदय समाज जब हिन्दुस्तान में क़ायम होगा तो न बम्बई रहेगा न नागपुर, न नई दिल्ली, न लखनऊ, न कलकत्ता, न मद्रास, बड़े बड़े और गांव चूसक शहर ख़त्म हो जायँगे. हमारा यह ख़्याल अब भी है. लेकिन श्री शंकर राव जी को अपनी राय देने का पूरा हक़ है और इस राय में दूसरों को भी शरीक करने का पूरा हक़ है. इस तरह बरार का अलग सूबा बने और बम्बई का अलग, इनके लिये श्री ब्रिज लाल जी भाई और श्री एस. के. पाटिल साहब को भी कोशिश करने का पूरा हक़ है. हमारी गुज़ारिश है कि इस भाषा के सवाल पर ठंडे दिल से ख़ूब ग़ौर किया जाना चाहिये और जितने विचार या ख़्याल इस मसले पर आयें उनका मंथन होना चाहिये. ध्यान रहे कि हम मंथन चाहते हैं रगड़ नहीं. मंथन से मक्खन पैदा होता है और रगड़ से आग. लेकिन हम यह भी चाहते हैं कि हिन्दुस्तान के नये नक़्शे के बारे में जो भी फ़ैसले हों वह कसरत राय या मेजार्टी वोट से न हो कर सबकी मुश्तरका यानी एक राय से हों.

एक अर्ज़ और है. आख़िर यह सूबों के बनने का तमाशा क्या है, इसके लिये इतनी बदगुमानियां फैलाना या वावैला मचाना हमारी समझ में नहीं आता. क्या हम एक ही हिन्दुस्तान की मिट्टी की पैदावार नहीं हैं? अगर हमारा हिन्दुस्तान जीता है तो हममें से कौन मरता है और अगर हिन्दुस्तान ख़त्म होता है तो हम में से कौन जीता है? इसलिये बुनियादी मसला यह है कि हिन्दुस्तान क़ायम रहे और यहां पर कोई भी नंगा भूका न रहे. ज़रूरत इस बात की है कि हमारे ग़रीब भाई अपनी ग़रीबी छोड़ दें, अमीर भाई अपनी अमीरी छोड़ दें, बाबू लोग अपनी बाबूगीरी छोड़ दें, हम अपनी अपनी हस्ती मिटा दें और सब मिल कर ऐसा समरस या एक रस समाज बनायें जिसका ज़र्रा ज़र्रा हमारा आईना हो.

23. 5. '54 — सुरेशराम भाई

ہیں جسکی ایک راجدھانی ناگپور ہو اور دوسری بمبئی۔ ہمارا تو خیال تھا کہ سرودے سماج جب ہندستان میں قائم ہوگا تو نہ بمبئی رہیگا نہ ناگپور، نہ نئی دلی، نہ لکھنؤ، نہ کلکتہ، نہ مدراس، بڑے بڑے اور گاؤں چوسک شہر ختم ہو جائینگے۔ ہمارا یہ خیال اب بھی ہے۔ لیکن شری شنکر راؤ جی کو اپنی رائے دینے کا پورا حق ہے اور اس رائے میں دوسروں کو بھی شریک کرنے کا پورا حق ہے۔ اس طرح برار کا الگ صوبہ بنے اور بمبئی کا الگ، ان کے لیئے شری برج لال جی بھائی اور شری ایس۔ کے۔ پاٹل صاحب کو بھی کوشش کرنے کا پورا حق ہے۔ ہماری گذارش ہے کہ اس بھاشا کے سوال پر ٹھنڈے دل سے خوب غور کیا جانا چاہیئے اور جتنے وچار یا خیال اس مسلے پر آئیں ان کا منتھن ہونا چاہیئے۔ دھیان رہے کہ ہم منتھن چاہتے ہیں، رگڑ نہیں۔ منتھن سے مکھن پیدا ہوتا ہے اور رگڑ سے آگ۔ لیکن ہم یہ بھی چاہتے ہیں کہ ہندستان کے نئے نقشے کے بارے میں جو بھی فیصلے ہوں وہ کسرت رائے یا میجارٹی ووٹ سے نہ ہو کر سب کی مشترکہ یعنی ایک رائے سے ہوں۔

ایک عرض اور ہے۔ آخر یہ صوبوں کے بننے بنانے کا تماشہ کیا ہے، اس کے لئے اتنی بدگمانیاں پھیلانا یا واویلا مچانا ہماری سمجھ میں نہیں آتا۔ کیا ہم ایک ہی ہندستان کی مٹی کی پیداوار نہیں ہیں؟ اگر ہمارا ہندستان جیتا ہے تو ہم میں سے کون مرتا ہے اور اگر ہندستان ختم ہوتا ہے تو ہم میں سے کون جیتا ہے؟ اس لئے بنیادی مسئلہ یہ ہے کہ ہندستان قائم رہے اور یہاں پر کوئی بھی ننگا بھوکا نہ رہے۔ ضرورت اس بات کی ہے کہ ہمارے غریب بھائی اپنی غریبی چھوڑیں، امیر بھائی اپنی امیری چھوڑیں، بابو لوگ اپنی بابوگیری چھوڑیں، ہم اپنی اپنی ہستی مٹادیں اور سب ملکر ایسا سمرس یا ایک رس سماج بنائیں جس کا ذرہ ذرہ ہمارا آئینہ ہو۔

23 . 5 . '54 — سریش رام بھائی

कि यह चीज़ यू. पी. के कुछ मिनिस्टरों और ख़ास कर चीफ़ मिनिस्टर साहब और उनके हम ख़्यालों को पसन्द नहीं आई और उनकी नाराज़गी के डर से कुछ लोगों ने ऊपर वाले मेमोरेन्डम से अपने दस्तख़त वापिस भी लेलिये. हम फिर अर्ज़ कर दें कि हमें नहीं मालूम कि इसके पीछे सचाई क्या है या क्या राज़ है. लेकिन जब हमने पंडित गोविन्द वल्लभ पंत की एक स्पीच की रिपोर्ट सुनी तो हैरत हुई कि उनके जैसा ऊंचा, तजुर्बेकार और दानिशमन्द स्यासतदां किस तरह ऐसी बातें कर सकता है. यह कहा जाता है कि पंतजी ने फ़रमाया कि उत्तर प्रदेश राम और कृश्न का, गंगा व जमना का प्रदेश है और किसी सूरत से भी इसे तक़सीम नहीं पर किया जा सकता. पंडित पंत को निजी और हुक्कामी तौर अपनी राय देने का पूरा हक़ है. लेकिन उनके इन लफ़्ज़ों में एक गर्मी, एक बौखलाहट और एक डांट ऐसी नज़र आती है जो उनके जैसे मुरब्बी और आला हस्ती को शोभा नहीं देती. हम इस वक़्त हिन्दुस्तान के नये नक़्शे के बनने पर अपनी कोई राय नहीं दे रहे हैं और न अपने बुज़ुर्ग चीफ़ मिनिस्टर की बात का ही जवाब देना चाहते हैं लेकिन क्या पिछले सौ बरस का इतिहास यह नहीं बताता कि यूपी का दुईपना—राम और कृश्न, गंगा और जमुना, हिन्दी और उर्दू, हिन्दू और मुसलमान, अलीगढ़ और बनारस, शुद्धी और तबलीग़, लीग और महासभा, इलाहाबाद और लखनऊ, वग़ैरा वग़ैरा ज़िन्दगी के मानो हर महकमे में दुभांति ज़िम्मेदार है. हिन्दुस्तान की स्यासत को बिगाड़ने का और इस मुल्क के दो टुकड़े कर देने का— फिर यूपी कोई क़ुदरती इकाई भी नहीं है बल्कि एक बनावटी गोल गप्पा सा है जिसे अंग्रेज़ों ने अपनी मरज़ी और क़ाबलियत के मुताबिक़ यह आज के जैसी बदनुमा और फ़ील पांव की सी शकल दे डाली. इस सूबे के जुग़राफ़िया को देख कर कोई भी इसके बनाने वालों को दाद नहीं दे सकता. लेकिन अगर पंडित पंत को यह चीज़ पसन्द आती है तो वह उन्हें मुबारक, हज़ार बार मुबारक. मगर इसके यह मानी तो नहीं होते कि उनके आगे किसी की न चले और उनकी बात पत्थर की लकीर मानी जाये. हमें यक़ीन है कि पंत जी जैसे डिमाक्रेसी या लोकशाही के पुजारी को ख़ुद यह बात मुनासिब नहीं महसूस होगी और वह हर ख़्याल की क़दर करेंगे और इस ख़्याल के बाहर निकलने का हर मुमकिन मौक़ा हर किसी को, अपनी ज़ाती और हुक्कामी, दोनों तरफ़ों से देंगे.

एक तरफ़ जहां पंडित पंत यू पी को यू. पी ही रहने देने पर इसरार करते हैं, दूसरी तरफ़ कांग्रेस और सर्वोदय समाज के साबिक़ सेक्रेटरी, श्री शंकर राव जी देव, मराठी भाषा भाषी लोगों का एक बड़ा और शानदार सूबा चाहते

یوپی کے کچھ منسٹروں اور خاص کر چیف منسٹر صاحب اور ان کے ہم خیالوں کو پسند نہیں آئی اور انکی ناراضگی کے ڈر سے کچھ لوگوں نے اوپر والے میمورنڈم سے اپنے دستخط واپس بھی لے لیئے۔ ہم پھر عرض کر دیں کہ ہمیں نہیں معلوم کہ اس کے پیچھے سچائی کیا ہے یا کیا راز ہے؟ لیکن جب ہم نے پنڈت گووند بلبھ پنت کی ایک اسپیچ کی رپورٹ سنی تو حیرت ہوئی کہ ان کے جیسا اونچا، تجربہ کار اور دانشمند سیاست داں کس طرح ایسی باتیں کر سکتا ہے۔ یہ کہا جاتا ہے کہ پنت جی نے فرمایا کہ اتر پردیش رام اور کرشن کا، گنگا و جمنا کا پردیش ہے اور کسی صورت سے بھی اسے تقسیم نہیں کیا جا سکتا۔ پنڈت پنت کو نجی اور حکامی طور پر اپنی رائے دینے کا پورا حق ہے۔ لیکن ان کے ان لفظوں میں ایک گرمی، ایک بوکھلاہٹ اور ایک ڈانٹ ایسی نظر آتی ہے جو ان کے جیسے مربی اور اعلیٰ ہستی کو شوبھا نہیں دیتی۔ ہم اس وقت ہندستان کے نئے نقشہ کے بننے پر اپنی کوئی رائے نہیں دے رہے ہیں اور نہ اپنے بزرگ چیف منسٹر کی بات کا ہی جواب دینا چاہتے ہیں۔ لیکن کیا پچھلے سو برس کا اتہاس یہ نہیں بتاتا کہ یوپی کا دوئی پنا—رام اور کرشن، گنگا اور جمنا، ہندی اور اردو، ہندو اور مسلمان، علیگڑھ اور بنارس، شدھی اور تبلیغ، لیگ اور مہاسبھا، الہ آباد اور لکھنؤ، وغیرہ وغیرہ زندگی کے مانو ہر محکمہ میں دو بھانتی ذمہ دار ہے۔ ہندستان کی سیاست کو بگاڑنے کا اور اس ملک کے دل کے دو ٹکڑے کر دینے کا—پھر یو پی کوئی قدرتی اکائی بھی نہیں ہے بلکہ ایک بناوٹی گول گپا سا ہے جسے انگریزوں نے اپنی مرضی اور قابلیت کے مطابق یہ آج کے جیسی بدنما اور فیل پاؤں کی سی شکل دے ڈالی۔ اس صوبہ کے جغرافیہ کو دیکھ کر کوئی بھی اس کے بنانے والوں کو داد نہیں دے سکتا۔ لیکن اگر پنڈت پنت کو یہ چیز پسند آتی ہے تو وہ انہیں مبارک، ہزار بار مبارک۔ مگر اس کے یہ معنی تو نہیں ہوتے کہ ان کے آگے کسی کی نہ چلے اور ان کی بات پتھر کی لکیر مانی جائے۔ ہمیں یقین ہے کہ پنت جی جیسے ڈماکریسی یا لوک شاہی کے پجاری کو خود یہ بات مناسب نہیں محسوس ہوگی اور وہ ہر خیال کی قدر کرینگے اور اس خیال کے باہر نکلنے کا ہر ممکن موقع ہر کسی کو، اپنی ذاتی اور حکامی، دونوں طرفوں سے دیں گے۔

ایک طرف جہاں پنڈت پنت یو پی کو یوپی ہی رہنے دینے پر اصرار کرتے ہیں، دوسری طرف کانگریس اور سروودے سماج کے سابق سیکریٹری، شری شنکر راؤ جی دیو، مراٹھی بھاشا بھاشی لوگوں کا ایک بڑا اور شاندار صوبہ چاہتے

संतोष हो. अंग्रेज़ी हिन्दुस्तान के नक़्शे का भोंडापन कांग्रेस ने शुरू से ही महसूस कर लिया था. यही वजह है कि 1920 के क़रीब जब कांग्रेस का संगठन मुल्क के कोने कोने में फैला तो कांग्रेसी सूबों और सरकारी सूबों में काफ़ी फ़र्क़ हो गया. कांग्रेस का इसरार कि सूबा भाशा या बोली की बिना पर क़ायम किया जाये और मुल्क की भलाई व हिफ़ाज़त के साथ साथ इस सूबे के रहने वालों की ख़ाहिशों का पूरा पूरा ख़याल रक्खा जाये.

अंग्रेज़ी राज की बिदाई के बाद भाशावार सूबों की मांग क़ुदरती तौर पर ज़ोर पकड़ने लगी. लेकि भारत का जो नया विधान बना उसमें क़रीब क़रीब वही सूबे (ख़ास कर Part A वाले) रक्खे गये जो अंग्रेज़ छोड़ गये थे. लिहाज़ा जनता में असंतोश फैला और भाशा के सवाल को लेकर जगह जगह शोर गुल मचाया जाने लगा. ज़्यादा बुलन्द आवाज़ दक्खिन से और ख़ास तौर पर आंध्र से उठी आंध्र के लोग जान तक क़ुर्बान करने को तैयार हो गये और एक पाक हस्ती की शहादत के बाद आख़िर आन्ध्र का नया सूबा मद्रास के पुराने सूबे में से काट कर बना दिया गया. आन्ध्र का बनना था कि दूसरे भाश वाले भी आपे से बाहर होने लगे. नई दिल्ली की हुकूमत परेशान हो गई क्योंकि ख़ुद इस हुकूमत की पार्टी वाले यानी कांग्रेस के लोग भी उस कोहराम में पूरे जोश के साथ हिस्सा लेते थे. मामले को ज़्यादा बिगड़ता देखकर हुकूमत ने भाशाई कमीशन नाम से तीन आदमियों का एक बोर्ड क़ायम कर दिया और उसके सुपुर्द यह काम किया कि मुल्क भर का दौरा करे, मुख़तलिफ़ जमाअतों और लोगों से मिलकर उनकी राय इस सवाल पर ले और फिर हर पहलू से उस पर ग़ौर करने के बाद हिन्दुस्तान के नये नक़्शे के मुताल्लिक़ अपनी सिफ़ारिश सरकार को पेश करे.

इस कमीशन को बने क़रीब तीन माह हो चुके हैं और आजकल यह मुल्क का दौरा कर रहा है. जगह जगह यह लोगों से मिलता है और लोग भी अपने सुझाव मेमोरैंडम की शकल में उसके आगे रख रहे हैं. ख़ामोशी और अहतयात के साथ यह कमीशन काम कर रहे हैं. हाल ही में उत्तर प्रदेश के पच्छिमी ज़िलों के कुछ असरदार लोगों ने भी अपना एक मेमोरैंडम उसके आगे पेश किया जिस्में शायद यह ख़ाहिश ज़ाहिर की गई कि पच्छिमी उत्तर प्रदेश को रुहेलखंड या मेरठ और आगरा कमिशनरियों, को देहली व पंजाब के कुछ मशरक़ी ज़िलों को मिलाकर एक नया सूबा खड़ा किया जावे. उसमें यूपी असेम्बली के भी बहुत से मेम्बरान के दस्तख़त थे. हमें नहीं मालूम कि अन्दर ही अन्दर क्या वाक़या हुए मगर अख़बारों से पता चलता है

سنتوش ہو ۔ انگریزی ہندستان کے نقشہ کا بھونڈاپن کانگریس نے شروع سے ہی محسوس کرلیا تھا ۔ یہی وجہ ہے کہ 1920 کے قریب جب کانگریس کا سنگٹھن ملک کے کونے کونے میں پھیلا تو کانگریسی صوبوں اور سرکاری صوبوں میں کافی فرق ہوگیا ۔ کانگریس کا اصرار تھا کہ کہ صوبہ بھاشا یا بولی کی بنا پر قایم کیا جائے اور ملک کی بھلائی و حفاظت کے ساتھ ساتھ اس صوبے کے رہنے والوں کی خواہشوں کا پورا خیال رکھا جائے ۔

انگریزی راج کی بدائی کے بعد بھاشاوار صوبوں کی مانگ قدرتی طور پر زور پکڑنے لگی ۔ لیکن بھارت کا جو نیا ودھان بنا اس میں قریب قریب وہی صوبے (خاص کر Part A والے) رکھے گئے جو انگریز چھوڑ گئے تھے ۔ لہذا جنتا میں اسنتوش پھیلا اور بھاشا کے سوال کو لیکر جگہ جگہ شور غل مچایا جانے لگا ۔ زیادہ بلند آواز دکھن سے اور خاص طور پر آندھر سے اٹھی ۔ آندھر کے لوگ جان تک قربان کرنے کو تیار ہوگئے اور ایک پاک ہستی کی شہادت کے بعد آخر آندھر کا نیا صوبہ مدراس کے پرانے صوبہ میں سے کاٹکر بنا دیا گیا ۔ آندھر کا بننا تھا کہ دوسرے بھاشا والے بھی آپے سے باہر ہونے لگے ۔ نئی دلی کی حکومت پریشان ہوگئی کیونکہ خود اس حکومت کی پارٹی والے یعنی کانگریس کے لوگ بھی اس کہرام میں پورے جوش کے ساتھ حصہ لیتے تھے ۔ معاملے کو زیادہ بگڑتا دیکھکر حکومت نے بھاشائی کمیشن نام سے تین آدمیوں کا ایک بورڈ قایم کردیا اور اس کے سپرد یہ کام کیا کہ ملک بھر کا دورہ کرے، مختلف جماعتوں اور لوگوں سے ملکر انکی رائے اس سوال پر لے اور پھر ہر پہلو سے اس پر غور کرنے کے بعد ہندستان کے نئے نقشہ کے متعلق اپنی سفارش سرکار کو پیش کرے ۔

اس کمیشن کو بنے قریب تین ماہ ہوچکے ہیں اور آجکل یہ ملک کا دورہ کررہا ہے ۔ جگہ جگہ یہ لوگوں سے ملتا ہے اور لوگ بھی اپنے سجھاؤ میمورنڈم کی شکل میں اس کے آگے رکھ رہے ہیں ۔ خاموشی اور احتیاط کے ساتھ یہ کمیشن کام کر رہا ہے ۔ حال ہی میں اترپردیش کے پچھمی ضلعوں کے کچھ اثردار لوگوں نے بھی اپنا ایک میمورنڈم اس کے آگے پیش کیا جس میں شاید یہ خواہش ظاہر کی گئی کہ پچھمی اترپردیش کو روہیلکھنڈ یا میرٹھ اور آگرہ کمشنریوں کو دہلی و پنجاب کے کچھ مشرقی ضلعوں کو ملاکر ایک نیا صوبہ کھڑا کیا جائے ۔ اس میں یو پی اسمبلی کے بھی بہت سے ممبران کے دستخط تھے ۔ ہمیں نہیں معلوم کہ اندر ہی اندر کیا واقعہ ہوئے مگر اخباروں سے پتہ چلتا ہے کہ یہ چیز

मार्च में हुई उसकी एक बड़ी वजह V. I. P. कैम्प का क़ायम करना था और अगर यह कैम्प न होता तो शायद वह हादसा न होता. बौद्ध गया सम्मेलन से पहले कभी किसी सम्मेलन में यह चीज़ नहीं हुई. यह ज़रूरी है कि आगे सम्मेलनों में सरकार से कम से कम मदद ली जाये और सारा बोझ उस सूबे या ज़िले की भूदान कमेटी (जहां सम्मेलन हो) बर्दाश्त करे और इस इलाक़े की जनता का ज़्यादा से ज़्यादा सहयोग हासिल किया जाये.

हमारे प्रेमी पाठक शायद यह जानते हों कि विनोबा जी ने भूदान यज्ञ आन्दोलन को गोतम बुद्ध का काम बताया है और इसे धर्म चक्र परिवर्तन कहा है. यह लफ़्ज़ उन्होंने पहली बार 9 मई 1952 को बौद्ध जयन्ती के दिन लखनऊ में कहे थे. बौद्ध गया सम्मेलन ने यह साबित कर दिया कि विनोबा जी का यह कहना मानो ज़माने की ही आवाज़ है. इस सम्मेलन ने यह दिखा दिया कि हिन्दुस्तान की नैतिक या इख़लाक़ी ताक़त के सोते अभी जानदार हैं और सहज ज़ोर पकड़ सकते हैं. इससे यह भी पता चल गया कि एक नेक और पाक काम के लिये मुल्क के नौजवान क़ुर्बानी के लिये आज भी तैयार हैं. इस से यह भी ज़ाहिर हो गया कि हिन्दुस्तान को आत्मिक बल में गहरा यक़ीन है और इस बल के ज़रिये दुनिया के दूसरे सभी 'ख़ौफ़नाक से ख़ौफ़नाक' बलों का मुक़ाबला किया जा सकता है और सबसे ख़ास बात यह निकली कि भगवान बुद्ध की विश्व आत्मा निराकार रूप में इशारा कर रही है कि बैर की जगह मुहब्बत, ग़ुस्से की जगह शान्ति और झूठ की जगह सच पर चले बिना इन्सान इस धरती पर अब सही सलामत ज़िन्दा नहीं रह सकता.

22. 5. '54 सुरेशराम भाई

हिन्दुस्तान के नये नक़्शे की तैयारी

प्लासी की लड़ाई के बाद से अंग्रेज़ लोग हिन्दुस्तान के थोड़े थोड़े हिस्से को फ़तह करते गये और अपना राज खड़ा करते गये. अपनी सहूलियत और पालिसी के मुताबिक़ उन्होंने सूबे क़ायम कर दिये. इस बात का कोई लिहाज़ नहीं रक्खा कि इस सूबे में कौन लोग रहते हैं, उनकी आपस की बोली क्या है, उनका रहन सहन पान किस ढंग का है, उनके ख़्याल क्या हैं, वग़ैरा वग़ैरा. नतीजा यह हुआ कि उन्होंने ऐसे ऐसे बेतुके सूबे बना डाले जिन पर ख़ुद अंग्रेज़ को भी शर्म आती थी और धीरे धीरे उन्होंने सूबों को तोड़ कर नये नये सूबे बनाने शुरू कर दिये. लेकिन अपने आख़िरी दम तक हिन्दुस्तान के नक़्शे को वह ऐसी कोई सुन्दर शक्ल न दे सके जिस पर इन्हें नाज़ हो या जनता को

مارچ میں ہوئیں اسکی ایک بڑی وجہ V. I. P. کیمپ کا قایم کرنا تھا اور اگر یہ کیمپ نہ ہوتا تو شاید وہ حادثہ نہ ہوتا. بودھ گیا سمیلن سے پہلے کبھی کسی سمیلن میں یہ چیز نہیں ہوئی. یہ ضروری ہے کہ آگے سمیلنوں میں سرکار سے کم سے کم مدد لی جائے اور سارا بوجھ اس صوبہ یا ضلع کی بھودان کمیٹی (جہاں سمیلن ہو) برداشت کرے اور اس علاقہ کی جنتا کا زیادہ سے زیادہ سہیوگ حاصل کیا جائے .

ہمارے پریمی پاٹھک شاید یہ جانتے ہوں کہ ونوبا جی نے بھودان یگیہ آندولن کو گوتم بدھ کا کام بتایا ہے اور اسے دھرم چکر پریورتن کہا ہے . یہ لفظ انہوں نے پہلی بار 9 مئی 1952 کو بدھ جینتی کے دن لکھنؤ میں کہے تھے . بودھ گیا سمیلن نے یہ ثابت کردیا کہ ونوبا جی کا یہ کہنا مانو زمانے کی ہی آواز ہے . اس سمیلن نے یہ دکھا دیا کہ ہندستان کی نیتک یا اخلاقی طاقت کے سوتے ابھی جاندار ہیں اور سہج زور پکڑ سکتے ہیں . اس سے یہ بھی پتہ چل گیا کہ ایک نیک اور پاک کام کے لیئے ملک کے نوجوان قربانی کے لیئے آج بھی تیار ہیں. اس سے یہ بھی ظاہر ہوگیا کہ ہندستان کو آتمک بل میں گہرا یقین ہے اور اس بل کے ذریعے دنیا کے دوسرے سبھی 'خوفناک سے خوفناک' بلوں کا مقابلہ کیا جاسکتا ہے. اور سب سے خاص بات یہ نکلی کہ بھگوان بدھ کی وشو آتما نراکار روپ میں اشارہ کر رہی ہے کہ بیر کی جگہ محبت' غصہ کی جگہ شانتی اور جھوٹ کی جگہ سچ پر چلے بنا انسان اس دھرتی پر اب سہی سلامت زندہ نہیں رہ سکتا .

22 . 5 . '54 —سریش رام بھائی

ہندستان کے نئے نقشہ کی تیاری

پلاسی کی لڑائی کے بعد سے انگریز لوگ ہندستان کے تھوڑے تھوڑے حصہ کو فتح کرتے گئے اور اپنا راج کھڑا کرتے گئے . اپنی سہولیت اور پالیسی کے مطابق انہوں نے صوبے قایم کردیئے . اس بات کا کوئی لحاظ نہیں رکھا کہ اس صوبے میں کون لوگ رہتے ہیں' انکی آپس کی بولی کیا ہے' انکا رہن سہن' کھان پان کس ڈھنگ کا ہے' ان کے خیال کیا ہیں' وغیرہ وغیرہ . نتیجہ یہ ہوا کہ انہوں نے ایسے ایسے بے تکے صوبے بنا ڈالے جن پر خود انگریز کو بھی شرم آتی تھی اور دھیرے دھیرے انہوں نے صوبوں کو توڑ کر نئے نئے صوبے بنانے شروع کردیئے . لیکن اپنے آخری دم تک ہندستان کے نقشہ کو وہ ایسی کوئی سندر شکل نہ دے سکے جس پر انہیں ناز ہو یا جنتا کو

जी, उनकी पार्टी वाले और कांग्रेस वाले भी भूदान यज्ञ के कामों में ज़ोर से लग जायें. इसका नतीजा यह होगा कि राजनीति पर अच्छा असर होगा और राजनीति का लोकनीति में परिवर्तन हो जायगा.

कुल मिला कर इस सम्मेलन से तीन बातें साफ़ निकलती हैं :—

(1) सन 1957 तक पांच करोड़ एकड़ ज़मीन भूदान यज्ञ में हासिल करनी है.

(2) ज़मीन बांटने का काम तेज़ी के साथ चलाया जावे. ज़मीन बांटने के साथ नयी ज़मीन आसानी से मिलती चली जायगी.

(3) जो गांव पूरे पूरे मिल गये हैं या जहां हर दाता ने कुछ ज़मीन दी है या जहां कोई भी बेज़मीन नहीं रहा है वहां गहरा काम होना चाहिये ताकि उन गांवों का नया निर्मान किया जावे.

हम यहां इतना और कह दें कि गया ज़िले के लिये विनोबा जी ने एक निर्मान कमेटी मुक़र्रर की है जो निर्मान काम को सम्भाल लेगी. इसके अलावा गया ज़िले के कोवाकोल थाना में श्री जैप्रकाश ख़ुद एक आश्रम क़ायम करेंगे जिसमें काम करने वालों की ट्रेनिंग का इन्तज़ाम होगा और कोवाकोल थाना में ग्राम राज्य का गहरा प्रयोग होगा. साथ ही बौद्ध गया में समन्वय आश्रम बनेगा. वेदान्त और अहिंसा के मेल की बिना पर विनोबा जी ने इसे सभी धर्मों, तहज़ीबों का संगम बनाने का तय किया है. ख़ुश-क़िस्मती से बौद्ध गया में बुद्ध मन्दिर के पास ही पांच बीघे ज़मीन भी उन्हें इस काम के लिये मिल गई है. वहां पर सर्वोदय के सेवकों ने एक कुवां भी खोद कर तैयार कर लिया है. समन्वय आश्रम की अहमियत और प्रोग्राम पर काका साहब कालेलकर ने 18 अप्रैल की सुबह के वक़्त रोशनी भी डाली. इस समन्वय आश्रम में कारकुनों की ट्रेनिंग भी होगी और इस आश्रम की देख रेख में बौद्ध गया थाना में ग्रामोदय का भी काम चलेगा.

जैसा हमने शुरू में ही कहा है इस सम्मेलन में काफ़ी बड़ी तादाद में भूदान के कारकुन और हमदर्द शरीक हुये. सम्मेलन में बेहद सादगी थी और सारा काम ख़ूब अच्छी तरह से चला. मगर इस सम्मेलन में एक चीज़ हमें बहुत खटकी. वह था वहां वी. आई. पी. (V. I. P.) नाम से एक अलग जगह का बनाया जाना. कहने की ज़रूरत नहीं कि वी. आई. पी. (वेरी इम्पारटेन्ट परसनस् यानी बहुत ख़ास आदमी) का डेरा जहां कहीं भी होता है एक कलंक साबित होता है और इन्सान इन्सान के बीच फ़र्क़ बढ़ जाता है. बहुत से लोगों का यह भी ख़याल है कि कुम्भ मेले पर जो दर्दनाक दुर्घटना पिछले

جی، ان کی پارٹی والے اور کانگریس والے بھی بھودان یگیہ کے کاموں میں زور سے لگ جائیں اس کا نتیجہ یہ ہوگا کہ راجنیتی پر اچھا اثر ہوگا اور راجنیتی کا لوک نیتی میں پریورتن ہوجائیگا ۔

کل ملاکر اس سمیلن سے تین باتیں صاف نکلتی ہیں :—

(1) سن 1957 تک پانچ کروڑ ایکڑ زمین بھودان یگیہ میں حاصل کرنی ہے ۔

(2) زمین بانٹنے کا کام تیزی کے ساتھ چلایا جائے ۔ زمین بانٹنے کے ساتھ نئی زمین آسانی سے ملتی چلی جائیگی ۔

(3) جو گاؤں پورے پورے مل گئے ہیں یا جہاں ہر داتا نے کچھ زمین دی ہے یا جہاں کوئی بھی بےزمین نہیں رہا ہے وہاں گہرا کام ہونا چاہیئے تاکہ ان گاؤں کا نیا نرمان کیا جائے ۔

ہم یہاں اتنا اور کہدیں کہ گیا ضلع کے لئے ونوبا جی نے ایک نرمان کمیٹی مقرر کی ہے جو نرمان کام کو سنبھال لے گی. اس کے علاوہ گیا ضلع کے کواکول تھانہ میں جے پرکاش خود ایک آشرم قایم کرینگے جس میں کام کرنے والوں کی ٹریننگ کا انتظام ہوگا اور کواکول تھانے میں گرام راج کا گہرا پریوگ ہوگا ۔ ساتھ ہی بودھ گیا میں سمنوے آشرم بنیگا ۔ ویدانت اور اہنسا کے میل کی بنا پر ونوبا جی نے اسے سبھی دھرموں، تہذیبوں کا سنگم بنانے کا طے کیا ہے ۔ خوش قسمتی سے بودھ گیا میں بودھ مندر کے پاس ہی پانچ بیگھے زمین بھی انہیں اس کام کے لئے مل گئی ہے۔ وہاں پر سرودے کے سیوکوں نے ایک کنواں بھی کھود کر تیار کرایا ہے ۔ سمنوے آشرم کی اہمیت اور پروگرام پر کاکا صاحب کالیلکر نے 18 اپریل کی صبح کے وقت روشنی بھی ڈالی ۔ اس سمنوے آشرم میں کارکنوں کی ٹریننگ بھی ہوگی اور اس آشرم کی دیکھ ریکھ میں بودھ گیا تھانے میں گرامودے کا بھی کام چلیگا ۔

جیسا ہم نے شروع میں ہی کہا ہے اس سمیلن میں کافی بڑی تعداد میں بھودان کے کارکن اور ہمدرد شریک ہوئے ۔ سمیلن میں بےحد سادگی تھی اور سارا کام خوب اچھی طرح سے چلا ۔ مگر اس سمیلن میں ایک چیز ہمیں بہت کھٹکی. وہ تھا وہاں وی. آئی. پی. (V.I.P.) نام سے ایک الگ جگہ کا بنایا جانا ۔ کہنے کی ضرورت نہیں کہ وی. آئی. پی. (ویری امپارٹینٹ پرسنس یعنی بہت خاص آدمی) کا ڈیرہ جہاں کہیں بھی ہوتا ہے ایک کلنک ثابت ہوتا ہے اور انسان انسان کے بیچ فرق بڑھ جاتا ہے ۔ بہت سے لوگوں کا یہ بھی خیال ہے کہ کمبھ میلے پر جو دردناک دُرگھٹنا پچھلے

किया कि इसमें काफी नौजवान आयेंगे. उसी वक़्त 500 से ऊपर ख़त आ गये जिन्हें सदर के इसरार पर जैप्रकाश बाबू ने पढ़ कर सुनाया. इस तरह तीसरे दिन का आधा वक़्त इस काम में लगा.

सम्मेलन की आख़री बैठक तीसरे पहर को हुई. इसमें पहले तो पिछले दिन की विभागवार बैठकों की कारवाई का निचोड़ सुनाया गया. फिर सम्मेलन का ख़ास ठहराव—और एक ही ठहराव—सर्व सेवा संघ के मन्त्री श्री शंकर राव जी देव ने रक्खा. इस ठहराव में कहा गया कि किसी न किसी तरह ज़मीन का आंकड़ा पूरा करना हमारा मक़सद नहीं है. आज जायदाद और मालिकी के बारे में जो ख़्याल समाज पर हावी है उसे हम जड़ मूल से बदलना चाहते हैं. इस मानी में भूमि दान हमारे आर्थिक इन्क़लाब का पहला क़दम है. हमें उम्मीद है और यक़ीन है कि समाज में नये पैमाने क़ायम करने की तमन्ना रखने वाले सभी भाई बहन उस इन्क़लाबी और जांफ़रोशी के तजुरबे के लिये अपना जीवन दान देंगे और उसे जल्दी ही कामयाब बनाने में अपने आप को खपा देंगे.

ठहराव पेश करने के बाद श्री शंकर राव की तक़रीर हुई जिसमें उन्होंने कहा कि बौद्ध गया सम्मेलन का संदेश यही है कि जीवन ही एक यज्ञ है. इस बीच डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद भी आ गये थे. शंकर राव जी के बाद उनका भाशन हुआ जिसमें उन्होंने पिछले तीन साल में भूदान यज्ञ के कारन देश में जो जागृति पैदा हुई है उस पर सन्तोश ज़ाहिर किया. उन्होंने यक़ीन दिलाया कि इस तरह की मज़बूत बुनियादों पर जो भारत बनेगा वह ख़ुशहाल और पायेदार होगा.

अब सम्मेलन का आख़िरी प्रोग्राम—संत विनोबा का प्रवचन—उन्होंने आचार्य कृपालानी की दी हुई चेतावनी पर सबका ध्यान खींचा और कहा कि जीवन दान करने के मानी हैं जीवन शुद्धि का फ़ैसला. फिर उन्होंने कहा कि हमें 'धर्म' और 'परम धर्म' में तमीज़ करनी चाहिये. धर्म इच्छा होते हुये भी परम धर्म में लगना चाहिये. उन्होंने आचार्य कृपलानी की इस बात पर भी रज़ामन्दी ज़ाहिर की कि राजनीति अपने क़ाबू में होनी चाहिये और मौजूदा स्यासी निज़ाम को बदलना चाहिये. मगर, विनोबा जी बोले, मैं कहता हूं कि ताक़त मेरे हाथ में लेने की कोई ज़रूरत नहीं है, ताक़त मेरे कहने में रहे तो काफ़ी है. फिर हाथ में ताक़त लेने की तकलीफ़ उठाने की ज़रूरत नहीं है. इस तरह ताक़त के बाहर रहकर अगर ताक़त पर अधिकार कर सकते हैं तो ताक़त हाथ में लेने का संकट कौन उठायेगा. इसलिये जो इन्क़लाब या राजक्रान्ती हम चाहते हैं वह बिना तकलीफ़ के ऐसे ही होगी. हम चाहते हैं कि कृपलानी

کیا کہ اسمیں کافی نوجوان آئینگے . اسی وقت 500 سے اوپر خط آگئے جنہیں صدر کے اسرار پر جے پرکاش بابو نے پڑھ کر سنایا . اس طرح تیسرے دن کا آدھا وقت اس کام میں لگا .

سمیلن کی آخری بیٹھک تیسرے پہر کو ہوئی . اس میں پہلے تو پچھلے دن کی وبھاگوار بیٹھکوں کی کارروائی کا نچوڑ سنایا گیا . پھر سمیلن کا خاص ٹھہراؤ — اور ایک ہی ٹھہراؤ — سروسیوا سنگھ کے منتری شری شنکر راؤ جی دیو نے رکھا . اس ٹھہراؤ میں کہا گیا کہ کسی نہ کسی طرح زمین کا آنکڑا پورا کرنا ہمارا مقصد نہیں ہے . آج جائداد اور مالکی کے بارے میں جو خیال سماج پر حاوی ہے اسے ہم جڑ مول سے بدلنا چاہتے ہیں . اس معنی میں بھومی دان ہمارے آرتھک انقلاب کا پہلا قدم ہے . ہمیں امید ہے اور یقین ہے کہ سماج میں نئے پیمانے قائم کرنے کی تمنا رکھنے والے سبھی بھائی بہن اس انقلابی اور جانفروشی کے تجربے کے لیئے اپنا جیون دان دینگے اور اسے جلدی ہی کامیاب بنانے میں اپنے آپ کو کھپا دینگے .

ٹھہراؤ پیش کرنے کے بعد شری شنکر راؤ کی تقریر ہوئی جس میں انہوں نے کہا کہ بودھ گیا سمیلن کا سندیش یہی ہے کہ جیون ہی ایک یگیہ ہے . اس بیچ ڈاکٹر راجیندر پرشاد بھی آ گئے تھے . شنکر راؤ جی کے بعد ان کا بھاشن ہوا جس میں انہوں نے پچھلے تین سال میں بھودان یگیہ کے کارن دیش میں جو جاگرتی پیدا ہوئی ہے اس پر سنتوش ظاہر کیا . انہوں نے یقین دلایا کہ اسطرح کی مضبوط بنیادوں پر جو بھارت بنے گا وہ خوشحال اور پائیدار ہوگا .

اب سمیلن کا آخری پروگرام — سنت ونوبا کا پروچن — انہوں نے آچاریہ کرپلانی کی دی ہوئی چیتاونی پر سب کا دھیان کھینچا اور کہا کہ جیون دان کرنے کے معنی ہیں جیون شدھی کا فیصلہ . پھر انہوں نے کہا کہ ہمیں 'دھرم' اور 'پرم دھرم' میں تمیز کرنی چاہیئے . دھرم اچھا ہوتے ہوئے بھی پرم دھرم میں لگنا چاہیئے . انہوں نے آچاریہ کرپلانی کی اس بات پر بھی رضامندی ظاہر کی کہ راجنیتی اپنے قابو میں ہونی چاہیئے اور موجودہ سیاسی نظام کو بدلنا چاہیئے . مگر' ونوبا جی بولے' میں کہتا ہوں کہ طاقت میرے ہاتھ میں لینے کی کوئی ضرورت نہیں ہے' طاقت میرے کہنے میں رہے تو کافی ہے . پھر ہاتھ میں طاقت لینے کی تکلیف اٹھانے کی ضرورت نہیں ہے . اس طرح طاقت کے باہر رہ کر ہی اگر طاقت پر ادھیکار کر سکتے ہیں تو طاقت ہاتھ میں لینے کا سنکٹ کون اٹھائیگا . اس لیئے جو انقلاب یا راج کرانتی ہم چاہتے ہیں وہ بنا تکلیف کے ایسے ہی ہوگی . ہم چاہتے ہیں کہ کرپلانی

दूसरे का जीवन सुन्दर व पाक बनेगा और नये नये कारकुन भी उन्हें मिलेंगे. आखीर में विनोबा जी ने दुआ की कि हम सब जैप्रकाश बाबू की तरह पक्के फैसला वाले हो.

इन दोनों तक़रीरों से सम्मेलन में नई जान आ गई. वहां की हवा में ही मानो फ़र्क़ आ गया. इस दिन प्रार्थना के बाद आचार्य कृपलानी की स्पीच हुई. उन्होंने कहा कि सिर्फ़ पांच करोड़ एकड़ ज़मीन जमा करने और बांट देने से काम नहीं चलने वाला है, राजनीत को भी अपनाना होगा या अपने क़ाबू में करना होगा, ऐसी चेतावनी उन्होंने दी. श्री जैप्रकाश के फ़ैसले की तारीफ करते हुये वह बोले की मुझे भी लालच हुआ मगर मैंने कहा कि प्रोफ़ैसर तेरे अन्दर गुस्सा है, मैल है, उनको खत्म करना चाहिये क्योंकि दान अच्छी चीज़ का ही हो सकता है. ऐसा क़दम उठाने के पहले हमको आपसी मन मुटाव, उमंगें वग़ैरा मिटा देना चाहिये.

तीसरे दिन, बीस अप्रेल को वह हो गया जिसका कभी गुमान भी नहीं हो सकता था. सुबह के वक़्त विनोबा जी ने श्री जैप्रकाश जी को एक ख़त भेजा. वह यह था :—

"श्री जै प्रकाश.'

कल आपने जो आवाहन किया था उसके जवाब में भूदान यज्ञ मूलक उद्योग प्रधान अहिन्सात्मक क्रान्ति के लिये मेरा जीवन समर्पित है. —विनोबा"

इस ख़त को पाकर कौन दंग नहीं रह जायेगा और कौन हिम्मत करेगा कि इसे अपने पास रक्खे ? जैप्रकाश बाबू ने सम्मेलन की सदर आशा बहन को एक चिट्ठी लिखी—

'बाबा का एक पत्र आया है जो साथ भेज रहा हूं. जिन्होंने हम सब को प्रेरित किया है वही मुझ जैसे नाचीज़ को जीवन दान करें, इस पर कुछ कहा नहीं जाता. इतना ही कहूंगा कि इस अनमोल दान को स्वीकार कर सकूं इसके एकदम नाक़ाबिल हूं. हमें तो जीवन दान भगवान के नाम पर बाबा को ही करना है'

आशा बहन ने ये दोनों ख़त सम्मेलन में पढ़ कर सुनाये. फिर क्या था. मानो जीवन दान की गंगा बह निकली. भरे गले से आशा बहन ने कहा कि मेरा पूरा जीवन इस काम के लिये समर्पित है. फिर लाउडस्पीकर पर श्री धीरेन्द्र भाई आये. उन्होंने कहा कि कुछ घबराहट के साथ मैं भी अपना जीवन दान करता हूं. घबराहट इसलिये कि जीवन दान का मतलब यह नहीं है कि ज़मीन मांगने का काम तेज़ी से चलेगा बल्कि यह कि हम समाज में नये इन्सानी पैमाने क़ायम करेंगे. उन्होंने यक़ीन ज़ाहिर

دوسرے کا جیون سندر و پاک بنیگا اور نئے نئے کارکن بھی انہیں ملینگے۔ آخیر میں ونوبا جی نے دعا کی کہ ہم سب جے پرکاش بابو کی طرح پکے فیصلہ والے ہوں ۔

ان دونوں تقریروں سے سمیلن میں نئی جان آگئی ۔ وہاں کی ہوا میں ہی مانو فرق آگیا ۔ اس دن پرارتھنا کے بعد آچاریہ کرپلانی کی اسپیچ ہوئی۔ انہوں نے کہا کہ صرف پانچ کروڑ ایکڑ زمین جمع کرنے اور بانٹ دینے سے کام نہیں چلنے والا ہے' راجنیت کو بھی اپنانا ہوگا یا اپنے قابو میں کرنا ہوگا' ایسی چیتاونی انہوں نے دی ۔ شری جے پرکاش کے فیصلہ کی تعریف کرتے ہوئے وہ بولے کہ مجھے بھی لالچ ہوا مگر میں نے کہا کہ پروفیسر تیرے اندر غصہ ہے' میل ہے' انکو ختم کرنا چاہئیے کیونکہ دان اچھی چیز کا ہی ہوسکتا ہے ۔ ایسا قدم اٹھانے کے پہلے ہم کو آپسی من مٹاؤ' امنگیں وغیرہ مٹا دینا چاہئیے.

تیسرے دن' 20 اپریل کو وہ ہوگیا جسکا کبھی گمان بھی نہیں ہوسکتا تھا ۔ صبح کے وقت ونوبا جی نے شری جے پرکاش کو ایک خط بھیجا ۔ وہ یہ تھا :—

"شری جے پرکاش'

کل آپ نے جو آواہن کیا تھا اس کے جواب میں بھودان یگیہ مولک' ادیوگ پردھان اہنساتمک کرانتی کے لئے میرا جیون سمرپت ہے ۔

—ونوبا"

اس خط کو پاکر کون دنگ نہیں رہ جائیگا اور کون ہمت کریگا کہ اسے اپنے پاس رکھے ؟ جے پرکاش بابو نے سمیلن کی صدر آشا بہن کو ایک چٹھی لکھی—

" بابا کا ایک پتر آیا ہے جو ساتھ بھیج رہا ہوں ۔ جنہوں نے ہم سب کو پریرت کیا ہے وہی مجھ جیسے ناچیز کو جیون دان کریں' اس پر کچھ کہا نہیں جاتا ۔ اتنا ہی کہونگا کہ اس انمول دان کو سویکار کر سکوں اس کے ایک دم ناقابل ہوں ۔ ہمیں تو جیون دان بھگوان کے نام پر بابا کو ہی کرنا ہے ۔"

آشا بہن نے یہ دونوں خط سمیلن میں پڑھکر سنائے ۔ پھر کیا تھا ۔ مانو جیون دان کی گنگا بہہ نکلی۔ بھرے گلے سے آشا بہن نے کہا کہ میرا پورا جیون اس کام کے لئے سمرپت ہے ۔ پھر لاؤڈ اسپیکر پر شری دھیریندر بھائی آئے ۔ انہوں نے کہا کہ کچھ گھبراہٹ کے ساتھ میں بھی اپنا جیون دان کرتا ہوں ۔ گھبراہٹ اس لیئے کہ جیون دان کا مطلب یہ نہیں ہے کہ زمین مانگنے کا کام تیزی سے چلیگا بلکہ یہ کہ ہم سماج میں نئے انسانی پیمانے قائم کرینگے ۔ انہوں نے یقین ظاہر

शाम की प्रार्थना के बाद अपने प्रवचन में विनोबा जी ने ऐलान किया कि जो भी भूदान यज्ञ में ज़मीन का दान नहीं करता "देश द्रोही" (ग़द्दार) है. उन्होंने कहा कि बिहार में जितने भी भूमिदान हैं, छोटे या बड़े, उतने ही दान पत्र मुझे चाहियें.

दूसरे दिन सुबह के वक़्त अलग अलग विभागों में भूदानयज्ञ के मुख़तलिफ़ पहलुओं पर चर्चा हुई. (1) भूदान तहरीक ज़्यादा व्यापक कैसे बने ? (2) ज़मीन के बटवारे का सवाल (3) काम करने वालों की ट्रेनिंग (4) सम्पत्ति दान यज्ञ और साधन दान, और (5) गांव रचना और नई तालीम. दोपहर के इजलास में कुछ सूबों के भूदान संयोजकों (कनवीनरों) ने अपने अपने यहां के काम पर रोशनी डाली. सबसे दिलचस्प चीज़ थी मंगरौठ गांव की नई ज़िन्दगी की कहानी. याद रहे कि मंगरौठ उत्तर प्रदेश के हमीरपुर ज़िले में है और हिन्दुस्तान का पहला गांव है जिसके रहने वालों ने अपनी सारी ज़मीन सन्त विनोबा को दान में दे दी. आजकल मंगरौठ का काम वहां के 16 आदमियों से बना सर्वोदय मन्डल देख रहा है. इस मन्डल के सभी (16) मेम्बर सम्मेलन के सामने हाज़िर हुए. सूबाजाती हाल के बाद सम्मेलन की सबसे ख़ास घटना हुई श्री जयप्रकाश बाबू की स्पीच.

बिहार सूबे के बाशिन्दा होने के नाते श्री जैप्रकाश जी ने इस बात पर दुख ज़ाहिर किया कि बिहार में अब तक श्री बाबा (विनोबा जी) की 32 लाख एकड़ की मांग को पूरा नहीं किया. बिहार यह काम कर सकता था मगर स्यासी पार्टियों के कारकुन कांग्रेस हो या प्रजा समाजवादी—पूरी लगन के साथ इसमें नहीं जुटे. उन्होंने कहा कि इस आन्दोलन में मेरी श्रद्धा दिन दिन बढ़ती जा रही है. क़ानून दिल जोड़ने में एकदम असमर्थ है. मगर फिर कौन ऐसी पार्टी है जो यह क़ानून बना सके कि ज़मीन पर अब निजी मिल्कियत न किसी फ़र्द की रहेगी न सरकार की? उन्होंने संगीन हो कर कहा कि वक़्त आ गया है जब हम लोगों को इस काम में अपना पूरा जीवन लगा देना चाहिये. अब एक बरस नहीं, पांच बरस नहीं, जीवन दान का सवाल है ! मेरा सौभाग्य है कि इन जीवन दानियों की सूची में पहला नाम मैं अपना लिखा रहा हूं.

बहुत ही गम्भीर और शान्त आवाज़ में विनोबा जी बोले कि अभी जो स्पीच हुई वह मानो एक दिल बोल रहा था. उन्होंने यक़ीन ज़ाहिर किया कि भूदान यज्ञ की तहरीक कामयाब होते होते कितने के ही जीवन में फेर बदल कर उन्हें कामयाब बनायगी. विनोबा जी बोले कि अगर तामीरी काम करने वाले या गांधी वाले प्रेम से, चौड़े दिमाग़ और खुले दिल से काम करें तो एक

شام کو پرارتھنا کے بعد اپنے پروچن میں ونوباجی نے اعلان کیا کہ جو بھی بھودان یگیہ میں زمین کا دان نہیں کرتا وہ "دیش دروہی" (غدار) ہے۔ انہوں نے کہا کہ بہار میں جتنے بھی بھومی‌دان ہیں، چھوٹے یا بڑے، اتنے ہی دان پتر مجھے چاہئیں۔

دوسرے دن صبح کے وقت الگ الگ وبھاگوں میں بھودان یگیہ کے مختلف پہلوؤں پر چرچہ ہوئی۔ (1) بھودان تحریک زیادہ ویاپک کیسے بنے؟ (2) زمین کے بٹوارے کا سوال (3) کام کرنے والوں کی ٹریننگ (4) سمپتی دان یگیہ اور سادھن دان، اور (5) گاؤں رچنا اور نئی تعلیم۔ دو پہر کے اجلاس میں کچھ صوبوں کے بھودان سنیوجکوں (کنوینروں) نے اپنے اپنے یہاں کے کام پر روشنی ڈالی۔ سب سے دلچسپ چیز تھی منگروٹھ گاؤں کی نئی زندگی کی کہانی۔ یاد رہے کہ منگروٹھ اترپردیش کے ہمیرپور ضلع میں ہے اور ہندوستان کا پہلا گاؤں ہے جس کے رہنے والوں نے اپنی ساری زمین سنت ونوبا کو دان میں دے دی۔ آجکل منگروٹھ کا کام وہاں کے سولہ آدمیوں سے بنا سروودے منڈل دیکھ رہا ہے۔ اس منڈل کے سبھی (16) ممبر سمیلن کے سامنے حاضر ہوئے۔ صوبہ جاتی حال کے بعد سمیلن کی سب سے خاص گھٹنا ہوئی شری جے پرکاش بابو کی اسپیچ۔

بہار صوبہ کے باشندہ ہونے کے ناتے شری جے‌پرکاش جی نے اس بات پر دکھ ظاہر کیا کہ بہار میں اب تک بھی بابا (ونوبا جی) کی 32 لاکھ ایکڑ کی مانگ کو پورا نہیں کیا۔ بہار یہ کام کرسکتا تھا مگر سیاسی پارٹیوں کے کارکن ——کانگریسی ہوں یا پرجا سماج‌وادی——پوری لگن کے ساتھ اس میں نہیں جٹے۔ انہوں نے کہا کہ اس آندولن میں میری شردھا دن دن بڑھتی جارہی ہے۔ قانون دل جوڑنے میں ایکدم اسمرتھ ہے۔ پھر کون پارٹی ایسی ہے جو یہ قانون بنا سکے کہ زمین پر اب نجی ملکیت نہ کسی فرد کی رہیگی نہ سرکار کی؟ انہوں نے سنگین ہوکر کہا کہ وقت آگیا ہے جب ہم لوگوں کو اس کام میں اپنا پورا جیون لگا دینا چاہئیے۔ اب ایک برس نہیں، پانچ برس نہیں، جیون دان کا سوال ہے! میرا سوبھاگیہ ہے کہ اس جیون دانیوں کی سوچی میں پہلا نام میں اپنا لکھا رہا ہوں۔

بہت ہی گمبھیر اور شانت آواز میں ونوبا جی بولے کہ ابھی جو اسپیچ ہوئی وہ مانو ایک دل بول رہا تھا۔ انہوں نے یقین ظاہر کیا کہ بھودان یگیہ کی تحریک کامیاب ہوتے ہوتے کتنوں کے ہی جیون میں ہیرپھیر بدل کر انہیں کامیاب بنائیگی۔ ونوباجی بولے کہ اگر تعمیری کام کرنے والے یا گاندھی والے پریم سے، چوڑے دماغ اور کھلے دل سے کام کریں تو ایک

ख़्याल है कि कुछ कम्युनिस्ट भाई भी मौजूद थे मगर उन्होंने कोई नुमायाँ हिस्सा न लिया. सम्मेलन की सदारत श्रीमती आशा देवी आर्यानायिकम ने की.

अपनी पहली तक़रीर में जो तारीख़ 18 को सेपहर के वक़्त हुई विनोबा जी ने पण्डित नेहरू के आगे मानो यह चंद सवाल पेश किये :

1—क्या मिलकर काम करने के लिये आफ़तें चाहियें ही, क्या मौजूदा हिन्दुस्तान में जो बेशुमार भेद भाव हैं वह काफ़ी आफ़त नहीं हैं ? चुनाव के कारन जाति भेद मज़बूत हो रहे हैं. समझदार लोगों को सोचना चाहिये कि इसमें क्या तरमीम की जाय.

2—पिछले तीन बरस में मुल्क के अन्दर एक नई हवा तैयार हुई है जिसके अन्दर ज़मीन की मालकी किसी एक शख़्स की नहीं हो सकती. इसलिये ज़रूरी है कि जो भी ताक़त हो, चाहे दौलत की शकल में, चाहे किसी शकल में, इसका उपयोग सबके लिये होना चाहिये. जो भी ज़मीन पर मेहनत करने की तैयारी रखता है उसे ज़मीन मिलनी ही चाहिये जैसे कि प्यासे को पानी.

3—जिस तरह इङ्गलैंड में हर किसी को तैरना व बोटिंग आता है उसी तरह हिन्दुस्तान में हर किसी को सूत कातना आना चाहिये. यह सवाल महज़ आर्थिक व सामाजिक ही नहीं बल्कि देश की रक्षा का सवाल है.

पण्डित जवाहरलाल ने अपने तरीक़े से जवाब देते हुये कहा कि हमारे सामने दरअसल 36करोड़ सवाल हैं. उन्होंने इक़रार किया कि जात पात बढ़ रही है मगर चुनाव का एक पेचीदा सवाल है जिसका वास्ता विधान से है. ज़मीन के मसले पर उन्होंने कहा कि भूदान यज्ञ का तरीक़ा गांधी जी के जैसा एक अजीब व ग़रीब तरीक़ा है. लेकिन अगर सरकार इसमें पड़ती है तो इसका रूप बदल जाने का डर है क्योंकि सरकार का हाथ ज़रा भारी पड़ता है और कताई के बारे में वह बोले कि ज़रूर इससे ग़रीबों को मदद पहुंचती है. लेकिन आज के ज़माने में साइन्स की नई खोजों को भी नज़र अन्दाज़ नहीं किया जा सकता.

पण्डित जवाहर लाल के बाद राधा कृष्णन ने कहा कि भूदान से इस मुल्क के देहातों में इन्क़लाब आयेगा और साथ ही साथ आपस की छुआछूत और भेद भाव दूर होंगे. उन्होंने बताया कि ऊंच नीच या छुआ छूत के फ़र्क़ रखने के मानी हैं इन्सान की शान व मान मर्यादा पर चोट करना जो एक पाप है और किसी धर्म में जायज़ नहीं कहा गया है. धर्म वही है जो समाज को जोड़ता है और अधर्म वह जो उसके टुकड़े करे.

خیال ھے کہ کچھ کمیونسٹ بھائی بھی موجود تھے مگر انہوں نے کوئی نمایاں حصہ نہ لیا . سمیلن کی صدارت شریمتی آشا دیوی آریہ نایکم نے کی .

اپنی پہلی تقریر میں جو تاریخ 18 کو سہ پہر کے وقت ہوئی ونوبا جی نے پنڈت نہرو کے آگے مانو یہ چند سوال پیش کئے :

1—کیا ملکر کام کرنے کے لئے آفتیں چاہیئے ہی' کیا موجودہ ہندوستان میں جو بےشمار بھید بھاؤ ھیں وہ کافی آفت نہیں ھیں ؟ چناؤ کے کارن جاتی بھید مضبوط ہو رہے ھیں . سمجھدار لوگوں کو سوچنا چاہیئے کہ اس میں کیا ترمیم کی جائے .

2—پچھلے تین برس میں ملک کے اندر ایک نئی ہوا تیار ہوئی ھے جس کے اندر زمین کی مالکی کسی ایک شخص کی نہیں ہو سکتی . اس لئے ضروری ھے کہ جو بھی طاقت ہو' چاہے دولت کی شکل میں' چاہے کسی شکل میں' اسکا اپیوگ سب کے لئے ہونا چاہیئے . جو بھی زمین پر محنت کرنے کی تیاری رکھتا ھے اسے زمین ملنی ہی چاہیئے جیسے کہ پیاسے کو پانی .

3—جس طرح انگلینڈ میں ہر کسی کو تیرنا و بوٹنگ آتا ھے اسی طرح ہندستان میں ہر کسی کو سوت کاتنا آنا چاہیئے . یہ سوال محض آرتھک و ساماجک ہی نہیں بلکہ دیش کی رکھشا کا سوال ھے .

پنڈت جواہر لال نے اپنے طریقہ سے جواب دیتے ہوئے کہا کہ ہمارے سامنے دراصل 36 کروڑ سوال ھیں . انہوں نے اقرار کیا کہ جات پات بڑھ رہی ھے مگر چناؤ کا ایک پیچیدہ سوال ھے جس کا واسطہ ودھان سے ھے . زمین کے مسئلہ پر انہوں نے کہا کہ بھودان یگیہ کا طریقہ گاندھی جی کے جیسا ایک عجیب و غریب طریقہ ھے . لیکن اگر سرکار اس میں پڑتی ھے تو اس کا روپ بدل جانے کا ڈر ھے کیونکہ سرکار کا ہاتھ ذرا بھاری پڑتا ھے اور کتائی کے بارے میں وہ بولے کہ ضرور اس سے غریبوں کو مدد پہونچتی ھے . لیکن آج کے زمانہ میں سائنس کی کھوجوں کو بھی نظر انداز نہیں کیا جاسکتا .

پنڈت جواہر لال کے بعد ڈاکٹر رادھا کرشنن نے کہا کہ بھودان سے اس ملک کے دیہاتوں میں انقلاب آئیگا اور ساتھ ہی ساتھ آپس کی چھواچھوت و بھید بھاؤ دور ہونگے . انہوں نے بتایا کہ اونچ نیچ یا چھواچھوت کے فرق رکھنے کے معنی ھیں انسان کی شان و مان مریادا پر چوٹ کرنا جو ایک پاپ ھے اور کسی دھرم میں جائز نہیں کہا گیا ھے . دھرم وہی ھے جو سماج کو جوڑتا ھے اور ادھرم وہ جو اس کے ٹکڑے کرے .

इस सम्मेलन पर नज़र डालने के पहले पिछले दो सम्मेलनों पर कुछ थोड़ी सी रोशनी डालनी ज़रूरी है. भूदान तहरीक की शुरूआत 18 अप्रैल सन 1951 को हुई जब हैदराबाद के रियासत के तिलंगाना नाम के इलाक़े के पोचमपल्ली गांव में विनोबा जी की अस्सी एकड़ की मांग पर सौ एकड़ ज़मीन मिली. क़रीब एक साल तक विनोबा जी अकेले ही इस तहरीक को चलाते रहे और जब लगभग एक लाख एकड़ ज़मीन उन्हें मिल गई तो अप्रैल सन 1952 में सेवापुरी (बनारस) में होने वाले चौथे सर्वोदय सम्मेलन में सर्व सेवा संघ ने इस काम को बाज़ाब्ता अपनाया और सर्वोदय सेवकों ने यह प्रन किया कि दो साल के अन्दर कम से कम 25 लाख एकड़ ज़मीन जमा करेंगे. इसके बाद मार्च सन 1953 में चांदिल (बिहार) में होने वाले पांचवें सम्मेलन में यह चीज़ ज़ाहिर की गई कि भूदान यज्ञ का मक़सद देहाते देहात ग्रामराज्य क़ायम करना है जिसके लिये मौजूदा हालत में फेर बदल ज़रूर होगा, यानी आज जो स्यासी व माली ताक़त व दौलत एक एक जगह जमा है इसको बांट बांट कर गांव गांव पहुंचाना होगा. विनोबा जी ने साफ़ साफ़ ऐलान किया कि हमें आज़ाद जन शक्ति (अवाम की ताक़त) मुहय्या करनी होगी जो फ़ौजी या हिंसा शक्ति के ख़िलाफ़ होगी और क़ानूनी या सरकारी शक्ति से अलहदा होगी. इस दो साल के अन्दर भूदान आन्दोलन मुल्क के अन्दर तेज़ी के साथ फैला और 2,37,022 दाताओं से 28,15,101 एकड़ ज़मीन हासिल हुई. इसका मतलब है कि सृजनहार की बरकत से सेवापुरी का संकल्प पूरा हुआ और क़रीब 3 करोड़ लोगों तक भूदान यज्ञ का सन्देश पहुंच गया.

ज़ाहिर है कि बोध गया सम्मेलन पर सर्वोदय समाज को अब आगे क़दम रखना था और मुल्क के सामने नई तामीर का नक़्शा पेश करना था. ख़ुशी की बात है कि इस सम्मेलन में यही काम हुआ और फ़ालतू तक़रीरें या ग़ैर ज़रूरी ठहराव वग़ैरा क़तई न हुये. इस सम्मेलन में पहले दिन, तारीख़ 18 को, पण्डित जवाहरलाल नेहरू और डाक्टर राधाकृश्नन ने शिरकत की. इन दोनों मेहमानों ने सम्मेलन में तक़रीर की और फिर शाम को प्रार्थना के बाद एक बड़े हुजूम के सामने भी विनोबा जी के प्रवचन के बाद पण्डित जी की स्पीच हुई. तारीख़ 19 को आचार्य कृपलानी शरीक हुये और 20 तारीख़ को राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद. इनके अलावा कांग्रेस पार्टी के बहुत से कार्कुन व मिनिस्टर (मरकज़ी व सूबाई) भी तशरीफ़ लाये जिन्होंने मुख़्तलिफ़ चर्चाओं में हिस्सा लिया और इस तरह प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं ने भी. हमारा

اس سمیلن پر نظر ڈالنے سے پہلے پچھلے دو سمیلنوں پر کچھ تھوڑی سی روشنی ڈالنا ضروری ہے . بھودان تحریک کی شروعات 18 اپریل سن 1951 کو ہوئی جب حیدرآباد ریاست کے تیلنگانہ نام کے علاقہ کے پوچمپلی گاؤں میں ونوبا جی کی 80 ایکڑ کی مانگ پر 100 ایکڑ زمین ملی . قریب ایک سال تک ونوبا جی اکیلے ہی اس تحریک کو چلاتے رہے اور جب تک بھگ ایک لاکھ ایکڑ زمین انہیں مل گئی تو اپریل سن 1952 میں سیوا پوری (بنارس) میں ہونے والے چوتھے سرووڈے سمیلن میں سروسیوا سنگھ نے اس کام کو باضابطہ اپنایا اور سرووڈے سیوکوں نے یہ پرن کیا کہ دو سال کے اندر کم سے کم 25 لاکھ ایکڑ زمین جمع کریں گے . اس کے بعد مارچ سن 1953 میں چانڈل (بہار) میں ہونے والے پانچویں سمیلن میں یہ چیز ظاہر کی گئی کہ بھودان یگیہ کا مقصد دیہات دیہات گرام راج قائم کرنا ہے جس کے لیئے موجودہ حالت میں پھیر بدل ضروری ہوگا' یعنی آج جو سیاسی و مالی طاقت و دولت ایک ایک جگہ جمع ہے اسکو بانٹ بانٹ کر گاؤں گاؤں پہونچانا ہوگا . ونوبا جی نے صاف صاف اعلان کیا کہ ہمیں آزاد جن شکتی (عوام کی طاقت) مہیا کرنی ہوگی جو فوجی یا ہنسا شکتی کے خلاف ہوگی اور قانونی یا سرکاری شکتی سے علیحدہ ہوگی . اس دو سال کے اندر بھودان آندولن ملک کے اندر تیزی کے ساتھ پھیلا اور 2,37,022 داتاؤں سے 28,15,101 ایکڑ زمین حاصل ہوئی. اسکا مطلب ہے کہ سرجنہار کی برکت سے سیواپوری کا سنکلپ پورا ہوا اور قریب تین کروڑ لوگوں تک بھودان یگیہ کا سندیش پہونچ گیا .

ظاہر ہے کہ بودھ گیا سمیلن پر سرووڈے سماج کو اب آگے قدم رکھنا تھا اور ملک کے سامنے نئی تعمیر کا نقشہ پیش کرنا تھا . خوشی کی بات ہے کہ اس سمیلن میں یہی کام ہوا اور فالتو تقریریں یا غیر ضروری ٹھہراؤ وغیرہ قطعی نہ ہوئے. اس سمیلن میں پہلے دن ' تاریخ 18 کو' پنڈت جواہر لال نہرو اور ڈاکٹر رادھا کرشنن نے شرکت کی . ان دونوں مہمانوں نے سمیلن میں تقریر کی اور پھر شام کو پرارتھنا کے بعد ایک بڑے ہجوم کے سامنے بھی ونوبا جی کے پروچن کے بعد پنڈت جی کی اسپیچ ہوئی . تاریخ 19 کو آچاریہ کرپلانی شریک ہوئے اور 20 تاریخ کو راشٹر پتی ڈاکٹر راجیندر پرشاد . ان کے علاوہ کانگریس پارٹی کے بہت سے کارکن و منسٹر (مرکزی و صوبائی) بھی تشریف لائے جنہوں نے مختلف چرچاؤں میں حصہ لیا اور اس طرح پرجا سوشلسٹ پارٹی کے نیتاؤں نے بھی . ہمارا

कभी भी, किसी क़ीमत पर भी, हिन्दुस्तान को न लुटने देना चाहेंगे और न उसकी लूट में शरीक होंगे.

नई दिल्ली के नक़्क़ारख़ाने में हमारी जैसी तूती की आवाज़ हरगिज़ सुनाई नहीं पड़ सकती. मगर हम यह कहना अपना फ़र्ज़ समझते हैं कि अगर "इण्डिया लिमिटेड" का ख़्याल हमारे फ़ाइनेन्स मिनिस्टर के दिल में घर कर गया है तो यह बड़े अफ़सोस और दुख और फ़िक्र की बात है. पार्लियामेन्ट के किसी भी मेम्बर को इस ख़्याल से कोई भी तकलीफ़ न पहुंचना और सबका उसे चुप चाप गवारा कर लेना और भी ज़्यादा दर्दनाक बात है. क्या नई दिल्ली की हवा हमें सुन्न बनाती चली जा रही है? किधर ले जाएगा हमारे मुल्क को यह पार्लियामेन्टरी निज़ाम, यह सियासत और यह पारटी-बाज़ी, यह विलायतियों की नक़ल? बिलाशक, जैसा महात्मा गांधी ने "हिन्द स्वराज्य" में कहा है, ख़ातमा व मौत की तरफ़.

हम नम्रता के साथ चेतावनी देना चाहते हैं कि "इण्डिया लिमिटेड" का कारोबार ज़ोर शोर से जारी है और भारत माता की मिट्टी पलीद की जा रही है. हमारे आला से आला हुक्काम जैसे फ़ाइनेन्स मिनिस्टर इसमें कंधा लगा रहे हैं. यह ग़द्दारी कब तक चलेगी? हिन्दुस्तान की जनता को यह कभी बरदाश्त न होगा.

23. 5. '54 —सुरेश रामभाई

बोद्ध गया सम्मेलन पर एक नज़र

अप्रैल महीने की तारीख़ 18, 19 और 20 को गया ज़िले के सरनाम मुक़ाम बोद्ध गया में सर्वोदय समाज का छटा सालाना जल्सा या सम्मेलन हुआ. यह सम्मेलन पिछले पांचों सम्मेलनों के मुक़ाबले ज़्यादा ज़िन्दा, ज़ोरदार और जानदार था. ऐसा होना क़ुदरती है और हमें उम्मीद है कि आगे के सम्मेलन इससे भी बढ़ चढ़ कर होंगे क्योंकि सन्त विनोबा का भूदान यज्ञ आन्दोलन एक ज़िन्दा आन्दोलन है जो मुल्क की सोई हुई ताक़तों को जगा रहा है, समाज के दबे हुये हिस्सों को उभार रहा है और हर किसी को सोचने और अपनी जगह से हरकत करने के लिये मजबूर कर रहा है. इसलिये इसमें दिन दिन नये नये कारकुन आ रहे हैं और जब तक यह भूदान तहरीक ज़िन्दा तहरीक रहती है तब तक हर सर्वोदय सम्मेलन मुल्क की जनता को अपने मक़सद की तरफ़ बढ़ने की मन्ज़िल में मील के एक एक पत्थर की तरह साबित होगा.

کبھی بھی، کسی قیمت پر بھی، ہندستان کو نہ لٹنے دینا چاہینگے اور نہ اسکی لوٹ میں شریک ہونگے .

نئی دلی کے نقارخانے میں ہماری جیسی طوطی کی آواز ہرگز سنائی نہیں پڑسکتی . مگر ہم یہ کہنا اپنا فرض سمجھتے ہیں کہ اگر "انڈیا لمیٹیڈ" کا خیال ہمارے فائیننس منسٹر کے دل میں گھر کر گیا ہے تو یہ بڑے افسوس اور دکھ اور فکر کی بات ہے . پارلیامنٹ کے کسی بھی ممبر کو اس خیال پر کوئی تکلیف نہ پہونچنا اور سب کا اسے چپ چاپ گوارا کرلینا اور بھی زیادہ دردناک بات ہے . کیا نئی دلی کی ہوا ہمیں سن بناتی چلی جارہی ہے ؟ کدھر لے جائیگا ہمارے ملک کو یہ پارلیامنٹری نظام، یہ سیاست اور یہ پارٹی بازی، یہ ولایتیوں کی نقل ؟ بلاشک، جیسا مہاتما گاندھی نے "ہند سوراجیہ" میں کہا ہے، خاتمہ و موت کی طرف .

ہم نمرتا کے ساتھ چیتاونی دینا چاہتے ہیں کہ "انڈیا لمیٹڈ" کا کاروبار زور شور سے جاری ہے اور بھارت ماتا کی مٹی پلید کی جا رہی ہے . ہمارے اعلیٰ سے اعلیٰ حکام جیسے فائیننس منسٹر اس میں کندھا لگا رہے ہیں . یہ غداری کب تک چلیگی ؟ ہندستان کی جنتا کو یہ کبھی برداشت نہ ہوگا .

—سریش رام بھائی 23 . 5 . '54

بودھ گیا سمیلن پر ایک نظر

اپریل مہینے کی تاریخ 19,18 اور 20 کو گیا ضلع کے سر نام مقام بودھ گیا میں سرودے سماج کا چھٹا سالانہ جلسہ یا سمیلن ہوا . یہ سمیلن پچھلے پانچوں سمیلنوں کے مقابلہ زیادہ زندہ، زوردار اور جاندار تھا . ایسا ہونا قدرتی ہے اور ہمیں امید ہے کہ آگے کے سمیلن اس سے بھی بڑھ چڑھ کر ہونگے کیونکہ سنت ونوبا کا بھودان یگیہ آندولن ایک زندہ آندولن ہے جو ملک کی سوئی ہوئی طاقتوں کو جگا رہا ہے، سماج کے دبے ہوئے حصوں کو ابھار رہا ہے اور ہر کسی کو سوچنے سمجھنے اور اپنی جگہ سے حرکت کرنے کے لئے مجبور کر رہا ہے . اس لئے اسمیں دن دن نئے کارکن آ رہے ہیں اور جب تک یہ بھودان تحریک زندہ تحریک رہتی ہے تب تک ہر سرودے سمیلن ملک کی جنتا کا اپنے مقصد کی طرف بڑھنے کی منزل میں میل کے ایک ایک پتھر کی طرح ثابت ہوگا .

जिससे यहां की ग़रीब जनता यह महसूस कर सकती है कि वह भी इस मुल्क के कारोबार यानी "इन्डिया लिमिटेड" में शरीक है !

हमें दुख और ताज्जुब है कि फ़ाइनेन्स मिनिस्टर के इस लफ़्ज़ पर पार्लियामेन्ट के किसी भी मेम्बर ने अफ़सोस ज़ाहिर नहीं किया. कौन नहीं जानता कि "इंडिया लिमिटेड" के ख़याल के पीछे हिन्दुस्तान की लूट और तबाही की कहानी भरी पड़ी है. आज भी "इन्डिया लिमिटेड" के नाम से हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों और दूसरी विलायत वालों के अनेकों कारख़ाने और दूकानें हैं जिनकी बदौलत हिन्दुस्तान के रहे सहे उद्योग धन्दे मिट रहे हैं यहां की बची खुची दौलत बाहर चली जा रही है. और जब तक "इन्डिया लिमिटेड" नाम का कारोबार इस मुल्क में चलता है यहां के आदमी को सिर उठाने का मौक़ा नहीं है. हम समझते थे कि आज़ाद सरकार की यह कोशिश होगी कि यह "इन्डिया लिमिटेड" का धन्दा इस मुल्क से उठ जाये. मगर फ़ाइनेन्स मिनिस्टर की बात से ऐसा लगता है कि यह धन्दा और भी गहरी जड़ें पकड़ रहा है और फ़ाइनेन्स मिनिस्टर इस में पूरा ज़ोर लगा रहे हैं. यही वजह है कि हिन्दुस्तान दिन दिन ज़्यादा वीरान होता चला जा रहा है और हमारे यहां के ग़रीब तेज़ी के साथ ज़्यादा ग़रीब और अमीर ज़्यादा अमीर होते जा रहे हैं.

हमारे फ़ाइनेन्स मिनिस्टर श्री चिन्तामन देशमुख पुराने आई. सी. एस. हैं और अंग्रेज़ी राज में आला जगहों पर रौनक़ पाते थे. क़ुदरती तौर पर उनकी नस नस में अंग्रेज़ी हुकूमत, यानी "इन्डिया लिमिटेड" की गंध समाई हुई है और वह अंग्रेज़ी आर्थिक ढांचे की एक ज़बरदस्त पैरोकार ही नहीं बल्कि उसकी पुख़्ता पैदावार हैं. लिहाज़ा वह हर चीज़ अंग्रेज़ी चश्मे से देखते हैं और बिला इस लिहाज़ के हिन्दुस्तान की सर ज़मीन क्या चाहती है अंग्रेज़ी तर्ज़ व लूट को वह इस देश में बरक़रार रखना चाहते हैं. क़सूर उनका नहीं है, उस तालीम का है जो उन्होंने पाई है, उस मुलाज़मत का है जिस में वह बरसों रहे और उस चमक का है जिसने उनकी आंखों को चौंधिया दिया है. ख़ुश-क़िस्मती कहें या बद-क़िस्मती, आर्थिक मामलों में हमारे प्रधान मंत्री भी उनके काफ़ी हम-ख़्याल हैं.

लेकिन हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि जो जवाहर लाल हर सभा में "जय हिन्द" की आवाज़ बुलन्द करते हैं या आज़ादी के पहले "भारत माता की जय" से आसमान को गुंजा डालते थे, उन्हें "इन्डिया लिमिटेड" का ख़्याल ज़रा भी बरदाश्त नहीं हो सकता था और वह

جس سے یہاں کی غریب جنتا یہ محسوس کر سکتی ہے کہ وہ بھی اس ملک کے کاروبار یعنی "انڈیا لمیٹڈ" میں شریک ہے !

ہمیں دکھ اور تعجب ہے کہ فائننس منسٹر کے اس لفظ پر پارلیامینٹ کے کسی بھی ممبر نے افسوس ظاہر نہیں کیا. کون نہیں جانتا کہ "انڈیا لمیٹڈ" کے خیال کے پیچھے ہندستان کی لوٹ اور تباہی کی کہانی بھری پڑی ہے. آج بھی "انڈیا لمیٹڈ" کے نام سے ہندستان میں انگریزوں اور دوسری ولایت والوں کے انیکوں کارخانے اور دوکانیں ہیں جن کی بدولت ہندستان کے رہے سہے ادیوگ دھندے مٹ رہے ہیں اور یہاں کی بچی کھچی دولت باہر چلی جا رہی ہے. اور جب تک "انڈیا لمیٹڈ" نام کا کاروبار اس ملک میں چلتا ہے یہاں کے آدمی کو سر اٹھانے کے لئے موقع نہیں ہے. ہم سمجھتے تھے کہ آزاد سرکار کی یہ کوشش ہوگی کہ یہ "انڈیا لمیٹڈ" کا دھندا اس ملک سے اٹھ جائے. مگر فائننس منسٹر کی بات سے ایسا لگتا ہے کہ یہ دھندا اور بھی گہری جڑیں پکڑ رہا ہے اور فائننس منسٹر اسمیں پورا زور لگا رہے ہیں. یہی وجہ ہے کہ ہندستان دن دن زیادہ ویران ہوتا چلا جا رہا ہے اور ہمارے یہاں کے غریب تیزی کے ساتھ زیادہ غریب اور امیر زیادہ امیر ہوتے جا رہے ہیں.

ہمارے فائننس منسٹر شری چنتامن دیش مکھ پرانے آئی. سی. ایس ہیں اور انگریزی راج میں اعلیٰ جگہوں پر رونق پاتے تھے. قدرتی طور پر ان کی نس نس میں انگریزی حکومت یعنی انڈیا لمیٹڈ کی گندھ سمائی ہوئی ہے اور وہ انگریزی آرتھک ڈھانچے کی ایک زبردست پیروکار ہی نہیں بلکہ اسکی پختہ پیداوار ہیں. لہذا وہ ہر چیز انگریزی چشمے سے دیکھتے ہیں اور بلا اس لحاظ کے کہ ہندستان کی سرزمین کیا چاہتی ہے انگریزی طرز و لوٹ کو وہ اس دیش میں برقرار رکھنا چاہتے ہیں. قصور انکا نہیں ہے، اس تعلیم کا ہے جو انہوں نے پائی ہے، اس ملازمت کا ہے جس میں وہ برسوں رہے اور اس چمک کا ہے جس نے انکی آنکھوں کو چوندھیا دیا ہے. خوش قسمتی کہیں یا بدقسمتی، آرتھک معاملوں میں ہمارے پردھان منتری بھی ان کے کافی ہم خیال ہیں.

لیکن ہم یہ اچھی طرح جانتے ہیں کہ جو جواہر لال ہر سبھا میں "جے ہند" کی آواز بلند کرتے ہیں، یا آزادی کے پہلے "بھارت ماتا کی جے" سے آسمان کو گونجا ڈالتے تھے، انہیں "انڈیا لمیٹڈ" کا خیال ذرا بھی برداشت نہیں ہو سکتا تھا اور وہ

नहीं चाहते—हमारे साथ या हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी के साथ क्यों की गई ?

इस घटना से हमें एक और कुछ पुरानी घटना याद आ गई. "बेगम सीता" नाम का जोड़ भी एक बार हिन्दुस्तानी के हिमायतियों के सिर मंढा जा चुका है और भारत भर में गूंज चुका है. हमने खूब पता लगाने की कोशिश की. बहुत से लोगों से पूछा. अपने सब साथियों से भी पूछा. जिस हिन्दुस्तानी कमेटी के सिर "बेगम सीता" मंढा जा रहा था उसके एक एक मेम्बर—बाबू राजेन्द्र प्रसाद, डाक्टर ताराचन्द, काका कालेलकर, डाक्टर सैयद महमूद और सुरज पुरा के राजा राधिका रमन प्रसाद सिंह —सब से पूछा. हमें कहीं भी देश भर में कोई ऐसी किताब न मिली जो किसी भी हिन्दुस्तानी सभा या हिन्दुस्तानी कमेटी की निकाली या मन्ज़ूर की हुई हो और जिसमें "बेगम सीता" आता हो. और उसके बाद तो केवल "बेगम सीता" पर ही कहने वालों ने संतोश नहीं किया. हमने अपने कानों से ज़िम्मेवार हिन्दी प्रेमियों के मुंह से 'बादशाह दशरथ' 'शहज़ादा लव' और 'मौलवी वशिश्ठ' भी सुना है. दूसरों को चढ़ाने के लिये अपनी नाक काटने वाले अभी दुनिया से मिटे नहीं और इनमें से कई वह लोग हैं जो खुली सभाओं के अन्दर न केवल 'लार्ड कृश्ना' ही कहते हैं बल्कि अपनी धर्म पत्नियों को "लेडी अमुक" और "मिसेज़ अमुक" कह कर परिचय कराते हैं !

हम स्वीकार करते हैं कि हमारे शब्दों में अब गिला और कडुआपन आने लगा. इसलिये हम इस नोट को यहीं बन्द करते हैं. भगवान हम सब को सुमति दें कि हम सचाई, ईमानदारी और इन्साफ़ को निगाह में रखते हुए शान्ति और प्रेम के साथ जनता में भाशा के सवाल और देश के और सब सवालों पर विचार कर सकें और मिल कर चल सकें.

14. 5. '54 —सुन्दरलाल

जै हिन्द या "इन्डिया लिमिटेड" ?

हमारी पार्लियामेन्ट के हाल के बजट इजलास में जब सरकार की तरफ़ से लगने वाले नए नए टैक्सों पर चरचा चली तो कुछ मेम्बरान ने यह कहा कि अमीरों पर भी जो टैक्स लगते हैं उनका भार दर असल ग़रीबों पर ही पड़ता है और पान, सुपारी, तम्बाकू जैसी ज़रूरत की चीज़ों पर टैक्स तो सीधे ही ग़रीबों के मत्थे पड़ता है कहा जाता है कि इस पर हमारे फ़ाइनेन्स मिनिस्टर साहब ने फ़रमाया कि ग़रीबों पर टैक्स लगना ही चाहिये और उन्हें यह चीज़ ख़ुशी से मन्ज़ूर करनी चाहिए क्योंकि यही एक ज़रिया है

لیہر چاھتے—ھمارے ساتھ یا ھندستانی کلچر سوسائٹی کے ساتھ کیوں کی گئی ؟

اس گھٹنا سے ھمیں ایک اور کچھ پرانی گھٹنا یاد آ گئی. " بیگم سیتا " نام کا جوڑ بھی ایک بار ھندستانی کے حمایتیوں کے سر منڈھا جا چکا ھے اور بھارت بھر میں گونج چکا ھے . ھم نے خوب پتہ لگانے کی کوشش کی . بہت سے لوگوں سے پوچھا . اپنے سب ساتھیوں سے بھی پوچھا . جس ھندستانی کمیٹی کے سر " بیگم سیتا " منڈھا جا رھا تھا اُس کے ایک ایک ممبر—بابو راجیندر پرشاد' ڈاکٹر تارا چند' کاکا کالیلکر' ڈاکٹر سید محمود' اور سورج پورا کے راجا رادھکارمن پرشادسنگھ—سب سے پوچھا. ھمیں کہیں بھی دیش بھر میں کوئی ایسی کتاب نہ ملی جو کسی بھی ھندستانی سبھا یا ھندستانی کمیٹی کی نکالی یا منظور کی ھوئی ھو اور جس میں " بیگم سیتا " آتا ھو . اور اس کے بعد تو کیول " بیگم سیتا " پر ھی کہنے والوں نے سنتوش نہیں کیا . ھم نے اپنے کانوں سے ذمہ وار ھندی پریمیوں کے منہ سے ' بادشاہ دشرتھ ' ' شہزادہ لو ' اور ' مولوی وشِشٹھ ' بھی سنا ھے . دوسروں کو چڑھانے کے لئے اپنی ناک کاٹنے والے ابھی دنیا سے مٹے نہیں اور ان میں سے کئی وہ لوگ ھیں جو کھلی سبھاؤں کے اندر نہ کیول ' لارڈ کرشنا ' ھی کہتے ھیں بلکہ اپنی دھرم پتنیوں کو " لیڈی اَمک " اور " مسز اَمک " کہہ کر پریچے کراتے ھیں !

ھم سویکار کرتے ھیں کہ ھمارے شبدوں میں اب گلہ اور کڑوا پن آنے لگا . اِس لئے ھم اس نوٹ کو یہیں بند کرتے ھیں. بھگوان ھم سب کو سومتی دیں کہ ھم سچائی' ایمانداری اور انصاف کو نگاہ میں رکھتے ھوئے شانتی اور پریم کے ساتھ جنتا کے ھمت میں بھاشا کے سوال اور دیش کے اور سب سوالوں پر وچار کر سکیں اور ملکر چل سکیں .

—سندر لال 14 . 5 . '54

جے ھند یا "انڈیا لیمیٹڈ" ؟

ھماری پارلیامنٹ کے حال کے بجٹ اجلاس میں جب سرکار کی طرف سے لگنے والے نئے نئے ٹیکسوں پر چرچا چلی تو کچھ ممبران نے یہ کہا کہ امیروں پر بھی جو ٹیکس لگتے ھیں ان کا بھار دراصل غریبوں پر ھی پڑتا ھے اور پان' سپاری' تمباکو جیسی ضرورت کی چیزوں پر ٹیکس تو سیدھے ھی غریبوں کے متھے پڑتا ھے کہا جاتا ھے کہ اس پر ھمارے فائننس منسٹر صاحب نے فرمایا کہ غریبوں پر ٹیکس لگنا ھی چاھئے اور انھیں یہ چیز خوشی منظور کرنی چاھیئے کیونکہ یہی ایک ذریعہ ھے

से प्रार्थना करते हैं कि वह हमें इन शब्दों की जगह अधिक खपते हुए शब्द बतावें. अगर उन शब्दों के पीछे भी वही भाव होंगे और उनके बनाने में उन्हीं उसूलों से काम लिया गया होगा जिन से इस शब्दावली में लिया गया है तो हम नये शब्दों को अपना लेंगे. यह भी ध्यान रखना होगा कि केवल हिन्दुस्तानी बोलने वाली जनता के सुभीते को ही नहीं देखना है, बल्कि हिन्दुस्तान भर में उस जनता के सुभीते को भी देखना है जो उसी परम्परा से निकले और बने दूसरे शब्दों को काम में लाती रही है."

हमें याद रखना चाहिये कि यह "शब्दावली" पांच बरस पहले की निकली हुई है. अगर हमारे हिन्दी प्रेमी भाई ऊपर के पैरे में हिन्दुस्तानी की जगह हिन्दी कर लें और सारी शब्दावली को ध्यान से पढ़ जावें तो हमें विश्वास है कि अब भी उसके तीन-चौथाई शब्द उन्हें काफ़ी पसन्द आएंगे. यह "शब्दावली' इस नोट को लिखते समय हमारे सामने रक्खी हुई है. इसमें प्राइम मिनिस्टर (Prime Minister) के लिये केवल एक शब्द दिया गया है और वह शब्द है 'परम वज़ीर' यानी इस शब्दावली के अनुसार भी जवाहरलाल जी को 'पहलुआ' नहीं कहा जा सकता. प्रीमियर (Premier के लिये कई शब्द हैं जिनमें एक शब्द 'पहलुआ' भी है. अंग्रेज़ी शब्द 'प्रीमियर' के कई अर्थ भी होते हैं. 'प्रीमियर' के लिये उसमें दूसरे शब्द हैं—'पहला वज़ीर' और 'बड़ा वज़ीर.' अंग्रेज़ी शब्द केबिनट के भी कई मानी होते हैं. इस "शब्दावली" में (Cabinet) का अर्थ कुटी और खोली भी दिया है और 'काबिना' और 'वज़ीरायत' भी. 'काबिना' शब्द केबिनेट के लिये दुनिया की बहुत सी भाशाओं में काम आता है और 'वज़ीरायत' शब्द पंचायत के वज़न पर बनाया गया है. इस "शब्दावली" के तैयार करने वालों ने मिनिस्टर की जगह वज़ीर शब्द सुझाया है, इसलिये क्योंकि 'मंत्री' शब्द वह 'सेक्रेट्री' के लिये काम में लाये हैं और वज़ीर शब्द का जो सारे भारत में समझा जाता है उन्होंने बाईकाट करना ठीक नहीं समझा. सेन्टर के लिये उन्होंने अवश्य 'बिच बिन्दी' शब्द सुझाया है.

पांच बरस पहले की छपी हुई हिन्दुस्तानी प्रचार सभा वर्धा की निकाली हुई उस "शब्दावली" के कोई शब्द किसी को अच्छे लगें या न लगें—हमें भी उसके कई शब्द अच्छे नहीं लगते—पर हिन्दुस्तानी कल्चर सोसाइटी का निकाला हुआ भारत के विधान का पूरा पूरा हिन्दी अनुवाद बाज़ार में बिक रहा है. उस सारे अनुवाद में न कहीं 'बिचबिन्दी' शब्द है न 'खोली' और न 'पहलुआ'. फिर यह ज़बर्दस्ती—हम अधिक कड़ा शब्द काम में लाना

سے پرارتھنا کرتے ہیں کہ وہ ہمیں ان شبدوں کی جگہ ادھک کھپتے ہوئے شبد بتاویں۔ اگر ان شبدوں کے پیچھے وہی بھاؤ ہونگے اور ان کے بنانے میں انہیں اصولوں سے کام لیا گیا ہوگا جن سے اس شبداولی میں لیا گیا ہے تو ہم نئے شبدوں کو اپنا لیں گے۔ یہ بھی دھیان رکھنا ہوگا کہ کیول ہندستانی بولنے والی جنتا کے سبھیتے کو ہی نہیں دیکھنا ہے' بلکہ ہندستان بھر میں اس جنتا کے سبھیتے کو بھی دیکھنا ہے جو اسی پرمپرا سے نکلے اور بنے دوسرے شبدوں کو کام میں لاتی رہی ہے۔"

ہمیں یاد رکھنا چاہیئے کہ یہ " شبداولی " پانچ برس پہلے کی نکلی ہوئی ہے۔ اگر ہمارے ہندی پریمی بھائی اوپر کے پیرے میں ہندستانی کی جگہ ہندی کر لیں اور ساری شبداولی کو دھیان سے پڑھ جاویں تو ہمیں وشواس ہے کہ اب بھی اس کے تین چوتھائی شبد انہیں کافی پسند آوینگے۔ یہ " شبداولی " اس نوٹ کو لکھتے سمے ہمارے سامنے رکھی ہوئی ہے۔ اس میں پرائم منسٹر (Prime Minister) کے لئے کیول ایک شبد دیا گیا ہے اور وہ شبد ہے 'پرم وزیر' یعنی اس " شبداولی " کے انوسار بھی جواہر لال جی کو 'پہلوا' نہیں کہا جا سکتا۔ پریمیر (Premier) کے لیئے کئی شبد ہیں جن میں ایک شبد 'پہلوا' بھی ہے۔ انگریزی شبد 'پریمیر' کے کئی ارتھ بھی ہوتے ہیں۔ 'پریمیر' کے لیئے اس میں دوسرے شبد ہیں— 'پہلا وزیر' اور 'بڑا وزیر' انگریزی شبد کیبنٹ کے بھی کئی معنی ہوتے ہیں۔ اس " شبداولی " میں کیبنٹ (Cabinet) کا ارتھ کٹی اور کھولی بھی دیا ہے اور 'کابینا' اور 'وزیرایت' بھی۔ 'کابینا' شبد کیبنٹ کے لئے دنیا کی بہت سی بھاشاؤں میں کام آتا ہے اور 'وزیرایت' شبد پنچایت کے وزن پر بنایا گیا ہے۔ اس " شبداولی " کے تیار کرنے والوں نے منسٹر کی جگہ وزیر شبد سجھایا ہے' اس لئے کیونکہ 'منتری' شبد وہ 'سکریٹری' کے لئے کام میں لائے ہیں اور وزیر شبد کا جو سارے بھارت میں سمجھا جاتا ہے انہوں نے بائیکاٹ کرنا ٹھیک نہیں سمجھا۔ سنٹر کے لئے انہوں نے اوشیہ 'بیچ بندی' شبد سجھایا ہے۔

پانچ برس پہلے کی چھپی ہوئی ہندستانی پرچار سبھا وردھا کی نکالی ہوئی اس " شبداولی " کے کوئی شبد کسی کو اچھے لگیں یا نہ لگیں— ہمیں بھی اس کے کئی شبد اچھے نہیں لگتے— پر ہندستانی کلچر سوسائٹی کا نکلا ہوا بھارت کے ودھان کا پورا پورا ہندی انوواد بازار میں بک رہا ہے۔ اس سارے انوواد میں نہ کہیں 'بیچ بندی' شبد ہے نہ 'کھولی' اور نہ 'پہلوا'۔ پھر یہ زبردستی— ہم ادھک کڑا شبد کام میں لانا

से सोच कर अपनी राय क़ायम करें, इसी लिये "नया हिन्द" के कालम इस सवाल की बहस के लिये खुले हैं, इस शर्त पर कि बहस शान्ति ढंग से और उचित सीमाओं के अन्दर हो.

कुछ और भाइयों ने एक और "अंग्रेज़ी हिन्दुस्तानी शब्दावली" में से कुछ शब्द चुन कर हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी को डिक्शनरी बनाने के अयोग्य साबित करने की कोशिश की है. इनमें से तीन शब्द यानी प्राइम मिनिस्टर (Prime Minister) के लिये 'पहलुआ,' केबिनट (Cabinet) के लिये 'खोली' और सैन्टर (Centre) के लिये 'बिच बिन्दी' लगभग सारे हिन्दी जगत में गूंज गये. पार्लिमेन्ट में भी कई मेम्बरों ने इन्हें खूब उछाला और इनके आधार पर दुनिया को यह साबित करने की कोशिश की कि हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी को डिक्शनरी बनाने का काम नहीं मिलना चाहिये था.

पहली बात तो यह कि हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी ने आज तक कभी इस तरह की कोई "शब्दावली" नहीं निकाली. जिस शब्दावली में से यह शब्द लिये गये हैं उस पर कहीं हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी का नाम नहीं. वह शब्दावली निकाली हुई है हिन्दुस्तानी प्रचार सभा वर्धा की और पांच बरस पहले की निकली हुई है. 'शब्दावली' की भूमिका लेखकों में चार नाम हैं, उनमें एक हमारा नाम भी है. चार नाम यह हैं :—काका कालेलकर, रामेश्वरी नेहरू, सत्य नारायन और सुन्दरलाल. भूमिका लेखकों ने उस "शब्दावली" को केवल एक सुझाव के तौर पर हिन्दी जगत के सामने रक्खा है. उसके अधिकतर शब्द चालू और रोज़मर्रा की बोलचाल के शब्द हैं जैसे—सेक्रेट्री के लिये 'मन्त्री,' सिडीशन (Sedition) के लिये 'राजद्रोह', लिबर्टी (Liberty) के लिये 'स्वतंत्रता,' डिमान्ड (Demand) के लिये 'मांग', हाउस (House) के लिये 'सदन' वग़ैरा. जो थोड़े से शब्द नये गढ़े गये हैं उनके बारे में भूमिका लेखकों ने अपनी भूमिका में लिखा है कि :—

"हम यह शब्दावली जनता के सामने यह दिखाने के लिये रख रहे हैं कि ऐसे आसान शब्द बनाये जा सकते हैं जिन्हें आम जनता समझ सके और जिन से बोली को आसान भी किया जा सके और साथ ही साथ मालामाल भी. हम यह दावा नहीं करते कि इन अंग्रेज़ी शब्दों के जोड़ के और हिन्दुस्तानी शब्द नहीं बन सकते, और न यह दावा करते हैं कि इसमें कोई कमी नहीं रही. कई जगह अधिक खपते हुए शब्द मिल सकते हैं या बनाये भी जा सकते हैं. हम सब मित्रों

سے سوچ کر اپنی رائے قایم کریں. اسی لئے "نیا ہند" کے کالم اس سوال کی بحث کے لئے کھلے ہیں، اس شرط پر کہ بحث شانت ڈھنگ سے اور اُچت سیماؤں کے اندر ہو.

کچھ اور بھائیوں نے ایک اور "انگریزی ہندستانی شبداولی" میں سے کچھ شبد چن کر ہندستانی کلچر سوسائٹی کو ڈکشنری بنانے کے ایوگیہ ثابت کرنے کی کوشش کی ہے. ان میں تین شبد یعنی پرائم منسٹر (Prime Minister) کے لئے 'پہلوا' کیبنٹ (Cabinet) کے لئے 'کھولی' اور سنٹر (Centre) کے لئے 'بیچ بندی' لگ بھگ سارے ہندی جگت میں گونج گئے. پارلیمنٹ میں بھی کئی ممبروں نے انہیں خوب اچھالا اور ان کے آدھار پر دنیا کو یہ ثابت کرنے کی کوشش کی کہ ہندستانی کلچر سوسائٹی کو ڈکشنری بنانے کا کام نہیں ملنا چاہیئے تھا.

پہلی بات تو یہ کہ ہندستانی کلچر سوسائٹی نے آج تک کبھی اس طرح کی کوئی "شبداولی" نہیں نکالی، جس "شبداولی" میں سے یہ شبد لئے گئے ہیں اس پر کہیں ہندستانی کلچر سوسائٹی کا نام نہیں. وہ "شبداولی" نکالی ہوئی ہے ہندستانی پرچار سبھا وردھا کی اور پانچ برس پہلے کی نکلی ہوئی ہے. 'شبداولی' کی بھومکا لیکھکوں میں چار نام ہیں، ان میں ایک ہمارا نام بھی ہے. چار نام یہ ہیں :— کاکا کالیلکر، رامیشوری نہرو، ستیہ نارائن اور سندر لال. بھومکا لیکھکوں نے اس "شبداولی" کو کیول ایک سوجھاؤ کے طور پر ہندی جگت کے سامنے رکھا ہے. اس کے ادھک تر شبد چالو اور روزمرہ کی بول چال کے شبد ہیں جیسے —سیکریٹری کے لئے 'منتری' سڈیشن (Sedition) کے لئے 'راج دروہ' لبرٹی (Liberty) کے لئے سوتنترتا 'ڈیمانڈ' (Demand) کے لئے 'مانگ' هاؤس (House) کے لئے 'سدن' وغیرہ. جو تھوڑے سے شبد نئے گھڑے گئے ہیں ان کے بارے میں بھومکا لیکھکوں نے اپنی بھومکا میں لکھا ہے کہ :—

"ہم یہ شبداولی جنتا کے سامنے یہ دکھانے کے لئے رکھ رہے ہیں کہ ایسے آسان شبد بنائے جا سکتے ہیں جنہیں عام جنتا سمجھ سکے اور جن سے بولی کو آسان بھی کیا جا سکے اور ساتھ ہی ساتھ مالا مال بھی. ہم یہ دعویٰ نہیں کرتے کہ ان انگریزی شبدوں کے جوڑ کے اور ہندستانی شبد نہیں بن سکتے، اور نہ یہ دعویٰ کرتے ہیں کہ اس میں کوئی کمی نہیں رہی. کئی جگہ ادھک کھپتے ہوئے شبد مل سکتے ہیں یا بنائے بھی جا سکتے ہیں. ہم سب متروں

हमारे हिन्दी प्रेमी भाई

जब से पार्लिमेण्ट में हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी को अंग्रेजी हिन्दी डिक्शनरी बनाने के लिये ग्रान्ट की चर्चा हुई है तब से कई हिन्दी पत्रों में इस विशय पर लेख निकल चुके हैं. हमने उन सबको नहीं पढ़ा. उन लेखों की जिन खास खास बातों की तरफ़ हमारा ध्यान दिलाया गया है वह यह है —

एक भाई ने जो इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में पढ़ाते हैं अपने एक लेख में "नया हिन्द" के कुछ लेखों से बड़े बड़े वाक्य ले कर यह दिखाने की कोशिश की है कि भाशा के बारे में हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी की नीति क्या है और उस नीति को बुरा भला कहा है. उन वाक्यों में से एक भी वाक्य सम्पादक के किसी लेख या नोट से नहीं है. हमारे विद्वान भाई को यह तो ज़रूर मालूम होगा कि किसी पत्र या पत्रिका में जितने लेख निकलते हैं यह आवश्यक नहीं होता कि उन लेखों में प्रगट किये हुए विचार सम्पादक के या पत्र या पत्रिका के मालिक के विचार भी हों. उन्होंने जब "नया हिन्द" की फ़ाइल को इतने ध्यान से पढ़ा है तो यह भी नामुमकिन है कि भाशा के प्रश्न पर "नया हिन्द" सम्पादक के लेख न देखे हों. भारत का विधान पास होते ही "नया हिन्द" में हमारा एक लम्बा लेख विधान की भाशा सम्बन्धी नीति पर निकल चुका है. हमारे भाई ने उसी को पढ़ लिया होता तो उनके सब संदेह दूर हो गये होते. हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी की दर्जन से ऊपर किताबें हिन्दी में निकल चुकी हैं. उन किताबों में कहीं भी वह शब्द काम में नहीं लाए गये जिनकी हमारे भाई ने दूसरे लेखकों के लेख के आधार पर शिकायत की है. फिर उन्होंने हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी या "नया हिन्द" के साथ यह साफ़ ज़बरदस्ती क्यों की यह हम नहीं कह सकते. हां, हम यह ज़रूर चाहते हैं कि कि इस गम्भीर विशय पर हिन्दी प्रेमी सब तरह के विचारों को सुनें और उन पर शान्ति

ہمارے ہندی پریمی بھائی

جب سے پارلیمنٹ میں ہندستانی کلچر سوسائٹی کو انگریزی ہندی ڈکشنری بنانے کے لئے گرانٹ کی چرچا ہوئی ہے تب سے کئی ہندی پتروں میں اس وشے پر لیکھ نکل چکے ہیں۔ ہم نے ان سب کو نہیں پڑھا۔ ان لیکھوں کی جن خاص خاص باتوں کی طرف ہمارا دھیان دلایا گیا ہے وہ یہ ہے:—

ایک بھائی نے جو الہ آباد یونیورسٹی میں پڑھاتے ہیں اپنے ایک لیکھ میں "نیا ہند" کے کچھ لیکھوں سے بڑے بڑے واکیہ دے کر یہ دکھانے کی کوشش کی ہے کہ بھاشا کے بارے میں ہندستانی کلچر سوسائٹی کی نیتی کیا ہے اور اس نیتی کو برا بھلا کہا ہے۔ ان واکیوں میں سے ایک بھی واکیہ سمپادک کے کسی لیکھ یا نوٹ سے نہیں ہے۔ ہمارے ودوان بھائی کو یہ تو ضرور معلوم ہوگا کہ کسی پتر یا پتریکا میں جتنے لیکھ نکلتے ہیں یہ آوشیک نہیں ہوتا کہ ان لیکھوں میں پرگٹ کئے ہوئے وچار سمپادک کے یا پتر یا پتریکا کے مالک کے وچار بھی ہوں۔ انہوں نے جب "نیا ہند" کی فائل کو اتنے دھیان سے پڑھا ہے تو یہ بھی ناممکن ہے کہ بھاشا کے پرشن پر "نیا ہند" سمپادک کے لیکھ نہ دیکھے ہوں۔ بھارت کا ودھان پاس ہوتے ہی "نیا ہند" میں ہمارا ایک لمبا لیکھ ودھان کی بھاشا سمبندھی نیتی پر نکل چکا ہے۔ ہمارے بھائی نے اسی کو پڑھ لیا ہوتا تو ان کے سب سندیہ دور ہوگئے ہوتے۔ ہندستانی کلچر سوسائٹی کی درجن سے اوپر کتابیں ہندی میں نکل چکی ہیں۔ ان کتابوں میں کہیں بھی وہ شبد کام میں نہیں لائے گئے جن کی ہمارے بھائی نے دوسرے لیکھکوں کے لیکھ کے آدھار پر شکایت کی ہے۔ پھر انہوں نے ہندستانی کلچر سوسائٹی یا "نیا ہند" کے ساتھ یہ صاف زبردستی کیوں کی یہ ہم نہیں کہہ سکتے۔ ہاں، ہم یہ ضرور چاہتے ہیں کہ اس گمبھیر وشے پر ہندی پریمی سب طرح کے وچاروں کو سنیں اور ان پر شانتی

सहायता प्रदान करेगा लेकिन शर्त यह है कि हमारे बड़े लेखक अपने छोटे छोटे फ़र्क़ों को मिटा कर साहित्य सेवा के भाव से अपना सहयोग प्रदान करें.

ज़्यादातर लोग पाठक को गाली देते हैं कि वह घटिया चीज़ें पढ़ता है और अच्छे साहित्य को नहीं छूता. लेकिन असल कारन माली है, पाठकों को आनन्द अच्छे साहित्य में ही आता है. बहुत दिनों से इस बात की ज़रूरत महसूस की जा रही थी कि कोई ऐसी पत्रिका निकाला जाये जो सचमुच कहानी साहित्य की प्रतिनिधि हो और उसका दाम भी कम हो. "कहानी" ने यह कमी पूरी कर दी है. अच्छी कहानियों के लिये सम्पादकों को बधाई मिलनी चाहिये लेकिन चार आना दाम रख कर "कहानी" के प्रकाशक कम बधाई के पात्र नहीं हैं.

—मुजीब रिज़वी

खेल-खिलौने

लेखक—राजेन्द्र यादव; निकालने वाले—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; भाषा—हिन्दी; सफ़े - 152; क़ीमत—दो रुपया.

श्री राजेन्द्र यादव नवजवान कहानीकार हैं, उनके विचारों में एक नई शक्ति है, नया जोश है और सामाजिक कुरीतियों को दूर करने की सच्ची लगन है. 'खेल खिलौने' ऐसी ही कहानियों का एक संग्रह है. इस संग्रह में बारह कहानियां हैं. लेखक ने हमारे आज के समाज की समस्याओं पर जिनका हमें रात दिन क़दम क़दम पर सामना करना पड़ता है, एक अच्छी तस्वीर खींची है. 'खेल खिलौने' की सभी कहानियां पाठक का दिल छूती हुई चलती हैं और अपना एक असर उसके दिल पर छोड़ देती हैं लेखक ने 'आजकल के लड़के' नाम की कहानी में भाभी-देवर, भाई भाई की समस्याओं पर बहुत अच्छी तसवीर खींची है. लेखक कहता है—

"नहीं" मैंने जैसे जैसे मुख का कौर निगला, खाना खा कर जैसे ही उठा, भाभी ने कहा—"नवल, राशन समाप्त हो गया है स्कूल से आके ले आना." इतना ही नहीं आगे फिर कहता है—

"आके फिर गेहूं पनचक्की पर ले जाना." इसी तरह लेखक 'यथार्थवादी कहानी लेखक' नाम की कहानी में आज के समाज की कुरीतियों की ओर जाता हुआ कहता है—

"यहां हमारी सहायता करना सांपों को दूध पिलाना है, हमने धर्म के प्रति विद्रोह किया है, समाज की व्यवस्था के प्रति अविश्वास किया है न ! इसलिये अछूत हैं !"

सभी कहानियों की भाषा सरल और मुहावरेदार है. हिन्दी जगत को भारतीय ज्ञानपीठ की यह एक अनोखी देन है.

—चेतन कुमार शर्मा

سہایتا پردان کرےگا لیکن شرط یہ ہے کہ ہمارے لیکھک اپنے چھوٹے موٹے فرقوں کو مٹاکر ساہتیہ سیوا کے بھاؤ سے اپنا سہیوگ پردان کریں۔

زیادہ تر لوگ پاٹھک کو گالی دیتے ہیں کہ وہ گھٹیا چیزیں پڑھتا ہے اور اچھے ساہتیہ کو نہیں چھوتا۔ لیکن اصل کارن مالی ہے، پاٹھکوں کو آنند اچھے ساہتیہ میں ہی آتا ہے۔ بہت دنوں سے اس بات کی ضرورت محسوس کی جا رہی تھی کہ کوئی ایسی پتریکا نکالی جائے جو سچ مچ کہانی ساہتیہ کی پرتیندھی ہو اور اس کا دام بھی کم ہو۔ "کہانی" نے یہ کمی پوری کر دی ہے۔ اچھی کہانیوں کے لیئے سمپادکوں کو بدھائی ملنی چاہئے لیکن چار آنہ دام رکھ کر "کہانی" کے پرکاشک کم بدھائی کے پاتر نہیں ہیں۔

—مجیب رضوی

کھیل-کھلونے

لیکھک—راجیندر یادو؛ نکالنے والے—بھارتیہ گیان پیٹھ، کاشی؛ بھاشا—ہندی؛ صفحہ 152؛ قیمت—دو روپیہ۔

شری راجیندر یادو نوجوان کہانی کار ہیں۔ اُن کے وچاروں میں ایک نئی شکتی ہے، نیا جوش ہے اور ساماجک کوریتیوں کو دور کرنے کی سچی لگن ہے۔ 'کھیل کھلونے' ایسی ہی کہانیوں کا ایک سنگرہ ہے۔ اس سنگرہ میں بارہ کہانیاں ہیں۔ لیکھک نے ہمارے آج کے سماج کی سمسیاؤں پر جن کا ہمیں رات دن قدم قدم پر سامنا کرنا پڑتا ہے، ایک اچھی تصویر کھینچی ہے۔ 'کھیل کھلونے' کی سبھی کہانیاں پاٹھک کا دل چھوتی ہوئی چلتی ہیں اور اپنا ایک اثر اس کے دل پر چھوڑ دیتی ہیں۔ لیکھک نے 'آجکل کے لڑکے' نام کی کہانی میں بھابھی دیور، بھائی بھائی کی سمسیاؤں پر بہت اچھی تصویر کھینچی ہے۔ لیکھک کہتا ہے—

"نہیں" میں نے جیسے جیسے مکھ کا کور نگلا، کھانا کھاکر جیسے ہی اٹھا، بھابی نے کہا—"نول، راشن سماپت ہو گیا ہے اسکول سے آکے لے آنا۔" اتنا ہی نہیں آگے پھر کہتا ہے—

"آکے پھر گیہوں پنچکی پر لے جانا۔" اسی طرح لیکھک 'یتھارتھ وادی کہانی لیکھک' نام کی کہانی میں آج کے سماج کی کریتیوں کی اور جاتا ہوا کہتا ہے—

"یہاں ہماری سہائتا کرنا سانپوں کو دودھ پلانا ہے، ہم نے دھرم کے پرتی ودروہ کیا ہے، سماج کی ویوستھا کے پرتی اوشواس کیا ہے نہ ! اس لئے اچھوت ہیں !"

سبھی کہانیوں کی بھاشا سرل اور مہاورےدار ہے۔ ہندی جگت کو بھارتیہ گیان پیٹھ کی یہ ایک انوکھی دین ہے۔

—چیتن کمار شرما

कहानी

माहवारी पत्रिका; लिखावट-हिन्दी; सम्पादक—श्रीपत राय श्यामू संयासी, भैरों प्रसाद गुप्त; एक कापी का दाम—चार आना; सालाना चंदा—तीन रुपया; मिलने का पता—सरस्वती प्रेस, 5 सर्दार पटेल मार्ग, इलाहाबाद.

"कहानी" का पुनर्जन्म हुआ है. पहले यह पत्रिका बनारस से निकलती थी. फिर किन्हीं कारनों से बन्द हो गई. बन्द होने पर अच्छी कहानियों के पाठकों को दुख हुआ था. और अब जब कहानी फिर निकल रही है पाठकों को दिली खुशी हुई है इस खुशी का प्रमान यह है कि हर रोज़ पचास पचास की तादाद में इसके गाहक बन रहे हैं.

"कहानी" में कहानियां ही छपती हैं. इन कहानियों का स्तर बाज़ारू नहीं होता और न आवारागर्दी बढ़ाने वाले जिन्सी चटख़ारे इसमें मिलते हैं. "कहानी" के ख़रीदार को कवर उलट कर देखने की ज़रूरत नहीं है कि इस अंक में कोई अच्छी कहानी है या नहीं. "कहानी" में कोई घटिया कहानी छपती ही नहीं.

"कहानी" में शुद्ध साहित्य सेवा का भाव मिलता है. तंगदिली का नाम इस पत्रिका के पन्नों से ग़ायब है. भारती और विदेशी सभी भाशाओं की अच्छी कहानियां "कहानी" में पढ़ने को मिलती हैं. इसमें मरहटी की कहानियां छपती हैं, उर्दू की कहानियां छपती हैं, रूसी, चीनी, अंग्रेज़ी सभी भाशाओं की कहानियां जगह पाती हैं.

"कहानी" की एक और विशेशता भी है. दूसरी पत्रिकाएं नाम पर दौड़ती हैं और धन उनका लक्ष होता है. "कहानी" नये लेखकों को प्रोत्साहित करना अपना फ़र्ज़ समझती है. इसीलिये कृशनचन्द्र, ख़्वाजा अहमद अब्बास, गुरबख़्श सिंह और दूसरे बड़े लेखकों के साथ साथ नये लेखकों की कहानियां पढ़ने को मिलती हैं और इस बात का अन्दाज़ा लगाने में आसानी होती है कि कहानी साहित्य में कैसे-कैसे रुझान पैदा हो रहे हैं और नये लेखक आगे बढ़ रहे हैं या नहीं ?

"कहानी" सम्पादकों ने "कहानी क्लब" नाम से एक स्तम्भ खोला है. इस स्तम्भ से साहित्यकारों को बहुत सहायता मिलेगी, पाठकों को इस से दिलचस्पी तो होगी ही. आज बहुत सी समस्याएं हैं. लेखक व्यक्तिगत रूप से इन समस्याओं की चर्चा करते हैं लेकिन कोई ऐसा ज़रिया नहीं है जिसमें सामूहिक चर्चा हो सके और रचनात्मक साहित्य को आगे बढ़ाने वाले नतीजे निकाले जा सकें. दूसरी कुछ पत्रिकाएं कभी कभी ऐसी चर्चा करती हैं लेकिन उनका स्तर तानाकशी से ऊपर नहीं उठ पाता. "कहानी क्लब" शुद्ध साहित्य को पैदा करने में ज़बरदस्त

کہانی

ماہواری پتریکا؛ لکھاوٹ—ہندی؛ سمپادک—شری پت رائے، شیاموسنیاسی، بھیروں پرشاد گپت؛ ایک کاپی کا دام—چار آنا؛ سالانہ چندہ—تین روپیہ؛ ملنے کا پتہ—سرسوتی پریس، 5 سردار پٹیل مارگ، الہ آباد.

"کہانی" کا پنرجنم ہوا ہے. پہلے یہ پتریکا بنارس سے نکلتی تھی. پھر کنہیں کارنوں سے بند ہوگئی. بند ہونے پر اچھی کہانی کے پاٹھکوں کو دکھ ہوا تھا. اور اب جب "کہانی" پھر نکل رہی ہے، پاٹھکوں کو دلی خوشی ہوئی ہے. اس خوشی کا پرمان یہ ہے کہ ہر روز پچاس پچاس کی تعداد میں اس کے گاہک بن رہے ہیں.

"کہانی" میں کہانیاں ہی چھپتی ہیں. ان کہانیوں کا استر بازارو نہیں ہوتا اور نہ آوارہ گردی بڑھانے والے جنسی چٹخارے اس میں ملتے ہیں. "کہانی" کے خریدار کو کور الٹ کر دیکھنے کی ضرورت نہیں ہے کہ اس انک میں کوئی اچھی کہانی ہے یا نہیں. "کہانی" میں کوئی گھٹیا کہانی چھپتی ہی نہیں.

"کہانی" میں شدھ ساہتیہ سیوا کا بھاؤ ملتا ہے. تنگ دلی کا نام اس پتریکا کے پنوں سے غائب ہے. بھارتی اور ودیشی سبھی بھاشاؤں کی اچھی کہانیاں "کہانی" میں پڑھنے کو ملتی ہیں. اس میں مرہٹی کی کہانیاں چھپتی ہیں، اردو کی کہانیاں چھپتی ہیں، روسی، چینی، انگریزی سبھی بھاشاؤں کی کہانیاں جگہ پاتی ہیں.

"کہانی" کی ایک وشیشتا اور بھی ہے. دوسری پتریکائیں نام پر دوڑتی ہیں اور دھن ان کا لکش ہوتا ہے. "کہانی" نئے لیکھکوں کو پروتساہت کرنا اپنا فرض سمجھتی ہے. اسی لئے کرشن چندر، خواجہ احمد عباس، گوربخش سنگھ اور دوسرے بڑے لیکھکوں کے ساتھ ساتھ نئے لیکھکوں کی کہانیاں پڑھنے کو ملتی ہیں اور اس بات کا اندازہ لگانے میں آسانی ہوتی ہے کہ کہانی ساہتیہ میں کیسے کیسے رجحان پیدا ہو رہے ہیں اور نئے لیکھک آگے بڑھ رہے ہیں یا نہیں ؟

"کہانی" سمپادکوں نے "کہانی کلب" نام سے ایک استمبھ کھولا ہے. اس استمبھ سے ساہتیہ کاروں کو بہت سہایتا ملے گی، پاٹھکوں کو اس میں دلچسپی تو ہوگی ہی. آج بہت سی سمسیائیں ہیں. لیکھک ویکتی گت روپ سے ان سمسیاؤں کی چرچا کرتے ہیں لیکن کوئی ایسا ذریعہ نہیں ہے جس میں سامو ہک چرچا ہو سکے اور رچناتمک ساہتیہ کو آگے بڑھانے والے نتیجے نکالے جا سکیں. دوسری کچھ پتریکائیں کبھی کبھی ایسی چرچا کرتی ہیں لیکن ان کا استر طعنہ بازی سے اوپر نہیں اٹھ پاتا. "کہانی کلب" شدھ ساہتیہ کو پیدا کرنے میں زبردست

یہ دولش پاتی ہے وہ اس کو بلند سطح سے نیچے آکر دریوزہ گری، تملق اور
کی سرحدوں میں داخل نہیں ہونے دیتی۔ مگر جب اس کے یہی خواہ اسکی
ندگی کی کربناکی سے متاثر ہوتے ہوئے اس کو مشورہ دیتے ہیں کہ اپنے
ی موجودہ روش کو دیکھو، جو تم سے کم مرتبہ ہیں مگر دادِ عیش دے رہے
یونکہ انہوں نے زمانہ سے سمجھوتہ کر لیا ہے۔ تم بھی "گر زمانہ با تو نسازد تو بزمانہ
ز" پر عمل کرو۔ پس بروقت کے اس مشورہ سے اس کے احساس برتری
ور کمتری کی کشاکش زیادہ تیز ہوتی ہے، اور وہ کبھی کبھی چند لمحات کے
رک کر زمانہ سے عارضی صلح کر لیتا ہے، اور ان مشوروں پر عمل پیرا
املہے جو اپنی سطح سے نیچے اترتا ہے۔ عرش سے فرش کی راہ لیتا ہے۔
ول کا بھیس بنا کر "وہ تماشائے اہل کرم" دیکھنے لگتا ہے۔ مگر اس
زہ گری میں اس کا احساس اور زیادہ مجروح ہوتا ہے۔ وہ "انا" جس کو
نے تھوڑی دیر کے لئے الگ کر دیا تھا اس کے اندر پھر ابھر آتی ہے اور
پھر آئے در کعبہ اگر وا نہ ہوا" کی منزل پر لا کھڑا کرتی ہے۔ وہ دوسروں کا
یں پاتا" بلکہ خود اپنا بن جاتا ہے اور اپنے کرم فرماؤں سے کہہ دیتا ہے "لیا
سے مری ہمت عالی نے مجھے"۔

احساس وشعور کی آویزش اور قوتِ انا کے تاریخی بہاؤ سے تصادم
نتائج کا عکس ہمیں غالب کی زندگی میں بہ تمام وکمال نظر آتا ہے اور ہم
آویزش، کشمکش اور تصادم کے چند پہلو دیکھنے کی کوشش کرتے ہیں۔
ب کے انگریزوں سے روابط کوئی ڈھکی چھپی بات نہیں ہے۔ مگر ان روابط
ب تک جن زاویہ ہائے نگاہ سے دیکھا جاتا رہا ہے ان میں ان روابط
عوامل، اس زمانہ کی سیاست اور اقدارِ حیات، کو پیش نظر نہ رکھنے کی کمی
ئی جاتی ہے۔ غالب کے ذہنی رجحانات، خاندانی مراتب عظمت کو بھی انفرادی
نیت سے سامنے رکھنا ضروری ہے۔

غالب نے جب ہوش سنبھالا، باپ کا سایہ سر سے اٹھ چکا تھا۔
انے سرپرستی فرمائی۔ غالب کے چچا نصر اللہ بیگ خاں مرہٹوں کی طرف
ے آگرہ کے صوبیدار تھے، آگرہ کو انہوں نے انگریزوں کے حوالہ کر دیا اور
ب احمد بخش خاں کی سفارش پر انگریزی فوج میں رسالدار ہو گئے۔ ہزار سو
انہ اور بقول بعض ڈیڑھ ہزار روپے ماہانہ تنخواہ اور ایک جاگیر رسالہ کے
ع کے لئے مقرر ہو گئی۔ مگر غالب نو برس ہی کے تھے کہ چچا ہاتھی سے گر کر
رالبقا کو سدھارے۔ انگریزوں نے صلۂ خدمات و جاگیر کے عوض
ں ہزار روپے سالانہ غالب کے چچا نصر اللہ بیگ خاں کے متوسلین
ا پنشن ریاست فیروزپور جھرکہ سے وابستہ کر دی۔ نواب احمد بخش خاں

والیِ ریاست تھے بقول غالب انہوں نے کچھ دن بعد دس ہزار کے پانچ ہزار
سالانہ کرا دئے اور خواجہ حاجی کو بھی اس میں دو ہزار کا شریک کرا دیا جس میں
غالب اور ان کے بھائی کو صرف پندرہ سو روپے ماہوار ملنے لگے۔ نواب
احمد بخش خاں خانہ نشین ہوئے۔ ریاست دو حصوں میں تقسیم کر دی گئی۔
فیروزپور جھرکہ شمس الدین کو ملا اور لوہارو امین الدین خاں کو۔ شمس الدین خاں
کی خاندان کے دیگر افراد سے بنتی نہ تھی۔ شمس الدین نے غالب کی پنشن اور
بیگم غالب کا وظیفہ بھی بند کر دیا۔ آمدنی کے وسائل مسدود، اخراجات
کی تنگی نے پریشان کر دیا۔ غالب پہلے تو نواب احمد بخش خاں کے پاس گئے
کہ ان سے مل کر معاملہ کو سلجھائیں، لیکن نواب صاحب نے باتوں سے بہلا دیا۔
غالب نے مجبور ہو کر قانونی چارہ جوئی کا ارادہ کیا۔

اس زمانہ تک غالب کی زندگی بہر طور فراغت میں بسر ہوئی۔
ننھیال سے والدہ کی معرفت کچھ نہ کچھ مل جاتا تھا۔ نواب احمد بخش خاں
بھی کچھ نہ کچھ پنشن کے علاوہ دیتے رہتے تھے۔ سسرال سے بھی مدد ملتی
رہتی تھی۔ بے فکری سے اس لئے بسر ہوتی تھی کہ خرچ کا بار داشت کرنے والے
تھے۔ نواب کہلاتے تھے۔ انہی ایام کے متعلق ایک خط میں اشارہ کیا ہے۔

"بھائی صاحب کو سلام کہنا اور کہنا کہ صاحب وہ زمانہ نہیں،
ادھر متھرا داس سے قرض لیا، ادھر درباری مل کو جا مارا، ادھر خوب چند،
چین سکھ کی کوٹھی جا لوٹی ہر ایک کے پاس تمسک مہری موجود، شہد لگاؤ،
چاٹو، نہ مول، نہ سود۔ اس سے بڑھ کر یہ بات کہ روٹی کا خرچ پھوپھی کے سر،
باینہمہ کبھی خاں نے کچھ دے دیا، کبھی الور سے کچھ دلوا دیا، کبھی ماں نے آگرہ
سے کچھ بھیج دیا"[1]

۱۸۲۵ء کے بعد ان امور میں تغیر واقع ہوا۔ قرضخواہوں نے
تنگ کیا ہو یا نہ کیا ہو مگر خان (نواب احمد بخش خاں) کے رویہ میں تبدیلی
ظاہر ہے۔ خاص کر ان کے بیٹے شمس الدین خاں نے غالب کو تنگ کرنا شروع
کر دیا تھا۔

جس عہد کی ہم بات کر رہے ہیں وہ بڑی ابتری کا دور تھا۔ اگرچہ
انگریزوں نے حالات کو کچھ نہ کچھ بہتر بنا دیا تھا مگر اہل ہند، معاشی و اقتصادی
حیثیت سے بہت پریشان حال تھے۔ غالب نواب تھے، مگر جاگیر نہ تھی جائداد
نہ تھی انتہا یہ کہ گھر کا مکان تک نہ تھا۔ اٹھنا بیٹھنا، امیروں، جاگیرداروں

---

[1] خطوط غالب ص۴۵

ماحول اور معاملات کا مطالعہ دقتِ نظر سے نہیں کیا ورنہ وہ مرزا کے متعلق اس قسم کے خیالات کا اظہار نہ کرتے۔ غالبؔ معاشی بحران میں مبتلا تھے جس کے متعلق بیان گزر چکا۔ نیز قدر ناشناسی کے اسیر بھی تھے جس کی شکایت انہیں ہمیشہ رہی، غالبؔ بحیثیت شاعر، عرفیؔ، نظیریؔ، ظہوری وغیرہ سے کم مرتبہ نہ تھے بلکہ ان کا مرتبہ کچھ بلند ہی ہے۔ ان شعرا کی قدر و منزلت کی داستانیں معلوم تھیں۔ غالبؔ بھی ایسی ہی قدر و منزلت کے خواہاں تھے، اس میدان میں بھی ان کو اپنی برتری کا احساس بہرحال رہا۔ لیکن زمانہ نے ان کے ساتھ جو سلوک روا رکھا اس سے شعورِ کمتری کا پیدا ہونا ایک لابدی امر تھا۔ غالبؔ نے اپنی برتری کے لئے کوشش کی اور انہیں انگریزوں کے علاوہ اور کوئی نظر نہ آیا جو انہیں بلند مرتبہ دے سکتا۔ چنانچہ خود کو ملکہ کا شاعر بنائے جانے کی تمنا کا اظہار اسی بنا پر کیا ہے۔ ورنہ کلکتہ کے دوران قیام سے لے کر آخر تک انگریزوں کے متعلق جتنے قطعات اور قصائد لکھے ان میں سے زیادہ تر منظوم عرضیاں ہیں ان کا منشا یہی یہ تھا کہ حکامِ وقت، پنشن، خلعت، دربار اور خطاب کے بارے میں میری مدد کریں۔ غالبؔ [1] ۱۸۳۴ء میں سپریم کونسل کے ممبر مسٹر چارلس مٹکاف کی مدح میں قصیدہ لکھا تھا[1]۔ اس کے چند شعر دیکھئے بالکل عرضی ہیں۔ قصیدہ سے مستنبط ہوتا ہے کہ مسٹر چارلس مٹکاف دہلی آئے ہیں غالبؔ کلکتہ میں ان سے مل چکے تھے۔ تشبیب کے بعد مدح میں وہی مبالغہ آمیز باتیں دہرائی گئی ہیں جو ہر ایک کے لئے بادنیٰ تغیر بیان ہوتی رہی ہیں پھر اپنی حالت زار بیان کر کے مطلب کا اظہار اس طرح کرتے ہیں ؎

پنج مطلب زتو امید ست بصد گونہ امید
خواہم آں پنج علی الرغم حسود و غماز
اول اینست کہ در بابِ معاشے کہ راست
کنی اندیشۂ محکم بہ طریقِ ایجاز
ہرچہ در دفترِ سرکار بود نقش پذیر
ہم باندازۂ آں نقش شوی مائدہ ساز
دوم آں کز اثرِ عدلِ تو اے سنجرِ عہد
غیر با بندہ دریں وجہ نباشد انباز
سوم آنست کہ دیگر نکنم دستِ طلب
پیشِ فرمانِ دہِ میوات، بدریوزہ دراز
ہم بہ گنجینۂ سرکار برائے خواہم
دادہ انصاف بدیں یافتگی از دینِ جواد
چارم آنست کہ باقی زرِ چندیں سالہ
بے نزاع و جدل و جہد بمن گردد باز
پنجم آں کز پسِ ایں فتح کہ بنماید روئے
دہیم مژدۂ اکرام و نویدِ اعزاز
بخشیم تازہ خطابی و برآں افزائے
خلعتی در خورِ ایں دولتِ جاوید طراز

غالبؔ کی قادر الکلامی قابلِ داد ہے کہ اپنے مطالب کو کیسے عمدہ پیرائے میں بیان کیا ہے۔ اس مدحت طرازی کی علتِ غائی معاشی تنگی سے نجات تھی ورنہ ۱۸۲۷ء سے قبل انہوں نے کسی انگریز کی مدح میں ایک شعر بھی نہیں لکھا۔ پس اس کو مطلب برآری کا وسیلہ ہی کہا جائیگا۔ غالبؔ شاعر تھے، انہوں نے صحیح راستہ اختیار کیا کہ شعر کو ذریعۂ اظہارِ مدعا قرار دیا، نثر کے مقابلہ میں شعر کی تاثیر مسلم، اگرچہ غالبؔ کے حق میں شعر کی تاثیر بھی معدوم ہی رہی۔

جب ہم یہ دیکھتے ہیں کہ غالبؔ نے ہندوستانی امرا و سلاطین کی شان میں بھی قصیدے لکھے ہیں لیکن انہوں نے غالبؔ سے کیا سلوک کیا؟ یہ بات سب پر روشن ہے کہ بہادر شاہ ظفرؔ نے بھی حکیم احسن اللہ خان اور حضرت کالے صاحب کی سفارش پر غالبؔ کو ملازم رکھا اور تنخواہ صرف پچاس روپے ماہانہ، تاریخ نویسی خدمت، بعد میں اصلاحِ شعر کا کام بھی سپرد ہوا۔ انگریزوں کے خزانہ سے ساڑھے باسٹھ روپے ماہانہ ملتے تھے جس کے عوض کوئی خدمت نہیں لی جاتی تھی۔ غدر کے بعد نوابین رامپور نے ضرور (جولائی ۱۸۵۹ء سے) سو روپے ماہانہ سے مدد کی۔ پس یہ اس زمانہ کا طریقہ تھا کہ شاعر کا جس سے توسل ہوتا اسی کی مدح سرائی کرتا۔ اگر غالبؔ کا تعلق پنشن کی وجہ سے انگریزوں کے ساتھ نہ ہوتا تو غالبؔ بھی اوروں کی طرح انگریزوں کی مدح نہ کرتے۔ غالبؔ کی اس مدحت طرازی کی حقیقت اس وقت واضح ہو جاتی ہے جبکہ ہاکنس بنگالی غالبؔ کے خلاف رپورٹ کرتا ہے تو غالبؔ اس کی قدح پر اتر آتے ہیں اس کا ایک ہی مطلب ہوا کہ جس سے

[1] کلیات نظم ص ۲۵۶

[1] کلیات نظم ص ۲۵۵

مطلب برآری میں امداد ملنے کی ذرا سی بھی توقع ہوئی اس کو خوش کر کے اپنا کام نکالنا چاہا اور تعریف و توصیف سے اپنی طرف مائل کیا۔ جس نے مخالفت کی اس کی برائی کر دی۔

غالبؔ کی سلامتیِ طبع کے ثبوت ان کی تحریروں میں جا بجا ملتے ہیں جو اس بات کی بین دلیل ہیں کہ غالبؔ انگریزوں کے متعلق اچھی رائے رکھنے کے باوجود ان کے افعال پر کڑی نکتہ چینی کرتے تھے۔ مولوی سراج الدین احمد کو انگریزوں کے عدل و انصاف کے متعلق لکھتے ہیں:۔

"ہیہات! اگر معاش من ہمیں پنج ہزار روپیہ سالانہ ہم بدیں تفریق از روئے دفترِ سرکار کہ سادہ لوحاں آنرا معدلت آثار گویند ثابت شدہ بود بایستے کہ صاحبان صدر مرا از پیش راندندے۔[1]"

"سادہ لوحاں آنرا معدلت آثار گویند" میں کتنا گہرا طنز ہے۔

اسی طرح جب مولوی فضل حق نے سرشتہ داری عدالت سے استعفا دیا ہے تو اہلِ شہر کو سخت صدمہ ہوا۔ بہادر شاہ ظفرؔ ولی عہد سلطنت تھے انہوں نے بھی بہزار شیون و بکا مولوی صاحب کو رخصت کیا۔ غالبؔ نے یہ تمام حالات مولوی سراج الدین احمد کو ۳۱ جنوری ۱۸۳۳ء کے خط میں لکھے ہیں۔ انگریزوں کے متعلق لکھتے ہیں "بے تمیزی و قدر ناشناسی حکام رنگ آں ریخت[2]" یہ وہ زمانہ ہے کہ غالبؔ کا مقدمہ حکومت کے سامنے ہے۔

ان تمام امور سے قطع نظر، اگر صرف معاملہ ملازمتِ مدرسیِ دہلی کالج کو سامنے رکھا جائے تو واضح ہو جائے کہ غالبؔ کی خودداری کس منزل تک پہنچی ہوئی تھی یہ واقعہ مولانا محمد حسین آزادؔ نے آبِ حیات میں، بعنوان "کیا آن تان ہے" لکھا ہے:۔

"۱۸۴۲ء میں گورنمنٹ انگلشیہ کو دہلی کالج کا انتظام از سرِ نو منظور ہوا۔ ٹامسن صاحب جو کئی سال تک اضلاع شمال و مغرب کے لفٹنٹ گورنر بھی رہے اُس وقت سیکرٹری تھے۔ وہ مدرسین کے امتحان کے لئے دلی آئے اور چاہا کہ جس طرح سو روپیہ مہینے کا ایک مدرس عربی ہے ایسا ہی ایک فارسی کا بھی ہو۔ لوگوں نے چند کاملوں کے نام بتلائے۔ ان میں مرزا کا نام بھی آیا۔ مرزا صاحب حسب الطلب تشریف لائے، صاحب کو اطلاع ہوئی، مگر یہ پالکی سے اتر کر اس انتظار میں ٹھہرے کہ حسبِ دستور

[1] کلیاتِ نثر ص۱۶۶

[2] کلیاتِ نثر ص۱۷۱

قدیم صاحب سیکرٹری استقبال کو تشریف لائیں گے۔ جبکہ نہ وہ اُدھر سے آئے نہ یہ اِدھر سے گئے اور دیر ہوئی تو صاحب سیکرٹری نے جمعدار سے پوچھا۔ وہ پھر باہر آیا کہ آپ کیوں نہیں چلتے۔ انہوں نے کہا کہ صاحب استقبال کو تشریف نہیں لائے، میں کیونکر جاتا۔ جمعدار نے جا کر پھر عرض کی۔ صاحب باہر آئے اور کہا، جب آپ دربارِ گورنری میں بہ حیثیت ریاست تشریف لائیں گے تو آپ کی وہ تعظیم ہوگی، لیکن اس وقت آپ نوکری کے لئے آئے ہیں اُس تعظیم کے مستحق نہیں۔ مرزا صاحب نے فرمایا کہ گورنمنٹ کی ملازمت، باعثِ زیادتی اعزاز سمجھتا ہوں نہ یہ کہ بزرگوں کے اعزاز کو بھی گنوا بیٹھوں! صاحب نے فرمایا کہ ہم آئین سے مجبور ہیں۔ مرزا صاحب رخصت ہو کر چلے آئے۔[1]"

جیمس ٹامسن جن کے ساتھ یہ معاملہ گزرا غالبؔ کے پرانے جاننے والوں میں سے تھے۔ ان کی مدح میں قطعہ ص۱۱۲، قصیدہ ص۳۶ اور "دلِ لطف وش" کی آخری غزل کلیات میں موجود ہے۔ پنج آہنگ میں ان کے نام تین خط ہیں جن میں غزل اور قطعہ بھی شامل ہے۔ یہ پہلے گورنمنٹ کے سکریٹری پھر فارن سکریٹری اور بعد کو یوپی کے لفٹنٹ گورنر ہوئے۔ دہلی اس زمانہ میں یوپی میں شامل تھی۔ ایسے شخص کے روبرو، مرزا غالبؔ کی یہ جسارت غیر معمولی بات نہیں، اور بغیر ملاقات لوٹ آنا بھی ایک غیر تمدنانہ فعل ہی کہا جا سکتا ہے۔ یا عظمت و برتری کے شدید احساس کا نتیجہ۔ ان کے بعد مومن خاں مومنؔ کو بلایا جاتا ہے وہ بھی ملازمت کرنے سے منع کر دیتے ہیں صرف اس لئے کہ ان کو سو کی جگہ اسی روپے ماہانہ دینا چاہتے تھے۔[2] ظاہر ہے کہ غالبؔ نے ملازمت عزت کی خاطر قبول نہ کی اور مومن خاں مومنؔ نے صرف بیس روپے کی کمی کی وجہ سے۔ دونوں کا فرق واضح ہے۔

غالبؔ ۱۸۴۴ء میں پنشن کے معاملہ میں بالکل مایوس ہو چکے تھے لیکن ان کو خطاب و اعزاز کی ملکہ وکٹوریہ سے امید تھی۔ یہ اُمید آخری دم تک رہی جو پوری نہ ہونی تھی نہ ہوئی۔ ۱۸۵۰ء سے ۱۸۵۷ء تک غالبؔ شاہ دہلی سے وابستہ رہے۔ اس زمانہ میں بھی انگریزوں سے رسمی تعلقات رہے۔ وہ شد و مد باقی نہ رہی جس کا ظہور ۱۸۲۷ء سے ۱۸۴۴ء تک ہوا۔ یہ بھی اس کا ثبوت ہے کہ غالبؔ کی مدحت طرازی

[1] آبِ حیات ص۴۹۵

[2] آبِ حیات ص۴۹۶

مطلب برآری کے لئے تھی البتہ ۱۸۵۷ء کی رستخیز بےجا کی وجہ سے انہیں پھر انگریزوں کی طرف متوجہ ہونا پڑا کیونکہ اس زمانہ میں، پنشن کی بندش، خلعت و درباری اعزاز سے محرومی، ان کے لئے، معاشی بدحالی اور اعزاز کی پائمالی کا سبب تھی۔ اس لئے سب سے پہلے پنشن کے حصول کی کوشش کرنی پڑی اور اس کے بعد خلعت و اعزاز کی بحالی کے لئے تگ و دو ہوئی اور ان دونوں امور کے سلسلہ میں ان کا انگریزوں سے رابطہ رہا۔

اس سلسلہ میں سب سے مقدم "دستنبو" ہے جس میں غالب نے غدر[1] کے واقعات لکھے ہیں۔ یہ کتاب غالب نے چھپوا کر انگریزوں کی نذر کی تھی۔ اسی کتاب کے ذریعہ وہ اپنے آپ کو ہنگامہ پرور گروہ سے الگ ثابت کرنا چاہتے تھے تاکہ پنشن و خلعت وغیرہ بحال ہو جائے۔ ایام غدر میں تنہائی سے اکتا کر، وقت گزاری کے لئے حالات غدر، دیدہ و شنیدہ قلم بند کرنے شروع کر دیئے۔ مگر کتاب خود شاہد ہے کہ اس میں واقعات و حالات جو کچھ لکھے گئے تھے، بعد کو بربنائے مصلحت کتاب سے بعض کو نکال دیا ہے۔ بالخصوص حالات دربار شاہ ظفر وغیرہ، مگر جو کچھ لکھا ہے اس کی راستی میں بھی شک و شبہ کی گنجائش نہیں ہے۔ غالب کی اصلیت پسندی و حقیقت نگاری آشکارا ہے۔ انگریزوں کے بے جرم و خطا قتل عام پر اگر اظہار افسوس کیا ہے تو ہندوستان کی تباہی پر بھی خون کے آنسو بہائے ہیں:۔

"دل است، سنگ و آہن نیست، چرا نسوزد، چشم است، رخنہ و روزن نیست، چوں نگرید، آرے ہم بداغ فرماندہان باید سوخت و ہم بر ویرانی ہندوستان باید گریست"[2] گویا ؎

دل ہی تو ہے نہ سنگ و خشت درد سے بھر نہ آئے کیوں
روئیں گے ہم ہزار بار کوئی ہمیں ستائے کیوں

انگریز مرد، عورتوں اور بچوں کے قتل کے متعلق لکھا ہے:۔

"ہای آں جہانداران داد آموز و دانش اندوز نکو خوی نکو نام و آہ ازاں خاتونان پری پیکر نازک اندام بارخ چوں مہ و تنی چوں سیم خام و دریغ آں کودکان جہاں نادیدہ کہ در شگفتہ روئی بہ لالہ و گل می خندیدند و در خوشخرامی بر کبک و تدرو آہوی گرفتند کہ ہمہ یکبار گرداب خوں فرو رفتند"[1]

سر سید احمد خاں نے "اسباب بغاوت ہند" میں ہندوستانیوں کی ناکامی کا سبب، غیر تربیت یافتگی، جہالت، فقدان تنظیم و عدم اتحاد قرار دیا ہے۔ سر سید احمد حکومت کے ملازم تھے انہیں حالات کا زیادہ علم تھا۔ لیکن غالب نے ہندوستانیوں کے لشکر اور ان کے نظام حکومت کے متعلق جو کچھ لکھا ہے وہ سر سید احمد خاں سے کہیں زیادہ وقیع ہے۔

"ایں لشکرہائے بیہودہ جنگ جویان بے شمار را جاروب وار کمربندی کیست۔ آرے رفت و روب ہندبوم، بدانساں کہ آرائش و آسائش، اگر جویند، باندازۂ پرۂ کاہی کاہی نیابند، ہم چنیں جاروب گیتی آشوب، ہمیں خواست۔ اینک ہزار لشکر نگری، ہمہ بے لشکر آرای آراستہ، لبا سپاہ بینی، بے سپہدار بجنگ برخاستہ"[2]

اور ہندوستان کے شہروں کی حالت ملاحظہ فرمایئے:۔

"شہرہائے بے شہریار، پر از بندہ ہائے بے خداوند۔ چنانکہ باغہائے بے باغباں، پر از درختانِ نابرومند۔ رہزنان از گیر و دار آزاد، بازرگاناں از تحصیل خانہ ہا، ویرانہ ہا و کلبہ ہا خوان یغما، گمنامان نہان خانہ نشیں، تا خویش را آرایند، و شوخ چشمی خویش بمردم نمایند۔ ریزہ ریزہ، چوں مژہ ہا خنجر ہا آختہ۔ و نیک مرداں آسودگی گزیں، و میکہ بہ رفتار آیند تا از خانہ بہ بازار آیند، ہزار جا سپر انداختہ۔ دنداں بسکہ در روز، سیم و زر، دلیرانہ ربایند، شبہا از بہر نیاں و دیبا بستر خواب آرایند۔ روشن گہران را روغن نماند کہ شبانہ بکاشانہ چراغ افروزند"

اس سے زیادہ اور کیا بدنظمی ہوگی۔ یہ کتاب انگریزوں کو نذر دی گئی تھی جو بہادر شاہ ظفر کے سخت ترین دشمن تھے۔ لیکن اس میں بادشاہ کے متعلق کتنا درد انگیز بیان ہے اور اس کی بے چارگی کی کتنی بے مثال تشبیہ ہے ؎

شاہ را در میاں گرفت سپاہ
ویں گرفتن بود گرفتن ماہ

---

[1] اگرچہ آج کل "غدر" کہنا درست نہیں ہے ہمارے نزدیک یہ جنگ آزادی تھی مگر جس عہد کے متعلق ہم گفتگو کر رہے ہیں اس کے لئے ہم اس کے استعمال پر مجبور ہیں "جنگ آزادی" کہہ کر بعض جگہ بات نہیں بنتی۔

[2] کلیات نثر ص۳۸۳

[1] کلیات نثر ص۳۸۲

[2] کلیات نثر ص۳۸۳

ماہ نو ہیچ گہ نمی گیرد
جز مہ چاردہ نمی گیرد
شاہ، ماہ گرفتہ را ماند
نہ کہ ماہ دو ہفتہ را ماند[۱]

بادشاہ "گہن لگا چاند" تخیل کی بلندی کا کمال ہے اور اس کی بے بسی اور مجبوری کی کتنی عجیب و لطیف مثال ہے۔ بادشاہ اور شہزادگان کے حالات، فتح دہلی کے بعد لکھتے ہوئے کلیجہ منہ کو آتا ہوگا۔ اس لئے بات کو اس طرح ٹال جاتے ہیں :۔

"ایں کہ فرجام کار بادشاہ و بادشاہزادگان کہ دیباچۂ داستان کشائش شہر بایستے، نخست نہ نگاشتہ ام۔ للہ الحمد اینست کہ مرا اندریں نامہ شنیدن سرمایۂ گفتار و ہنوز سخنہائے ناشنیدہ بسیار است[۲]۔"

لیکن ایک موقع پر بادشاہ و شاہزادگان کے متعلق افسوس کرتے ہوئے لکھا ہے :۔

"از شاہزادگان بیروں ازیں نتواں سرود کہ انبوے را اژدہائے مرگ بدہاں زخم گلولۂ تفنگ فرو برد۔ و چندے را در جسم بند جاں (پھانسی) بکشاکشِ رسن رواں در تن افسرد۔ وافسردۂ چند ازاں میاں زنداں نشین اند۔ و شمرۂ چند ازاں دودماں آوارۂ روئے زمیں۔ بر بادشاہ ایرک (قلعہ) آرام گاہ کہ ماتم زدۂ تاب و تواں است، فرمان گیرودار باندازۂ باز پرس رواں ہست[۳]۔"

آخر کار دستنبو کی تحریر یکم اگست ۵۸ء کو ختم کر دی خاتمہ پر لکھتے ہیں :۔

"کہن پنسن اگر بدست آید نیز زنگ از آئینہ نمی زداید.... کاش دربارۂ آں خواہش ہائے سہ گانہ، ہمانا مہر خواں (خطاب) و سراپائے (خلعت) و پایانہ (پنشن)، چنانکہ ہم دریں نگارش ازاں گزارش آگہی دادہ ام و اینک چشم نگراں بدال دوختہ و دل برامید بداں نہادہ ام[۴]۔"

گویا دستنبو کو بھی، خطاب، خلعت اور پنشن کی بحالی کا ذریعہ بنایا ہے۔ اردو خطوط میں بھی دہلی اور اہل دہلی کی بربادی پر دردناک بیانات موجود ہیں سب سے پہلے قطعہ غدر یہ ملاحظہ فرمایئے۔ یہ علاؤالدین خاں علائی کو اسی زمانہ میں تحریر کیا تھا :۔

بسکہ فعال ما یرید ہے آج
ہر سلحشور انگلستاں کا
گھر سے بازار میں نکلتے ہوئے
زہرہ ہوتا ہے آب انساں کا
چوک جس کو کہیں، وہ مقتل ہے
گھر بنا ہے نمونہ زنداں کا
شہر دہلی کا ذرہ ذرۂ خاک
تشنۂ خوں ہے ہر مسلماں کا
کوئی واں سے نہ آسکے یاں تک
آدمی واں نہ جا سکے یاں کا
میں نے مانا کہ مل گئے، پھر کیا؟
وہی رونا تن و دل و جاں کا
گاہ جل کر کیا کئے شکوہ
سوزشِ داغہائے پنہاں کا
گاہ رو کر کہا کئے باہم
ماجرا دیدہ ہائے گریاں کا
اس طرح کے وصال سے یا رب
کیا مٹے دل سے داغ ہجراں کا[۱]

انگریز سپاہیوں کی مطلق العنانی، مسلمانوں کا قتل عام ان کی تباہیٔ حالات، مجبوری بے بسی اس سے زیادہ کیا بیان ہو سکتی تھی اب دیکھئے انگریزوں کے ترحم کی مثال بے مثال غالب ہی کا قلم لکھ سکتا ہے :۔

"ہر شخص کی سرنوشت کے موافق حکم ہو رہے ہیں۔ نہ کوئی قانون ہے، نہ قاعدہ ہے، نہ نظیر کام آئے، نہ تقریر پیش جائے۔ ارتضیٰ خاں ابن مرتضیٰ خاں کی پوری دو سو روپے کی پنشن کی منظوری کی رپورٹ گئی اور ان کی دو بہنیں، سو سو روپے مہینا

---

[۱] کلیات نثر ص۳۸۵
[۲] کلیات نثر ص۴۱۰
[۳] کلیات نثر ص۴۱۴
[۴] کلیات نثر ص۴۱۶

---

[۱] خطوط غالب ص۳۵

پانے والیوں کو حکم ہوا کہ چونکہ تمہارے بھائی مجرم تھے۔ تمہاری پنشن ضبط، بطریق ترحم دس دس روپے مہینا تم کو ملے گا۔ ترحم یہ ہے تو تغافل کیا قہر ہوگا! میں خود موجود ہوں، حکام صدر کا روشناس، . . . سکتا ؔ[۱]"

یہ داستان درازسے درازتر ہوتی جارہی ہے۔ غالب نے غدر کے حالات بہت زیادہ لکھے ہیں صرف دو واقعے اور ملاحظہ فرمائیے، غدر کے بعد دہلی کی عمارات بھی انگریزوں کی تباہی و بربادی کا نشانہ بنیں بہت سی عالی شان عمارتیں برباد ہوئیں۔ مسجدیں مسمار کی گئیں، امام باڑے ڈھائے گئے۔ مولوی محمد باقر کا امام باڑہ ڈھایا گیا تو غالب کو بڑا دکھ ہوا[۲] شہر کی بربادی، مسجدوں کی مسماری میں انگریزوں کی حرکتیں ملاحظہ فرمائیے:۔

"برٹے دریبہ کا دروازہ ڈھایا گیا، قابل عطار کے کوچے کا بقیہ مٹایا گیا کشمیری کٹرے کی مسجد زمین کا پیوند ہوگئی، سڑک کی وسعت دوچند ہوگئی۔ اللہ اللہ! گنبد مسجدوں کے ڈھائے جاتے ہیں اور ہنود کی ڈیوڑھیوں کی جھنڈیوں کے پرچم لہراتے ہیں ایک شیر زور اور پیل تن بندر پیدا ہوا ہے مکانات جابجا ڈھاتا پھرتا ہے۔ فیض اللہ خاں بنگش کی حویلی پر جو گلدستے ہیں جن کو عوام گمزی کہتے ہیں، انہیں ہلا ہلا کر ایک ایک بنیاد ڈھا دی، اینٹ سے اینٹ بجا دی، واہ رے بندر! یہ زیادتی اور پھر شہر کے اندر[۳]"

انگریز کو بندر کہنا کتنی بے مثال تشبیہ ہے۔ میرے لڑکپن تک انگریزوں کے لئے یہ لفظ بچوں اور لڑکوں کی زبان پر تھا۔ مگر غالب نے اس سے جو فائدہ اٹھایا ہے۔ اور جس موقع پر استعمال کیا ہے وہ بلاغت کی انتہا ہے۔ بندر کی فطرت کو سامنے رکھئے اور اس انگریز کی حرکت کو دیکھئے اور تشبیہ کا لطف اٹھائیے۔ اسی طرح انگریز حکام کی جہالت کا خاکہ کتنے پرلطف انداز میں اڑایا ہے۔ ہندوستان میں عرف کی وبا عام ہے۔ نام اور عرف کو انگریز نہ ایک جانتے ہیں اور نہ مانتے ہیں:۔

---

[۱] خطوط غالب ص۳۹۵

[۲] خطوط غالب ص۳۹۹

[۳] خطوط غالب ص۴۱۹

"ایک لطیفہ پرسوں کا سنو! حافظ ممو بے گناہ ثابت ہو چکے ہیں، رہائی پا چکے، حاکم کے سامنے حاضر ہوا کرتے ہیں۔ املاک اپنی مانگتے ہیں۔ قبض و تصرف ان کا ثابت ہو چکا۔ صرف حکم کی دیر ہے، پرسوں وہ حاضر ہوئے، مثل پیش ہوئی۔ حاکم نے پوچھا۔ حافظ محمد بخش کون؟ عرض کیا کہ میں! پھر پوچھا، حافظ ممو کون؟ عرض کیا کہ میں! اصل نام میرا محمد بخش ہے ممو ممو مشہور ہوں۔ فرمایا یہ کچھ بات نہیں۔ حافظ محمد بخش بھی تم، حافظ ممو بھی تم، جو دنیا میں ہے وہ بھی تم۔ ہم مکان کس کو دیں؟ مثل داخل دفتر ہوئی۔ میاں ممو اپنے گھر چلے آئے[۱]"

ان واقعات میں انگریزوں کے خلاف جو کچھ کہا ہے وہ کم نہیں ہے اب انگریزی فوج کے متعلق بھی سن ہی لیجئے۔ غالب باغیوں کی طرح، انگریزی فوج کو بھی اچھا خیال نہ کرتے تھے:۔

"ایک غدر کالوں کا، ایک ہنگامہ گوروں کا، ایک فتنہ انہدام مکانات کا، ایک آفت وبا کی، ایک مصیبت کال کی۔ اب یہ برسات جمیع حالات کی جامع ہے[۲]"

کتنے لشکروں کا دہلی پر حملہ ہوا، اور انگریزی فوج نے کیا کیا لوٹا اس کی تفصیل غالب ہی سے سنئے:۔

"پانچ لشکر کا حملہ پے درپے اس شہر پر ہوا۔ پہلا باغیوں کا لشکر، اس میں اہل شہر کا اعتبار لٹا۔ دوسرا لشکر خاکیوں[۳] کا، اس میں جان و مال و ناموس و مکان و مکین و آسمان و زمین و آثار ہستی سراسر لٹ گئے۔ تیسرا لشکر کال کا، اس میں ہزارہا آدمی بھوکے مرے۔ چوتھا لشکر ہیضے کا۔ اس میں بہت سے پیٹ بھرے مرے۔ پانچواں لشکر تپ کا، اس میں تاب و طاقت عموماً لٹ گئی[۴]"

انگریزوں نے دہلی میں جو تباہی مچائی تھی اس کو کتنے مختصر اور جامع لفظوں میں بیان کر دیا ہے۔ تفسیر کی جائے تو ایک کتاب تیار ہو جائے۔ غالب کا مسلمانوں کی زبوں حالی پر افسوس ایک فطری

---

[۱] خطوط غالب ص۳۹۷

[۲] خطوط غالب ص۳۰۲

[۳] انگریزی فوج، خاکی وردی کی وجہ سے یہ نام دیا ہے دیگر خطوط میں بھی خاکی بمعنی انگریزی سپاہی لکھا ہے۔

[۴] خطوط غالب ص۳۵۹

امر تھا خطوط میں جا بجا اس کا اظہار پایا جاتا ہے۔ مسجدوں کے انہدام اور ہندیوں کے مکانات کی شان و شوکت کا مقابلہ جس دردناک انداز میں کیا ہے وہ پہلے گزر چکا۔ مولانا حالی نے "یادگار غالب" میں لکھا ہے کہ مرزا کہتے تھے کہ مجھ میں کوئی بات مسلمانی کی نہیں ہے۔ پھر میں نہیں جانتا کہ مسلمانوں کی ذلت پر مجھ کو کیوں اس قدر رنج و تاسف ہوتا ہے؟[1] ان کے کلام میں اس موضوع پر بھی بہت کچھ پایا جاتا ہے۔ جب پنجاب میں سکھوں کا زور تھا تو مسلمانوں پر عرصہ حیات تنگ تھا، شمالی ہند میں سکھوں کے خلاف کافی غم و غصہ کی لہر دوڑ گئی تھی۔ مولانا سید احمد شہید اور مولانا اسمٰعیل شہید نے انہی کے خلاف جہاد کیا تھا، مومن نے شرکت جہاد کی تمنا کی تھی۔ غالب نے بھی اپنی حسرت کا اظہار ہارڈنگ کے قصیدہ میں جو فتح پنجاب کی خوشی میں لکھا ہے، اس طرح کیا ہے:۔

گزاف شیوۂ من نیست راست میگویم ... دریں زمانہ مرا بودے ار زمانِ شباب
پے شکستنِ کفار بستمے بہ نبرد ... کمر بہ سرخوشیٔ نیتِ حصولِ ثواب[2]

اسی طرح ایک غزل میں درگاہ رب العزت میں کتنے اچھے انداز میں شکوہ پیش کیا ہے۔

نہ کنی چارہ لبِ خشک مسلمانے را ... اے بہ ترسا بچگاں کردہ مے ناب سبیل[3]

غرض غالب نے غدر، محرکات غدر، نتائج غدر کے بیان میں سلامتی طبع کا ثبوت دیا ہے۔ انگریزوں کے موافق و مخالف تاثرات سنا چکا ہے۔ اب پنشن اور دربار کے متعلق مختصراً بیان کیا جاتا ہے۔ انگریزی پنشن بھی ۱۸۵۷ء سے بند ہو گئی تھی اور مئی ۱۸۶۰ء میں بحال ہوئی۔ اس سلسلہ میں انہوں نے متعدد طریقہ سے کوشش کی۔ ان کے احباب اور قدردانوں نے بھی حتی الامکان سعی و سفارش کی، دوسروں کی سعی و سفارش منظر عام پر نہیں آسکی لیکن بتقاضائے ہمدردی اس سے انکار کی بھی گنجائش نہیں کہ دوسروں نے در پردہ اس بارے میں ضرور مدد دی ہوگی۔ مگر غالب اس کو "عطیۂ یداللّٰہی" قرار دیتے ہیں:۔

"میرا دارو گیر سے بچنا کرامت اسداللّٰہی ہے۔ ان پیسوں (پنشن) کا ہاتھ آنا عطیہ یداللّٰہی ہے۔"[1]

اور یوسف مرزا سے جب خواجہ جان نے کہا کہ پنشن کی بحالی میں والئی رامپور نواب یوسف علی خاں ناظم کا ہاتھ ہے تو انہیں جواب دیا۔

"خواجہ جان جھوٹ بولتا ہے۔ والئی رامپور کو اس پنشن کے اجرا میں کچھ دخل نہیں۔ یہ کام خدا ساز ہے، بہ علی ابن ابی طالب علیہ السلام۔"[2]

یہی حال خلعت و دربار کا بھی ہے۔ مرزا صاحب کو دربار میں داہنی طرف دسویں نمبر پر کرسی ملتی تھی۔ ہفت پارچہ و سہ رقوم جواہر خلعت میں ملتے تھے۔ غدر کے زمانہ میں اس کی بھی توقع نہ رہی۔ ۱۸۶۳ء میں سر رابرٹ منٹگمری نے دربار کیا مرزا صاحب کو بلایا نہ گیا تھا۔ لیکن ۳۰ مارچ کو گورنر نے یاد کیا اور خلعت عطا کیا اور دربار کا مژدہ سنایا کہ انبالہ جاؤ وہاں دربار ہوگا اور خلعت پاؤ۔ غالب نے اس کی اطلاع قریب قریب سب ملنے والوں کو دی ہے مگر بعض حضرات اس کو درست نہیں مانتے اور کہتے ہیں کہ ہو سکتا ہے کہ غالب نے خلعت ملنے کی خبر اپنی کسی مصلحت سے اڑا دی ہو۔ ان حضرات کی یہ رائے اس لئے تسلیم کرنے میں تامل ہے کہ غالب نے جن حضرات کو اطلاع دی ہے سب کو لکھا ہے کہ لفٹنٹ گورنر پنجاب نے اپنی طرف سے خلعت دیا۔ اس خبر کو انہوں نے اخبارات میں بھی شائع کرانے کی کوشش کی ہے خط بنام منشی نولکشور میں بھی عطائے خلعت کا ذکر موجود ہے۔ یہ خط اودھ اخبار میں شائع ہوا تھا۔ شیو نرائن کو بھی خط لکھا ہے ان کا بھی اخبار نکلا کرتا تھا قیاس ہے کہ اس میں بھی یہ خبر شائع ہوئی ہوگی۔ نواب یوسف علی خاں والئی رامپور، منشی غلام غوث خاں بے خبر میر منشی لفٹنٹ گورنر یوپی کو بھی لکھا ہے۔ ایسے حضرات کو غلط خبر دینی کسی طرح مناسب نہیں معلوم ہوتی۔ اخبار میں اشاعت مفید ہی نہیں بلکہ مضر ثابت ہو سکتی تھی غالب ایسی غلطی کسی حالت میں بھی نہیں کر سکتے تھے۔ ۱۸۶۶ء میں نواب کلب علی خاں کو جو خط دربار اور خلعت کے سلسلہ میں لکھا ہے اس سے یہ غلط فہمی پیدا ہوئی ہے جس کا پس منظر یہ ہے کہ لفٹنٹ گورنر نے دہلی میں ایک دربار تالیف قلوب کی خاطر کیا تھا جس میں صاحبان فن و کمال کو شرکت کا اعزاز بخشا گیا تھا۔ یہ عام درباروں سے جداگانہ نوعیت کا دربار تھا۔ لفٹنٹ گورنر نے اردو میں تقریر کی تھی۔ اس میں خلعت صرف

---

[1] یادگار غالب ص ۹۵
[2] کلیات نظم ص ۲۷۴
[3] کلیات نظم ص ۵۲

[1] خطوط غالب ص ۳۵۹
[2] خطوط غالب ص ۳۰۵

غالب ہی کو دیا گیا تھا اور کسی کو نہیں جس کا اظہار روئداد دربار میں بھی ہے اور لفٹننٹ گورنر نے بھی اپنی تقریر میں اردو کی تعریف کرتے ہوئے اس طرح کیا ہے" اس کی شہادت آپ کے مشہور شاعر مرزا نوشہ کے کلام سے جن کو ابھی خلعت دیا گیا ہے ظاہر ہے" کیونکہ معمول کے مطابق دربار نہ تھا اس لئے اس میں خلعت ملنے کی توقع بے محل تھی اس لئے غالب نے یہ صحیح لکھا ہے" نہ مجھے احتمال، نہ صاحب کمشنر بہادر شہر کو معلوم" اور غالب کے اس لکھنے کو" بعد غدر اگرچہ پنشن اور دربار بحال رہا۔ لیکن خلعت موقوف ہو گیا" سہو پر محمول کرنا چاہیئے۔[۱]

غالب کے انگریز حکام کے علاوہ دوسروں سے بھی مراسم تھے۔ جن میں مسٹر جان جاکوب اور الگزنڈر ہیدرلے کا نام سرفہرست ہے انگریزوں کے متعلق ایک خط میں لکھتے ہیں:۔

"انگریز قوم میں سے جو ان روسیاہ کالوں کے ہاتھوں
قتل ہوئے۔ ان میں سے کوئی میرا امید گاہ تھا اور
کوئی میرا شفیق، اور کوئی میرا دوست، اور کوئی میرا یار، اور
کوئی میرا شاگرد[۲]"

میجر جان جاکوب سے بہت دیرینہ مراسم تھے۔ یہ فارسی کا بڑا اچھا مذاق رکھتا تھا۔ دیوان حافظ کو مرتب کرکے چھپوایا تھا غالب سے دیباچہ لکھوانا چاہا مگر غالب نے تقریظ لکھ دی[۳] جو کلیات نثر میں موجود ہے۔[۴] خط و کتابت بھی تھی[۵] مکان اور کنویں کی تاریخیں بھی کہی تھیں جو کلیات نظم میں شامل ہیں قطعہ ص۳۲۳ میں اس کا زائچہ بھی نظم کیا ہے۔ یہ غدر میں مارا گیا تھا۔ حاتم علی مہر کو لکھتے ہیں:۔

"ہائے میجر جان جاکوب کیا جوان مارا گیا سچ ہے اس کا
شیوہ یہ تھا کہ اردو کے فکر کو مائل آتا اور فارسی
زبان میں شعر کہنے کی رغبت دلواتا۔ یہ بھی نہیں ہے
ہے جن کا میں ماتمی ہوں[۶]"

اور منشی تفتہ کو تقریظ دیوان حافظ کے متعلق لکھتے ہیں:۔

"جو تقریظ دیوان حافظ کی بموجب فرمائش میجر
جان جاکوب بہادر کے لکھی ہے۔ اس کو دیکھو کر
فقط ایک بیت میں ان کا نام اور ان کی مدح آئی
ہے اور باقی ساری نثر میں کچھ اور ہی مطالب ہیں[۱]"

الگزنڈر ہیدرلے ایک فرانسیسی خاندان کا فرد تھا۔ اس کے باپ نے کسی ہندوستانی عورت سے شادی کرلی تھی۔ اردو کا بڑا اچھا شاعر تھا۔ ابتدا میں زین العابدین خاں عارف سے شرف تلمذ تھا۔ ۷ جولائی ۱۸۶۱ء کو انتقال ہوا۔[۲] اس کے بھائی ٹامس ہیدرلے نے اس کا دیوان شائع کرایا تھا جس میں غالب سے بھی تلمذ مذکور ہے مگر غالب کے کسی خط سے اس کی تصدیق نہیں ہوتی۔ اپریل ۱۸۶۰ء میں یوسف مرزا کو لکھا ہے:۔

"الگزانڈر ہیدرلے صاحب میرے دوست کے
فرزند ہیں اور نیک بخت و سعادت مند ہیں۔۔۔
۔۔۔ دو مقدموں میں میں نے انہیں خط لکھے مگر
انہوں نے ایک کا بھی جواب نہیں دیا اور ان مقدموں
میں سفارش بھی نہیں کی[۳]"

پھر ۹ مئی ۱۸۶۰ء کو انہی کو لکھا ہے:۔

"ٹامس ہیدرلے صاحب سے میری ملاقات نہیں
ہے۔ ہاں الک صاحب سے ہے، سو ان کے نام کا
خط لکھا ہے تم کو بھیجتا ہوں[۴]"

میر مہدی مجروح کو ایک خط میں لکھتے ہیں:۔

"الگزنڈر ہیدرلے کا کوئی خط نہیں آیا۔ ظاہراً ان کی
مصاحبت نہیں ورنہ مجھ کو ضرور خط لکھتا رہتا[۵]"

پھر انہی کو اس کی موت کی خبر دیتے ہوئے لکھتے ہیں:۔

"الگزنڈر ہیدرلے مشتہر بہ الک صاحب مر گیا۔ واقعی
بے تکلف وہ میرا عزیز اور ترقی خواہ اور راج میں

[۱] غالب از مہر ص۲۶۶
[۲] کلیات نثر ص۱۴۱
[۳] " " ص۵۴
[۴] " " از ص۱۴۱ تا ص۱۵۵
[۵] خطوط غالب ص۲۱۰

[۱] خطوط غالب ص۲۱۲
[۲] مقالات ماجد ص۴۱
[۳] خطوط غالب ص۳۰۴
[۴] خطوط غالب ص۳۰۹
[۵] خطوط غالب ص۲۹۳

اور مجھ میں متوسط تھا[۱]

ان بیانات میں شاگردی کا ذکر کہیں نہیں لیکن قیاس یہ ہے کہ عارف کے انتقال کے بعد اس نے غالب سے ضرور اصلاح لی ہو گی۔ تا سخ نے بھی اپنے دیباچہ میں اس کا اعتراف نہیں کیا، البتہ منشی شوکت علی صاحب کے دیباچہ میں غالب کی شاگردی کا ذکر ہے[۲]۔

اب تک غالب کے انگریزوں سے روابط بیان کئے گئے۔ میجر جان جاکوب اور انگزنڈر ہیدرلے کے علاوہ اور دوں سے تعلق تمام تر پنشن، خلعت اور دربار کے سلسلہ میں رہا۔ حصول عظمت و برتری کی خاطر غالب ان روابط کے لئے مجبور تھے۔ اگر غالب نے انگریزوں کی مدح سرائی کی ہے تو ان کی برائی کرنے سے بھی گریز نہیں کیا ہے۔ لیکن ان روابط نے غالب کو فائدہ بھی پہنچایا ہے۔ غالب طبعاً جدت پسند تھے، شاہراہ عام سے الگ چلنا بھی ان کی فطرت میں تھا۔ طبع معنی یاب و فکر دور رس پائی تھی۔ پنشن کے قضیہ میں انہیں مالی فائدہ تو نہیں پہنچا، مگر فکر و نظر کے لئے اسباب افادیت فراہم ہوتے رہے۔ دہلی سے کلکتہ کو چلے راستہ میں تجربات حاصل ہوئے۔ یہ احساس برتری ہی تھا کہ لکھنؤ میں معتمدالدولہ آغا میر سے صرف اس لئے نہ ملے کہ اس نے غالب کی یہ دو شرطیں منظور نہ کیں اول یہ کہ نائب السلطنت غالب کی تعظیم دیں، دوسرے نذر پیش کرنے سے معاف رکھا جائے[۳]۔ باندہ، بنارس، مرشد آباد کانپور میں بہت سے حضرات سے ملاقات ہوئی۔ بنارس بہت پسند آیا اس کے متعلق مثنوی چراغ دیر ایک عمدہ مثنوی ہے۔ کلکتہ پہنچے۔ وہاں کی ادبی ہنگامہ آرائی نے غالب کو مقلد محض نہ بننے میں بڑی تقویت پہنچائی۔ اس بحث میں بھی احساس برتری اور شعور کمتری کی آویزش کو بڑا دخل ہے۔ ایرانیوں کی تعریف نے دل کے حوصلے بڑھائے۔ مرزا کو جب ایک ایرانی فاضل نے بھری محفل میں غالب کے متعلق کہہ دیا کہ آج اس درجہ کا شاعر سرزمین ایران میں بھی کوئی نہیں[۴]۔ غالب کی صلح جوئی بھی "باد مخالف" کے روپ میں ڈھلی۔

کلکتہ دارالحکومت تھا پنشن کے مقدمہ میں جہاں ان کو ٹھہرنا پڑا۔ اس قیام کا اثر ان پر بہت اچھا ثابت ہوا۔ انگریزی ایجادات سے وہ شعوری اور لاشعوری طور پر متاثر ہوئے اور انہیں ایک آنے والے دور کا شدید احساس ہوا۔ ان کے طبعی میلانات اس دور آئندہ سے مناسبت رکھتے تھے چنانچہ وہ سب سے پہلے اس کے آثار دیکھ کر اس کی طرف متوجہ ہوئے۔ اور ایسے آثار قائم کئے اور ایسے نقوش چھوڑے کہ ان کے بعد والوں نے انہی کو نشان راہ بنایا اور ایک منزل ارتقا کی طرف قافلہ بڑھایا۔ اس دور آئندہ کے نشانات ان کے کلام میں بکثرت ملتے ہیں مثلاً:

مژدۂ صبح درین تیرہ شبانم دادند — شمع کشتند و ز خورشیدنشانم دادند

"مژدۂ صبح" سے مراد دور آئندہ اور "تیرہ شباں" سے مراد دور پستی و بدحالی ہو تو کیا تعجب ہے اور مصرع ثانی ترقی کی نشان دہی کے لئے اشارہ ہو تو کیا بعید ہے مگر یہاں تاریخی شعور سے کام لیا جائے تو بات بنتی ہے کہ انگریزوں نے ہندوستان کی دولت ضرور لوٹی، مگر ایک نیا ذہن اور جدید شعور انہی کی بدولت حاصل ہوا۔ غالب کے معاصرین کا کلام دیکھئے وہ اپنے مفروضہ، تنگ اور محدود دائرے سے باہر نکلنا گوارا نہیں کرتے مگر غالب طرح طرح سے دور جدید کی طرف اشارہ کرتے ہیں۔ ایک غزل ہے جس کی ردیف "مخسپ" ہے پوری غزل ایک پیام بیداری ہے تشبیہ و استعارہ کے پیرائے میں بہت کچھ کہہ دیا ہے پوری غزل پڑھئے اور سوچئے کہ غالب نے کیسے عالم میں بیدار کرنے کی کوشش کی ہے بالخصوص یہ شعر:

سحر دمیدہ و گل در دمیدنست، مخسپ!
جہاں جہاں گل نظارہ چیدنست مخسپ!
تو محو خواب و سحر در تاسف از انجم
بہ پشت دست بدنداں گزیدنست مخسپ!
نشان زندگی دل، نہ ردو یدنست ما بیست
ملانے آئینۂ چشم دیدنست، مخسپ!

اور بہت سی غزلوں میں یہی احساس کارفرما ہے چند شعر اور ملاحظہ فرمایئے!

رفتم کہ کہنگی ز تماشا بر افگنم
در بزم رنگ و بو نمطے دیگر افگنم

---

۱ خطوط غالب ص۲۹۰
۲ مقالات ماجد ص۱۰۱
۳ یادگار غالب ص۳۷
۴ غالب از مہر حاشیہ ص۱۲۶

تا بادہ تلخ تر شود و سینہ ریش تر
بگدازم آبگینہ و در ساغر افگنم
بخت در خواب است، می‌خواہم کہ بیدارش کنم
پارۂ غوغائے محشر کو کہ در کارش کنم
بیا کہ قاعدۂ آسماں بگردانیم
قضا بگردش رطل گراں بگردانیم

اور اردو میں مشہور قطعہ:-

اے تازہ واردان بساط ہوائے دل
زنہار گر تمہیں ہوس نائے و نوش ہے

میں جو کیفیت ہے اس کو دیدۂ عبرت نگاہ اور گوش خفیقت نیوش ہی کی ضرورت ہے کیونکہ اس کا سرچشمہ "نوائے سروش" ہے گویا دم توڑتی ہوئی مغلیہ تہذیب کی تصویر ہے ان کے علاوہ غالب کی پیش بینی اور نئے دور کی طرف کھلے اشارے "آئین اکبری کی تقریظ"[1] میں ملتے ہیں جو سرسید احمد خاں کی فرمائش پر لکھی گئی تھی اس مثنوی میں انہوں نے سرسید احمد خاں کو مشورہ دیا تھا کہ وہ پرانے آئین و روش کو چھوڑ کر نئے آئین و ایجادات کی طرف متوجہ ہوں۔ دیکھیں کہ انگریزوں نے دخانی کشتی، ریل، موٹر، ٹیلیگرام ٹیلیفون، گراموفون، گیس کی روشنی، دیا سلائی وغیرہ، ایجاد کی ہیں اگرچہ سرسید احمد خاں نے اس وقت اس مثنوی کو قبول نہ کیا اور اس کی وجہ یہ تھی کہ غالب نے یہ بات اپنی روشن طبع اور بالغ نظری کی وجہ سے بہت پہلے محسوس کر کے لکھ دی تھی۔ غالب کی نگاہ دور بیں، اس قدیم دور اور تہذیب کو ختم ہوتے دیکھ رہی تھی۔ اسے ایک نئے دور کی آمد کا شدید احساس تھا۔ اس سے دور جدید کی طرف رخ بدلنے کا عمل بین طور پر دکھائی دیتا ہے جس کی روح، عقل، عمل اور تجسس ہے۔ بنا بریں ۱۸۵۷ء کے بعد سرسید احمد خاں کو غالب کے بتائے ہوئے راستہ کو اختیار کرنا پڑا۔

غالب نے صرف انگریزوں کی ایجادات اور آئین ہی کی طرف توجہ نہیں کی بلکہ انگریزی زبان کے الفاظ کو بھی بکثرت استعمال کیا ہے۔ ان کے معاصرین کے ہاں اس کثرت سے نہیں پائے جاتے۔ اس کی وجہ یہ ہے کہ جن حالات سے انہیں دوچار ہونا پڑا ان کے ہم عصر، ان حالات سے بہت دور تھے۔ پنشن کے قضیہ اور مقدمہ، بندش اور بحالی خلعت و دربار کے معاملے میں انہیں بعض انگریزی لفظوں سے واسطہ پڑا اور انہیں بے تکلف اپنی اردو اور فارسی تحریروں میں استعمال کیا ہے۔ ایک خط میں لکھتے ہیں:

"چاپی، کہ بائے فارسی اور یائے حطی ہے۔ کاپی اور چاپی اور پاپی یہ قافیہ باہدگر ہو سکتے ہیں۔ چاپی، لغت انگریزی ہے۔ اس زمانے میں اس اسم کا شعر میں لانا جائز ہے۔ بلکہ مزا دیتا ہے: نالکی اور دخانی جہاز کے مضامین میں نے اپنے یاروں کو دئے ہیں۔ اوروں نے بھی باندھے ہیں۔ اور بکاری اور طلبی اور فوجداری اور سرشتہ داری، خود یہ الفاظ میں نے باندھے ہیں۔
چابی بہ معنی کلید شوق سے لکھو نہ چاپی"[1]

الفاظ و اصطلاحات کے علاوہ بہت سے لفظوں کا ترجمہ بھی کیا ہے مثلاً، ماچس کو انگریزی دیا سلائی۔ فوٹو کو آئینہ کی تصویر، عکس کی تصویر، مارشل لا کو جرنیلی بندوبست۔ گورنر جنرل کو حاکم اکبر لکھا ہے۔ دیکھئے! صاحب، میم اور بابا کو کیسے عمدہ طور سے اپنے بیوی اور بچوں کے لئے استعمال کرتے ہیں۔" پھر صاحب اور میم اور بابا لوگ اپنے قدیم مسکن میں آرہیں گے"[2] یہی نہیں بلکہ چک، نوٹ، رپورٹ کو نظم بھی کیا ہے:

آرے نہ چک بود نہ تمسک زہر کہ ہست
نے دستخط نہ مہر نہ نام و نشان اوست
مضمون شعر نوٹ بود در زمانہ ما
یعنی بدست ہر کہ بیفتاد آن اوست[3]

غالب کے نزدیک ولایتی یعنی انگریز اردو کو کما حقہ نہیں سمجھ سکتے تھے میر حبیب اللہ خاں ذکا کو لکھتے ہیں:-

"آپ ولایتی بھی نہیں جو میں یہ تصور کروں کہ اردو

---

[1] غدر کے بعد جیداری ظاہر ہے غالب کی پیش بینی قابل داد ہے۔
[2] مثنوی کلیات نظم صفحہ ۱۰۲۔ اس سلسلہ میں میرا مضمون "غالب اور سرسید" مطبوعہ ماہِ نو شمارہ بابت فروری ۱۹۶۱ء بھی ملاحظہ کیا جائے۔

---

[1] خطوط غالب صفحہ ۲۴۵
[2] خطوط غالب صفحہ ۱۱
[3] کلیات نظم صفحہ ۱۴۱

عبارت سے استنباطِ مطلب اچھی طرح نہ کر سکے۔[1]

انگریز اردو سے نابلد ہونے کی وجہ سے غلط اردو بولتے تھے اس کے متعلق بھی اشارہ کیے ہیں مثلاً "اب ہم سے ملنا کیوں مانگتے ہو"[2] یا ایک اور جگہ لکھتے ہیں "فریاد مؤنث، فریاد کر لینی چاہیئے۔ فریاد کر لینا، انگریزی بولی ہے"[3]۔ غالب اس فرق کو اچھی طرح سمجھتے تھے۔ آج ہم بھی یہی کہتے ہیں کہ اردو کو انگریزی محاورہ سے بچایا جائے۔ انگریزی کے رواج کے متعلق لکھتے ہیں۔ "گل، جو پھانسی انگریزی لغت ہے۔ انگریزی زبان نے بنگالے میں سو برس اور دلی، اکبرآباد میں ساٹھ برس سے رواج پایا ہے"[4]

غالب کی تحریروں میں بعض انگریزی لفظوں کا تلفظ بدلا ہوا ہے مثلاً لارڈ کو لاڈ اور لاٹ لکھتے ہیں پیشن کو پنسن، بریگیڈیر کو برگڈیر، سارٹیفکیٹ کو سارتی فکٹ، اسٹیشن کو اسٹیسن، کیمپ کو کمپ اور کنپ، نمبر کو لمبر لکھا ہے مرزا جواں بخت کے سہرے میں لمبر ہی نظم کیا ہے:

سر پہ چڑھنا تجھے پھبتا ہے پر اے طرفِ کلاہ
مجھ کو ڈر ہے کہ نہ چھینے ترا لمبر سہرا

اسی طرح ٹکٹ کو کئی معنی میں استعمال کیا ہے ٹکٹ = اسٹامپ، ٹکٹ = اجازت نامہ (پرمٹ) ٹکٹ = ملاقاتی کارڈ۔ انگریزی الفاظ کی ایک فہرست آخر میں شامل کی جا رہی ہے۔

غالب کی اردو نثر میں، خطوط قابلِ ذکر ہیں۔ ان کی طرزِ تحریر کے متعلق اکثر حضرات کا یہ کہنا ہے کہ یہ انگریزی طرز سے تاثر کا نتیجہ ہے مولانا ابوالکلام آزاد لکھتے ہیں:

"خط و کتابت میں قدیم اسلوب القاب و تخاطب سے کلی احتراز اور محض کسی ایک نام و لقب سے یاد کر کے براہِ راست حرفِ مطلب پر آ جانا جو اس عہد میں ایک غیر معمولی بات تھی۔ یقیناً انگریزی اسلوب کے تاثر سے سامنے آئی"[5]

---

[1] خطوط غالب ص ۵۷
[2] خطوط غالب ص ۳۹۲
[3] خطوط غالب ص ۴۲۵
[4] خطوط غالب ص ۵۸۹
[5] غالب از مہر ص ۱۱۳

مولانا ابوالکلام آزاد کے بیان میں ہمیں اس لیے تامل ہے کہ غالب نے پنج آہنگ کا دیباچہ اور آہنگ اول ۱۸۲۵ء میں ارتجالاً تین روز میں مرتب کر دیا تھا[1]۔ اس میں لکھتے ہیں:

"اداشناس جانتا ہے کہ نگارش میں میری روش یہ ہے کہ جب کاغذ و قلم ہاتھ میں لیتا ہوں تو مکتوب الیہ کو اس کے مرتبہ کے لائق لفظ سے خطاب کرتا ہوں اور مدعا بیان کرنے لگتا ہوں۔ القاب، آداب، خیریت گوئی اور عافیت جوئی حشو و زاید ہیں"[2]

دیباچہ ہی میں مکتوب نگار کو ہدایات فرمائی ہیں بیشتر امور کو ترک کرنے اور اختیار کرنے کے متعلق لکھا ہے ابتدا میں لکھتے ہیں:-

"نامہ نگار کو چاہیئے کہ نگارش کو گزارش سے الگ نہ کرے تحریر کو تقریر کا رنگ دے، مطلب کو اس طرح ادا کرے کہ اس کا سمجھنا دشوار نہ ہو"[3]

غرض غالب کے دیباچہ کو سامنے رکھتے ہوئے یہ فیصلہ کرنا دشوار نہیں کہ یہ اسلوب ان کا اپنا ایجاد کردہ تھا۔ یہ وہ زمانہ تھا کہ انگریزوں سے ان کے مراسم نہ تھے۔ کلکتہ کی سیر تو در کنار، سفرِ کلکتہ کا خیال بھی نہ تھا۔ مولانا آزاد نے قیاس سے کام لیا ہے تحقیقی بات نہیں ہے۔ مگر پنڈت دتاتریہ کیفی نے آجکل دہلی بابت ستمبر ۱۹۵۲ء میں ایک مضمون شائع کرایا جس میں غالب کی طرزِ خطوط نویسی کو غالب کی ایجاد تسلیم نہیں کیا۔ بلکہ منشی رامچندر کے ایک مضمون مطبوعہ رسالہ محبِ ہند جلد ۲۹ بابت دسمبر ۱۸۴۹ء و جنوری ۱۸۵۰ء سے اثر پذیری کا نتیجہ اور کامیاب تقلید کا نمونہ قرار دیا ہے۔ اس کے متعلق پھر کبھی سیر حاصل بحث کی جائے گی سرِدست یہی کافی ہے کہ ۱۸۲۵ء کی تحریر کی موجودگی میں یہ ثابت کیا جا سکتا ہے کہ منشی رامچندر کا مضمون غالب سے استفادہ کا نتیجہ ہے۔

المختصر یہ امورِ مذکورہ ہمارے نزدیک رابطۂ فرنگ میں جن کا

کلیات نثر ص ۵
کلیات نثر ص ۵ (ترجمہ)
کلیات نثر ص ۵ (ترجمہ)

تعلق تمام تر خاندانی اعزازات کی برقراری ہی سے نہیں بلکہ غالب کی معیشت سے بھی گہرا ربط ہے۔ اوران دونوں نے نفسیاتی طور پر ان کو متاثر کیا تھا۔ البتہ جدید آئین و ایجادات سے دلچسپی ان کی ترقی پذیر طبیعت اور جدت پسند فطرت سے مناسبت کے باعث ہے۔ وہ "خذ ما صفا دع ما کدر" کے اصول پر عمل پیرا تھے۔ انہوں نے "مے فرنگ" میں نفاست، لذت، بو، رنگ بہتر پایا۔ اس کے فریفتہ ہو گئے۔ اولڈ ٹام، فرنچ، شام پین، کاس ٹین، وغیرہ سے رغبت ہو گئی۔ اور "شراب قندی ہند" سے ہمیشہ نفرت رہی بلکہ اس کے مقابلہ میں شراب کشمیری کو بہتر خیال کرتے تھے:

غالب شراب قندی ہندم کباب کرد
زیں بعد بادہ ہائے گوارا کشید کرد
شراب قندی ہندوستاں دماغم سوخت
ز شیرہ خانۂ کشمیر آورند شراب

ان روابط کے سلسلہ میں بات پھر اسی مرکز پر آ جاتی ہے کہ غالب کی زندگی کے حالات زمانہ کی تاریخی رو سے متصادم ہوتے اور غالب کو کبھی کبھی اپنے بلند معیار سے نیچے اتر کر باتیں کرنی پڑیں۔ نہ صرف انگریزوں کی مدح سرائی بلکہ مسلمان اور ہندو رؤسا اور حکمرانوں کی شان میں قصیدہ خوانی بھی اسی منزل سے تعلق رکھتی ہے۔ کیونکہ وہ خود کہتے ہیں:

یک نامید زمن کہ در گفتار
مدحت ابلہ دوداس کنم

صاحبان دولت و حکومت کی مدحت سرائی اور قصیدہ خوانی میں جو وقت برباد ہوا اور جو قوت بیان ضائع ہوئی ان کا احساس بہتری اس پہ آخر عمر تک افسوس کرتا رہا۔ کلیات میں اپنی زندگی کا محاسبہ کرتے ہوئے لکھتے ہیں:

"در ہوائے کہ بال بالا خوانی زدہ ام و در دانیکہ
خود را بگدائی ستودہ ام، نیمۂ زاں شاہد با زیست
یعنی ہوا پرستی و نیمہ دیگرش آمیز نا ئیست یعنی باد خوانی
... شادم از آزادی کہ با سخن بیہودہ عشق باز ماں
گزاردستم، و داغم از آزمندی کہ دو سہ چند بکردار
دنیا طلباں، رمدح اہل جاہ سیہ کردستم" [1]

---

[1] کلیات نثر ص۱۱ و کلیات نظم ص۸

اب میں غالب کے برتے ہوئے انگریزی الفاظ کی فہرست پیش کرتا ہوں:

1.	TICKET.	ٹکٹ
2.	GOVERNMENT.	گورنمنٹ۔ گورمنٹ
3.	PENSION.	پنسن
4.	DIVISION.	کمشنری
5.	DOCTOR.	ڈاکٹر
6.	CAMP.	کمپ۔ کنپ
7.	AGREEMENT.	اگریمنٹ
8.	COLLECTORATE.	کلکٹری
9.	INCOME TAX.	انکم ٹیکس
10.	PARCEL.	پارسل
11.	TIFFIN.	ٹپن
12.	DEPUTY.	ڈپٹی
13.	COMMITTEE.	کمیٹی
14.	RAIL.	ریل
15.	REPORT.	رپورٹ
16.	AGENT.	ایجنٹ۔ اجنٹ
17.	POST PAID.	پوسٹ پید
18.	DEPUTY COMMISSIONER.	ڈپٹی کمشنر
19.	REPLY POST CARD.	ڈبل خط پوسٹ پیڈ
20.	MARTIAL LAW.	جرنیلی بندوبست
21.	BANK.	بنک
22.	REGISTERED.	رجسٹری
23.	GOVERNOR GENERAL.	حاکم اکبر۔ گورنر جنرل۔
24.	POCKET.	پاکٹ
25.	LIEUTENANT GOVERNOR.	لفٹنٹ گورنر
26.	PAMPHLET POCKET.	پمفلٹ پاکٹ
27.	BABU.	بابو
28	COPY.	کاپی
29	FRENCH.	فرنچ (کاغذ کا نام)
30.	NUMBER.	نمبر، ملبر

No.	English	Urdu
31.	COUNCIL.	کونسل
32.	FRAME. (PLATE)	فرمہ
33.	SECRETARY.	سکریٹری
34.	FRENCH.	فرنچ (شراب کا نام)
35.	CHAMPAIGNE	شام پین
36.	POLICE.	پولیس
37.	STAMP PAID.	اسٹامپ پیڈ
38.	DOUBLE TICKET.	ڈبل ٹکٹ
39.	GAZETTE.	گزٹ
40.	LORDS.	لاڑد۔ لارڈ۔ لاٹ
41.	SECRETARY.	سکرتر۔ سکرٹر
42.	SICK NUMBER.	سکھ لمبر (بزمرۂ بیمار)
43.	CERTIFICATE.	سرٹیفیکٹ۔ سارتی فکٹ
44.	LIQUOR.	لیکور
45.	TICKET.	ٹکٹ (ملاقاتی کارڈ)
46.	DEPUTY COLLECTOR.	ڈپٹی کلکٹر
47.	COMPANY.	کمپنی
48.	APPEAL.	اپیل
49.	ENGLISH.	انگلس
50.	POST.	پوسٹ (ٹکٹ چسپاں)
51.	PAID.	پیڈ (ٹکٹ چسپاں)
52.	STATION.	اسٹیس
53.	COURT OF DIRECTORS.	کورٹ آف ڈرکٹر
54.	REVENUE BOARD.	ریونو بوڑد
55.	RESIDENT.	ریسیڈنٹ۔ ریزیڈنٹ
56.	RESIDENCY.	ریسیڈنٹی۔ ریزیڈنٹی
57.	AGENCY.	ایجنٹی۔ اجنٹی
58.	AGENT.	ایجنٹ۔ اجنٹ
59.	DECREE.	ڈگری
60.	MAGISTRATE.	مجسٹریٹ
61.	ASSISTANT SECRETARY.	اسسٹنٹ سکرٹر
62.	CHIEF SECRETARY.	چیف سکرٹر
63.	PRESIDENT.	پریسیڈنٹ (پریسیڈنٹ)
64.	LONDON.	لنڈن
65.	ENGLAND	انگلینڈ
66.	COMMANDER-IN-CHIEF.	کمنڈر چیف
67.	POST MASTER.	پوسٹ ماسٹر
68.	STAMP.	اسٹامپ
69.	PERMIT.	پرمٹ
70.	COMMISSIONER.	کمشنر
71.	COURT.	کورٹ
72.	TELEGRAM.	تار برقی (ٹیلیگرام)
73.	FINANCIAL COMMISSIONER.	فینانشل کمشنر
74.	NOTE.	نوٹ
75.	CHEQUE.	چک
76.	SESSIONS JUDGE.	سشن جج
77.	EXTRA ASSISTANT.	اکسٹرا اسسٹنٹ
78.	BOX.	بکس
79.	HOSPITAL.	اسپتال
80.	GALLOWS.	گل (پھانسی)
81.	COSTAINE (?)	کاس ٹین (شراب)
82.	OLD TOM.	اولڈ ٹام (شراب)
83.	QUEEN'S POET.	کوئنس پوئٹ
84.	BRIGADIER.	بنگڈیر، برگیڈیر
85.	GENERAL.	جنرل
86.	INDIAN GOVERNMENT.	انڈیا گورنمنٹ
87.	BARRACK.	بارک
88.	MISS.	مس
89.	MISTER. (MR)	مسٹر
90.	TICKET. (PERMIT)	ٹکٹ (اجازت نامہ)
91.	STEAMER.	دخانی جہاز
92.	MATCH.	انگریزی دیاسلائی
93.	COUNCIL.	کونسل (باہمی مشورہ)

باقی [illegible] پر

"گنجفہ بازِ خیال"

(ایک تصوریہ)

رفیق خاور

یہ روشنیاں بعض دھیمی دھیمی، دھندلی دھندلی بعض بجھتی بجھتی اور کچھ ایسی جیسے وہ بجھ چکی ہوں یا کہر کے بوجھل پردے میں روپوش ہو چکی ہوں۔ یہ سلسلہ دور تک پھیلا ہوا۔ بہت دور، اس قدر کہ وہاں تک پہنچتے پہنچتے نگاہ آبلہ پا ہو جائے — کتنا دلچسپ اور عجیب ہے! وہ آخری قندیل۔ دیکھتے ہی دیکھتے اس کی لو کتنی تیز ہو گئی! اس کی حرارت سے شیشے پر جمی ہوئی نمی کتنی سرعت سے نیچے اترتی جا رہی ہے۔ ہو بہو وہی سماں جو میں نے کلکتہ کی ایک فرنگی تماشہ گاہ میں دیکھا تھا مگر یہاں صبح صادق کے مانند کھلتے رنگ کا اجلا اجلا پردہ سرکنے کا عمل اہبوطی ہے صعودی نہیں۔ جیسے اک نگارِ آتشیں رُخ کے تابناک چہرے سے ملاحت آمیز انگوری، سیمیائی آنچل، عزیدہ لغزیدہ مائل بہ نشیب ہو۔ تمازتِ آفتاب کی بدولت آبجو سے تمام دن کے ابھرتے ہوئے بخارات بھی تو کچھ کم طلسم آفریں نہیں جو پہنائے نظر میں کسی مہروش کے صندلی شانوں پر شبرنگ زلفہائے پریشاں کا سماں پیدا کر رہے ہیں۔

چاندنی چوک کی یہ دلآویزیاں کیونکر فراموش کی جا سکتی ہیں۔ میزاب نما نہر جیسے کسی نے دور تک سیال چاندنی بچھا دی ہو۔ شام کو انسان یہاں نہ آئے تو کہاں جائے۔ لو، قندیل پلک جھپکنے میں اور تیز، اس قدر خیرہ کن! کیونکہ بخارات کا ململ کی طرح باریک غلاف اب بالکل اتر چکا ہے اور روشنی اپنی پوری براقی کے ساتھ کسوت بلور کے شفاف سینے سے چھن چھن کر آنے لگی ہے۔ بارالہا! یہ کوندے کی لپک! جیسے جبریل امیں دفعتاً اپنی پوری الہامی وجاہت اور کر و فر سے آشکار ہوں۔ نغمہ! ہو بہو وہی! وہی ملکوتی جبیں! وہی ہالا ہوتی چہرہ! ایک پر تمکیں شعلۂ جوالہ، مجاز و حقیقت کے جمیل ترین امتزاج کی فروزاں تمثیل جیسے یکبارگی برس ہونے کو آئے لیکن اس کا یزدانی شکوہ وہی ہے۔ وہی منزہ معصومیت جس میں کثافت کا کوئی شائبہ نہیں۔ وہ پست دیوار جس کے عقب میں وہ اس قدر متانت سے جلوہ افروز ہے، اس کے پرتو جمال سے کیسی سنور گئی ہے! دیوار پر ہمارے نام کندہ! ان کی یکجائیگی میں کس قدر کیف ہے! ایک مقدس محراب پر ابدی ارتسام! یہ دیوار پر لکیریں جیسے مرمریں کف دست پر بیھد گر پیوستہ خطوط، یہ سبزۂ زنگاری۔ کچھ بھی نہ ہوں پھر بھی سب کچھ ہیں۔

یہ کیا طلسم تھا جس نے مجھے اس قدر مسحور کر دیا! میرے دوست حویلی کی چھت پر کنکوے اڑا رہے تھے۔ کیسے عجیب و غریب کنکوے تھے اور ہم کس ذوق و شوق سے حلقہ باندھ کر لاابالیانہ رقص کرتے، گاتے اور تالیاں بجاتے تھے۔ ایک ایک کر کے ڈور اپنے ہاتھ میں لیتے۔ اڑتی ہوئی پریزاد جیسی کنکیا کو طرح طرح کے پھیر دیتے اور بھاؤ بتانے کی ان گنت صورتیں پیدا کرتے۔ اس سے بے خبر کہ چھت کے نیچے گھر والوں پر کیا گزرتی ہو گی۔ اور جونہی اس حلقہ میں کھڑے کھڑے مجھے دور سے نغمہ کی جھلک دکھائی دی، جیسے یکلخت قدیم ایرانی کاریگروں کا ایک مجلّی برنجی طبق نظر کے سامنے جگمگا اٹھے، میں سب کو چھوڑ چھاڑ کر اس کی طرف ایک بے پناہ والہیت کے ساتھ دوڑ پڑا جیسے ایک نہایت قوی مقناطیس نے مجھے اپنی طرف کھینچ لیا ہو۔ وہ خاموشی، کم سنی تمکنت کی تصویر تھی۔ اسے دیکھتے ہی اُس نو مشقی کے عالم میں بھی بے اختیار کیا چست شعر منہ سے نکل گیا جیسے عین وقت پر روح القدس کی طرف سے فیضان ہوا ہو۔

خموشیوں سے تماشہ ادا نکلتی ہے
نگاہِ دل سے تری سرمہ سا نکلتی ہے

باقی غزل تو برسوں بعد جیسے بنی سو بنی مگر خلوص اور واقعیت نے مطلع میں جو رنگ پیدا کر دیا ہے، اسی کا حصہ ہے نغمہ سے پہلی

تمک جلال تھی۔ اس کی خموشی میرے لاُابالیانہ پن پر ایک متین سرزنش تھی۔ وہ میرے دل و دماغ پر یہ گہرا نقش ثبت کرکے نہ جانے کہاں چلی گئی، کن خلاؤں میں روپوش ہوگئی۔ لیکن کوئی خلا اسے جذب نہیں کرسکتا۔ وہ اب بھی جب چاہے سراپا۔ دہٗ اسرار سے نکل کر اسی سطوت و جلال کے ساتھ جلوہ گر ہوسکتی ہے۔ نغمہ مجھ سے دور نہیں ہوئی۔ وہ میری تھی، وہ ہمیشہ میرے ساتھ رہی اور زندگی کی مہیب پستیوں۔ فاتحانہ سربلندیوں۔ شدید سے شدید بحرانوں عظیم سے عظیم طوفانوں اور زبوں سے زبوں افتادوں میں میرے ساتھ رہی جیسے خود حسنِ مثالی کی شان کبریائی کائناتِ سفلی پر دائماً پرتو ڈالتی ہے۔ اسی طرح اس کا پیکر جمیل بھی میری ہستی پر پرتو فگن ہے۔ میری زندگی کے ہمیشہ دو دھارے رہے۔ نغمہ نے دفعتہً نمودار ہوکر اُن میں ایک اور زبردست دھارا ملا دیا۔ اس نے زیریں دھارے میں۔ میں اسے زیریں ہی کہوں گا کیونکہ گو یہ بظاہر اتنا نمایاں نہ تھا لیکن تھا زیادہ گہرا اور پرزور ـــــ ایک طوفانی کیفیت پیدا کردی جیسے قدرت نے اس کو دفعتہً ایک اور ہی قوت اور گیرائی عطا کردی ہو۔

مجھے خوب یاد ہے۔ اس دن اور اس کے بعد جب کبھی میں تاج محل گیا مجھے اس میں ایک اور ہی شان، اور ہی معنی دکھائی دیئے۔ مجھے اس میں نغمہ ہی نغمہ تحلیل نظر آتی تھی۔ اور اس کی تمکنت نے اسے متانت سے ماورا متانت، جمال سے ماورا جمال عطا کردیا تھا۔ اور تاج محل پر ہی کیا منحصر ہے، مجھے اپنے ہر فعل، ہر خیال، ہر لفظ اور قدرت کی ہر چیز میں یہی شان ارجمندی دکھائی دینے لگی۔ اب اس قندیل نے دفعتہً روشن ہوکر جو یہ کہربائی صورت اختیار کرلی ہے۔ تو اس سے روح میں پھر کس قدر تجلیاں پھوٹ رہی ہیں اور کتنے ہی تار تپ تپ کرلو دینے لگے ہیں۔ سرخ رنگ بھی کیا قیامت ہے۔ مجھے پھر یاد آیا۔ اس شعر پر نغمہ کی کیسی چھوٹ پڑ رہی ہے۔ ہاں ہاں نغمہ ہی کے شفق گوں چہرے کی چھوٹ:

نشہ ہا شاداب رنگ و ساز ہا مست طرب
شیشۂ مے سرو سبز جوئبار نغمہ ہے

اب کسی کو کیا معلوم کہ یہ سچ مچ کے نشے یا کنار جو محفلِ نا و نوش کا ذکر نہیں بلکہ شیشۂ مے کسی کے جمیل پیکر کی مبدل صورت ہے۔ جو نو برس کی عمر میں بھی سرو کی سی بلندی اور تجمل پیدا کرتی ہوئی نظر آتی تھی۔ اللہ اللہ! میرے نشے ـــــ جذباتی اور وجدانی نشے ـــــ اس کے مافوق البشر رنگ سے کیسے شاداب و سرشار ہوئے۔ اور ان کی مستیاں میری رگ رگ اور ریشے ریشے میں دوڑ دوڑ کر میرے اشعار۔ ان کی بحور۔ ان کے ترنم۔ ان کے لفظ لفظ میں کسی انتہائی شعریت کے ساتھ سرایت کرگئیں۔ اس اولیں احساس نے میرے دل و دماغ کے نہاں خانوں میں کیا کیا پُرکار یادیں چھوڑ دی ہیں:-

وہ فراق اور وہ وصال کہاں
وہ شب و روز و ماہ و سال کہاں
فرصتِ کاروبارِ شوق کسے
ذوقِ نظارۂ جمال کہاں
دل تو دل وہ دماغ بھی نہ رہا
شورِ سودائے خط و خال کہاں
تھی وہ اک شخص کے تصور سے
اب وہ رعنائیِ خیال کہاں

بس بس یہیں تک۔ اس غزل کا برا ہو۔ آدمی چلتا کس طرف ہے اور یہ اسے کھینچ کھینچ کر کہاں لے جاتی ہے۔ معاذ اللہ! میں یہ غزل لکھتے لکھتے بہک کر کہاں کا کہاں چلا گیا۔ یہ بھی میں نے کہنے ہی کو کہہ دیا تھا کہ "اب وہ رعنائیِ خیال کہاں"۔ ورنہ خوب جانتا ہوں میری شخصیت، میرے کلام کا کوئی ذرہ بے پر تو خورشید نہیں۔ اس میں نغمہ ہی کی بھرپور رعنائی کا تلاطم ہے۔

طبع انسانی بھی کیا طرفہ تماشہ ہے۔ یہ احساس تھا کب کا اور ادا کب ہوا۔ گویا میں اسے کتنے برس اپنے ساتھ لئے پھرا۔ اب کسی کو یہ بتاؤں تو وہ مجھ پر بے اختیار ہنس دے گا۔ کہے گا، سچ مچ سٹھیا گئے ہو۔ لیکن یہ راز تو میں ہی جانتا ہوں کہ جب قویٰ مضمحل ہوگئے اور عناصر میں کوئی اعتدال نہ رہا۔ تو کوئی کرشمۂ غیبی ہی سوتے دل کی تہوں میں خزیدہ احساس کو بروئے کار لے آیا۔ اب اگر اس میں بچپنے کے چنچل پن اور شباب کے شور و مستی کی بجائے بڑھاپے کی نڈھال انفعالیت نہ ہو تو اور کیا ہو!

ایک محبت ثبات پیدا کرتی ہے، دوسری بیزاری۔ نغمہ نے ـــــ میں اسے محبت کہوں یا وفاق روحانی ـــــ مجھے اس محبت کا کیف سرمدی عطا کیا جو ثبات پیدا کرتی ہے۔ یہ بھی اس کے "ماورائی" ...

ہونے کا عجیب کرشمہ تھا۔ یہ حسرت آمیز غزل اسی ہی کی تدوین ہے،

یار در عہد جوانی بہ کنار آمد و رفت
ہمچو عیدے کہ بہ ایام بہار آمد و رفت

یہ کیا لطیف درد تھا جو نغمہ نے مجھے عطا کیا اور روپوش ہوگئی۔ کیا خبر ظہوری کو بھی ایسا ہی تجربہ ہوا ہو اور اس نے میرے ہی دل کی کیفیت شعر کے پردے میں یوں کھول کر رکھ دی ہو۔

شد طبیب ما محبت۔ منقش بر جانِ ما
محنت ما، راحت ما، درد ما، آزار ما

اور رومی کی روح ابد الآباد تک خوش رہے جس نے یہ ترانۂ الہامی انشا کیا:

شاد باش اے عشق خوش سودائے ما
اے طبیب جملہ علتہائے ما

کچھ ان اشعار کا والہانہ کیف۔ کچھ احساس جبلی اور کچھ طبع زود رس اور تخیل تنگر فکاری کی کارفرمائی ـــــ یہ قصہ ہے تب کا کہ آتش جوان تھا۔ مجھے کبھی ان کی گہرائیوں میں ڈوب کر اس احساس کی ترجمانی کرتے ہی بن پڑی۔ کیا اچھا ہوا کہ اس احساس میں ان دونوں اہل دل اور میرے شعور کی روحیں یکجا ہوگئیں۔ یہ احساس میرے دل پر چھا گیا، میرا بن گیا، میں اسے اپنائے بغیر نہ رہ سکا۔ کیا مجال کوئی خیال ایک بار اپنی ندرت، مسائل حیات پر غور و فکر یا دوسروں سے اثر پذیری کے سبب ایک بار ذہن میں جاگزیں ہوجائے اور نطق کے سانچے میں نہ ڈھلے۔ چنانچہ یہ گراں مایہ احساس بھی لباس نغمگی سے آراستہ ہوکر رہا اور کس شان سے:

عشق سے طبیعت نے زیست کا مزا پایا
درد کی دوا پائی، دردِ لادوا پایا

اس میں "درد لادوا" کی رمز خفی اور کسک کو میرے سوا اور کون جانے؟ ہائے یہ شوریدگی! یہ مستی! اس نے مجھے کہیں کا نہیں رکھا۔ خوب یاد آیا۔ جب میں اور نغمہ آمنے سامنے کھڑے تھے۔ ایک تمام حسن، ایک تمام شوق۔ ایک سراپا تجلی، ایک سراپا نظارہ۔ اور ہم ایک خاموش تکلم سے اپنے واردات کو تمثیل کر رہے تھے تو میں ایسا محسوس کرتا تھا گویا قدرت نے مجھے ایک لباس فاخرہ پہنا دیا ہے۔ میں اتنا سربلند ہوگیا ہوں کہ میرا سر آسمان بوس ہے اور جسم کی گیرائی کہ تمام آفاق پر مستولی۔ خدا جانے یہ کیسا احساس تھا۔ ایک عجیب احساس۔ اور پھر عجیب تر یہ کہ میرے شعور میں کچھ ایسی ذکاوت۔ حواس میں ایسی تیزی اور تخیل میں ایسی برانگیختگی پیدا ہوئی گویا دفعتہً مجھ پر سینکڑوں دروازے کھل گئے۔ دل کی عمیق ترین تہوں سے خیال پر خیال شلالہ وار بلند ہوئے یہ کیوں ہوا۔ کیسے ہوا؟ آج بھی میری عقل اس سلسلہ میں میری رہنمائی نہیں کرتی کتنی عجیب بات ہے میں نے کاوش فکر سے تو کبھی ان خیالات کا ادراک کیا ہی نہیں تھا۔ نہ مجھ پر سچ مچ کوئی کیفیت طاری ہوئی اور نہ کوئی ایسے ارتسامات ہی تھے جو میں نے کبھی قبول کئے اور دل کے گوشے میں محفوظ کرلئے تاکہ انہیں در یا برد ہونے کے بعد پھر برآمد کروں۔ اگر کوئی یہ کہے بھی تو میں نہیں مانوں گا کہ ظاہری قویٰ نے اس حشر خیالات میں حصہ لیا۔ پھر یہ یک بیک نمودار کیسے ہوگئے؟ میں تو یہ سوچتے سوچتے عاجز آگیا ہوں۔ شاید ہم اُن اجرام سماوی کی طرح ہیں جو روشنی کے ایک سیمیائی غبار میں گردش کرتے ہیں۔ اس لئے جوں جوں ہم اس کے مختلف طبقات میں داخل ہوتے ہیں۔ کوئی طلسماتی پارہ دوچار ہوتا ہے۔ یا پھر یہ ستارہ ستارہ غبار شاید انسانی فطرت کے عالم اصغر میں پنہاں ہے، جو التزاماً عالم اکبر بھی ہے۔ اگر اسے غیب نہ کہوں تو اور کیا کہوں!

آتے ہیں غیب سے یہ مضامیں خیال میں
غالبؔ صریر خامہ نوائے سروش ہے

آج یہ پرانی یادیں پھر میرے دل میں رہ رہ کر کیوں ابھر رہی ہیں؟ ـــــ یاد آنے دو۔ یہ یادیں بہت لطیف ہیں۔ یہ میری تمام زندگی کا حاصل ہیں۔ محبت کیا ہے؟ نغمہ کی ملاقات نے مجھے سوچنے پر مجبور کردیا۔ کئی دن تک نہ کھیلنے کو جی چاہا اور نہ کہیں آنے جانے کو۔ میں اپنے آپ میں کھو گیا تھا۔ چاندنی رات کو برج مثمن کے پاس جہاں سے تاج محل کا گنبد نور اعلیٰ نور دکھائی دیتا تھا اور کائنات کے بقعۂ نور میں ایک اور جلوۂ نورانی معلوم ہوتا تھا۔ ایک گھاس کے تختے پر بیٹھ جاتا۔ اور سوچنے لگتا۔ چاندنی کی طرح صاف دھلی ہوئی محبت میں بھی کیا جادو ہے! دور جمنا کی ہکی ہکی، دھیمی دھیمی، گنگناتی ہوئی لہروں کی طلسمی آواز مجھے نغمہ کا خاموش تکلم معلوم ہوتی۔

ں نے محسوس کیا کہ محبت انسان کو کچھ اور ہی بنا دیتی ہے۔ وہ
س دنیائے آب و گل میں پابجولاں نہیں رہتا۔ اس کی روح
س دنیا سے رم نہیں کرتی۔ بلکہ وہ اس کی روح کو اپنے اندر جذب
رکے اس سے بلند تر ہو جاتی ہے۔ اس میں ایک زبردست ارتعاش
بیدا ہوتا ہے۔ جیسے اس کے جان و دل میں کسی نے برقی جوہر
بھر دیئے ہوں۔ اس کی روح میں ایک بالیدگی پیدا ہوتی ہے۔
وہ اپنے پہلو میں زندگی کی ایک نئی دھڑکن محسوس کرتا ہے۔ اور
پنے آپ کو یزدانی قوتوں کا مظہرِ اتم تصور کرنے لگتا ہے۔
۔ رپھر یہ ذوق و شوق کتنا جانگسل، کتنا جانگداز ہے! میں نے
نغمہ سے جدا ہو کر ایسا محسوس کیا گویا میں اپنے آپ سے بیگانہ ہو گیا
تھا۔ اور میرے دل میں ایک خلش پیدا ہوئی۔ یہ خلش رفتہ رفتہ
جاوداں ہو گئی۔ نہیں یہ شروع ہی سے جاوداں تھی۔ یہ تو ایک
ایسی رود بار ہے جو اپنے اطراف و جوانب سے مختلف النوع زریں
و نقرئی پارے اور لعل و جواہر جمع کرتی اور پاکیزہ چکنی مٹی سے آمیز ہو کر
خبر نہیں کیسے کیسے دلکش اور حسین قالب اختیار کرتی ہے۔ اس نے
میرے تخیل کی دنیا میں کیا کیا رنگا رنگی پیدا نہیں کی ہے۔

رونق ہستی ہے عشق خانہ ویراں ساز سے
انجمن بے شمع ہے گر برق خرمن میں نہیں

کب سے ہوں کیا بتاؤں جہانِ خراب میں
شبہائے ہجر کو بھی رکھوں گر حساب میں

دل ہی تو ہے نہ سنگ و خشت درد سے بھر نہ آئے کیوں
روئیں گے ہم ہزار بار کوئی ہمیں ستائے کیوں

تنہا تیری ملاقات میرا سب سے بڑا المیہ تھی اور سب سے بڑا
ربیہ بھی۔ تو میرے ذہن پر حسن مثالی بن کر کچھ اس طرح نقش ہو گئی
رمیں اور کسی پیکر جمال سے مطمئن نہ ہو سکا۔ تیرے مثیل کی تلاش
ایک مستقل محرومی اور لب تشنگی کا باعث ہوئی۔ میری اپنی رفیقۂ حیات
اہرلو بیگم، ہزاروں میں ایک ہو، پھر بھی کیا ــــ وہ نغمہ کی مثیل
نہیں ہو سکتی۔

سوچتا ہوں یہ خواب اور شبہائے ہجر کا ذکر محض تقاضائے
بیاں سے ہوا۔ ورنہ حقیقتاً ہجر کی ایک مستقل رات ہے اور وہ
بیداری جس میں محبوب سے ملاقات ہو ایک جاودانی خواب
جس میں وہ دوبارہ ملاقات کا وعدہ کر کے رخصت ہو جاتا ہے!

ہر چند نغمہ سے دید و وادید قبات آشنانہ ہوئی پھر بھی
قدرت اس کا بدل بن گئی۔ اس کے رنگا رنگ جلوے اس کا عکس
پیش کرنے لگے اور ان میں باوجودِ مغایرت ایک شانِ وحدت
منعکس ہوئی۔ کائنات کے ذروۂ اقصیٰ پر ایک التہابی مجسمہ نصب
ہو گیا جس کے پاؤں دنیائے آب و گل کی قدم گاہ پر متمکن تھے۔ یہ
مجسمہ نغمہ ہی کا بروز تھا۔ آخر یہ کائنات ایک "ایندی آتش"[1] کا فروغ
نہیں تو اور کیا ہے؟

اب پھر وہی طلسم! ایک وجد۔ ایک استغراق کی لہر پھر مجھے اپنے
جسمانی حدود سے پرے لے گئی۔ وہی عشق کی والہانہ شورش جو عاشق
کو صوفیا کی مستی و حال سے روشناس کرتی ہے۔ ہاں ہاں یہ صوفی
بھی تو دیوانگانِ عشق ہی کے ہم طبع ہیں۔ انہیں سماع اور حال کی طلب
کیوں ہے؟ اس لئے کہ وہ ایک محیط اعظم میں پہنچ جائیں۔ کائنات؟ دل؟
کس کا محیط؟ شاید دونوں کا۔ اس کا سبب؟ دنیائے مجاز سے گریز؟
نہیں۔ بلکہ ایک وسیع تر عالم کا ادراک۔

ہاں تخیل کی لہر مجھے دور لے جاتی ہے۔ وہ دیکھو ایک طلسمی
منبع نور سے تجلی کی ایک سیل جاری ہوئی۔ جو لگاتار بہے جاتی ہے۔
یہ جوہر۔ یہ عرض۔ یہ سبزہ۔ یہ گل۔ یہ ابر۔ یہ "پری چہرہ لوگ" تمام
اسی کے مظاہر ہیں اور اس سیل تجلی کے اجزا ہستی کیا ہے! ایک بہاؤ۔
اس بہاؤ کی روح وحدت ہے، کثرت نہیں۔ میں تو یہ کہتے کہتے
تھک گیا اور شاید آخری دم تک کہتا رہوں گا کہ

نہ ہو بہرزہ بیاباں نوردِ وہم وجود
ہنوز تیرے تصور میں ہیں نشیب و فراز

میں نے اسی بہاؤ میں بہنا شروع کیا۔ یہ مجھے نغمہ ہی کے وجدانی
اثر کی ودیعت تھی۔ میں نے دیکھا ہی نہیں۔ یہ خیرہ کن قندیل
مدھم ہوتے ہوتے بجھ گئی۔ اس کی روشنی نے گرد و پیش کے بخارات
سے کتنے ہیولے پیدا کئے۔ اور اب وہ کہاں ہوا ہو گئی؟ یہ ادھر
پاس ہی ایک اور "چراغ تہ داماں" سے بخارات کا پردہ ہٹ گیا
لیکن "موجہ ہائے دود" اسے بدستور لپٹی ہیں۔ اس سے نظریں
ہٹا ہی لی جائیں تو بہتر ہے۔ میں بھی کیا "خفقانی" ہوں ان تابناک
قنادیل سے، موہوم باتوں کے تار و پود سے "افسانہ ہائے غیر مکرر"

[1] فروزینۂ ایندی آتشم ــــ غالب

طرح دیتا ہوں۔ یہ تاج ہے۔ یہ قلعہ اکبر آباد ہے، یہ جامع مسجد، یہ چاندنی چوک، یہ قلعہ شاہجہاں۔ اور یہ میرا اپنا کلبۂ احزاں! دنیا اور اس کے تماشہ ہائے روز و شب سے دلبستگی — فانوسِ خیال میں روشنی اسی کی شرمندۂ احساں ہے۔ کبھی انسانی تمناؤں کے چراغ بھی بجھے ہیں۔ یہ تو آخری دم تک اس کے نہاں خانۂ دل میں روشن رہیں گے۔ آج جب "گنجفۂ بازِ خیال" نئے نئے ورق الٹ الٹ کر "نیرنگ یک بت خانہ" کا منظر دکھا رہا ہے، مجھے سالہا سال کے فراموش شدہ افسانے یاد آتے ہیں۔ کتنی ہی آرزوؤں اور حسرتوں کے تصور میرے ذہن میں رقص کرتے ہیں۔ ہائے! اس "کافرِ ادا" اور "رہزنِ تمکین و ہوش" گلنار سے "رسم و رہِ شوق" جس کی وجہ سے امراؤ بیگم کے ساتھ اس قدر خلفشار پیدا ہوا۔ میں چاہوں بھی تو اِن جنت نگاہ اور فردوس گوش عشرتوں کو صفحۂ خاطر سے محو نہیں کر سکتا۔ میں نے اس وقت بے محابا کہہ دیا تھا اور بعد میں بھی بار بار زبان پر لاتا رہا۔

ہزاروں خواہشیں ایسی کہ ہر خواہش پہ دم نکلے
بہت نکلے مرے ارمان لیکن پھر بھی کم نکلے

وہ زبان پھر کہاں سے لاؤں جس نے کبھی اس پارۂ سحر کو پردۂ غیب سے منصۂ شہود پر جلوہ گر کیا تھا:

کس کو سناؤں حسرتِ اظہار کا گلہ
دل فردِ جمع و خرچ زباں ہائے لال ہے

مگر میں پوچھتا ہوں۔ عشرتِ شباب سے گریز کیوں؟ یہ تو عین مقتضائے حیات ہے اور گرمیٔ طبیعت جویائے نشاط۔ یہ چند در چند خوشگوار لمحے! وہ حریفانِ خود آرا سے ذوق کا مجری۔ عشرت کے یہ بحرانی لمحے کس قدر رنگین تھے۔ جب حسن و رعنائی کے یاسمن زار پوری آب و تاب سے جلوہ فروش تھے۔ نشۂ فکر کے عالم میں اس لطافت نے شوخیٔ تحریر کی بدولت صفحۂ قرطاس پر شعر کا کیسا نادر پیکر اختیار کیا۔

بخشے ہے جلوۂ گل ذوقِ تماشا غالب
چشم کو چاہیے ہر رنگ میں وا ہو جانا

میں اس سرچشمۂ فیض، نغمہ کا احسان کیسے فراموش کروں کہ جب گلنار کی بالا نشیں رعنائی مجھے نہ جانے کن گہرائیوں میں لے گئی تو — اب ان بے پایاں نوازشوں کا تذکرہ ہی کیا جن سے میری حیات ابد تک زیرِ بار رہے گی۔

لو، وہ اس سرے کی قندیل پھر یکبار کیسے چمک اٹھی۔ اس کی وہ سرخ لو فانوس بلوریں اور بخارات سے چھن چھن کر آتی ہوئی کتنی بالیدہ معلوم ہوتی ہے۔ ساری قندیل ایک دہکتا ہوا سا انگارہ۔ ایک دہکتا چہرہ! اتنا کشادہ، اتنا باوقار، ملکوتی اور جلیل۔ جیسے گلاب کا تمتماتا ہوا پھول! میری ہی طرف عناں گسیختہ رواں ہے۔ یہ کہیں قریب ہی ہے۔ بہت ہی قریب! دیوار کے اس طرف، نہیں ادھر۔ یہ بھبوکا، جو کسی دھند میں گھرے ہوئے گوشے سے نکلتا ہوا معلوم ہوتا ہے۔ ایک شعلۂ جوالہ! یہ لو، یہ زبانِ آتشیں، اس قدر قریب۔ جیسے یہ میری نظر، میرے دل سے خروج کر رہی ہو! کوئی سمجھے، انفس و آفاق مدغم ہو گئے ہیں اور ان کے مطلع پر ایک برق تجلی ضو فگن ہے۔ قندیل!؟ نغمہ!؟ کون؟ کون؟ ٭

غالب کا رابطۂ فرنگ — بقیہ صفحہ ۳۵

94. MAJOR.	میجر	99. PHOTOGRAPH. (PHOTO)	عکس کی تصویر۔ آئینی تصویر
95. PIECES OF STAMP. (TICKET)	اسٹامپ کے ٹکڑے	100. (P.M.G) POST MASTER GENERAL.	بڑا پوسٹ ماسٹر
96. DOUBLE.	ڈبل	101. GOVERNOR GENERAL.	گورنر جنرل
97. CHAPPY.	چاپی (کھودا، شگاف دار	102. GOVERNOR.	گورنر
98. MAGAZINE.	میگزین (بارود خانہ)	103. COLONEL.	کرنل

ماہِ نو کراچی نومبر ۱۹۷۳ء

فکاھیہ :

"اِک بزرگ ہمیں ہم سفر ملے"

(غالب انگلینڈ میں!)

قربان حسین

بالی ووڈ یعنی فلمیں — یا انگلینڈ — ہر وہ جگہ جہاں مرزا نوشہ اور ان کے ہواخواہوں کا گزر ہو — غالب کی دسترس کہاں نہیں! اس لئے کہ خانۂ مجنونِ صحرا گرد بے دروازہ تھا اور دماغ وحشت فرد کی کوئی تدبیر نہیں جبکہ جلتے ہوں خود بخود میرے اندر کفن کے پاؤں۔
"جاوید نامہ" میں اقبال جلیلہ حلاج و غالب و قرۃ العین طاہرہ کو یاد کیجئے کہ نشیمن بہشتی نگرد یدند و بگردش جاوداں گرائیدند غالب کے اپنے الفاظ میں —— "وحشت پہ میری عرصۂ آفاق (افلاک!) تنگ تھا" کچھ تعجب نہیں کہ عالم ارواح اور حورانِ خلد (جس میں لاکھوں .....) سے بیزار ہو کر یہ جنونِ جولاں پھر عالمِ اجسام کی طرف آنکلا ہو — اس در پہ نہیں بار تو امریکہ ہی ہو آئے! اور وہ ایک بزرگ کی شکل میں انگلینڈ کے حال ساکن، قربان حسین کے ہم سفر ہوئے ہوں۔ اس نزولِ ثانی کا ثبوت مدیر "ماہِ نو" کے اس شائبہ سے بھی بہم پہنچتا ہے کہ اس سفر بے سنگ و میل اور حضر بے برگ و ساماں میں مضمون نگار کے ساتھ ساتھ مرزا کے شریک سفر اور "وقف ہم زبانی" رہے — اصل شہود و شاہد و مشہود ایک ہے — بہر حال یہ سب ماجرا "اڑتی سی اک خبر ہے زبانی طیور کی" —— (م۔خ)

دل قدرے اداس تھا سوچنے لگا کیا کروں کئی خیال آئے۔ کبھی سوچا کافی شاپ میں چل کر بیٹھوں۔ کبھی یہ کہ کوئی فلم دیکھ لیا جائے مگر کوئی تجویز بھی نہ جچی پھر سوچا کسی دوست سے ملنے جاؤں، مگر وسوسہ ہوا کہ اس سے ملنے گئے اور وہ نہ ملا یا اس کا کوئی اور پروگرام ہوا تو سخت کوفت ہوگی۔ اس حیص بیص کے بعد فیصلہ کیا کہ چلو انٹرنیشنل ایئرپورٹ ہی چلا جائے جہاں تازہ واردان بساطِ ہوا کو دیکھیں اور نت نئے چہرے، رنگا رنگ لباس۔ دیس دیس کے لوگوں کو دیکھ کر وقت گزرنے کا موقع ملے گا۔ یوں ہو سیر و تماشا۔ سو وہ کم ہے ہم کو۔
اپنے پاس سن ترین کی وہی پرانی "فورڈ" تھی۔ اس ہمدمِ دیرینہ کا ساتھ چھوڑنا دل کو گوارا نہ ہوا، اس لئے اسی پر سوار ہو کر چل نکلے۔ سڑک کی اونچ نیچ اور گڑھوں سے بچتے بچاتے، ہچکولے کھاتے کسی نہ کسی طرح ایئرپورٹ تک پہنچ ہی گئے اور گاڑی کو "پارکنگ لاٹ" میں کھڑا کر دیا۔
سوچا گیلری سے نظارہ اچھا رہے گا۔ ہر دو منٹ بعد کوئی نہ کوئی جہاز آتا جاتا ہے۔ امریکی، انگریز، فرانسیسی، جرمنی، اطالوی ہوائیں۔ غرض قدرت کے کارخانے کے ہر نمونے کو یہاں دیکھ سکتے ہیں۔ ہو سکتا ہے کوئی اپنے پیارے وطن سے بھی آیا ہو۔ اس سے مل کر پوچھیں: "کس حال میں ہیں یارانِ وطن؟" اپنی کہیں گے، ان کی سنیں گے اور کچھ نہیں تو گھر کے واقعات سے ہی آگاہی ہوگی — سو ہم جیسے دور افتادوں کے لئے یہ بھی کیا کم ہے۔
چلتے چلاتے جاپان ایئرلائن کی طرف جا نکلے۔ ہر طرف رنگینی، گلکاری، نشاط اور خوش وقتی نظر آئی۔ یہ مشرق ہی تو تھا۔ دیکھ کر خاکِ وطن یاد آگئی۔ ابھی دور نہیں گیا تھا کہ دور ایک سیاہ ٹوپی نظر پڑی۔ دل خوشی سے دھڑکنے لگا۔ سوچا ضرور کوئی پیارا ہم وطن ہے۔ مگر نزدیک جا کر دیکھا۔ یہ آجکل کی سیاہ قراقلی تو نہ تھی — مگر اس کی بزرگ کلاہ پاپاخ ضرور تھی۔ یہ ایک نووارد بزرگ تھے۔ بڑھ کر "السلام علیکم قبلہ آداب عرض کرتا ہوں!" داغ دیا۔ بڑے میاں نے میرے سراپا کو دیکھا اور جواب میں کہنے لگے میاں لڑکے، تم بڑے بذلہ سنج ہوتے ہو

لباس کا بھی خیال نہیں رکھتے۔ نہ سر پر ٹوپی، نہ چھوٹوں کا پاس نہ بڑوں کا ادب۔ میں کچھ محجوب ہو گیا اور مسمسی صورت بنا کر کہا "معذرت کا خواستگار ہوں" بولے "خیر، جانے دو اس بات کو۔ مگر یہ تو بتاؤ تم کون ہو اور کیا شغل ہے؟" عرض کیا "حضرت، مجھے قربان کہتے ہیں۔ طلبِ علم کے لئے یہاں آیا ہوں"

"خوب، خوب، نام بھی خوب ہے، قربان جائیے۔ مگر کہاں سے آنا ہوا؟"

"پاکستان سے"

"خوب۔ بلکہ خوب تر شد"

"حضور نے اِدھر کیسے تکلیف فرمائی؟"

"بھئی بہت زمانہ سے جنت کی فضاؤں میں رہا ہوا تھا، دل اچاٹ ہو گیا۔ وہی حور وہی قصور، میں سیلانی جیوڑا ٹھہرا، سوچا پھر سیرِ دنیا کے لئے نکل چلوں۔ رضواں سے بہت ہی لڑائی ہوئی مگر آخر کار اس نے دو دن کی رخصت دے ہی دی۔ میاں، یہ تو جانتے ہی ہو کہ آسمان کا در کھلے تو یہاں کی ہر چیز نظر آتی ہے۔ میں بھی دریچے میں سے جھانکا کرتا تھا۔ ایک مقام پر بہت بڑے مینار اور بڑی چہل پہل نظر آئی۔ میخانہ اور ساقی بھی ساتھ ساتھ دکھائی دئے۔ 'مسجد کے زیرِ سایہ خرابات چاہیئے' میں پہلے ہی کہہ چکا تھا۔ غور کیا تو ایک جال سا بچھا ہوا نظر آیا۔ ریل کو تو پہچان لیا مگر اور نئی سواریاں — کیا برق رفتار نظر آئیں اور کیا کیا کلیں کہ دیکھ کر اچنبھا ہو۔ مگر دانایانِ فرنگ سے کچھ بعید نہیں۔ میدان بھی خوب دکھائی دیئے، کھیل تماشے بھی کیا کیا عجوبہ نکلے ہیں۔ ایک جگہ ٹوکیو نظر آیا۔ حدِ نظر تک بتیاں، وہ کنگرا والی لمبی چوڑی سڑک، رات کی روشنیاں — گویا ایک زار چراغاں تھا سر بسر۔ کبھی قاہرہ کا جمال دکھائی دیا۔ ہائے وہ عالم کہن!

مجھے اب یہ جاننے کی ضرورت نہ تھی کہ یہ خضر کی صورت والے بزرگ کون تھے۔ حضرت غالب کی معیت میں میں آگے ہی بڑھتا کہ کہنے لگے "ہم نے تو اس دنیا کا بس دور ہی سے نظارہ کیا ہے۔ جی چاہتا ہے نزدیک سے بھی دیکھوں۔ تم یہاں کافی عرصہ سے رہتے ہو، ضرور بتاؤ گے کہ کون کون سے مقامات دیکھنے چاہئیں۔"

عرض کیا "قبلہ بجا ارشاد ہے۔ مگر یہ تو فرمایئے کس کس جگہ کی سیر کا شوق زیادہ ہے۔ یہاں تفریح کا کیا ٹھکانہ۔ سیر کی جگہوں کی کمی نہیں۔ ادبی شوق ہو تو دارالمطالعہ جگہ جگہ موجود ہیں۔ عجائب خانہ بھی ہے، مگر پہلے میرے غریب خانہ پر تشریف لے چلیں تو عین کرم ہو۔"

معاملہ طے ہو گیا اور میں حضرت کو لے کر اس پرانی فورڈ میں آن بیٹھا۔ چند میل کی مسافت کے بعد گھر آ گیا۔ دروازہ کھولا اور حضرت کو اندر لے گیا۔ فرمانے لگے "ہاں میاں تم نے کہا تھا کسی نے میری غزلیں گائی ہیں۔ ہاں وہ کیا چیز ہوتی ہے ریکارڈ؟ تو انہیں سنواؤ تا جو فردوس گوش بھی میسر ہو۔ کیا یہ ریکارڈ سنائے گی؟"

میں مسکرایا "نہیں حضور، سہو ہوا یہ تو ٹائپ رائٹر ہے۔ اس اجمال کی تفصیل پھر عرض کروں گا۔ سرِ دست یہ ارشاد ہو کہ آپ پئیں گے کیا! چائے یا کافی؟"

"بھئی پینے کی جو بھی چیز ہو پی لیتا ہوں۔ تم جب ساقی گری کی شرم کرو گے تو مجھے بھلا کیا عذر ہو گا۔"

میں سمجھ گیا کہ میاں کچھ نہیں سمجھے اور اپنے ذہنی مشروب کا خود ہی سرور لیتے رہے اور جب میں نے جگ بھر کر کافی سامنے رکھ دی اور حضرت نے چسکی لینی شروع کی تو گویا ہوئے "بھئی شئے عجیب معلوم ہوتی ہے۔ مگر کیا خاک مزا ہے۔ تم ہی اس کا کچھ لطف اٹھاتے ہو گے۔ کوئی ایسا شغل نہیں کرتے کہ یک گونہ بیخودی کا موجب بنے؟"

دست بستہ عرض کیا "حضور میں تو نرا زاہدِ خشک ہوں"

"تو میاں پھر اپنے کو کیوں زندوں میں شمار کرتے ہو؟"

"بس جئے جا رہے ہیں۔ ویسے بپاسِ خاطر والا نزدیک کے ہوٹل میں چلتا ہوں۔ تشریف لایئے اور عہدِ نو کے خانۂ سرور کو بھی دیکھئے۔ مگر ایک عرض ہے۔ یہ مقام ایسا ہے کہ جب تک یہاں کی وضع و قماش اختیار نہ کی جائے محفل کا لطف زیادہ نہ اٹھایا جائے گا۔ لوگ اجنبی سمجھیں گے، دور دور رہیں گے، تماشہ بن جائیں گے۔"

"ہاں بھئی یہ تو ٹھیک ہے، جیسا دیس ویسا بھیس۔ تو پھر کیا تجویز ہے؟"

"تجویز یہ کہ آپ میرا ایک سوٹ پہن لیں اسے پہن کر ادھر چلئے۔"

چنانچہ انہیں مغربی لباس پہنا دیا گیا۔ گھر سے نکل کر ہم نے "ایوشین" کے سنگم پر "حیات ہاؤس" کو انتخاب کیا۔ اس کا مالک کوئی ایرانی معلوم ہوتا تھا۔ یہ جگہ تھی بھی خوب۔ خواتین کا رنگین ہجوم، لباس میں ہر درجہ اختصار، نیم تاریک ایوانِ رقص۔ ہر کوئی ایک دوسرے

سے بے پروا اپنی ہی دھن میں مست کبھی اپنے سے بھی بے خبر۔ اور اُدھر ساقی بجلوہ دشمن ایمان و آگہی موجود تو ادھر مطرب بہ نغمہ رہزن تمکین و ہوش بھی۔ ڈھلتی دوپہر سے جو بزم نشاط شروع ہوتی ہے تو تاروں کے آخری جھلملانے تک برپا رہتی ہے۔ جو آتا ہے ایک خاص انداز دلربائی سے اور دیکھنے والوں کے دامانِ ہوش تار تار!

بہرکیف ہم بلاکشانِ محبت اس مقام تک پہنچ ہی گئے۔ بیٹھتے ہی حضرت بولے "میاں زبانِ فرنگ میں اس کی انواع و اقسام کو کیا کیا کہتے ہیں، یہ تو تم جانو۔ مگر کہو: لگا کے برف میں ساقی صراحی مے لا' اور جلد لا۔ اب یہاں پہنچ کر تاب و تواں رخصت ہوا چاہتے ہیں۔"

"ابھی لیجیے، حضرت۔"

ہمارے بیٹھتے ہی ایک حور اراضی کھٹ کھٹ کرتی، ہاتھ میں کاغذ قلم تھامے آن پہنچی۔ اس نے بھی لباس کا زیادہ تکلف مناسب نہیں سمجھا تھا۔ کہنے لگی "کیا خدمت کی جائے؟"

میں نے عرض کیا "کوئی بھی سرور آور شے لے آؤ۔"

"مگر کیا، وسکی، برانڈی، مارٹینی۔ رم۔ جن؟"

حضرت نے اس کے سراپا کا جائزہ لینے کے بعد فرمایا "بھئی خوب خوب نام ہیں۔ میں تو رم کو رم آہو سے پہچانا اور یہ جن بھوت بھلا کیا شراب ہوگی، ہم تو اولڈ ٹام پسند کرتے تھے۔ خالص انگریزی شے تھی، مگر اب نیا زمانہ ہے، جو بھی آ جائے۔"

"حضرت نام میں کیا رکھا ہے۔ میں تو اتنی ہی معلومات رکھتا ہوں کہ ان کے چند نام آتے ہیں۔ یوں اس ساقی کو بہلانے کے لئے اتنا کہہ دیتا ہوں کہ جو بھی لاؤ تیز عمل شے ہو۔" چنانچہ اس ہی طرح کہہ دیا۔

کچھ دیر شغل رہا۔ سرور گھٹنے لگا تو حضرت بولے "میاں اس جلوہ گر کو تو بلاؤ۔ کیا ہم اسے بلا سکتے ہیں؟"

"کیوں؟ کیا کوئی خاص بات کہنی ہے؟"

"میاں تم بھی عجب تماشہ ہو۔ اپنے آپ کو رندوں میں شمار کرتے ہو۔ نہ پیتے ہو نہ کافر اداؤں کی داد دیتے ہو۔"

عرض کیا "حضرت آپ کا پیشہ تو سو پشت سے سپہ گری رہا ہے۔ میں نے بھی اس شعار کو اختیار کیا اور بڑی پابندی سے کیا۔ بلکہ اب تو زندگی کا جزو ہو گیا ہے۔ مگر یہ جرأت آپ نے کبھی اس کی بابت آپ ہی کی بات دہرا دوں "کچھ طبیعت ادھر نہیں آتی"۔ خوف یہ ہے کہ چھوٹے میری ان حرکتوں سے کیا سبق لیں گے اور بڑے سنیں گے تو کیا کہیں گے۔ غرض ان اندیشہ ہائے دور و دراز میں عمر کٹ گئی۔"

"میاں ابھی تمہاری عمر ہی کیا ہے کہ مولوی صدر الصدور بنے جا رہے ہو۔ کچھ تو فریب آرزو دکھاؤ کہ زیست کا مزا پاؤ۔"

"خوب ارشاد ہوا۔" میں نے مسکرا کر داد دی۔

ابھی یہ باتیں ہو ہی رہی تھیں کہ ایک اور تمثالِ خوبی اُدھر آ نکلی۔ اس نے ساقی گری کی شرم رکھ لی اور حضرت کو جام بھر کر پیش کر ہی دیا۔ مسکرائی اور ادائے خاص سے لچکتی مچلتی جس تیزی کے ساتھ ادھر آئی تھی اسی تیزی سے نکل کر ایک دوسری میز کی طرف بڑھ گئی۔ حضرت کا سُرور اوج پر تھا اور مسکرا رہے تھے۔ کہنے لگے:

"بھئی بڑا لطف رہا۔ مگر اب کہیں اور چلنا چاہیئے۔ آدمی کو شہد کی مکھی بننا چاہیے — کہیں اور چل کر کسی اور جلوہ گاہ کی سیر کریں۔ کسی اور کے ہاتھ سے جام پئیں، سرور سے سرور پیدا ہو، قند مکرر کا مزا آئے —" مگر میں نے بات کاٹ کر کہا "حضور آپ ہی تو فرماتے ہیں۔

"ساقی گری کی شرم کرو آج ورنہ ہم
ہر شب پیا ہی کرتے ہیں مے جس قدر ملے"

اس پر حضرت پھر کچھ مسکرائے اور کہنے لگے "ہاں یہ بھی ٹھیک ہے مگر ساتھ ہی یہ بھی یاد رکھئے کہ

بلے مے کسے ہے طاقت آشوب آگہی
کھینچا ہے عجز حوصلہ نے خط ایاغ کا"

میں نے عرض کیا "جہاں تک پینے پلانے کے مسئلہ کا تعلق ہے کون کافر ہے جو آپ کی بات رد کرے۔ چلئے کہیں اور چلتے ہیں۔"

یہ کہہ کر ہم باہر آئے اور ائیر پورٹ کی دوسری جانب "ٹینڈربڈ" نامی میخانے میں پہنچے۔ یہاں بھی وہی عالم۔ نیم تاریک ایوان رقص و سرود مگر بدلا ہوا انداز، تیز تیز موسیقی اور مغربی رقص کی ساری کافرماجرا جلی و خفی حقیقتیں سامنے تھیں۔

اگلے وقتوں کی وضع پر بنی ہوئی برقی شمعیں روشن تھیں — مگر افسوس! پروانہ تھا نہ پتنگا، بس ایک شمع ہی رہ گئی تھی سو وہ بھی نیم سوختہ۔ اور جام بھی وہی مانوس نامانوس ناموں کے تھے۔ برتن، اولڈ کرو، سکاچ، مارٹینی، ٹکی لا آرج، شلر، اولمپک غرض ہر قسم کی

بیئر بھی موجود۔ وہ چھلکتے جام اور آنکھوں کے بن کہے مگر خوب سمجھے جانے والے پیغامات ہر قدم پہ، ہر طرف قہقہے، ہر جانب سرگوشیاں کن انکھیوں کے اشارے، مسکراہٹیں ۔۔ اسے جنت ارضی کہنے میں کسے باک ہوگا! جو خود سُر در کے چنگل میں تھے وہ تو خیر تھے ہی، جو صرف انہیں دیکھ ہی رہے تھے وہ بھی کم مگن نہ تھے۔ جولانی، امنگ، رقص لوک جھونک، تراوت، سادگی، پُرکاری ۔۔ کیا کیا نہ تھا۔ "چا چا" اور "ٹوسٹ" کی موسیقی کے درمیان زلفوں کا گھنیرا اندھیرا ۔۔ نیم سوختہ شمعیں۔

سوچتا تھا "منزلِ دل بھٹکے گا" مگر خیر دامن کشاں ایک طرف "گوشہ عافیت" میسّر آ ہی گیا اور ہم بیٹھے ہی تھے کہ "آدب" کرتی اور "کارلائقہ" دریافت کرتی ہوئی ایک جلوہ فروش بڑی رقص کرتی ایک لڑکی کے ساتھ تیرتی ہوئی ہمارے قریب آ پہنچی بڑھتا ہوا اندھیرا، بڑھتی ہوئی ہماہمی، تیز رفتار موسیقی، ہلکے سُروں پر رقص کرنے والوں کا کبھی قریب آنا، کبھی دور چلے جانا ۔۔ عجب سماں تھا۔ مجھے معلوم تھا کہ یہ محفل بادہ و، شب کو ایک بجے سے پہلے ختم ہونے والی نہیں ۔۔ اور اب وہ لمحہ بھی آ پہنچا تھا یعنی وداعِ جلوہ کی ساعت قریب تھی اور "خواب تھا جو کچھ کہ دیکھا، جو سُنا افسانہ تھا" بنا دینے والا اعلان بھی ہونے لگا۔ بساطِ ہوائے دل الٹنے لگی اور ہم بادلِ محزوں باہر آئے۔

•

دوسرے روز صبح تقریباً نو بجے بیدار ہوا۔ ناشتہ سے فارغ ہو کر شہر کا رخ کیا۔ وہی "ڈاؤن ٹاؤن" گویا اپنے علاقے صدر کی طرف نکل گئے۔ ہر شخص رواں دواں، زندگی کے دھارے پہ بہے چلا جا رہا تھا۔ تیز رفتاری، بڑے بڑے اسٹور، عالیشان عمارتیں۔ ہر قوم، نسل، رنگ، عمر اور وضع و ادا کی خواتین کا ہجوم۔ رومانی جوڑے بھی نظر آتے، دنیا و مافیہا سے بے خبر، ہاتھ میں ہاتھ دیئے چلے جا رہے تھے، کوئی دیکھتا تو وہ مسکرا دیتے۔ حضرت بھی ہمرکاب تھے۔ یہ سب کچھ دیکھتے چلے جا رہے تھے کہ ان سے رہا نہ گیا اور فرمانے لگے "عجب زندہ دل لوگ ہیں۔ دل پھینک۔ مگر تم نے اس میدان کی کتنی سیر کی؟"

عرض کیا "مجھے اس دنیا سے علاقہ نہ رہا ۔۔ وہی آپ کی بات:

مجھے اس سے کیا توقع بہ زمانۂ جوانی
کبھی کودکی میں جس نے نہ سُنی مری کہانی

اصل میں میں اس راہ پر آیا ہی نہیں"

"تو میاں پھر دعا کرو کہ یونہی دکھ کسی کو دینا نہیں خوب ورنہ

کہتا کہ مرے عدو کو یارب ملے میری زندگانی!"

اس پر میں اور تو کچھ نہیں مگر ہاں اتنا ضرور کہہ سکا "خدا اس دعا کو قبول کرے!" یہ بات ابھی ختم ہی ہوئی تھی کہ پھر ایک پیکرِ خوبی سامنے نظر آئی۔ لباس کے اختصار کا وہی عالم۔ حضرت بول پڑے "مَے نے کیا ہے حسنِ خود آرا کو بے نقاب"

"لیکن حضرت! شوق کو یاں اجازت تسلیم و ہوش تو ممکن نہیں!"

اس پر خوب ہنسے اور یونہی راستہ کٹتا چلا گیا۔ تھوڑی دیر میں بارش ہونے لگی۔ ایک دم تیز ہوا چلنے لگی اور ایسا لگا جیسے کسی جھکڑ نے مجھے اٹھا کر دیوار سے ٹکرا دیا ہے!

مگر یکدم چونکا۔ غور کیا تو معلوم ہوا یہ سب عالم رویا تھا، ایک خواب تھا حقیقت نما۔

ٹیبل پہ رکھا ہوا پانی کا گلاس گر کر ٹوٹ چکا تھا۔ پانی نے کتابوں، کاغذوں کو شل بور کر دیا تھا اور یہ سیل بے محابا اب میرے ہاتھوں تک آ پہنچا تھا! ✽

ستارۂ سحری*

(اسلام آباد)

سلیم خاں گمی

اقبالؒ نے کہا تھا: "کریں گے اہلِ نظر تازہ بستیاں آباد"
مگر آج پاکستان میں ایک نہیں، کئی تازہ بستیاں زیرِ تعمیر ہیں اور "آباد و شاد" کے عمل کا تسلسل وجہِ طمانیت ہی نہیں حیرانی کا سبب بھی ہے۔ قلب و نظرِ اِن معنوں میں حیران ہیں کہ ایک قوم اتنے مختصر سے عرصہ میں تعمیر و آبادی کے اتنے کٹھن مرحلے کیسے طے کر گئی اور کر رہی ہے۔ حقیقت ہے کہ اب پاکستان میں تازہ بستیاں آباد کرنے والے اہلِ نظر کی کوئی کمی نہیں ہے۔ وہ پریشانیاں جو دیدہ و دل کو پابندِ بلا کئے ہوئے تھیں ۱۹۵۸ء کے انقلابِ زریں میں ختم ہو گئیں۔ وقت نئی اور حوصلہ افزا بشارتیں لے کر آیا۔ انقلاب کے چار سال بعد آج بشارتیں سچائی کے نور سے فروزاں ہیں اور انہیں ایک دنیا اپنی آنکھوں سے دیکھ کر دنگ ہے۔ آفتاب آمد دلیلِ آفتاب۔

انقلاب کی مسرت افزا بشارتوں میں سے ایک بشارت قومی دارالحکومت کے قیام و تعمیر کی بھی تھی۔ آج یہ بشارت اسلام آباد کے روپ میں ہمارے سامنے موجود ہے۔ اگر بستی آباد کرنے والے اہلِ نظر کہلا سکتے ہیں تو تازہ شہر آباد کرنے والوں کو قوم کس طرح یاد کرے گی؟ قوم انھیں اہلِ نظر، اہلِ ایماں اور اہلِ ہمت کہہ سکتی ہے۔ صدرِ پاکستان محمد ایوب خاں اور ان کے رفقا یقیناً ان تینوں خوبیوں بلکہ تصوف کی زبان میں، ان تینوں "کیفیتوں" کے مالک ہیں۔ یقیناً ان خوبیوں اور کیفیتوں کے بغیر اسلام آباد کی تعمیر و تکمیل ممکن نہیں ہو سکتی تھی۔

اصل میں اسلام آباد ہماری نئی ثقافت کا مظہر ہے۔ ایک مظہرِ جمیل۔ یہ نئی ثقافت توانا بھی ہے اور اسلامی بھی، بالکل اسی طرح جس طرح اسلام آباد کے معمار قلبِ مومن بھی رکھتے ہیں اور عہدِ جدید کے تقاضوں کے رمز شناس بھی ہیں۔ اس دعوٰی کی تصدیق ہر وہ شخص کرے گا جو اسلام آباد کی تعمیر و تکمیل کے مرحلے اپنی آنکھوں سے دیکھ لے اور ان دیکھنے والوں میں اعلیٰحضرت شہنشاہ ایران اور فرمانروائے اٹلی ملایا جیسی ہستیاں بھی ہیں اور مشرقی اور مغربی پاکستان کے کسان اور طالب علم بھی۔

اسلام آباد خطۂ پوٹھوہار کے عین قلب میں واقع ہے۔ پوٹھوہار پاکستان کا وہ خطہ ہے جو صدیوں تک نئی اور پرانی تہذیبوں کا وارث، امین اور جولاں گاہ رہا ہے۔ اس خطے میں برف کے عہد کی ثقافت، پتھر اور دھات کے زمانے کے آثار، گیا ہستانی ثقافت اور کول، دراوڑ، آریائی، ایرانی، یونانی، باختری، منگول، ستعین غرض کوئی بیس ثقافتیں اپنے اپنے عہد میں پروان چڑھیں۔ آج یہی خطہ پاکستان کی اسلامی ثقافت کا مرکز ہے اور اسلام آباد اس خطہ کا مینو سواد اور آج شام و سحر تعمیر و تکمیل کے مرحلوں سے گزر رہا ہے۔

پاکستان کے لئے نئے قومی دارالحکومت کی ضرورت آزادی کے حصول کے ساتھ ہی محسوس ہو چکی تھی مگر پُر امن انقلاب سے پہلے اس احساس کو عملی جامہ نہ پہنایا جا سکا۔ نیم دلی کے ساتھ کوششیں ہوئیں مگر نیم دلی سے کبھی کوئی کام سرانجام نہیں پا سکتا۔ ماڑی پور، گڈاپ اور مضری کے مقامات کو قومی دارالحکومت کے لئے چُنا گیا مگر تعمیر کا مرحلہ کبھی نہ آیا۔ کراچی کے ساحلی شہر میں بکھری ہوئی عمارتوں میں مرکزی حکومت کے دفاتر قائم ہوئے، اور کام کرتے رہے مگر ان دفاتر کی عارضی عمارتوں سے چھٹکارا حاصل نہ ہو سکا۔ آخر اکتوبر ۱۹۵۸ء میں انقلاب آیا تو نئے عزم اور نئی ہمت کے چراغ بھی روشن ہوئے۔ "مردہ دلی اور پراگندہ خیالی کے اندھیرے دور ہوئے" اور اس طرح وطن تعمیر و ترقی کے ایک فیصلہ کن دور میں داخل ہوا۔

حقیقت یہ ہے کہ صدر ایوب نے ہی قومی دارالحکومت کے اس منصوبہ کی طرف پوری طرح توجہ دی جو دس سال سے گومگو کی حالت میں چلا آ رہا تھا۔ اس مسئلہ کا جائزہ لینے کے لئے فروری ۱۹۵۹ء میں آٹھ افراد پر مشتمل ایک کمیشن قائم ہوا جس کے چیئرمین میجر جنرل اے۔ ایم۔ یحییٰ خاں تھے۔ کمیشن کے ذمہ یہ کام تھا کہ وہ قومی دارالحکومت کی حیثیت سے کراچی کی موزونیت پر غور کرے اور اگر کراچی قومی دارالحکومت کے لئے موزوں نہ ہو تو کسی دوسری

* "ستارۂ سحری خرد سپج دیدارے مست" (غالب)

جگہ کی بابت غور کرے۔ کمیشن نے چار ماہ کے کافی غور و فکر کے بعد اپنی رپورٹ پیش کی کہ کراچی صنعتی و تجارتی اعتبار سے تو موزوں شہر ہے مگر قومی دارالحکومت کے تقاضے پورا کرنے سے قاصر ہے۔ کمیشن نے یہ بھی کہا کہ پاکستان کا کوئی بھی شہر قومی دارالحکومت بننے کے لئے موزوں نہیں ہے۔ چنانچہ کمیشن نے فیصلہ کیا کہ نیا وفاقی دارالحکومت الگ ہی تعمیر کیا جائے۔ اس غرض کے لئے راولپنڈی کے شمال اور شمال مشرق میں اسلام آباد کے رقبہ کو منتخب کیا گیا کیونکہ یہ رقبہ آب و ہوا، پیداوار، قدرتی وسائل، دفاع اور مواصلات کے اعتبار سے بھی پاکستان کا موزوں ترین علاقہ تھا جو اس مقصد کے لئے موزوں ہو سکتا تھا۔

لیجئے اب کچھ حال اس مقام کا بھی سن لیجئے۔ اسلام آباد کا رقبہ ڈھائی سو مربع میل کو محیط ہے۔ اس رقبہ کی سطح سمندر سے ڈیڑھ ہزار فٹ سے دو ہزار فٹ تک بلند ہے۔ اس کے شمال میں مرگلہ کی پہاڑیاں، شمال مشرق میں مری کی پہاڑیاں، جنوب مغرب میں شاہراہ اعظم اور جنوب میں لختراڑ رو ڈ واقع ہیں۔ آب و ہوا بڑی خوشگوار ہے۔ زیادہ سے زیادہ اوسط درجۂ حرارت ایک سو تین اور کم سے کم اوسط درجۂ حرارت اڑتیس درجے رہتا ہے۔ اسلام آباد کے رقبہ میں چار دریا — سواں، کورنگ، لینگ اور کس — بہتے ہیں۔ مرگلہ اور مری کی پہاڑیوں میں چشموں، آبشاروں اور جھرنوں کی کوئی کمی نہیں۔ یہاں تعمیراتی سامان بھی بخوبی مل جاتا ہے۔ ہر قسم کی سبزیاں، ترکاریاں بہ افراط ہیں۔ اشیائے خورد و نوش با افراط دستیاب ہوتی ہیں۔ غرضیکہ اسلام آباد کے علاقہ میں وہ تمام اوصاف موجود ہیں جو کسی قومی دارالحکومت کے لئے ضروری سمجھے جا سکتے ہیں۔

جون ۱۹۵۹ء میں صدارتی حکومت نے اسلام آباد کے رقبہ کو وفاقی دارالحکومت کے لئے موزوں قرار دئے جانے کی رپورٹ منظور کی اور اس کے بعد ستمبر ۱۹۵۹ء میں "فیڈرل کیپیٹل کمیشن" کے نام سے ایک ادارہ قائم کر دیا گیا۔ اس کمیشن نے اسلام آباد کے لئے "عظیم منصوبہ" اور "عظیم لائحۂ عمل" تیار کیا۔ اس غرض کے لئے مرکزی اور صوبائی حکومتوں کے ایک سو ماہرین نے باہم مل کر کام کیا۔ یہ ماہرین مرکزی اور صوبائی حکومتوں کے چھیالیس محکموں سے لئے گئے تھے اور دو کمیٹیوں میں تقسیم ہو کر الگ الگ اپنے کاموں کو مکمل کر رہے تھے۔ ان کمیٹیوں نے اسلام آباد کی تعمیر و تکمیل کے ہر پہلو پر ماہرانہ انداز میں اور بڑی تفصیل کے ساتھ غور کیا اور اپنی رپورٹیں پیش کر کے کام کو آگے بڑھایا۔

فروری ۱۹۶۰ء میں وفاقی دارالحکومت کے رقبہ کو اسلام آباد کا مبارک نام عطا کیا گیا۔ اور اسی سال مئی میں کمیشن نے ابتدائی عظیم منصوبہ تیار کیا جس پر صدارتی کابینہ کے اجلاس میں سوچ بچار کیا گیا۔ اس اجلاس کو اس اعتبار سے تاریخی اہمیت حاصل ہے کہ یہ اسلام آباد کی پہاڑی، شکر پڑیاں پر منعقد ہوا تھا، یعنی تعمیرِ نو کی شروعات ہوئی۔

یوں اسلام آباد کی تعمیر دس سال میں مکمل ہوگی۔ مگر تعمیری مرحلوں کو دو حصوں میں تقسیم کیا گیا ہے۔ پہلے پنجسالہ منصوبہ (۱۹۶۰ء سے ۱۹۶۵ء تک) کے مقاصد حسب ذیل رکھے گئے ہیں۔

(۱) پچیس ہزار ایکڑ اراضی کا حصول (۲) چھ ہزار سرکاری ملازموں کے لئے مکانات (۳) چھ ہزار سرکاری ملازموں کے لئے دفاتر (۴) دو سو بیس کمروں پر مشتمل پاکستان ہاؤس کی تعمیر (۵) اٹھانوے میل لمبی سڑکوں اور راستوں کی تعمیر و پختگی (۶) پچاس ہزار نفوس کی آبادی کے لئے آب رسانی (۷) پچاس ہزار کی آبادی کے مکانوں اور دوکانوں اور دفتروں کی آب نکاسی (۸) اٹھارہ ہزار ایک سو پچاس ایکڑ اراضی کی تزئین اور شجر کاری (۹) ایوانِ صدر، سپریم کورٹ اور پارلیمنٹ کی تعمیر (۱۰) سفارتی بستی کے دو سو ایکڑوں کی ترقی (۱۱) ساٹھ ایکڑ کے رقبہ میں چھوٹی صنعتوں کی تنصیب (۱۲) تعلیمی اور رفاہی اداروں (مدرسے، ڈاک خانے وغیرہ) کی تعمیر (۱۳) بجلی کی فراہمی (۱۴) اسلام آباد کے رقبہ کے کاشتکاروں اور زمینداروں کی متبادل آبادکاری۔

۱۹۶۰ء سے ۱۹۶۵ء تک کے پنجسالہ منصوبہ پر ان دو سالوں، ۱۹۶۰ء سے ۱۹۶۲ء تک میں جو کام ہوئے ہیں ان کا اجمالی ذکر بھی کچھ کم اہم نہیں ہے۔

اسلام آباد کے لئے اراضی حاصل کی جا چکی ہے۔ سرکاری ملازموں کی رہائش کے لئے چھ سو مکان بن کر تیار ہو چکے ہیں۔ چھ سو مکانوں کی اس بستی کو "آب پارا" کا نام دیا گیا ہے۔ آب پارا میں بجلی اور پانی کا نظام مکمل ہے۔ یہاں تار گھر اور ڈاک خانہ کام کر رہے ہیں۔ اس بستی کی آٹھ دوکانیں بھی تعمیر ہو چکی ہیں۔ محکمۂ امداد باہمی نے اپنا سٹور یہاں قائم کیا ہے اور محکمۂ صحت کی طرف سے شفاخانہ بھی موجود ہے۔ بچوں کے لئے سکول اور پارکوں کا اہتمام ہو چکا ہے۔ غرض آب پارا میں زندگی کی ہر آسائش فراہم ہو چکی ہے۔ ایک ہزار چار سو پندرہ مکانوں کی تعمیر عنقریب مکمل ہو جائیگی۔

سرکاری ملازموں کے لئے دفاتر کی منصوبہ بندی جاری ہے "پاکستان ہاؤس" کی تعمیر کے علاوہ اور ایک اعلیٰ درجہ کے ہوٹل کی تعمیر بھی جلد مکمل ہو جائے گی۔ اس ہوٹل کا رقبہ تقریباً ساٹھ ہزار مربع گز ہوگا۔ اس کی پانچ منزلیں رکھی گئی ہیں جن میں سے تین منزلیں تعمیر بھی ہو چکی ہیں اور چوتھی منزل کا کام جاری ہے۔ معلوم ہوا ہے کہ اگر ضرورت پڑی تو اس عمارت کی چھٹی منزل بھی تعمیر کی جائیگی۔

سڑکوں کی تعمیر کے لئے زمین ہموار ہو رہی ہے۔ "نیشنل پارک روڈ" پر کام مکمل ہو چکا ہے۔ دریائے کورنگ پر پل کی تعمیر ۱۹۶۳ء میں مکمل ہو جائے گی۔ اسلام آباد میں چار بڑے پل بھی ہوں گے جن میں سے ایک دریائے کورنگ کا پل ہوگا۔ مرگلہ جیب روڈ پر بھی کام ہو رہا ہے اور اب تک اس سڑک کے بیس میل مکمل ہو چکے ہیں۔ آب پارک کی گلی کوچوں، راستوں اور ملحقہ سڑکوں پر جو کام ہو رہا ہے اس کے جلد مکمل ہو جانے کی توقع ہے۔

سید پور اور نور پور شاہاں کے آبی ذخیرے یہاں کا خاص مرکز ہیں جن سے کام لیا جائے گا۔ شکر پڑیاں کی پہاڑی پر جو آبی ذخیرہ زیرِ تعمیر ہے وہ تکمیل کو پہنچنے والا ہے۔ چنانچہ اس آبی ذخیرہ میں ساڑھے چار لاکھ گیلن پانی جمع رہے گا اور اسلام آباد کے بعض ذیلی حلقوں میں پائپ لائنیں بچھائی جا رہی ہیں، اس طرح ہر جگہ صحت بخش پانی پہنچ سکے گا۔

اسلام آباد کی تزئین اور شجرکاری پر بھی توجہ دی گئی ہے۔ جاپان کے ایک ماہر "کیموکونڈو" نے "نیشنل سپورٹس سینٹر" کی تعمیر، تزئین اور منظر طرازی کے لئے ایک منصوبہ تیار کیا ہے۔ اس سلسلہ میں کھیل کے میدان، بچوں اور عورتوں کے لئے پارک، گولف کے میدان ہوں گے۔ ایک مصنوعی جھیل، چمن زار اور کشتی رانی کے کلبوں کے لئے بھی خاکے تیار کئے گئے ہیں۔ شکر پڑیاں کی پہاڑی پر مجوزہ باغوں کے لئے زمین ہموار کر لی گئی ہے۔ جس جگہ پر صدر ایوب اور ان کی کابینہ نے اسلام آباد کے ابتدائی عظیم منصوبہ پر غور و خوض کیا تھا وہ جگہ اب ایک تاریخی اہمیت اختیار کر گئی ہے اور اب وہاں پھول کھلتے نظر آتے ہیں۔ اس پہاڑی کے ایک سو ایکڑ رقبہ پر شجرکاری کا کام ختم ہو چکا ہے۔ اب تک پانچ ہزار آٹھ سو ستر ایکڑ رقبہ میں پودے لگائے جا چکے ہیں۔ اسلام آباد میں اس وقت دو لاکھ پودے بالکل تیار ہیں۔ اسلام آباد کے جس پودگھر سے پودے لئے جاتے ہیں وہ خود کافی بڑا ہے یعنی تیس ایکڑ رقبہ میں پھیلا ہوا ہے اور اس میں ایک لاکھ اور پودے شجرکاری کے لئے تیار ہو چکے ہیں۔ راول جھیل، پرانی مری روڈ اور ملحقہ راستوں پر بھی باغ لگائے جائیں گے، چنانچہ اس غرض کے لئے زمین ہموار ہو رہی ہے اور یہ جگہ عنقریب لالہ زار بن جائے گی۔

ایوانِ صدر، سپریم کورٹ اور پارلیمنٹ کی عمارتیں انتظامی حلقہ (سیکٹر) میں ہوں گی۔ ان عمارتوں کے علاوہ اسی حلقہ میں ثقافتی اہمیت کی عمارات جیسے قومی کتب خانہ، قومی عجائب گھر اور سیکریٹریٹ کی عمارتیں بھی ہوں گی۔ ان عمارتوں کی منصوبہ بندی پر بیرونی ممالک کے کئی ماہروں سے بھی مشورہ کیا گیا ہے۔ ان میں سے بعض عمارتوں کی منصوبہ بندی کا کام مکمل ہو گیا ہے اور تعمیر کا سلسلہ عنقریب شروع ہونے والا ہے۔

یہاں ایک سفارتی علاقہ بھی ہوگا۔ اس علاقہ میں سے دو لاکھ اڑسٹھ ہزار نو سو بہتر اعشاریہ تراسی مربع گز رقبہ پٹے پر دیا بھی جا چکا ہے۔ اب تک آسٹریلیا، سویڈن، برطانیہ، ہندوستان، اٹلی، برما، فرانس، آسٹریا اور نیدرلینڈ کے سفارت خانے یا قونصل خانے اپنے لئے زمینیں لے چکے ہیں۔ معلوم ہوا ہے کہ اس زمین سے "کیپیٹل ڈیولپمنٹ اتھارٹی" کو ترپن لاکھ اناسی ہزار چار سو چھپن روپے کی رقم وصول ہوگی۔

فلاحِ عامہ کے کاموں کو بھی نظر انداز نہیں کیا گیا ہے، اور چھوٹی صنعتوں کی تنصیب کے لئے اب تک انیس پلاٹ الاٹ کئے گئے ہیں۔ صنعت کاروں نے اپنے کارخانوں کے لئے تعمیر کا کام شروع کر دیا ہے۔ سیمنٹ تیار کرنے اور پتھر کوٹنے کے کارخانے قائم بھی ہو چکے ہیں۔

تعلیمی اور رفاہی اداروں کی تعمیر کا منصوبہ منظور ہو چکا ہے۔ جس کے تحت اس وقت چار پرائمری سکولوں کی عمارتیں بن رہی ہیں۔ حکومت مغربی پاکستان راولپنڈی اور اسلام آباد کے درمیان ایک ڈگری کالج بھی قائم کرے گی جس کی تعمیر جاری ہے۔ اسی طرح پارکوں، ڈاک خانوں، تار گھروں، کلبوں، کھیل کے میدانوں، تھانوں اور کینٹینوں کی تعمیر بھی مختلف مراحل سے گزر رہی ہے۔

برقی قوت کی فراہمی کے سلسلہ میں جو کام ہوا ہے وہ بھی بڑا ہمت افزا ہے۔ چنانچہ اس وقت اسلام آباد میں ایک سو بتیس کلوواٹ کا بجلی گھر قائم کیا جا رہا ہے جس پر اسی فی صد کام مکمل ہو چکا ہے۔ یہ بجلی گھر واپڈا کے

"بنگالہ شگرف آب و ہوائے دارد"

(مشرقی پاکستان ——— مانجھیوں کا دیس)

یونس احمد

اندھیرے اجالے، صبح شام، ہر آن، ہر وقت، یہاں تک کہ سوتے جاگتے بھی ایک ہی شغل ——— ماہی گیری جیسے یہ لوگ دھرتی نہیں پانی کے باسی ہوں - ندیاں، نالے، دریا، جھیلیں، تالاب، ان سب کا بہتا، ٹھہرا پانی، ان کا اوڑھنا بچھونا ہے۔ آپ کہیں گے ماہی گیری جاگتے میں تو خیر ٹھیک ہے ——— مگر سوتے میں؟ بیشک، یہ لوگ رہتے ہیں بھانت بھانت کی کشتیوں، ڈونگوں اور ناؤوں میں ہی - ان کے گھر بھی لکڑی کے چلتے پھرتے گھر ہیں۔ وہ سوتے ہیں تو اگلے دن ماہی گیری کے لئے کیل کانٹے سے لیس ہو کر اور نیند میں بھی اس ہی کے خواب دیکھتے ہوئے۔ اس لئے جاگتے کے ساتھ سوتے نہ ہو تو اور کیا ہو؟ ماہی گیری ان لوگوں کی گھٹی میں پڑی ہے اور اس کا کوئی وقت، کوئی موسم نہیں۔

یہ کون نہیں جانتا کہ مشرقی پاکستان جھیل، تال، ندی نالوں اور دریاؤں کی سرزمین ہے اور یہاں کی بود و باش پر سیال چاندی کی رواں دواں چادروں کا بڑا گہرا اثر پڑتا ہے۔ یہی بات ہے جس نے ہمارے مشرقی بازو کے پُر شور ندی نالوں کی تند و تیز موجوں کا منہ پھیر دینے والے جیالے مانجھیوں کو دنیا کے بہترین ملّاح بنا دیا ہے۔ جگہ جگہ ندیاں، قدم قدم پر جھیلیں، گھر گھر تالاب - آبِ رواں کے کنارے کنارے بستیاں، بازار، ہاٹ، منڈی بلکہ ایک گھر سے دوسرے گھر تک جانے کے لئے بھی بعض دفعہ ڈونگے کشتیاں ہی کام میں لائی جاتی ہیں۔ ہر وقت طوفانوں اور سیلابوں کا سامنا۔ تیز و تند موجوں سے زور آزمائی۔ اس لئے یہاں کے جفاکش اور منچلے لوگوں کو فطرت نے کچھ پاؤں پھیلانے کا ڈھنگ سکھا دیا ہے۔ خبر نہیں کب سے یہ سلسلہ نسلاً بعد نسلٍ چلا آتا ہے جس طرح پانی کے ساتھ ان کا چولی دامن کا ساتھ ہے، اسی طرح ماہی گیری سے بھی ہے۔ یہ ان کا پیشہ بن چکا ہے۔ اُن کی شکل و شباہت، جسمانی ساخت اس کٹھن زندگی کے سانچے میں پوری طرح ڈھل چکی ہے۔ پُر آشوب دریاؤں کے سینے پر چڑھ کر ان کی تند و تلاطم خیز موجوں کا مقابلہ کرنا ہی بلاکش مانجھیوں کا کام ہے۔

وقت اور موسم کی طرح ماہی گیری کو سال و سن سے بھی کوئی نسبت نہیں۔ خواہ بادل ٹوٹ ٹوٹ کر برس رہے ہوں یا کڑاکے کی سردی پڑ رہی ہو ——— مشرقی پاکستان کے دیہات میں سردی اس بلا کی پڑتی ہے کہ اکثر دانت سے دانت بجنے لگتے ہیں، بالکل ایسی سردی جیسے مغربی پاکستان کے میدانی علاقوں میں پڑتی ہے اور پانی جمنے لگتا ہے ——— بڑے بڑے دریا اُبل رہے ہوں یا گھٹنوں گھٹنوں پانی کھڑا ہو، گھر سے دور نہریں بہہ رہی ہوں یا پاس ہی چھوٹی سی پُر سکون ندی ہنستے گاتے بہے جا رہی ہو، ماہی گیر اپنے کام میں لگے ہوئے نظر آئیں گے۔ اُدھر صبح کا تارا نمودار ہوا اور اِدھر یہ لوگ کام کے لئے نکل کھڑے ہوئے اور پھر مزے کی بات یہ ہے کہ ہر شخص دنیا و ما فیہا سے بے خبر۔ اپنی دھن میں لگا ہوا نظر آئے گا، خواہ وہ بچّہ ہو یا پوپلا بوڑھا، ناتجربہ کار لڑکا ہو یا سرد و گرم چشیدہ مانجھی ——— اپنے ساتھیوں سمیت چنگھاڑتے دریاؤں میں جال پھینکنے سے اسے کوئی چیز نہیں روک سکتی۔ اگر وہ اکیلا بھی ہے تو کنارے پر کھڑا ہوا یا بیٹھا ہوا مچھلی کا شکار ضرور کھیل رہا ہو گا۔ اگر موسم خشک ہے تب بھی وہ پورا کا جال ضرور پھینک دے گا یا "بیل" نالے کے ٹخنوں ٹخنوں پانی میں گھس کر مچھلیاں پکڑے گا۔ کمسن بچّوں کی کھیپ کی کھیپ ہاتھوں سے ہی مچھلیاں پکڑتی الگ نظر آئے گی۔ جب ان کی قسمت یاوری کرتی ہے تو مچھلیاں اٹھا اٹھا کر ایک دوسرے کو دکھاتے اور خوش ہوتے ہیں۔

مشرقی پاکستان میں عوام کے لئے ماہی گیری تفریح بھی ہے اور پیشہ بھی۔ شہری لوگ بھی مچھلی کا شکار کرتے ہیں مگر صرف تفریح کے لئے تاکہ ان کی چھٹیاں یا فالتو وقت ہنسی خوشی گزر جائے۔ یہ لوگ شہر سے باہر نکل جاتے ہیں اور مچھلی کے شکار کا لطف اٹھاتے ہیں۔ لیکن دیہات

کی عام آبادی کی بات اور ہے۔ بلاشبہ دیہات میں رہنے والے سیدھے سادے عوام ماہی گیری سے سال کے بارہ مہینے خوب خوب لطف اٹھاتے ہیں مگر ساتھ ہی مچھلیاں پکڑ کر اپنی معاشی حالت بھی بہتر بناتے رہتے ہیں۔ ان میں جو ذرا چاق و چوبند، تندرست اور کس بل والے ہیں، وہ اتنی مچھلی ضرور پکڑ لیتے ہیں کہ ان کا کنبہ بھی خوب سیر ہو کر کھائے اور باقی "ماچھ" بیچ کر کچھ پیسے بھی کما لیں۔ یہ اِدھر اُدھر چل پھر کر اپنی "ماچھ" ضرور کسی کے گھر فروخت کر ڈالتے ہیں۔ خاص کر کھاتے پیتے گھرانوں میں تازہ پکڑی ہوئی مچھلی کی بڑی مانگ ہوتی ہے۔ جب گھر بیٹھے، سستے داموں تازہ عمدہ "ماچھ" آجائے تو بازار ہاٹ کون جاتا ہے۔

اگر مچھلی کافی مقدار میں پکڑی گئی تو قریب کے بازاروں میں بھی کثرت سے نظر آتی ہے۔ ویسے عام طور پر دیکھا گیا ہے کہ بڑے بوڑھے اور بچے صرف اتنی ہی مچھلی پکڑتے ہیں جتنی انہیں ضرورت ہو۔

گاؤں کے وہ بڑے بوڑھے یا جوان جو صرف ذوق و شوق کی خاطر ضرورت سے زیادہ مچھلی پکڑ لیتے ہیں وہ نہ صرف اپنے علاقوں بلکہ چھوٹے چھوٹے شہروں، حتیٰ کہ دور دست ڈھاکہ تک اپنی مچھلی بکنے کو بھیج دیتے ہیں۔ اُدھر بیبیاں بھی خوش ہوتی ہیں کہ چلو گھر بیٹھے اچھی "ماچھ" ہاتھ آگئی، نوکر تو بازار جا کر بھی خالی ہاتھ لوٹ آئے گا کہ جی آج تو "ماچھ" بہت ہی مہنگی تھی!

مچھلی پکڑنے والے یہ شوقین یا تو بستی ہی کے شوقین اور جیالے ہوتے ہیں یا پھر بچارے کم تنخواہ دار ملازم جو اپنا فرصت کا وقت اس کام میں لگا کر کچھ نہ کچھ کما ہی لیتے ہیں۔ اور اس طرح اپنا اور اپنے کنبے کا پیٹ پالتے ہیں۔ یہ لوگ اُن نشیبی علاقوں میں مچھلیاں پکڑتے ہیں جہاں سیلاب کے دنوں میں قریب کے دریاؤں، ندیوں نالوں کا پانی چڑھ آیا تھا اور اب اتر گیا ہے۔ یہاں مچھلی عمدہ اور بکثرت ملتی ہے۔ خود ڈھاکہ میں ایسے بے شمار تالاب ہیں جو کسی کی ملکیت نہیں اور لوگ یہاں کثرت سے آتے اور مچھلی پکڑ کر لے جاتے ہیں۔

مگر ایسی کڑی زندگی جس میں کشمکش ہی کشمکش ہو اور انسان دن رات موجوں کے خلاف سینہ سپر اور ان کے ساتھ پیہم نبرد آزما رہے، کسی دلخوش کن تفریح کے بغیر کیسے بسر ہو سکتی ہے۔ جیسے مغربی پاکستان میں چکی پیسنے والیاں دل بہلانے یا مشقت کا احساس دور کرنے کے لئے گیت بھی گاتی جاتی ہیں یا رہٹ چلانے والے، کھیتی باڑی کرنے والے "ہیر" گانا شروع کر دیتے ہیں، یا کوئی سہانا ٹپہ یا ماہیا الاپنا شروع کر دیتے ہیں۔ اسی طرح مشرقی پاکستان کے مانجھی چپو چلاتے، ڈانڈ یا پتوار سنبھالے اور مچھیرے جال پھینکتے اور مچھلیاں بھرتے، زور زور سے کشتیاں کھینچتے ہیں تو کام کے دوران تھکن یا تکان دور کرنے کے لئے طرح طرح کے گیت بھی الاپتے رہتے ہیں۔ یہ گیت ان لوگوں کی جان ہیں اور ان سے سارے مشرقی پاکستان کی فضا رسی بسی ہوئی ہے۔ سیدھے سادے مانجھی مچھیرے کٹھن زندگی کے اتار چڑھاؤ، خوشی، غمی، ہمت و جرأت کے یہ میٹھے سریلے گیت گا گا کر کچھ ایسا سماں باندھ دیتے ہیں کہ ساری فضا پر ایک کیف چھایا رہتا ہے۔ یہ گیت ان لوگوں کے دلی احساسات کی ترجمانی کر کے زندگی کو گوارا ہی نہیں خوش گوار بھی بنا دیتے ہیں۔ عام گیتوں کے علاوہ، جو لوگ خود ہی گھڑ لیتے ہیں، یا وہ خود بخود ان میں پیدا ہو جاتے ہیں، بعض پڑھے لکھے لوگ بھی ہیں جن کو خدا نے ایسے گیت مرتب کرنے کی صلاحیت عطا کی ہے۔ کومی جسیم الدین کو کون نہیں جانتا۔ وہ اپنے دیس کے کسانوں، مچھیروں، مانجھیوں کے دل کی دھڑکنیں خوب جانتے ہیں اور بڑی ہی سادگی سے ان کو گیتوں میں سمو دینے کا ڈھنگ خوب جانتے ہیں۔ ان کا ایک گیت ہے "ندیا کے پار"۔ اس کو پڑھ کر وہاں کے لوگ تو درکنار ہم یہاں کے لوگ بھی خود بخود گنگنانے لگتے ہیں اور ایک عجیب حظ محسوس کرتے ہیں گویا یہ ہمارے اپنے ہی گیت ہوں اور ہم مشرقی پاکستان میں نہ ہوتے ہوئے بھی اس سے پورا پورا قرب محسوس کرتے ہیں:

"ندیا کے پار":

مانجھی رے —

کروں کیسے میں ندیا کو پار!

مجھے لے چلے جو اس پار رے

اسے دوں گی میں پھولوں کا ہار رے

مانجھی رے —

اس پار میں بھیا نک ندی کے

چلی جاؤں گی ساجن کے دوار رے

مجھے لے چل تو ندیا کے پار رے!

یہ ہے ایک بھٹیالی گیت اور اس دوسرے میں بھی ایسا ہی رس گھلا

ہوا ہے:۔

رنگ برنگی ناؤ کے مانجھی

آؤ باندھو ناؤ یہاں

چھیڑوں دل کی داستاں

سن بھٹیالی گیت کو تیرے

نیر بہائے ساگر

اس کی لہر بہائے جائے

میری کمر سے گاگر

لنگر اس نوکا کا مانجھی

مست ہوا سے اڑتا جائے

ساری کا آنچل میرا

رہ رہ کر بل کھائے

مانجھی تیری پیت میں شاید

دل نہ کسی کا ٹوٹا ہوگا

نہ کسی دل نے لہر گنی ہیں

نہ کوئی گاگر چھوٹا ہوگا

اور حق یہ ہے کہ نہ تو مشرقی پاکستان نہ بنگلا شاعری کا دامن قاضی نذرالاسلام کے رس بھرے گیتوں سے خالی رہ سکتا ہے۔ اس کی ایک مدھر تان کی صدائے بازگشت، نظم نہ سہی، نثر ہی میں سہی:

اے گہری ندی کی موجو!

جنم جنم سے تم مجھ کو خس و خاشاک کی مانند

بہاتی رہی ہو!

میں نے اپنے لئے جو گھر تعمیر کیا تھا

اے ندی! اسے بھی تمہاری موجیں بہا لے گئیں!

پھر میں نے جنگل میں پناہ لینی چاہی مگر وہ

بھی ندی پایاب ہوگیا!

اب میں سب کچھ لٹا کر، سب کچھ کھو کر موجوں کے ساتھ

بہتا جا رہا ہوں!

میں گھر دوبارہ تعمیر کر سکتا ہوں

لیکن دل کا گوہر نایاب گم ہو جانے کے بعد کہاں ملے گا؟

بھاٹا میں ایک بار دل کھو جائے تو وہ بھی

جوار کی طرف نہیں جانا چاہتا!

اے ندی!

تمہاری موجیں ساحل کا ایک ہی حصہ کاٹتی ہیں

لیکن حسن کی ندی کا وہ ایک کنارا بھی نہیں چھوڑتیں!

اور اس ٹیپ کے مصرع کے بعد ظاہر ہے اور کوئی مصرع کیا ہوگا اور کیا کیف پیدا کر سکے گا۔ بے شک "بھاٹا" میں ایک بار دل کھو جائے تو وہ جوار کی طرف نہیں جانا چاہتا!

"چشم بکشا اندریں دیرکہن"

محمد عمر میمن

بعینہٖ حکیم ملتؒ کے الفاظ "کھول آنکھ، زمیں دیکھ، فلک دیکھ، فضا دیکھ" مگر یہ آج سے کوئی سو برس پہلے تقریباً آئین اکبریؔ مصحّحہ سرسیدؒ میں خامۂ غالب سے برونے کار آئے تھے جنہوں نے "نئی روشنی" یعنی مغربی علم و حکمت کی بڑی فراخدلی سے تحسین کی تھی۔ اسی مناسبت باہمی کی بنا پر ہم عنوان بالا کے تحت سائنٹفک سوسائٹی آف پاکستان کے چوتھے سالانہ اجلاس کی کارروائی اور اس کا خطبۂ صدارت یہاں پیش کر رہے ہیں۔ (ادارہ)

"کراچی جیسے شہر میں جو علمی اور ثقافتی سرگرمیوں کا مرکز ہے
سوسائٹی کی طرف سے کانفرنس کا اعلان کوئی ایسی بات نہیں
تی جس پر غیر معمولی حیرت یا مسرت کا اظہار کیا جائے" یہ تھے
لفاظ جو حسن علی عبدالرحمٰن صاحب نے "سندھ مدرستہ الاسلام"
یم تاریخی عمارت میں "سائنٹفک سوسائٹی، پاکستان" کی چوتھی سالانہ
رنس کے موقع پر اپنے خطبۂ استقبالیہ میں کہے۔

اس میں شک نہیں کہ کراچی کی پہلودار زندگی میں ہر روز
انہ کسی ثقافتی یا علمی محفل کا انعقاد کوئی ایسی غیر معمولی بات بھی نہیں۔
اسرما کے روپہلے سورج میں، کبھی شام کے ملگجے دھندلکے میں، کبھی
بھی جب پورا شہر نیون لائٹس کے شش رنگی غبار میں آہستہ آہستہ
ائی لے کر یوں بیدار ہوتا ہے جیسے سمندر کے جھاگ اُگلتے پانیوں
و میں بیدار ہو رہی ہو یہاں، اس بام سے اس بام تک، چنگ و
ب، شعر و سخن، نغمہ و رقص اور علم و ادب کی محفلیں سجتی ہی رہتی ہیں
ساحل کہ اس شہر کی ایک "شخصیت" ترتیب پاتی رہتی ہے، اس کا
دار اسی طرح تراشا گیا ہے۔ اس شہر کی "شخصیت" اور کردار سازی
س عمل میں ان سب عناصر کو یکساں اہمیت حاصل رہی ہے لیکن
ایوں بھی ہوتا ہے کہ کوئی محفل بذات خود اس درجہ اہم ہوتی ہے کہ
ئد آگے بڑھ کر شخصیت سازی کے اس عمل میں سب سے نازک
سکی تعمیر اپنے ہاتھوں میں لے لیتی ہے اور یوں شخصیت کے ساتھ

خود بھی اہم تر ہو جاتی ہے۔ اسی طرح کی ایک سنجیدہ، وقیع اور علمی مجلس وہ اجتماع تھا جو پچھلے دنوں یہاں منعقد ہوا۔

میں سائنٹفک سوسائٹی آف پاکستان کی اس سہ روزہ کانفرنس کے بارے میں ذکر کر رہا ہوں جس کا ہمارے شہر میں کافی دنوں سے چرچا تھا۔ اگر یہ کہا جائے کہ بیشتر دوسری شہری سرگرمیوں پر اسے فوقیت حاصل ہو گئی تھی تو شاید یہ بات بے محل نہ ہوگی۔ اس لئے کہ مذکورہ جماعت کے پیش نظر جو مقصد ہے وہ نہایت اہم ہے اور موجودہ وقت کا تقاضہ بھی۔

آیئے ایک نظر اس مقصد کی طرف بھی ڈالتے چلیں جسے میں نے "نہایت اہم" کہا ہے۔ ان مخصوص نشستوں کو جانے دیجئے جو اردو کے شاعر اور ادیب کبھی کبھار منعقد کر لیتے ہیں بلکہ ذرا ان کانفرنسوں یا بڑے بڑے جلسوں کا تصور کیجئے جو ملک گیر پیمانہ پر منعقد ہوتے رہتے ہیں۔ کیا ان سب کی کارروائی اردو میں ہوتی ہے؟ اکثر کی نہیں۔ ایسے ماحول میں جہاں معیشت کے ادنیٰ سے شعبوں میں بھی فوقیت کسی غیر ملکی زبان کو دی جائے کسی ملک گیر کانفرنس کی تمام تر کارروائی اگر اردو میں ہو تو کیا یہ چونکنے کی بات نہیں؟ یہ کانفرنس "نہایت اہم" اس لئے تھی کہ اس میں ہر ہر لفظ جو بولا گیا وہ اس زبان میں تھا جسے یہاں کے لوگوں کی ایک کثیر تعداد بولتی اور سمجھتی ہے اور ہماری قومی زبانوں میں سے ایک ہے۔ کانفرنس کی مجلس استقبالیہ کے صدر کے الفاظ میں یہ "نہایت اہم"

اس لئے بھی تھی کہ "اس کانفرنس کے دوران آپ دیکھیں گے کہ طبیعیات کیمیا، ریاضی، حیاتیات اور دوسرے علوم کے مشکل سے مشکل مضمون کس سادگی اور صفائی کے ساتھ اردو کے سانچے میں ڈھلتے اور سننے والے کے ذہن میں اترتے چلے جاتے ہیں" ۔ اس لئے اردو کی گراں مائیگی اور اظہار مطالب پر اس کی قدرت کا ایک اور ثبوت میسّر آیا۔

یادش بخیر! یہ وہی سوسائٹی ہے جس کی داغ بیل اب سے سو سال پہلے سرسیّد نے ڈالی تھی اور جس کا دقیع آرگن "تہذیب الاخلاق" کا علمی و ادبی کام ہم سب کے سامنے ہے اور اسی جماعت کے ذریعے سرسید نے پسماندہ مسلمانوں کو یاسیت کے خول سے نکل کر نئی دنیا اور اس کی ترقیوں کے ساتھ قدم سے قدم ملا کر چلنے کی ترغیب دی تھی، سرسید کے جذبۂ عمل، ان کی بے لوثی اور صداقت سے کسے انکار ہو سکتا ہے۔ یہ سوسائٹی جدید سائنسی علوم کی تحصیل کا ذوق عوام میں پھیلانے کے سلسلے میں اردو کے وسیلہ سے کام لے رہی ہے اور اسی طرح جو شمع سرسید نے روشن کی تھی اسے روشن رکھنے کی سعی کر رہی ہے۔

دسمبر کی سردی تھی جمعہ کا دن تھا سہ پہر کے وقت یہ کانفرنس منعقد ہوئی۔ پروگرام کے مطابق اس نیک کام کی ابتدا تلاوت قرآن پاک سے ہوئی۔ جناب ماہر القادری نے تلاوت فرمائی اور اس کے خاتمے پر جناب حسن علی عبدالرحمٰن (صدر مجلس استقبالیہ) نے اپنا خطبہ استقبالیہ پڑھا جس کا اوپر ذکر آیا ہے۔ خطبہ کیا تھا، ایجاز و اختصار سے چند جملوں میں سوسائٹی کے مقاصد پر نظر ڈالی گئی تھی اور ان خدمات کا بھی ذکر تھا جو اس سوسائٹی نے اپنے قیام سے آج تک ملک کی ذہنی نشو و نما اور اردو میں سائنسی علوم کی ترویج کے سلسلے میں کیا ہے۔

ڈائس نہایت سادگی سے سجا ہوا تھا۔ حاضرین محفل کے عین سامنے جو ڈائس کا عقبی حصہ تھا، نہایت جلی حروف میں یہ قرآنی آیت ہمیں دعوت عمل دے رہی تھی۔ سَخَّرَ لَکُمْ مَّا فِی السَّمٰوٰتِ وَمَا فِی الْاَرْضِ (تمہارے لئے مسخر کر دیا گیا ہے جو کچھ آسمانوں میں ہے اور جو کچھ زمینوں میں ہے) اپنے معنی کے اعتبار سے یہ آیت کس قدر برموقع ہے اس کی داد ہر شخص دے رہا تھا۔ اصل میں شمع علم کے نقش کے ساتھ یہ آیت خود اس سوسائٹی کا موٹو اور موٹو گرام بھی ہے اور کس قدر موزوں۔

ہم میں سے اکثر و بیشتر نے حالی کو نہیں دیکھا لیکن حالی کی زندگی اور ان کے جذبوں کے بارے میں سنا یا پڑھا ضرور ہے بلکہ ہمارے بزرگوں سے کہ اب تک ہم برابر حالی کے خلوص کا فیضان حاصل کر رہے ہیں۔ آج اسی جذبہ کی بازگشت سنا دے رہی تھی۔ استقبالیہ خطبہ کے بعد جو خطبہ افتتاحیہ پڑھا گیا اس کا لب و لہجہ بعینہٖ ویسا ہی تھا جیسا حالی کے مضامین، ان کے مسدس اور قومی نظموں کی دلسوزی کا ہے۔ مدھم مدھم دردمند لیکن موثر الفاظ و لہجہ۔ یہ خطبہ جو کراچی یونی ورسٹی کے وائس چانسلر، جناب اشتیاق حسین قریشی نے پڑھا تھا بلاشبہ دلوں پہ گہرا نقش چھوڑنے میں کامیاب ہوا۔ شاید اس کی وجہ پڑھنے والے کا اپنا درد تھا اور اس کے لہجے کی بے لوثی بھی! یوں محسوس ہوتا تھا جو کچھ پڑھا جا رہا ہے وہ پڑھنے والے کے اپنے محسوسات ہیں، تصنع سے عاری! ۔ صرف خلوص اور آئندہ نسلوں کے لئے ایک پیغام عمل۔

انہوں نے اپنے خطبہ کا آغاز اس شکریہ سے کیا جو بقول ان کے اس عزت افزائی پر ان کے ذمہ واجب الادا تھا۔ پورا خطبہ بڑی سلیس، شستہ، سادہ لیکن اثر انگیز اردو میں تھا۔ ان کا مؤرخ ذہن برابر ان اسباب و علل پر مرکوز تھا جو کسی قوم کو ٹھیک اس وقت جبکہ وہ اپنے عروج کی بلند ترین سنگھاسن پر فروکش ہوتی ہے، دھکیل کر قعر مذلت کی طرف لے جاتے ہیں۔ ان تمام اسباب و علل کو نہایت وضاحت سے کھول کھول کر سامعین کے سامنے پیش کیا محسوس ہوتا تھا حاضرین وہ سب کچھ سمجھ رہے ہیں جو ایک دل کی گہرائیوں سے نکلا ہے۔

ان کے خطبہ کا ایک اہم پہلو یہ تھا کہ اس میں انہوں نے ہمیں اپنی انفرادی ثقافت کی تعمیر پر زور دیا تھا۔ فرمایا "اگر ہمارے دلوں میں اپنی ثقافت کی محبت کا جذبہ نہ ہوتا تو ہم ہندوستان کی تہذیب میں جذب ہونے پر تیار ہو جاتے اور اپنی انفرادیت کو قائم کرنے کے لئے ان سب مصائب کا مقابلہ نہ کرتے جو ہمیں پاکستان کے حصول کی راہ میں پیش آئے۔ ظاہر ہے ہند کیا برا تھا اگر اس کی ثقافت ہمارے لئے قابل قبول تھی لیکن ہمیں اپنی شخصیت الگ بنانی تھی۔ انفرادی شخصیت محض ایک قومی تر اکائی میں ضم ہو کر اپنے تھوڑے بہت

میزات سے دستبردار نہ ہونا تھا۔

"اخلاق کی بلندی، علم و عمل کے میدان میں ترقی یہ تمام باتیں ان کے خیال میں دیگر اقوام کی اندھی پیروی میں اپنی زبان سے دستبردار ہو کر حاصل نہیں کی جا سکتیں۔ اس طرح ترقی تو کیا اس کی تلچھٹ بھی ہاتھ نہ آسکے گی۔ اگر مادی خوشحالی "تنگ قمیصوں، چست پتلونوں اور جسم کی ساخت کی نمائش سے ہاتھ آسکتی تو پھر کیا تھا۔ نہ کتب خانے کی ضرورت تھی نہ معمل کی، نہ کسی جامعہ کی نہ کسی دانشکدہ کی۔ پھر تو بس افسوس تھا جو ہاتھ آجاتا کہ جو کچھ اوروں نے خون پسینہ ایک کرکے حاصل کیا وہ ہمیں درزیوں کی ساحری سے مل جاتا۔"

"جس قوم کو اپنی کوئی چیز اچھی نہ لگے اور دوسروں کی ہر ادا پر فریفتہ ہو وہ کیا زندہ رہ سکتی ہے؟ کوئی قوم اس وقت تک ترقی نہیں کر سکتی جب تک وہ خود آگاہ نہ ہو۔ جب تک اسے خود اپنے ثقافتی ورثے سے دلبستگی نہ ہو۔ تاریخ کا کونسا طالب العلم ہے جو یہ نہ جانتا ہو کہ جب تک یورپ میں علوم لاطینی اور یونانی زبانوں کی جکڑ بند میں رہے وہاں کا دورِ تاریکی ختم نہ ہوا۔"

اپنے خطبے کے آخری حصہ میں انہوں نے قوم کے باشعور اور ذہین افراد سے بطور خاص دو باتوں کے لئے درخواست کی: (الف) اگر طبعی علوم کے ماہر اس قوم میں ان علوم کا ذوق صحیح پیدا کرنا چاہتے ہیں تو ان کو اپنی زبان میں منتقل کریں۔ اپنی زبان میں سوچیں، لکھیں، کہیں اور سمجھائیں تاکہ یہ علوم پھیلیں اور عوام تک رسائی حاصل کر سکیں۔ (ب) کہ اگر قوم کو تباہی سے بچانا مقصود ہے تو اس فاصلہ کو جلد سے کم تر کیا جائے جو اس کے اور دیگر ترقی یافتہ ممالک کے مابین حائل ہے۔ اور یہ فاصلہ نصاب تعلیم اور مدت تعلیم میں کمی سے نہیں بلکہ معیار سے کم ہوگا۔

صدارتی خطبہ ڈاکٹر افضال حسین قادری (کراچی یونیورسٹی) نے پڑھا جس کا عنوان "پاکستان کی حیاتی جغرافیائی ماحولیات" تھا۔ یہ ایک دقیق سائنسی موضوع پر محیط ہونے کے باوجود بڑا عام فہم تھا اور بڑی رواں اردو میں پڑھا گیا کہ حاضرین کو اس کی شمولات ذہن نشین کرنے میں کسی دقت کا سامنا نہ کرنا پڑا۔ اس امر کی حتی الوسع کوشش کی گئی تھی کہ انگریزی مصطلحات سے گریز کیا جائے اور جہاں ان کا استعمال ناگزیر تھا وہاں ان کے ساتھ ساتھ ان کی ہم معنی اردو مصطلحات سے بھی آگاہ کیا گیا تھا۔ اس بصیرت افروز خطبہ کو سننے کے بعد یہ احساس بالکل بجا تھا کہ ہماری زبان ہرگز کم مایہ نہیں بلکہ اس میں تمام جدید اصطلاحات کو بحسن و خوبی اپنے میں سمو لینے کی مکمل صلاحیت موجود ہے۔ ضرورت صرف اس محنت کی ہے جو اسے رائج کر سکے اور فروغ دینے میں خود اہل علم آگے بڑھیں۔

اس خطبہ کے بعد خورشید حسن صاحب (شریک معتمد) نے ملک کے مختلف گوشوں سے موصول ہونے والے خیر مقدمی پیغام پڑھ کر سنائے۔ گورنر مغربی پاکستان اور وائس چانسلر سندھ یونیورسٹی کے پیغامات خاصے کی چیز تھے۔ رضی الدین صدیقی صاحب کا پیغام نہایت دلچسپ تھا۔ دراصل یہ ایک "چیلنج" پر مشتمل تھا یعنی کہ بذریعہ اردو جدید سائنسی علوم کا فروغ ان کی ترویج و اشاعت ممکن نہیں! مگر حقیقت یہ ہے کہ اس پیغام کے پیچھے ایک مخلصانہ جذبہ ہی کارفرما تھا ورنہ اگر مقصد مخالفانہ ہوتا تو جناب رضی الدین صاحب اپنی یونیورسٹی کے مختلف شعبہ جاتی افتتاحیوں میں اس جوش و جذبہ کے ساتھ اردو میں تمام جدید علوم کے تراجم اور فروغ کے لئے انتھک کام نہ کرتے۔

جلسہ کا اگلا پروگرام "روداد سالانہ" تھا۔ اسے شریک معتمد نے پڑھ کر سنایا اور پھر عصرانہ کے بعد ابن سینا پر ایک نہایت پرمغز لیکچر کے ساتھ آج کا پروگرام بطریق احسن ختم ہوا۔ یہ لیکچر جناب سلیم الزماں صدیقی نے دیا تھا اور جلسہ کی صدارت ڈاکٹر نذیر احمد نے کی۔

اگلے روز کوئی ڈھائی بجے، سہ پہر کے وقت مختلف شعبہ جاتی اجلاس منعقد ہوئے مثلاً شعبہ علوم طبیعی، علوم حیاتیاتی، علوم ارضیاتی اور شعبۂ تعلیم وغیرہ۔ ان تمام مجالس میں نہایت پرمغز تحقیقی مقالات اردو ہی میں پڑھے گئے جسے صاحب ذوق حضرات نے پسند کیا۔ ان علوم کو اردو میں منتقل کرنے کی مساعی کو سراہا۔

۵ بجے شام بلدیہ کراچی کی جانب سے ایک عصرانہ کا اہتمام بھی ہوا اور پھر ایک عام فہم لیکچر "بازاری غذاؤں میں بیماری کے جراثیم" پڑھا گیا جسے ڈاکٹر احمد علی انور (صدر شعبۂ خوراک و حیاتیات کراچی یونیورسٹی) نے پڑھا تھا اسے بھی بہت پسند کیا گیا کیونکہ عوام کی ضرورت کے عین مطابق تھا۔

یہ سہ روزہ کانفرنس کا آخری دن تھا۔ جلسہ ۹ بجے صبح شروع ہوا مختلف شعبوں میں تحقیقی مقالات پڑھے گئے۔ بارہ بجے دن کو
(باقی ۵۹ پر)

"اترائے کیوں نہ خاک..."

رفعت جاوید

وہ چھوٹا سا قلم جو پہلے بھی اپنے جوہر دکھا چکا ہے۔ اب پھر میدان میں آتا ہے۔ اور بتاتا ہے کہ خامۂ غالب کی آتش افشانی ـــــ چونکہ یہ شمارہ اسی بزرگ سے منسوب ہے، اس لئے ہر بات میں اس ہی کا حوالہ مناسب ہے ـــــ کے برعکس اس کے خامۂ خوردمیں اب بھی وہی دم ہے۔ (ادارہ)

اور یہ خاک، پاکستان کی خاک پاک کے سوا اور کون ہو سکتی ہے؟ جس پر سال کے سال ہمارے فوجی بھائی یوم مسلح افواج کے سلسلے میں پریڈ کرتے ہوئے پاکستانی جھنڈے کو سلامی دیتے ہیں اور اپنے شہری بھائیوں سے گھل مل کر ہنسی خوشی وقت گزارتے ہیں۔ اس دن اپنے قومی جھنڈے کو لہراتے ہوئے دیکھ کر جی کتنا خوش ہوتا ہے اور منہ سے بے اختیار یہ بول نکلتے ہیں: جھنڈا اڑتا رہے ہمارا۔ اور اڑتا ہی نہیں بلکہ جھنڈا اونچا رہے ہمارا۔ یقین جانیئے جب بھی مجھے پاکستان کا چاند تارے سے آراستہ پرچم لہراتا نظر آتا ہے تو اس کے ساتھ میرا دل بھی آپ ہی آپ اونچا ہی اونچا اڑنے لگتا ہے اور جب کوئی ایسا موقع آتا ہے کہ یہ پرچم لہرایا جائے۔ تو میرا دل پھڑپھڑانے لگتا ہے کہ میں اس کے آن بان سے لہرانے کا منظر دیکھوں۔ اور جہاں اس پیارے پیارے پرچم کے ساتھ ہماری مایۂ ناز فوج ـــ اس کے جیالے جوانوں، اس کے ہر دلعزیز پاسبانوں کی پریڈ اور بینڈ باجے کے ساتھ یا اس کے بغیر کوچ اور اس کے شاہینوں کی پرواز بھی شامل ہو۔ تو پھر کیا کہنے۔ سچ جانیئے اس کے تصور ہی سے دل بلیوں اچھلنے لگتا ہے۔ جی چاہتا ہے۔ اے کاش! ایسے مظاہرے روز روز ہوں ـــــ خاکی، سفید، نیلی وردی میرے لئے خوشی کی انتہا ہے۔ اپنے وطن کے ان مایۂ ناز سپاہیوں کو دیکھ کر انسان پھولا نہیں سماتا۔ اور سینہ خود بخود فخر سے تن جاتا ہے۔ اس لئے کہ ہم چھوٹے چھوٹے پاکستانی ہی تو ہیں جو آگے چل کر اپنے وطن کا مان سپاہی بنیں گے۔

قوم اور ملک کا دست و بازو۔ ان کا سہارا۔ اُن کے محافظ ان کی پشت و پناہ۔ وہ لوگ جو ہمارے بڑے بڑے نازک وقتوں پر کام آئے۔ یہاں تک کہ ہمارا آخری سب سے بڑا انقلاب بھی ان ہی کے دم قدم سے ہوا۔

اور یہ تو آپ جانتے ہی ہیں کہ شکر خورے کو کسی نہ کسی طرح شکر مل ہی جاتی ہے۔ اب یہ سچ مچ کی شکر ہو یا شکر کی بنی ہوئی چیز یعنی مٹھائی جس کے لڑکے بالے دیوانے ہوتے ہیں۔ یا ویسے ہی کوئی میٹھی رسیلی چیز۔ چنانچہ ہمیں بھی جو پرچم کے فرفر لہرانے اور چم چم کرتی فوجوں کے دھوم دھام سے مظاہرے کرنے کے رسیا ہیں۔ اس سال بھی ایک موقع مل ہی گیا کہ ہم اُن کے قریب آئیں۔ اور اپنی آنکھوں سے ان کے کارنامے دیکھیں۔

ہوا یوں کہ ہماری لیڈی پرنسپل نے ہم لوگوں کو یاد فرمایا۔ ان کے ہاتھ میں دو بڑے ہی خوبصورت چھپے ہوئے رسالے سے تھے اور کچھ کاغذات: ایک رسالے پر تین بیضوی قسم کے رنگین چکر تھے۔ اور دو تلواروں میں چاند تارا۔ ایسا عمدہ چکنا دبیز کاغذ کہ خود بخود چھونے کو جی چاہا ـــ اس لئے اور بھی کہ اس قسم کا بہترین کاغذ بھی ہمارے وطن عزیز کے دوسرے حصے، مشرقی پاکستان میں تیار ہوتا ہے اور اس سے ہمیں باہر سے کتنا ہی روپیہ ہاتھ آتا ہے۔ بعد میں پرنسپل صاحبہ سے معلوم ہوا کہ یہ مسلح افواج کے چھٹے یوم کے لئے جو اگلے دن ۱۴ جنوری کو منایا جائے گا۔ سووینر چھپا ہے۔ میں نے جوں توں کر کے یہ تحفہ

ہتھیا ہی لئے۔ اور ان میں اپنی برّی، بحری اور ہوائی فوجوں کی تصویریں دیکھ دیکھ کر اچھل اچھل پڑا۔ فوج ہو تو ایسی اور اس کا ساز و سامان، اس کے کارنامے۔

خیر، تو پرنسپل صاحب نے کہا: "لڑکو! کل خوب چاق و چوبند ہو کر آؤ۔ کل اتوار کو بڑا ہی شاندار میلہ ہوگا۔ فوجیوں کا میلہ جس میں تمہارے فوجی بھائی تمہارے پاس آئیں گے۔ بات چیت کریں گے۔ طرح طرح کے کمالات دکھائیں گے۔ جن کو دیکھ کر تمہاری طبیعت میں ولولہ بھی پیدا ہوگا اور تم بہت خوش بھی ہوگے۔ اور سنو، تمہیں کرایہ دے دے کر نہیں جانا پڑے گا۔ بلکہ فوجی بسیں خود آئیں گی اور تمہیں پولو گراؤنڈ میں یا دوسری جگہوں میں جہاں ایسا ہی فوجی میلہ ہوگا تم جہاں جانا چاہو گے لے جائیں گی اور سنو، میلہ تو ہوگا ہی اور بڑا شاندار لیکن ساتھ ہی اس خوشی اور پیار بھرے فوجی بھائیوں سے ملاپ کے موقع پر مٹھائی بھی تقسیم ہوگی۔"

یہ سن کر تو یار لوگوں کی باچھیں کھل گئیں۔ اور بعض کے دل میں اسی وقت لڈو پھوٹنے لگے۔ اس لئے نہیں کہ مٹھائی ملے گی بلکہ یہ مٹھائی ہمارے فوجی بھائی دیں گے جس کی مٹھاس دوہری ہوگی۔ کیونکہ پیار محبت کی مٹھاس سے زیادہ مٹھاس اور کیا ہو سکتی ہے۔ اور پھر یہ بھی خوشی کم نہ تھی کہ گھر کے قید خانے سے نجات ہوگی اور ہم تھوڑی دیر کھلی ہوا میں دم لیں گے۔ پڑھائی وڑھائی یا ہوم ٹاسک کا جھنجھٹ بھی نہ ہوگا۔ بعض اس خوشی سے اچھل رہے تھے کہ طرح طرح کے بینڈ باجے سنیں گے، رنگ برنگی فوجیں دیکھیں گے اور خوب موج میلہ ہوگا۔ چھٹی کی تو بات ہی کیا ہے۔ کیونکہ اس دن اتوار پڑتا تھا۔ لو چھٹی ہوتی بھی تو اس کی خوشی کی بات بھی بھلا۔ ہم پاکستان کے نونہال پڑھائی سے کیوں بھاگیں۔ پڑھائی پڑھائی ہے اور کھیل کھیل۔ اور سچ پوچھئے تو کھیل تماشے بھی کھیل کے کھیل اور پڑھائی کی پڑھائی یعنی سکھلائی ہیں۔

تو صاحب وہ دن آیا۔ کتنا سہانا دن! ہم سب لڑکے لڑکیاں انتظار تک کیا ۹ بجے ہی دھڑا دھڑ اسکول کے کمپاؤنڈ میں جمع ہو گئے۔ بس آئی، ہم سب لپک لپک کر اس پر سوار ہو گئے۔ واللہ کس ٹھاٹھ کی بس تھی کہ گدّوں پر بیٹھتے ہی مزا آ گیا۔ وہ ایسے چل رہی تھی جیسے نیچے سڑک ہی نہ ہو۔ اس وقت کہیں وہ رسالے کام آئے۔ اور ہم ان کے ورق الٹ الٹ کر دیکھنے لگے۔ رد پہلی اوراق پر سارا پروگرام درج تھا۔ پتے کی بات تو ایک ہی تھی۔ یہ کہ اس یوم کا مقصد ہے یہ بتانا کہ ہماری افواج نے کس طرح اپنے معیار اور مستعدی کو برقرار رکھا ہے۔ اس دن ہر قسم کے لوگ، ہماری طرح چھوٹے بھی اور بڑے بھی، آکر اپنے فوجی بھائیوں سے مل سکتے ہیں جس سے خود بخود ان کے متعلق بھرم پیدا ہوتا ہے۔ اور ہم جان جاتے ہیں کہ ہمارا ملک مضبوط اور توانا ہاتھوں میں ہے۔ اور ہمیں اس کے بارے میں ذرا بھی اندیشہ نہیں ہونا چاہئے۔ ان خوبصورت رسالوں سے یہ بھی پتہ چلا کہ ہمارے بعض فوجی بھائیوں خصوصاً افسروں اور دوسرے کارکنوں نے بڑی بڑی عالمی مشقوں میں خوب کام کیا ہے۔ یوم مسلح افواج سے صرف ہمیں کو ان کا حال معلوم نہیں ہوتا؟ بلکہ باہر کے لوگ بھی ان کا کس بل خوب جان جاتے ہیں۔

میں تو رد پہلی صفحوں پر چھپے ہوئے پروگرام ہی میں کھو گیا۔ واہ واہ! کیا کیا باتیں ہوں گی۔ صدر پاکستان کا حفاظتی دستہ شہسواری گھوڑا کدانے، میوزیکل سواری اور ٹنٹ پگنگ کے کیا کیا کمالات دکھائے گا۔ چوگان بازی تو ہم پاکستانیوں کا خاص مردانہ کھیل ہے۔ اس کا شاندار میچ بھی ہوگا۔ دن بھر بینڈ باجے کی سنگت کتنا مزا دے گی۔ ان کے ساتھ ہی ساتھ ورزش کے مظاہرے، لوک ناچ خاص کر ہمارے پٹھان بھائیوں کا مشہور جیالا خٹک ناچ۔ یہ تو خیر تفریحی باتیں ہوئیں۔ بڑی بات تو خالص فوجی قسم کے مظاہرے ہوں گے۔ یہ کہ حملہ کیسے ہوتا ہے۔ بچاؤ کیسے کیا جاتا ہے۔ دشمن کے ٹھکانوں پر بے پناہ گولہ باری۔ ساتھ ہی توپیں، سگنل کرنے کا سامان۔ فوجی فارموں اور فیکٹریوں کی پیداوار بھی۔ چھوٹی چھوٹی بندوقوں سے نشانہ بازی اور بیمار یا زخمی فوجیوں کا علاج معالجہ کیسے ہوتا ہے۔ وغیرہ وغیرہ۔ مزے کی بات یہ کہ لوگوں یعنی ہم جیسے شوقین لڑکوں کو بھی نشانہ بازی کا موقع دیا جائے گا۔

اُدھر پاکستان کے مایہ ناز بحری جہاز بھی ڈاک یارڈ میں کھڑے ہوں گے تاکہ ان کو دیکھنے کے دلدادہ شہری جوق در جوق آئیں۔ اور وہ ساحلی فرودگاہیں جو بحریہ کی مدد اور ضرورتوں کے لئے بنائی گئی ہیں یعنی "کارساز" اور "بہادر" لوگوں کے لئے کھلے ہوں گی کہ وہ آئیں اور ان کو دیکھیں — رات کو ان مقامات گودی اور جہازوں پر ایسا شاندار چراغاں ہوگا کہ وہ جگمگ جگمگ کر اٹھیں گے۔ بحری عملے کے بینڈ باجے پولو گراؤنڈ ہی میں نہیں فریر ہال میں بھی بجتے رہیں گے۔

اور سارا دن خوب رونق رہے گی۔

ایک بات بہت اچھی لگی، یہ کہ اس دن ہمارے فوجی بھائی قوم کے لئے "ایٹ ہوم" ہوں گے۔ اور یہ اب کچھ زیادہ دور نہ تھا۔ کیونکہ ہم لوگ جلد ہی منزلِ مقصود پر جا پہنچے۔ اور اچھل اچھل کر جلدی جلدی بس سے نیچے اتر گئے۔ دیکھا تو دوسرے اسکولوں سے بھی لڑکے لڑکیاں دھڑا دھڑ آ رہی تھیں اور سب کے سب خوشی سے چہچہا رہے تھے۔ دوسرے لوگوں کے بھی ٹھٹ کے ٹھٹ لگے تھے اور سچ مچ اتنی بڑی گراؤنڈ پر بہت بڑا میلہ لگا ہوا تھا۔ ہر طرف رونق ہی رونق اور گہما گہمی۔ سڑک کی ایک طرف جو چبوترا بنا ہے، اس پر کراچی کی فرفر چلنے والی ہواؤں میں ہمارا قومی جھنڈا کس شان سے لہرا رہا تھا۔ اور اس کے سامنے سے پلٹنیں سلامی دیتی ہوئی گزر رہی تھیں ہماری بری افواج کا دم خم دیکھنے کے لائق تھا۔ تربیت یافتہ فوجی کیسی آن بان سے ایک ساتھ قدم اٹھا اٹھا کر چل رہے تھے۔ اور ان کے پوری ہم آہنگی کے ساتھ اٹھتے ہوئے قدموں کی جھلک پاکستان کے ہر شہر لاہور، کوئٹہ، پشاور، ملتان، ڈھاکہ میں ہر کہیں نظر آ رہی تھی جہاں ہماری مسلح افواج کا دن اس ہی وقت بالکل اسی اہتمام سے منایا جا رہا تھا۔ ہمارے یہ کڑیل جوان کیا تھے صحت، قوت، بہادری، تربیت اور نظم و ضبط کی چلتی پھرتی تصویریں۔ ان کو دیکھ کر ہمارے چھوٹے چھوٹے سینے بھی خود بخود تن گئے۔ جیسے وہ نہیں ہم مارچ کر رہے ہوں۔ اور اس میں تعجب بھی کیا ہے۔ آخر ہم جیسے قوم کے نونہال ہی تو اچھی تعلیم، اچھی تربیت پا کر فوج میں شامل ہوں گے۔ کوئی فوجی جوان بنیں گے، کوئی بحریہ کے سپوت اور کوئی شاہین۔ میرے خدا ٹینکوں کی وہ شاندار قطار اور بڑی بڑی توپیں جن کی سلامی کی پہلی پہلی گھن گرج اب بھی کانوں میں گونج رہی تھی۔ بیگ پائپوں کی سریلی مست کن آواز اور ڈھول کی ولولہ انگیز ضرب۔ آگے آگے رنگ برنگی وردی پہنے رو پہلی عصا ہلاتا اور کبھی کبھی ہوا میں اچھالتا قوی ہیکل جوان، کتنا مزا آتا تھا اس کو دیکھ کر۔۔۔ وہ سراپا سفید براق بحریہ قطار اندر قطار، وہی طمطراق وہی آن بان۔ اور شاہین۔ زمین پر یوں چلتے ہوئے جیسے وہ اونچی فضاؤں میں شاہانہ پرواز کر رہے ہوں۔ دیکھنے میں فوج کے بازو تین مگر درحقیقت مکمل طور پر ایک۔ وہ اور ان کا ساز و سامان سبھی ملک کی زیادہ سے زیادہ طاقت اور حفاظت کے ضامن یعنی تو آڑے سکنے وقت میں بھی یہ قوم کے کام آ سکے۔ اور ملک کے اندر ہی کیا باہر بھی انہوں نے پاکستان کی ایسی دھاک قائم کی کہ دیکھنے والے حیران رہ گئے۔ کون نہیں جانتا کہ مغربی ایریان اور کانگو میں ہماری فوج کے چھیلے جوانوں نے کیا کیا کارہائے نمایاں انجام دیئے۔ ہمارے سپاہی اور ملاح اقوامِ متحدہ کے زیر سرکردگی ان دونوں ملکوں میں گئے۔ لطف یہ کہ انڈونیشیا اور ہالینڈ دونوں حریفوں نے بڑی خوشی سے ان کا اپنے یہاں آ کر خدمات انجام دینا قبول کیا۔ ہمارے فوجی بھائیوں نے دونوں جگہ بڑی ہی تن دہی مستعدی اور خلوص سے کام کیا۔ اور اپنے حسنِ سلوک اور حسنِ عمل سے کانگو اور مغربی ایریان دونوں کے باشندوں کو اپنا دوست اور گرویدہ بنا لیا۔ یہ دیکھ کر تو اقوامِ متحدہ نے طے کر لیا کہ آئندہ جب بھی امن کی خاطر فوجی امداد کی ضرورت پیش آئے گی، تو پاکستان کا نام سرِ فہرست ہوگا۔

اور یہ کوئی اچنبھے کی بات نہیں۔ وہ علاقہ جو آج پاکستان کہلاتا ہے، صدیوں سے ایسے لوگوں کا گہوارہ رہا ہے۔ جو سپاہی بننے پر ناز کرتے ہیں۔ شجاعت اور سپہ گری ان کی روایات ہی میں نہیں ان کے خون میں داخل ہے۔ ان کے نزدیک فوجی ہونا سب سے زیادہ فخر کی بات ہے۔ بچہ بچہ وقت آنے پر سپاہی بننے کا اہل ہے۔ ذرا سی تربیت دی اور وہ سونے پر سہاگہ ثابت ہوئی۔ جبھی تو ہمارے فوجی ہمارا مان ہیں۔ اور دنیا بھر میں بہترین مانے جاتے ہیں۔۔۔ آج ہماری فوج مشرق میں سب سے زیادہ چاق چوبند فوج ہے جو ہر مہم میں پوری اتر سکتی ہے۔ کئی رجمنٹیں تو ایسی ہیں جن کا سکہ دو دو سو سال سے قائم ہے۔ اور انہوں نے دونوں عالمی جنگوں میں میں بڑا نام پیدا کیا ہے۔ یہی نہیں بلکہ ہماری فوج میں اچھے اچھے نامور کھلاڑی بھی پیدا کئے ہیں۔ مثلاً میجر حمیدی اور میجر عاطف جو ہاکی کے مشہور کھلاڑی ہیں۔

خوب یاد آیا۔ یہ ہماری فضائیہ ہی کا ایک نوجوان تھا جس نے بلا کی مستعدی سے ایک در آنے والے لڑاکا جہاز کو پائلٹ سمیت مار گرایا تھا جو ہمارے فوجی ٹھکانوں کے فوٹو لینے آیا تھا۔

ہماری پیدل فوج کو بجا طور پر میدانِ جنگ کی ملکہ کہا جاتا ہے۔ پنجاب رجمنٹ، بلوچ رجمنٹ اور فرنٹیر فورس رجمنٹ سب کی سب اپنی بہادری اور جواں مردی کے لئے شہرۂ آفاق ہیں۔ فوجی افرین

اور جلد کے لئے اسٹاف کالج کوئٹہ دنیا کے اہم ترین کالجوں میں شمار ہوتا ہے۔ اس سوونیر میں دنیا کا نقشہ کیسا عمدہ بنایا گیا ہے۔ اور اس میں مشرقی و مغربی پاکستان اور اہم فوجی مقامات کس خوش اسلوبی سے دکھائے گئے ہیں۔ گھر آ کر میں بھی برش اور کلر بکس لے کر بیٹھ گیا کہ ایسا ہی خوب بڑا نقشہ بناؤں اور اس کو دیوار پر لٹکا دوں۔ ہاں، اور وہ جو فوجی جوانوں کو رسیاں پکڑ پکڑ کر اوپر چڑھتے دکھایا گیا ہے، اسی طرح رسیوں کو پکڑ کر میں بھی اوپر چڑھنے کی مشق کرتا رہا۔

جہاز سازی کی گودی ہمارا ایک اور بڑا کارنامہ ہے۔ اس کی واقعی بڑی ضرورت تھی۔ اب ہمارا بحریہ، خدا کے فضل سے ہر طرح اتنی ترقی کر چکا ہے کہ یہ دونوں بازوؤں کی پوری پوری حفاظت کر سکے۔ اس میں سکھلائی، ساز و سامان اور درستی و مرمت سب کا پورا پورا اہتمام ہے۔ ساحل ساحل بحری فرودگاہیں بھی ہیں۔ بہادر، ہمالیہ، دلاور۔ اس طرح ۱۵ ایک سال میں بحریہ کچھ کی کچھ ہو گئی ہے۔ جہاز خریدے گئے، تربیتی ادارے قائم ہوئے، مرمت و درستی کا انتظام ہوا۔ اور دوسرے ملکوں کے ساتھ مل کر کتنی ہی مشقیں بھی ہوئی ہیں۔ پی۔ این۔ ایس "بہادر" "کارساز"۔ "ہمالیہ" لڑکوں کی تین بڑے ادارے ہیں۔ طوفانوں اور سیلابوں کی روک تھام، ان کے سلسلے میں مدد۔ سمندر کی تہہ کی پیمائش اور جائزہ۔ اور ساحلی پیمائش کے سلسلے میں بڑا کام ہوا ہے۔ مشرقی پاکستان میں چالنا کی نئی بندرگاہ اس ہی مطالعہ کا نتیجہ ہے۔ چاٹ گام میں جو سمندری اکیڈمی قائم ہوئی ہے، وہ اچھے اچھے افسر اور جہاز راں پیدا کرے گی۔

زمین، پانی اپنی جگہ ہیں، ہوا اپنی جگہ۔ اور اس کی بات ہی کیا ہے۔ آگے سے آگے بڑھتے جانے کے لئے فضا ہی کام آتی ہے، اور ہم ایسا کر بھی رہے ہیں۔ تربیتی ادارے قائم ہوئے۔ نئی وضع کے جہاز "مائیگر"، "اتھ، ہارورڈ" وغیرہ خریدے گئے۔ اور اب تو جیٹ طیاروں کا دور ہے۔ سب سے بڑی بات رائل پاکستان ائیر فورس کب کا صرف پاکستان ایئر فورس بن چکا ہے۔ اور یوں کتنے ہی خواب ہیں جو پورے ہو چکے ہیں۔ ہمارے شاہین اور شاہباز برابر عالمی مشقوں میں حصہ لیتے رہے ہیں۔ اور ملک میں جو ٹڈی دل آتے رہتے ہیں، ان کو ملیامیٹ کرنے میں فضائی بیڑے نے بڑا کام کیا ہے۔ سیلاب زدگان کی امداد کے سلسلے میں جو کام کیا گیا ہے، اس کو کبھی نہیں بھلایا جا سکتا۔

یہ سب کچھ میں نے اور میرے ساتھ ہزارہا پاکستانیوں، چھوٹوں اور بڑوں، نے پڑھا ہی نہیں، اپنی آنکھوں سے دیکھا اور گو سارا دن اِدھر اُدھر چلتے پھرتے ـــــ کبھی سرکاری فوجی بسوں۔ اور کبھی ٹینکروں میں ـــــ گزرا جس سے تکان تو ضرور ہوئی لیکن جو تفریح ہوئی اس سے ایسا لگا جیسے ہم اسی طرح بشاش بشاش گھر واپس آ رہے ہیں۔ جیسے صبح روانہ ہوئے تھے۔

بہت اچھا ہے کہ یہ دن ہر سال اسی طرح منایا جائے۔ یہاں تک کہ ہم نئی پود کے لوگ بڑے ہو کر خود کیڈٹ بنیں اور اپنے بعد کی نسل کو پاکستانی فوج کا ایسا ہی شاندار منظر دکھا سکیں۔

"چشم بکشا اندریں دیر کہن" : ـــــ بقیہ صفحہ ۵۵

اجلاس ختم ہوا۔

سہ پہر ۳ سے ۵ بجے تک ایک مذاکرہ بعنوان "ملک کی معاشی ترقی کے لئے وسائل کا استعمال" منعقد ہوا جس کا افتتاح جناب غلام فاروق صاحب سابق گورنر مشرقی پاکستان نے کیا اور صدارت جناب رضی الدین صدیقی نے فرمائی۔ اس میں ملک کے مشہور دانشوروں نے شرکت کی اور اسے ان اجتماعات کا اگر گلِ سرسبد کہا جائے تو بیجا نہ ہوگا۔

شام ۵ بجے سندھ مدرسہ بورڈ کی جانب سے (جس نے اس سال کانفرنس کے انعقاد کے سلسلہ میں مہمان نوازی کے فرائض قبول کئے) ایک عصرانہ کا اہتمام بھی ہوا اور اس طرح یہ سہ روزہ کانفرنس بڑی کامیابی کے ساتھ ختم ہوئی۔ یہ امر باعث مسرت ہے کہ ملک کے بیدار مغز سائنسداں اور دانشور ملک کی ضرورتوں کو محسوس کر رہے ہیں اور جلد یا بدیر انہیں یہ احساس ہو گیا ہے کہ اپنی زبان ہی اپنی ترقی میں ممد و معاون ثابت ہو سکتی ہے اور ملک میں سائنس و ٹکنالوجی کے فروغ میں ہماری زبان بڑا اہم کردار ادا کر سکتی ہے اور اسی تیزی کے ساتھ بدلتے ہوئے خلائی و فضائی دور میں ہم دوسروں کے ساتھ اگر ہمقدم رہنا چاہتے ہیں تو اپنے آپ کو ان علوم کی تحصیل کی طرف متوجہ کرنا پڑے گا اور جیسا کہ خود صدر پاکستان بار بار ہمارے نوجوانوں کو تلقین کر رہے ہیں ملک کو سائنس کے فیضان سے بہرہ ور ہونا چاہیئے مگر ساتھ ہی اپنی روحانی و ثقافتی اقدار کے سرچشموں سے بھی ہمیں دور نہیں جانا چاہیئے کیونکہ علم اور عمل کی راہیں ہمیں اپنی منزل کی طرف تب ہی لے جا سکتی ہیں جب ہم اپنے ماضی کے درخشاں پہلوؤں سے بھی آگاہ ہوں اور نئے تقاضوں کو بھی اپنی زندگی کا آدرش بنائیں۔

آزاد بنامِ غالب — بقیہ صفحہ

خیال یا علمی مطالب یا دنیا کے معاملات خاص جب
مراسلے لکھے، تو اس انداز میں ممکن نہیں" (ص ۶۴۹)

اس پر مزید حاشیہ آرائی کی ضرورت نہیں، ان کا مدعا یہ ہے کہ
اردوئے معلّی کی زبان صرف بات چیت اور خط و کتابت (اور وہ بھی
غیر سنجیدہ موضوع ہی) تک کارآمد ہو سکتی ہے۔ اگر کوئی شخص اس زبان میں
کسی اہم موضوع تاریخ یا اخلاق یا کسی خاص علم کا بیان کرنا چاہے، تو
یہ زبان اس طرح کے مفہوم کے ادا کرنے میں قاصر رہے گی۔

۸۔ پھر اسی پر بس نہیں کرتے۔ عام خیال ہے اور یہ ہے بھی
درست کہ اردوئے معلّی کے خطوں کی زبان، ان کا شگفتہ انداز اور بے ساختہ پن
ایسا ہے کہ انسان اگر انہیں پڑھنا شروع کرے، تو بے تکان پڑھتا ہی
چلا جائے اور اس کی سیری نہ ہو۔ مولانا آزاد لکھتے ہیں:۔

"پورا لطف ان تحریروں کا اس شخص کو آتا ہے کہ جو خود
ان کے حال سے اور مکتوب الیہوں کی چال ڈھال
سے اور طرفین کے ذاتی معاملات سے بخوبی واقف ہو
غیر آدمی کی سمجھ میں نہیں آتیں۔ اس لئے اگر ناواقف
اور بے خبر لوگوں کو اس میں مزہ نہ آئے، تو کچھ تعجب
نہیں" (ایضاً)

۹۔ اس کتاب میں قلم، التماس کو مؤنث، پنشن، بیلہ
نابک کو مذکر فرمایا ہے۔ ایک جگہ فرماتے ہیں: میرا
اعدو بہ نسبت اردو ؤں کے فصیح ہوگا" (ایضاً)

یوں معلوم ہوتا ہے کہ قلم، غالب کے زمانے تک مونث بھی لکھا
جاتا تھا۔ ظفر کا شعر ہے:۔

عجب احوال ہے میرا کہ جب خط اس کو لکھتا ہوں
تو دل کچھ اور کہتا ہے، قلم کچھ اور کہتی ہے

بلکہ اگر خود مولانا آزاد کا اعتبار کیا جائے تو یہ شعر ظفر کا نہیں بلکہ
ان کے اپنے استاد ذوق کا ہے کیونکہ یہ ظفر کے دیوان سوم میں ہے۔
(ص ۱۵۴)

"التماس" دلّی میں مذکر — اور لکھنؤ میں مؤنث ہے۔
انگریزی لفظوں کی تذکیر و تانیث کا اس زمانے تک تعین
ہی کہاں ہوا تھا کہ اس پر اعتراض ہو، بلکہ سچ تو یہ ہے کہ ابھی تک اس
بارے میں کوئی ایک قاعدہ متعین نہیں ہوا۔ ایک ہی لفظ کوئی مذکر لکھتا ہے
کوئی مؤنث۔

یہ ہے مولانا آزاد مرحوم کی فردِ جرم غالب کے خلاف۔ اس سے
آپ اس نتیجے پر پہنچیں گے کہ:۔

(۱) غالب دراصل اردو کے نہیں فارسی کے شاعر تھے،
(۲) ان کی تعلیم و تربیت ناقص رہ جانے سے وہ اس میں بھی
صحیح اور خاطر خواہ کامیابی حاصل نہ کر سکے،
(۳) اردو میں ان کا اکثر کلام ناقابلِ فہم یا دوسرے لفظوں میں
بے معنی ہے،
(۴) اردو میں وہ غلط محاورہ اور روزمرہ لکھتے ہیں،
(۵) وہ اردو نثر میں فارسی ترکیبوں اور محاوروں کا ترجمہ لکھتے ہیں
جو اردو کے اہلِ زبان کے روزمرہ کے خلاف ہوتا ہے،
(۶) ان کی اردو سوائے غیر سنجیدہ تحریر کے اور کسی مصرف کی نہیں اور
(۷) ان کے اردو خطوط عام قاری کے لئے بے مزہ ہیں۔

*

غالب بخود شیوۂ من قافیہ بندی
ظلمے ست کہ بر کلک و ورق می کنم امشب

•

نقش فریادی ہے کس کی شوخیٔ تحریر کا
کاغذی ہے پیرہن ہر پیکرِ تصویر کا

نقد و نظر:-

"راہِ سخن وا کرے کوئی"

عبداللہ خاور

کچھ عرصہ گزرا ہم نے نقد و نظر کے لئے یہ تازہ عنوان طے کیا تھا لیکن فردا پس فردا ملتوی ہوتے ہوتے نوبت اس شمارہ تک پہنچی جو غالب سے منسوب ہے اور اس طرح حق بحقدار رسید کا آخر کار تک پہنچ ہی گیا۔ مگر خود راہ سخن وا کرنے کی بجائے ہم یہ مہم ایسے مرد کارداں کے سپرد کر رہے ہیں جو شاعر اور مبصر دونوں کے لئے "دل گداختہ" رکھتا ہے" کا دہم از راز دہم از ساز آگہست" اور یہ راز و ساز ظاہر ہے غالب کا فارسی کلام اور اس کے نکات و معانی ہی ہیں۔ ر-خ نہ سہی خ-خ یعنی عبداللہ خاور ہی سہی! —— (ادارہ)

غالب نے کہا اور بہت زور شور سے کہا کہ بہ صغیر میں فارسی سخن آرائی کا سلسلہ ز عرفی و طالب بہ غالب رسید۔ اور یہ کہ از باز پسین نکتہ گزاران پیشم یہاں تک کہ اردو کو "بے رنگ من است" قرار دے کر فارسی بین تا بہ بینی نقش ہائے رنگ رنگ" کا آوازہ بلند کیا۔ لیکن "منکران شعر من" نے اس کی طرف کوئی توجہ نہ کی جس کا نتیجہ یہ ہے کہ گو بعض فارسی دوستوں نے بادۂ فارسی سے سرمست سخن ہونے کی کوشش کی ہے۔ پھر بھی جو میخانے، بقول شاعر "در بن ہر لفظ چیدہ" ہیں وہ بڑی حد تک ناشنیدہ، نادیدہ اور ناچشیدہ ہی رہے۔

ہمارے یہاں فنکار تخلیق کرتا ہے اور نقاد فیصلے صادر کرتے ہیں۔ غالب نے کہا "فارسی بیں ...." نقاد نے کہا یہ تو ذوق سے کہا ہے، ہم سے نہیں۔ اور ہم سے بھی کہا ہے تو اس پر عمل کرنے کی ضرورت نہیں۔ غالب کا اردو کلام ان کی بقائے دوام کا ضامن ہے جس کی عظمت کا خود انہیں اندازہ نہ تھا۔ چنانچہ غالب کی زندگی، ملحقات غالب اور ان کی اردو شاعری کے علاوہ ان کے خطوط —— غرض سب ہی کچھ زیر بحث آئے۔ نہ آئی تو ان کی فارسی شاعری۔

سرسید نے تذکرہ اہل دہلی میں سب سے پہلے غالب کا ذکر فارسی شعرا کے زمرہ میں کیا۔ حالی نے یادگار غالب میں ان کے فارسی کلام کے تجزیہ اور افہام و تفہیم کی طرف توجہ کی۔ پھر ایک جگ بیت گیا اور شیخ محمد اکرام غالب کے فارسی کلام کی طرف متوجہ ہوئے۔ انہوں نے تفصیلی بحث کے ساتھ کلام کا انتخاب بھی کیا۔ چند اور اہل ذوق، مثلاً نیاز فتحپوری، جوش، غلام رسول مہر، مالک رام اور ڈاکٹر یوسف حسین وغیرہم نے اپنی تحریروں میں غالب کی فارسی شاعری کا ذکر کیا، مگر اس پر زیادہ گہری نظر نہیں ڈالی۔ خلیفہ عبدالحکیم مرحوم نے بھی اس کو بہ انداز محرمانہ دیکھا۔ بہر حال اس کا اعتراف تقریباً سب ہی کو ہے کہ غالب کا فارسی کلام اساتذۂ ایران کے کلام سے کسی طرح کم رتبہ نہیں۔ یہ اور بات ہے کہ ان کے "نقش ہائے رنگ رنگ" کسی نے نہ دیکھے اور ان پر تاریکی کے دبیز پردے ہی پڑے رہے۔ ڈاکٹر عارف شاہ گیلانی نے، "خون گرم کو ممکن دار درگِ قیفال ما"، کے مصداق ادھر توجہ دی اور اپنا تحقیقی کارنامہ "غالب: اس کی زندگی اور فارسی شاعری" (بزبان انگریزی) پیش کیا۔ جس میں شاعر کی زندگی اور اس کے فن کے کئی گوشے اجاگر کئے گئے ہیں۔ اس کتاب کی ترتیب میں غالب کے متعلق پورا سرمایہ پیش نظر رکھا گیا ہے اور اردو فارسی نظم و نثر کی تمام اصناف سخن پر تحقیقی نظر ڈالی گئی ہے۔ ماخذ کا وسیع و عریض میدان بجائے خود ناقد کی ہمت عالی کا آئینہ دار ہے۔

کتاب دو حصوں میں منقسم ہے۔ پہلے میں غالب کے حالات ہیں اور دوسرے میں ان کی شاعری اور فن پر گفتگو ہے۔ آخری حصہ کی ترتیب میں مصنف نے فارسی شاعری کی اصناف پر بھی گہری نظر ڈالی ہے تاکہ فارسی شاعر کی حیثیت سے غالب کے صحیح مقام کا تعین کیا جا سکے۔

تمہید میں سب سے پہلے عصرِ غالب کا سیاسی، سماجی، مذہبی اور ادبی جائزہ اس طرح لیا گیا ہے کہ پورے دور کی تصویر نظروں کے سامنے آجاتی ہے اور غالب کی شخصیت اور شاعری دونوں کو سمجھنے میں مدد دیتی ہے۔ یہ دور انقلابوں اور آشوبوں کا دور تھا جس میں غالب کو اپنی پوری زندگی گزارنی پڑی۔ پہلے حصہ میں غالب کی تاریخ ولادت، ان کی تعلیم و تربیت، خاندانی حالات، اساتذہ کا ذکر، دلی منتقل ہونے کی تاریخ، دلی میں قیام، کردار، قید و بند، حلیہ، مذہبی عقائد، علالت اور وفات تک کوئی ایسا اہم پہلو نہیں جس پر مصنف نے تحقیقی نظر ڈال کر کوئی فیصلہ نہ دیا ہو۔ ان معاملات میں جو دلائل اور شواہد پیش کئے گئے ہیں ان میں غالب کے متعلق بعض نئی معلومات اور تحقیقات بھی سامنے آئی ہیں اور غالب دوستوں کے سامنے نئی راہیں کشادہ ہوتی نظر آتی ہیں۔

کتاب کے دوسرے حصہ میں غالب کی فارسی شاعری کا بڑی تفصیل کے ساتھ جائزہ لیا گیا ہے۔ اس میں غالب کی فارسی استعداد، ان پر اساتذۂ ایران کے اثر، نظیری اور بیدل کے تتبع، اور پھر صنف وار غالب کی شاعری کا ایک بسیط جائزہ ملتا ہے۔ غرض کوئی بات ایسی نہیں چھوڑی گئی جو فارسی شاعر کی حیثیت سے غالب کا صحیح مقام متعین کرنے میں ہماری رہنمائی نہ کرے۔

مصنف خود فارسی کا شاعر ہے اور فارسی زبان و ادب پر عبور رکھتا ہے۔ اس کا انداز فکر سائنسی ہے جس کا ثبوت کلام غالب کی تنقید و تبصرہ میں جا بجا ملتا ہے۔ ہر صنف میں غالب کے فن اور انداز کلام کی خصوصیات، اساتذہ سے موازنہ اور ان کی تاریخی اہمیت واضح کرتے ہوئے غالب کا مقام متعین کرنے کی جس طرح کوشش کی گئی ہے وہ نقد کے اعتبار سے بھی اہم ہے اور حقائق کی تفصیل و تجزیہ کے اعتبار سے بھی۔ خصوصاً قصائد غالب کا جامع تجزیہ اپنی جگہ منفرد حیثیت رکھتا ہے۔ غالب کا کلام بہ اعتبار زبان و معنی ایک ماسیک بیں شاعر کا کلام ہے اور اسے پرکھنے کے لئے پہلے اس کی وسیع کائنات پر حاوی ہونے کی ضرورت ہے۔ مصنف نے تقریباً بیس برس اس پر صرف کئے ہیں۔ اس لئے غالب کے فارسی کلام میں اسے جو نکتے نظر آئے وہاں تک شاید بعض معروف مبصرینِ غالب کی نگاہیں بھی کم پہنچی ہونگی۔ غالب کے نظریۂ شعر و فن کا خود غالب ہی کے اشعار اور تحریروں سے جس طرح استنباط کیا گیا ہے وہ بھی مصنف کی نکتہ رسی و دقت نظر کی ایک روشن مثال ہے۔

غالب میں ابہام کی دریافت تو کوئی نئی بات نہیں البتہ اس کے متعلق مصنف کا یہ جواز ضرور قابل غور ہے کہ فکر غالب میں ہمیشہ گہرائی اور ندرت کا جوہر ملتا ہے اور ان کے کلام تک پہنچنے کے لئے قاری کو اپنے اندر فکر و خیال کی وسعت بھی پیدا کرنی پڑتی ہے اور زحمت بھی۔ غالب خود باریک بیں ہیں اور اپنے قاری سے بھی باریک بینی کی توقع رکھتے ہیں۔ مصنف نے یہ کہنے کی خاطر ہی نہیں کہا ہے بلکہ اپنی اس تصنیف میں غالب کے ساتھ اپنی باریک بینی کا ثبوت دیا ہے۔

غالب کے مقام کا تعین کرنے میں جس دقت نظر سے کام لیا گیا اس کا اندازہ ان عنوانات سے بھی لگایا جا سکتا ہے:
(۱) کیا غالب تقلیدی شاعر تھا؟ (۲) فارسی شاعری میں غالب کا مرتبہ۔ (۳) ہماری شاعری میں غالب کا مقام۔ (۴) معاصر شعراء میں غالب کا درجہ (۵) غالب کا اندازہ اپنے بارے میں۔ (۶) معاصرین کی رائے۔ (۷) پیغام۔ ان توضیحات سے ظاہر ہوتا ہے کہ غالب کے فارسی کلام کا مطالعہ اس سے زیادہ شرح و بسط کیساتھ اب تک پیش نہیں کیا گیا تھا۔

یوں تصنیف کے بعض مباحث سے جزوی اختلاف ہو سکتا ہے اور ان امکانات کے پیش نظر ہی مصنف نے لکھا ہے: "میں تکمیل کا دعویٰ نہیں کرتا۔ اگر تکمیل کے حصول میں صاحب نظر حضرات تعمیری مشورے دیں تو ذاتی طور پر ممنون ہونگا۔"
کوہ کنی کا سلسلہ یہیں نہیں ختم ہو جاتا بلکہ ایک اور جوئے شیر بھی نکالی گئی ہے یعنی غالب کا تمام فارسی کلام پیش نظر رکھ کر کتاب کے آخر میں ایک ہزار اشعار کا برجستہ انتخاب بھی دیا گیا ہے جس نے تصنیف زیر نظر کو ہر اعتبار سے مکمل اور قابل قدر بنا دیا ہے۔

★

"رنجِ گراں نشیں"

آج ہمیں رنجِ گراں نشیں کی شکایت کئے بغیر چارہ نہیں۔ جس سے ہمارے قلب و جگر فگار اور آنکھوں سے جوئے خون رواں ہے۔ بیدادِ اجل نے ہمیں پھر ناگہاں ایک ایسے ستارۂ روشن سے محروم کر دیا ہے جو ہمارے افقِ ملت کے لئے وجہ فروغ تھا اور مشرقی پاکستان ہو یا مغربی، اس کے ماتم میں سیہ پوش ہے۔ ہمارے وزیر خارجہ جناب محمد علی ــــ، جو پہلے بحیثیت سفیرِ پاکستان اور پھر وزیراعظم کی حیثیت سے ملت کے اُفق پر بڑی آب و تاب سے فروزاں ہوئے تھے اور اب پھر جب دورِ انقلاب کے بعد نئے آئین نے جمہوریت کی شعاعوں سے معمور، روشن تر فضا پیدا کر دی تھی وہ اور بھی آب و تاب سے ایک نیا حیات افروز کردار ادا کرنے کے لئے منظرِ عام پہ آئے تھے۔ اور انہوں نے اپنے نئے عہدے کی مختصر مدت ــــــ خوش درخشید و لے دولتِ مستعجل بود ! ــــ میں اس کا نمایاں ثبوت بھی دیا تھا۔ اس لئے تمام افرادِ ملت کی نگاہیں اُن پر مرکوز تھیں اور اُن کی ذاتِ گرامی سے اُن کی بہترین امیدیں وابستہ تھیں۔ لیکن افسوس ! وہ جانکاہ مرض جس کا شکوہ انسان کو ازل ہی سے رہا ہے، اس نے بہت ہی بے وقت ہمیں اس ستارۂ روشن کی تابانیوں سے محروم کر دیا۔ عین اس وقت جب وہ ہمارے ملی اور بین الاقوامی لائحہ عمل میں ایک نئی جوت جگا رہا تھا، اس کی شعاعوں میں ایک نئی تابانی پیدا ہو رہی تھی اور اہلِ ملک کو اس کی بصیرت افروز رہنمائی کی اشد ضرورت تھی، اس ستارے کا روپوش ہو جانا جو ہماری ملت کے مقدر کی تشکیل کا ضامن تھا، یقیناً ایک عظیم سانحۂ ملی اور ناقابلِ تلافی نقصان ہے، جس پہ قوم کا ہر فرد اشکِ خوں بہائے بغیر نہیں رہ سکتا۔

دعا ہے کہ خداوندِ کریم مرحوم کو اپنے جوارِ رحمت میں جگہ دے اور پاکستان کی جس ترقی و خوشحالی کا خواب وہ عمر بھر دیکھتے رہے اور جس کو پورا کرنے کے لئے وہ اپنی زندگی کو خطرے میں ڈال کر آخری دم تک کوشاں رہے، وہ حقیقی معنوں میں روشناسِ تعبیر ہو۔ پاکستان کی اس مایۂ ناز ہستی کے پسماندگاں اور سوگوارانِ ملت کو اگر کوئی بات وجہ تسلی ہو سکتی ہے تو یہ کہ :

مرنے والے کی جبیں روشن ہے اس ظلمات میں
جس طرح تارے چمکتے ہیں اندھیری رات میں

مسلم بنگالی ادب کے پارے

(بنگلہ سے ترجمہ)

ڈاکٹر انعام الحق ایم ۔ اے ۔ پی ۔ ایچ ۔ ڈی

اس کتاب میں بنگالی زبان و ادب کی مکمل تاریخ اور اس کے ثقافتی، ملی و تہذیبی پس منظر کا جائزہ لینے کے بعد بتایا گیا ہے کہ اس زبان کی نشو و نما اور ترقی و تہذیب میں مسلمان حکمرانوں، صوفیا، اہل قلم، شعرا اور ادبا نے کسقدر حصہ لیا ہے ۔ یہ جائزہ بہت مکمل اور تحقیق و تفصیل کا شاہکار ہے ۔

پوری کتابت نفیس اردو ٹائپ میں چھاپی گئی ہے اور مجلد ہے ۔

سرورق دیدہ زیب اور رنگین ۔ ضخامت ۰۰م صفحات

قیمت چار روپے (علاوہ محصول ڈاک)

نوائے پاک

ملک میں ایسے مجموعہ منظومات کی بڑی ضرورت محسوس کی جارہی تھی جو ہمارے وطنی احساسات کو بیدار کرسکے اور ہمیں اپنے وطن کی پاک سر زمین کی عظمت او[illegible]ت سے روشناس کرسکے ۔

"نوائے پاک" میں ملک کے نامور شعرا کی لکھی ہوئی وطنی جذبات سے لبریز نظمیں، گیت اور ترانے درج ہیں

کتاب مجلد ہے اور خوبصورت گردوپوش سے آراستہ

گٹ اپ بہت نفیس اور دیدہ زیب ۔

قیمت صرف ایک روپیہ

ادارۂ مطبوعات پاکستان ۔ پوسٹ بکس نمبر ۱۸۳ ۔ کراچی

جلد ۱۶ — شمارہ ۳

ماہِ نو

شمارۂ خصوصی ــــ مارچ ۱۹۶۲ء

مدیر:- ظفر قریشی

نجوم پرن

سالانہ چندہ
پانچ روپے ۵۰ پیسہ

شائع کردہ:
ادارۂ مطبوعاتِ پاکستان، پوسٹ بکس ۱۸۳، کراچی

قیمت فی کاپی
ایک روپیہ ۲۵ پیسہ

ماہِ نو، کراچی، شمارۂ خصوصی، اگست ۱۹۶۲ء

قومی نظمیں:

مرے شہر کو آج دیکھو

سید رضی ترمذی

مرا شہر، میرا یہی شہر، جس میں
نمی سے مہکتے، درخشاں شگوفوں سے حدِ نظر تک چراغاں ہے
اس شہر میں ایک دن روشنی کا نشاں تک نہیں تھا،
یہ ایوان ——— یہ جگمگاتے ہوئے سب در و بام
سنسان تاریکیوں کا کفن اوڑھ کر یوں کھڑے تھے
کہ جیسے زمانوں کے اُجڑے ہوئے جنگلوں کا سماں
جن میں بے رنگ، بے برگ ننگے درختوں کے سانسوں کی بوجھل آواز ہوتی ہے
ساری فضا جیسے روتی ہے!

یہ سامنے ——— جو اُجالوں میں پھیلے ہوئے راستے ہیں، یہاں
جیسے صبحوں کے کتنے سسکتے ہوئے خواب
شاموں کے مسلے ہوئے گیت
بکھرے پڑے تھے یونہی رائیگاں
اور مرے دوست سب نغمہ خواں

خاک بر سر کھڑے تھے
دل افگار، لب بستہ، نوحہ کناں!

یہ مرا شہر، میرا وطن، یہ چمن
اس میں میں نے ان آنکھوں سے وہ دن بھی دیکھا
کہ پھولوں سے رخسار اپنے ہی مژگاں کے کانٹوں سے زخمی ہوئے
میں نے اس دیکھتی آنکھ سے
جیسے شاخوں پہ اُگتے ہوئے زخم دیکھے
تو میں چیخ اٹھا رہ گیا ——— "اے درندو! سنو، یہ بہاریں نہیں"
میرے پہلو میں نغمہ سی اک آبجو دیکھتے دیکھتے جوئے خوں ہو گئی،
اور میں کہتا رہا:
"چھوڑ دو وحشیو! شہر ویران ہو جائیں گے، کھیت جل جائیں گے"
رس بھرے ہونٹ گیتوں سے محروم ہوتے ہوئے دیکھ کر
میں نے ہر اک کو آواز دی،

"برگِ گل سے لہو مت نچوڑو، یہ شبنم نہیں ہے"

یہاں شیطنت کے گھٹاٹوپ اندھیروں میں

جب ایک اک موڑتی رات بھر معبدوں میں کراہی

تو میں خوف سے کانپ اُٹھا،

میں نے سب کو جھنجھوڑا، کہ یہ کھیل اچھا نہیں،

یہ مقدس اُجالے نہ غارت کرو، باز آؤ

—— مگر یہ مرا شہر

میرا چمن، اس طرح لُٹ گیا

جیسے صدیوں کا کوئی پرانا خرابہ ہو جس میں

ہر اک سمت عفریت پرچم اُڑاتے، لہو چاٹتے، ناچتے پھر رہے تھے،

اُسی شہر کو آج دیکھو!

مرے شہر کو آج دیکھو

جہاں زندگی کی نمی سے درخشاں، مہکتے شگوفوں سے

حدِ نظر تک

ہر اک راستے، ہر روش میں چراغاں ہے

دیکھو، اٹھو دوستو

یاس کی سرد، تاریک عبرت سراؤں سے نکلو

جہاں زندگی اپنے اک آخری سانس کے کرب میں مبتلا ہے،

اذیت میں جکڑی ہوئی ہے،

اٹھو، اپنی بیچارگی کے سیہ، اونگھتے مقبروں سے نکل کر

اُبھرتے ہوئے آج کے آفتابِ درخشاں کو دیکھو،

یہ پُرشور، بیباک، آزاد دریا،

ہواؤں کے سرسبز، شاداب جھونکے

لہکتے درختوں کے گاتے ہوئے سانس

—— ان سے محبت کرو!

چاندنی میں نہاتی ہوئی کونپلیں

باغ کی دلہنیں،

یہ ستاروں کی شبنم میں ٹھنڈے گلابوں کے پیالے

مہکتی، لچکتی ہوئی، نرم، دوشیزہ شاخیں

—— یہ سب محترم ہیں،

یہ پھیلے ہوئے کھیت، مٹی کی خوشبو، کھلی دھوپ، سورج کا زریں اجالا

پھلوں سے لدے، جھومتے، جگمگاتے جواں پیڑ

—— سب زندگی ہیں!

اُٹھو، دوستو،

اِن کی عظمت سے

اُمید کا حسن لے کر،

گھروں کو سجا لو! ——

سازینۂ نو

عبداللہ خاور

وادیٔ دل میں چراغاں کر دو
شمعِ جمہور فروزاں کر دو
ذرۂ خاک میں کرنوں کے چلن جاگ اٹھے
صبح آئی تو سبھی کوہ و دمن جاگ اٹھے
نکہتِ گل ہے پرستارِ صبا
اور صبا دید کا پیغام لئے۔
گنگناتی ہے درِ دل کے قریں۔
زندگی ہے کہ ابلتی ہی چلی آتی ہے
کوہساروں پہ چلا پرتوِ مہتاب کی ہے
از افق تا بہ افق
وادیاں۔ بنتِ بہار۔
ساحل و دشت میں، صحراؤں، ستاروں کا ہجوم
مہ و انجم سرِ سیمائے وطن جاگ اٹھے۔
پاسبانانِ وطن باہمہ سطوت، جبروت
خیل در خیل چلے آتے ہیں۔
ان کے تیور سے پہاڑوں کی صلابت لرزاں
ان کی نظروں میں بپھرتے ہوئے طوفاں پنہاں

صدرِ جمہور کے ساتھ

سیلِ جمہور ہے، ہنگامۂ جمہور ہے آج
حفظِ ناموسِ وطن، جذبۂ بے تاب عروج
روز و شب اپنا یہ دستور ہے آج

قریہ و شہر و خراباتِ کہن جاگ اٹھے۔
صدرِ جمہور کے لب ہائے تبسم کا فسوں
فاصلے رشتۂ وحدت میں پروئے جس نے
خاک کے دل میں نئے عزم سموئے جس نے
ساحلِ سندھ سے تا ارضِ جبال
ہے بپا جشنِ طرب شب ہمہ شب، روز بروز
شرق کے زہرہ جبیں رقص کناں
غرب کے ہاتھ میں ہے سازینۂ نو ——
نغمہ گر، نغمہ سرا با دف و طنبورہ و چنگ
نغمۂ نو کی کمک وادیوں، کہساروں میں؛
کلی کلی میں آج تری رعنائی ہے
ساقی بن کر رُتِ بہاراں آئی ہے
پھوٹی ہے چہروں پہ شفق کی رنگینی
قوسِ قزح ہے رقص میں یا انگڑائی ہے
امیدوں کے پھول کھلے دامن دامن
پھولوں کی رُت گیتوں میں لہرائی ہے

خوشا روزگارے!

رشید آفریں

بجھ رہا تھا عزّت و ناموسِ ملّت کا چراغ
نو عروسِ ملک کی تاباں جبیں تھی داغ داغ

جس طرح سب پھول ہوں فصلِ خزاں میں زرد زرد
یوں ہراساں تھا ہماری انجمن کا فرد فرد

ہر طرف تھی تیرگی اور راہ ناہموار تھی
کیا کہیں یہ قوم کن آفات سے دوچار تھی

اس طرف نشو و نما کے بند تھے سب راستے
اور دنیا کے بدلتے جا رہے تھے زاویے

مائلِ پرواز تھے سب نت نئے انداز سے
تھے ہمیں محروم لیکن قوّتِ پرواز سے

قوم تھی دنیا میں جس کا پاسباں کوئی نہ تھا
راہبر کوئی نہ تھا اور کارواں کوئی نہ تھا

آسماں پرخون تھا یا ایک رنگِ بے کسی
مرغِ بسمل کی طرح دم توڑتی تھی زندگی

حالِ ملّت دیکھ کر دل اہلِ دل کے ہل گئے
آرزوؤں کے شگوفے خاک میں یوں مل گئے

ہر محبِّ قوم کا دل رو رہا تھا دہر میں
سب ہی بہتے جا رہے تھے بے بسی کی لہر میں

آخر اٹھا اک مجاہد باندھ کر سر پر کفن
جس کے دل میں عظمتِ ملّت کی تھی روشن کرن

کاٹ ڈالا اس نے جسمِ قوم کے ناسور کو
زندگی بخشی نئی پھر ملّت مجبور کو

دن کو دن سمجھا نہ اس نے شب کو شب جانا کبھی
اس سے جو بھی ہو سکا اس کام کی تکمیل کی

نام ثبت کر دیا دنیا کی نظروں میں بلند
پھر نہ ملّت کو ملے گا کوئی ایسا دردمند

اس پہ احساسات کے ہر سو دیئے جلنے لگے
راہرو اس روشنی میں شادماں چلنے لگے

کھل اٹھے جوشِ عمل سے ہر طرف گویا چمن
کر لیا زیبِ بدن ملّت نے اُجلا پیرہن

جائزہ:

"رُخ ہوا کا"

شہاب رفعت

یہ ظاہر ہے کہ دورِ انقلاب کے بعد ایک نیا دور شروع ہوا ہے جو پچھلے تمام دوروں سے مختلف ہے۔ نہ صرف سیاسی بلکہ ہر اعتبار سے۔ اس میں گویا ہماری حیاتِ ملیہ اور اس کے تمام مظاہر از سرِ نو مرتب ہوئے ہیں۔ جو تار و پود بکھر چکے تھے۔ اب وہ نئے سرے سے مل جل کر ایک اور ہی انداز میں مربوط ہونے لگے ہیں جس کے معنی ہیں ایک نئی ترتیب، ایک نئی شیرازہ بندی۔

دورِ انقلاب سے پہلے جو کیفیت تھی وہ ہمارے سامنے ہے۔ اُس تھوڑے سے زمانے کو چھوڑتے ہوئے جو قائدِ اعظمؒ اور لیاقت علی خاںؒ کی زیرِ قیادت گزرا، باقی سارا زمانہ بڑی ہی افراتفری اور قومی بحران کا زمانہ تھا جس میں ایک نہیں ہزاروں خرابیاں جمع ہو گئی تھیں۔ اور یہ نیا نیا اُبھرتا ہوا ملک، نئی نئی پیدا شدہ قوم، بری طرح تخریبی عنصروں کی کھینچا تانی کا شکار رہتی۔ اس لئے ملک بھی اور قوم بھی دونوں تقریباً تباہی کے کنارے آن لگے تھے ایسے حالات میں دو ہی باتیں ممکن تھیں۔ عین وقت پہ تند و تیز طوفانی ہوائیں اس ملک کو چکنا چور کر دیتیں، یا کوئی مردے از غیب سامنے آکر اسے سنبھال لیتا۔ یہ ایک خداساز اتفاق تھا کہ انقلاب ۱۹۵۸ء نے صدرِ پاکستان، فیلڈ مارشل محمد ایوب خان جیسے دانا، بینا اور توانا انسان اور بہی خواہِ قوم و ملک کی زیرِ قیادت اسے عین وقت پر سنبھال لیا اور اسے ہنگامہ زارِ حیات میں برقرار رہنے کا ایک اور موقع دیا۔

مگر انقلاب، اور وہ بھی تعمیری انقلاب، جو ابتداً مارشل لار کے ہنگامی ضوابط کا سہارا لینے کے لئے قدرتاً مجبور تھا، ایک آزاد و جمہوریت پسند ملک میں دائمی طور پر اس وسیلے سے کام نہیں لے سکتا تھا۔ کیونکہ حقیقی ملی استحکام و فلاح زیادہ آزاد و جمہوری فضا ہی میں بروئے کار آسکتی ہے، جس کے لئے اس دورِ انقلاب میں تطہیر و تعمیر کے دو اہم وسیلوں سے کام لیا گیا تھا۔

بانیانِ انقلاب خصوصاً صدرِ پاکستان جیسے جہاں دیدہ اور بالغ نظر انسان کو اس حقیقت کا پورا پورا علم و احساس تھا۔ اس لئے انہوں نے دورِ انقلاب کو زیادہ سے زیادہ سنبھلنے اور قوم کے لئے تدریجی

سے صبا رفتار ہونے کا ذریعہ بنایا۔ انہوں نے اس امر کے لئے سعیِ بلیغ کرنے میں کوئی کسر نہ اٹھا رکھی کہ وہ اصلاح و تطہیر سے کام لیتے ہوئے ایک نئے، تندرست دورِ نشو و نما کی داغ بیل ڈالی۔ چنانچہ منجملہ دیگر امور کے نئے دستور کی وضع و تشکیل اور بنیادی جمہوریتوں کا تجربہ اس جدوجہد کے آئینہ دار ہیں۔ ان کا مقصدِ اولیٰ تمام تر یہی تھا کہ ملک و قوم کی نئے سرے سے چمن بندی کی جائے اور خس و خاشاک کو دور کر کے اس چمن میں نئی کونپلوں کو ابھرنے اور نئے برگ و بار کو پیدا ہونے کا موقع دیا جائے۔

جیسا کہ لازم تھا، سربراہانِ قوم کی کوشش یہ تھی کہ انقلاب کی بدولت جو کچھ حاصل ہوا ہے اُسے برقرار رکھا جائے، ضائع نہ ہونے دیا جائے۔ بے راہ و مطلق العنان نہیں بلکہ مناسب و متوازن آزادی یہ تھا ان کا مطمحِ نظر۔ چنانچہ نئے دستور میں اس کا کماحقہ، اہتمام کیا گیا۔ انتخابات میں خود غرض عناصر کو کھل کھیلنے کا موقع دینے کی بجائے عوام کے ان نمائندوں کے سامنے آنے کا بندوبست کیا گیا جو اُن میں سے ہوتے ہوئے ان سے سب سے زیادہ قریب ہوں اور جنہیں وہ جانتے اور انہیں وہ جانتے ہوں یہ ایک ایسی جمہوریت کی نمود تھی جو قوم کے حالات و ضروریات کے لئے موزوں ہو۔ اور موجودہ اسمبلیاں انہی پر مشتمل ہیں۔ یہی وجہ ہے کہ وہ شروع ہی سے ان امور پہ توجہ دے رہی ہیں جو اسلامی معاشرہ کے لئے ضروری ہیں۔ معاشی زندگی کو بحال کرنا ہے اس طرح کہ اس کی تندرست نشو و نما ممکن ہو۔ بڑے سیاست دانوں اور سیاسی جماعتوں کے ملک دشمن عناصر کو پھر سے میدان میں لا ڈالنا پھر انہی تخریبی عناصر کو برسرِ کار آنے کا موقع دینا ہوگا۔ جن سے فتنہ و آشوب کے دروازے چوپٹ کھل گئے تھے۔ ایک تندرست حزبِ مخالف ہونے میں کوئی مضائقہ نہیں، بلکہ وہ ضروری ہے۔ چنانچہ وہ آہستہ آہستہ ملک میں اُبھر بھی رہی ہے۔

موجودہ حکومت کیا ہے؟ نئی صورتِ حالات کے ابھرنے کی تمہید و اساس۔ اسی لئے اس کی روش نرم ہے۔ اس میں کسی پہلو کی سخت گیری

نہیں۔ چنانچہ فوجی نظم و ضبط کی جگہ شہری نظم و ضبط کا دور دورہ ہو رہا ہے۔ وہ مقدمات جن کی سماعت پہلے فوجی عدالتیں کرتی تھیں۔ اب سول عدالتوں کے سامنے پیش ہوتے ہیں۔ پریس کی آزادی اس کے دن بدن بڑھتے ہوئے نکتہ چینی کے رجحانات سے ظاہر ہے، چنانچہ حکومت کی کارروائیوں پر جو صحت مندانہ جرح ہوتی ہے اس پر غور بھی کیا جاتا ہے تاکہ عوامی میلانات سے ہم آہنگی برقرار رکھی جا سکے جو اس دور کا خصوصی مطمح نظر ہے۔ انتہا یہ کہ ایبڈو زدہ سیاست دانوں کے معاملہ پر بھی نظرثانی کی جا سکتی ہے۔ ان تمام امور سے حالات بڑی حد تک معمول پر آ چکے ہیں اور روز بروز فضا زیادہ معتدل ہوتی جا رہی ہے۔

تا حال اپنے مختصر دوران میں حکومت نے رفاہ عامہ اور روبراہی حالات کے لئے سر توڑ کوشش کی ہے۔ اور بعض اہم اقدامات بھی کئے ہیں۔ یہ ایک اہم اقدام مشرقی پاکستان میں ترقیات عامہ کے لئے مشرقی پی۔ آئی۔ ڈی۔ سی۔ کا قیام ہے جس سے جلد ہی اہم نتائج کی توقع کی جا سکتی ہے۔ مشرقی پاکستان کے بارے میں جو کچھ کیا جا رہا ہے اس کے متعلق ایک برطانوی ادیب مسٹر جیمز محل نے اپنے مضمون مطبوعہ "دی سکاٹس مین" میں بڑا اہم انکشاف کیا ہے۔ اس نے لکھا ہے کہ صدر ایوب نے مشرقی پاکستان کے طویل المیعاد سرمایہ کاری کے میزانیہ کو دوگنا کر دیا ہے اور ایسی اسکیمیں جاری کی ہیں جو اس کے مواصلاتی نظام کو بہت بہتر بنا دیں گی۔ اور صرف مشرقی پاکستان ہی نہیں۔ مغربی پاکستان کے تمام حصوں میں بھی رفتار ترقی کا یہی عالم ہے۔ قومی نمود، وقار اور عروج و ترقی کی واضح علامت کے طور پر اسلام آباد میں نئے دارالحکومت اور ڈھاکہ میں ایک نئے ذیلی دارالحکومت کی تعمیر تیزی سے جاری ہے اور وہ دن دور نہیں جب یہ دونوں پوری آب و تاب سے منظر عام پر آ جائیں گے۔

ایک اہم اقدام تنخواہ کمیشن کی سفارشات پر عملدرآمد ہے۔ چنانچہ ادنیٰ اور نان گزیٹڈ عملہ کے لئے تنخواہوں اور اسکیلوں کا اعلان ہو چکا ہے۔ اور گزیٹڈ اسٹاف کے بارے میں اعلان ہونے ہی والا ہے۔ چین کے ساتھ سرحدی معاہدہ جس سے امن دوستی کی خواہش نمایاں ہے، اور دیگر تازہ ترین اقدامات ان کے علاوہ ہیں۔ قوم اور حکومت دونوں کی حمیت، بیداری اور عمل کی کسوٹی کشمیر ہے جس کے حق خود اختیاری کے لئے اہل پاکستان نے مصمم عہد بھی کر رکھا ہے۔ اور وعدہ بھی۔ یہ بھی امن عالم کے قیام ہی کی ایک صورت ہے اور پاکستان اس پر پورے استقلال سے قائم ہے۔ اسے حق اور صرف حق سے سروکار ہے۔ اس کا دوسروں کے ساتھ تعاون مشروط ہے۔ اگر سیٹو یا سینٹو فی الحقیقت اس کے قومی احساسات کے حامی و مددگار ہوں تو وہ ان کا حلیف رہے گا۔ ایسے ہی اس کے پرانے دوست واقعی دوست ہیں تو وہ ان کی دوستی پر قائم ہے لیکن اگر وہ کسی اور کی اس طرح امداد اور پشت پناہی کریں کہ وہ پاکستان کے مفاد کے خلاف ہو تو ضروری نہیں کہ وہ اپنے عہد وفا ہی کا پاس کئے جائے۔

بلا سے گر مژۂ یار تشنۂ خوں ہے
رکھوں کچھ اپنی بھی مژگانِ خوں فشاں کے لئے

پاکستان کی پالیسی لاتبدیل نہیں۔ اگر حالات اسے مجبور کریں تو وہ اپنا رویہ بدل بھی سکتا ہے۔ بنابریں اگر اس کے موجودہ لائحہ عمل میں اس تبدیلی تصور کا عکس نظر آئے تو کچھ عجب نہیں۔

ان تمام امور سے ایک بات بخوبی نمایاں ہے۔ ہمارے نئے ارباب اختیار کا خلوص، بیداری اور چوکنا پن۔ وہ نہ کسی کے ہاتھ بکے ہوئے ہیں اور نہ حالات کے تقاضوں سے بے خبر۔ اس لئے وہ ہر قدم انتہائی احتیاط سے، پورے غور و خوض کے بعد، اٹھا رہے ہیں۔ اور اس فہم و فراست اور ذوق و شوق ہی پر حقیقی ترقی کا دار و مدار ہوا کرتا ہے۔ ادب اور فن کبھی اپنے گرد و پیش کے حالات کا ساتھ دیتے ہیں اور کبھی نہیں دیتے۔ اور اس میں کوئی حرج نہیں شرط یہ ہے کہ ان میں زندگی اور توانائی کی روح موجزن ہو۔ وہ حقیقی معنوں میں جاندار معلوم ہوں۔ یہ بھی ضروری نہیں کہ ان میں یکدم قد آور شخصیتیں پیدا ہوں اور کثیر تعداد میں یکا یک بڑے شاہکار پیدا ہوں۔ اتنا ہی کافی ہے کہ وقتاً فوقتاً اچھے خاصے فن کار اور اچھی اچھی پیشکشیں پیدا ہوتی رہیں۔ مصوری، سنگ تراشی، موسیقی وغیرہ میں ایسی عام دلچسپی موجود ہے اور ان میں نئی نئی کوششیں بروئے کار آتی رہتی ہیں۔ زیادہ بنیادی بات اس دلچسپی ہی کا موجود ہونا ہے۔ اور ان میں لگا تار تخلیق۔ تاکہ سلسلہ کہیں ختم نہ جائے۔ اس وقت ہمارے یہاں مشرق و مغرب کے اختلاط کا دور ہے۔ اس لئے ہر میدان میں نئے نئے طور طریق، پیرائے اور طرز رواج پا رہی ہیں۔ اور رجحانات بہت ہی ملے جلے ہیں۔ بعض اوقات انمل بے جوڑ کی حد تک۔ کہیں کوئی سلسلہ بہت ہی پیچھے رہ گیا ہے پھر بھی وہ بدستور موجود ہے۔ کوئی سلسلہ درمیان تک ہی پہنچا ہے۔ اور کوئی بہت ہی دور، بہت آگے، نکل گیا ہے۔ جیسے زندگی میں ہے۔

ویسے ہی فن، ادب اور صحافت میں بھی ہے۔ کہیں تمام تر وضع پابند کہیں تمام تر آزاد ——— فکر میں بھی اور طرزِ روش میں بھی۔

اس موضوع کی بساط بہت وسیع ہے۔ اس لئے ہم فی الحال صرف فکر کی بعض بالخصوص پُر معنی تازہ کاریوں پر نظر ڈال لیتے ہیں۔ اول تنقید روایتی خیالات کے ڈھرے سے پرے ہٹنے میں کوشاں ہے۔ جہاں اکثر آوازیں اب بھی روایت، روایت، پکارتی ہیں وہاں بعض اس سے روگرداں ہو کر دوسری انتہا ——— انیٹی ——— کو اپناتی ہیں۔ کہیں اونچی، کہیں نیچی۔ کہیں عجیب، کہیں برمحل سنجیدہ تنقید اب شعر و ادب کے بعض جدید مظاہر کو جدید تسلیم کرنے کو تیار نہیں۔ چنانچہ "ادبی دنیا" کے ایک مضمون نگار نے بسیط تجزیہ کے بعد فیضؔ کو رجعت پسند قرار دینے کی ہمت کی ہے۔ اور اس کی رائے میں بہت وزن ہے۔ ایسے ہی حالیؔ، راشدؔ، میراجیؔ وغیرہ کے بارے میں بھی بعض چونکا دینے والی باتیں کہی گئی ہیں۔ ایسی آراء اور نظریئے ایک واضح رجحان کی علامت ہیں۔ اب فن برائے حیات۔ فن برائے افادیت و مقصدیت جیسے نظریات کو بلا حیل و حجت تسلیم نہیں کر لیا جاتا۔ بلکہ ان سے مدلل وجوہ کی بنا پر شدید اختلاف ظاہر کیا گیا ہے۔ اس کے معنی ہیں ادب و فن کا نئی نگاہوں سے جائزہ اور ان میں پیغام، حقائق اور رشد و ہدایت کی بجائے دوسری اہم قدروں کی تلاش جنہیں معنوی قدروں کی بجائے فنی قدریں کہنا بجا ہوگا۔ اس لئے ادب و فن کا ایک نیا تصوّر نمایاں ہوتا ہے جس کے باعث سابقہ آراء اور فیصلوں پر نظرِ ثانی لازم آتی ہے۔ اور کئی صورتوں میں ان کا استرداد اور تجدید بھی لازم قرار پاتی ہے۔

شاعری میں بھی ایک نیا اندازِ مشاہدہ و پیشکش کافی حد تک نمایاں ہو چکا ہے۔ یہاں تک کہ اس کا غزل پر بھی شدید غلبہ نظر آتا ہے۔ اس قدر کہ اس کی روایتی وضع، لب و لہجہ، مضامین بڑی حد تک دب چکے ہیں۔ مثلاً یہ اشعار لیجئے جنہیں کسی طرح بھی غزل کے ذیل میں لانا ممکن نہیں۔ ان میں صریحاً نظم ہی کے تیور جھلکتے ہیں۔ اور غزلوں پر غزلیں ایسی ہیں جو نظم سے قریب تر ہیں:

ہوا میں نرگسی پھولوں کی باس در آئی
مرے خیال میں یہ کس کی آنکھ بھر آئی
وہ دیکھو باغ میں کچنار کے درختوں پر
لگا کے کیسری مہندی شفق اتر آئی
وہ کون آیا ہے؟ اُس چھت پہ دیکھنا تاثر
کنارِ بام سے قوسِ قزح ابھر آئی

نظم میں الفاظ، آہنگ، تمثیلات، تکنیک سے لے کر تصوّر تک ایک نئی جست نظر آتی ہے۔

سرد نیلی اوس میں عریاں بدن
شہر کے سایوں کی بے انفاس رو
زنگ خوردہ نیم خوابیدہ لبیں
شہر کے گوشے میں روشن تاریک
ایک شہری ڈھول کی آواز ہے

موتی چور ملگیر باسی
اپسرائیں شبِ تاریک میں چھایا پتھر پہ

ہر بار ...... اسی طرح سے ... شاخیں
کھلتی ہوئی کونپلیں اٹھائے

رستوں کے سلاخچوں سے لگ کر

ہر صبح یہی مہکتی دوری
ہر صبح .... یہی کٹھور آنسو

ایسی بے شمار مثالیں اور بھی ہیں جنہیں کسی طرح ناحق نہیں قرار دیا جا سکتا۔ اور یہ سب کچھ بالکل حال کی بات ہے۔ اقبالؔ، میراجیؔ، فیضؔ سے بہت بعد کی۔ ان سے بھی زیادہ شاعری میں نئی وضع کی ایمائیت و علامتیت ہے۔ ایما سے مراد محض کوئی معنوی نکتہ نہیں بلکہ قسم قسم کی باریکیاں ہیں۔ جن پر آغا ہر احمر اور دوسرے مضمون نگار "ماہِ نو" کے بعض پچھلے شماروں میں روشنی ڈال چکے ہیں۔

علامتیت کو ہمارے یہاں بالکل بدیہی معنوں میں سمجھا گیا ہے۔ یعنی لاء قسم کی مساوات۔ چنانچہ مستقل مضامین ——— "اقبال اور اس کے رموز و علائم" ——— "اردو شاعری کے علائم میں ساقی۔ مینا، مے۔ شاہین۔ کلیم وغیرہ معین دلالت کی معین اصطلاحات

ہیں۔ حقیقی علامت نگاری اس سے بہت مختلف ہے۔ اس کی علامات نہ اتنی مکمل ہوتی ہیں نہ عام۔ اسی لئے وہ زیادہ اچھوتی، تخلیقی، بلیغ اور نادر ہوتی ہیں۔ فرانسیسی علامت نگاری کا ذکر کرتے ہوئے ڈاکٹر سید عبداللہ نے اس کو ایک طرح کی ٹھگی قرار دیا ہے۔ اس لئے کہ وہ معنی کو قاری سے چھپا دیتی ہے۔ اعلیٰ درجے کی علامت نگاری کبھی حجاب نہیں ہوتی۔ وہ ایک لطیف حجاب ہوتی ہے جیسے لطیف ابہام۔ حجاب ہوتے ہوئے بدیع قسم کا انکشاف۔ الفاظ کی طرح ان علامات کا انتخاب بھی ذاتی ہوتا ہے لیکن ایسا ذاتی نہیں کہ معنی فی البطن شاعر ہو کر رہ جائے اگر کوئی شاعر اظہار کی مناسبت اس قسم کی علامات میں پاتا ہے کہ:

سایۂ زرینک گئی ہے بے پری
کھینچتی ہے ایک تازہ زاویہ
اک خطِ ساکن سے روحِ تاجری

یا

وقت کے ذرے لہو میں گڑ گئے
عقربِ ساعت کی نوکِ تیز سے
نیل سے دیوارِ دل میں پڑ گئے

تو اس کے ذاتی انتخابِ الفاظ و علامات میں کیا برائی ہے؟ یہ تو اس کے مافی الضمیر کو زیادہ موثر و برجستہ طور سے ادا کرنے کی تدبیر ہے۔ ایسی علامتیت زیادہ گہرائیوں اور زیادہ رسائیوں کی خبر دیتی ہے۔ اسی لئے اس کا درجہ علامتیت سے کہیں ارفع و اعلیٰ ہے۔ جوں جوں شاعری زیادہ گہری اور مرکب ہوتی جاتی ہے۔ اتنا ہی زیادہ اسے اس قسم کی علامتیت پر انحصار کرنا پڑتا ہے جو ساتھ ہی ساتھ بلیغ اشارہ و کنایہ کی حامل بھی ہوتی ہے۔ ٹی۔ ایس ایلیٹ کی علامتی منظومات ہمارے ذہین طبقہ میں جس طرح کثرت سے زیرِ مطالعہ رہی ہیں۔ اس سے یہ توقع تھی کہ علامت نگاری کا یہ اعلیٰ تصور بہت جلد متعارف ہو جائے گا لیکن اتفاق سے ایسا نہیں ہوا۔ جن لوگوں نے ایلیٹ کی THE LOVE SONG OF J. ALFRED PRUFROCK پڑھی ہے وہ جانتے ہیں کہ اس میں بات نہ سیدھے سبھاؤ کہی گئی ہے اور نہ الٹے سبھاؤ جو اسے ٹھگی یا معمہ بنا دے۔ ٹھگی بہرحال کھلم کھلا چھین جھپٹ اندھا دھندھ سے بہتر ہے کیونکہ اس میں حکمت تو ہے۔ ایلیٹ کی یہ نظم تو دھاندلی تو در کنار ٹھگی بھی نہیں جست برجستہ بھی

ہے۔ کیونکہ اظہار سیدھی لکیر کی طرح آگے نہیں بڑھتا۔ اور بہت سے خلا قاری کو خود اپنے تخیل سے پُر کرنے پڑتے ہیں۔ واقعات سامنے کے سارے آپ ہی آپ بیان نہیں کر دئے گئے۔ اور سلسلہ بدیہی نہیں ہے اور نہ ایک بات سے دوسری بات تک پہنچ منطقی ہے بلکہ بات تلازمات سے آگے بڑھتی ہے۔ شدید جھٹکے کے ساتھ جس کا بادی النظر میں جواز نظر نہیں آتا لیکن ہوتے ہوتے سب کچھ سلجھ جاتا ہے، احساس کے بہاؤ میں ایک چیز دوسری کے ساتھ کھنچی چلی جاتی ہے۔

سب سے پہلے۔ "لو پھر ہم تم دونوں آئیں چلیں" میں تم عام مخاطب نہیں بلکہ اس سے کچھ زیادہ ہے۔ وہ شخص جسے راوی اپنے دل کی بات بتانا چاہتا ہے۔ یہ جھٹپٹے کا وقت ہے۔ نہ دن نہ رات۔ اور یہ سماں ساری نظم پر چھایا ہوا، اس کی روح رواں ہے۔ اور اس سے کتنی ہی گہرائیوں کے سوتے پھوٹتے آتے ہیں۔ لاشعور کا دھندلکا۔ دھیما دھیما دبا دبا لہجہ جھجکتا جھجکتا انکشاف خارج باطن، ظاہر پنہاں کا ملاپ۔ LIKE A PATIENT ETHERIZED ON A TABLE کے ساتھ یہ دونوں وقت ملنے کی دنیا۔ زندگی اور موت کے درمیان کی سرحد ایک سنگم بن جاتی ہے۔ ساتھ ہی ایک بیمار دنیا اور آپریشن کے کمرے کی فضا بھی پیدا ہوتی ہے اور کہا جا سکتا ہے کہ راوی گویا اپنا آپریشن کرنے کو ہے۔ یا کم از کم اپنا طبی امتحان کر رہا ہے — بیمار وہ خود بھی ہے اور اس کی دنیا بھی۔ وغیرہ وغیرہ۔ بیمار کی علامت بعینہٖ وہ ذاتی قسم کی علامت ہے جس کے علامت نگار حامی ہیں۔ اور یہ کوئی معمہ نہیں۔ بلکہ تمثیل میں وہ پھیلاؤ، وہ گمبھیرتا پیدا کرتا ہے جو عام ذرائع سے ممکن نہیں۔

یہی خصوصیات ہیں جو ایسی شاعری کو مرکب بنا دیتی ہیں۔ اس شاعری نے بعض نظموں کی راہ سے اردو میں صرف راہ ہی نہیں پائی بلکہ کچھ نئے مدارج تک بھی رسائی پیدا کی ہے۔ چونکہ یہ نظمیں مرکب ہیں اس لئے ان میں سے ہر ایک میں بند ہی بند ہیں جنہیں وا کرنے پر داستان خاصی دراز ہو جاتی ہے۔ اس لئے صرف ایک نظم "... کہ نہ دیکھا کرے کوئی؟" پر جو حال ہی میں حلقۂ اربابِ ذوق، کراچی میں پڑھی گئی تھی، سرسری نظر ڈالی جاتی ہے۔ عنوان ہی میں مرکب وضع: نظم کے مافیہ کا اچھوتے پیرائے میں انکشاف۔ نظم دراصل ایک افسانہ ہے۔ ایک فن کار کی نگاہ کوئی جلوہ مشاہدہ کرتی ہے۔ اور وہ اسے اپنے فن کی گرفت میں لانا چاہتا

ہے۔ وہ اس کو ہو بہو پیش کرنے کے لئے بہترین ساز و سامان تلاش کرتا ہے۔ گوناگوں رنگ روغن، کنواس، موقلم۔ اور وہ برسوں ریاض کرتا ہے۔ یہاں تک کہ ۸۰ سال کی عمر کو پہنچ جاتا ہے۔ آخر وہ تمثال تیار ہو جاتا ہے۔ عین اس لمحۂ کامرانی میں وہ انہی ہاتھوں سے جنہوں نے شاہکار بنایا تھا، اپنی بصارت چھین لیتا ہے۔ تاکہ وہ حقیقتِ منتظر لباسِ مجاز میں آنے کے باوجود حقیقتِ منتظر ہی رہے۔ اور وہ ذہن میں اس کے تمثال کا نت نیا تصور کرتا اور اسے نت نئے پیرایوں میں جلوہ گر کرنے کی حکمتیں سوچتا ہی رہے۔ اس طرح عنوان کی بات بڑی خوش اسلوبی سے پوری ہو جاتی ہے۔ اس فن کار کے لئے حقیقی معنوں میں دیکھنا یہی ہے کہ وہ نہ دیکھے اور اس کا فن برابر نمو پذیر رہے۔ کیا آپ اسے فنی رشک کہیں گے جو فن کی حدیں ختم ہونا پسند نہیں کرتا یا مسلسل نشو و نمائے فن کی تمنا یا غیرتِ عشق جو محبوب کو شرمندۂ عکاسی یا مطلق کو شرمندۂ تعین دیکھنا گوارا نہیں کرتا۔

شاعر نے قصداً اس کو آگ سے تمثیل دی ہے جو روحانی و مجازی دونوں اعتبار سے بجا ہے۔ پہلے بند میں اسی آتشیں ہیولیٰ یا پیکر کو نمایاں کیا گیا ہے لیکن اس کی وضاحت نہیں کی گئی۔ یہ بات قاری کے شعور پر چھوڑ دی گئی ہے کہ اس آتشیں تمثیل کاری کا مدعا کیا ہے۔ اس مظہر کا کنایتہً انکشاف جو فن کار کے ذوق و شوق کا محرک ہوا ہے۔ برق، شعلہ و آتش کے استعاروں کا ہجوم اشارتاً اس محرک کا تصور پیدا کرتا ہے۔ شدتِ جمال، شدتِ احساس، شدتِ اظہار اور شدتِ ارتفاع کے لئے آگ ہی کا عنصر بہمہ وجوہ مناسب ہے — ہمہ نور، ہمہ نار، گداز، مرئی، رفعت کوش — تمثیلات مجازی و حقیقی دونوں کے حسبِ حال ہیں۔ یہ اردو میں اپنی قسم کی پہلی بسیط تمثیل ہے۔ نظم کا آغاز ہی بلیغ علامت نگاری سے ہوتا ہے: اثیری۔ گیروا — لوبانی۔

پہلا لفظ فلک اثیر کی رعایت سے ہے۔ یعنی آگ اپنے لطیف ترین، ارفع و اعلیٰ، آسمانی روپ میں۔ گیروا پھر ایک معروف عارفانہ رنگ ہے، آگ سے مشابہ۔ مزید یہ کہ آگے چل کر یوگ فلسفہ کے اس تصور کی وضاحت ہے کہ جوں جوں ریاضت بڑھتی جاتی ہے۔ ریڑھ کی ہڈی کے مہرے سیدھے ہو ہو کر کنول کا روپ دھارتے جاتے ہیں۔ یہاں تک کہ وہ سب کے سب ایک کنول ہار بن جاتے ہیں یعنی انسان روحانی طور پر اشراق ہی اشراق بن جاتا ہے۔ یہی کیفیت ریاضِ فن کی بھی ہے۔ اس سلسلے میں شاعر تجلّی زار حسن ہے — تیسری تمثیل لوبانی — ہنود کے یہاں یا پھر مقدس محفلوں میں — مسلمانوں کے یہاں بھی عود و لوبان جلانے کا کیسے علم نہیں، اور لوبان نہ صرف خود سرخی مائل اور اس لئے آگ کے مشابہ ہے بلکہ اسے جلایا بھی جاتا ہے۔ جس سے شعلے ہی نہیں، پیچ و پیچ مرغولے بھی اٹھتے ہیں اور خوشبو کے بھبکے بھی چاروں طرف پھیل جاتے ہیں۔ شاعر نے انہی شعلوں اور مرغولوں سے اپنے مشاہدہ کردہ جلوے کا عکس کھینچا ہے۔ اور اس کی پاکیزگی و سجل پن کا احساس پیدا کیا۔ بلکہ اس کا جادو جگایا ہے۔ یہ تینوں تمثیلیں مل کر آنے والے نقشے کے لئے تیار کر دیتی ہیں۔ جیسے کسی مقدس ایوانِ جمال و جلال کی لوح پر کندہ طلسمی نقوش ہوں۔ اور وارداتِ تجلیات کے مبشر۔ گھونگھر گھونگھر کلیاں، اک لگاتار آتشیں رخ سرکھلاکی بڑی ہی کائیاں عکاسی ہے۔ گویا اس میں بھی یہ صفائی برتی گئی ہے کہ اس ہی کو خود ذاتِ جلوہ کی عکاسی بھی کہا جا سکتا ہے۔

ساری نظم میں سلسلۂ تعمیر کی کڑیاں اس ہی طرح مضمر ہیں۔ اور یہی ان کی خوبی ہے۔ اگر ان سب باتوں کو کھول کر بیان کیا جائے تو نظم سے سوگنا جگہ درکار ہوگی۔ اس ہی سے اندازہ ہو سکتا ہے کہ مرکب شاعری کا پیرایہ عام بیانیہ پیرایے سے، جو ہمارے یہاں اب تک رائج ہے، کس قدر بھرپور، جامع اور سیر حاصل ہے۔ اس مختصر جائزہ میں صرف دو ہی اور نکات کا ذکر کیا جا سکتا ہے۔ پیکرِ جلوہ ہی کا تشخص شاعر نے "سلفا لاٹ جوا" سے کیا ہے۔ یہ مرکب علاماتی شاعری کا مخصوص بلیغ پیرایہ ہے۔ سلفا کا اشارہ مشہور پنجابی لوک گیت کی طرف ہے جس میں کہا گیا ہے کہ:

ان نہا کے چھپڑ وچوں نکلی
سلفے دی لاٹ ورگی

احمد ندیم قاسمی نے اس کی یوں تشریح کی ہے: "اگر آپ سلفے کی 'لاٹ' کو غور سے دیکھیں تو آپ کو معلوم ہوگا کہ اس کا سرا چھوٹا اور سیاہی مائل ہوتا ہے۔ درمیانہ حصہ قدرے چوڑا اور بے حد روشن اور زیریں حصے تک آ کر یہ پھر چھوٹا ہو جاتا ہے" لیکن زیادہ اہم بات شعلے کا لال بھبوکا ہونا ہے جو سرخ تمتماتے ہوئے جسم کے ساتھ شدید مشابہت رکھتا ہے۔ اور پھر وہ تمتماتا ہوا جسم جو چھپڑ میں نہانے دھونے سے دو آتشہ بن چکا ہو، پنجابی گیت کی تمثیل کا جواب نہیں۔ مگر اردو شاعر کی استادی بھی قابلِ داد ہے کہ وہ اسے صاف اچک کر لے گیا ہے اور اس نے تلمیحاً بلکہ کنایتہً اسے کلام میں سمو دیا ہے۔ اور وہ اس سے بھی ایک قدم آگے بڑھتا ہے: "اطلس لاخ الحمرا" الحمرا تمام تر سنگِ سرخ کی لاجواب تعمیر ہے۔ گوناگوں رعنائیوں کا مجموعہ مرقع بلکہ مجموعہ۔ شاعر نے اپنے جلوۂ مقصود کو "اطلس لاخ الحمرا" کہہ کر ایک دم

کتنی ہی باتیں اکٹھی کر دی ہیں۔ انسانی حسن، آسمانی حسن، مشرق، مغرب، زندگی، فن۔ اطلس سے سرخی و نرمی اور اطلس کی بڑائی کی طرف بھی اشارہ ہے۔

وہ مقام جہاں یہ بتایا گیا ہے کہ فن کار اپنی ہاتھوں سے اپنی آنکھوں کو بے نور کر دیتا ہے جن سے اس نے اس نورٌ علیٰ نور تمثال کو جلوہ گر کیا تھا۔ بالخصوص بہتم بالشان ہے۔ اور اپنے اچانک انکشاف میں بے حد ڈرامائی ہے۔ ہاتھوں کے برابر —— نور ہی نور! اب آنکھوں میں اور دور ہی دور —— اب دور ہی دور۔ اب آنکھوں سے!

ساری نظم میں قریب قریب ہر مصرعے میں ایسی ہی تو ایجاد صناعیاں نمایاں ہیں۔ ان سے یہی نتیجہ اخذ ہوتا ہے کہ اگر ہماری شاعری اس راہ پر پڑ گئی جیسا کہ قوی امکان ہے کہ وہ پڑ جائے، تو اس کا دھارا یکسر بدل جائے گا۔ اور جدید تر و جدید ترین کا فرق نمایاں طور پر دکھائی دے گا۔ اردو شاعری سے قطع نظر اس نظم کی تکنیک ایسی ہے کہ اس سے عالمی شاعری میں بھی ایک نیا قدم اٹھتا ہے۔ ابتدا میں ایلیٹ کا حوالہ آپ کو یاد ہوگا "دی لو سانگ آف جے الفریڈ پروفراک" اور "ویسٹ لینڈ" دونوں میں راوی کا سلسلۂ بیان اور لہجہ بالکل واضح ہے۔ اس کی آواز سُنائی دیتی ہے اور وہ صاف اپنے من کی بات بتاتا ہوا معلوم ہوتا ہے۔ اس نظم میں یہ دونوں باتیں نہیں۔ اگر شاعری جیسا کہ ایلیٹ نے کہا ہے جذبات کا بے تحاشا انڈیل دینا نہیں بلکہ ان سے وارستگی ہے۔ تو یہ نظم اس کی پوری طرح مصداق ہے۔ اس میں "معروضی مترادف" فی الحقیقت معروضی ہے۔ راوی کی رقت یا جذباتیت کہیں بھی چھلک نہیں پڑتی۔ بلکہ فن کی پوری قدرت کے ساتھ بروئے کار آتی ہے۔ دوسرے حکایت یا روایت کہیں بھی فاش نہیں ہوتی۔ راوی کا احساس اور نظم کا مضمون درونِ پردہ پنہاں رہتا ہے مگر ایسے کہ

پہنے دھوپ مہین لباس
جتنا دور آتنا ہی پاس

راوی کا مدعا قاری خود اشارات و کنایات سے اخذ کرتا ہے۔ راوی خود اپنے بیان سے اس کی غمازی نہیں کرتا۔

چونکہ یہ تجربہ اردو شاعری میں ایک خاص اہمیت رکھتا ہے، اس لئے اس کا کسی قدر تفصیل سے ذکر کیا ہے۔ ظاہر ہے کہ ہمارے شاعروں کا شعور اور اس کے ساتھ خود زندگی بھی ایک نئے موڑ پر ہے۔ اگر ہم یہ موڑ مڑ گئے تو ہماری جولان گاہیں بہت مختلف ہوں گی۔ ہمارے لئے میدان، نئے نئے افق اجاگر ہوتے چلے جائیں گے۔

تعمیرِ آشیاں

اختر انصاری اکبر آبادی

(پاکستانی اہلِ قلم کو صدرِ پاکستان کے
حالیہ ارشادات کی روشنی میں)

روشن کرو اس عالمِ امکاں کو نکل کے
دنیا پہ ہیں چھائے ہوئے پُرہول دھندلکے

انساں کی خرابی پہ یہ حالِ دلِ صد چاک
رہ جاتا ہے آنکھوں میں لہو دل کا ابل کے

پھر امن کے جذبوں کو حیاتِ ابدی دو
جلتی ہوئی دنیا کہیں رہ جائے نہ جل کے

ہاں راہ میں ہے سنگِ گراں وحشتِ تخریب
اس دور کو پیغامِ محبت دو سنبھل کے

مشرق کے افق پر جو ابھر آئیں گی کرنیں
رہ جائیں گے مغرب کے اندھیرے بھی پگھل کے

سرمایۂ اخلاص تقاضا ہے وطن کا
روشن کرو ہر راہ کو جوں شمع پگھل کے

اے ہم سخنو! اب ہے نئے دور کا آغاز
آزادئ افکار خیالات سے چھلکے

ہو شعر اگر حاملِ احساسِ غم و درد
رکھ دو گے نئی زیست کی اقدار بدل کے

اب ضبط میں تبدیل ہوئی جنس ہوس کی
ہیں آج کے ایوب سکندر تھے جو کل کے

فردوس جو فردوس نہیں!

کنیز اختر

ہر افسانہ کی تہہ میں کوئی نہ کوئی حقیقت ضرور پنہاں ہوتی ہے۔
اگر کوئی داستان صحیح معنوں میں اس کی مصداق ہے تو وہ کشمیر کی عوامی داستان "گلریز" ہے۔ اس کا ہیرو تمام طلسمی داستانوں کے ہیروؤں کی طرح جن بھوتوں کے روایتی جبر و ستم سے تو دوچار ہوتا ہی ہے لیکن اس کے ساتھ ہی ان کی صنف نازک یعنی پریوں کے مکر و فریب سے بھی دوچار ہوئے بغیر نہیں رہ سکتا۔ اس بلاکشی میں اُس کا دوست وزیر زادہ بھی حسب معمول شریک ہوتا ہے۔ غیبی ستم شعار ـــــ قدرتی جفا کار ـــــ "دریائے الم" اور "کوہِ ستم" بھی ہیں ـــــ اور ان دونوں کو ایسی ایسی مصیبتوں اور دشواریوں میں مبتلا کرتے ہیں کہ ان کی جگہ کوئی اور ہوتا تو اپنا ارادہ ترک کرکے اپنی دنیا کو بے نیل مرام واپس آجاتا۔ مگر ان دونوں کی ہمت و استقلال قابل داد ہے کہ وہ طوفانِ حوادث سے منہ نہیں موڑتے اور آخر کار گوہرِ مقصود حاصل کرنے میں کامیاب ہو جاتے ہیں۔

یہ عوامی داستان کشمیر کی وادیٔ دلآرام میں بے حد مقبول ہے۔ بہار و خزاں ہو یا گرما و سرما، کشمیر کے لوگ ـــــ مزدور، تاجر، مرد، عورتیں، بچے ـــــ بھی اس منظوم داستان کو بڑے شوق سے سنتے ہیں۔ غالباً اس لئے کہ ان میں ہمت بلند اور اعلیٰ کردار کا بھرپور عکس نظر آتا ہے۔ اور اس کے افراد انسانیت کی گراں بہا قدروں کے امین اور پاسبان ہیں۔ وہ آسیبوں کی طاغوتی آمریت اور پریوں کی شیطانی تحریص و ترغیب کی پروا نہیں کرتے۔ دریائے الم کی پُرخروش، تلاطم آفریں موجیں ان کو اپنے عزم و ارادہ سے باز نہیں رکھ سکتیں اور کوہ ستم کی کرخت، خونخوار چٹانیں ان کے پائے شوق کو متحرک ہونے سے نہیں روک سکتیں۔ وہ انتہائی والہانہ پن سے "چلا چل جانبِ منزل چلا چل" کا ولولہ انگیز گیت گاتے ہوئے برابر آگے ہی بڑھتے چلے جاتے ہیں اور خود کو آزادی و حریت کے جاں نثار سپوت اور محافظ ثابت کرتے ہیں۔

کیا ہم اس داستان کو تمثیل کہیں؟ بلا شبہ یہ ایک تمثیل ہے ـ بے حد زندہ، جاندار، پرمعنی، بلیغ۔ عجب نہیں کہ ان کپکپا دینے والے حوادث نے جو اس قوم نجیب پر بعد کو نازل ہونے والے تھے، پہلے ہی اپنا سایہ ڈال دیا ہو۔ اور ان کے دل و دماغ میں اس تمثیلی داستان کی صورت میں جلوہ گر ہوئے ہوں۔ یہ افسانہ نہیں حقیقت ہے۔ ایک تلخ و جانگداز حقیقت۔

اہلِ کشمیر کے لئے یہ کوئی طلسمی داستان نہیں اور نہ محض قصہ۔ یہ تو لالۂ خونیں کفن کی وادی، جو کبھی سرو و چنار اور گل و یاسمن کی پیاری وادی تھی، کی خونچکاں آپ بیتی ہے۔ تاثر میں جگر خوں کن حوادث کی اشک آفریں سرگزشت۔ ایسے حوادث جو حریت کش اور آزادی دشمن قوتوں کے ہاتھوں سالہا سال وقوع پذیر ہوتے رہے ہیں۔ اور آج بھی اجنبی ہاتھوں کا بے نام گراں بار ستم اس وادیٔ بہاریں کے لئے جاں لیوا ثابت ہو رہا ہے۔ نوش لب، مست ناز، ناز مست، اونچی اونچی فصیلوں والے دیو زاد حصاروں اور طلسم اندر طلسم ولولوں میں اسیر۔ کیا یہ سب جیتی جاگتی ہستیاں نہیں؟ کیا ان کا اسیرِ دام ہونا ایک بادِ ہوا خیالی قصہ ہے؟ جب دنیا کے کسی بھی خطے میں آزادی، روشن ضمیری اور رواداری کے حسین تخیلات محکومی، جہالت اور بربریت کے آہنی پنجوں میں گرفتار ہو کر دم توڑ رہے ہوں تو کیا ہم اس کو قصص و حکایات کے نام سے یاد کریں گے؟ اگر ہم ایسا کریں گے تو یہ ہماری ذہنی نارسائی اور فقدانِ بصیرت کی دلیل ہوگا۔ یہ تو ایک ازلی و ابدی داستان ہے۔ اور اس کے مظاہر جس قدر قدیم ہیں اتنے ہی جدید بھی ہیں۔ دُور نہیں بہت قریب۔ ایسے کہ اگر ہم اپنے ہاتھ آگے بڑھائیں تو وہ ان شعلہ ہائے تند و تیز سے جل کر خاک ہو جائیں۔ جبر و حریت کی کشمکش ہنوز جاری و ساری

کی کشمکش برابر جاری ہے کسی صحرا میں، کسی وادی میں، کسی کوہستان میں اور کو کسی شاعر کے الفاظ میں پہاڑ سدا آزادی کے نشیمن رہے ہوں، لیکن قدرت کی ستم ظریفی سے شاید کسی کوہستان میں یہ کیفیت نہ رہے اور وہ جلاد حریت میں آزادی پسندوں کا قافلہ سالار بن جائے۔ بیسویں صدی کا دیوِ استبداد جمہوری قبا میں پلے کو ب — مگر تا بکے؟

وادیٔ سرچنار جب تقدیر کے، ایک انوکھے کھیل، ایک سودا بازی سے ان لوگوں کے ہاتھ آئی، جنہیں باذوق اہلِ ایران "سیج ہائے" کے نام سے یاد کرتے ہیں، تو وہ تاریخی طرفہ تماشا بروئے کار آیا جسے "سکھا شاہی" کہتے ہیں۔ جب سکھوں نے انگریزوں کے ہاتھ شکستِ فاش کھائی تو یہ افسوسناک حادثہ رونما ہوا کہ انہوں نے ریاست جموں وکشمیر کو انگریزوں کے ہاتھ فروخت کر دیا.... اور کس قدر ارزاں! برصغیر پاک وہند میں انگریز تاجر بن کر آئے تھے اور وہ جب تک یہاں رہے ان کی تاجرانہ ذہنیت سیاست میں بھی برقرار رہی۔ جب شکست خوردہ سکھوں نے وادیٔ کشمیر اور ملحقہ علاقہ جات انگریزوں کے حوالے کر دیئے تو انگریزوں نے اپنے خالی خزانے بھرنے اور اپنے ایک وفادار ساتھی، راجہ گلاب سنگھ عرف گلابو کو خوش کرنے کے لئے مذکورہ علاقہ جات اس کے ہاتھ فروخت کر دیئے۔ انگریز تاجروں نے قومِ نجیب و چرب دست و تر دماغ کو ڈوگرہ گلابو کے حوالے کرتے وقت اس امر کی طرف ذرہ بھر توجہ نہ دی کہ وہ اپنی اس حرکت سے انسانیت اور جمہوریت دونوں پر کس قدر ظلم کر رہے ہیں۔

ڈوگرہ جانشینانِ گلابو نے کشمیر اور کشمیر سے ملحقہ علاقہ جات پر سو سال حکومت کی۔ اور اس دوران میں جو جو گل کھلائے چرب دست و تر دماغ قومِ نجیب پر جو جو نوازش ہائے بے پایاں ہوئیں ان کے کیا کہنے کاش! اب یا تب ان میں کوئی بائرن پیدا ہوتا جس نے یونان کے سلسلے میں آتش نوائی کا ثبوت دیا تھا۔ "دریائے الم" کے چند شوب در "کوہ الم" کی چند اعضا شکن سنگینیاں ملاحظہ ہوں:۔

: ریاست کی تمام مزروعہ وغیر مزروعہ کا مالک مہاراجہ، کسانوں اور کاشتکاروں کے حقوقِ ملکیت کالعدم۔ مسلمانوں کی حالت کھیت مزدوروں سے بھی بدتر!

: سیاسی اطاعت اور انتظامی حمایت کے لئے ہندوؤں کو جاگیریں، مسلمان مزارعوں سے فراعنہ کا سلوک۔

۳ : فصل پک کر تیار ہوگئی۔ مہاراجہ کے کارندے ڈوگرہ سپاہی آئے اور سنگینوں کے زور پر سارا اناج اٹھا کر لے گئے۔

۴ : ہوا اور پانی کے سوا ہر چیز پر ٹیکس، یہاں تک کہ قبر کی کھدائی پر بھی ٹیکس، گورکنوں پر!

۵ : ریشم، زعفران، تمباکو، کاغذ، نمک اور اناج کی خرید و فروخت۔ ریاستی حکومت کا اجارہ۔

۶ : دکاندار، نانبائی، کنجڑے، قصاب، ملاح اور مزدور سب کی آدھی یومیہ کمائی سرکاری خزانہ میں جمع!

۷ : عیدین پر بکرے، دنبے، حلال کرنے پر فی بکرا یا فی دنبہ ٹیکس۔

۸ : بھیڑیں بکریاں پالنے پر ٹیکس۔

۹ : اگر کوئی ہندو مسلمان ہو جائے تو اپنی جائیداد منقولہ و غیر منقولہ سے محروم۔

۱۰ : گائے حلال کرنے پر سزائے موت۔

۱۱ : مہاراجہ یا اس کے کارندے مسلمانوں سے بیگار لیتے رہتے تھے۔

۱۲ : مسلمان سارے علاقے میں ۷۷ فی صد مگر ملازمتوں میں ان کا تناسب اس کے برعکس شیخ محمد عبداللہ اس قدر اعلیٰ تعلیم یافتہ ہونے کے باوجود ایک معمولی اسسٹنٹ کی اسامی پر بھی متعین نہ کئے جا سکے، محض اس وجہ سے کہ وہ مسلمان ہیں، ہرچند کہ یہ اسامی خالی پڑی رہی!

۱۳ : ڈوگرہ فوج میں مسلمان سپاہیوں کی تعداد ۱۵ فیصد اور باقی سب غیر مسلم۔ اس تناسب کو برقرار رکھنے کے لئے غیر ریاستی ڈوگروں، گورکھوں اور سکھوں کو بھرتی کیا جاتا تھا اور ریاست کے مسلمان پنجاب میں آکر انگریزی فوج میں بھرتی ہوتے۔

۱۴ : ڈوگرہ عہد میں ۲۸ وزیر اعظم ہوئے ان میں سے ایک بھی مسلمان نہ تھا۔

۱۵ : جب ۱۸۷۷ء میں بعہد مہاراجہ رنبیر سنگھ قحط پڑا تو قحط زدہ آبادی کو غلہ پہنچانے کے بجائے ریاست کے مسلمانوں کو کشتیوں میں لاد کر جھیل ولر میں غرق کر دیا گیا! اس ظلم کی شکایت اُس وقت کے برطانوی وائسرائے سے دہلی میں بھی کی گئی تھی۔

۱۶: ریاست کے بہت سے محکموں ـــــ پولیس، مال، وغیرہ کے کارندوں کو ریاستی خزانہ سے تنخواہ نہیں دی جاتی تھی۔ انہیں اجازت تھی کہ وہ ریاست کے مسلمانوں سے جس قدر چاہیں رشوت لے لیں، وہی ان کی "تنخواہ" تھی۔ رشوت کے کئی طریقے رائج تھے جن کو "رسوم" کہا جاتا تھا۔ کیا یہ ایسی حکومت ہے جس کے استقرار کے لئے ہنگامہ آرائی کی جائے یا اسے کسی بھی قول و قرار کے لائق سمجھا جائے؟ جب معمار خشت اول ہی کج رکھے تو دیوار ثریا تک پہنچا تو کجا، چند ہاتھ بھی بلند نہیں ہوسکتی۔ یہ ایک ایسی بنیادی حقیقت ہے جسے بہر حال پیش نظر رکھنا لازم ہے۔ اس کے بعد جو ہنگامے ہوں اُن کی نوعیت اظہر من الشمس ہے۔

یہاں ان تلخ و افسوس ناک حالات و واقعات کا اعادہ لاحاصل ہے۔ جو اس افتاد کے بعد رونما ہوئے سوال کا تعلق تمام تر کسی قوم کے جائز حقوق، اس کی آزادی، اس کے حق خود اختیاری، انسانوں کے ساتھ پنج شیلا کے اصولوں سے مطابق سلوک، بین الاقوامی روابط، بالخصوص پاک و ہند کے خوش گوار تعلقات اور امن عالم سے ہے۔ کشمیر کے بارے میں کہا گیا ہے اور بجا طور پر کہا گیا ہے کہ وہ ایشیا کا فلیتۂ بارود ہے۔ ذراسی چنگاری سے دنیا بھر کا امن بھک سے اڑ جائے گا ـــــ ۱۹۴۷ء میں جو کچھ ہوا وہ ہمارے سامنے ہے۔ اور یہ بہت چھوٹے پیمانے پر ہوا تھا۔ اگر خدانخواستہ یہ لوگ پھر بھڑک اٹھے، اور قوی اندیشہ ہے کہ یہ بڑے ہی زور شور سے بھڑک اٹھیں تو اس کا کیا نتیجہ ہوگا؟ دوسروں کو بھڑکانے اور لڑا بھڑا کر اپنا مقصد پورا کرنے والی فتنہ کیش طاقتیں پہلے بھی موجود تھیں اور اب بھی موجود ہیں۔ تباہی و بربادی کا اولین تختۂ مشق یہ دور افتادہ طاقتیں نہیں بلکہ ہم ہوں گے۔

جہاں تک اس دیرینہ قضیہ پر بحث و مباحثہ اور ان کی چھان پھٹک کا تعلق ہے یہ سب کارروائیاں ہوچکی ہیں اور یہ وقت نہیں کہ ان کے موافق و مخالف پہلوؤں پر بحث کی جائے اور کہا جائے کہ کون سچا ہے اور کون جھوٹا۔ یہ کھیل صدہا برس تک کھیلا جاسکتا ہے اور اس کا نتیجہ ناخوش گوار روابط اور مسلسل ہتھیار بندی کے سوا اور کچھ نہیں جس سے برصغیر کا کوئی حصہ بھی خاطر خواہ ترقی نہیں کرسکتا۔

حالات تھوڑی ہی دیر میں کیا صورت اختیار کرسکتے ہیں اس کی ایک تھوڑی سی جھلک اسی حال میں دکھائی دے بھی چکی ہے۔ اور اس سے وہ احساس پیدا ہونا چاہیئے جو نازک حالات سے پیدا ہونا لازم ہے۔ چین اور ہندوستان کے مابین شمالی سرحدات کے بارے میں مدت سے اختلاف ہے جو رہ رہ کر پرخاش کی صورت میں رونما ہوتا ہے۔ ابھی چند ہی دن کی بات ہے کہ اس نے یکایک ہمارے ہمسایہ ہندوستان کے لئے جس کی دوستی کے ہم ہمیشہ تہ دل سے خواہاں رہے ہیں، بے حد نازک صورت حال اختیار کرلی۔

اس نے پہلی بار یہ محسوس کیا سارے حریف حیدر آباد (دکن)، جوناگڑھ یا گوا نہیں ہیں کہ اُن کے لئے "پولیس ایکشن" کافی ہو۔ ظاہر ہے کہ چھوٹی چھوٹی اندرونی جہات کی وہ کیفیت نہیں جو بیرونی جہات کی ہے۔ اس لئے اب ہندوستان کو مجبوراً اپنی غیر جانبداری کا لبادہ دور کرکے بیرونی امداد کے لئے دست سوال دراز کرنا ہی پڑا ہے اور اپنی عسکری کمزوری کا احساس کرتے ہوئے ساری قوت دفاع پر صرف کرنا لازمی ہوگیا ہے۔ جو کل ہوا ہے وہ آج بھی ہوسکتا ہے۔ چین کے ساتھ سرحد کا تنازعہ بدستور موجود ہے اور کسی وقت بھی پُرآشوب شکل اختیار کرسکتا ہے۔ آخر یہ ایک مسئلہ نہیں تو اور کیا ہے کہ پاکستان نے ہمیشہ حالات کی نزاکت کو محسوس کرتے ہوئے مصالحانہ فیصلہ پر زور دیا ہے۔ اس کے لئے سر توڑ کوشش کی ہے۔ اس نے ہمیشہ مصالحت کا ہاتھ آگے بڑھایا ہے اور اب بھی اس کے لئے تیار ہے۔ شکر ہے کہ ہماری نیک دل اور ذی فہم حکومت نے بھی موجودہ تجربہ کے باعث مصالحانہ فیصلہ کی اہمیت کو محسوس کیا ہے اور باہمی صلاح و مشورہ کی دعوت کو رد نہیں کیا۔ چنانچہ اس سلسلہ میں چند کانفرنسیں منعقد بھی ہوچکی ہیں۔ ان کے نتیجہ میں فی الحال کوئی اہم صورت تو رونما نہیں ہوئی ہے لیکن کم از کم ہندوستان کا رویہ دنیا کے سامنے ضرور آچکا ہے۔ ہوسکتا ہے کہ باہمی مفاہمت و گفت و شنید کی فضا خیر سگالی کی بنیاد ثابت ہو۔ امید کرنی چاہئے کہ ٹھوس اور دور رس نتائج جلد رونما ہوں گے۔ اصل چیز دل کا بدلنا ہے۔ بہتر پالیسی یہی ہے کہ اس باب میں بالکل ناامید نہ ہوں۔ اور دل کی تبدیلی کے لئے کوشش کریں۔

بھارتی نمائندے نے آخری اجتماع میں کچھ پھندے پھینکے ہیں۔

باقی ص ۱۳۹ پر

غالب کی تصویر آفرینی

ڈاکٹر سید عبداللہ

تصویر آفرینی ــــــ یہ میں نے "امیجری" (IMAGERY) کا ترجمہ کیا ہے! امیجری سے مراد وہ تصویر آفرینی ہے جو محسوس اشیاء کو لفظوں کی مدد سے چشمِ خیال کے سامنے یوں لے آتی ہے گویا براہِ راست معین مشاہدہ کیا جا رہا ہے۔ مگر یہ تصویر آفرینی، کسی خارجی تحریک سے یا بالارادہ نہیں ہوتی بلکہ اظہار کے دوران، مزید توضیح یا تزئین کی خاطر تخیل کے اندر سے کسی منصوبے یا ارادے کے بغیر ابھر آتی ہے۔ (اسی کو انگریزی میں WITHOUT EXTERNAL STIMULUS ـ کہتے ہیں) اور یہی چیز اس کو ڈسکرپشن (DESCRIPTION) یا وصف الحال سے جدا کرتی ہے۔

کہا گیا ہے کہ شاعری کے قماش میں مصوری اور موسیقی کو تانے بانے کی حیثیت حاصل ہے۔ شاعری میں اگر تصوریت یعنی زائد توضیحی تصویریں نہ ہوں تو شاعری بے رنگ ہو جائے ــــ شاعر دراصل تصویر ساز ہی ہوتا ہے۔ موسیقی کا نمبر مصوری کے بعد آتا ہے۔ کیونکہ موسیقی یا غنا تو بدونِ الفاظ بھی ممکن ہے اور ادھر محض آوازیں کسی کو شاعر نہیں بنا سکتیں۔

شاعرانہ تصویریں اپنے ظہور کے لئے کسی تشبیہ یا استعارے یا صنعت کی محتاج ہوتی ہیں۔ اور انہی کے پیچ در پیچ عمل سے شاعری کی سطح کو اس طرح رنگین کرتی رہتی ہیں کہ یہ تصاویر بذاتِ خود ایک وسیع مرقع بن جاتی ہیں، یعنی شاعر کے افکار اور مضامین کی پہلی صف کے عقب میں، احساسات و جذبات کی مختلف النوع اور مستقل قطاریں، استوار ہوتی رہتی ہیں، اور شاعری کا یہ وہ مواد ہوتا ہے جو شاعر کے افکار کے "پس دیوار" اپنا کام دیتا ہے، یہ شاعر کے (شعوری طور پر ظاہر کئے ہوئے) رجحانات سے زیادہ یقینی اور قطعی ہوتا ہے، اس کی امداد سے شاعر کے ذوق اور میلان کے تنوعات کا صحیح تعین ہو سکتا ہے ــــ اور اس سے شاعر کے ذہن و نفس کا مطالعہ ممکن ہو جاتا ہے ــــ، اس کے آئینے میں شاعر کا اصلی چہرہ نظر آ جاتا ہے۔ شاعر، اپنی شاعری کے پردے میں اپنی ذات کو چھپانا بھی چاہتا ہو تب بھی اخفائے ذات کی کوئی کوشش کامیاب نہیں ہو سکتی۔ کیونکہ اس کی تصویریں اس کو بے نقاب کرنے کے لئے کافی ہیں۔ اسی لئے کہا گیا ہے کہ شاعر کو اس کی لفظی تصویروں میں تلاش کرو کیونکہ اس کی دریافت کا بڑا ذریعہ اس کی تصویریں ہیں ــــ! آئیے۔ اس آئینے میں غالب کی تمثال پر نظر ڈالیں۔

غالب ایک کامیاب مصورِ جذبات ہیں، اور انہوں نے معاملہ بندی کا بھی ایک مخصوص انداز پیدا کیا ہے ــــ، معاملہ بندی سے مراد معاملاتِ محبت کی گفتگو ہے، معاملات میں محبوب سے میل جول، اس سے بات چیت، گلہ شکوہ، اس کے حُسن اور اس کے انداز و ادا کا براہِ راست بیان ہی نہیں خود محبوب سے، اس کی اداؤں کا ذکر اور تذکرہ ــــ یہ سب چیزیں شامل ہیں۔ معاملہ میں محض داخلی تاثر نہیں خارجی وصف الحال اہمیت رکھتا ہے ــــ، غالب کے یہاں معاملہ بندی کی ایک خاص صورت موجود ہے جس کی گفتگو کا یہ موقع نہیں۔ مجھے یہاں صرف یہ عرض کرنا ہے کہ غالب کے ذہن کا رُخ ٹھوس سے مجرّد کی طرف ہے۔ اس سے یہ نتیجہ نکلتا ہے کہ غالب کے ذہن کا فکری رجحان اس کے باقی رجحانات پر غالب ہے ــــ، غالب مادّی زندگی کے ذوق سے کتنے بھی سرشار کیوں نہ ہوں، اپنے فن اور تفکر میں وہ مادّے سے تجریدی کیفیتوں کی طرف بڑھتے نظر آتے ہیں۔ ان کی دیدہ وری اور ضروری ان کو مادّیات سے حقائق اور تصوّریات کی طرف لے جاتی ہے۔ وہ مفکر شاعر ہیں اور مفکر اس معنی میں کہ "خالص فکر" ان کی منزلِ مقصود ہے۔ وہ اپنے شاعرانہ عمل میں جب بھی رفعت طلب ہوتے ہیں، زمینی ماحول سے اُڑ کر فضائے علوی یا فضائے تجرید کی طرف بڑھنا چاہتے ہیں۔

میں نے غالب کی اس ذہنی سمت کا پتہ چلانے کے لئے ان کی لفظی تصویروں پر سرسری سی نظر ڈالی ہے۔ یوں تو غالب کی تصویروں میں وصفیہ مواد (DESCRIPTIVE) بھی مل جاتا ہے اور اس کے ثبوت میں بہت سے اشعار بھی پیش کئے جا سکتے ہیں، مگر میں نے اس غرض کے لئے جو گراف تیار کئے ہیں۔ ان میں مجھے غالب، ذہناً کیفیتی، تصوری اور تجریدی آدمی معلوم ہوتے ہیں۔

اس کے ثبوت میں بغرضِ اختصار میں غالب کی ایک غزل پیش کرتا ہوں ؎

ممکن نہیں کہ بھول کے بھی آرمیدہ ہوں
میں دشتِ غم میں آہوئے صیاد دیدہ ہوں

اس شعر کے دوسرے مصرعے میں جو تصویر ہے بظاہر VISUAL معلوم ہوتی ہے مگر یہ ظاہر ہے کہ دشت اور آہو اور صیاد کے باوجود اصل تصویر اس کیفیت کی مقصود ہے جو صیاد دیدہ آہو کی ہونی چاہئے ——— یہ کیفیت مرئی نہیں، اس کا صرف تصور کیا جا سکتا ہے۔

دوسرا شعر ہے ؎

ہوں دردمند جبر ہو یا اختیار ہو
گہ نالۂ کشیدہ گہ اشکِ چکیدہ ہوں

ہرگز کسی کے دل میں نہیں ہے مری جگہ
یعنی کلامِ نغز ولے ناشنیدہ ہوں

نغزِ ناشنیدہ میں موہوم اور معدوم کے درمیانی فاصلے تقریباً مٹ گئے ہیں ؎

ہوں گرمیٔ نشاطِ تصور سے نغمہ سنج
میں عندلیبِ گلشنِ ناآفریدہ ہوں

اس شعر میں مجسّم اور محسوس کی مدد سے موہوم اور معدوم کا تصور دلایا ہے۔

میں چشمِ واکشادہ و گلشن نظر فریب
لیکن عبث کہ شبنمِ خورشید دیدہ ہوں

اس شعر میں بھی ذہن کا رخ محسوس سے موہوم و معدوم کی جانب ہے۔

ان مثالوں سے یہ نہ سمجھ لیا جائے کہ غالب کی مصوری میں VISUAL اور محسوس اشیا موجود ہی نہیں۔ کہنا صرف یہ ہے کہ غالب کا ذہن، ان محسوسات کی تصویر کو مقصود نہیں سمجھتا ——— وہ ان کے اشارے سے ایک ایسی فضا پیدا کرتا ہے یا ایسے معانی کی رہنمائی کرتا ہے جو فکری ہیں، جن کو تصور یا ادراک سے سمجھا جا سکتا ہے، حواس سے محسوس نہیں کیا جا سکتا!

میں اس نکتے کی مزید تشریح کے لئے میر تقی میر کے کلام سے چند مثالیں پیش کر کے یہ واضح کر سکوں گا کہ میر کا ذہنی رخ محسوسات (حواس میں آنے والی چیزوں) کی طرف ہے۔ وہ معاملات اور کیفیات دونوں کی توضیح کے لئے جب امیجری لاتے ہیں تو ان کی IMAGES بالکل ٹھوس اور قطعی جسم و جان رکھنے والی ہوتی ہیں ؎

خوبیٔ رُو و چشم سے آنکھیں اٹک گئیں
پلکوں کی صف کو دیکھ کے بھیڑیں سرک گئیں

اس شعر کے دوسرے مصرعے میں عجیب قسم کی مرکب تصویر ہے جو سراپا محسوس ہے ——— عام مشاہدہ ہے کہ بھیڑیں خوف کے موقع پر گھبرا کر سب کی سب کسی ایک سمت سرک کر خوف کو ٹالنے کی کوشش کیا کرتی ہیں۔ تصویر میں کیفیت بھی ہے اور مشاہدہ بھی واضح ہے ؎

ترچھی نگاہیں پلکیں پھریں اس کی پھر پھریں
سو فوجیں جو دو دستہ کھڑی تھیں ٹھٹک گئیں

چلتے سمندِ ناز کی شوخی کو اس کی دیکھ
گھوڑوں کی باگیں دستِ سپہ سے اچک گئیں

محبت نے شاید کہ دی دل کو آگ
دھواں سا ہے کچھ اس نگر کی طرف

اب فائدہ سراغ سے بلبل کے باغباں
اطراف باغ ہوں گے پڑے مشتِ پر کہیں

شدہ ہے گھر کی بھی شعلۂ آواز
دود کچھ آشیاں سے اٹھتا ہے

اس کے کوچے سے جو اٹھ اہلِ وفا جاتے ہیں
تا نظر کام کرے رو بقفا جاتے ہیں

ان سب اشعار میں حالات یا کیفیات کو روشن کرنے کے لئے جو تصویریں وارد ہوئی ہیں، وہ قطعی، ٹھوس اور ہماری مشاہداتی حس یا تصور کے لئے حد درجہ تسلی بخش ہیں ـــــ میر کا ذہن عموماً مجردات اور موہومات سے ٹھوس محسوسات کی طرف سفر کرتا دکھائی دیتا ہے ـــــ میر کا زمینی مشاہدہ اور زمینی شوق ان کو زمین سے متعلق رکھتا ہے۔ ان کے برعکس غالب اپنے زمینی شوق کے باوجود "سرحد ادراک کے پرے" کی دنیا کی طرف بڑھتے ہیں ـــــ ان کی زمینی رخ والی تصویریں بھی ذہن کو تجرید کی رفعت اور موہومیت کی طرف لے جاتی ہیں۔

غالب عہدِ مغلیہ کی فارسی شاعری سے (جیسا کہ معلوم ہے) بے حد اثر پذیر تھے۔ اکبری، جہانگیری دور کے شعرا (ماسوا نظیری کے) واضح تصویر آفرینی سے کم دلچسپی رکھتے تھے ـــــ وہ تصویر سے زیادہ تاثر کی شدت میں اعتقاد رکھتے تھے ـــــ اسی لئے محسوس تصویریں ان کو بے مزہ معلوم ہوتی تھیں۔ عرفی کی جوشیلی اور مشتعل طبیعت حقیقت سے مطمئن نہ تھی، اسی لئے وہ اپنی دنیا سے بیزار ہو کر، بے جان چیزوں کے پتلے بنا بنا کر (PERSONIFY کر کر کے) ان میں روح پھونکتے رہتے تھے ـــــ فیضی اپنے رنگِ خاص میں محسوسات سے گریزاں تھے مگر ان سب تفصیلات کا یہ موقع نہیں۔ غالب بھی اس دور کی ہیجانی شاعری سے متاثر ہوئے جو دورِ مغلیہ کے آخر تک عزت کی نظر سے دیکھی جاتی رہی، ایک آدھ مثال دیکھئے۔ اس دور میں واضح تصویر سازی کے بجائے مبہم ذرائع سے فائدہ اٹھایا جاتا تھا۔ غالب کے یہاں بھی یہی ہے۔ مثلاً تعداد کے ذریعے مبالغہ کرنا شاعروں کی عام عادت تھی مثلاً

دوڑے ہے پھر ہر ایک گل و لالہ پر خیال
صد گلستاں نگاہ کا ساماں کئے ہوئے

پھر پرسشِ جراحتِ دل کو چلا ہے عشق
سامانِ صد ہزار نمکداں کئے ہوئے

تصویریت کا یہ اندازِ مبالغہ بعض ایسی اشیا کی مدد سے مؤثر بنایا گیا ہے جو شدت، افراط اور وسعت کی نمائندگی کرتی ہیں۔ مثلاً لفظ طوفان سے

اے عندلیب یک کفِ خس بہرِ آشیاں
طوفانِ آمد آمدِ فصلِ بہار ہے

اس شعر میں طوفان ایک مرئی (VISUAL) چیز ہے جس سے تصور کو مدد ملی ہے مگر مبالغہ سے کام لے کر تصویر کو مجسم کرنے کی بجائے خیالی کر دیا گیا ہے۔

بعض اوقات تصویر کے دونوں رُخ محسوس ہیں لیکن تصویر پھر بھی تصوری ہے، حقیقی نہیں سے

تمثال میں تیری ہے وہ شوخی کہ بصد شوق
آئینہ باندازِ گل آغوش کشا ہے

ظاہر ہے کہ آئینہ لاکھ آغوش کشائی کرے پھر بھی وہ آغوش سے محروم ہے سے

قمری کفِ خاکستر و بلبل قفسِ رنگ
اے نالہ نشانِ جگرِ سوختہ کیا ہے؟

قمری کو کفِ خاکستر کہنا ٹھیک مگر بلبل کو قفسِ رنگ کہہ کر تصویریت کو مبہم اور ٹھوس حقیقتوں سے دور لے جایا گیا ہے۔

غالب کی امیجری کی بحث بے حد دلچسپ ہے۔ مگر اس مختصر مضمون میں اس کے تفصیلی مطالعہ کی گنجائش نہیں۔

غالب کی چند ذہنی کیفیتیں بہر طور واضح ہیں:

اوّل: تقلیلِ الفاظ کی سعی یعنی تصویروں کو سمیٹ کر پیش کرنا۔ ان کا ذہن میر سے مختلف ہے جو جزئیات کے پھیلا دینے میں لطفِ خاص حاصل کرتا ہے۔ غالب وصف الحال[1] میں بھی پھیلاؤ سے بچتے ہیں مثلاً سے

بجلی اک کوند گئی آنکھوں کے آگے تو کیا
بات کرتے کہ میں لب تشنۂ تقریر بھی تھا

بجلی اک کوند گئی ـــــ بجلی کے مانند آنکھوں کے آگے آ کے وہ جھٹ سے غائب ہو گئے! یہاں غالب نے ساری بات "کوند گئی" کہہ کر ادا کر دی ہے ـــــ اور "سمٹنے" کی یہ خواہش غالب کے ذہن کی ایک عام حالت ہے۔

غالب کی دوسری ذہنی کیفیت "غیر معمولی" کی جستجو اور آرزو ہے اسی لئے وہ معمولی تشبیہات سے دامن بچا کر چلتے ہیں۔ اس کوشش میں وہ عام فہم حقیقتوں سے دُور چلے جاتے ہیں۔ اور MYTH کی تخلیق میں گرفتار ہو جاتے ہیں۔

غالب کے ذہن کی تیسری کیفیت، ان کا یہ احساس ہے کہ

---

[1] "وصف الحال" (بالفاظ "ڈسکرپشن")۔

(باقی صفحہ ۱۴۳ پر)

سخن فہمی اور سخن شناسی

ڈاکٹر ابواللیث صدیقی

تنقید کلام کی بنیاد تفہیم کلام پر ہے چاہے یہ تفہیم سرسری اور سطحی ہو یا گہرے مطالعہ اور غور و خوض کا نتیجہ ہو دونوں صورتوں میں اسے تنقید کا پہلا قدم سمجھنا چاہیئے بلکہ ایک حد تک بلکہ بعض کے نزدیک بڑی حد تک تنقید کا سطحی ہونا یا اس کا وقیع و باوقار ہونا اس پر منحصر ہے کہ نقاد کلام کے معنی بھی پوری طرح سمجھ گیا یا نہیں۔ شاعر یا نثر نگار، ناول نویس یا داستان گو یا خود نقاد جو کچھ کہنا چاہتا ہے، جن خیالات کا اظہار اسے مقصود ہوتا ہے، جن جذبات، احساسات اور کیفیات کو وہ ظاہر کرنا یا دوسروں تک پہنچانا چاہتا ہے یا جس مقصد یا نصب العین یا مشن کی وہ تبلیغ کرنا چاہتا ہے، جو پیغام وہ دینا چاہتا ہے اسے ہر صورت میں اپنی ترجمانی کے لئے ایک ذریعہ یا وسیلہ اختیار کرنا پڑتا ہے۔ اور یہ ذریعہ الفاظ ہیں۔ فنون لطیفہ کی تفریق اور تقسیم ایک حد تک اسی ذریعے کے اختلاف کا نتیجہ ہے۔ مصور رنگ اور خطوط کا سہارا لیتا ہے، رقاص حرکات و سکنات کا محتاج ہوتا ہے، بت تراش پتھر اور چھینی کی مدد سے صنم تراشتا ہے لیکن مقصد سب کا ایک ہوتا ہے اپنی ذات کا اظہار، اپنی کیفیات اور اپنے احساسات کا انعکاس، اپنے جذبات کی ترجمانی، اپنے پیغام کا ابلاغ، موضوع، خیال، مضمون، جذبہ، کیفیت، احساس یا حالت اگر روح ہے تو اس روح کو جسم الفاظ سے ملتا ہے۔ الفاظ محض خیال کا لباس یا پیرہن نہیں اس کا پیکر ہیں اور جس طرح روح اور پیکر کے تعلق کا نام زندگی ہے اسی طرح خیال اور لفظ کا رشتہ کلام کی اصل بنیاد ہے۔

الفاظ ہم روزمرہ ہر وقت اپنی گفتگو میں استعمال کرتے ہیں۔ ہم یہ بھی سمجھتے ہیں کہ ہم الفاظ کے معنی جانتے ہیں لیکن کتنے الفاظ کے معنی؟ کیا ہم میں سے ہر شخص کا ذخیرہ الفاظ برابر ہے؟ کیا ایک ان پڑھ انسان کا ذخیرہ الفاظ ایک عالم و فاضل، ایک شاعر اور ادیب کے ذخیرہ کے برابر ہوتا ہے؟ کیا سائنسدانوں کا ذخیرہ الفاظ عام لوگوں بلکہ ادیبوں اور شاعروں سے بھی کچھ الگ نہیں ہوتا؟ اگر یہ فرق موجود ہے تو پھر ہمیں الفاظ اور الفاظ میں تفریق کرنا پڑے گی۔ کچھ الفاظ ایسے ہیں جنہیں زبان کے بنیادی الفاظ کہنا چاہیئے۔ ان کے بغیر معمولی بات کرنا، سادہ اور آسان خیالات کو بیان کرنا ناممکن ہے۔ یہ حلقہ بھی بولنے والے کی ضرورت اور ماحول کے مطابق ہوتا ہے۔ دیہات کے رہنے والوں کی نسبتاً سادہ اور آسان زندگی میں نسبتاً کم الفاظ سے کام چل جاتا ہے شہروں کی مہذب، متمدن اور نسبتاً وسیع تر زندگی میں اس دائرہ کو بہت کچھ پھیلانا پڑتا ہے۔ پھر شہروں میں بھی ہر شخص کے لئے یہ حلقہ یکساں وسعت کا محتاج نہیں ہوتا۔ طبقاتی تفریق، تعلیم، پیشہ اور کاروبار کی نسبت سے یہ وسیع تر اور محدود تر ہو سکتا ہے۔ زبان میں یہ وسعت اکتساب اور کوشش سے حاصل ہوتی ہے، پھر اس میں اجتماعی اور انفرادی حلقے الگ الگ ہوتے ہیں۔ فرد جماعت سے سیکھتا ہے لیکن وہ جماعت کو سکھاتا بھی ہے۔ وہ صرف زبان کا ورثہ ہی نہیں پاتا، اس ورثہ میں اپنا حصہ شامل کرکے آئندہ نسلوں کے لئے ایک زیادہ ترقی یافتہ، ایک وسیع تر اور مکمل تر زبان چھوڑ جاتا ہے۔ الفاظ کی پیدائش کی تحقیق، ان کی اصل و نسل کا سراغ لگانا، ان کے تلفظ اور معنی کی تبدیلیوں کا مطالعہ کرنا ماہرین لسانیات کا کام سہی لیکن ادب کا طالب علم اور نقاد بھی اس سے بیگانہ نہیں رہ سکتا۔ ادب کی تار و پود الفاظ سے بنتی ہے، اور الفاظ کے معنی یا ان کی معنویت کی تفہیم جو تنقید سے پہلے ضروری اور لازمی ہے اتنی آسان بات نہیں جتنی بظاہر نظر آتی ہے۔ الفاظ پیدا ہوتے ہیں۔ جاندار اجسام کی طرح ان کی نشو و نما ہوتی ہے۔ وہ بڑھتے ہیں، پھلتے پھولتے ہیں، ان میں معنی کے رنگا رنگ پھول کھلتے ہیں اور پھر ان میں سے بعض مر جاتے ہیں، بعض مر کر زندہ ہوتے ہیں، بعض کمزور ہوتے ہیں، بعض جاندار

اور توانا۔ قدیم اور جدید ادب کا مطالعہ اس وقت تک مکمل نہیں ہو سکتا جب تک الفاظ اور ان کے معنی کی ان تبدیلیوں سے واقفیت نہ ہو۔ اس ناواقفیت کی بنا پر کبھی کبھی لسانی عصبیت بھی پیدا ہو جاتی ہے جو ادب کے مطالعہ، اس کی تفہیم اور تنقید کے راستے میں سنگِ گراں بن کر حائل ہو جاتی ہے۔ یہی وجہ تھی کہ اردو کے قدیم نقاد یعنی تذکرہ نگار دکنی اردو کے محاورہ سے واقف نہ ہونے کے باعث دکنی ادب کو "ایک لچریات" کہہ کر گذر جانے کی کوشش کرتے ہیں۔ میر تقی میر اپنے تذکرہ[1] میں یہ تو تسلیم کرتے ہیں کہ ریختہ گوئی کا آغاز دکن سے ہوا لیکن وہاں کا کوئی شاعر "نہیں مربوط" نظر نہیں آتا۔ معلوم نہیں مربوط سے میر کی مراد کیا تھی۔ اگر قلی قطب شاہ کا کلام مربوط نہیں، وجہی کی مثنوی، نصرتی کی گلشن عشق اور اس کے قصائد، ابن نشاطی کی پھول بن، خوب محمد چشتی کی خوب ترنگ، رستمی کا خاور نامہ، فائز کا قصہ رضوان شاہ و روح افزا، یہ اور بیشمار دکنی منظومات مربوط نہیں تو پھر شمالی ہند کے شعرا کا کلام کیونکر مربوط کہلا سکتا ہے۔

بہرحال اس باب میں زیادہ بحث کی ضرورت نہیں کہ تنقید کلام میں پہلا مرحلہ تفہیم کلام ہے جسے معنی یابی بھی کہہ سکتے ہیں۔ اس تفہیم یا معنی یابی کا دار و مدار سب سے پہلے الفاظ کی معنی شناسی اور معنی فہمی پر ہے۔ الفاظ صرف اصوات یا حروف کا مجموعہ نہیں۔ یہ علائم اور اشارات ہیں، مرتب اور مکمل، بامعنی اور مستقل۔ ہر لفظ کسی شے، فعل، تصور یا حالت کی علامت ہے۔ گفتگو میں یہ علامت صوتی اور تحریر میں لفظی ہے لیکن صوتی ہو یا لفظی مقصد دونوں کا ایک ہے۔ مخصوص علائم کو خاص معنی دینا، اسے ہم اصطلاحاً لفظ یا لفظ کہتے ہیں جو ایک مکمل تصور کی (خواہ وہ کوئی شے ہو یا فعل یا حالت یا کیفیت) چھوٹی سے چھوٹی مکمل اکائی ہوتی ہے۔ ہم یہاں اس بحث میں نہیں پڑنا چاہتے کہ آخر مخصوص آوازوں اور ان کے مجموعوں میں معنویت کس طرح پیدا ہوتی ہے یا سادہ زبان میں یوں کہئے کہ الفاظ کیسے بنتے ہیں اور ان کے معنی کا تعین کس طرح ہوتا ہے۔ یہ اہم اور دلچسپ بحث لسانیات کا موضوع ہے۔ نقاد کا لسانی مسائل سے دامن بچا کر نکل جانا مشکل ہے لیکن اس مسئلہ میں ہم آگے بڑھ جائیں تو کوئی حرج نہیں۔ الفاظ کے سب سے سادہ اور آسان معنی جن سے ہم سب آشنا ہیں وہ اس کے لغوی معنی ہیں۔ عام طور پر ایک لفظ کے ایک ہی معنی ہوتے ہیں اور اسی طرح ایک معنی یا تصور کے اظہار کے لئے ایک ہی لفظ موزوں، مناسب اور صحیح ہو سکتا ہے لیکن اکثر الفاظ میں ایک سے زیادہ معنی بھی ہوتے ہیں اور ایک ہی معنی کے لئے کئی لفظ بھی ہوتے ہیں۔ اگر ایک لفظ کے کئی معنی ہوں تو دراصل معنی خاص کا تعین محل وقوع اور سیاق و سباق سے ہی ہو سکتا ہے، مثلاً کوئی شخص "سونا" کہے تو معلوم نہیں "سونا" سے مراد نیند آنا، یا سونا سے مراد وہ قیمتی اور چمکدار دھات ہے جو خدا نہیں لیکن خدا نہ ہوتے ہوئے بھی ستار العیوب اور قاضی الحاجات ہے۔ "لگائے"، "منغنے" تو سیاق و سباق کے بغیر نہیں کہہ سکتے کہ یہ وہی گائے ہے جس کا ذکر مولوی اسمٰعیل میرٹھی نے کیا ہے:

رب کا شکر عطا کر بھائی
جس نے ہماری گائے بنائی

یا یہ کسی مغنی کو حکم یا اجازت ہے کہ وہ گانا شروع کرے۔

بہرحال لفظ مفرد معنی رکھتا ہو یا متعدد پہلی صورت لغوی معنی کی ہے۔ یہ عام فہم، سریع الفہم، کثیر الفہم، متفق الیسر، واضح، غیر مشکوک اور مستقل معنی ہوتے ہیں۔ ان کو سن کر سو میں ننانوے صورتوں میں مطلب واضح ہو جاتا ہے اور شک و شبہ یا اشتباہ باقی نہیں رہتا۔ عام گفتگو میں روزمرہ بولے جانے والے الفاظ اکثر و بیشتر یہی صورت رکھتے ہیں یعنی اپنے عام لغوی معنوں میں استعمال ہوتے ہیں۔ یہی الفاظ زبان کا سرمایہ ہیں اور ان پر عبور حاصل ہوئے بغیر کلام کی تفہیم ممکن نہیں۔ اہل زبان یہ سرمایہ ورثہ میں پاتے ہیں۔ آنکھ کھولتے ہیں تو ماں باپ، بہن بھائی، عزیز رشتہ دار ان کا تحفہ اسے پیش کرتے ہیں۔ بچہ ان کو نہیں سمجھتا، آہستہ آہستہ وہ ان الفاظ (آوازوں) اور ان کے معانی میں رشتہ قائم کر لیتا ہے اگرچہ خود ایک عرصہ تک وہ ان کو ادا نہیں کر سکتا۔ وہ ادا کرنے کی کوشش کرتا ہے۔ نقل کرتا ہے اپنی تتلی زبان سے ان کی نامکمل اور ناقص نقل سے وہی مطالب ادا کرتا ہے۔ زبان صاف ہوتی ہے تو نقل آہستہ آہستہ اصل کے مطابق ہوتی جاتی ہے۔ جیسے سنتا ہے ویسے ہی بولتا ہے۔ یہی اس کے لئے تلفظ کی سند ہے۔ جیسے جیسے زندگی میں آگے بڑھتا ہے گھر کی چہار دیواری آغوش مادر، بہن بھائیوں کے حلقے سے نکل کر ہمجولیوں، سہیلیوں، دوستوں،

---

[1] نکات الشعراء

کے دائرے وسیع ہوتے ہیں۔ مکتب اور مدرسے میں جاتا ہے، پڑھتا لکھتا ہے اس ذخیرہ میں اضافہ ہوتا چلا جاتا ہے۔ . .

الفاظ کا یہ ذخیرہ اور سرمایہ ہر شخص کا برابر اور یکساں نہیں ہوتا۔ کسی کا کم کسی کا زیادہ، اس کا انحصار ذاتی اور انفرادی ماحول، تعلیم اور اکتساب پر ہے۔ انفرادی خصوصیات کے علاوہ اس میں علاقائی اور جماعتی اثرات بھی اپنا رنگ دکھاتے ہیں۔ یہ اثرات صرف لب و لہجہ میں ہی نہیں الفاظ کے معانی میں دلچسپ فرق پیدا کرتے ہیں، یہ انفرادیت ذہنی سطح اور علم کی بلندی اور وسعت کے ساتھ ساتھ زیادہ نمایاں ہوتی چلی جاتی ہے۔ اس سطح سے جس قدر نیچے اترتے چلے آئیں انفرادیت کم اور مشترک سرمایہ زیادہ ہوتا ہے۔ یہ مشترک سرمایہ اتنا محدود اور مختصر ہو سکتا ہے کہ صرف چند سو الفاظ روزمرہ کے معمولی کاروبار کے لیے کافی ہو سکتے ہیں۔ اسے زبان کا بنیادی عنصر قرار دے سکتے ہیں۔

یہ عنصر خود جامد اور مستقل نہیں ہوتا۔ زمانہ کے ساتھ ساتھ اس میں اضافہ ہوتا رہتا ہے۔ نئی چیزیں دریافت یا ایجاد ہوتی ہیں یہ اپنے ساتھ اپنے نام لاتی ہیں۔ بہت سی چیزیں ترک ہو جاتی ہیں ان کے ساتھ ان کے نام بھی ترک ہو جاتے ہیں۔ انہیں اصطلاحاً متروکات کہتے ہیں۔ یہ وہ لفظ ہیں جو کبھی زندہ تھے اور مر گئے کہ ان کی ضرورت باقی نہیں رہی، بعض ان میں سے مر کر زندہ ہوئے لیکن نئے جنم میں ان کی صورت اور ان کا روپ رنگ بدل گیا۔ اب یہ جن معنوں میں استعمال ہوتے ہیں وہ ان کے پہلے اور اصلی معنی نہیں۔

متروکات کا ایک بڑا حصہ جو کسی تحریر میں محفوظ نہ رہا اب اس کا پتہ چلانا دشوار ہے۔ ہاں جہاں سے تحریر نے پرانی زبان کو محفوظ کر لیا ہے وہاں ان آثار قدیمہ کا سراغ مل جاتا ہے اور ان کی عہد بہ عہد تبدیلیوں کا بھی پتہ چل جاتا ہے۔ ان متروکات کا مطالعہ شاعر اور ادیب کے لئے بھی مفید ہو سکتا ہے۔ بہت سے لفظ جو مر گئے اس قابل تھے کہ نہ مرتے تو اچھا تھا کہ ان کے مفہوم کو ادا کرنے کے لئے اتنے موزوں دوسرے الفاظ پیدا نہ ہوئے۔ ان کو دوبارہ زندہ کرنا چاہیئے اور یہ زندہ ہو جاتے ہیں۔ بعض مردہ الفاظ نئے معنوں کے لئے استعمال ہو سکتے ہیں لیکن شاعر ادیب، انشا پرداز یا عام گفتگو کرنے والا ان کے مطالعے اور تلاش پر مجبور نہیں، وہ ان کے بغیر اپنا کام چلا سکتا ہے لیکن نقاد کو اس سے مفر نہیں وہ قدما کا کلام پڑھتا ہے جس سے اسے ادبی روایت کا سلسلہ ملتا ہے، وہ ادب کا تاریخی مطالعہ کرتا ہے، اس کی تدریجی ترقی اور عہد بہ عہد ارتقا کا مطالعہ کرتا ہے۔ وہ اس مطالعے میں اسے قدم قدم پر ان متروکات کا سامنا کرنا پڑتا ہے۔ وہ ان کو نہیں جانتا پہچانتا تو یہ سارا ذخیرہ اس کے لئے کالعدم ہے۔ اردو کا جو نقاد دکھنی زبان سے واقف نہیں، ولی کی زبان سے آشنا نہیں، میر و سودا بلکہ انشا اور مصحفی کے عہد تک کی زبان کے ان عناصر سے واقف نہیں وہ اردو کے ادبی سرمائے کے ایک بڑے اور اہم حصے کی تفہیم سے محروم ہے، ہماری زبان کی موجودہ اور جدید صورت ایک بڑی حد تک ناسخ کے عہد میں آ کر متعین ہوئی لیکن ناسخ سے پہلے اردو شاعری اور نثر دونوں کے بہت سے اعلیٰ درجے کے نمونے تخلیق ہو چکے تھے۔

قدیم زبان کا یہ مطالعہ نہایت دلچسپ بھی ہے۔ میر امن کی "باغ و بہار" میں "رنڈی" عورت کے معنوں میں استعمال ہوا ہے۔ اس وقت دونوں لفظ استعمال ہوتے تھے۔ پھر رنڈی کا لفظ ان معنوں میں ترک ہو گیا اور طوائف کے معنوں میں استعمال ہونے لگا اور آج بھی بلوچستان میں ایک اور ہی دلچسپ معنوں میں استعمال ہوتا ہے۔ وہاں "لانڈ" یا بیوہ کو "رنڈی" کہتے ہیں، یہ بلوچی نہیں، بلوچستان میں اردو بولنے والے استعمال کرتے ہیں، اردو والے بیوہ کہتے ہیں یا لانڈ کہتے ہیں۔ مرد کو جس کی بیوی مر جائے "رنڈوا" کہتے ہیں۔ ہندی والے "ودھوا" کہتے ہیں جو بیوہ کی ہی قدیم ہندی شکل ہے۔ اسی خاندان سے ڈھیا، اردو بیاہ، اور اس کے مشتقات، بیاہی، بیوی وغیرہ ملتے ہیں۔

متروکات کی مثالیں تلاش کرنے کے لئے بہت قدیم زمانے کی طرف رجوع کرنے کی ضرورت نہیں۔ میر حسن کی مثنوی اور نظیر اکبر آبادی کا کلام ایسا پرانا نہیں کہ ہم انہیں قدما میں شمار کریں۔ آج کا عام اردو بولنے اور پڑھنے والا ان کے کلام کو سمجھتا اور پڑھتا ہے لیکن دونوں میں بکثرت ایسے الفاظ ہیں جو اب استعمال نہیں ہوتے۔ ان کے معنی لغات میں تلاش کرنا پڑتے ہیں اور اکثر وہاں بھی نہیں ملتے۔

میر کی عشقیہ مثنویاں

ڈاکٹر گیان چند

میر نے مثنوی نگاری میں ایک طرحِ نو ڈالی۔ وہ شمالی ہند کے پہلے بڑے مثنوی نگار ہیں۔ یوں تو انہوں نے کل ملا کر ۳۷ مثنویاں لکھیں لیکن ادبی حیثیت سے عشقیہ مثنویاں زیادہ جاذبِ توجہ ہیں جن کی تعداد نو ہے:

(۱) مثنوی جوان و عروس (۲) معاملاتِ عشق (۳) جوشِ عشق (۴) خواب و خیال (۵) دریائے عشق (۶) اعجازِ عشق (۷) شعلۂ شوق (۸) مثنوی عشقیہ عرف عشقِ افغان پسر (۹) مورنامہ۔

پہلی اور آخری مثنوی نولکشوری کلیات میں شامل نہیں۔ انہیں راقم الحروف نے دریافت کر کے بالترتیب "نگار" جولائی ۱۹۵۵ء اور "اردو ادب" جون ۱۹۵۷ء میں شائع کیا تھا۔ ڈاکٹر عبادت بریلوی نے ان کو اپنے مرتبہ کلیاتِ میر میں شامل کر لیا ہے۔ پہلی مثنوی کے مخطوطہ میں اس کا کوئی نام نہیں۔ مگر سہولت کے لئے ہم اسے "جوان و عروس" کا نام دے سکتے ہیں۔

میر کی مثنویوں کا مطالعہ ان کی افتادِ طبع، ان کے سوانحِ حیات، ان کے عہد کے سیاسی و معاشی خلفشار کے پس منظر میں ہی کرنا چاہئے۔ میر ایک درویش کے بیٹے تھے اور بچپن سے سید امان اللہ اور بایزید جیسے درویشوں کے زیرِ اثر تربیت پائی۔ صوفی باپ میر کو ہمیشہ یہی سبق پڑھاتا تھا:

"اے پسر عشق بورز، عشق است کہ دریں کارخانہ متصرف است۔ اگر عشق نمی بود نظمِ کل صورت نمی بست عشق بسازد۔ عشق بسوزد۔ در عالم ہر چہ ہست ظہورِ عشق است۔"

میر کے مزاج میں ابتدا ہی سے خستگی و برشتگی بسی ہوئی تھی۔ لڑکپن کے بے فکر زمانے میں بھی یہ کھوئے کھوئے سے رہتے تھے۔ ان کے والد دریافت کرتے تھے:

"اے سرمایۂ جاں ایں چہ آتشے است کہ در دلت نہاں است"

یہ دس سال کے تھے کہ ان کے والد کا انتقال ہو گیا۔ باپ کی وفات کے بعد ان کے سوتیلے بھائی، حافظ محمد حسن نے بڑی بے رخی دکھائی جس کے باعث یہ گھر سے نکل کھڑے ہوئے۔ دلی کے پہلے سفر سے واپس آنے پر یہ ایک پری تمثال کو دل دے بیٹھے جس نے جلتی پر تیل کا کام کیا۔ "تذکرہ بہارِ بے خزاں" میں ہے:

"بشہرِ خویش بہ پری تمثالے کہ از عزیزانش بود در پردۂ تعشقِ طبع و میلِ خاطر داشت آخر عشق او خاصیت مشک پیدا کردہ۔"

افشائے رازِ پردہ دوبارہ ترکِ وطن کر کے دلی چلے گئے اور اپنے سوتیلے ماموں خان آرزو کے پاس ٹھہرے۔ ان کے بھائی، محمد حسن نے خان آرزو کو لکھ بھیجا کہ میر تقی فتنۂ روزگار ہے۔ اس پر خانِ موصوف نے میر کے ساتھ بدسلوکی کو شیوہ بنا لیا۔ عزیزوں کی ستم رانی اور ہجرِ محبوب کی سینہ کاوی دونوں نے مل کر ان کی طبیعت میں جنون کی کیفیت پیدا کر دی جس کی تفصیل مثنوی "خواب و خیال" اور "ذکرِ میر" دونوں میں ہے۔ "معاملاتِ عشق" اور "جوشِ عشق" بھی اسی داستان کی فصلیں ہیں:

"تذکرہ خوش معرکۂ زیبا" سے بھی میر کے قیامِ لکھنؤ کے ایک معاشقے کا انکشاف ہوتا ہے لکھا ہے:

"آخر میر صاحب کو ولولۂ عشق پیدا ہوا اور صورت کسی کی آئینۂ خورشید میں معائنہ ہوتی تھی۔ پیرِ جواں ہمت ایسوں کو کہتے ہیں۔ کسی نے پوچھا کہ پیرانہ سالی میں کتخدائی ہونے کا کیا باعث ہوا۔ فرمایا اس لئے کہ سسرال والے کہیں۔ 'لڑکا آیا۔'"

یہ بیان کے زرخیز تخیل کا کرشمہ معلوم ہوتا ہے۔ صاحبِ تذکرہ نے "آئینۂ ماہ" کی جگہ "آئینۂ خورشید" میں صورت پیدا کر دی

لیکن یہ نہ سوچا کہ آئینۂ خورشید پر نظر ڈالنے کی تاب کس کو ہے۔ کسی دوسرے ذریعے سے میرؔ کی مندرجہ بالا کتخدائی کی تصدیق نہیں ہوتی۔

عشق میں ناکامی، فاقہ کشی، اہلِ دنیا سے مایوسی، توکل و استغنا اور آئے دن کی آفات نے انہیں بد دماغ بنا دیا تھا ساتھ ہی انہیں اپنے کمال کا شدید احساس اور ناقدری کا شکوہ بھی تھا جس کی وجہ سے وہ کسی کو خاطر میں نہیں لاتے تھے۔ آصف الدولہ کے حضور میں مثنوی "شکار نامہ" پیش کی تو اس کے خاتمہ میں بر ملا اعلان کیا ؎

بہت کچھ کہا ہے کرو میرؔ بس
کہ اللہ بس اور باقی ہوس
جواہر تو کیا کیا دکھایا گیا
خریدار لیکن نہ پایا گیا
متاعِ ہنر پھیر لے کر چلو
بہت لکھنؤ میں رہے، گھر چلو

میرؔ کی عشقیہ مثنویاں ان کے مزاج و سیرت سے کلیتاً ہم آہنگ ہیں۔ فارسی اور اردو کی رومانی مثنویاں دو گروہوں میں تقسیم کی جا سکتی ہیں۔ (۱) طویل مافوق الفطرت منظوم داستانیں (۲) خالص واردات عشق کو پیش کرنے والی مختصر مثنویاں۔ ان میں قصہ کا پہلو کمزور رہتا ہے لیکن دل کی کیفیات اور واردات بیان کرنے پر زور دیا جاتا ہے۔ فارسی میں ان کی مثال "لیلیٰ مجنوں" اور "شیریں خسرو" ہیں لیکن میرؔ نے اس نوع کو ترقی دے کر ایک مخصوص رنگ روپ دیا۔ میرؔ کی مثنویاں دراصل ایک طویل غزل ہیں۔ ان کا تصورِ عشق غزل سے مستعار لیا گیا ہے۔ ان مثنویوں کا منشا عشق کی عالمگیری اور جہاں سوزی کا بیان کرنا ہے؛

یہ ہے میرؔ وہ عشقِ خانہ خراب
کہ جی جتنے مارے ہیں یاں بے حساب

غزل کا عاشق، میرؔ کی مثنوی کا ہیرو بن گیا ہے۔ ایک غزل میں فرماتے ہیں؛

جان اپنا جو ہم نے مارا تھا
کچھ ہمارا اسی میں وارا تھا
ہم تو تھے محوِ دوستی اس کے
گو کہ دشمن جہاں ہمارا تھا
عشق بازی میں کیا موئے ہیں میرؔ
آگے ہی جی انہوں نے ہارا تھا

کیا یہ ان کی مثنویوں کے ہیرو کی سرگزشت نہیں!

اب معاملاتِ عشق کی تمہید کے یہ اشعار بھی ملاحظہ کیجئے ؎

کچھ حقیقت نہ پوچھو کیا ہے عشق
حق اگر سمجھو تو خدا ہے عشق
عشق عالی جناب رکھتا ہے
جبرئیل و کتاب رکھتا ہے
عشق نے چھاتیاں جلائی ہیں
آگیں کس کس جگہ لگائی ہیں
خستۂ عشق کچھ نہ میرؔ ہوئے
بادشہ عشق میں فقیر ہوئے

ان میں سے ہر شعر کسی غزل کا مطلع ہو سکتا ہے۔ ان اشعار میں اس قسم کا رابطہ نہیں کہ اگر درمیان سے ایک دو شعر نکال لئے جائیں تو معنی میں خلل پڑ جائے۔ ان میں مسلسل غزل کی سی وحدتِ خیال ہے۔ گویا مثنویاتِ میرؔ میں افسانہ ایک ایسا قالب ہے جس پر عاشقِ مہجور کی آشفتہ دماغی کا لبادہ ڈال دیا گیا ہو۔ قدیم مثنوی نگاروں، مثلاً افضل۔ فضائل علی خاں۔ جعفر علی زکی کے یہاں عشق کا بیان حقیقت سے قریب تھا۔ میرؔ نے اسے ایک ناقابلِ حصول آدرش کا روپ دے دیا۔

میرؔ کا تصورِ عشق مثالیت کے ملاءِ اعلیٰ کا ہے۔ انہوں نے جذبِ عشق کی تاثیر دکھانے کے لئے ایک غیر صناعانہ ہتھکنڈے سے کام لیا یعنی انجام کو غیر فطری بنا دیا۔ عاشق کی موت پر محبوب بھی جان دینے کو مجبور ہو جاتا ہے اور لاشیں اس طرح واصل ہو جاتی ہیں کہ ہزار کوشش کے باوجود جدا نہیں ہوتیں۔ یہ انوکھا خیال میرؔ سے پہلے مقیمی کی دکنی مثنوی "چندر بدن و میار" اور اس کے بعد داآؔلہ کی مثنوی "طالب و موہنی" میں پیش کیا گیا۔ ظاہر ہے کہ میرؔ مقیمی یا دآلہ سے واقفیت نہ رکھتے تھے۔ عہدِ عالمگیری کی بعض فارسی مثنویوں میں بھی وصل پس از مرگ کا بیان ہے، میرؔ نے وہیں سے یہ مضمون اڑایا ہوگا۔ گویا میرؔ کے نزدیک عشق ایسا روگ ہے جو موت کے بعد بھی پیچھا نہیں چھوڑتا۔ دوسرے یہ کہ اگر فریقین ایک دوسرے پر صدقِ دل سے فدا ہیں تو کبھی نہ کبھی مل ہی جاتے ہیں۔ اس دنیا میں نہیں تو اُس دنیا میں۔ ظاہر ہے کہ یہ غیر فطری انجام آج قارئین

کو نہ متاثر کرتا ہے نہ قائل۔ پھر بار بار ہر مثنوی میں اسی خیال کو دہرانا آرٹ کے تقاضوں کو نظر انداز کرنا ہے۔

میر کی مثنوی کا ہیرو عشقیہ مثنویوں کی دوسری شق یعنی داستانی مثنویوں کے ہیرو افسانہ کی بالکل ضد ہے۔ "سحر البیان" "گلزار نسیم" اور اسی قبیل کے قصوں کا ہیرو ہمیشہ دودمانِ شاہی کا چشم و چراغ ہوتا تھا۔ لیکن مثنویاتِ میر کا ہیرو ہمیشہ طبقۂ عوام میں سے ہوتا ہے۔ میر کبھی نوابوں اور بادشاہوں کے گرویدہ نہ تھے۔ ع پر مری گفتگو عوام سے ہے ان کا مسلک تھا۔ ان کا عوامی ہیرو مجنوں صفت۔ فنا فی العشق۔ کارِ دنیا سے نابلد اور بے نیاز ہوتا ہے۔ داستانی مثنویوں کے ہیرو میں طبقۂ بالا کے تمام کمالات و اکتسابات جمع کر دیئے جاتے تھے۔ وہ شجاعت کے ساتھ ساتھ دنیادار اور مصلحت بیں ہوتا ہے۔ فقرہ بازی اور ضلع جگت کے معرکوں میں کبھی بند نہیں ہوتا۔ ضرورت پڑنے پر کسی دیو یا ساحرہ کو زک بھی دے سکتا ہے اور کسی پری کو فریب بھی لیکن مثنویاتِ میر کا ہیرو بڑا مسکین، وفادار، مغموم، بے چارہ، جاں باز عاشق ہوتا ہے جس کی زندگی پر رحم آتا ہے اور جس کی موت پر افسوس۔ داستانی مثنوی کا ہیرو مخالف قوتوں کو روندتا کچلتا کامرانی کی جانب بڑھا چلا جاتا ہے۔ لیکن خالص وارداتِ عشق کی مثنویوں کا ہیرو مخالف قوتوں کا شکار ہو کر جان سے گزر جاتا ہے۔

اگر داستانوں کا ہیرو ہر فن مولا تھا تو میر کا ہیرو "ایک فنا" ہے۔ اس میں بس ایک کمال ہے کہ وہ شدت کے ساتھ عشق کرتا ہے۔ اور دنیا و مافیہا سے غافل ہو جاتا ہے۔ وہ سرِ راہ یا لبِ بام کہیں حسن کی جھلک دیکھ لیتا ہے تو وہیں ڈٹ کر بیٹھ جاتا ہے۔ وہ بھی کیا زمانے تھے! شاید اس ہیرو سے بھی زیادہ قابلِ رحم محبوبہ کا والد ہے جس کے در پر ایک ہفتہ سے اس کی قرۃ العین کا قدردان ستیہ گرہ کئے بیٹھا ہے!

میر کی کئی مثنویوں میں ہیرو کسی منکوحہ عورت سے عشق کرتا ہے مثلاً "جوان و عروس"، "عشق افغان پسر" اور "مورنامہ" میں۔ نازنین بھی ہیرو کی چاہ میں مبتلا ہو جاتی ہے اور وفا کے ثبوت میں جان قربان کر دیتی ہے۔ گویا میر کے نزدیک یہ مستحسن ہے کہ ایک کتخدا عورت شوہر سے خیانت کر کے ایک نامحرم سے عشق بازی کرے۔ سماج کی تنظیم خاندان کی بنا پر کی گئی ہے۔ میر نے اپنی مثنویوں میں ازدواج پر وار کر کے سماجی نظام ہی نہیں اخلاقی نظام کو بھی درہم برہم کیا ہے!

جوں جوں میر صاحب کی عمر بڑھتی گئی ان کی مثنویوں میں غیر فطری عناصر زیادہ ہوتے گئے۔ "شعلۂ شوق" میں انہوں نے فریقین کے جسم کو شعلہ میں تبدیل کر دیا۔ "عشق افغان پسر" کا خاتمہ یوں ایک زندہ انسان موت کے دروازے سے گزرے بغیر ایک روحِ لطیف سے مل گیا۔ "مورنامہ" میں ایک طاؤس اور رانی کا معاشقہ ہے۔ اس سادہ لوح راجہ اور شاعر کو یہ موٹی سی بات نہ سوجھی کہ ایک عورت اور مور میں جنسی تعلقات ممکن نہیں۔

بظاہر تو میر کے ہیرو اور ہیروئن طبقۂ عوام سے ہیں۔ یعنی حقیقت نگاری کے تقاضوں کو داستانوں سے بہتر طریقے پر آسودہ کرتے ہیں لیکن تہ میں جا کر دیکھا جائے تو یہ حضرات اس زمین کے باشندے نہیں معلوم ہوتے۔ ان کا عشق اس بلندی پر ہے جہاں فرشتوں کے بھی پر جلتے ہیں یعنی یہ لوگ کسی اور سیارے کے باشندے معلوم ہوتے ہیں۔ ہمیں اپنے اردگرد نہ اس طرح کے "ستیہ گرہی" عاشق دکھائی دیتے ہیں نہ اس طرح جاں باز عاشق یا وفا شعار محبوبہ کی فرمائش پر موت فوراً آموجود ہوتی ہے۔ ادھر کی صدیوں میں وصل بعد ممات کی تو رسم ہی اٹھ گئی ــــ مختصراً یوں سمجھئے کہ میر کے عشقیہ افسانے شروع سے آخر تک خلافِ حقیقت ہیں۔

میر کی عشقیہ مثنویوں میں افسانوی دلچسپی بھی نہیں اور نہ کردار نگاری کے شاہکار ہی ہیں۔ ان کی واحد کائنات رودادِ عشق ہے اور اگر یہ بھی تشفی بخش نہیں تو پھر ان مثنویوں میں کیا ہے جس کی وجہ سے آج بھی یہ شاداب و تازہ ہیں۔

بظاہر یہ مثنویاں عشاق کی سرگزشت ہیں لیکن اس تخیلی سرگزشت کی کوئی اہمیت نہیں۔ ان نظموں میں جو چیز جاذبِ توجہ ہے وہ عشاق کا ماجرا نہیں بلکہ مجرد و مطلق عشق کا تصور ہے۔ اقبال کے یہاں عشق کائنات کو رواں دواں رکھنے والی قوت ہے۔ میر کے عشق کا تصور بھی کچھ اسی طرح ہمہ گیر ہے۔ غزل میں کہہ ہی چکے ہیں ع

اک عشق بھر رہا ہے زمین آسمان میں

درویش باپ بھی واضح کر چکا تھا۔ "عشق است کہ دریں کارخانہ متصرف است ... در عالم ہر چہ ہست ظہورِ عشق است"

میر عشق مجازی کو وہ مرتبہ بلند دیتے ہیں جو ابتک

عشقِ حقیقی کا اجارہ تھا۔ میرؔ ہر مثنوی کی ابتدا میں اور کبھی کبھار خاتمہ پر بھی
عشق کی طویل توصیف رقم کرتے ہیں ؎

نہ ہو عشق تو انس باہم نہ ہو
نہ ہو درمیاں یہ تو عالم نہ ہو
("جوان و عروس")

محبت نے ظلمت سے کاڑھا ہے نور
نہ ہوتی محبت نہ ہوتا ظہور
محبت ہی اس کارخانے میں ہے
محبت سے سب کچھ زمانے میں ہے
("شعلۂ شوق")

نظمِ کل کا ڈول ڈالا عشق نے
انس سے انساں نکالا عشق نے
وہ حقیقت سب میں یاں ساری ہوئی
ہے گی ہر شے عشق کی ماری ہوئی
چار سو ہنگامہ آرا عشق ہے
عشق کیا کہیے کہ کیا کیا عشق ہے
("مور نامہ")

عشق ہے تازہ کار تازہ خیال
ہر گھڑی اس کی اک نئی ہے چال
("دریائے عشق")

مثنویاتِ میرؔ کا یہی حصہ سب سے زیادہ دل نشیں ہوتا ہے بلکہ یہ کہا جا سکتا ہے کہ میرؔ کا مثالی عشق ہمہ گیر ہی نہیں ہمہ سوز بھی ہے۔ اس کا انجام ہمیشہ المیہ ہوتا ہے اور یہ وہ سانحہ ہے جس سے کسی کو مفر نہیں۔ متعدد مثنویوں میں اس کی جہاں سوزی کی طرف اشارہ کرتے ہیں:

ہے گی ہر شے عشق کی ماری ہوئی
عشق سے کیا میرؔ اتنی گفتگو
خاک اڑا دی عشق نے ہر چار سو
("مور نامہ")

عجب عشق ہے مردِ کار آمدہ
جہاں دونوں اس کے ہیں برہم زدہ ("شعلۂ شوق")

عشق کی اسی برہم زنیِ کونین کی تفصیل کے طور پر میرؔ کوئی حکایت پیش کرتے ہیں اور اسے اسی نہج پر ترتیب دیتے ہیں۔ چنانچہ ہر موقع اور ہر قدم پر عشق کی دل سوزی و جاں سوزی نمایاں رہتی ہے۔ مثنوی لکھتے وقت میرؔ کا واحد مقصد عشق کی جہاں سوزی کا بیان ہے۔ ان کی تمام توجہ اسی نقطے پر مرکوز رہتی ہے۔ وہ وحدتِ اثر کے قائل ہیں اس لئے باستثنائے اعجازِ عشق مثنوی کی رسمی تمہید سے گریز کرتے ہیں۔ ہڈیوں کو سلگا دینے والے اور روح کو گھلا دینے والے عشق کا بیان حمد و نعت و مناجات وغیرہ کا متحمل نہیں ہو سکتا۔ میرؔ پہلے مصرع سے جو فضا قائم کرتے ہیں وہ آخر تک برقرار رہتی ہے۔ عاشق کا کردار و گفتار ہو کہ ہجر کا عالم، محبوبہ کی وفا کا بیان ہو کہ عزیزوں کی ستم رانیوں کی شرح ہر ایک سے اسی مقصد کو تقویت پہنچتی ہے۔ تفصیلات میں جانے کا یہ محل نہیں۔

جذبۂ عشق کی شرح کے لئے میرؔ نے جامۂ حرف بھی اسی کے مطابق ہی چنا ہے۔ ان مثنویوں کی زبان میں بھی نرمی اور گھلاوٹ، خستگی و برشتگی رچی بسی ہوئی ہے۔ موضوع کے ساتھ ساتھ لہجہ بھی یاس و محرومی سے بھرا ہوا ہے:

آہ جو ہم دمی سی کرتی ہے
اب تو وہ بھی کمی سی کرتی ہے

کہتے ہیں ڈوبتے اچھلتے ہیں
لیکن ایسے کوئی نکلتے ہیں
عشق نے آہ کھو دیا اس کو
آخر آخر ڈبو دیا اس کو
("دریائے عشق")

جگر غم میں یک لخت خوں ہو گیا
رہا دل کہ آخر جنوں ہو گیا
("شعلۂ شوق")

میرؔ کی طرزِ مثنوی گوئی اس قدر مقبول ہوئی کہ ان کی تقلید میں متعدد مثنویاں لکھی گئیں۔ راسخ عظیم آبادی کی مثنویاں تو بالکل میرؔ کا چربہ ہیں۔ ان کے علاوہ ذیل کی مثنویاں بھی کم و بیش میرؔ سے ہی متاثر نظر آتی ہیں: (باقی صفحہ ۱۲۲ پر)

"میں نے لاہور جانا ہے"

(ایک لسانی تحقیق)

سید قدرت نقوی

"جزیرۂ سخنوراں" کی مجلس کبیر ملی" نے زبان کی غلطی کو ایک جرم عظیم قرار دیا۔ وہاں کے باسیوں نے اس جرم عظیم کی کیا سزا مقرر کر رکھی تھی؟ اس کا علم تو غلام عباس صاحب ہی کو ہو سکتا ہے۔ البتہ ان کی "جنّت الشعراء" کی مصداق سرزمین لکھنؤ ہے جس کے رہنے والے اپنی زبان کو کوثر و تسنیم سے دھلی ہوئی سمجھتے ہیں اور ان کے نزدیک زبان کی غلطی کرنے والوں میں سرفہرست "تنندہ دلانِ پنجاب" ہی رہے ہیں، حالانکہ زبان کے دونوں مرکزوں (دہلی و لکھنؤ) کی باہمی آویزش میں بھی اسی جرم کی بازگشت کارفرما ہے۔ غلطی تذکیر و تانیث کی ہو یا کسی لفظ کے غلط استعمال کرنے کی، یا کسی حرف کے بیجا برتنے کی، غلطی بہرحال غلطی ہے۔ اسی لئے میں نے سوچا کہ آج دہلی سے چل کر، دکن کی پُرپیچ گھاٹیوں پر نظر ڈالتا ہوا دہلی آؤں اور پھر لکھنؤ پہنچ کر وہاں کے حسین بازار، بارونق کوچے اور خوبصورت عمارات کو دیکھوں، وہاں کے نازک مزاجوں سے گفتگو کروں، اس کے بعد یقیناً دہلی ہو کر "میں نے لاہور ہی جانا ہے" کراچی نہیں۔

اُردو زبان نے دریائے سندھ کی وادی اور پانچ دریاؤں کی سرزمین سے ایک ہیولانی حیثیت میں، ایرانی، تورانی اور افغانی سپاہیوں کے ساتھ، وادیٔ گنگ و جمن کے سبزہ زاروں میں پہنچ کر ڈیرے ڈالے اور اس کھڑی بولی پر اپنا قبضہ جما لیا جو برج، ماگدھی اور پراکی کی بہن تھی جس کا دیس کورو پانڈو کی راجدھانی ہستناپور کے علاقہ میں تھا یہی علاقہ میرٹھ اور مضافاتِ دہلی کے نام سے مشہور ہے۔ یہی کھڑی بولی معمولی اختلاف کے ساتھ شمالی ہند سے اٹک تک بولی جاتی تھی۔ چنانچہ اُردو اور پنجابی میں یک گونہ مماثلت اسی بنا پر ہے۔ اسی لئے پنجابی بولی میں مستعملہ بعض مصادر کے افعال اور بعض اسماء کو دکھنی اردو کے قدیم آثار میں دیکھ کر یہ قیاس کر لیا گیا کہ اردو پنجابی ہی کی مہذب صورت ہے، حالانکہ ایسا نہیں ہے بلکہ حقیقت یہی ہے کہ وادیٔ گنگ و جمن سے اٹک تک عہدِ قدیم میں کھڑی بولی کا رواج تھا اور جب اس بولی پر بیرونی حملہ آوروں کا اثر ہوا تو زبان کے تغیری اصول کے ماتحت کہ دس دس، بیس بیس کوس کے فاصلہ پر زبان بدلتی جاتی ہے متاثرہ بولی کے دو روپ ہو گئے۔ ایک اُردو اور ایک پنجابی۔ قدیم اُردو دکھنی میں جو اسماء، و افعال پنجابی سے متعلق بتلائے جاتے ہیں ان کا تعلق کھڑی بولی سے ہے وہ قدیم اُردو میں رائج تھے، تہذیبی مراحل میں متروک ہو گئے۔ مگر پنجابی میں تہذیبی عمل نہیں ہوا۔ اس لئے اس زبان میں تاحال وہی قدیم الفاظ پائے جاتے ہیں۔ مرحوم حافظ محمود شیرانی "پنجاب میں اُردو" کو بھی یہی التباس ہوا۔ میری رائے میں وہ اس حقیقت کو نہ پا سکے کہ پنجابی اور اُردو کی مماثلت سے پنجابی اصل نہیں ہو سکتی بلکہ اس سے صرف یہ ثابت ہوتا ہے کہ دونوں کا منبع ایک ہے۔

یہ بات میں نے جملہ معترضہ کے طور پر اس لئے کہی کہ میرے نزدیک اُردو اور پنجابی دو سگی بہنیں ہیں۔ اُردو بولنے والے پنجابی کی باتیں، اور پنجابی بولنے والے اُردو کی باتیں، ساٹھ سے اسی فی صد تک سمجھ جاتے ہیں۔ وارث شاہ کا یہ شعر ہے ؎

علیؑ وانگ نہ سخی دلیر کوئی، پہلوان نہ مردِ مشہور جیہا
نیکوکار نہ وانگ حسینؑ کوئی، بدکار نہ شمر لنگور جیہا

اس شعر میں "وانگ" اور "جیہا" کے علاوہ تمام لفظ اُردو میں جوں کے توں استعمال ہوتے ہیں۔ پنجابی، خالہ کو "ماسی" کہتے ہیں، یعنی "ماں کی مانند" اور حقیقتاً اہلِ پنجاب نے اُردو کی خدمت ماں ہی کی مانند کی ہے ان کی خدمات کو نظر انداز نہیں کیا جا سکتا۔

اُردو، دوآبہ سے دکن اور لکھنؤ اہلِ زبان کے ساتھ گئی، جہاں بہت سی روایات دہلی کی برقرار رہیں اور تھوڑا بہت اثر علاقائی زبانوں کا بھی پڑا۔ یہ نقل مکانی ارتقا کے ماتحت تھی کیونکہ خود اہلِ زبان پہنچے

تھے۔ اگر انہوں نے مقامی اثر قبول کیا تو اس کو گوارا کر لیا گیا چنانچہ جب ولی کے زمانہ میں اُردو کو دہلی والوں نے شاعری کا مرتبہ دیا تو انہوں نے بھی دکنی تصرفات کو ایک زمانہ تک جائز رکھا۔ اس بارے میں قائم کا یہ کہنا ہے کہ ریختہ گویانِ دہلی کے کلام میں جو چند غیر مانوس الفاظ اور محاورے مستعمل ہیں وہ اہلِ دہلی کو اس لئے گوارا ہو گئے ہیں کہ دکن کی زبان کے مطابق درست ہیں (مخزنِ نکات ۱۳) حالانکہ وہ مدعی ہیں ؎

قائم میں غزل طور کیا ریختہ ورنہ
اک بات لچر سی بزبانِ دکنی تھی

جس طرح دکنی اُردو، گجراتی اور مرہٹی وغیرہ سے متاثر ہوئی، اسی طرح لکھنوی اُردو، پوربی (اودھی) سے متاثر ہوئی ہے بعض امور میں دہلی والوں سے اہلِ لکھنؤ کا اختلاف اسی اثر کا نتیجہ ہے۔ میں نے جھوٹ بولا (دہلی)، وہ جھوٹ بولا (لکھنؤ)۔ مولوی عبدالحق مرحوم نے رواداری سے کام لیا اور دونوں کو صحیح لکھ گئے۔ (قواعدِ اردو ص۱۳۵ طبع دکن)۔ حالانکہ "میں جھوٹ بولا" اور "میں نے لاہور جانا ہے" ایک ہی طرح کی غلطیاں ہیں۔ ایک میں "نے" کا ترک خلافِ قاعدہ تو دوسرے میں "نے" کا استعمال خلافِ اصول ہے۔ لکھنوی اُردو پر اودھی کا اثر ہے اور اودھی میں "نے" کا استعمال پایا نہیں جاتا۔ اسی لئے اہلِ لکھنؤ بعض متعدی مصادر کے فعل ماضی میں "نے" کو ترک کر دیتے ہیں۔ "وہ خوب پڑھا" اہلِ لکھنؤ کے نزدیک صحیح ہے اور یہ پوربی اثر ہے۔ اُردو کا اس سے کیا واسطہ؟ اہلِ دہلی کہیں گے "اس نے خوب پڑھا"۔ لہٰذا "نے" کے سلسلہ میں سفر سے پہلے تھوڑی دیر کے لئے ٹھہر کر یہ طے کر لیا جائے کہ "نے" کا صحیح محلِ استعمال کیا ہے؟ "نے" اُردو میں علامتِ فاعل ہے اس کو صرف مصدر متعدی کی ماضی (مطلق، قریب، بعید، شکیہ اور تمنائی کی دو صورتوں) میں استعمال کرتے ہیں مثلاً، میں نے پڑھا، اس نے پڑھا ہے، ہم نے پڑھا تھا، تم نے پڑھا ہوگا، کاش اس نے پڑھا ہو، اگر تو نے پڑھا ہوتا۔ اشعارِ ذیل سے بالترتیب یہی استعمال ثابت ہوتا ہے ؎

بہت دنوں میں تغافل نے تیرے پیدا کی
وہ اک نگہ کہ بظاہر نگاہ سے کم ہے

بھولا ہے کس نے گوشۂ محبت میں اے خدا
افسونِ انتظارِ تمنا کہیں جسے

میں نے مجنوں پہ لڑکپن میں اسدؔ
سنگ اٹھایا تھا کہ سر یاد آیا

یوں کرتے تھے کب وہ دلِ ناداں کی شکایت
کی ہوگی فلک نے مرے افغاں کی شکایت

مجھ تک کب ان کی بزم میں آتا تھا دورِ جام
ساقی نے کچھ ملا نہ دیا ہو شراب میں

جعل پہ گزرتی ہے کیا تجھ کو خبر ناصح
کچھ ہم سے سنا ہوتا پھر تو نے کہا ہوتا

"نے" کا یہ استعمال اصول کے ماتحت ہے اس کے علاوہ کچھ مستثنیات بھی قرار دے لئے گئے ہیں۔ یہاں ایک اصول پیشِ نظر رہنا چاہیئے کہ "نے" کا اثر فعل پر یہ ہوتا ہے کہ اس کا رشتہ فاعل سے منقطع ہو جاتا ہے اور مفعول سے قائم ہو جاتا ہے یعنی فعل میں تبدیلی مفعول کے لحاظ سے ہوتی ہے فاعل کے لحاظ سے نہیں۔ جیسے لڑکے نے کتاب پڑھی، لڑکے نے سبق پڑھا، کتاب اور سبق کی وجہ سے فعل بدلا ہے۔ یہ اسلئے بیان کیا گیا کہ "نے" کے استعمال کی درستی اور ترک وغیرہ کا پتہ چلانے میں آسانی ہو۔

دہلی جو ایک شہر ہے عالم میں انتخاب درحقیقت بہت سی خوبیوں کا مرکز رہا ہے۔ زبان کے لحاظ سے یہاں دوآبہ کا اثر ہے۔ اُردو کا مولد و منشا ہونے کا فخر بھی اسی سرزمین کو حاصل ہے۔ بقول ڈاکٹر شوکت سبزواری کوی سور داس کے کلام میں "نے" بکثرت استعمال ہوا ہے جس کی مثال "ایک پرش نے آج موہی سپنانتر درس دینوں" (آج مجھے ایک شخص نے خواب میں جلوہ دکھایا) دی ہے ("سور ساگر پد" ۲۹ ص۲۰ "اُردو زبان کا ارتقا" ص۲۲۸) اور پرتھوی راج کے عہد میں بھی اس کا استعمال پایا جاتا ہے۔ اسی زمانہ سے اردو کی ابتدا کا تعلق ہے۔ امیر خسرو دہلوی ہیں جو اُردو کے پہلے شاعر تسلیم کئے گئے ہیں ان سے منسوب ایک شعر، دو پہیلیاں اور ایک کہہ مکرنی ملاحظہ فرمایئے جن میں "نے" استعمال ہوا ہے:

میرا جو من تم نے لیا، تم نے اٹھا غم کو دیا
غم نے مجھے ایسا کیا جیسا پتنگا آگ پر

ایک کنیا نے بالک جایا
مار امرے نہ کاٹا کٹے
وا بالک نے جگت ستایا
وا بالک کو ناری کھائے

جاڑا

تورو سے ایک تریا التسی اس نے بہت رجھایا
باپ کا اس کے نام جو پوچھا آدھا نام بتایا
آدھا نام پتا پر پیارے بوجھ پہیلی موری
امیر خسرو یوں کہیں اپنے نام نبولی
(نبولی)

تن من دھن کا ہے وہ مالک — وانے دیا میرے گود میں بالک
واسے نکسرت جی کے کام! — کیوں سکھی ساجن؟ نا سکھی رام
(کہہ مکرنی)

امیر خسرو ۷۲۵ھ میں وفات پاتے ہیں "نے" کا استعمال ان کے یہاں باقاعدہ اور بالالتزام ہے۔ ان کے بعد شمالی ہند میں سرکاری زبان فارسی رہتی ہے مگر عوام کی زبان وہی کھڑی بولی، فارسی و عربی آمیختہ ہے۔ پورب میں اودھی رائج تھا۔ اودھی میں "نے" نہیں ہے۔ اسی وجہ سے کبیر اور تلسی داس کے کلام میں اس کا وجود نہیں۔ لیکن اس زمانہ کے ریختہ میں اس کا استعمال موجود ہے جس کی ابتدا امیر خسرو سے ہوتی ہے۔ ان کے بعد بھی مثالیں ملتی ہیں:۔

تب سب نے ہا ہو کر کے، تاری (تالی) مری بجائی
ہنس ہنس کے چھیل موسو کرے لگو ٹھٹولی
اکھیاں نے جھڑ لگایا، رسوا کریں گی آخر
درد اکہ راز پنہاں خواہد شد آشکارا

مولانا محمد افضل جھنجھانہ، ضلع میرٹھ، کے رہنے والے تھے جو عبداللہ قطب شاہ یا محمد قطب شاہ کے ہم عصر ہیں۔ یہ زمانہ دکن کی شاعری کا ابتدائی زمانہ ہے۔ شمالی ہند میں مولانا کی "بکٹ کہانی" بہت مشہور ہے۔ اس میں "نے" کا مستقل استعمال ہوا ہے:۔

جنوں در ملک جاں جھنڈا گڑایا
سمجھ اور بوجھ کا تھانا اٹھایا

جنوں کے بعد "نے" مقدر ہے کہ مذکور نہیں، لیکن اکثر جگہ اس کا استعمال قاعدہ کے مطابق ہے۔ صرف دو شعر مثالاً پیش ہیں ؎

مسافر سے جنھوں نے دل لگایا — انھوں نے سب جنم روتے گنوایا
دُہل رحلت کا بجا دوں نے بجایا — اچھوں لک سادرا پردیس چھایا

شمالی ہند میں اردو شاعری کے آثار ولی کی آمد تک برابر پائے جاتے ہیں۔ مولانا افضل کے بعد گیارہویں صدی میں شیخ جیون کا کلام پایا جاتا ہے۔ ان کے کلام میں بھی "نے" کا استعمال موجود ہے اگر ترک ہے تو مقدر ہے:

کیا جن تکبر دشمنی پاک سے — پڑا عاقبت خاک پر تاک سے (ترک، مقدر)
تکبر خودی کی تھی نمرود نیں (ترک) — براہیم نبی سے جو مردود نیں (ترک)

غرض شمالی ہند میں محمد شاہ کے عہد تک اردو کے جو آثار ملتے ہیں، ان میں "نے" کا استعمال باقاعدہ ملتا ہے حتیٰ کہ میر جعفر زٹلی کے کلام میں بھی موجود ہے۔ اگرچہ مولانا آزاد نے "آبحیات" میں لکھ دیا "زٹل کا اعتبار کیا؟" مگر اس سلسلہ میں ان کا کلام "نے" کے استعمال کی گواہی ضرور دے سکتا ہے ؎

بادشہ تیں بیر کی (ترک)، سر کی خدا نے خیر کی
تا حال ہم داری حذر، کہہ جعفر اب کیسی بنی

اس شعر میں ترک، مقدر اور استعمال موجود "تیں بیر کی" یعنی تو نے بیر کی ہے۔ اب واضح استعمال دیکھئے:۔

لذت کا کھاوتے کھانا، پہرتے (پہنتے) ریشمی بانا
انھوں کو موت نے بھایا کہ آخر خاک ہو جانا

اب وہ زمانہ آتا ہے جب ولی دکن سے دلی آتے ہیں اور یہاں دکن کی طرز پر شاعری کی داغ بیل پڑتی ہے۔ اس لئے پہلے دکن پر ایک نظر ڈال لی جائے۔ مسلمان فاتحین جب دہلی سے آگے بڑھے، اس زبان کو اپنے ساتھ لے گئے۔ دکن میں یہ زبان مقبول ہوئی۔ درباروں میں رسائی پائی، ادبی زبان بنی، نظم و نثر نے ترقی پائی لیکن مرہٹی اور گجراتی کا اس پر بھی اثر پڑا، جس کی وجہ سے دہلی کی زبان سے ذرا مختلف ہو گئی۔ اسی لئے "نے" کے استعمال میں بے قاعدگی ملتی ہے۔ خواجہ بندہ نواز سید محمد حسینی گیسو دراز کی "معراج العاشقین" کی اس عبارت میں "نے" استعمال نہیں ہوا:۔

"حضرت دودھ پئے ہور عرض کئے، اے مرے خدا میں دودھ کو قبول کیا۔"

اس میں دو جگہ "نے" استعمال ہونا چاہئے تھا۔ مگر نہیں کیا گیا۔ یہ زبان کی ابتدائی حالت ہے مگر ان سے جو اشعار منسوب ہیں اس میں "نے" موجود ہے:۔

خواجہ نصیر الدین جنے سائیاں پیو بنائی
جیو کا کھول کٹھ کھول کر بیا کہ آپ کہائی

"جنے" یعنی جن نے ہے۔ غرض ولی کے عہد تک استعمال اور بے قاعدگی

اور ترک ملتا ہے اس لئے کہہ سکتے ہیں کہ دکن میں کوئی اصول نہیں تھا۔ ہر دور کے ہر شاعر کے کلام میں یہ تینوں باتیں ملتی ہیں۔ نثر میں "سب رس" (ملا وجہی) کی عبارت سے استعمال و بے قاعدگی کی مثالیں پیش ہیں۔

"گیان دھیان کے کام تمام محمدؐ نے لیایا، جو کچھ پایا تھا محمدؐ نے پایا، جو کچھ محمدؐ نے پایا علیؓ کو سمجھایا۔"

"جوں مرتضیٰؓ فرماتے ہیں جنوں کی بات دائم "عرفت ربی بفسخ العزائم" یعنی جیوں منگتا تھا تیوں نہیں ہوا تو میں خدا کو پچھانیا، میرے ہات میں نہیں ہے کام، ہور ایک بات میں ہے تحقیق کرجانیا۔"

"میں پچھانیا" اور "تحقیق کرجانیا" کے لئے "نے" استعمال ہونا چاہیئے تھا۔ یہی حال نظم کا بھی ہے۔ محمد قلی قطب شاہ اور عبداللہ قطب شاہ سے لیکر ولی تک ترک و استعمال پایا جاتا ہے۔ دیکھئے محمد قلی قطب شاہ کے ہاں ترک اور عبداللہ قطب شاہ کے ہاں استعمال موجود ہے :۔

یک پوت کو دیتے زہر، یک پوت پہ کھینچے خنجر
کافر کئے کیسے قہر، یو زخم کاری ہائے ہائے
حسینؑ کا وقت جب دانیا، شمر نے آ گلا کاتیا
حرم کا ایک سنیا بیا، بتا دینا اور پکاری بی

غرض دکن کے ہر شاعر کا کلام اسی نہج پر ہے۔ ولی اور اس کے بعد بھی یہی حال ہے۔ ولی کے کلام سے مثالوں پر اکتفا کی جاتی ہے "نے" پہلے شعر میں استعمال دوسرے میں مقدر ہے :۔

اہل گلشن پہ ترے قد نے جب امداد کیا
اولاً سرو کو غلامی ستے آزاد کیا
بعد ازاں ایجاد تری چشم سوں لے نور نظر
حسن کے فرد پہ دیوان ازل صاد کیا

ولی کے اس قصیدہ میں بے قاعدگی پائی جاتی ہے مگر اسی میں استعمال بھی پایا جاتا ہے۔ آخری شعر استعمال کی مثال ہے۔

ہر ایک رنگ میں دیکھا ہوں چرخ کے نیرنگ
ہوا ہے غنچہ صفت جگ کے باغ میں دل تنگ
سوائے داغ کے پایا نہیں ہوں باغ میں گل
ورائے خون جگر نیں دسا مجھے گل رنگ

ہو دستگیر مجھے یا علیؓ ولی اللہ
کہ اس فلک نے کیا ہے کمال مجکوں تنگ

ولی کے عہد سے اہل دہلی اُردو کی طرف متوجہ ہوئے۔ دہلی میں باقاعدہ اُردو شاعری کا یہ ابتدائی عہد ہے۔ اب ہم دلی چل کر جائزہ لیتے ہیں۔ ولی دکن سے دہلی آتے ہیں، اہل سخن کی محافل میں اپنا کلام سناتے ہیں لوگ سنتے ہیں، لطف اٹھاتے ہیں۔ ولی سعد اللہ گلشن سے بیعت کر کے مرید ہو جاتے ہیں شاہ صاحب نے اپنے مرید کو راہ سجھائی (آبحیات صفحہ ۹)۔

"ایں ہمہ مضامین فارسی کہ بے کار افتادہ اند در ریختہ خود بکار ببر! از تو کہ محاسبہ خواہد گرفت؟" ("نکات الشعراء صفحہ ۹۲" "شعر الہند" جلد اول صفحہ ۲۶)

اور اصلاح زبان کے سلسلہ میں ہدایت فرمائی :۔

"شما زبان دکھنی را گزاشتہ، ریختہ را موافق اُردوئے معلٰے شاہجہاں آباد موزوں بکنید کہ تا موجب شہرت و رواج قبول خاطر صاحب طبعان عالی مزاج گردد۔" (تذکرہ قدرت بحوالہ شعر الہند جلد اول صفحہ ۲۶)

مرید نے مرشد کی بات کو پلے باندھا اور عمل کیا، دوبارہ دہلی آئے تو زبان کافی بدلی ہوئی تھی۔ دہلوی حضرات نے دیکھا انہیں بھی شوق ہوا، دیکھا دیکھی فارسی چھوڑ ریختہ کو ہموار کیا، ابتدا میں ولی کے کلام کو نمونہ بنایا اور کچھ دن تک دکنی زبان کو اپنائے رکھا۔ اگرچہ خود ولی نے دکن میں اصلاح زبان کی مہم شروع کر دی تھی اور اُردوئے معلٰے کا ٹوپ دینے لگے تھے، ان کا یہ شعر :۔

اس کی تعظیم ہوئی اہل چمن پر واجب
بلبل باغ نے جب مصحف گل یاد کیا

بالکل آج کل کی زبان میں ہے، مگر دہلی والوں نے شاعری کے شوق میں اس طرف توجہ نہ کی۔ شاہ حاتم نے اصلاح زبان پر خاص توجہ دی۔ دیباچہ دیوان زادہ میں لکھتے ہیں :۔

"دریں ولا از دہ دوازدہ سال اکثر الفاظ را از نظر انداختہ و الفاظ عربی و فارسی کہ قریب الفہم و کثیر الاستعمال باشند و روزمرۂ دہلی کہ مرزایان و فصیحان اند در محاورہ آرند، منظور دارد" (آبحیات صفحہ ۱۱۵)

شاہ حاتم اصلاح زبان کے سلسلہ میں اتنے فراخ حوصلہ واقع ہوئے تھے کہ اگر ضرورت شعری کی وجہ سے محاورہ کی کوئی خلاف ورزی ہو جاتی اور ان کا کوئی شاگرد اس سے باخبر کر دیتا تو بہت خوش ہوتے۔

مشہور واقعہ ہے کہ شاہ حاتم کی نشست شاہ تسلیم کے تکیہ میں ہوا کرتی تھی۔ ایک روز حسب معمول شاگردوں کا مجمع تھا۔ سعادت خاں رنگین بھی استاد کی خدمت میں پہنچے، باتوں باتوں میں شاہ حاتم نے فرمایا کہ رات ایک مطلع ہوا ہے ؎

سر کو پٹکا ہے کبھو، سینہ کبھو کوٹا ہے
رات ہم ہجر کی دولت سے مزا لوٹا ہے

میاں رنگین نے دست بستہ کہا، استاد اگر یوں ہو جاتے تو بہتر ہے:

سر کو پٹکا ہے کبھو، سینہ کبھو کوٹا ہے
ہم نے شبِ ہجر کی دولت سے مزا لوٹا ہے

شاہ صاحب سن کر بہت خوش ہوئے اور آفریں فرمائی۔ ایک صاحب بولے کہ استاد کے سامنے یہ گستاخی مناسب نہیں مگر شاہ صاحب نے فرمایا کہ کوئی مضائقہ نہیں میں دیوان میں اسی طرح لکھوں گا۔ (آبِ حیات ص۱۱۹)
شاہ صاحب کے شعر میں "نے" مقدر ہے، کیونکہ اگر خلافِ قاعدہ استعمال ہوتا تو "لوٹے ہیں" لکھتے۔ یہ ترک روزمرہ کے خلاف تھا میاں رنگین نے روزمرہ کے مطابق کر دیا اس کا یہ مطلب ہے کہ شعر میں زیادہ محنت نہ کی جاتی تھی سہل انگاری سے ترک کر دیتے تھے۔ مظہر جانِ جاناں، قائم، سودا، میر اور انشا نے اصلاحِ زبان میں کوششیں کیں اور زبان نے بہت جلد اصلاحی منازل طے کر لیں۔ انشا تک ترک کی مثالیں ملتی ہیں۔ حاتم کے یہاں بے قاعدگی بھی ہے۔ آبرو سے انشا تک نمائندہ شعراء کے کلام سے ترک و استعمال کی امثلہ ملاحظہ فرمائیے:۔

آبروؔ:۔ ہر یک نگہ میں ہم سے کرنے لگے ہو نوکیں
کچھ تو تری آنکھوں نے یہ ڈھب ہے طوطا نکا

حاتمؔ:۔ میں پایا ہوں دلے تجھ چشم کا بھید
نہ انگوں گا کبھی ان کا اشارہ
(بے قاعدہ ترک)

قائمؔ:۔ غنچے نے کس کے بوسہ کو یہ لب کئے ہیں جمع
گل کیوں بنا ہے باغ میں صورت کنار کی

سوداؔ:۔ ناوک نے تیرے صید نہ چھوڑا زمانے میں
تڑپے ہے مرغ قبلہ نما آشیانے میں

〃 :۔ پایا ہر ایک بات میں اپنے، میں یوں سمجھے
معنی کو جس طرح سے سخن عاشقانے میں (ترک، مقدر)

میر تقی میرؔ:۔ ہمارے آگے ترا جب کسی نے نام لیا
دلِ ستم زدہ کو ہم نے تھام تھام لیا

〃 :۔ ایسی وحشی کہاں ہیں اے خوباں
میر کو تم عبث اداس کیا (ترک، مقدر)

مصحفیؔ:۔ میں نے بازارِ حسن خوباں سے
مول اک حسرتِ نظر لی ہے

〃 :۔ شبِ ہجر صحرائے ظلمت سے نکلی
میں جب آنکھ کھولی بہت رات نکلی (ترک۔ مقدر)

جرأتؔ:۔ دمِ وصل اس نے رخ سے جو نہ ٹک نقاب الٹا
ہمیں لگ گیا دم اس دم بصد اضطراب الٹا

〃 :۔ شبِ وصل یہ قلق تھا یہ وہ سو گیا تو منہ سے
نہ ذرا بھی میں دوپٹہ زرہ حجاب الٹا (ترک۔ مقدر)

(آبِ حیات ص۲۴۷ مولانا آزاد نے لکھا ہے "دیکھو یہاں بھی علامتِ فاعل (نے) محذوف ہے اور یہ پرانا جوہر ہے۔")

میر حسنؔ:۔ منزلِ بے خودی میں آپ کو بھی
ہم نے اپنا نہ ہم سفر دیکھا

〃 :۔ ہر ایک دل و جاں کے مرغوب نظر آئے
میں خوب تمہیں دیکھا، تم خوب نظر آئے (ترک، مقدر)

انشاؔ:۔ مجھے چھیڑنے کو ساقی نے دیا جو جام الٹا
تو کیا بہک کے میں نے اسے اک سلام الٹا

یہ تمام اساتذہ دہلی کے تھے، مگر ستم ہائے روزگار کے مارے ہوئے۔ نوابینِ اودھ قدر دانِ اہلِ فن تھے۔ یہ سب اودھ پہنچے اور اودھ والوں کو انہوں نے سبق پڑھایا۔ انشا کے بعد کوئی اہلِ کمال لکھنؤ نہ گیا اس لئے اب لکھنؤ چلتے ہیں اور دیکھتے ہیں کہ خود اہلِ لکھنؤ نے "نے" کے متعلق کیا روش اختیار کئے ہوتے ہیں۔ جائزہ سے پہلے لکھنؤ کے ماضی پر ایک نظر ڈال لی جائے تاکہ بات آسانی سے سمجھ میں آ سکے۔ دہلی پر تباہی آ رہی تھی اور لکھنؤ ترقی پا رہا تھا۔ لکھنؤ دہلی سے قریب تھا، اس لئے صاحبانِ علم و فن کا مرکز بنا۔ نوابین مرتبہ شناس اور قدر دان تھے اگرچہ دکن بھی ایسی ہی ریاست تھی وہاں بھی قدر و منزلت ہوتی تھی لیکن دہلی سے دور، راستہ کٹھن، اس لئے اہلِ کمال وہاں کم گئے۔ اس کے علاوہ دربارِ دہلی سے جب کوئی امیر کسی طرف کا حاکم مقرر ہو کر جاتا تو اپنے ساتھ کاروبار

کے لوگوں کو بھی لے جاتا۔ یہی حال حاکمانِ اودھ کا ہے کہ ان کے ساتھ دہلی سے کاروباری عملہ بھی آیا اور قدردانی و قدرشناسی کی وجہ سے صاحبِ کمال نے ادھر کا رخ کیا۔ دہلی کے باکمال شعرا لکھنؤ پہنچے جو اپنی زبان اور محاورہ کی حفاظت و رواج پر زور دیتے رہے۔ چنانچہ میر انیس ہمیشہ کہا کرتے تھے یہ میرے گھر کی زبان ہے حضرات لکھنؤ اس طرح نہیں فرماتے اور اب تک اس خاندان میں یہ خصوصیت برقرار ہے۔ غرض انشا تک یہ سلسلہ جاری رہتا ہے۔ مومن، ذوق اور غالب کا زمانہ آیا تو اہلِ کمال نے لکھنؤ جانا چھوڑ دیا۔ دہلی والوں میں سے بعض نے لکھنؤ کو وطن بنا لیا انہوں نے اور ان کی اولاد نے محاورۂ دہلی کو ملحوظ رکھا مگر لکھنؤ کے قدیم باشندوں کی زبان پر پوربی اثر بھی رہا۔ اگرچہ انہوں نے اردو زبان اہلِ دہلی سے سیکھی تھی۔ اسی دور میں دہلی والوں کا زور گھٹا اور لکھنؤ والوں نے بھی زبان کی مرکزیت کا دعویٰ کرنا شروع کر دیا۔ گویا اہلِ دہلی کے ہم مرتبہ و ہم پلہ سمجھنے میں فخر محسوس کرنے لگے۔ شیخ امام بخش ناسخ نے جو اصلاً لاہوری تھے مگر تعلیم و تربیت لکھنؤ میں ہوئی تھی، میر و میرزا کی اصلاحات زبان پر سختی سے عمل شروع کر دیا اور کچھ اصلاحات کا اپنی طرف سے بھی اضافہ کیا۔ اس زمانے میں "نے" کا ترک کلیتہً ناجائز قرار دیا گیا۔ لیکن مصحفی کے شاگردوں میں سے بعض کے یہاں ترک کی مثال ملتی ہے مثلاً سرور :-

دو چار گھڑی دن سے جو رخصت میں طلب کی
تو جل کے کہا جائیے بس دیر نہ کیجے

اہلِ لکھنؤ بعض امور میں محاورۂ دہلی کی خلاف ورزی اس لئے کرتے ہیں کہ ان کی زبان پر پوربی کا اثر ہے۔ تذکیر و تانیث میں دہلی کی مخالفت اسی اثر کا نتیجہ ہے۔ غالب لکھتے ہیں :-

"پورب کے ملک میں جہاں تک چلے جاؤ گے تذکیر و تانیث کا جھگڑا بہت پاؤ گے۔" (خطوطِ غالب ص۵۸) پورب یعنی اضلاع مشرقی ہند عموماً اور لکھنؤ خصوصاً۔ میر صاحب نے کہا تھا :-

کیا بود و باش پوچھو ہو پورب کے ساکنو!
ہم کو غریب جان کے ہنس ہنس پکار کے)

یہی حال بعض مصادر کے استعمال کا ہے۔ اہلِ دہلی جن کو متعدی استعمال کرتے ہیں، اہلِ لکھنؤ ان کو لازم سمجھتے ہیں۔ غالب ہی نے لکھا ہے :-

"کھو رہا ہوں، متعدی ہے۔ پوربیے اس کو لازمی جانتے ہیں۔ (پوربیے یعنی باشندۂ پورب، مشرقی اضلاع کا رہنے والا) لازمی کھویا گیا ہوں۔ ہم کہیں گے جاگتے ہیں۔ اہلِ پورب کہیں گے جگتے ہیں" (خطوطِ غالب ص۵۴۵) گویا اہلِ لکھنؤ "کھونا" کو لازم سمجھتے ہیں یعنی علامتِ فاعل "نے" اور اس کے لئے مفعول نہیں لاتے، اہلِ دہلی استعمال کریں گے۔

میں جان کھو رہا ہوں ترے ہجر میں صنم (متعدی)
کھوئے گئے ہم ایسے کہ اغیار پا گئے (لازم)

اسی طرح اس نے کتاب کھوئی (متعدی) کتاب کھوئی گئی یا لڑکا کھویا گیا (لازم) مگر اہلِ لکھنؤ اس کے خلاف استعمال کریں گے۔ یعنی وہ کتاب کھویا' یا صرف کہیں گے وہ کھویا۔ غرض اسی طرح دیگر مصادر کے مشتقات میں بھی اہلِ لکھنؤ پوربی محاورہ کی پیروی کرتے ہیں اور محاورۂ دہلی کی مخالفت مثلاً سوچنا اور پڑھنا متعدی ہیں مگر اہلِ لکھنؤ بطور لازم استعمال کرتے ہیں۔ مثنوی گلزارِ نسیم کے یہ شعر ہیں :-

سوچا وہ کہ اب تو ہم ہیں آگاہ
جیتے ہیں تو جیت لیں گے ناگاہ
(زندہ)

سوچی دلا شتاب ہے کیا
پھر سمجھیں گے اضطراب ہی کیا
(مثنوی گلزارِ نسیم، طبع لاہور ص۲۳)

"فسانۂ آزاد" کے یہ دو اقتباسات اسی کے مؤید ہیں :-

(۱) "میاں آزاد ..... سوچے کہ چل کے محرم لکھنؤ کا دیکھ لیں۔"
(۲) "ہم بھی سوچے کہ کہاں کی جھنجھٹ" (فسانۂ آزاد" بحوالہ "کاروانِ ادب" ص۲۵۵ و ص۲۶۱ مطبوعہ لاہور)۔

دورِ جدید کے ممتاز شعرا میں سے عزیز لکھنوی کا شعر اور نواب جعفر علی خاں اثر کی نثر میں بھی استعمال پایا جاتا ہے :-

سوچے نہ یہ بتوں سے محبت ہے اے عزیز
رکھنی تھی ایک آہ اثر میں بھری ہوئی
("گلکدہ" مطبوعہ نول کشور بحوالہ "کیفیہ" ص۱۴۸)

"فراق صاحب نے ان سب کا قلع قمع کر دیا اور یہ نہ سوچے"
(اثر کے تنقیدی مضامین ص۱۳۱)

اہلِ لکھنؤ کے ہاں اس کی مثالیں بہت ہیں۔ دہلی میں غالب کے ابتدائی دور تک لازم و متعدی دونوں طرح استعمال ہوتا رہا ہے مگر

پھر بالاتفاق متعدی استعمال کیا جانے لگا مصحفی لازم نظم کرتے ہیں :-

جب نہ بن آئی اور کچھ تدبیر
یہی سوچے کہ اب بلا تاخیر

غالب کے خطوط میں دونوں استعمال ملتے ہیں :-

(۱) میں نے سوچا کہ مجھے کیا آزار (لطائف غالب صفحہ ۱۳) (۲) "ہم نے سوچا کہ اگر اسی انتظار میں رہوں گا" (خطوط غالب صفحہ ۱۹۶، "اُردوئے معلّٰی" کانپور صفحہ ۱۹۶، لاہور صفحہ ۲۲۴! میں "نے" نہیں ہے مگر "عودِ ہندی" صفحہ ۹۰ میں "نے" موجود ہے اور چونکہ "عودِ ہندی" کو اولیت حاصل ہے اس لئے یہی صحیح ہے) (۳) "حضرت چالاک اور سخن ساز اور ظریف تھے، سوچے ہوں گے" (خطوط غالب صفحہ ۲۱، اُردوئے معلّٰی کانپور صفحہ ۱۵۷، لاہور صفحہ ۲۲۵)

استاد ذوق متعدی نظم کرتے ہیں :-

ہم نے ان سے دوستی کی وہ ہیں کرتے دشمنی
دیکھو کیا سوچا تھا ہم نے اور وہاں کیا ہو گیا

جدید شعراء کلیتہً متعدی استعمال کرتے ہیں، میں نے لکھا تھا :-

میں نے سوچا تھا کہ باندازِ دگر نظمِ جہاں
دورِ حاضر کے تقاضوں پہ کروں گا قائم

میں نے سوچا کہ ہو کیوں غیر کی پروا مجھکو
چاہیئے رازقِ مطلق پہ بھروسا مجھ کو

(علی حیدر نیدی "شعر الہند" جلد دوم صفحہ ۲۹۲)

سوچنا کی طرح، اہلِ لکھنؤ پڑھنا کو بھی لازم جانتے اور استعمال کرتے ہیں۔ مولانا آزاد نے "آبحیات" میں اہلِ لکھنؤ کا یہ قول نقل کیا ہے:

"جب کوئی (میر خلیق سے) آکر بیان کرتا کہ آج (انیس) فلاں مجلس میں خوب پڑھے ہیں" ("آبحیات" لاہور صفحہ ۳۳۷)۔

چنانچہ اہلِ لکھنؤ کا روزمرہ یہی ہے۔ آپ خوب رباعی پڑھے، وہ مشاعرے میں غزل پڑھے۔ ہم درود پڑھے۔ وغیرہ بحر لکھنوی لکھتے ہیں

کیا سلام جو ساقی سے ہم نے جام لیا
پڑھے درود جو پیرِ مغاں کا نام لیا

(نکاتِ سخن صفحہ ۱۲۶)

اس شعر کے متعلق کہا جا سکتا ہے کہ "درود" بطور جمع استعمال کیا گیا ہے جس کا فاعل "ہم" پہلے مصرع میں موجود ہے اور اس کے ساتھ علامت فاعل "نے" بھی ہے۔ لہٰذا یہ شعر بے قاعدگی کی مثال پیش نہیں کیا جا سکتا۔ یا ممکن ہے کہ درود کو مؤنث نظم کیا ہو اور "پڑھی" لکھا ہو جس کو "پڑھے" پڑھ لیا گیا ہو۔ بادی النظر میں یہ دونوں باتیں بڑی صحیح نظر آتی ہیں لیکن حقیقت اس کے برعکس ہے۔ "درود" بطور جمع استعمال نہیں ہوتا کیونکہ درود بمعنی صلوٰات ہر جگہ واحد استعمال ہوتا ہے اس کی جمع نہیں آتی۔ شعر میں سلام کے بالمقابل ہے۔ سلام واحد ہے یہ بھی واحد ہی ہے مؤنث نہیں مذکر ہے۔ انیس ؎

سوتے میں شغل طاعتِ ربِ ودود تھا
دل میں خدا کی یاد تھی لب پر درود تھا

غرض بحر نے لکھنؤ کے روزمرہ کے مطابق پڑھنا بطور لازم نظم کیا ہے اس میں شک کی گنجائش نہیں ہے۔ اہلِ دہلی متعدی استعمال کرتے ہیں: ذوق ؎

دیکھو قسمت کا لکھا اس نے پڑھا خط سو بار
دھیان پر میرا نہ مطلب کسی عنوان چڑھا

لگے پانی چوانے منہ میں آنسو
پڑھی یٰسین سرہانے بیکسی نے

"یہ باب ابھی میں نے تم کو پڑھایا نہیں" (خطوط غالب صفحہ ۴۰)

"بولنا" بطور لازم و متعدی استعمال کیا جاتا ہے۔ اہلِ دہلی جب مفعول مذکور ہو تو "نے" استعمال کرتے ہیں جیسے اس نے جھوٹ بولا وغیرہ۔ مگر اہلِ لکھنؤ ایسے مواقع پر بھی "نے" استعمال نہیں کرتے اور بولتے ہیں "وہ جھوٹ بولا" وغیرہ البتہ بطور لازم لکھنؤ اور دہلی میں کوئی اختلاف نہیں یعنی جب بولنا کے مشتقات بطور لازم استعمال ہوتے ہیں تو ان کے بعد ایک اور جملہ آیا کرتا ہے اس کو مقولہ کہتے ہیں :- غالب، انیس اور اکبر الہ آبادی کے یہ شعر مثال میں ہیں :-

سرِ اڑانے کے جو وعدہ کو مکرر چاہا
ہنس کے بولے کہ "ترے سر کی قسم ہے ہم کو"

تیغ و سپر کو پھینک کے بولا وہ نامور
"کہہ دیجیے ان سے کاٹ کے لیجائیں میرا سر"

چھو ئیں جو گائے ماتا حسرت سے اونٹ بولے
افسوس! شیخ جی نے ہم کو پتا نہ سمجھا

اہلِ لکھنؤ کے ہاں اب تک "نے" ترک کرنے کی مثالیں ملتی ہیں۔ تھوکنا کے ساتھ علامتِ فاعل "نے" بالاتفاق استعمال ہوتی ہے۔ "میں نے تھوکا۔ اس پر سارا دنیا نے تھوکا" وغیرہ مگر علامہ آنند لکھنوی اس کے ساتھ "نے" ترک کر گئے ہیں

اور یہ بھی پیلی اشعار ہے:

ہیرے کی یہ کنیاں ہیں کہ امڈے ہوئے آنسو
پی جلنے پہ دو دو بوند، لہو سیروں میں تھوکا

(”سریلی بانسری“)

قصہ کوتاہ ”نے“ کے ترک اور بے قاعدگی کی مثالیں اہل لکھنؤ کے ہاں بکثرت ملتی ہیں جن کو ہم نے گوارا کر لیا ہے حتیٰ کہ مولوی عبدالحق بھی رواداری برتتے ہوئے وہ جھوٹ بولا کو بھی صحیح لکھ گئے۔ (قواعد اردو ص۱۵۱، طبع دکن)۔

انشاء کے بعد، مومن، ذوق اور غالب کا عہد ہے ہمیں اس دور میں دہلی کی زبان میں کوئی اہم تبدیلی نظر نہیں آتی۔ ذوق اور غالب سرخیلِ شعرائے دہلی تھے۔ لکھنؤ کے سلسلہ میں ذوق و غالب کے کلام سے اسناد بھی گزر چکی ہیں، دہلی کی سیر کرنے سے پہلے دکن پر ایک نظر اور ڈال لیں مگر دکن جانے سے پہلے چند اصولی باتیں اور بیان کر دینی ضروری سمجھتے ہیں۔

اردو میں بعض مصادر ایسے ہیں جو متعدی ہیں لیکن ان کے ساتھ ”نے“ استعمال نہیں کرتے۔ لانا، بھولنا، شرمانا اور بخشنا وغیرہ جیسے وہ کتاب لایا، میں تمہاری بات نہیں بھولا۔ وہ تم سے شرمایا۔ (اگرچہ اب ایسے مواقع پر محتاط حضرات ”بھول جانا“ اور ”شرما جانا“ کے مشتقات استعمال کرتے ہیں جیسے: تم ہمیں بھول گئے ہو صاحب! وہ ہم سے شرما گیا) غالداس معاملہ میں خوب بخشا وغیرہ بعض مصادر لازم و متعدی دونوں طرح مستعمل ہیں۔ بولنا کی بحث گزر چکی، جیتنا، ہارنا، پکارنا، بھرنا، پلٹنا اور بدلنا جیسے وہ جیتا، اس نے بازی جیتی، وہ ہارا اس نے روپیہ ہارا۔

قمارِ محبت میں بازی صدا
وہ جیتا کیا اور میں ہارا کیا (میر حسن)

تازہ جھمک تھی شب کو تاروں میں آسماں کی
اس آسیا کو شاید پھیرا ہے کنہوں نے ہارا
(میر تقی میر)

پلسے کی بدی ہے آشکارا
راجہ نل سلطنت ہے ہارا (دیا شنکر نسیم)

پکارنا بھی بولنا کی طرح مستعمل ہے۔ اکبر الہ آبادی کے یہ شعر ہیں:

مذہب نے پکارا اے اکبر اللہ نہیں تو کچھ بھی نہیں
یاروں نے کہا یہ قول غلط، تنخواہ نہیں تو کچھ بھی نہیں

(یہاں ”مجھے“ ضمیر مفعولی محذوف ہے۔ یعنی ”مذہب نے مجھے پکارا“)

جو دیکھا سائنس کا یہ چکر، دھرم پکارا کہ اے برادر!
ہمارے دور میں بن گن تھے تمہارے دور میں پاپ خوش ہیں

بھرنا، پلٹنا، بدلنا جیسے تمہارا پیٹ نہیں بھرا، تم نے بندوق بھری۔ اس نے کتاب پلٹی۔ میں یہ سمجھا مری تقدیر سراسر پلٹی۔ وہ کتنی جلدی بدلا۔ اس نے گاڑی بدلی۔ میں نے کپڑے بدلے وغیرہ۔ رونا، ہنسنا، جھپٹنا کے ساتھ ”نے“ استعمال نہیں کرتے جیسے وہ میرے حال پر رویا۔ وہ پھول کو دیکھ کر ہنسا۔ باز کبوتر پر جھپٹا۔ کتا بھیڑیئے سے لڑا۔ لیکن رونا محاورہ میں آئے تو ”نے“ استعمال کرتے ہیں، اس نے اپنا دکھڑا رویا۔ جھپٹنا اور لڑنا کے ساتھ اگر مفعول مذکور ہو تو ”نے“ لاتے ہیں جیسے اس نے قلم جھپٹا۔ ہم نے کشتی لڑی۔

سمجھنا لازم و متعدی دونوں طرح استعمال کرتے ہیں۔ مثلاً ذوق اور غالب کے ان شعروں میں:—

دل شکستہ مگر اس یار نے سمجھا ہم کو
خط بھی جو خطِ شکستہ ہی سے لکھا ہم کو

وہ میری چینِ جبیں سے غمِ پنہاں سمجھا
رازِ مکتوب با بے ربطیٔ عنواں سمجھا

سیکھنا متعدی ہے اس کے ساتھ ”نے“ استعمال کرتے ہیں میر، فوق اور چکبست کے یہ شعر:—

کھلنا کم کم کلی نے سیکھا ہے
اس کی آنکھوں کی نیم خوابی سے

تری چشمِ فسوں گر نے کہاں سیکھا تھا یہ جادو
کیا ہے اک نگہ میں لے کے تسخیر دل میرا

سبق سکھانہ تھا فطرت نے تیری خود نمائی کا
لبِ خاموش کو دعویٰ نہ تھا رنگیں نوائی کا

مولوی عبدالحق نے اپنی کتاب قواعد اردو میں سیکھنا کو لازم بھی لکھا ہے اور مثال میں غالب کا یہ شعر دیا ہے: (”قواعد اردو“ ص۱۵۱، طبع دکن)۔

سیکھے ہیں مہ رخوں کے لئے ہم مصوری
تقریب کچھ تو بہرِ ملاقات چاہیئے

"ہم سیکھے ہیں" کو دوری صاحب نے ماضی قریب خیال کیا ہے۔ لیکن اس کے یہ دو پہلو بھی غور طلب ہیں (۱) "سیکھے ہیں" فعل حال بھی ہو سکتا ہے یعنی سیکھ رہے ہیں یا سیکھتے ہیں۔ کیونکہ غالب کے زمانہ میں مضارع کے بعد "ہے" لگا کر فعل حال بنا لیتے تھے۔ آتے ہے، لکھے ہے وغیرہ

آئے ہے بیکسیِ عشق پہ رونا غالبؔ

کس کے گھر جائیگا سیلابِ بلا میرے بعد

علاوہ ازیں "سیکھے" اسم مفعول یعنی "سیکھے ہوئے" کا اختصار بھی قرار دیا جا سکتا ہے لیکن اس کے متعدی استعمال ہونے کا بیّن ثبوت یہ ہے کہ "مصوری" مفعول مذکور ہے نیز مضمون کی معنویت بھی اسم مفعول یا فعل حال کی طرف دلالت کرتی ہے۔ میر اور ذوق کے استعمال کی موجودگی میں اس کو متعدی ہی تسلیم کرنا چاہیئے۔ غالب کا شعر بھی متعدی ہی کی مثال ہے۔ میرے نزدیک اس کے ساتھ "نے" کا استعمال ضروری ہے۔

اب ہم دکن چلتے ہیں۔ ولی کے بعد دکن میں اردو کی ترقی و اصلاح بیش از بیش ہوئی۔ اہل دکن نے کلیتہً اہل دہلی کا تتبع کیا۔ دورِ آصفیہ میں قدیم دکنی الفاظ و محاورات ترک کئے جانے لگے اور محاورۂ دہلی کی پیروی ہونے لگی۔ ولی اور اس کے ہم عصر شعراء کی زبان متقدمین سے بہت مختلف ہو گئی تھی۔ ولی کے بعد سراج کے زمانہ میں زبان بہت صاف ہو گئی مگر "نے" کے سلسلہ میں ترک اور بے قاعدگی پائی جاتی ہے:

سراج : شہ بیخودی نے عطا کیا مجھے وہ لباس برہنگی

نہ خرد کی بخیہ گری رہی نہ جنوں کی پردہ دری رہی

درگاہ : بغیر اس کے کہو کون شاہ مرداں ہے

خدا نے سیف دیا اور رسول نے دختر

فضلی : دو بھواں دیکھ کر کہا میں یوں

دو گھڑی رات دن میں آئی کیوں؟ (ترک، متقدر)

محمود : سن بارہ سو چھ اوپر پو شام

کہا ہوں جو اس وقت پایا نظام (ترک، بے قاعدہ)

اس دور کے بعد شاہ نصیر دہلوی، دکن پہنچے۔ زبان میں مزید اصلاح ہوئی لیکن "نے" کے ترک کی مثالیں ملتی ہیں:

شاداں : جب غنچے نے سر اپنا گریباں سے نکالا

بلبل نے قدم پھر نہ گلستاں سے نکالا

ایما : میں ساکنانِ چمن سے کیا سوال ہم بھی تو تھے خزاں [illegible]

(ترک، متقدر)

[illegible]

کیا جاتا ہے۔ اسی زمانہ میں دکن میں بھی شعر و سخن کا خوب چرچا تھا۔ لکھنؤ پر زوال کے آثار نمایاں ہونے لگے تھے۔ اہل کمال دکن کا رخ کرتے تھے۔ شاہ نصیر کی قدر و منزلت ہو چکی تھی۔ استاد ذوق کو بھی بلاوا آیا، مگر انہوں نے جانا پسند نہ کیا اور لکھ دیا :-

گرچہ ہے ملک دکن میں ان دنوں قدرِ سخن

کون جائے ذوقؔ پر دلی کی گلیاں چھوڑ کر

دکن میں غالب کے شاگرد بھی موجود تھے۔ بذریعہ خطوط اصلاح لیتے تھے۔ داغ اور امیر بھی دکن پہنچے، ان کے فیض سے زبان اور زیادہ صاف ہو گئی۔ جزوی اختلاف جس کو علاقائی تصرف کہا جا سکتا ہے باقی رہا، مگر "نے" کا استعمال باقاعدہ ہو گیا۔ نواب محبوب علی خاں آصف اور امجد کے یہ شعر:-

یہ جو آصف نے کہا غور سے اس کو سمجھو

علم وہ شے ہے کہ اللہ کا ہے نام علیم

تاریکی میں دریا نے اک اندھیر مچایا

"سیلاب فنا" بن کے کیا سب کا صفایا

نواب عثمان علی خاں کے زمانہ میں ہندوستان کے باکمال حضرات دکن میں جمع ہو گئے تھے۔ ادب کی زبان وہی تھی جو دہلی کی زبان تھی مگر بول چال میں محاورۂ دکن کا چلن تھا اور اب تک باقی ہے۔ اب بھی اہل دکن بولتے ہیں "میں کتاب میز پر دھرا ہوں، میں کھانا کھا لیا ہوں" وغیرہ مہاراجہ کشن پرشاد شاد کا یہ شعر صحیح استعمال کی سند میں کافی ہے:-

تجھے الفت نہیں مجھ سے، یہ تم نے کیا کہا مجھ سے

گلہ مجھکو ہے تم سے جس جگہ ہو بے وفا مجھ سے

دہلی میں مومن، ذوق اور غالب کے سبب زبان ترقی پا چکی تھی مگر بعض شعراء پر بیرونی اثرات کی جھلک نظر آتی ہے۔ بہادر شاہ ظفر جن کے دم تک قلعۂ معلّٰی کی شان باقی رہی اگرچہ ان کی زبان اردوئے معلّٰی تھی لیکن ہر ناقد و محقق نے یہ تسلیم کیا ہے کہ ان کی زبان پر پنجابی کا اثر تھا۔ چنانچہ ان شعروں میں "نے" علامت فاعل کا استعمال اسم مفعول کے ساتھ خلاف قاعدہ ہے اہل دہلی کا روزمرہ نہیں ہے۔

ہم نے ہے خوب اس کی طرز ناز پہچانی ہوئی

چال پہچانی ہوئی آواز پہچانی ہوئی

لے کے دل کو جان تو چھوڑے بھلا امکان کیا

خوب ہی ہم کے تجھ سے ولستاں دیکھا ہوا

لیکن شاہ ظفر کی پیروی کسی نے نہیں کی بلکہ ذوق و غالب کی پیروی کی گئی اور اب تو پاکستان - و بشمول میں غالب ہی کا رنگ غالب ہے۔

"ہریانوی" مشرقی پنجاب کے راجپوتانے سے ملحق اضلاع کی زبان ہے جو اردو، پنجابی، راجستھانی، مارواڑی کے امتزاج سے رونما ہوئی۔ اگرچہ بعض نے اس کو اردو ہی کا ایک روپ بتایا ہے، مگر حقیقت یہ ہے کہ پانی پت کرنال اور گڑگانوے نے دہلی سے ملحق علاقہ کی زبان اردو کا ایک روپ ضرور ہے باقی علاقہ کی زبان ہریانوی ہے۔ ہریانوی میں "نے" فاعل و مفعول دونوں کی علامت ہے۔ اس علاقہ کے رہنے والے بولتے ہیں "بابوجی ڈاکٹر نے کی دکھا (دیکھا) ہے: تیرا بیٹا نے تھوڑا دودھ تو دے" "امیر کی طرف تیں (طرف سے) نے بلاوا آیا تھا" وغیرہ یہ استعمال راجستھانی مارواڑی کے اثر سے ہے۔

شمالی ہند، دہلی، دکن، لکھنؤ اور ہریانہ کی سیر کے بعد اب ہم پانچ دریاؤں سے سیراب ہونے والی وادی کی طرف رخ کرتے ہیں اور یہاں اردو کی نشو و نما، عروج و ارتقا کا جائزہ لیتے ہیں۔ آپ نے دیکھا کہ ہم مذکورہ علاقوں میں "نے" کے استعمال، ترک اور بے قاعدگی پر اچھی طرح روشنی ڈال چکے ہیں۔ پنجاب کے باسیوں کی زندہ دلی مشہور ہے اور یہاں ادب سے لگاؤ مسلم، انشا نے کہا تھا "اہلِ درد کو پنجابیوں نے لوٹ لیا" اس میں کلام نہیں کہ ان کا کلام ہر زمانہ میں وقیع رہا ہے۔ ہماری حیرت کی انتہا نہ رہی جب ہم نے یہاں کی سیر کی تو ہمیں اردو کے آثار اسی ابتدائی زمانہ سے ملے جس زمانہ سے وادیٔ گنگ و جمن اور دکن میں پائے جاتے ہیں۔ زبان وادیٔ گنگ و جمن کی زبان کے مطابق ہے۔ دکن کی زبان کی مانند گنجلک اور خلاف محاورہ نہیں بلکہ بہت صاف ہے۔ ان آثار کا سلسلہ بابا فرید گنج شکر سے شروع ہوتا ہے لیکن عہد شاہجہاں تک جو آثار ملتے ہیں وہ صحیح معنی میں ریختہ ہیں یعنی فارسی کا غلبہ ہے۔ البتہ عہد عالمگیر سے جو آثار دستیاب ہوئے ہیں وہ اردو روزمرہ میں ہیں۔ "نے" کے سلسلہ میں صرف نمائندہ شعرا کے کلام سے مثالیں پیش کی جاتی ہیں۔

عبدی: علم شریعت نال کے بھیجا پاک رسول
جو کچھ بھیجا رب نیں (نے) سب ہم کیا قبول

(استعمال، ترک، مقدر)

ناصر علی سرہندی: سجن کے حسن کا قرآن پڑھیا ہے میں نظر کر کر
نہیں پائی غلط اس میں دیکھا زیر و زبر کر کر

(ترک، مقدر)

شاہ مراد: وہ نور سجن کوں جس نے دیا، یہ چاند چودس کا حق نے دیا
یہ سورج ہے آپ پیا، پر نور ہو یا مشہور ہو یا
" تیرے مکھڑے پہ اک خال پیا، جس دیکھا گھر پامال کیا
یہ نقطہ ہے بسم اللہ کا، جو مصحف پہ مسطور ہو یا (ترک، مقدر)

شاہ مراد کے زمانہ تک پنجاب و شمالی ہند میں شعری سرمایہ بہت کم پایا جاتا ہے۔ ولی کی آمد کے بعد مستقلاً اردو کی طرف توجہ کی جاتی ہے۔ پنجاب میں جو زبان استعمال ہوئی وہ دکن کی زبان سے مختلف ہے۔ اس کی وجہ یہی ہے کہ گو شمالی ہند میں اردو کے ادبی آثار فارسی کے غلبہ کی وجہ سے نہیں ملتے مگر عام بول چال میں اردو کا چلن تھا جو دکنی اردو سے مختلف تھی اور وہی زبان اہل پنجاب میں رائج تھی۔ اگرچہ اہلِ دہلی ابتدا میں محاورۂ دکن کے پیچھے دوڑے مگر بہت جلد اس کو ترک کر دیا۔ اہل پنجاب اس دکنی اثر سے بچے رہے کیونکہ ان کا تعلق براہ راست دہلی کی زبان سے رہا۔ تعجب ہے کہ اس دور میں "نے" کا استعمال بالالتزام اور باقاعدہ ملتا ہے۔ چند مقتدر شعرا کے کلام سے مثالیں پیش ہیں۔

محمد جان: بسمل جو تڑپتا ہے، مرجانے کوں کیا کہئے؟
کیا کام کیا دل نے دیوانے کوں کیا کہئے؟

میر صابر: صابر یہ بات جس نے کہی آفریں اسے
جہاں منہ سے بات نکسی پرائی ہو جاوے گی

نامدار خاں: فرصت نہ دی دشمن نے چلا چل میں ایک پل
آیا اجل کا شیر ہرن کے شکار پر

محمد غوث بٹالوی: بری ساعت اندر کیا اس نے جنگ
ہویا قافیہ زندگانی کا تنگ

شاہ امداد: فیض شاہ مراد سے امداد
ہم نے باندھے ہیں نچتوں کیل

فقیر اللہ: سر مکنوں کا جس نے جانا
اپنے آپ کو آپ پچھاتا

پنجاب سے ذرا آگے بڑھ کر اسی دور میں سرحد کی سیر بھی کر لی جائے۔ سرحد کے تنومند، لشکری خدمات انجام دیتے ہوئے، دہلی اور شمالی ہند پہنچے، شمالی ہند اور یوپی میں پٹھانوں کی بستیوں سے ظاہر ہے کہ بہت سے پٹھان قبیلے یہیں آباد ہو گئے۔ مگر واپس جانے والے اپنے ساتھ اردو لے گئے۔ شعرا کا کلام بھی انہی کی وساطت سے سرحد میں پہنچا۔ یہاں کے

باشندے پشتو کے علاوہ اردو میں بھی اظہارِ خیال کرنے لگے۔ ابتدائی دور کے چند شعرا کا کلام دستیاب ہو چکا ہے۔ "نے" کے ترک و استعمال کی مثالیں ملاحظہ ہوں :۔

آفریدی: میں یار کنے قاصد بھیجا تو ہے پر شاید
بے نامہ اگر آیا، بیمار ہے اور میں ہوں (ترک، مقدر)

〃 دل کو دلوں سے بھیگی راہ ہم نے سنا تھا واہ واہ
کچھ بھی تو کیجئے نگاہ، بیش کر کم، جو ہو سو ہو

حیدری: جب طور پہ موسیٰ نے انوارِ محمدؐ کو
دیکھا تو کہا حاشا، جو تو ہے وہی میں ہوں

ریاض: لکھا ہے وصف میں نے کسی بے نیاز کا
موقع ملا ہے خوب قلم کو نماز کا

〃 دلی والوں کے بھی اشعار سنے ہیں میں نے
پر ریاضیؔ ترا انداز سخن کیا کہنے

سرحد کے بعد سندھ کے ریگزار کی بھی کیوں نہ سیر کی جائے؟

ہمیں وادیٔ مہران میں صرف ایک شاعر کا سراغ مل سکا اور وہ ہیں سچل سرمست۔ ان کے کلام پر تصوف کا گہرا اثر ہے۔ "نے" کا ترک و استعمال ان کے کلام میں بھی موجود ہے :۔

یہ درد مجھ کو جاناں اب بے خبر کیا ہے
مجروح میرے دل کو اس اک نظر کیا ہے (ترک، مقدر)

اتنی بھی بے نیازی دلبر نہ کر سچل سے
اس کی گلی میں تم نے اکثر گزر کیا ہے

پاک و ہند کے علاقہ میں ذرائع آمد و رفت و نشر و اشاعت میں آسانیاں ہو گئیں، اردو ہر جگہ بولی اور سمجھی جانے لگی۔ غالب کے خطوط سے ان کے شاگردوں کے حالات پر کافی روشنی پڑتی ہے۔ بنگال، کاٹھیاواڑ، بمبئی، ملتان وغیرہ کا ذکر ان میں پایا جاتا ہے۔ گویا اسی زمانہ سے ادبی زبان وہی تھی جو دہلی کی تھی۔ ریاض سرحدی کا شعر بھی اسی کا موید ہے۔ لیکن عام بول چال کی زبان بھی اردو ہی کا ایک روپ تھی۔ سرحد، بنگال، بمبئی، مدراس وغیرہ کے علاقوں میں جائیے تو اردو کا سکہ چلتا نظر آئیگا۔ مگر اس میں اور ادبی زبان میں کافی فرق ہے۔ مسلم لیگ کی نشاۃ ثانیہ کے بعد جب قائداعظم صدر منتخب ہوئے اور انہوں نے ہندوستان کے شہروں کا دورہ فرمایا تو انگریزی کے علاوہ کبھی کبھی اردو میں بھی تقریر فرمایا کرتے تھے۔ چنانچہ ان کی تقریر کے یہ الفاظ اب تک میرے حافظے میں موجود ہیں: "جنلح اب گھنٹی بجانے کو نگا" اور اس کو بمبئی کی اردو کے نام سے یاد کیا گیا تھا۔ ان کی زبان سے اس قسم کی اردو بڑی بھلی لگتی تھی۔ بمبئی اور اس کے ملحقہ علاقہ میں اگرچہ گجراتی اور مرہٹی کا چلن ہے مگر اردو کا بھی سکہ چلتا ہے جو علاقائی اثر لئے ہوئے ہے۔ مگر "نے" کا استعمال عام بول چال تک میں ہے۔ جیسے "اپن نے یہ کام نہیں کیا۔"

۱۸۵۷ء کی جنگ آزادی کے بعد جبکہ دہلی کی سرزمین مسلمانوں کے لئے تنگ ہو گئی تھی۔ اہلِ علم نے پنجاب کا رخ کیا۔ مولانا محمد حسین آزاد اور مولانا حالیؔ لاہور آ گئے۔ ان کی کوششوں سے یہاں اردو کو فروغ حاصل ہوا۔ شعر و سخن کی بساط بچھائی گئی۔ مشاعرے ہوئے۔ ایک زمانہ ایسا گزرا ہے کہ لاہور رشکِ دہلی و لکھنؤ بنا۔ یہاں کے رہنے والوں نے شعر و ادب کے میدان میں نمایاں ترقی کی۔ کیا بلحاظ فن اور کیا بلحاظ موضوع۔ چنانچہ خیال و موضوع کی قدرت میں ان کا مدِمقابل کوئی نہیں۔ جدید شاعری درحقیقت زندہ دلانِ پنجاب ہی کی شاعری سے عبارت ہے۔ اسی قدرت کاری کے رشک نے اہلِ لکھنؤ کو ان کا مخالف بنا دیا۔ اہلِ دہلی اس لئے غیر جانب دار سے رہے کہ جب دہلی کو حکومت کا مرکز قرار دیا گیا تو سرکاری ملازمین کی بھاری کھیپ پنجاب ہی سے گئی اور انہوں نے زبانِ دہلی کا تتبع کیا۔ مگر ان حضرات کی زبان میں کچھ علاقائی اثر بھی باقی رہا۔ جو لازمۂ فطرت تھا۔ اہلِ لکھنؤ نے جو خارجی شاعری کے دلدادہ ایہام، ضلع جگت کے متوالے تھے، اہلِ پنجاب کی بلند خیالی اور موضوع کی ندرت پر رشک کیا اور زبان کی خامیاں نکال کر تنقید شروع کر دی۔ سیماب، اکبر آبادی بھی اسی رشک کا شکار ہوئے اور علامہ اقبال کی زبان پر اعتراضات کئے۔ لیکن بہت جلد تمام اہلِ ہند کو اپنی شاعری کی طرز بدلنی پڑی۔ لکھنؤ والوں نے بھی کنگھی، چوٹی اور انگیا وغیرہ سے ہاتھ اٹھایا۔ خارجی امور اور ضلع جگت کو ترک کیا۔ اب تمام ہندوستان بیان و زبان کے لحاظ سے ایک ہو گیا۔ مگر اہلِ لکھنؤ خیال و بیان کی اس بلندی کو نہ چھو سکے جو اہلِ پنجاب و شمالی ہند کا حصہ تھی۔ رشک کی اسی چشمک نے ترقی کی اور اہلِ پنجاب کی زبان کو موردِ تنقید بنایا گیا اور اب تک وہی جذبہ کارفرما ہے۔ جوشؔ ملیح آبادی نے تو یہ روش اختیار کی کہ انہیں اپنے کلام میں جو امور قابلِ گرفت نظر آئے صاف لکھ دیا "میرے نزدیک یہ جائز ہے، میں اس کو جائز سمجھتا ہوں"۔ ان کا جلد پیچھا چھوٹ گیا کیونکہ ان کا شمار بھی زمرۂ اہلِ زبان میں ہوتا ہے۔ اس لئے پیشانیوں پر بل پڑ کر رہ گئے اور مخالفین کچھ نہ کر سکے۔

اس منزل پر پہنچ کر ہم بڑے سکون و اطمینان سے ایک امر کا جائزہ

لینے کی کوشش کرتے ہیں۔ ہم نے دکن، لکھنؤ، دہلی، پنجاب، سرحد اور سندھ میں گھوم پھر کر "نے" کے استعمال کا جائزہ لیا جس کا نتیجہ یہ ہے کہ شمالی ہند میں "نے" کا ترک تو ملتا ہے مگر بے قاعدگی نہیں۔ دکن میں بے قاعدگی و ترک قدیم زبان میں ہے موجودہ ادب میں نہیں۔ لکھنؤ میں ترک و بے قاعدگی کی مثالیں اب تک ملتی ہیں جس کو ہم گوارا کر لیتے ہیں لیکن جب اسی طرح کی کوئی بے قاعدگی اہلِ پنجاب سے سرزد ہوتی ہے تو اہلِ زبان کو سخت ناگوار معلوم ہوتی ہے آخر کیوں؟ حالانکہ اہلِ پنجاب کی غلطیاں زیادہ تر بول چال تک محدود ہیں، لکھنے پڑھنے میں بہت کم ہیں۔ ڈاکٹر محمد دین تاثیر نے جب لکھا،

"تو نے الفت مجھ سے کرنی ہے تو کر میرے لئے"

ایک قیامت آگئی، اِدھر سے اُدھر تک ایک آگ لگ گئی، بحث شروع ہوئی اور کوئی فیصلہ نہ ہو سکا۔ اہلِ پنجاب کی یہ غلطی عام ہے بلکہ کہا جا سکتا ہے جب سے اس علاقہ میں اردو کا رواج ہوا، اسی وقت سے یہ غلطی بھی ہے۔ مولوی فتح محمد جالندھری نے اپنی کتاب منہاج القواعد میں اس غلطی کے متعلق بہت کچھ لکھا ہے۔ (منہاج القواعد ص ۳۰۲ وغیرہ) ڈاکٹر تاثیر نے مولانا سالک سے اس غلطی کو صحیح ثابت کرنے کی تدبیر پوچھی تھی۔ وہ لکھتے ہیں:

"تاثیر کی شاعری میں جدید و قدیم کا نہایت لطیف امتزاج پایا جاتا ہے۔ ابتدائی غزلوں میں ان کا مخصوص رنگ تو موجود ہے لیکن بعض مقامات پر زبان خلافِ محاورہ ہو گئی ہے اور کہیں کہیں فن کے تسامحات بھی پائے جاتے ہیں۔ میں ہمیشہ انہیں ان باتوں پر ٹوکا کرتا تھا لیکن وہ ہنس کر ٹال دیا کرتے تھے۔ کیونکہ آجکل کے ادیبوں اور شاعروں کی خود رائی کا کچھ اثر ان میں بھی تھا۔ یعنی غلطی کرتے تھے جان بوجھ کر کرتے تھے، اور پھر اس کی صحت پر اصرار کیا کرتے تھے۔ ایک دفعہ کا ذکر ہے، مجھ سے کہنے لگے: "سالک صاحب! کیا ہم نے جانا ہے، ہم نے کرنا ہے، لکھنا درست ہے؟" میں نے کہا، خلافِ محاورۂ اہلِ زبان ہے۔ مجھ کو جانا ہے اور مجھ کو کرنا ہے درست ہے۔ کہنے لگے: "میں نے اپنی تحریروں میں متعدد بار اس قسم کے فقرے لکھے ہیں۔ اگر کوئی اہلِ زبان اعتراض کرے تو اس کا کیا جواب دوں؟" میں نے کہا، غلطی کا جواب کیا ہوگا؟ صاف کہئے کہ مجھ سے غلطی ہو گئی۔ ہنس کر کہنے لگے: "نہیں میں صرف اس لئے پوچھ رہا ہوں کہ ایسا جواب دے سکوں جو بظاہر معقول ہو۔" میں نے کہا بھائی غلطی کو حق بجانب ثابت کرنے کے لئے جو جواب دیا جائے گا وہ محض سخن طرازی اور کج بحثی ہوگی۔ کہنے لگے: "کچھ بھی ہو آپ اس کا جواب مجھے بتا دیجئے۔" میں نے کہا آپ یہ کہئے کہ "نے" علامت فاعلی ہے اور "کو" علامتِ مفعول۔ اگر "جانا ہے" کا فاعل "میں" ہے تو اس کے بعد "نے" ہی درست ہے "کو" کیونکر درست ہو سکتا ہے۔ سن کر اچھل پڑے اور کہا، بس ٹھیک ہے اب میں یہ جواب دے دیا کروں گا۔ میں نے کہا، شوق سے دیجئے، لیکن محاورے کا اعتراض قواعد سے اور قواعد کے اعتراض کا جواب محاورے سے دینا اصولِ لسانیات سے درست نہ ہوگا۔" (یاران کہن صـ ۲۲۹)

اہلِ پنجاب کی اردو خدمات سے انکار کرنے کی جرأت کسی میں نہیں۔ نشر و اشاعت، شعر و ادب میں ان کا مقابلہ مشکل ہے۔ اردو پر ان کا بھی حق ہے اور تقسیم ملک کے بعد تو ان کا یہ حق اور بھی فائق ہو جاتا ہے پس جس طرح ہم نے اہلِ لکھنؤ کی غلطیوں کو صحیح قرار دے لیا اور گوارا کر لیا اسی طرح اہلِ پنجاب کی اس غلطی کو مولانا سالک کے بیان کی روشنی میں مستثنیات کے ذیل میں بیان کر دینے میں کوئی قباحت نہیں۔ لیکن اس کے استعمال کا بھی ایک اصول مقرر کر لیا جائے۔ میرے خیال میں یہ قاعدہ بنا لیا جائے کہ جب مصدر ارادۂ فعل کے اظہار کے لئے استعمال کیا جائے، اس کا تعلق خواہ ماضی سے ہو یا حال سے یا استقبال سے تو علامت فاعل "نے" استعمال کر لینے میں کوئی مضائقہ نہیں جیسے:۔ میں نے لاہور جانا تھا، میں نے لاہور جانا ہے۔ تم نے لاہور جانا ہوگا۔

ہماری مندرجہ بالا تجویز سے یہ نہ خیال کر لیا جائے کہ "میں نے لاہور جانا ہے" ہمارے نزدیک صحیح ہے یا ہم اس کی صحت کے لئے وجہِ جواز پیدا کر رہے ہیں۔ ایسا ہرگز نہیں ہے بلکہ یہ ہمارے نزدیک کلیتہً غلط ہے، ہم نے صرف رواداری اور دلجوئی کی خاطر یہ تجویز پیش کی ہے۔ مولانا سالک نے اس کو محاورہ کی غلطی بتایا ہے مگر یہ اہلِ زبان کے روزمرہ بول چال ہی کے خلاف نہیں بلکہ بلحاظ قواعد بھی غلط ہے۔ اسی طرح پنڈت برجموہن دتاتریہ کیفی نے بھی اس غلطی کو جائز قرار دینے کی کوشش کی ہے "مجھے کل جانا ہے" کو بحالتِ

مجیبی) اور "میں نے لاہور جانا ہے" کو بحالتِ اختیاری درست خیال کرتے ہیں۔ وجہ جواز میں حالتِ جبر کو مفعولیت سے اور حالتِ اختیار کو فاعلیت سے متعلق بتاتے ہیں۔ ان کے نزدیک مستقبل کی حیثیت عموماً خبریہ ہوا کرتی ہے۔ اس لئے انہوں نے جبر و قدر کی قید لگا کر "نے" کے استعمال کو جائز قرار دیدیا۔ (کیفیہ ص ۱۶۸/۱۶۷)

لیکن وہ فعل کو یکسر نظر انداز کر گئے ہیں "نے" علامت فاعل ہے اور فاعل فعل کو چاہتا ہے۔ فعل ثابت ہونے پر استعمال درست ہو سکتا ہے۔ نیز میں نے لاہور جانا تھا کا تعلق ماضی سے ہے۔ اس کے لئے کیا وجہ جواز قرار دی جا سکتی ہے؟ اس پہلو پر بھی کیفی صاحب نے غور نہیں کیا پس ہماری پیش کردہ تجویز کہ ارادۂ فعل کے اظہار کا موقع ہو تو اس قسم کے جملے استعمال کر لینے کو مستثنیات میں شمار کرنا چاہیئے، ہر پہلو سے مناسب ہے۔ اب مولانا سالک اور پنڈت کیفی کے بیانات کے مقابلہ میں غلطی کے وجوہ ملاحظہ فرمائیے۔

جانا، لکھنا، پڑھنا، کرنا وغیرہ فعل نہیں ہیں بلکہ مصدر ہیں اور مصدر اسم ہوتا ہے۔ اس لئے اس کا استعمال اسم کے مطابق ہونا چاہیئے۔ اسم جملہ فعلیہ میں فاعل اور مفعول ہوتا ہے اور جملہ اسمیہ میں مبتدا اور خبر۔ جملہ فعلیہ میں مسند الیہ اسم اور مسند فعل ہوتا ہے جیسے احمد آیا، رشید خط لکھتا ہے۔ جملہ اسمیہ میں مسند اور مسند الیہ دونوں اسم ہوتے ہیں۔ ان کے ساتھ فعل ناقص مل کر جملہ کی تکمیل کرتا ہے۔ جیسے رشید ذہین ہے۔ احمد کو بخار ہے وغیرہ۔ "میں نے لاہور جانا ہے" جملہ فعلیہ اس لئے نہیں کہ "جانا ہے" جو مسند ہے فعل نہیں ہے بلکہ "جانا" مصدر (اسم) اور "ہے" فعل ناقص۔ پس "نے" علامت فاعل کو بغیر فعل کے استعمال کرنا غلط ہے۔ لہٰذا یہ جملہ فعلیہ نہیں بلکہ جملہ اسمیہ ہے۔ جملہ اسمیہ کے لئے اصول مسلمہ ہے کہ علامت فاعل "نے" استعمال نہیں ہوتی بلکہ علامت مفعول "کو" استعمال ہوتی ہے۔ جیسے رشید کو کھانسی ہے۔ ضمیر فاعلی تنہا تو استعمال کر لیتے ہیں جیسے "میں خوش ہوں" "تو غمگین ہے" "تم کامیاب ہو" وغیرہ مگر "نے" کے ساتھ استعمال نہیں کرتے۔ البتہ ضمیر مفعولی ہوتی ہے۔ جیسے مجھے کتاب کی ضرورت ہے۔ تجھے دوا پینی ہے وغیرہ۔ پس "میں نے لاہور جانا ہے" اصول مذکورہ کی روشنی میں غلط ہوا۔ اس کی جگہ "مجھے لاہور جانا ہے" درست ہے۔ اساتذہ اسی طرح نظم کرتے آئے ہیں، مومن اور غالب کے یہ اشعار ہیں،

کوئے دشمن میں جا پکڑتا کیوں — کیا مجھے شرمسار ہونا تھا؛
حیلۂ بے خودی سے ہے مومن — توڑنا ہم کو شیشۂ دل کا
وائے دیوانگئ شوق کہ ہر دم مجھکو — آپ جانا اُدھر اور آپ ہی حیراں ہونا

اہلِ پنجاب اس غلطی کا شکار کیوں ہیں؟ جب اس کا سراغ لگایا جاتا ہے تو یہ بات واضح ہو جاتی ہے کہ پنجابی میں "نے" علامت فاعل اور "نوں" علامت مفعول ہے کہیں کہیں "نے" بھی بطور علامت مفعول استعمال کر لیتے ہیں۔ ہیر وارث کے ان اشعار میں "نے" کا استعمال غور طلب ہے:۔

اِیس نیند نے شاہ فقیر کیتے، رو بیٹھے نے وقت وہانیاں نوں
نیند حسن حسینؓ کیتے، کٹھے کربلا وچ شہانیاں نوں
بچہ دوہاں نے رب نوں یاد کرنا، نہیں عشق نوں ہتھ لاونا میں
ایس عشق دا وچ پیارا یہا، جی جان تے سیس گواونا ئیں
دس لڑنا کا لیا کڈھناوے، سا ڈے پنگ نوں کس خراب کیتا
ساڈی سیج تے کون سوالیوٹی، میرا کچھ نہ ادب آداب کیتا
کیہڑے کم دے کا نے سلآندا، آ باکیہی کرتوت دکھاونے نوں
وارث بندگی واسطے گھلیا ئیں، آ بیٹھا عیش اڈاونے نوں

شعر ۱ کے مصرع اول میں "نے" علامت فاعل اور "نے بمعنی ہیں" ہے مصرع ثانی میں "حسنؓ حسینؓ نے نیند کیتی" ہونا چاہیئے، ترکیب میں بے قاعدگی ہے شعر ۲ میں بطور علامت مفعول ہے اور استعمال بھی مصدر کے ساتھ ہے۔ شعر ۳ میں "نے" مقدر ہے یعنی "کس نے خراب کیتا" ہے شعر ۴ میں بطور علامت مفعول بمعنی "کے لئے" ہے۔ "نوں" ہر جگہ علامت مفعول ہے۔ پس اہلِ پنجاب جب اس قسم کے جملے بولتے ہیں تو ان کے تحت الشعور میں پنجابی روزمرہ ہوتا ہے اور لاشعوری طور پر بیساختہ۔ پنجابی روزمرہ کی پیروی میں "اس نے لاہور جانا ہے" بول جاتے ہیں۔ یعنی "ایہنوں یا نے لاہور جاونا اے" تحت الشعور سے ابھر کر لاشعوری حالت میں "اس نے لاہور جانا ہے" بن جاتا ہے پس یہ نہ پنجابی روزمرہ کے مطابق ہے اور نہ اردو روزمرہ کی پیروی ہے اس لئے اس سے احتراز واجب و لازم ہے۔

اہلِ زبان اس غلطی سے بیزاری کے اظہار میں شدت اختیار کر لیتے ہیں۔ شدتِ اظہار کے ردِ عمل میں اہلِ پنجاب غلطی کا ازالہ کرنے کے بجائے اس غلطی کی صحت پر اڑ جاتے ہیں۔ یہ افراط و تفریط، احساس برتری اور شعور کمتری کے نتائج ہیں اس لئے اہلِ زبان کو چاہیئے کہ اس غلطی کو گوارا کر لیں اور اسے دور کرنے کی مناسب تدبیر سوچیں۔ زندہ دلانِ پنجاب کو اپنی زندہ دلی کا ثبوت اس طرح دینا چاہیئے کہ وہ اس قسم کے جملے بولتے وقت اصول اور روزمرہ کو پیشِ نظر رکھیں، تحت الشعور و لاشعور کی حرکات کا شکار نہ ہوں، شعور کو بیدار کریں اور غلطی سے احتراز فرمائیں ۰

علمی اصطلاحات کے اردو ترجمے

(لسانی اصطلاحات کی روشنی میں)

ڈاکٹر شوکت سبزواری

علمی اور فنی اصطلاحوں کا اردو میں ترجمہ کرنے سے پہلے یہ طے ہو جانا چاہئے کہ اصطلاح کسے کہتے ہیں اور اس کے کیا معنی ہیں[1] تاکہ سب (ALL) بعض (SOME) اور دلچسپی (INTEREST) جیسے زبان کے عام الفاظ جو روزانہ بات چیت میں برتے جاتے، ہر قسم کی تحریر تصنیف میں جگہ پاتے اور ہر مقام پر ان کے وہی ایک معنی مراد لئے جاتے ہیں، فرہنگ اصطلاحات میں شامل ہونے نہ پائیں۔ اصطلاح کے لفظی معنی ہیں اتفاق لیکن عرف عام میں وہ مصطلح یعنی متفق علیہ کے معنوں میں مستعمل ہے ہم اصطلاح اس لفظ کو کہتے ہیں جس کے کسی خاص علم و فن میں لغوی معنی سے الگ کوئی مناسب معنی، یا عام اور متعدد معانی میں سے کوئی ایک معنی متعین کر لئے جائیں، اور اس علم و فن کی متداول کتابوں میں وہ لفظ اپنے اس مخصوص معنی میں عام طور سے مستعمل ہو۔ مثلاً "حرف" کے معنی ہیں "کنارہ"۔ گرامر میں حرف ایک کلمہ ہے جس کے معنی مستقل نہ ہوں۔ "فقہ" کے معنی ہیں جاننا اور سمجھنا۔ دینیات میں فقہ دین یا شریعت کا جاننا ہے۔ لغت میں یہ لفظ عام تھا اصطلاح میں خاص کر لیا گیا۔

ہونٹ، دانت، تالو، مسوڑھا، حلق، حنجرہ وغیرہ الفاظ کو لسانیاتی اصطلاحات میں شمار نہیں کیا جا سکتا اس لئے کہ یہ زبان کے عام الفاظ ہیں۔ بول چال میں ان کے وہی معنی ہیں جو علم الاعضاء و تشریح اجسام میں ہیں۔ "لہوی" ایک آواز ہے جو "لہاۃ" یعنی کوّے کی مدد سے ادا ہوتی ہے۔ یہ اصطلاح ہے۔ خود "لہاۃ" کوئی اصطلاح نہیں۔ اسی طرح تحلیلی اصطلاح ہے۔ تحلیل زبان کا عام لفظ ہے۔ تلفظ، کلمہ، مجہورہ، مہموسہ اصطلاحیں ہیں۔ ان کے لفظی معانی ان کے اصطلاحی معنوں سے مختلف ہیں۔ تقسیم، بامعنی، انحراف، ترمیم، تحریر، ترسیل، اولی، ثانوی، جزء، عمل عام استعمال ہونے والے الفاظ ہیں[2]۔

مختلف علوم و فنون کی اصطلاحوں میں فرق کرنا ازبس ضروری ہے تاکہ ایک فن کی اصطلاحیں دوسرے فن کی اصطلاحوں میں گڈمڈ ہونے نہ پائیں۔ مثلاً تمثیل (ALLEGORY) منطق کی اصطلاح ہے۔ قوس (SEGMENT) اساس یا قاعدہ (BASE) ریاضیات کی اور استعارہ (METAPHOR) علم بیان کی۔ انہیں لسانیات کی اصطلاحات میں شامل ہونا نہ چاہئے۔ صوتیات، اشتقاقیات، معنویات، صرف و نحو لسانیات کے اہم بنیادی شعبے ہیں۔ تحریر یا رسم خط کا بھی کچھ تعلق لسانیات سے ہے۔ ان علوم و فنون کی اصطلاحات کو فرہنگ اصطلاحات لسانیات میں جگہ دی جا سکتی ہے۔

اصطلاح کی تشریح و تعیین کے بعد ترجمہ کا مسئلہ سامنے آتا ہے۔ سوال یہ ہے کہ ترجمے میں کس زبان سے مدد لی جائے؟ کراچی یونیورسٹی کے شعبہ ترجمہ کے فاضل ارکان کی رائے ہے:

"اصطلاح سازی میں عربی، فارسی، ترکی، ہندی، سنسکرت اور ان تمام زبانوں سے مدد لی جائے جو ہماری زبان کا جز ہیں۔"

---

[1] ملاحظہ فرمائیے فرہنگ اصطلاحات فلسفہ شائع کردہ شعبۂ تالیف و ترجمہ کراچی یونیورسٹی۔

[2] ملاحظہ فرمائیں "زبان اور علم زبان" کا ضمیمہ اصطلاحات۔ اس مقالے میں جو مثالیں پیش کی گئی ہیں وہ تمام تر فرہنگ اصطلاحات فلسفہ اور ضمیمہ اصطلاحات سے ماخوذ ہیں۔

سنسکرت سے مدد لینے کا سوال پیدا نہیں ہوتا۔ سنسکرت ہماری علمی زبان نہیں۔ ہم سنسکرت نہیں بولتے۔ ہماری زبان سنسکرت کے تہذیبی مزاج اور اس کی سرشت سے ناآشنا ہے۔ سنسکرت کے ترجمے ہمارے یہاں رس بس نہ سکیں گے۔ غیر منقسم ہندوستان میں اردو کی گزشتہ سات سو سال کی تاریخ میں سنسکرت کے علمی و تہذیبی الفاظ اردو کو سازگار نہ ہوئے تو پاکستان میں سنسکرت زبان کی علمی اصطلاحیں کس طرح اردو میں جڑ پکڑ سکیں گی۔ فارسی سے البتہ مدد لی جاسکتی ہے لیکن فارسی برصغیر کے مسلمان کی تہذیبی زبان رہی ہے، علمی اصطلاحات کے بار کی شاید ہی وہ متحمل ہو۔ علمی زبان کے لئے جس نوع کی ثقاہت، سنجیدگی، متانت اور بھاری بھرکم پن درکار ہے وہ صرف عربی میں ہے۔ عربی دنیائے اسلام کی علمی زبان ہے۔ ہر خطے کے مسلمان نے اس سے استفادہ کیا اور اس کے علمی ذخیروں سے فیض اٹھایا۔ اردو کے لئے عربی کی وہی حیثیت ہے جو انگریزی کے لئے لاطینی کی ہے۔ اردو میں عربی کے سوا کسی اور زبان کے اصطلاحی الفاظ کے رچنے پچنے اور گھل مل جانے کی گنجائش مجھے نظر نہیں آتی۔ دو ایک مثالیں پیش کرتا چلوں۔

" LANGUAGE " کا ترجمہ زبان خاصا بھلا معلوم ہوتا ہے لیکن " LINGUISTIC " کا ترجمہ زبانی (بجائے لسانی) شاید ہی پسند کیا جائے۔ " DENTAL " کا ترجمہ " اسنانی " دندانی سے زیادہ ثقہ اور " LATERAL " کا ترجمہ منحرف (= حرف یعنی پہلو کی طرف مائل) پہلوئی سے زیادہ بامعنی اور پروقار ہے۔

گردان، بولی، وغیرہ فارسی ہندی ترجمے اردو میں رائج ہو چکے ہیں۔ یہ باقی رکھے جاسکتے ہیں۔ فارسی اردو کے رائج ترجموں کو چھوڑ کر باقی تمام اصطلاحات کے ترجمے عربی کی مدد سے ہونے چاہئیں۔

اس سلسلے کا ایک اور رجحان جسے غیر منقسم ہندوستان میں برگ و بار لانے کا زیادہ موقع ملا ہے یہ ہے کہ عربی ہندی یا فارسی ہندی کے میل ملاپ سے اصطلاحیں وضع کر کے الفاظ و اصطلاحات کی گویا متحدہ قومیت کا ڈول ڈالا جائے۔ یہ رجحان علمی اور ادبی نقطۂ نگاہ سے مستحسن قرار نہیں دیا جاسکتا۔ لفظوں کو جوڑنے اور دو مختلف زبانوں کے الفاظ میں پیوند لگانے کے لئے ان میں صوتی مناسبت اور ایک طرح مزاجی ہم آہنگی ہونی چاہئے تاکہ مرکب الفاظ گھل مل کر ایک ہو جائیں اور زبان پر بار اور کانوں کو ناگوار نہ ہوں۔ اصل جوڑ بے جوڑ ہوں گے، اور پنپنے نہ پائیں گے۔ جیسے:

اجنبیائی (ا + جنس + یائی)، بازو ھرائی (باز + دھرا + ئی)، چٹکار اصوات (چٹکار + اصوات)، صوت تانت (صوت + تانت)، مورت نگاری (مورت + نگار + ی)، ا ھکاری (ا + ھکار + ی)

کراچی یونیورسٹی کے ارکان شعبۂ ترجمہ و تالیف نے ایک طرف یہ تسلیم کر لیا ہے کہ "اصطلاح زبان اور فن کے لحاظ سے موزوں ہو" دوسری طرف یہ فرماتے ہیں:

"ضرورت ہو تو ہندی الفاظ کے ساتھ عربی فارسی کا جوڑ اور سابقے لاحقے لگائے جائیں"

سوال یہ ہے کہ "ہندی الفاظ کے ساتھ عربی فارسی جوڑ" کے بعد کیا کوئی اصطلاح زبان کے لحاظ سے موزوں ہو سکتی ہے؟

انسان کی طرح زبان کا بھی مزاج ہوتا ہے جس کا وضع اصطلاحات کے وقت بہرحال خیال رکھنا چاہئے۔ عام بول چال کے الفاظ پر تو کسی کا اجارہ نہیں۔ جو لفظ عوام کی ٹکسال سے چل نکلا وہ رائج الوقت سکہ ہے۔ اصطلاح سازی البتہ اہلِ علم کا کام ہے۔ یہ ان کے اختیار میں ہے کہ وہ زبان کے مزاج و منہاج کی مناسبت سے اصطلاحیں وضع کریں۔ اصطلاح میں جو عظمت اور ایک طرح کی گمبھیرتا ہوتی ہے اس کا تقاضا ہے کہ اصطلاحی الفاظ صوتی لحاظ سے موزوں، قواعدِ زبان کے مطابق، بناوٹ میں بھاری بھرکم اور دلالت معنی کی رو سے مناسب ہوں۔ ہر چند فارسی الفاظ کے آخر میں نسبت کی "ی" لاحق کر کے ہزاری، بزاری جیسے الفاظ عام طور سے اردو میں وضع کئے جاتے رہے ہیں لیکن مستند علمی زبان میں فارسی الفاظ پر یائے نسبت کا اضافہ ثقاہت کے خلاف ہے۔ جیسے خودی (خود + ی)، پہلوئی (پہلو + ئی)، لبی (لب + ی)، دولبی (دو + لب + ی) وغیرہ۔ اور ان وضع کردہ الفاظ پر عربی کی "ہ" داخل کرنا یا ٹھیٹ ہندی الفاظ پر "ی" بڑھانا ایسا ہے جیسے کریلا اور نیم چڑھا مثلاً جوڑا جوڑی (جوڑ + ا + جوڑ + ی)، تالوی (تالو + ی)، دانت بیٹھکی (دانت + بیٹھک + ی)، تالویہ (تالو + ی + ہ)، خودیت (خود + ی + ہ)

عربی سے لی جائے یا فارسی سے اصطلاح کو کم سے کم زبان کے صرفی نحوی قاعدوں کے مطابق ہونا چاہئے۔ لہاۃ (= کوا)، عُمق (= گہرائی، معنی (= مفہوم) عربی زبان کے الفاظ ہیں۔ عربی گرامر کے مطابق "لہاۃ" سے اسم منسوب "لہوی" بنتا ہے۔ "لہاتی" غلط ہے۔ عمق سے عمقیت

(ع ق + ی + ہ) تو ہو سکتا ہے "عمقت" درست نہیں۔ "معنی" کی طرف نسبت کی جائے تو معنوی بنے گا اور اس پر "ات" بڑھا کر معنویات (SEMANTIC) کہیں گے "معنیات" (معنی + ات) یعنی بہت سے معنی بے محل بھی ہیں اور بے معنی بھی۔ "حد کبریٰ" اور "حد صغریٰ" قواعد نحو کے اعتبار سے غلط ہے۔ حد اکبر اور حد اصغر چاہئے۔ "فنون صغیرہ" کی جگہ "فنون صغیرہ" صحیح ہے۔

اصطلاحات عموماً مفرد ہوتی ہیں۔ جہاں تک ممکن ہو مفرد اصطلاح کا ترجمہ مفرد لفظ سے کیا جائے۔ مرکب اصطلاحیں بھی ہیں لیکن کم۔ یہ دو طرح کی ہیں۔ کچھ ایسی ہیں جنہیں آسانی کے ساتھ ایک لفظ میں منتقل کیا جا سکتا ہے۔ انہیں ایک سے زیادہ لفظوں میں منتقل کرنا درست نہیں خصوصیت سے اس صورت میں کہ ان کے ہم معنی مفرد اصطلاحیں پہلے سے رائج ہوں جیسے MAJOR PREMISE اور MINOR PREMISE یا MAJOR TERM اور MINOR TERM پہلی دو اصطلاحوں کا ترجمہ مقدمہ کبریٰ اور مقدمہ صغریٰ کی جگہ صرف کبریٰ، صغریٰ اور بعد کی اصطلاحوں کا اکبر (بجائے حد اکبر) اصغر (بجائے حد اصغر) ہونا چاہئے۔ جن اصحاب نے عربی زبان میں منطق پڑھی ہے وہ جانتے ہیں کہ منطق کی متداول کتابوں میں صغریٰ، کبریٰ، اصغر، اکبر وغیرہ اصطلاحیں عام طور سے استعمال ہوتی ہیں۔ "حد اوسط" کو البتہ تنہا اوسط نہیں کہتے اس لئے MIDDLE TERM کا ترجمہ حد اوسط ہو سکتا ہے۔ کچھ مرکب اصطلاحیں ایسی بھی ہیں جنہیں ایک لفظ میں بآسانی منتقل نہیں کیا جا سکتا۔ جیسے؛ VOCAL، PHONETIC DECAY وغیرہ۔ انہیں مناسب مرکبات کی شکل میں منتقل کیا جائے۔

ان کے علاوہ جن مرکبات کو اصطلاح کی حیثیت حاصل نہیں ان کے اجزا کا اولاً الگ الگ ترجمہ کرنا اور پھر جوڑ کر بصورت ترکیب اردو میں منتقل کرنا طول لاطائل ہے۔ بہتر یہ ہے کہ مفردات یعنی اجزا کا ترجمہ کر دیا جائے۔ اس کے بعد قاری کی ذہانت پر اعتماد ہو جب اس کے سامنے دو لفظوں کا کوئی جوڑا آئے تو حسب ضرورت زبان کے مقررہ قاعدوں کے مطابق اسی قسم کا ایک مرکب ڈھال لے مثلاً LAW اور POLARITY کا ترجمہ اگر قاری کو معلوم ہے تو LAW OF POLARITY کے ترجمے کی ضرورت نہیں PHONETIC کے معنی بتا دئے جائیں تو PHONETIC CHANGE کا مطلب نکالا جا سکتا ہے۔

METAPHYSICS اور DEDUCTION اپنی اپنی جگہ واضح ہوں تو اس کی ضرورت نہیں کہ METAPHYSICAL DEDUCTION کا ترجمہ بتایا جائے یا DEDUCTION اور CATEGORY کے ترجمے کے بعد DEDUCTION OF CATEGORY کا ترجمہ درج کر کے ہندی کی چندی کی جائے۔ یہ طول لاطائل ہی نہیں تحصیل حاصل بھی ہے۔

فرہنگ اصطلاحات میں ورنر کا قانون، گرم کا قانون، گراس مین کا قانون، قانون ابر، جالینوسی شکل جیسی ترکیبیں نظر پڑتی ہیں تو حیرت دل کا دامن کھینچتی ہے کہ خدایا! یہ کس قسم کے ترجمے ہیں اور ان کا اصطلاح سازی سے کیا تعلق ہے! قانون اور شکل کا ترجمہ کرنے کے بعد یہ کیا ضرور تھا کہ ورنر، گرم، گراس مین، ابر اور جالینوس وغیرہ علمائے فن کے ناموں کی طرف اضافت کر کے بتایا جائے کہ اس طرح مرکبات بناؤ۔

غیر ضروری مرکبات کے ترجموں کی کچھ اور مثالیں فرہنگ اصطلاحات فلسفہ و لسانیات سے انتخاب کر کے لکھی جا رہی ہیں،

فلسفۂ لغت، فلسفۂ قانون، لغت سائنس، منطقی تجربیت، معروضی اخلاقیات، آلاتی قدر، ماورائی تصوریت، ماورائی فلسفہ، ماورائی ثبوت، منطقی نحو، ترکیبی حکم، تجربی صوتیات، صوتی جدول، کلام کا بہاؤ، گولایا ہوا مصوتہ، بند مصوتہ، کھلا مصوتہ، مصوتہ کی تدریج، مصوتہ کی ہم آہنگی، وسطی مصوتہ، ہم محلی مرکب، جوڑا جوڑی مرکب، تاریخی لسانیات، تقابلی لسانیات، توضیحی لسانیات، موسیقانہ (موسیقیانہ) لہجہ۔

یہ درست ہے کہ فن کی جو اصطلاحیں قدیم سے رائج چلی آ رہی ہیں انہیں برقرار رکھا جائے۔ لیکن ان میں موزوں و ناموزوں اور مفید و غیر مفید کی تفریق مناسب نہیں۔ قدیم سے جو اصطلاحیں چلی آ رہی ہیں فن کی کتابوں میں عموماً برتی جاتی ہیں، اور زبان میں اچھی طرح رس بس گئی ہیں وہ موزوں ہی نہیں مفید بھی ہیں، زبان میں گھل مل گئی ہیں اس لئے موزوں ہیں ہر شخص آسانی کے ساتھ ان کا مطلب سمجھ لیتا ہے اس لئے مفید ہیں۔ موزونیت و افادیت کا معیار یہ ہے کہ اصطلاح زبان میں گھل مل کر اس کا جزو بن جائے اور اس کا مفہوم سمجھنے میں کسی کو کوئی دقت پیش نہ آئے۔ مثلاً NASAL کا ترجمہ غنہ اردو میں عام ہے۔ ہر شخص اسے جانتا ہے۔ "انفی" کے مقابلے میں یہ موزوں بھی ہے۔ اور مفید بھی NASALISCAL کو غنو کہیں گے۔ "انفیائی" نامانوس ہے۔ LATERAL خود منحرف کا ترجمہ

(باقی صفحہ ۱۴۰ پر)

"نوائے دوش"

(دمے با اہلِ معنی ہمنشیں باش)

جمیل نقوی

خوشتر آں باشد کہ سرِّ دلبراں - گفتہ آید در حدیثِ دیگراں - یہ سرِّ دلبراں ـــ "نوائے دوش" ـــ کراچی میں یومِ محمد قلی قطب شاہ کے موقع پر حدیثِ دیگراں
یعنی اس شاعرِ سرکار کے اشعار کو دکنی کی زبان میں پیش کیا گیا تھا۔

سلام اے ترکماں، بھاگیہ نگر کے خسروِ بانی
کہ تج دربار کے نقشاں منے حیران تھا مانی

ترے سر تاجِ زر تھا، ہات میں انگشتِ سلیمانی
ترے قد پر سہاتا تھا شہا جوڑا عروسانی

محمد قطبِ شہ، قطبِ معانی، ظلِّ سبحانی
ازل تھے تج کوں بخشا تھا خدا نے شعر سلطانی

او شعراں کوں پڑیں بھی چلبلیاں بہو چھند بنداں سوں
تمارے وصف کہنے تھے ہوا منج فکر نورانی

ہوا تھا سب کشف تمنا کتاباں بوجتے حق سے
سبق لینے کو آداں تا تگل ملاں دبستانی

عنبر ہور عود و مشک و زعفراں تج رُت پایا تھا
اسی تھے باس تیرا جگ میں کرتا تھا گلستانی

اچھوں دن دن مبارک عید تل تل جشن سب راتاں
خدا تج بخت دولت کا دیا تھا بخت شاہانی

محمد کا غلامی تج خطاب سربلندی تھا
ترے سر پہ دسے منج کوں جھلا جھل تاجِ سلطانی

دسے جیوں دھرت پر تھارے ہیں لیا کے قدسیاں سرگ سوں
بلندی تیرے محلاں کی انبر کی لوح پیشانی

چمک تھے تیری مجلس کی سورج، چندر، اختراں حیراں
چلن پگ پگ بھولیا، خوشیاں دیکھت گردوں گردانی

ملائک نور درسن کے، محلاں باند درپن کے
دیکھت تاں فرش رتن کے کئے گگن گوہر افشانی

ننھی، لالن، پیاری، سانولی، کنولی، سجن حیدر
عجب پایا تھا سکھیاں چندر مکھ، رس کیس، لاثانی

چتراں سرخوش، چلن سرخوش، ہلن سرخوش، ڈلن سرخوش
پنکھی جیواں کے مرغولیں دیکھت چہل بل اد مستانی

دسے فانوس کے درمیان تھے جوں جوت دیوے کا
دکھن کی سندریاں کے بیچ کیا جب جلوہ ارزانی

نزاکت شعر کے فن میں خدا بخشا تھا توں تج کوں
معانی شعر تیرا ہے کہ یا ہے شعرِ خاقانی

بدستِ صبا

"نصیحتے کنمت، یاد گیر و در عمل آر"

(صدرِ پاکستان کا اربابِ قلم کو پیغام)

میں گلڈ کے چوتھے سالانہ اجلاس کے لئے جو لاہور میں منعقد ہو رہا ہے، اپنے دلی جذباتِ تبریک پیش کرتا ہوں۔

گلڈ کے نام میرے سابقہ پیغامات اور اُس کی عملی اعانت اس بات کا کافی ثبوت ہیں کہ مجھے آپ حضرات کی فکری و فنی سرگرمیوں اور پروگراموں سے کس قدر گہری ذاتی دلچسپی ہے، بالخصوص اس امر سے کہ آپ کو اظہارِ رائے کی آزادی حاصل رہے۔ اس لئے میں یہاں اب اُن امور کو دہرانا نہیں چاہتا۔

نظریۂ پاکستان کو بنیاد ٹھہرائے ہوئے ہم کس طرح آپس میں پوری پوری یکجہتی پیدا کریں؛ یہ ایک ایسا مسئلہ ہے جس سے ہم برستور دوچار ہیں۔ خبر نہیں وہ لوگ جن کا اس معاملہ سے سروکار ہے، اس مقصد کو جلد از جلد حاصل کرنے کے لئے واقعی پوری پوری کوشش عمل میں لا رہے ہیں یا نہیں۔

بہر نوع، اس باب میں اہلِ قلم پر سب سے زیادہ ذمہ داری عائد ہوتی ہے۔

آج ہم گوناگوں معاشرتی خرابیوں سے بھی دوچار ہیں، جن کو محض قانون کے زور سے دور کرنا ممکن نہیں۔ ان کی وسیع پیمانہ پر بیخکنی کی ذمہ داری بھی آپ لوگوں ہی پر عائد ہوتی ہے۔

ہمیں آئندہ نسلوں کو یہ کہنے کا موقع نہیں دینا چاہئے کہ ایک آزاد اور عظیم قوم کو تعمیر و ترقی کا کیسا عمدہ موقع ہاتھ آیا اور اس نے اُسے کھو دیا۔

آپ لوگوں کے ہاتھ میں تاریخ کو موزوں سانچے میں ڈھالنے کے لئے ایک زبردست آلہ موجود ہے — آپ کا قلم — اسے سب سے پہلے اپنے وطنِ عزیز کی خاطر کام میں لائیے۔

کیسے! یہ آپ مجھ سے بہتر جانتے ہیں۔

آپ حضرات کو ہمیشہ میرا کامل تعاون حاصل رہے گا۔

ہدیۂ گرامی : وزیر اعظم لبنان، ہز ایکسیلنسی رشید کرا کی طرف سے صدر پاکستان کی خدمت قرآن مجید کے ایک نادر نسخہ کی پیشکش

ترقی تعلیم : جامعۂ تعلیم ملی (ملیر، کراچی) کے دسویں سالانہ اجلاس سے خطاب

ترقیات : سیدو شریف (سوات) میں ترقیاتی منصوبوں کا جائزہ

! پاکستانی فضائیہ کے کالج (رسالپور) میں تکمیل تربیت کی پریڈ

ماڈل :
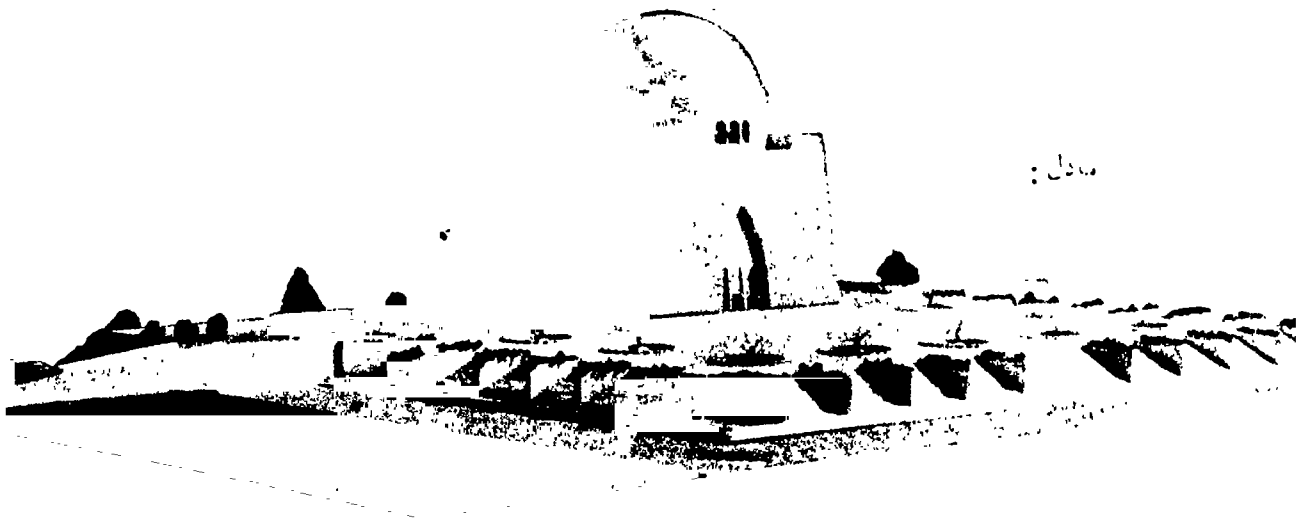
قائد اعظم رح کا مقبرہ

رفتار تعمیر : جلد مکمل

قائد اعظم رح کا مقبرہ جو اسلامی عمارات اور جدید فنی تقاضوں کے مطابق تعمیر ہو رہا ہے اور عنقریب پایۂ تکمیل کو پہنچ جائے گا۔
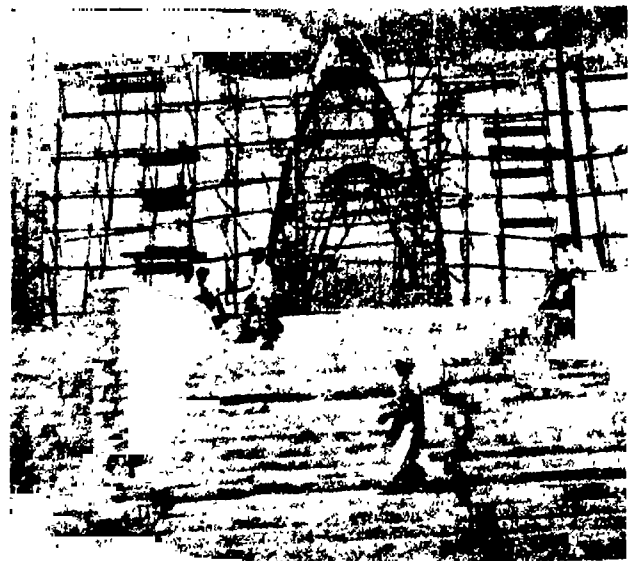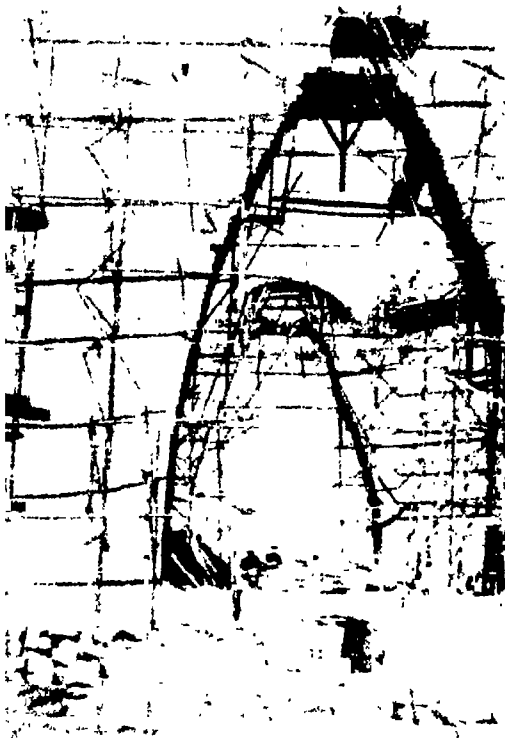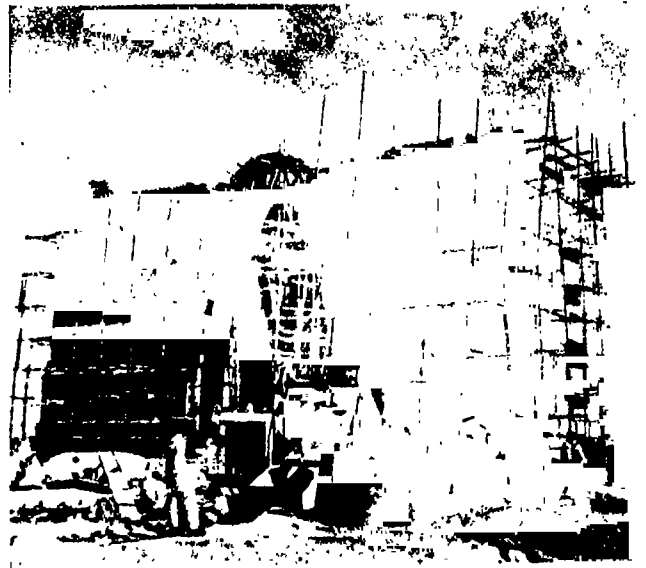
بہارِ تازہ

(انجمن مصنفین پاکستان، چوتھا اجلاس : لاہور)

صدر اجلاس دوم : جسٹس سجاد احمد جان

پیغام خصوصی : صدر پاکستان، فیلڈ مارشل محمد ایوب خان

اہم نکات

صدرِ پاکستان :

- ادیب کی ذمہ داریاں اہم ہیں۔
- ادیب تاریخ گر ہیں۔
- ادیبوں کو اپنا قلم ملک کی شیرازہ بندی، اصلاح معاشرہ اور تعمیر ملت کے کاموں کے لئے وقف کرنا چاہئے۔

صدرِ اجلاس :

- ادیب ایسی چیزیں لکھیں جنہیں پڑھ کر دل میں حب الوطنی کا احساس اور اپنی ثقافت سے لگاؤ پیدا ہو۔
- اہل ثروت کو چاہئے کہ وہ آگے بڑھ کر ادب کی سرپرستی کریں۔

قدرت اللہ شہاب :

- گلڈ کی ترقی نے یہ ثابت کر دیا ہے کہ اختلافات کو نظر انداز کر کے اصولوں پر اتحاد عین ممکن ہے۔
- گلڈ نے مشرقی اور مغربی پاکستان کے درمیان فکری و جذباتی اتحاد و یگانگت پیدا کر دی ہے۔
- ملک میں عنقریب کاپی رائٹ ایکٹ نافذ کر دیا جائے گا جو ہمارے اہل قلم کے تمام جائز حقوق کی بوجہ احسن اور بڑے مؤثر طور پر حفاظت کر سکے گا۔

آدم جی ادبی انعامات (۱۹۶۲ء)

اردو : جعفر طاہر (نظم) "ہفت کشور"
خدیجہ مستور (ناول) "آنگن"

بنگالی : قاضی عبدالمنان : "بنگلا ادب کا تنقیدی جائزہ اور مسلمان"۔
شوکت عثمان : (ناول) "کرتاد اسر باسی"

علاقائی زبانیں : (پنجابی) سائیں فیروز دین
محمد آصف خان
افضل احسن

جج : احمد ندیم قاسمی
رضا ہمدانی
منو بھائی

ایک اور ادبی انعام : عطیہ : جناب احمد داؤد (صدر داؤد صنعتی گروپ)
(۱۹۶۳ء) (پچیس ہزار روپے سالانہ برائے ادب، مشرقی و مغربی پاکستان)

نئے تجربے :

... کہ نہ دیکھا کرے کوئی

(ملاحظہ ہو جائزہ کے زیرِ عنوان مرکب شاعری پر تبصرہ)

رفیق خاور

ایک نقاش کوئی جلوۂ آتشیں مشاہدہ کرتا ہے اور اس کی عکاسی کے لئے مناسب اہتمام کرتا اور عمر بھر ریاض کرنے کے بعد وہ کامیاب ہوتا ہے اسی لمحہ وہ اپنی بصارت چھین لیتا ہے تاکہ نہ صرف حقیقتِ منتظر ہمیشہ حقیقتِ منتظر ہی رہے بلکہ تصور میں خوب سے خوب تر کی جستجو کا سلسلہ بھی جاری رہے۔

اثیری — جوگیا — لوبانی
لٹ لٹ شعلے جھرمٹ جھرمٹ
سیندھوری سیندھوری - مرغولہ مرغولہ!
لو دیتے بیباک، دہکتے، لہراتے
گھونگھر گھونگھر بجلیاں!
جوت ہی جوت طلائی باف
عشقِ پیچاں، حسن پیچاں
گتھی گتھی بیلریاں، گندھی گندھی
بڑھتی چڑھتی پُر تو!
تہہ در تہہ شنگرفی الاؤ — طور کلس!
نارنجی نوکوں کا الاؤ — نُور نفس!
کرنیں پیوستہ پیوستہ، شعلے جستہ جستہ

پیچاں پیچاں، دستہ دستہ
جیتی جاگتی پرافشاں
سلفا لاٹ جوالا
اطلس لاغ الحمرا
گجرا گجرا، لال گلابی
اگن ستوں، تانبے کی لاٹ
لالہ لالہ گردۂ روشن
سورج مکھی سب ہالہ ہالہ

پُورب اور اُجالا
گردہ ہو بہو ہالہ ہالہ
عین وہی انگڑاتی جوالا
عین وہی بل کھاتی نار

اے ذوقِ نگہ، اے ذوقِ فسوں
اے ذوقِ تجسس، جوشِ جنوں
کونسے رنگ؟ کونسے رنگ؟
اچھوتے، البیلے، انجانے، ان جانے، انمول
ان دیکھے، کنوارے، نیارے، سچے سچے
کھرے کھرے، ابھرے سجرے
رنگ انوکھے، رنگ انوپ!
کیسری، خرمئی، عنابی
گیروا، عنبری، زرنیخی
شربتی، فالسئی، صہبائی
گلدمی، فاختئی، سرخابی
لال بھبھوکا دیناری
خونِ سیاوش، خونِ جگر
رُمانی — روحانی — ربانی
کونسے رنگ؟ کونسے رنگ؟

عین وہی، عین وہی
سدا برن رتنار

پربت پربت، صحرا صحرا، وادی وادی
دریا دریا، ہاموں ہاموں، گردوں گردوں

آن بہ آن اور گام بہ گام
برق نگاہیں الفیا کار
پھیلاتی ہوئی دام پہ دام!
ندی دیتی ، دھوپ سروپ
تل کی بالو ، سنہری روپ
کندن کی گلنار دہک
پت جھڑ کے سنولائے پتے
ریشے سنہری تار نظر
سنگاپوری بید کے تنکے شفق سنہری رس جس والے
تھرتھریاں صہبائی، چنچل چنچل ڈوریاں ڈھیاں لہروں کی
زری کرشمے تانتا تانتا
چلمنی تنکے بال برابر گندھک میں سوشوب دئے
جاپانی زرتار شبیہوں کی زرکاری کرن کرن
زرد وزری لچھے روغن کے
جملا موم سفیدہ نارنجی
مانند ترنج پرویزی
پیلۂ ریشم، پروانے — کھرل سنہرا مخمل مخمل
ریزۂ جوہر کمخوابی
ڈھلکے ڈھلکے تار ابریشمی
آب سنہری، تاب سنیلی
ریت پہ رینگتی رینگتی جوت کی بل کھاتی پرچھنتی لہریں
پانی پانی تیر کے آتی
مقناطیسی حلقے، قوسیں، خط در خط اور لہر پہ لہر
سورج کی زرتار شعاعیں، سانورے چندا کی چھائیں
پورن چاند — سنہری تتلی کی باریک ہلالیں مونچھیں
جیوتی لہر وہ کاہکشاں کی، اس کی ہوائیاں جوہری راکھ
برقی شعاعیں ٹیل استاری، تاب بہ تاب

یہ سب اور دن رات مسلسل کئی جتن اور کئی خیال
برسوں تجربے لامتناہی، معمل معمل رنگ تلاش
ہو بہو روپ سے رنگ ملے اک ایسا مثالی رنگ
جس سے وہ زرتار حقیقت روشن، وہ سنجوگ

موئے قلم؛ عکاس؛ —

موئے قلم اک سنبلیں جادو
ریشے ہزاروں کاٹی کائی
کرنوں سے باریک، ہمائی
نارنجی فانوس فضائی
لمعے اشراقی، سینائی

یہ بال سنہرے پن کی لگن
کیا بھگتی بھگتی یوگ آسن
کیا چلّے، دو دو چالیس برس
جیون پائے شبہہ ہر درشن
جیوتی ہی جیوتی من درپن
سب جوگیا جوگیا تن کیا من
برسوں برسوں بیت دھارن
یہی دھیان، ہو گیان اور لگن کا دھن
یونہی پشت میں اک اوندھا جھرا
بنا، ہوتے ہوتے دیپ کنول
ہر اک پتی ہولے ہولے
نرمل نرمل، سلگی سلگی
ہر ایک کنول گدرا گدرا
لٹ چنچل چنچل جڑتی سی
اک لال بھبھوکا روپ کنول
تیکھی مخروطی دہکتی لویں
ایسی شدھ رنگ ہر اک پتی
اک شیشہ سنہرے پن میں رچی
رُت جُور، کرومی، کچناری
سب بانکی سنہری مدھ ماتی
پتی پتی مدرا مدرا

۱؎ الفیا شعاعیں ۲؎ روشنی تھے بچپن کہ اسی برس شد خوہ یا سرلی

ہر کنول کٹورا روپ بھرا
لو، اور کٹورے، اور کنول!
ہر لمحہ ہر ہر آن سپھل
کھلی پتی پتی گاؤ زباں
فانوسوں کی شمع ہی شمع لویں
ہر اوندھا مہرا، شبہ تارا
یوں سلسلہ وار اوپر نیچے
سب برف آلود چنار کھڑے
جھیلوں میں روپ دکھاتے ہوئے
چندن کے پگوڈا چاندنی میں
تالوں میں دوالی سی چھایا
یونہی کلا دھیان میں جُگ پرجُگ
تب کلا کا جاکر ورس ملا
تب کلا کا پورا روپ کھلا
جاگ اٹھا جادو سپنے کا
برسوں میں ریاض کے گلشن میں
شُل تاب سنہری پھول کِھلا
دیپک کا الاؤ طور نما

وہ بال سنہرے پن کی لگن
دن دن بڑھتی چھن چھن چڑھتی
وہی بال[1] روپہلے پن کی دھن
ہر آن بھڑکتی اور اگن

اب آخر کار —— اب آخر کار
وہ رنگ بنا، وہ روپ کھلا
سانچے میں ڈھلا پتلا دل کا
سیارہ بجلی کی صورت
وہ جس کا روپ سنا برتی
سماۓ افق پر کوند گیا

مرغولہ، آتش رنگ ابھرا
آن انگ بر[2] نمی انگارہ
ہر انگ نرت مدرا مدرا
نورانی پنچھی پر کھولے
کرنیں ہی کرنیں پر تولے
اور جھاڑ ہی جھاڑ جھمکڑا سا
چندھیاتا کاگن سینائی
وہ آن اک آن اک پو پر پو
پھٹتی —— جیوتی ٹہنی ٹہنی
لہراتی، تلتی، جھکتی ہوئی
بل کھاۓ، پھرے اہلی گہلی
مہاجال طلسمی پھیلاتی!

اب ظہور ہوا ہے کیسا سے کیسا
اب نور ہی نور ہے، نور ہی نور
یہ ہاتھ، یہ ہاتھ، یہ فن ہی فن
استاد جگت استادوں کے
فن کار ہیں جو فن کاروں کے
"کھل سم سم" جن کی پوروں کی
اک عام نوائے سحر نما
ان ہاتھوں کے پاس یہ سنولائی[3] نورا —— اب آنکھوں میں
اور —— دور ہی دور، اب دور ہی دور! —— اب آنکھوں سے

جو بال سنہری پن کی لگن
وہی بال روپہلے پن کی اگن
اب ہاتھ نہیں سپنے تو ہیں
اب آنکھیں نہیں ہیں دل تو ہے
اے ذوقِ نظر، اے ذوقِ طلب،
اے ذوقِ نمو، اے جذبۂ فن!

★

---

[1] بڑھاپا [2] پودا [3] بے شمار

"نوکنڈ" (مشرقی پاکستان)　　　　نقاش: شفیق احمد

مسجدِ نبویؐ

(تعمیرِ مساجد کی مقدس ابتدا)

ڈاکٹر محمد عبداللہ چغتائی

مسجد[1]، جائے سجدہ، اسلام میں ایک ایسا مقام عبادت ہے جو اپنے مضمرات میں مندر، کلیسا، کنشت یا کسی اور معبد سے قطعی جدا ہے۔ "مسجد" کی بابت آنحضرتؐ کا ارشاد گرامی یہ ہے:

جعلت لی الارض مسجداً[2]

(اللہ تعالیٰ نے میرے لئے پوری زمین مسجد بنادی)

مدعا یہ ہے کہ کسی بھی جگہ یا طرزِ تعمیر و شکلِ بنا کی قید نہیں۔ بلکہ ہر مقام جو پاک ہو اور ادائے فرض کے لئے موزوں ہو، مسجد یعنی جائے سجدہ، کا کام دے سکتا ہے۔ قبل اسلام انبیائے کرام کے لئے کسی نہ کسی معبد یا جائے عبادت میں پہنچ کر عبادت کرنا اور اظہارِ عبودیت کے فرض سے سبکدوش ہونا لازمی تھا، اس کے علاوہ کسی جگہ نہیں۔ مگر اسلام نے اس صورتِ حال کو بدل دیا۔ غور کیجئے مصر، یونان اور روما کی تہذیبوں میں جو معبد بنائے جاتے تھے وہ کسی نہ کسی "معبود" کے نام پر معنون، موسوم، یا وقف و منسوب ہوتے تھے، دوسری کسی جگہ عبادت نہیں ہو سکتی تھی۔

اگر تاریخی تواتر پر نظر ڈالی جائے تو اسلام میں مسجد کی بنا اس وقت نظر آتی ہے جب حضورؐ نے مکہ سے مدینہ کی طرف ہجرت کی اور اس بات کی ضرورت محسوس ہوئی کہ مومنین کی حفاظت اور باہر کی دنیا سے عارضی انقطاع و یکسوئی کا مقام معین کیا جائے۔ اس بات کی کوئی واضح خبر نہیں ملتی کہ حضور انورؐ نے مکہ میں رہتے ہوئے کسی عام، کھلی جگہ پر اپنے صحابہ کے ہمراہ صلوٰۃ ادا کی ہو۔ صرف اتنا ہی معلوم ہے کہ وہ ادائے صلوٰۃ کے لئے مکہ کی تنگ و تاریک گلیوں میں یا اپنے اوّلین صحابہ کے گھروں پر بہ غرض، لوگوں کی نظروں سے بچ کر ادا کرتے تھے حضور اکرمؐ کے اولیں سوانح نویس ابن ہشام (متوفی ۲۱۳ھ) سے منقول ہے کہ حضرت عمرؓ نے اسلام قبول کیا تو اسلام کی قوت اور جلالت میں اضافہ ہوا۔ پھر با جماعت نماز خانۂ کعبہ کے نزدیک ادا کرنی شروع کر دی۔

جب مکہ کے کفار کا ظلم مسلمانوں پر زیادہ بڑھ گیا تو حضورؐ نے اللہ کے دین کی بقا و تبلیغِ حق کے لئے مدینہ کی طرف ہجرت کا فیصلہ کیا۔ مدینہ کی ہجرت سے قبل حضور اکرمؐ نے یثرب کے لوگوں سے ایک معاہدہ بھی کیا تھا۔ بعد میں یہی یثرب مدینۃ النبیؐ یا صرف، مدینہ مشہور ہوا۔

جب مہاجرینِ اسلام کا پہلا قافلہ اونٹوں پر سوار مکہ سے نکل کر مدینہ کی جانب روانہ ہوا تو مدینے سے باہر قبا کے مقام پر اس کا پڑاؤ ہوا۔ یہ قیام بنو عمرو بن عوف (قبیلہ) کے ہاں ہوا اور پیر سے جمعرات تک جاری رہا۔ اس مختصر قیام کے دوران حضورؐ نے اسلام کی سب سے پہلی مسجد اسی جگہ بنائی۔ حضورؐ نے ہی اپنے مقدس ہاتھوں سے اس مسجد کا سنگِ بنیاد رکھا اور سمتِ قبلہ "بیت المقدس" کی طرف قائم کی۔ حضرتؐ نے یہاں جمعرات تک چار دن قیام فرمایا اور یہیں نمازیں ادا کیں۔

جیسا کہ اوپر ذکر آیا حضور کا یہ قیام قبیلہ عمرو بن عوف میں ہوا تھا یعنی کلثوم ابنی ہدم، کے گھر پر اور مجلس سعد بن خشیمہ کے گھر پر فرماتے تھے۔

جمعہ کے روز صبح آنحضرتؐ نے دوپہر سے قبل قبا سے مدینہ کی طرف روانگی شروع کی اور عین نماز ظہر کے وقت وادی رانونہ پہنچ گئے جہاں "بنی سالم بن عوف" کی مسجد میں نمازِ جمعہ ادا فرمائی۔ یہ مسجد اس قبیلے نے مسجدِ قبا کے نمونہ پر پہلے ہی ان دنوں میں تیار کر لی تھی۔ اسلام میں یہ پہلی نماز جمعہ تھی جو حضورؐ نے حدودِ مدینہ میں ادا فرمائی اور غالباً بغیر کسی خطبے کے۔ آنحضرتؐ نے جب اس وادی سے خاص مدینہ کی طرف رخ کیا تو وہ اپنی اونٹنی "القصویٰ" پر سوار تھے۔ جونہی مدینہ میں داخل ہوئے انصار و مہاجرین کا گروہ جو مشتاقِ دید تھا، پروانہ وار آگے بڑھا اور حضورؐ کو چاروں طرف سے حلقے میں لے لیا۔ ہر شخص ادب و نیاز کی تصویر

---

[1] قرآن کریم میں "مسجد" اور اس کی جمع مساجد کا ذکر اٹھارہ اور پانچ مرتبہ علی الترتیب آیا ہے۔ یہ حضور انورؐ سے قبل کی عبادت گاہ کے مفہوم میں ہے۔ خاص کر سورۂ بنی اسرائیل کی اوّل آیت میں مسجد الحرام (مکہ معظمہ) اور مسجد اقصیٰ (بیت المقدس) کا ذکر دونوں میں ہے۔ مسجد کا وہ مفہوم جو اسلام نے پیش کیا حضورؐ کی مسجد مدینہ کی تعمیر کے بعد ہی پیدا ہوا۔

[2] حضور انورؐ کی یہ حدیث مشکوٰۃ المصابیح میں متفق علیہ، ابو داؤد اور دارمی سے منقول ہوئی ہے۔

بنا کھڑا رتھا۔ ہر ایک ملتجی تھا کہ وہ اس کے گھر پر تشریف لے چلیں۔ مگر حضورؐ نے فرمایا کہ "میری اونٹنی کو چھوڑ دو، اُسے حکم مل چکا ہے۔" اونٹنی نے اپنی گردن اُس مقام پر جھکالی جسے "مُربد" یعنی کھجور سکھانے کی جگہ، کہا جاتا ہے۔ یہ زمین دو یتیموں سہل و سہیل بن عمرو کی ملکیت تھی۔ مگر اونٹنی پھر آگے بڑھی اور اس جگہ ٹھہر گئی جہاں سے حضرت ابوایوب خالد بن زید انصاریؓ کا مکان بہت ہی نزدیک تھا۔ حضرت ایوب انصاریؓ نے آگے بڑھ کر حضورؐ کا سامان اتروانے کی برکت حاصل کی اور اسے لے کر اپنے گھر میں رکھا۔ حضورؐ نے انہی کے ہاں قیام فرمایا۔ ان دونوں یتیموں سے اس "مربد" کو خرید لیا گیا جس کی خاطر خواہ قیمت حضرت ابوبکرؓ کی معرفت ادا کر دی گئی۔ پھر آنحضرتؐ نے فرمایا کہ یہاں ایک جگہ ایسی بنانی چاہئے جو رہائش اور مسجد دونوں کا کام دے سکے۔ جب تک یہ تعمیر مکمل ہوئی آنحضرتؐ نے حضرت ایوب انصاریؓ کے مکان پر ہی قیام فرمایا۔

مسلمانوں نے اس مسجد کی تعمیر میں پورے ذوق اور ولولہ سے حصہ لیا۔ اُن کی ہمت افزائی اور مساوات کے خیال سے خود حضورؐ صلعم نے بھی آگے بڑھ کر ہر ایک کام میں حصہ لیا۔ مہاجرین اور انصار دونوں ہی اس کام میں برابر شریک رہے۔ ذوق و مسرت کی ایک والہانہ فضا طاری تھی اور عالمِ کیف میں ساتھ ساتھ یہ مترنم الفاظ بھی وردِ زبان رہتے تھے:

نحن المسلمون نبتنی المسجد

لا عیش الا عیش الآخرہ

اللّٰھم ارحم الانصار والمہاجرہ

(ہم مسلمان ہیں۔ ہم مسجد بناتے ہیں۔ ہمارے لئے سوائے آخرت کے اور کوئی زندگی نہیں ہے۔ اللہ تعالیٰ انصار اور مہاجرین پر اپنا رحم فرمائے)

> ہجرت کے بعد آپؐ نے پہلا کیا جو کام
> تعمیرِ سجدہ گاہِ خدائے انام تھا
> اک قطعۂ زمیں تھا اسی کام کے لئے
> واقع میں ہر لحاظ سے موزوں مقام تھا
> وہ قطعۂ زمیں تھا یتیموں کی ملکِ خاص
> ہرچند قبرگاہ و گذرگاہِ عام تھا
> چاہا حضورؐ نے کہ بہ قیمت خرید لیں
> اُن کے مربیوں سے کہا جو پیام تھا
>
> شکیل

یہاں ایک سوال یہ پیدا ہوتا ہے کہ آنحضرتؐ نے مکان و مسجد کے لئے کس نوع کی تعمیر کا فیصلہ کیا تھا؟ ایک بات تو صاف ظاہر ہے اس تعمیر میں اور اس وقت کے دیگر عرب مکانات میں کوئی فرق نہ تھا بلکہ آج بھی حجاز و مشرقِ وسطیٰ کی دُور دست آبادیوں میں عرب مکانات اِسی وضع کے نظر آتے ہیں۔ مسجد کا پلین، یا نقشہ اس طرح کا بنایا گیا تھا جو حضورؐ کی ضرورتوں کے مطابق ہو، یہ ضرورتیں ایسی تھیں جو قبل ازیں موجود نہ تھیں۔ یہ عمارت ۷۰×۸۰ ذراع تھی، شکل میں قریب قریب مربع۔ تین طرف تین دروازے لگائے گئے تھے۔ عمارت میں کئی حجرے تھے جو ساتھ ساتھ بنے ہوئے تھے۔ صحن کے درمیانی حصہ میں مسجد تھی جس سے عام کمرے ملحق تھے۔

یہ عمارت ہجرت کے دوسرے سال صفر کے مہینے میں بن کر تیار ہوئی۔ اگرچہ سمت قبلہ حضورِ انورؐ کے قیام مدینہ کے ۱۶ ویں مہینے میں ۱۵ شعبان کو وحیٔ الٰہی کے مطابق تبدیل کر دی گئی تھی مگر اس سے قبل سمت قبلہ بیت المقدس کی جانب تھی۔ اس تبدیلی کا حکمِ الٰہی عین حالتِ نماز میں آیا اور حضورؐ نے اسی وقت سمت بدل لی تھی۔ ابن نجار کے قول کے مطابق آنحضرتؐ نے اپنی مسجد کی تعمیر دو مرتبہ کرائی۔ پہلی بار اس وقت جب حضورؐ ہجرت کر کے مدینہ تشریف لائے، دوسری بار جب خیبر فتح ہوا۔ اس وقت بھی صحن میں اضافہ کیا گیا تھا۔ عمارت کی تعمیر میں جو مال مسالہ لگایا گیا تھا وہ بالکل سادہ تھا۔ کھجور کے تنے، دھوپ میں سکھائی ہوئی اینٹیں، عام ملنے والا پتھر وغیرہ — یہ سب سامان مدینہ کے بازاروں میں عام بکتا تھا۔ یہ بھی اطلاع ہے کہ دھوپ کی تیزی سے بچنے کے لئے دیوارِ قبلہ کی طرف ایک مظلہ (چھپر) بھی کھجور کے پتوں اور ٹہنیوں کی مدد سے بنا دیا گیا تھا۔ اس بات کا دوسرا مطلب یہ نکلا کہ محراب کے نزدیک ایک ایوان بھی وجود میں آچکا تھا۔

حضرتؐ کی وفات گیارہویں سن ہجری میں ۱۲ ربیع الاول کو حضرت عائشہؓ کے حجرہ میں واقع ہوئی اور حضورؐ کو وہیں دفن کیا گیا۔ ان کے بعد حضرت ابوبکر صدیقؓ مسندِ خلافت پر جلوہ افروز ہوئے اور ان کا انتقال تیرہویں سن ہجری میں ہوا۔ لیکن مسجد کے نقشے اور عمارت میں خلیفۂ اول، حضرت ابوبکرؓ کے عہد تک کوئی تبدیلی نہیں ہوئی اور انہیں بھی بعدِ وفات آنحضرتؐ کے ہی پہلو میں دفن کیا گیا۔

حضرت عمرؓ کے عہد میں مسلمان جوق در جوق دائرۂ اسلام میں

داخل ہو رہے تھے۔ دنیا کے ہر ملک سے لوگوں کی مدینہ میں آمد و رفت جاری تھی اس لئے مسجدِ نبویؐ ادائے نماز کے لئے ناکافی ثابت ہو رہی تھی، اس لئے انہوں نے مسجد میں توسیع کا اہتمام اپنے ذمہ لے لیا۔ ان کے حکم سے مسجد کا طول ۱۴۰ اور عرض ۱۲۰ ذراع تک وسیع کر دیا گیا۔ پشت کی دیوار دو یا تین ذراع تک پیچھے ہٹائی گئی، دروازے بھی چھ کر دئے گئے ان میں سے دو قبلہ کی دائیں طرف رکھے گئے تھے اور دو بائیں جانب۔ باقی دو دروازے شمال کی دیواریں تھے۔ انہوں نے ہی صحنِ مسجد میں تنکوں کی چٹائیاں بچھوائیں جو وادیٔ عقیق میں تیار ہوتی تھیں۔ حضرت عمرؓ کو بھی ان کے انتقال کے بعد (۲۳ھ/۶۴۳ء) حضرت ابوبکرؓ اور حضورؐ کے پہلو میں دفن کیا گیا۔

حضرت عمرؓ کے بعد حضرت عثمانؓ مسندِ خلافت پر جلوہ گر ہوئے۔ اسلام اس وقت چار دانگ عالم میں پھیل چکا تھا اور اسے بڑی قوت و شوکت حاصل ہو چکی تھی۔ اس لئے بڑی ضرورت تھی کہ مرکزِ خلافت کو شایانِ شان طریق پر بنایا جائے جس سے اسلام کی سربلندی اور شوکت و عظمت کا اظہار بھی ہو تاکہ کرۂ ارض پر اسلام نے جو پیغامِ حق پہنچایا ہے اور کشورِ دینِ متین کو جو سطوت و جلالت نصیب ہوئی ہے اس کا بدیہی مظہر بھی عوام و خواص کے سامنے آتا رہے تاکہ ہمتیں بلند ہوں اور جذبۂ ایمانی تازہ ہو ـــ دوستدارانِ عثمانؓ ـــ خاص کر بنی امیہ ـــ اس بات کے بیحد خواہاں تھے کہ مرکز و مسندِ خلافت کو جاہ و جلال کا مظہر بنایا جائے۔ ان حضراتِ کبار کا حضرتِ عثمانؓ پر بڑا اثر تھا۔ غرض اس قسم کے ہی تقاضے تھے کہ حضرت عثمانؓ نے اپنے عہدِ خلافت کے چوتھے سال مسجدِ نبویؐ کے صحن کی دیواریں ٹھنڈی کر کے اطرافِ مسجد کو اور بھی وسیع کرایا یعنی ۱۶۰×۱۵۰ ذراع تک ـــ مگر حضرت عمرؓ کے زمانے کے چھ دروازے بدستور موجود رہے۔ حضرت عثمانؓ کا دورِ خلافت (۳۵ھ/۶۵۵ء) میں ختم ہو جاتا ہے اور ان کے بعد حضرت علیؓ ابن ابی طالبؓ مسندِ خلافت کو زینت بخشتے ہیں۔ سیاسی مصالح کا تقاضہ تھا کہ انہوں نے مرکزِ خلافت مدینہ سے کوفہ میں منتقل کر دیا (۳۶ھ/۶۵۶ء)۔ لیکن میری اپنی رائے یہ ہے کہ اس طرح مدینۃ النبیؐ کو جو سرکاری اہمیت حاصل تھی اس میں ایک تبدیلی رونما ہو گئی، اس واقعہ سے قطع نظر آنحضرتؐ کا روضۂ مبارک اور مسجد عبادت و زیارت کا محبوب مقام پہلے بھی رہا اور تا قیامت رہے گا۔ کیونکہ حضورؐ نے فرمایا ہے کہ تین مقامات کا عزمِ سفر کرنا۔ مسجد الحرام مکہ، المسجد الاقصیٰ (بیت المقدس) اور مسجدِ نبویؐ۔

حضرت عثمانؓ کے بعد مدینہ مرکزِ خلافت نہ رہا اور مسجدِ نبویؐ میں بھی کوئی اور تبدیلی یا توسیع ۹۱ ہجری (۷۰۹ء) تک رونما نہ ہوئی حتیٰ کہ اس سال حضرت عمر بن عبدالعزیزؒ نے جو اس وقت مدینہ کے عامل (گورنر) تھے، مسجدِ نبویؐ از سرِ نو تعمیر کرانے کا اہتمام کیا۔ حضرت امام بخاریؒ (۲۵۶ھ/۸۷۰ء) نے حضرت عثمانؓ کے عہدِ خلافت تک کی مسجدِ نبویؐ کی تفصیل اس طرح بیان کی ہے:۔

> "حضرت رسولِ خداؐ کے زمانہ میں یہ مسجد دھوپ میں سکھائی ہوئی اینٹوں سے بنی تھی اور اس کی چھت پر درختوں کی شاخیں رکھی گئی تھیں۔ اس کے ستون کھجور کے تنوں کے تھے۔ حضرت ابوبکرؓ نے اس میں کوئی اضافہ نہ کیا۔ حضرت عمرؓ نے اس کی توسیع کی۔ اس تعمیر میں بھی دھوپ میں سکھائی ہوئی اینٹیں لگائی گئی تھیں اور درختوں کے تنے بھی استعمال کئے گئے تھے۔ انہوں نے لکڑی کے ستونوں کو بھی دوبارہ بنوایا تھا۔ بعد میں حضرت عثمانؓ نے بھی اس میں کچھ تبدیلیاں کیں۔ انہوں نے ہی اس کی دیواریں تراشیدہ پتھروں اور چونے کی بنوائیں۔ نیز تراشیدہ پتھر کے کھمبے بھی گڑوائے۔ چھت میں "ساگوان" لکڑی لگوائی گئی تھی۔"

بعض نے یہ بھی لکھا ہے کہ حضرت عثمانؓ نے جو تعمیر کرائی تھی اس میں پتھر استعمال نہیں کئے گئے تھے بلکہ پکائی ہوئی اینٹیں لگائی گئی تھیں۔ مگر یہ بات محقق ہے کہ یہ حضرت عثمانؓ ہی تھے جنہوں نے خلیفۃ المسلمین کی حفاظت کے خیال سے محراب سے ملحق اینٹوں کا ایک مقصورہ بنوایا۔ اس مقصورہ کا مقصد یہ تھا کہ حضرت عمرؓ کو جس طرح مسجد میں شہید کیا گیا تھا دوبارہ احاطۂ مسجد نبویؐ اسی طرح کے کسی اور وقوعہ کا مقام نہ بن جائے۔ اس مقصورہ میں ایک راہ بھی کھلی رکھی گئی تھی تاکہ مقتدی حضرات امامِ جماعت کو بخوبی دیکھ سکیں۔ جب حضرت عمر بن عبدالعزیزؒ نے اموی خلیفہ، حضرت ولید بن عبدالمالکؒ کے حکم سے مسجدِ نبویؐ کی از سرِ نو تعمیر کرائی تو اس مقصورہ کی تعمیر لکڑی کی کر دی گئی (۹۱ھ/۷۰۹ء) (وفاء الوفا باخبار دار المصطفٰی سمہودی مطبوعہ مصر صفحہ ۵ جلد ۱)۔

مئذنہ یا منارہ: آنحضرتؐ نے خود جو مسجد تعمیر کرائی تھی اس میں کوئی مئذنہ یعنی اذان کی جگہ تعمیر نہیں کرائی تھی جہاں سے کھڑے ہو کر اذان کے ذریعے مومنوں کو نماز کے لئے آنے کی عام اطلاع (بآوازِ بلند) دی جا سکے۔ شروع دورِ اسلام میں پیروانِ دینِ حق بغیر کسی اذان کے ہی فریضۂ صلوٰۃ ادا کرتے تھے مگر جب اذان کا حکم آیا تو حضورؐ نے حضرت بلالؓ کی طرف دیکھ کر فرمایا "بلال! اٹھو اور مومنوں کو صلوٰۃ کی طرف بلاؤ۔" بنی نجار (قبیلہ) کی ایک عورت کے بیان پر ابن اسحاق سے مروی ہے:-

"مدینہ میں جتنے گھر مسجدِ نبویؐ کے آس پاس بنے ہوئے تھے میرا گھر ان سب میں اونچا تھا اور بلالؓ نمازِ فجر کے لئے اسی گھر کے اوپر چڑھ کر لوگوں کو صلوٰۃ کی طرف بلاتے تھے۔ یہاں سے سب کو آسانی کے ساتھ اطلاع ہو جاتی تھی۔"

جب آنحضرتؐ ہجرت کے ساتویں سال مکہ تشریف لائے تو انہوں نے حضرت بلالؓ کو حکم دیا تھا کہ کسی اونچی جگہ سے اذان دیں۔ چنانچہ انہوں نے ایسا ہی کیا۔ یہاں یہ ماجرا اس لئے بیان کیا گیا ہے مئذنہ کے بنانے کا تصور حضرت بلالؓ کے وقت سے ہی پیدا ہو چکا تھا، جو بعد میں تعمیرِ مسجد کا بصورتِ مینارہ، ایک اہم جزو بن گیا۔

تاریخ سے یہ واقعہ بھی معلوم ہوتا ہے کہ اسلام میں سب سے پہلی مرتبہ مئذنہ کا اہتمام اموی عہد میں مسلمہ بن مخلد، گورنر فسطاط (مصر) نے حضرت عمرو بن العاص کی مسجد میں کیا یعنی چار مئذنہ یا میناروں کا اضافہ کیا جو اس کے چاروں کونوں پر ۵۳ھ (۶۷۲ء) میں بنائے گئے تھے۔ اسی دور میں کوفہ اور بصرہ کی مساجد میں بھی مئذنہ تیار کئے گئے مگر مسجدِ نبویؐ میں چار میناروں کی تعمیر ۷۰۹ء میں خلیفہ حضرت ولید بن عبدالملک کے حکم سے کرائی گئی۔ مگر یہ مئذنہ عام طور پر اپنی مستطیل شکل اور اسلامی تعمیرات میں بالکل نئے اضافے کے باعث مئذنہ کی بجائے "منارہ" کے نام سے ہی مشہور رہا۔ اس کی وجہ یہ تھی کہ قدیم زمانہ سے ایسی جگہ پر روشنی کی جاتی تھی اور اسی لئے یہ نام پڑا۔ مئذنہ کو بھی اسی ہیئت کی بنا پر عوام نے منارہ ہی کہا جو بعد میں بگڑ کر عرفِ عام میں "مینار" بن گیا۔

یہ بات بلا خوفِ تردید کہی جا سکتی ہے کہ مئذنہ تعمیر و بنائے مسجد کا ایک مخصوص حصہ اسی طرح بنا۔ مگر مسلمانوں نے میناروں کا استعمال مسجد کے علاوہ دوسری تعمیرات پر بھی کیا، جیسے مقابر اور روضے وغیرہ۔

ان کے بنانے سے عمارت میں حسن و رعنائی، نیز موزونیت پیدا ہو جاتی ہے اور اس کا نقشہ عجیب رفعت و جلالت کا حامل ہو جاتا ہے۔

منبرِ مسجد: اب یہاں کچھ بیان منبر کا بھی ضروری معلوم ہوتا ہے۔ آنحضرت اپنا خطبہ ارشاد فرماتے وقت مسجد میں کھجور کے ایک تنے سے سہارا لے لیا کرتے تھے۔ حضورؐ کے ایک صحابی نے جب یہ دیکھا تو حضورؐ سے عرض کی کہ اگر اجازت ہو تو میں آپ کی خدمت میں ایک منبر بنا کر پیش کروں۔ حضرتؐ نے دریافت فرمایا "منبر کیا؟" صحابی نے عرض کیا کہ میں یہ چیز بنا کر پیش کروں گا۔ چنانچہ اس نے اثل نامی لکڑی کا منبر بنا کر دکھایا جس میں دو سیڑھیاں تھیں اور اوپر نشست کی جگہ رکھی گئی تھی۔ آنحضرتؐ نے اسے شرفِ قبول بخشا۔ جس بڑھئی نے یہ منبر حضورؐ کے لئے بنایا تھا اس کا نام تمیم الداری یا باقوم یا باقول بیان کیا گیا ہے۔ بہرحال مسجدِ نبویؐ میں منبر کا استعمال خود حضورؐ کی موجودگی میں ثابت ہے۔ یہ منبر آنحضرتؐ کے وصال کے بعد بھی استعمال ہوتا رہا، جس کا وجود خلفائے عباسیہ کے عہد تک مذکور ہے۔ بعض کا قول ہے کہ تمیم الداری نے ایسے منبر دمشق کی عبادت گاہوں میں دیکھے تھے۔

محراب: منارہ و منبر کے ساتھ محراب کی گفتگو بھی ضروری معلوم ہوتی ہے۔ اوپر کی تفصیلات میں گذر چکا ہے کہ اسلام میں پہلی مسجد خود آنحضرتؐ کی مساعیٔ مبارک کے طفیل وجود میں آئی تھی۔ یہ چوکور عمارت ایسی سادہ وضع پر تعمیر کی گئی تھی کہ جب سولہ ماہ بعد سمتِ قبلہ شمال سے جنوب کی طرف پھیر دی گئی یعنی خانۂ کعبہ کی طرف، تو اس مسجد میں تبدیلی کے لئے آنحضرتؐ کو کوئی دقت پیش نہ آئی۔ اس کے بعد تو مسجد کا قبلہ رخ رکھنا امرِ لازم قرار پایا جس کے بغیر نماز نہیں ہوتی۔

تمازتِ آفتاب سے نمازیوں کو بے آرامی محسوس ہوتی تھی۔ حضورؐ نے اس ضرورت کے پیشِ نظر ایک مظلہ یا سائبان بنوانے کا حکم دیا۔ گویا نماز کے لئے اس طرح مرکزی ایوان یا دالان کی بنا پڑی۔

یہ مظلہ بھی سادگی کا نمونہ تھا۔ عام لکڑیوں کے چند ستونوں پر چٹائی کی چھت یا چھپر چھا دیا گیا تھا۔ مسجد کے صحن میں جانب قبلہ یہ پہلا اضافہ تھا۔ جب خاص خاص اجتماع ہوتے، جیسے عیدین، اور ہجوم کثیر ہو جاتا تو آنحضرتؐ شہر کے باہر ادائے صلوٰۃ کے لئے تشریف لے جاتے اور کسی کھلی جگہ پر یہ فریضہ باجماعت ادا ہوتا۔ حضورؐ کے مؤذن، حضرت بلالؓ جگہ کی سمت ظاہر کرنے کے لئے اپنا بڑا سا تیر، جو وہ حضورؐ کے آگے

آگے اٹھا کر چلتے تھے۔ زمین میں اُس جگہ گاڑ دیا کرتے تھے جہاں حضورؐ کو سجدہ کرنا ہوتا تھا۔ اس تیر کو "سترۃ المصلّی" یعنی نمازی کی ڈھال، حفاظت یا پردہ بھی کہا جاتا ہے۔ اس کے نصب ہونے کے بعد اسی کے سامنے آنحضرتؐ نماز ادا فرماتے تھے۔ یہ بات بھی بالکل واضح ہے کہ امام صلوٰۃ جماعت کے سامنے وسط میں کھڑا ہوتا اور اپنا رخ جانب قبلہ رکھتا تھا۔

۹۱ھ (۷۰۷-۷۰۹ء) میں حضورؐ کی مسجد دوبارہ تعمیر ہوئی تھی، اور اُس وقت سوائے مزار مبارک کے، آپ کی رہائش کی سب جگہیں معدوم ہو چکی تھیں۔ جب مسجد وسیع کی گئی تو مزارِ پُر انوار اس کے احاطہ میں لے لیا گیا۔ غرض اس طرح سترۃ المصلّی کی اہمیت بنائے مسجد میں قائم ہو گئی۔ جسے آخر میں ہم محرابِ مسجد کی شکل میں دیکھتے ہیں۔

اب آپ غور فرمائیں کہ مسجد کے اندرونی حصوں کی ساری شوکت و جلالت اس محراب سے کس قدر بڑھ جاتی ہے، بلکہ یوں کہئے کہ محرابِ مسجد کے نقشے کی روح ہے۔

ان تمام تصریحات کا خلاصہ یہ ہے کہ مسجد کا کوئی مخصوص نقشہ، وضع یا طرز حضورؐ نے اختیار نہیں کی تھی، کیونکہ اس سے قبل کا کوئی نمونہ ہی موجود نہ تھا جسے حضورؐ نے اختیار کیا ہوتا۔ جو مسجد حضورؐ نے اپنے حکم سے بنوائی وہ اصول و آداب اور ضروریاتِ احکامِ صلوٰۃ کے عین مطابق تھی، پھر سادگی کا نمونہ بھی تھی جو ایک مثال ہے کہ مسلمانوں کی غریب سے غریب بستی بھی اپنی ضرورت کے مطابق ایسی سادہ وضع مسجد بنا کر ادائے فرض کر سکتی ہے۔ مسجد نبویؐ کی بڑی خوبی تمیز اس کی سادہ وضع و نقشہ ہے جو آنحضرتؐ کے ذہنِ رسا کا ایک نفیس اور پاکیزہ پیکر ہے۔ میری ناقص رائے میں اگر حضورؐ کے پیش نظر کوئی نقشہ ہو بھی سکتا تھا تو وہ خانۂ کعبہ، مسجد الحرام، ہی ہو سکتا تھا جو آج بھی مسلمانانِ عالم کا قبلہ اور مقامِ حج ہے، یہی وجہ ہے کہ خود حرمِ کعبہ میں نماز کی سمت نہیں، نمازی مسجد الحرام میں ایک دائرہ کی شکل میں خانۂ کعبہ کے گرد صفیں قائم کر لیتے ہیں کیونکہ ساری دنیا کے مسلمانوں کا قبلہ یہی مقام ہے، مگر ان تمام امور کے باوجود مسجد نبویؐ کی اہمیت ایک جداگانہ حیثیت کی حامل رہی ہے۔ اس کی پاکیزگی، جلالت اور شوکت و برکت کو دنیائے اسلام میں جو باوقار جگہ حاصل ہے وہ ہم سب پر روشن ہے اور اس اہمیت کی طرف خود ارشاد نبویؐ میں اشارہ موجود ہے، جیسا کہ اوپر بیان ہوا۔

مدعا یہ ہے کہ اسلام میں مسجد کی تعمیر و بنا اس جذبہ کا ثمر ہوتی ہے کہ یہاں آکر مسلمان فرض سے سبکدوش ہوں۔ یہی وجہ ہے کہ ضرورت اور مقامی حالات کے مطابق مسجد ہر جگہ اور ہر وضع کی بنتی ہے۔ زمین، آب و ہوا، شکل اور رقبۂ زمین وغیرہ حالات جو بھی اجازت دیں اس کے مطابق وضع وضع کی مسجدیں وجود میں آئی ہیں اور آتی رہیں گی۔ اکثر ملکوں کی مساجد میں وہاں کی مقامی ثقافت کا پرتو بھی نظر آتا ہے، مگر زیادہ نہیں مسجد کے بنانے میں احکامِ صلوٰۃ کے آداب و اصول بنیادی طور پر ہر جگہ یکساں پائے جائیں گے۔

یہاں یہ نکتہ بھی ذہن میں رہنا چاہئے کہ کسی بھی ہادیٔ دین نے عبادت گھر یا معبد کا نقشہ بطور نمونہ بنا کر اپنے پیرووں کو نہیں دیا تھا، یہ صرف حضور اکرمؐ کی ذات بابرکات ہی تھی جس نے ہمارے لئے ایک مقدس نمونہ اس جہت میں بھی ہم کو عطا کر دیا تاکہ اصل الاصول میں تاقیامت ہماری رہنمائی ہوتی رہے، اور جیسا کہ ابھی عرض کیا گیا حضورؐ کا ارشاد ہے کہ پوری دنیا میرے لئے مسجد بنا دی گئی ہے۔ یعنی فریضۂ نماز ہر پاک جگہ پر ادا کیا جا سکتا ہے اور اس کے لئے کسی عمارت کی بھی ضرورت نہیں ہے۔ یوں مسجد کی تعمیر کے سلسلے میں مسلمانوں کو آزادی ہے کہ وضع، ہیئت اور وسعت کے اعتبار سے جس طرح چاہیں مسجد تعمیر کریں۔ سادگی کے ساتھ بھی مسجد تعمیر ہو سکتی ہے اور پرکاری کے ساتھ بھی۔ مگر مسلمانوں نے اپنے دینی جوش اور عقیدت کے تحت اور اسے اپنے لئے توشۂ آخرت متصور کرتے ہوئے دنیا میں ایسی ایسی خوبصورت مساجد تعمیر کی ہیں کہ دنیائے فن میں ان کی نظیر نہیں ملتی۔ فن تعمیر کے باب میں مسلمانوں کی خوش ذوقی، تعمیری اپج اور جدت و سلیقہ نے ان کا ہر جگہ ساتھ دیا ہے۔ اگر دنیا کی خوبصورت و عظیم مساجد کا ذکر کیا جائے تو اس کے لئے ایک دفتر درکار ہوگا۔ تاہم اتنا ضرور کہا جا سکتا ہے کہ سامرہ (بغداد) میں خلیفہ متوکل باللہ کے عہد میں سب سے بڑی مسجد تعمیر ہوئی جس کے اضلاع ۸۰ فٹ اور ۵۱۲ فٹ ہیں۔ اس کا رقبہ ۴۵۵۰۰ مربع گز ہے۔ اس کے ایک مینار کا نام ملویہ کہا جاتا ہے۔ مگر آجکل یہ مسجد آباد نہیں ہے۔ اس کے بعد دنیا کی سب سے بڑی مسجد کا فخر سرزمین پاکستان کو حاصل ہے میری مراد لاہور کی بادشاہی مسجد سے ہے، جسے اورنگ زیبؒ نے ۱۰۸۴ھ میں تعمیر کیا تھا۔ اس کے اضلاع ۵۶۰ فٹ اور ۵۷۵ فٹ ہیں اور بحمد اللہ تعالیٰ آج بھی آباد ہے۔ حسن و زیبائی کے اعتبار سے مسجد قرطبہ کی شان نرالی ہے اور اسے بھی تعمیری عجائبات میں شمار کیا جاتا ہے۔ یہ مسجد عبدالرحمٰن الداخل

نے ۱۶۹ ھ میں تعمیر کرایا تھا مگر اس کی تکمیل عبدالرحمٰن ثالث نے کی تھی۔
غرض دنیا کے کسی خطے کی قدیم یا جدید مسجد کو دیکھیں وہ اپنے امتیاز کے باعث ہر جگہ پہچانی جا سکتی ہے۔ کوئی نیا اسلامی شہر یا بستی بنے تو سب سے پہلے اس میں مسجد کا اہتمام کیا جاتا ہے۔ چنانچہ اب اسلام آباد میں بھی ایک نفیس و شایانِ شان مسجد کا اہتمام کیا گیا ہے۔ مسجد کی تعمیر، خصوصیت و امتیاز اس وجہ سے بھی پیدا ہوا کہ اسلام میں مہندسوں اور معماروں نے ہمیشہ بڑا اہم کردار ادا کیا ہے۔

★

حرمِ کعبہ

"دُنیا کے بتکدوں میں پہلا وہ گھر خدا کا"
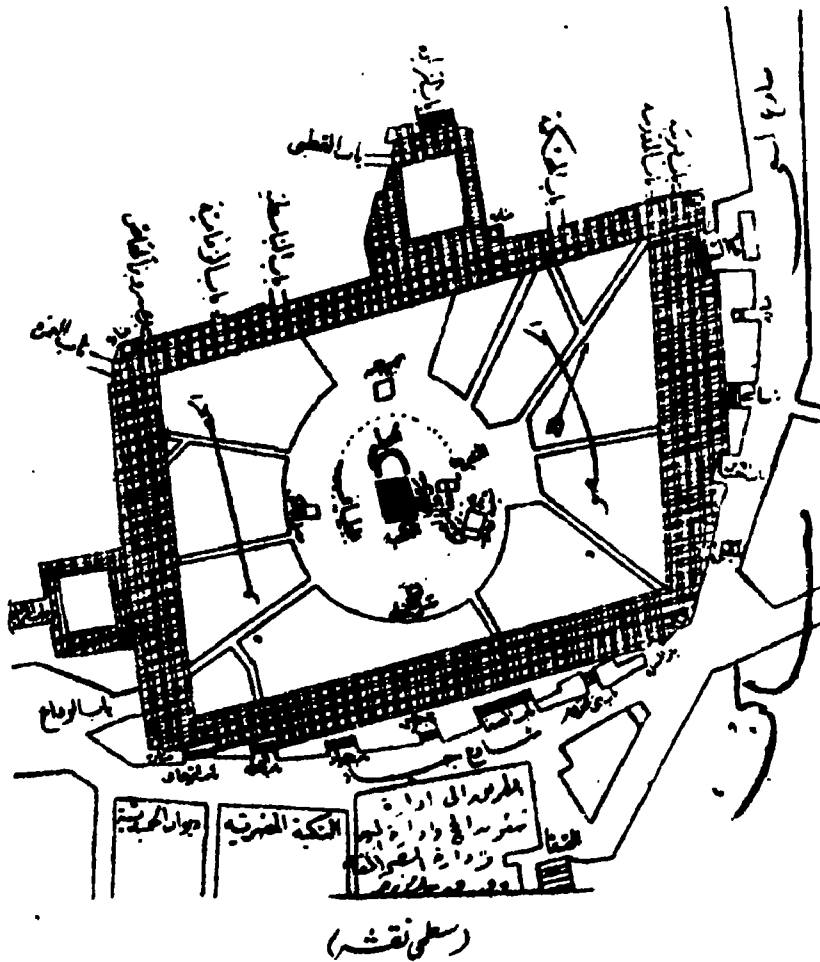
(سطحی نقشہ)

حرمِ نبویؐ
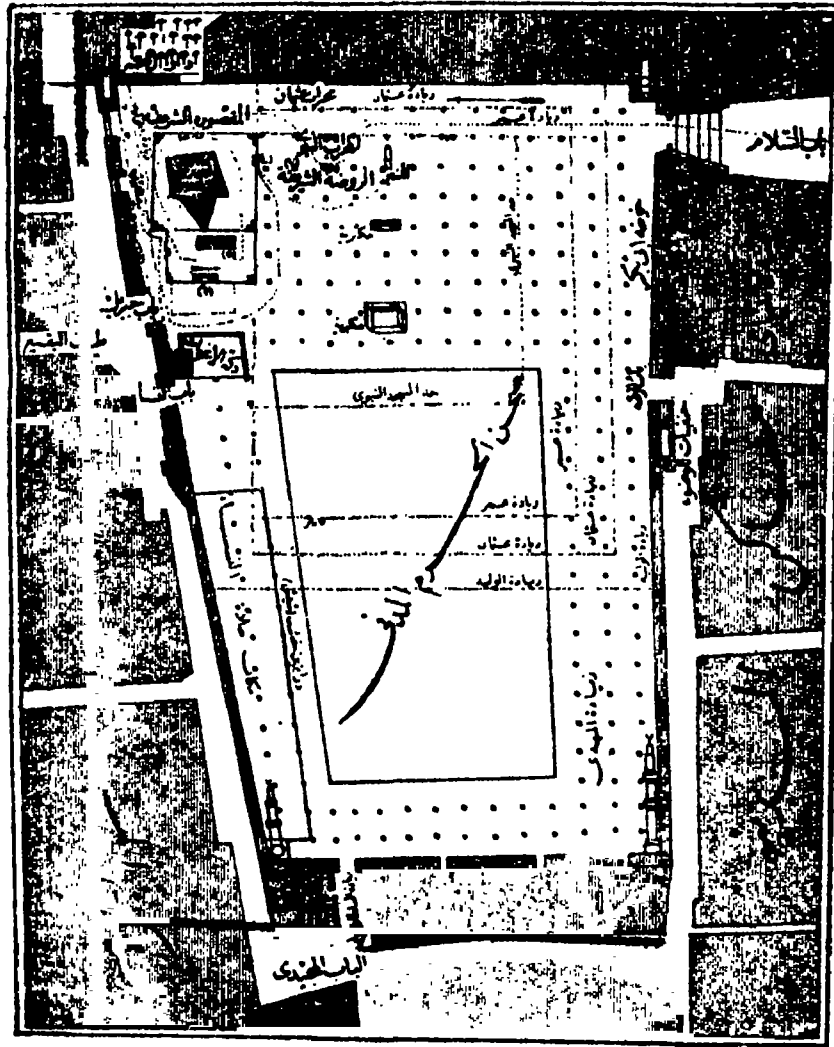
(سطحی نقشہ)

مسجدِ نبویؐ کا یہ سطحی نقشہ (پلین) گو قدرے پرانا ہے مگر عمارت کی بہت سی قدیم جزئیات کو دکھاتا ہے۔ جلالت الملک سلطان ابنِ سعود کے عہد میں بایاں گوشہ (نقشہ پر نچلا بایاں کونہ) زاویہ قائمہ کر دیا گیا ہے اور اس طرح "باب مجیدی" عین درمیان میں آگیا ہے چاروں گوشوں پر منارے بھی ہیں۔

نواب محسن الملک (مرحوم)

ڈاکٹر مولوی عبدالحق (مرحوم)

دو در دارد ایں باغ آراستہ
در و بند از ہر دو برخاستہ
بیا از درِ باغ و بنگر تمام
ز دیگر درِ باغ بیروں خرام

اگر غور سے دیکھا جائے تو انسان کا آنا اور جانا یعنی پیدا ہونا اور مرنا دونوں ایک سے فعل ہیں۔ دونوں فعل اس کے بس سے باہر ہیں۔ نہ اپنی خوشی آتا ہے نہ اپنی خوشی جاتا ہے۔ اور نہ معلوم کہاں سے آتا ہے اور کہاں جاتا ہے، اور شاید جہاں سے آتا ہے آخر وہیں چلا جاتا ہے۔ یہ اسرار ہیں اور اسرار رہیں گے۔ لیکن اتنا یقینی ہے کہ ان دو منزلوں کے درمیان جو وقفہ ہے اور جو گنتی کے چند سانس انسان کو عطا ہوئے ہیں وہی اس کی حیات ہے اور وہی اس کا سرمایہ، وہی اس کی دنیا ہے اور وہی اس کی آخرت، اسی میں اس کی زندگی ہے اور اسی میں اس کی نجات۔ اور اسی میں اس کی موت ہے اور اسی میں عذاب۔ گویا یہ چند دن امتحان کے ہیں اور دنیا دامِ ترغیب ہے، اس میں جو پورا اترا اس نے حیات جاودانی پائی، اور جو رہ گیا سو رہ گیا۔ انا للہ وانا الیہ راجعون۔

دنیا کی رونق اور ترقی انہیں نفوس کے دم سے ہے جو یہاں کی کڑی کڑوی جھیل کر اور پیچ در پیچ ترغیبات کے پھندوں سے نکل کر امتحان میں پورے اترتے ہیں۔ ان کی کمی سے دنیا کو زوال، اور ان کی ترقی سے دنیا کو ترقی ہے۔ اسی طرح جس قوم میں ایسے لوگ پیدا نہیں ہوتے، اور بہت کم ہوتے ہیں، وہ معرضِ زوال میں ہے، اور جہاں ان کا سلسلہ جاری ہے، وہاں ترقی و اقبال شاملِ حال ہے۔

ہماری قوم میں ایک مدت سے قحط الرجال ہے اور جو ایک آدھ خدا کا بندہ اس زمانہ میں پیدا ہوا تو ایسے وقت میں داغِ مفارقت دے کے چلا گیا جبکہ اس کی ضرورت اور بڑھ گئی تھی، اور جبکہ اس کے افادہ کا دائرہ اور وسیع ہو گیا تھا۔ سیّد نے اسّی برس کی عمر میں انتقال کیا لیکن ہمارے حسابوں وہ بے وقت مرے۔ اب ان کے جانشین، قوم کے سردار، ملک کے محسن، محسن الملک ستر برس کی عمر میں ہمیں چھوڑ کر گئے ہیں مگر ہم یہی کہیں گے کہ یہ موت بھی نا وقت ہوئی اسلئے کہ جو کام یہ بڈھا کر رہا تھا وہ جوانوں سے بھی نہ ہو سکا، اس اکیلے بڈھے کا کام اتنا بڑا تھا جس سے ہزار دو ہزار نہیں لاکھوں کے منہ پھر گئے۔ اور اگر سچ پوچھو تو اس نے ایسے وقت پر جبکہ خانۂ قوم کی بنیاد متزلزل ہو رہی تھی اور مسلمانوں کی آنکھیں آسمان کی طرف لگی ہوئی تھیں اور دل دھڑک رہے تھے، وہ کام کیا جو چھ کروڑ نفوس سے نہ ہو سکا۔ اس کی مردانہ ہمّت اور اس کی مصلحت اندیشی ہماری قوم میں یاد رہے گی۔ اس نے، بقولِ حالیؔ، سیّد کے مشن کو اسی طرح پورا کیا جس طرح پال نے مسیح کے مشن کو۔ اس نے اپنے ہادی کے مرنے پر صلیب کندھے پر اٹھائی اور بزرگ سیّد کے قدم بہ قدم چل کر اور سارے آفات سہہ کر آخر بیڑے کو کنارے پر جا لگایا جو نا خدا کے چل بسنے سے بھنور میں پھنس گیا تھا۔

میرے خیال میں ایک بڑے شخص کی سب سے بڑی علامت یہ ہے کہ جب تک وہ زندہ ہے اور اپنے کام پر ہے، دوسرے شخص کی ضرورت محسوس نہ ہو، اور اس کے بعد سوا اس کے کسی دوسرے پر نظر نہ پڑے۔ یہی حال مرحوم کا تھا۔ جب تک اس کے دم میں دم رہا، ساری قوم نے اسے بالاتفاق اپنا سردار تسلیم کیا۔ اور جس کام میں اس نے ہاتھ ڈالا اسے اس نے اس خوبی اور سہولت اور کمال سے ادا کیا کہ سب کو یقین ہو گیا کہ اس سے بہتر دوسرا شخص نہیں کر سکتا۔

یہ بڑے شخص کے پہچاننے کی علامت ہے۔ لیکن بڑا شخص درحقیقت ہے کون؟ ہم بڑا شخص اسے کہیں گے جو ایثار کو کام فرماتا ہے، جو اپنے اغراض اور خواہشات پر لات مار کر دوسروں کی دستگیری کرتا ہے۔ جس طرح خود غرضی انسان کی سب سے مذموم صفت ہے، اسی طرح ایثار اس کا اعلیٰ وصف ہے بلکہ سب سے بڑی نیکی اور سب سے بڑی عبادت ہے۔ کون کہہ سکتا ہے کہ

گنبد خضرا
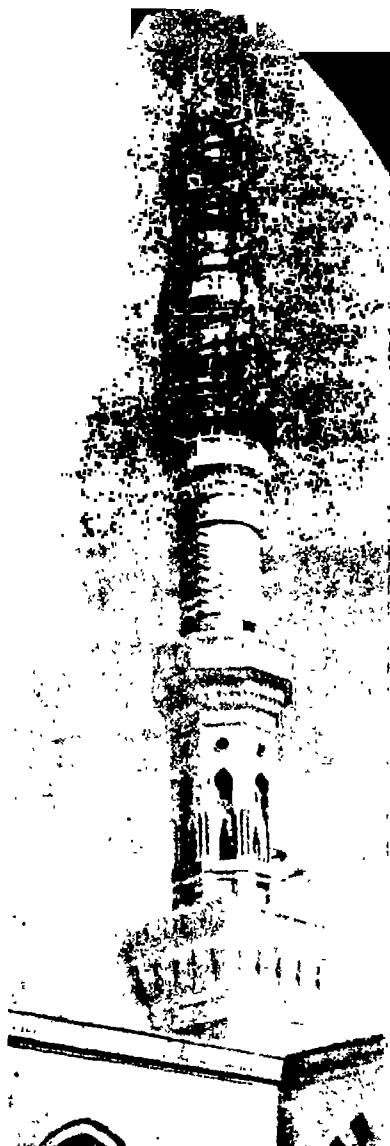
منار
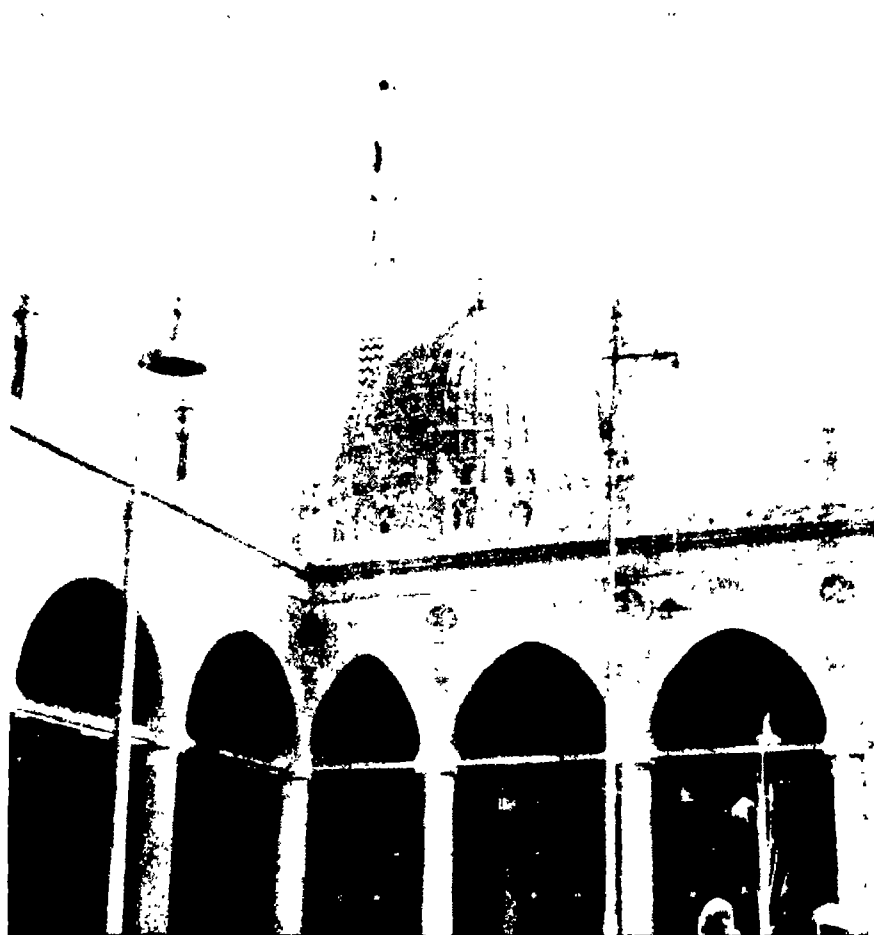
مسجد نبوی ﷺ

مسجد نبوی ﷺ کا اندرونی حصہ

برصغیر میں مسلمانوں کی نشاۃ الثانیہ کے مؤسس ، نقیب اور علمبردا
جن کی سیاسی ، علمی کاوشوں اور ادبی و ثقافتی سرگرمیوں سے قو
کو ایک نئی حیات ملی ، اور اس نے ایک معین نصب العی
کی جد و جہد شروع کی ، جو بالاخر تاسیس پاکستان کی شکل
میں ظہور پذیر ہوئی

سر سید رح

نواب محسن الملک (مرحوم)

ڈاکٹر مولوی عبدالحق (مرحوم)

مرحوم میں یہ صفت نہ تھی، اور وہ بھی اعلیٰ درجہ کی نہ تھی۔ اس کے کارنامے، اس کی جاں فشانیاں اور اس کی سحر کاریاں ایک عالم پر روشن ہیں۔ اس نے ہمیشہ ایثار و احسان سے کام لیا اور خاص کر اس کی زندگی کا آخری حصہ ایسے نیک اور اعلیٰ کاموں سے مملو تھا کہ اگر اس کا صرف ایک ایک کام ایک ایک شخص کو تقسیم کر دیا جائے تو ان میں سے ہر ایک بڑا شخص کہلانے کا مستحق ہو سکتا ہے۔ وہ جامع حیثیات تھا اور اس نے ہر حیثیت کو بدرجۂ اتم نبھایا۔ وہ ملک کا دوست اور قوم کا عاشق تھا اور اس نے اپنی دوستی کا حق ادا کر دیا۔ اس کی زندگی اپنی نہیں رہی تھی بلکہ قوم کی زندگی ہو گئی تھی۔ اس کی زندگی کی ایک ایک گھڑی، ایک ایک لمحہ، دوسروں کے لئے وقف تھا۔ وہ جب تک جیا اسی دُھن میں جیا، اور جب مرا تو اسی دھن میں مرا اور رتبۂ شہادت پایا۔ یہ لوگ بڑے لوگ ہیں۔ ان کے رتبے بہت اونچے ہیں۔ یہ شاہ راہِ عالم کے پتھر ہیں۔ جب تک زندہ تھے لوگوں کی رہبری کرتے رہے، اب مرنے کے بعد بھی دوسروں کی رہنمائی کریں گے۔ وہ مر کے نہیں جیتے ہیں۔ مگر اس طرح نہیں جیسے ہم جیتے ہیں بلکہ ان کی حیات حیاتِ ابدی اور ان کی زندگی "زندگیٔ جاوید" ہے۔

اس میں شک نہیں کہ بولتی چالتی تصویر ہماری آنکھوں سے نہاں ہو گئی۔ وہ ہاتھ جس کے اٹھنے سے ہماری امیدیں اٹھتی تھیں، اٹھنے کے قابل نہیں رہا۔ وہ دماغ جو آڑے وقت پر ہماری مشکلات کی گتھیوں کو آنا فاناً سلجھا دیتا تھا کام سے رہ گیا ہے۔ اور وہ زبان جس کی جادو بھری تقریریں سے مجمع کے مجمع دم بخود رہ جاتے تھے خاموش ہو گئی ہے۔ لیکن اس کے کام ہمارے ساتھ ہیں، اس کے نقشِ قدم ابھرے ہوئے ہیں، اور نقش فی الحجر ہیں۔ سیّد مر گیا، مگر وہ اب تک ہمارے ساتھ ہے۔ اس کا نام اس سے زیادہ روشن اور اس کا کام اس سے زیادہ اجاگر ہے۔ ہم جب کبھی کوئی قومی کام کرنے کے لئے کھڑے ہوتے ہیں تو یہ سمجھتے ہیں، بلکہ حقیقت میں محسوس کرتے ہیں، کہ اس میں سیّد کا ہاتھ ہے۔ اب مہدی علی چل بسا، لیکن وہ اب بھی محسن الملک ہے۔ ان کی زندگی سے سبق سیکھو، ان سے زندگی بسر کرنا سیکھو۔ ہزار کالج اور یونیورسٹی سے بڑھ کر یہ معلم ہیں۔ وہاں علم ہے، مگر بے مزہ اور بے نمک؛ اور یہاں عمل کا علم ہے جس میں اسرارِ حیات ہویدا ہوتے ہیں، اور جس پر ہزاروں العلم قربان ہیں۔ وہ بے جان ہے، اور یہ جاندار ہے۔ وہ جگ بیتی ہے، اور یہ آپ بیتی ہے۔ اور اسی لئے یہ زیادہ کارآمد اور زیادہ پُراثر ہے۔ غرض زندگی ان لوگوں کی، اور مرنا ان لوگوں کا۔ اور بقول حالیؔ ہیں مرحوم نے اپنی زندگی و حیات سے بتا دیا کہ :

"یوں رہتے ہیں، یوں جیتے ہیں، یوں مرتے ہیں"

اے کالج کی مبارک زمین مسجد، دیکھ! آج قوم کا جگر گوشہ اپنی زندگی کے مرحلے طے کر کے تجھ میں پناہ لیتا ہے۔ دیکھ تیرے پاس ہماری قوم کے دو لعل بے بہا اور بھی دفن ہیں، آج ایک تیسرا گوہرِ شب چراغ اور آتا ہے۔ یہ اس خفتہ بخت، حرماں نصیب قوم کی تین عزیز امانتیں ہیں جو تجھے داورِ محشر کے سامنے پیش کرنی ہوں گی۔ یہ ہماری آنکھوں کے تارے تجھ میں آج تجھ میں مدفون ہیں لیکن یہ غروب ہو کر بھی اپنی روشنی چھوڑ گئے ہیں اور حشر میں پھر چمکیں گے۔ اے روشنی جا! اے قوم کے تارے جا! اور وہاں جا کے سو جا، جہاں قوم کے آفتاب و مہتاب پڑے سو رہے ہیں!! شامِ ظلمت آ پہنچی ہے۔ تاریکی چھا رہی ہے۔ اب اور تارے نکلیں گے مگر تیری چمک کسی میں نہ ہو گی جا اب عالمِ بقا میں جا! تیرا آنا مبارک ہوا، خدا تیرا جانا بھی مبارک کرے! تجھ پر ہزاروں درود اور سلام ہوں اور تجھ پر تا قیامت خدا کی رحمتیں نازل رہیں!

"...بازبہ تعمیرِ جہاں خیز"

جناب اے۔کے۔ ایم فضل القادر چودھری

جناب اے۔کے۔ ایم فضل القادر چودھری، وزیرِ تعلیم و اطلاعات، خوراک و زراعت، محنت و معاشرتی بہبود نے پچھلے دنوں مؤتمر عالم اسلامی کے مذاکرہ ("اسلام اور دورِ جدید کے تقاضے") منعقدہ کراچی میں جو افتتاحی تقریر فرمائی اس کے اہم نکات یہاں پیش کئے جاتے ہیں۔ (ادارہ)

یہ اسلام ہی کا فیضان ہے کہ اس نے مسلم معاشرہ کو صدہا سال کی آزمائشوں کے باوجود برقرار و سلامت رکھا ہے اور آئندہ بھی ملتِ اسلامیہ کا استقلال و استحکام ہماری مشترک ثقافتی و روحانی اقدار پر ہی مبنی رہے گا۔

نوعِ انسان کے لئے اسلام کی دعوت ابدی اور لازوال ہے اور امتدادِ زمانہ اس سے متعرض نہیں ہو سکتا۔ اسی طرح اسلام میں اجتہاد کا مقام ہے یعنی تازہ غور و تدبر۔ اسلام کے ابدی اصول غیر متبدل ہیں مگر ان کا عملی اطلاق اصل چیز ہے۔ قرآن ہم کو ایک معین ضابطۂ حیات عطا کرتا ہے اور اسوۂ رسولؐ کی روشنی ہمارے لئے رشد و ہدایت کا دوسرا بڑا سرچشمہ ہے۔ ان تعلیمات کا تقاضہ ہے کہ مسلمان جو اس دنیا میں حیاتِ انسانی کی تعمیرِ نو کا تاریخی کردار ادا کر سکتا ہے اسے اس منصب کی ذمہ داریاں ادا کرنا چاہئیں۔ قرآن ہی ہمیں بتاتا ہے کہ خالق اور مخلوق کا صحیح رشتہ کیا ہے۔ یہ رشتہ راستی و نکوکاری کے سوا اور کچھ نہیں۔ معاشرہ میں عدل و صالحیت ہی انسانی کردار کی اصل کسوٹی ہے۔ توحید اسلام کا اصل اور بنیادی تصور ہے جس سے مساوات و اخوت کے اصول اخذ ہوتے ہیں۔

ماضی میں مسلمانوں کی ہر شعبۂ زندگی میں عظیم الشان ترقیوں اور ان کے عروج نے دنیا کو ایک نئی تہذیب سے آشنا کیا تھا مگر ہماری یہ ترقی اٹھارویں صدی تک پہنچتے پہنچتے رک گئی اور بڑا شدید انحطاط آگیا۔ اس کی بڑی وجہ ہمارا فوجی و سیاسی زوال ہے۔ اُدھر تہذیبِ مغرب نے بھی ترقی شروع کر دی تھی۔ لیکن باوجود ان باتوں کے مسلمانانِ ایشیا و افریقہ ان پچھلے سو سالوں میں اپنی ترقی و آزادی کے لئے جو جدوجہد کرتے رہے ہیں وہ کامیابی سے ہمکنار ہوئی ہیں مگر ابھی عروج کی بہت سی منزلیں ہمارے سامنے ہیں جن تک پہنچنے کے لئے بڑی گنجائش ہے اور ہمیں والہانہ سرگرمی و عمل کی دعوت دے رہی ہیں۔

زندگی ایک شے واحد ہے اور اسے دین و دنیا کے دو الگ الگ خانوں میں تقسیم نہیں کیا جا سکتا۔ یہ بات روحِ اسلام کے منافی ہے۔ یہ دنیا ہر چند کہ مشینوں میں گھری ہوئی ہے مگر پھر بھی ہم مسلمان ایک ایسا معاشرہ ضرور تعمیر کر سکتے ہیں جو عدل و انصاف پر مبنی ہو۔ کیونکہ قرآن علم و بصیرت، تدبر فی الدین، سائنس، ٹیکنالوجی کے ہرگز خلاف نہیں بلکہ بصیرت والوں کو برابر دعوتِ فکر و نظر دیتا ہے اور بتاتا ہے کہ مسلمان اس دنیا میں کیا کردار ادا کرے۔ سائنس اپنی جگہ بے پناہ قوت رکھتی ہے۔ اب دیکھنا یہ ہے کہ ہم اس سے تخریبی کام لیتے ہیں یا فلاحِ انسانیت کا۔ اصل چیز مثبت اخلاقی اقدار ہیں جن کی ہمیں ہمت افزائی کرنا چاہیئے۔

اسلام کسی ایسے تصور کو اختیار نہیں کر سکتا جو وجدانی نہ ہو۔ اسلام نے ہی دنیا کو امن و راستی کی صحیح راہ دکھائی اور توہمات سے انسان کو باہر نکالا ہے۔ میرا پختہ عقیدہ ہے کہ عدم مساوات، معاشرتی و اقتصادی ناانصافی، باہمی شکوک اور فراہمی اسلحہ کی دوڑ میں استعماری اداروں کی اس دنیا میں اسلام آج بھی بنی نوعِ انسان کی نجات کا واحد وسیلہ ہے جو مساوات و اخوت کے ذریعے صحت مندانہ اثرات مترتب کر سکتا ہے۔

اس وقت کی دنیا کو دو بڑے خطرے لاحق ہیں: نسل پرستی اور شراب۔ ان دونوں برائیوں سے پیدا ہونے والے تمام مفاسد اور

اخلاقی گراوٹ ہیں۔ اسلام نے ان دونوں چیزوں کی بیخ کنی کی ہے اور ایک بار پھر نوعِ انسان کو ان سے نجات دلوا سکتا ہے، چنانچہ دنیا کے اکثر مفکرین، جیسے ٹائن بی، اسلام کی ان خدمات کے معترف اور اس خیال سے متفق ہیں۔

بیسویں صدی میں تہذیب کی ایک اور خدمت جو مسلمان کر سکتے ہیں، وہ آمدنیوں کی منصفانہ تقسیم ہے۔ اسلام نے تو معاشرتی ناہمواری کو دور کرنے کے لئے یہاں تک زور دیا ہے کہ نماز بھی اس وقت تک ادا نہیں ہوتی جب تک معاشرہ میں اقتصادی انصاف قائم نہ ہو۔ مختصر یہ کہ اسلام ہر قسم کے استحصال اور طبقاتی کشاکش کے خلاف ہے اور ان مفاسد کو دور کرنے کی تدبیر بھی بتاتا ہے۔

میرا یہ بھی ایمان ہے کہ اسلام موجودہ عہد کی تمام معاشرتی برائیوں کا حل بتاتا ہے۔ اسلام کے اُصول، جیسا کہ میں نے ابھی عرض کیا، ابدی ہیں مگر ان کا جدید اطلاق حل طلب مسئلہ ہے۔ جو چیز تغیر پذیر ہے وہ اصول نہیں بلکہ ان کا اطلاق و استعمال ہے۔ مدعا ہے اجتہاد سے کام لینا۔ اس ضمن میں اجماع پر بھی غور کرنا چاہیئے۔ اجماع نام ہے "اجتماعی اتفاق" کا ـــــ اجماع اسلامی عقائد، قانون اور نظمِ سیاست کے ہر شعبہ میں تمام باتوں پر حاوی ہے۔ اس لئے اجتہاد کا وسیلہ یعنی اصولِ اسلام کے استعمال پر مکرر غور و خوض، ہماری تاریخ کے اس مرحلہ پر اور بھی بڑی بنیادی اہمیت حاصل کر جاتا ہے۔ اس میں شک نہیں کہ عہدِ حاضر کے تقاضوں کے پیشِ نظر اسلام کی تعبیرِ نو ایک عظیم مہم ہے کیونکہ اس کا مطلب ہے بیسویں صدی کے وسط میں ایک نئی حیات کی تعمیر۔ مگر اسلام نے ماضی میں جو ترقی کی ہے وہ اس بات کا قطعی ثبوت ہے کہ اسلام ہر عہد کے تقاضوں کا ساتھ دے سکتا ہے اور وہ ایک زندہ و متحرک مذہب ہے۔

حکومتِ پاکستان نے ان مقاصد کے حصول کے لئے ایک مرکزی ادارۂ تحقیقاتِ اسلامی قائم کیا ہے جس نے اپنے سامنے ایک بڑا مہتم بالشان لائحۂ عمل رکھا ہے۔ امید ہے کہ جن دیگر اسلامی ملکوں میں تحقیقی کام ہو رہا ہے وہ بھی ان اصولوں کے اطلاق کے باب میں غور و فکر کی نہج واضح کر سکیں گے۔ نیز ایسے اداروں کے درمیان تحقیقات اور تحقیقی کام کرنے والوں کا تبادلہ بھی کیا جائے گا۔

انشاء اللہ ہم اسلام کی نشاۃ الثانیہ اپنی زندگیوں ہی میں دیکھ سکیں گے۔ مگر ہمیں یہ بات بھی یاد رکھنی چاہیئے کہ مسلمانوں کا فروغ خود اسلام کی توانائی پر موقوف ہے، اسلام جو خالص اور تخلیقی ہو۔ مختصر یہ کہ مسلمانوں کی ترقی اور روحانی فلاح ایک مضبوط و توانا اسلام ہی میں مضمر ہے۔ (تلخیص)

پاکستان کے وزراء، حکام اور خود عوام ملک میں اسلامی اقدار کے قیام و استحکام کا شوقِ بے پایاں رکھتے ہیں، جسے دیکھ کر مجھے بڑی مسرت ہوئی۔

دعوتِ اسلام کی روح ہے عالمگیر امن و سلامتی اور اخوت و مساوات۔ ان مقاصد کے حصول کے لئے یہاں لوگوں میں بڑا عمیق جذبہ کار فرما نظر آتا ہے۔ ان مقاصد کے حصول پر ہی دنیا میں ایک ارفع اور بہتر معاشرہ کی تشکیل منحصر ہے۔ ایک ایسا معاشرہ جو نئی روح سے سرشار ہو اور اس کی اخلاقی سطح بلند ہو۔

تعلیم کے باب میں یہ بات یاد رکھنی چاہیئے کہ ایسی تعلیم جو دینی تعلیم پر مبنی نہ ہو انسان کو سچا مسلمان نہیں بنا سکتی۔ مادہ سے گھری ہوئی اس دنیا میں مسلمان کا منصب ایک ارفع و صالح معاشرہ کی تعمیر ہے۔

اس وقت ہر اسلامی ملک میں مسلمانوں کو کئی خطرات درپیش ہیں اور ان میں سب سے بڑا خطرہ اس حملہ سے ہے جسے ثقافتی حملہ کہا جا سکتا ہے۔ افسوس کہ ہر اسلامی ملک میں مغرب کی بہت سی مادی و ذہنی فتوحات نظر آرہی ہیں اور اس وجہ سے مسلمانوں کا یہ فرض ہے کہ وہ ہر جگہ اس فتنے کے استیصال کے لئے کام کریں۔

حکومتِ پاکستان نے ملک میں "ادارۂ تحقیقاتِ اسلامی" کے قیام سے اس نہج پر صحیح قدم اٹھایا ہے ۔

(الحاج سید امین الحسینی، مفتی اعظم فلسطین)

داستانِ قفس

(بہادر شاہ ظفر اور حضرت شاہ زمانی بیگم کے دو خطوط)

شہزادہ نعیم آرزو

آخری شہنشاہ ہند، بہادر شاہ ظفر اور ان کی بہو، حضرت شاہ زمانی بیگم صاحبہ کے یہ خطوط ایک یادگار حیثیت رکھتے ہیں۔ آخری، بدنصیب شہنشاہ ہند کو دلی سے رنگون جاتے وقت نہایت سخت فوجی پہرہ میں رکھا گیا تھا اور رنگون پہنچنے پر بھی یہ پہرہ برقرار رہا، بلکہ سخت کر دیا گیا۔ یہاں وہ لکڑی کے ایک بنگلہ میں قید کئے گئے تھے۔ ایام اسیری کے دوران وہ اس بنگلہ سے کبھی باہر نہ نکلے۔ بستر پہ پڑے حقہ سے شغل کرتے رہتے یا کبھی کبھی اپنے شعر گنگنایا کرتے۔ پچھلی باتوں کی یاد آتی تو زخموں پر نمک کا کام دیتی۔ ایسے عالم میں وہ اپنے چہیتے بیٹے جواں بخت کو بلا کر اس سنگدل دنیا کی بے وفائی اور بخت کی نارسائی کا دکھڑا روتے۔ جب مکروہات دنیا سے دل بہت بیزار ہو جاتا تو اللہ سے لو لگاتے۔ دلی سے روانگی ہونے ہی والی تھی کہ ایک غزل ہوئی جو اداسی، بیچارگی اور مایوسی کی منہ بولتی تصویر تھی۔ چند شعر ہیں؛

جلایا یار نے ایسا کہ ہم وطن سے چلے
بطور شمع کے روتے اس انجمن سے چلے
نہ باغباں نے اجازت دی سیر کرنے کی
خوشی سے آئے تھے، روتے ہوئے چمن سے چلے
مرے پہ دامن صحرا لئے پردہ پوشی کی
برہنہ آئے تھے، لپٹے ہوئے کفن سے چلے

قید کے ان پُر آلام دنوں کو انہوں نے بڑے صبر و ضبط اور کامل شکیبائی کے ساتھ گزارا۔ وطن کی تباہی، دلی کی بربادی اور یاروں کے بچھڑنے پر خاص طور سے دلگیر و ملول رہتے تھے۔ کبھی کبھی انہوں نے کچھ خطوط بھی لکھوائے اور دلی بھیجے۔ مگر ظاہر ہے کہ کھل کر بات نہیں کر سکتے تھے۔ خطوط کے پکڑے جانے، اسیری کی سختیاں بڑھنے اور دیگر پریشانیوں کے باعث وہ ایسا کر بھی نہیں سکتے تھے۔ مگر پھر بھی بعض خطوط جو دستیاب ہوئے ہیں ان کے ایام اسیری پر بڑی اچھی روشنی ڈالتے اور ان کی ذہنی کیفیت کی ایک جھلک دکھاتے ہیں۔ ذیل میں ان کا ایک خط اور ان کی بہو، حضرت شاہ زمانی کا ایک خط پیش کیا جاتا ہے۔ جہاں تک میرے علم میں ہے دونوں خطوط غیر مطبوعہ ہیں۔ پہلا خط شہنشاہ ہند کا ہے جو انہوں نے اپنی ایک صاحبزادی، حضرت کلثوم زمانی بیگم کو رنگون سے بھیجا تھا۔ دوسرا خط ان کی بہو، یعنی شہزادہ جواں بخت کی بیگم صاحبہ کا ہے۔ یہ خط انہوں نے ایک بزرگ، سائیں سبیل شاہ کی معرفت دہلی اپنی والدہ صاحبہ کو بھجوایا تھا۔ ان خطوط کی اصل اس وقت کہاں ہے، یہ کہنا مشکل ہے۔ بہرکیف، مجھے ان کی نقول خود اپنے ہی خاندانی کتب خانہ سے دستیاب ہوئی ہیں۔ میرے پردادا، مجاہد الملک مولانا جعفر خاں صاحب بریلوی کے ذاتی کتب خانہ میں جہاں اور علمی نوادر کا ذخیرہ ہے وہاں بعض مشاہیر کے خطوط بھی ہیں۔ مجاہد الملک مرحوم نے یہ نقول دیوبند کے ایک علم دوست سے حاصل کی تھیں اور انہوں نے یہ دہلی سے بطور خاص کسی ذریعہ سے منگائی تھیں:

(۱)

"قید خانۂ رنگون۔ ۱۸ مئی ۱۸۶۰ء

تم نے اپنے قیدی باپ کو خط بھیجا خط کیا تھا میری جان آنسو نامہ تھا۔ جواں بخت بہادر شاہ کے چہیتے بیٹے نے پڑھ کر سنایا۔ ایک دفعہ سنا جی نہ بھرا، کہا بیٹا پھر سناؤ۔ پھر سنا۔ وہ بھی رویا میری آنکھیں بھی آنسوؤں سے بھیگ گئیں۔ میں نے کہا۔ بابا ایک دفعہ اور پڑھو کیا لکھوا گئی بیٹی۔ کہ تمہارے خط کا مجھ پہ نیا اثر ہوا۔ تین دفعہ سننے کے بعد بھی دل کو قرار نہ آیا۔

تم کہتی ہو میری جان! دلّی والے مجھ کو روتے ہوں گے تو کیا وہ یہ نہیں جانتے کہ میں بھی ان کو روتا ہوں۔ میں تو زندہ بیٹھا ہوں وہ تو بن آئی مر گئے۔ کتنوں کے باپ۔ کتنوں کے بیٹے۔ کتنوں کے بھائی پھانسیوں پر چڑھ گئے، کتنے بچے یتیم ہو گئے کتنی عورتیں رانڈ ہو گئیں۔ گھر لٹ گئے نہیں بلکہ کھد گئے اور گدھوں کے ہل چل گئے۔

دہلی میں جب میرا مقدمہ ہو رہا تھا اسی زمانہ میں تباہی اور بربادی کے سینکڑوں قصے سنے تھے۔ میرے یہاں آ جانے کے بعد خبر نہیں اللہ کیا کیا بپتائیں شہر والوں پر پڑی ہوں گی۔

میری جان، یہ سب میرے اعمال کی شومی تھی سپاہیوں نے بھی تو غضب کیا تھا بھلا عورتوں اور بچوں کو مارنا کس مذہب میں آیا ہے؟۔ مگر کیا کسی نے بھلا کسی نے بجز اشتعال امر تھا۔ جو کر رہا ہے اب روئیں یا ہنسیں کچھ فائدہ نہیں۔

تم نے یہاں آنے کو لکھا ہے۔ تم آ سکو۔ تو میرے قید خانے میں عید ہوگی۔ مگر خبر نہیں قید کرنے والے تم کو آنے دیں گے یا روک دیں گے۔ اپنی زبان سے تو کسی سے کہوں گا نہیں کیوں کہ شروع شروع جو بات میں نے کہی وہی الٹی میرے منہ پر ماری گئی۔ اس کے بعد میں نے عہد کر لیا کہ اب کبھی کچھ نہ کہوں گا۔ ان کو ہر بات سے شک ہوتا ہے۔ یہ نہیں سوچتے کہ میرا یہاں کون ہے اور جہاں تھے وہاں انہوں نے میری کیا مدد کی۔

ایک دفعہ میں نے کہا یہاں مینہ بہت برستا ہے اور جو مکان رہنے کو ملا ہے وہ برسات کے لئے اچھا نہیں ہے۔ ٹپکتا ہے بوچھاڑ آتی ہے۔ کوئی اور اچھا مکان ہونا چاہیئے۔ جواب ملا کیا تمہارے لئے لال قلعہ منگوایا جائے! یہاں تو ایسے ہی لکڑی کے مکان بنتے ہیں اس لئے اچھا کوئی مکان نہیں ہے۔

جواب سنکر اپنا سا منہ لیکر رہ گیا۔ ملکہ نے کہا بھی کہ جواب دینا چاہیئے کہ لکڑی کے مکان بھی یہاں اس مکان سے دس درجہ اچھے اپنے موجود ہیں مگر میرا دل پھوٹا ہو رہا تھا ٹھیس لگی آنکھ میں آنسو آ گئے اور چپ ہو گیا۔

ایک دفعہ بنگال کے کوئی زمیندار ملنے آئے۔ میرا اپنا کلام مانگا میں نے ایک غزل جواں بخت سے لکھوا کر دے دی۔ باہر گئے تو ان کی تلاشی ہوئی اور مجھ پر عتاب نازل کیا گیا کہ غزل دینے کا کیا مقصد تھا۔ قیدیوں کو کوئی تحریر باہر دینے کی اجازت نہیں۔ ملکہ کو بہر غصہ آیا۔ مگر میں نے کہا ناحق خفا ہوتی۔ ہم خدا نے قیدی بنایا ہے

تو سب کچھ سہنا پڑے گا۔

ایک دفعہ عید کے دن چند مسلمان کچھ تحائف لیکر آ گئے۔ مخبر ساتھ آئے۔ میں نے ان کے خیال سے کہا بھائی میں نہیں لے سکتا۔ انہوں نے اصرار کیا میں نے مجبوراً لے لئے اور اس کے بدلے ملکہ کا ایک ہار ان کو دے دیا۔

دوسرے دن حکم آیا ان کے پاس جواہرات بہت زیادہ ہیں جو خرچ دیا جاتا ہے وہ بہت زیادہ ہے آج سے آدھا خرچ کر دیا گیا۔ بیٹی ایک بات ہو تو لکھواؤں۔ روز ایسی ہی باتیں ہوتی ہیں۔ اب تو میرا کلیجہ پتھر کا ہو گیا ہے۔ پہلے بہت اثر ہوتا تھا کئی کئی وقت رنج اور صدمہ کے سبب کھانا نہیں کھاتا تھا۔ مگر اب مساوات سی ہو گئی ہے۔ بھوک تو دہلی ہی میں کم ہو گئی تھی۔ یہاں کی ہوا ایسی ہے کہ کئی کئی دن کچھ نہیں کھاتا۔

شاعری میں اشک غم پینا، لخت دل کھانا سنا تھا، یہاں یہ روز مرہ ہے۔ اچھا بیٹی اب زیادہ لکھوایا نہیں جاتا۔ خدا تم کو یہاں لایا اور تم میری زندگی تک یہاں آ گئیں تو دل کی باتیں کہوں گا اور دل جگر میں جہاں جہاں زخم ہیں دکھاؤں گا۔

کیا خبر ہے یہ خط تم کو ملے گا بھی یا نہیں۔ سنتا ہوں وہ آدمی معتبر ہیں جن کے ہاتھ یہ خط بھیجا جائے گا لیکن کتنے ہی معتبر آدمی میں نے اپنی زندگی میں دیکھے ہیں۔ جو آخر کو دغاباز اور دوسروں کے مخبر ثابت ہوئے اور اس خط میں ایسا لکھا ہی کیا ہے جس کی مجھے فکر ہو ایک باپ نے ایک بیٹی کو ایک پرزہ لکھوایا ہے نہ اس میں اپنے ملک کی کوئی بات ہے نہ غیر ملک کا کوئی ذکر ہے۔ بس بیٹی اللہ بس باقی ہوس۔

—————— تمہارے قیدی باپ نے لکھوایا:

دیکھا آپ نے بے بسی اور بے کسی کا مرقع، انگریزوں کے ظلم و ستم۔ لیجئے اب اس ملکہ کی زبان سے سنئے جس کی شادی میں غالب اور ذوق سہرے لکھ کر آپس میں الجھ پڑے تھے، جو دہلی کے آخری بادشاہ ابوظفر سراج الدین محمد بہادر شاہ کی بہو تھی، جس کے سرتاج کو ہندوستان کا ولی عہد بہادر بنانے کے لئے زمین و آسمان ایک کر دئے گئے تھے۔

* ملک برما

دلّی کے قیدی بادشاہ کا گھر

اماں حضرت کو آداب!

میں آپ کی بیٹی کالے پانی میں ہوں اپنے وطن دلّی سے

ہزاروں کوس دور، میکے سے جدا اور ایسی جدا کہ اب جیتے جی کبھی کسی میکے والے سے ملنے کی آس نہیں ہے آپ کا خط سائیں سبیل شاہ صاحب لے کر آئے تھے۔ جب وہ حضور[1] سے باتیں کر رہے تھے تو میں نے چلمن میں سے دیکھا وہ زار زار رو رہے تھے اور حضور کی آنکھوں میں بھی آنسو تھے۔ باتیں کر کے سائیں صاحب ان[2] کے ساتھ میرے کمرے میں آئے اور خط دیا خط دیتے ہی رونے لگے مجھے بھی وہ وقت یاد آ گیا جب میری شادی ہوئی اور غالب و ذوق کے سہروں کا چرچا ہوا اور میں نے آپ کے ذریعہ وہ دونوں سہرے منگوائے تو یہی سائیں سبیل شاہ لیکر آئے تھے۔ اس وقت میں ولی عہد ہندوستان[3] کی ملکہ تھی۔ سائیں سبیل شاہ سات ڈیوڑھیوں اور پہرے داروں کو عبور کر کے مجھ تک آتے تھے آج میں ایک جلاوطن قیدی ہوں اور ایک قیدی کی بیوی ہوں۔ قیدی ساس سسر کی بہو ہوں۔

اب نہ یہاں وہ لال قلعہ ہے، نہ سات ڈیوڑھیاں ہیں، نہ پہرے دار۔ بس لکڑی کا بنا ہوا ایک مکان ہے جو برسات میں ٹپکتا ہے اور جس میں دو چار کمروں کے سوا زیادہ گنجائش نہیں ہے ایک کمرے میں حضور ملکہ عالم کی خواب گاہ ہے۔ دوسرے میں میرا اور ان کا بستر ہے۔ تیسرے میں نوکر ہیں۔ چوتھے میں کھانے، ملنے جلنے کا انتظام ہے۔ مجھے یہاں کی ہوا راس نہیں آتی۔ بارش بہت ہوتی ہے۔ مچھر بھی بہت ہیں مکان بھی پرانا اور بوسیدہ ہے۔ اکثر بخار ہو جاتا ہے حضور اور ملکہ عالم بھی بیمار رہتے ہیں خدا کے فضل سے یہ[4] بس ایسے ہیں کہ جن کو یہاں کی ہوا سے کچھ نقصان نہیں ہوا۔

آپ نے دلی کی تباہی کا جو حال لکھا ہے وہ تو جب ہم دلی میں تھے اپنی آنکھوں سے دیکھ آئے تھے ہاں آکا بھائی[5] کی پھانسی کا حال اس خط سے معلوم ہوا وہ تو غدر کے دنوں میں بنارس گئے تھے ان کو کس خطا پر پھانسی دی گئی یہ بات آپ نے نہیں لکھی۔ سائیں صاحب سے میں نے پوچھا کہنے لگے حضرت سید حسن عسکری قبلہ کو پھانسی دی گئی تو کسی نے کہہ دیا کہ یہ بھی ان کی سازش میں شریک تھے اور شاہ ایران کو جو خط گیا تھا اس میں ان کا بھی دخل تھا[6] اور بنارس اسی غرض سے گئے تھے کہ بات چھپانے کا ایک بہانہ ہو جائے میں نے آکا بھائی کا حال سنا کہ انہیں لڑکی بیدردی سے پھانسی دی گئی اور آپ خود[7] پھانسی کے وقت موجود تھیں تو مجھے مارے غم کے غش آنے لگا۔ ہم جب دلی سے جلاوطن ہو کر چلے ہیں اس وقت تک تو وہ بنارس سے آئے نہیں تھے ان کی چھوٹی لڑکی[8] کا بیان کر کر کے رونا سائیں صاحب سے سنا تو کلیجہ منہ کو آنے لگا۔ اس کی عمر ابھی چار برس کی ہوگی۔ غریب کو کیا خبر کہ باپ کہاں چلا گیا اور جب میں نے سعیدہ[9] کی یہ بات سنی کہ آکا بھائی کی لاش گھر میں آئی تو اس نے آپ سے کہا:

"ابا حضرت ہم سے خفا ہو گئے ہیں۔ بولتے نہیں۔ آنکھ بند کئے لیٹے ہیں۔" تو میرا کلیجہ ٹکڑے ٹکڑے ہو گیا سعیدہ مجھے بہت یاد آتی ہے اور جب سے آکا بھائی کے مارے جانے کا حال سنا ہے سعیدہ کا خیال رولاتا ہے۔ موئی مٹی کی نشانی ہے۔ میں اس کو دیکھتی تو دل کے زخم پر مرہم لگ جاتا۔ مگر میں کہاں اور سعیدہ کہاں اور میرے ماں باپ کہاں اور دلی شہر کہاں۔ اب تو کوئی امید دہلی آسکنے کی نہیں ہے۔

ہمارے بزرگوں پر بہت ہی برے وقت آئے ہیں حضرت بابر ہم سے زیادہ مصیبتوں میں پڑ چکے ہیں۔ مگر وہ اتنے مایوس نہیں تھے جتنے مایوس ہم ہیں۔ کیونکہ ان کی ہمت کے آگے ساری دنیا کے دروازے کھلے ہوئے تھے۔ ان کی تلوار میں زور تھا۔ وہ جب چاہتے تھے ہزاروں لاکھوں آدمی ان کی حمایت کے لئے کھڑے ہو جاتے تھے اور ان کی مصیبت دور ہو جاتی تھی۔ مگر ہماری یہ حالت ہے کہ اس شہر کا ایک آدمی بھی

---

[1] ابوظفر سراج الدین محمد بہادر شاہ

[2] شاہزادہ جواں بخت۔

[3] شاہ زمانی بیگم کے بڑے بھائی۔

[6] سنا جاتا ہے کہ قبل از غدر ابوظفر سراج الدین محمد ظفر بہادر شاہ اور شاہ ایران میں خط و کتابت ہوتی تھی اور قاصد کا کام سید حسن عسکری نے انجام دیا تھا۔ سید حسن عسکری ایک بڑے خدارسیدہ بزرگ تھے دہلی میں ان کی بزرگی کے بڑے چرچے تھے۔ اس خط و کتابت کا بعد کو راز کھل گیا اور سید حسن عسکری کو غدر کے بعد پھانسی دے دی گئی اسی دوران میں کسی شخص نے یہ کہدیا کہ اس سازش میں آکا بھی شریک تھے اس لئے ان کو بھی پھانسی دے دی گئی۔

[7] آکا اور شاہ زمانی بیگم کی والدہ

[8] سعیدہ سلطانہ، آکا کی چھوٹی بچی

[9] شاہ زمانی بیگم کے بھائی آکا کی چھوٹی بچی سعیدہ سلطانہ

ہمارا ہمدرد نہیں معلوم ہوتا۔ دنیا میں ہمدردی جب ہی ہوتی ہے جب ہمدردی کرنے والے کو کسی سے کچھ امید ہو۔ ہم سے بھلا کسی کو کیا امید ہوگی؟ سب جانتے ہیں کہ ہماری حکومت ختم ہو گئی ہمارے اقبال کا چراغ گل ہو چکا۔ ہمارے سب حمایتی مر چکے۔ اب جو ہماری مدد کا ارادہ کرے گا یا ہم سے ہمدردی رکھے گا اسے قید ہو گی یا پھانسی، اور کوئی انعام و اکرام ہم اسے نہ دے سکیں گے۔ حضرت امام حسینؑ کے قاتلوں کو یزید کے دربار سے بہت کم گذرا ملتا تھا یعنی فی کس ڈیڑھ سیر جو دئے جاتے تھے اور قاتلوں نے محض ڈیڑھ سیر جو کے لئے رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم کے نواسے کو قتل کر دیا۔ اگر حضرت امام حسینؑ ڈیڑھ سیر جو شاہی فوج کے ہر آدمی کو دے سکتے تو وہ قاتل ان ہی کے ساتھ ہو جاتے۔ ہمارا حال بھی ایسا ہی ہے کہ آج ہم اپنے ہمدردوں اور حمایتوں کو ڈیڑھ سیر جو بھی نہیں دے سکتے پھر ہم سے کوئی کیوں ہمدردی کرے؟ اور ہماری حمایت کا خیال اس کے دل میں کیوں آئے۔ یہ دنیا تو امید پر قائم ہے جب ہم کسی کی کوئی امید پوری نہیں کر سکتے تو وہ ہماری مدد کیوں کرے۔؟

اس ملک کی زبان اور ہے۔ مذہب اور ہے۔ رہنا سہنا، کھانا پینا سب ہم سے اجنبی ہے۔ یہ جانتے بھی نہیں کہ ہم کون ہیں اور یہاں ہم کو کیوں قید کیا گیا ہے۔ اماں بی ہماری یہ قید ایسی قید ہے کہ نہ ہم قید ہیں نہ آزاد، نہ زندہ نہ مردہ۔ اپنے گھر میں اپنے شہر میں اپنے ملک میں جا نہیں سکتے اس لئے قید ہیں۔ طوق و زنجیر گلے اور پاؤں میں نہیں ہے اس لئے آزاد ہیں۔ سب دوستوں قرابت داروں سے جدا ہیں اس لئے مردہ ہیں۔ بولتے چالتے کھاتے پیتے ہیں اس لئے زندہ ہیں۔ کہاں تک لکھوں سائیں سبیل شاہ کی زبانی سب حالات معلوم ہو جائیں گے۔ سعیدہ سلطانہ کو گود میں لینا۔ سینے سے لگانا منہ چومنا اور کہنا کہ پھوپی کا پیار لو۔ ابا حضرت کو یاد نہ کرو۔ ہمیں بھی بھول جاؤ نہ وہ ملیں گے نہ ہم ملیں گے۔ وہ بھی قبر میں ہیں اور ہم بھی قبر میں ہیں۔ ان کی قبر وطن میں ہے اور ہماری قبر پردیس میں ہے۔ جب تک ہم زندہ ہیں قبر میں ہیں جب مر جائیں گے تب بھی قبر میں ہوں گے۔

آداب اماں جانی ــــ تسلیم

خالی گود والی ــــ آپ کی بیٹی شاہ زمانی بیگم؎

شعلۂ جوّالہ

عارف حجازی

ایک فن کار، مرے فکر کی تصویر حسیں
یہ جہاں تاب مناظر، مہ و انجم، یہ زمیں
میرے افکار سے تابندہ جہانِ رنگیں
فن کی عظمت کا امیں شعلۂ جوّالہ ہوں
صبحِ افرنگ کہ تاتار کی زلفِ شب رنگ
نفسِ غم ہوں، لبِ نغمۂ پُرسوز ہوں میں
قصۂ درد کہیں، خلد کا افسانہ کہیں
نقشِ فریاد کہ تصویرِ نشاطِ گل کار
جُوئے خوننابِ سرِ کوئے ندامت کا جوار
رفعت و عظمتِ کہسار نگوں ہے مجھ سے
دشت کی روح، خلاؤں کا ضمیر
ماوراء دید سے تاریک خلاؤں میں گزر
جب بکھر جاتا ہے افلاک پہ خوابوں کا فسوں

کھنچ کے آجاتے ہیں دامن میں مرے ماہ و نجوم
گیسوئے نور پریشاں کئے شانہ شانہ
دمبدم اور ابھرتا ہوا چہرہ لے کر
وادیٔ دل میں اتر آتا ہے ابریشمی نور
جلتی ہر سو نگہ شوق کی لاکھوں شمعیں
پھر کوئی مطربۂ شوخ و شریر
تازہ افکار کا شعلہ ناہید
چھیڑ دیتی ہے رگ جاں کا رباب زرتار
پیکر شعلہ بداماںِ سرود
جو تخیل کے سبک سیر پروں پر مجھ کو
لئے جاتا ہے خلاؤں سے پرے دور کہیں
ایک بازیٔ گرِ اوہام کہ الہام کا اعجازِ مدام!

★

غزل

شبیر افضل جعفری

اپنی سی تنہائی دے

خلوت اور پہنائی دے

وہ بندہ آرائی دے

جس پر جان خدائی دے

نرگس ہوں، بینائی دے

گل کی طرح دکھائی دے

دل کے چھلکتے راوی کو

ڈونگھا کر، گہرائی دے

صامت کو نغمات سکھا

گونگے کو شہنائی دے

جھولے عرشِ معلّٰی پر

روح کو وہ انگڑائی دے

تیری بے آواز صدا

مجھکو روز سنائی دے

سُن کر یہ گمبھیر غزل

کیوں نہ داد بھٹائی دے

محشر بدایونی

گھر کے طاقوں کی رکھیں گے ہم آبروِ شیشہ و جام لاکر تمام ایک دن

میکدے کی نگاہوں میں گستاخ ہیں میکدے کو کرینگے سلام ایک دن

اس گراں قیدِ زنجیر و دیوار سے پاؤں کھلنے تو دو سر اٹھانے تو دو

دیکھنا تم کہ دروازۂ عقل پر نقش ہوگا ہمارا ابھی نام ایک دن

کام آنکھوں کا جاری ہے جاری رہے زخم کاری یونہی زخم کاری رہے

دیپ سے دیپ اگر یوں ہی جلتا رہا صبح بنجائیگی گھر کی شام ایک دن

ایک اک تارِ موجِ نظر ہے کہ اب جیسے تغّن کی شعاعوں سے زنجیر ہے

خطِ رنگِ نگہ بن گیا تھا ندا، خنجرِ قوسِ ابروئے بام ایک دن

انکی قسمت کا بھی ابر اُٹھے گا کبھی یہ بھی ہونگے صف آرائے بالیدگی

یہ دبے سبزہ و خس یہ سوکھے شجر روک دینگے صبا کا خرام ایک دن

فرض کا جبر کوچہ بہ کوچہ لئے جا رہا ہے ہمیں پا بجولاں کئے

اتنی مہلت نہیں ہے کہ اب ہم کہیں زیرِ دیوار کرلیں قیام ایک دن

غزل

شاہد عشقی

دل میں عشق کی آگ ہے سر میں سودا پری جمالوں کا
اپنی سمجھ میں آج آیا ہے بن بن پھرنا غزالوں کا

خضر سا رہبر شہرِ بتاں میں کس کے کام آ سکتا ہے
عہدِ جوانی میں مر جانا شیوہ ہے دل والوں کا

جب بھی کسی کی یاد آتی ہے شوق سوا ہو جاتا ہے
جیسے سحر کے ہوتے ہوتے پھیلے رنگ اجالوں کا

لے شبِ فرقت بھی کاٹ آئے بازی دل بھی ہار چکے
آج حساب چکاتے ہیں ہم سارے گذشتہ سالوں کا

یہ بے خواب نگاہیں تیری یہ ویراں ویراں چہرہ
کس کے پاس جواب ہے عشقی ان خاموش سوالوں کا

٭

مشتاق مبارک

جینے دیا نہ کچھ تو غمِ روزگار نے
کچھ کاروانِ زیست کے گرد و غبار نے

چاہا ہزار پھر بھی نہ اٹھنے دیے قدم
منزل رسی کے جذبۂ بے اختیار نے

دل کو نشاطِ غم کا بھی محرم بنا دیا
حیرت بدوش عشرتِ ناپائیدار نے

کیا کیا دیے فریب عروج و کمال کے
نوعِ بشر کو منزلتِ مستعار نے

ہونے دیا نہ باخبرِ کیفِ زندگی
مجھ کو مرے مزاجِ حوادث شعار نے

اس رقصِ رنگ و بو کا بھی انجام ہو بخیر
صحنِ چمن میں آگ لگا دی بہار نے

شایانِ تخت و تاجِ نیابت بنا دیا
انساں کو دانشِ مہ و انجم شکار نے

شیرازۂ حیات کو یک جان کر دیا
اس زلفِ مشکبو کے حسیں انتشار نے

اس نوبہارِ ناز سے وابستگی کے بعد
رکھا نہ پھر کہیں کا دلِ بیقرار نے

حاصل ہوا نہ مل کے بھی ان سے تمام عمر
وہ لطف جو دیا خلشِ انتظار نے

ہم اپنے دل کی بات کو ہرگز نہ مانتے
مجبور کر دیا نگہِ شرمسار نے

وہ بھی یہ کہہ رہے ہیں کہ دوچند کر دیا
رودادِ دردِ دل کا مزا اختصار نے

رپورتاژ:

یہ دِن، یہ راتیں

انور

کراچی کے دن رات کے بارے میں سب سے بڑی حقیقت جو دنیا کے ہر جغرافیہ دان کو جاننی چاہیئے یہ ہے کہ کراچی میں دن رات نہیں ہوتے۔ خطِ استوا پہ دن رات برابر ہوتے ہیں۔ قطب شمالی اور قطب جنوبی میں دن رات چھ چھ مہینے کے ہوتے ہیں اور کراچی میں دن رات بالکل نہیں ہوتے۔ کراچی میں صرف کراچی ہوتی ہے، صدر ہوتا ہے، لالوکھیت ہوتا ہے، کلفٹن ہوتی ہے، لیاری کالونی ہوتی ہے۔ اور اگر جغرافیئے کی زبان میں بات کرنا بہت ضروری ہے۔ تو یہ کہنا چاہیئے کہ کراچی میں صرف دن ہوتا ہے یا صرف رات۔

لیکن مجھے بتا دیا گیا کہ اپنی اس ریڈیائی تقریر میں مجھے کراچی کا نیا جغرافیہ بیان نہیں کرنا، بلکہ کراچی کی ان ادبی اور ثقافتی سرگرمیوں کا ذکر کرنا ہے جو پچھلے دو ہفتوں میں دن کے وقت اور رات کے وقت کراچی میں وقوع پذیر ہوئیں یعنی ریڈیو جغرافیائی زبان میں مجھے کراچی کے ادبی اور ثقافتی موسم کا حال بیان کرنا ہے۔

اب میں کراچی کی ادبی اور ثقافتی سرگرمیوں کی تلاش میں سرگرداں ہوں۔ خدا کا شکر ہے کہ ادبی اور ثقافتی سرگرمیاں کہیں نظر نہیں آتیں اور مجھے فرصت ہی فرصت ہے۔ لوگوں کو ادبی اور ثقافتی سرگرمیوں کی فرصت نہیں، وہ سب عید کی تیاریوں میں مصروف ہیں۔ کلرک اپنے محکمے کے افسروں سے تنخواہوں کے ایڈوانس مانگ رہے ہیں، ان کی بیگمات بندر روڈ کے بزازوں کی دکانوں سے ساڑھیاں خرید رہی ہیں، ان کے بچے صدر میں ٹیڈی ٹیلرز سے ٹرپاٹپ پتلونیں اور کمسن کے فراک سلوانے کے لئے اصرار کر رہے ہیں اور ان کے ماں باپ خفا ہو کر کہہ رہے ہیں، نہیں نہیں، یہ بے شرمی ہے، یہ عریانی ہے، یہ لباس ہماری تہذیب اور ہماری ثقافت کے خلاف ہے۔

گویا غیر ثقافتی سرگرمیاں جاری ہیں۔ وہ غائب نہیں ہو گئیں وہ اپنی جگہ پر موجود ہیں، تو پھر ثقافتی سرگرمیاں بھی یہیں کہیں ہوں گی۔ ثقافت تو ایک دریا ہے۔ اس دریا کو کون روک سکتا ہے۔ اس کو تھیٹروں اور ہالوں کے دروازوں میں بند نہیں رکھا جا سکتا۔ ثقافت تو ہماری سڑکوں پہ، ہماری مسجدوں میں، ہمارے لباسوں میں، ہماری باتوں میں، ہمارے سحری اور افطاری کے ساز و سامان میں، ہر جگہ، ہر مقام پر موجود ہے۔ اور عید ہماری ثقافت کا ایک عظیم الشان مظاہرہ ہے۔

بندر روڈ انسانوں کا ایک بہت بڑا دریا بن گیا ہے، اور صدر انسانوں کا ٹھاٹھیں مارتا ہوا سمندر۔ یہ بے پناہ ہجوم عید کے استقبال کی تیاریاں کر رہا ہے۔ یہ عقیدتمند لوگ ایک مہینے میں اپنا سب کچھ خرچ کر کے گیارہ مہینے اپنا قرضہ اتارتے رہیں گے۔ پہلے زمانے کے لوگ گیارہ مہینے کما کر ایک مہینے میں خرچ کرتے تھے۔ لیکن اب پہلا زمانہ کہاں ہے؟ پہلے اتنی مہنگائی کہاں تھی؟

اب عید کا چاند نظر آ گیا ہے، ہولڈروں نے عید کا اعلان کر دیا ہے۔

عید کی خرید و فروخت رمضان کے آغاز سے ہی جاری تھی لیکن عید گاہ میں میں نے دیکھا کہ جناح کیپ صرف چند ایک کے سروں پر تھی، باقی سب اپنے سروں پر رومال باندھے ہوئے نماز پڑھ رہے تھے۔ شارک سکن کی شیروانی کسی کسی نے پہنی ہوئی تھی۔ زیادہ تر نمازی صاف ستھرے معمولی کپڑوں میں ملبوس تھے۔ ہاں مہنگائی ناقابلِ برداشت ہے۔

عید کی نماز کے اختتام پر میرے ایک دوست نے مجھ سے بغلگیر ہونے کے بعد مجھے اپنی پان کی ڈبیہ کھول کر پان پیش کیا، اور ایک قرمزی رنگ مخمل کے بٹوے میں جس پر گوٹے سے گلکاریاں

کی ہوئی تھیں، چھالیہ اور جبا کو میری طرف بڑھائے۔

میں نے کہا: "شکریہ، میں پان نہیں کھاتا۔"

میرے دوست نے جواب دیا: "میں جانتا ہوں، تم پان نہیں کھاتے لیکن میں تمہیں یہ دکھانا چاہتا ہوں کہ یہ چاندی کی ڈبیہ اور یہ مخمل کا بٹوا مجھے میری بہن نے تحفے کے طور پر دئے ہیں۔"

میں نے ان تحفوں کی بہت تعریف کی لیکن اس کے بعد کہا:

"یہ بڑے خطرناک تحفے ہیں۔ اب تم پہلے سے بھی زیادہ پان کھاؤ گے اور عالم حیوانات کے ایک معزز رکن بن کر سارا سارا دن جگالی کرو گے۔"

میرے دوست نے کسی قدر ناراض ہو کر کہا:

"یہ تمہاری بڑی بد اخلاقی ہے جو تم میری بہن کے تحفوں پر اس قسم کے خیالات کا اظہار کر رہے ہو۔" میں نے کہا،

"مجھے تحفوں پر کوئی اعتراض نہیں، میں صرف یہ چاہتا ہوں کہ تمہاری بہن ان تحفوں کے ساتھ تمہیں ایک پیک دان بھی تحفے میں دیتی۔ پیک دان بھی میں نے اخلاقاً کہا ہے، ورنہ میں اگالدان کہتا۔"

اس پر چڑ کر میرے دوست نے پان کے موضوع پر ایک مکمل تقریر عنایت کر دی، جس میں اس نے یہ ثابت کرنے کی کوشش کی کہ پان کے پیچھے ہمارا ایک مکمل معاشرہ، ایک مکمل تہذیب اور ایک مکمل ثقافت پنہاں ہے۔ پان ہمارے معاشرے کے نچلے سے نچلے طبقے سے لے کر اونچے سے اونچے طبقے کی نمائندگی کرتا ہے۔ میرے دوست نے پانوں کی قسموں اور پاندانوں اور پان کی طشتریوں اور پان پیش کرنے کے اندازوں اور معنوں اور پانوں کے متعلق تمام محاوروں پر ایک سیر حاصل تبصرہ کیا، حتیٰ کہ ہم پولو گراؤنڈ سے چلتے چلتے آرام باغ پہنچ گئے اور میں نے اپنے دوست کی بات کاٹتے ہوئے کہا:

"آؤ دہی بڑے کھائیں۔"

میرے دوست نے جواب دیا:

"نہیں، شکریہ، میں پان کھا رہا ہوں۔ اور اب تمہیں یہ بھی معلوم ہو گیا ہوگا کہ پان ہم کو دوسری گندی چیزیں کھانے سے بھی بچاتا ہے۔"

میں نے کہا:

"یہ دہی بڑے گندے نہیں ہیں۔ یہ دہی بڑے والا بریلی کا ہے۔ اس کا خاندان سات پشتوں سے دہی بڑے بنا رہا ہے۔ ان دہی بڑوں کے پیچھے اس کے خاندان کی پوری تاریخ، پوری تہذیب اور پوری ثقافت ہے۔"

میرے دوست نے کہا:

"اچھا ہم اس کے دہی بڑے چکھیں گے۔"

اور اس نے اپنا پان دہی بڑے کی دکان کے سامنے اگل دیا اور ہم دہی بڑے کھانے میں مشغول ہو گئے۔ دہی بڑے کھاتے ہوئے میں نے کہا:

"مجھے پان کی ثقافتی اہمیت سے انکار نہیں لیکن میں صرف یہ چاہتا ہوں کہ لوگ پان کی ڈبیہ اور چھالیہ کے بٹوے کے ساتھ پیک دان بھی اٹھائے پھریں۔ اب تمہارے پاس پان کی ڈبیہ ہے، چھالیہ کا بٹوا ہے، لیکن پیک دان نہیں ہے۔ اس لئے تم میرے دفتر کو پیک دان کے طور پر استعمال کرتے ہو۔ تم میرے دفتر کو پیک دان کے طور پر استعمال کر سکتے ہو کیونکہ میرا دفتر پیک دان کے سائز کا ہے، لیکن لوگوں نے تو اس آرٹ میں بہت ترقی کر لی ہے اور وہ حبیب سکوئر کو پیک دان کے طور پر استعمال کرتے ہیں۔ اور اگر ترقی کی رفتار یہی رہی تو کراچی ایک دن ایک بڑا سا پیک دان بن جائے گی۔"

دیکھئے ثقافتی پروگراموں کے فقدان کے باوجود کراچی کے پچھلے دو ہفتوں میں ثقافت کتنی سرگرمِ کار تھی۔

ادبی آب و ہوا بڑی خشک رہی۔ صرف "حلقۂ اربابِ ذوق" بادِ صرصر میں کھجور کے درخت کی طرح اپنی زندگی کا ثبوت دیتا رہا، لیکن "حلقۂ اربابِ ذوق" "قصۂ چہار درویش" بنا ہوا ہے۔ چار درویش حمید نسیم، ضیا جالندھری، صہبا اختر اور سمیع آہوجہ۔ دو اتوار ان کے ساتھ گذارے۔ ان کے ساتھ ان کے تین چار حلقہ بگوش بھی تھے۔ پہلے اتوار کو مجھے اجلاس کا صدر بنا کے بٹھا دیا گیا کہ میں بھاگ نہ جاؤں۔ امین الرحمٰن نے ایک مقالہ پڑھا جس کا عنوان مصوری میں کلاسیکیت تھا۔ محنت سے لکھی ہوئی ریسرچ کی چیز تھی جس کے بارے میں ضمیر بدایونی نے کہا کہ یہ مصوری کی تاریخ ہے، کلاسیکیت نہیں۔ اور سلیم گیلانی نے کہا: جہاں تک اس مقالے میں مصوری کے یونانی حصے کا تعلق ہے تو تین سو میں قبل مسیح میں جب سکندرِ اعظم نے ہندوستان پر حملہ کیا ہے یہاں باختری خاندان کی حکومت قائم ہوئی۔ ابھی حال ہی میں محکمۂ آثارِ قدیمہ نے کھدائی کے ذریعے

باختری شہروں کے کھنڈرات برآمد کئے ہیں۔ ان کھنڈرات سے جو پتھر اور کتبے حاصل کئے گئے ہیں ان کے مطالعے سے یہ ثابت ہوتا ہے کہ یونانیوں کے گھوڑے بڑے قدآور تھے اور ان کے سم بڑے بڑے تھے لیکن ان سے یونانی مصوری کا کوئی پتہ نہیں ملتا۔ اس کے برعکس یہ بات پایۂ ثبوت تک پہنچ گئی ہے کہ یونانی مصوری کا سرے سے کوئی وجود ہی نہیں تھا۔ اس تنقید پر صدر نے بحث کو ختم کر دیا اور چونکہ اس کے بعد پروگرام کے مطابق سلیم احمد کو غزل پڑھنی تھی اور وہ غیر حاضر تھے، اس لئے اجلاس برخاست کر دیا گیا۔

حلقۂ اربابِ ذوق کے دوسرے اتوار کا اجلاس بھی قصۂ چہار درویش تھا۔ صدارت منظور رضیائی کی تھی۔ پروگرام کے مطابق حمید نسیم کو مقالہ پڑھنا تھا۔ انہوں نے معذرت کا اظہار کیا، ان کو معذور سمجھ لیا گیا۔ غزل گو صاحب تشریف نہیں لائے تھے۔ افسر آذر نے ایک لمبا افسانہ (خیال رہے کہ میں نے لمبا افسانہ کہا ہے، طویل افسانہ نہیں) پڑھا۔ تنقید کے وقفے میں صہبا اختر نے اس کو اور بھی لمبا کر دیا۔ اور حمید نسیم نے اس کو کھینچ تان کے اس سے بھی زیادہ لمبا کر دیا اور جب میں نے اس کے بارے میں کچھ کہا تو کوئی بھی نہ سمجھا کہ میں تنقید کر رہا ہوں یا پتنگ اڑا رہا ہوں۔ اس لئے اجلاس برخاست کر دیا گیا۔

حلقۂ اربابِ ذوق اور اربابِ حلقہ اربابِ ذوق مبارکباد کے قابل ہیں کہ نامساعد حالات کے باوجود وہ اپنی ادبی سرگرمیوں میں سرِ مو فرق نہیں آنے دیتے۔ ان کی تاریخ میں ایسے دنوں کی کمی نہیں جب حلقۂ اربابِ ذوق کا سیکرٹری خالی کرسیوں کے درمیان بیٹھا ہوا جلسے کی کارروائی لکھ رہا ہے، جب وہ خود ہی جلسے کا صدر، خود ہی سیکرٹری اور خود ہی سامعین ہوتا ہے۔ اب معلوم ہوا ہے کہ حلقۂ اربابِ ذوق کی ادارت میں ایک ادبی رسالہ بھی جاری ہونے والا ہے۔ یہ حلقے کی ادبی خدمات اور اولوالعزمی کا واضح ثبوت ہے۔

ان ہی دنوں میں ادب کے ایک غیر مانوس گوشے سے ایک انوکھی آواز اٹھی، بچوں کا ادب۔ یہ امریکہ کے ایک اخبار "واشنگٹن پوسٹ" کی طرف سے تنظیم دی ہوئی بچوں کے لئے لکھی ہوئی انگریزی کتابوں کی نمائش تھی۔ جو ۱۱ فروری سے ۲۰ فروری تک آرٹ کونسل میں منعقد ہوئی۔

اگرچہ اس نمائش کا تعلق براہِ راست ہمارے ادب سے نہیں تھا لیکن پاک امریکن کلچرل سنٹر نے اس نمائش کے ساتھ ساتھ انگریزی اور اردو میں مذاکروں کا اہتمام کیا تھا جس میں اردو اور بنگالی میں بچوں کا ادب پیدا کرنے والے ادیبوں کو بھی مدعو کیا گیا تھا۔ اس طرح یہ نمائش ہمارے لئے ایک مخصوص دلچسپی کی حامل ہو گئی تھی۔

مذاکرے دو زبانوں میں تھے، انگریزی میں اور اردو میں۔ انگریزی کا مذاکرہ ۱۶ فروری کو تھا اور اس کی صدارت کے لئے ڈھاکہ گورنمنٹ کالج کے پروفیسر اشرف صدیقی کو بلایا گیا تھا۔ پروفیسر اشرف صدیقی نے بچوں کے لئے بنگالی اور انگریزی میں متعدد عوامی کہانیاں لکھی ہیں۔ اس مذاکرے میں دوسرے حصہ لینے والے مسٹر ضیا جالندھری تھے۔ اور مسٹر غلام عباس جنہوں نے FOLK TALES OF PAKISTAN. لکھی ہے۔ مسز بینکر پاک امریکن کلچرل سنٹر کی ڈائرکٹر بھی موجود تھیں۔

مذاکرے کا آغاز پروفیسر اشرف صدیقی نے کیا۔ انہوں نے عوامی کہانیوں کی تاریخ اور فلسفے پر روشنی ڈالی اور جب مسز بینکر نے ان کی تقریر کے دوران میں ان کو یاد دلایا کہ انہیں یہ بھی بتانا ہے کہ عوامی کہانیاں بچوں کے لئے دوبارہ کس طرح لکھی جا سکتی ہیں تو ان کا موضوع بچوں کے ادب پر آ گیا۔ ضیا جالندھری اس دوران میں مذاکرے کے کنوینر کے فرائض انجام دے رہے تھے، اور بنگالی اور انگریزی ادب کے مقرروں میں اردو ادب کے نمائندے کی حیثیت رکھتے تھے۔

پروفیسر اشرف صدیقی کے بعد مسٹر غلام عباس نے اپنے خیالات کا اظہار کیا اور پھر ایک عام بحث چھڑ گئی جس میں ایڈوکیٹ عنایت علی اور انور نے بھی حصہ لیا۔

اس بحث میں یہ بات سامنے آئی کہ جس طرح انگریزی میں بچوں کے لئے اچھی اچھی کتابیں لکھی گئی ہیں اسی طرح اردو اور بنگالی میں بھی بچوں کے لئے کتابیں لکھی جانی چاہئیں۔

دوسرا مذاکرہ ۱۸ فروری کو اردو میں شاہد احمد دہلوی کی صدارت میں ہوا۔ اس میں ابوالاثر حفیظ جالندھری، ڈاکٹر منظور النسا صدیقی اور ابن انشا نے حصہ لیا۔

اس مذاکرے میں بھی بڑی بڑی لمبی چوڑی بحثوں کے بعد

یہ طے ہوا کہ ہمیں بھی انگریزی کی طرح اردو میں بچوں کا ادب پیدا کرنا چاہیئے۔

اس سلسلے میں ڈاکٹر منظور النساء صدیقی نے بچوں کے ادب کے بارے میں بڑی سیر حاصل تقریر کی۔ تقریر جب ذرا لمبی ہو گئی تو حفیظ جالندھری، طفیل جمالی، میرزا ابن الحسن اور راقم ایک دوسرے سے مخاطب ہو کر بچوں کے ادب کے ان نکات کے بارے میں باتیں کرنے لگے جو ڈاکٹر منظور النساء صدیقی چھوڑ گئی تھیں یا جو بحث طلب تھے۔ اس پر ایک صاحب بگڑ گئے اور کھڑے ہو کر بولے: "صاحبِ صدر، بڑی اہم تقریر ہو رہی ہے۔ لیکن کچھ صاحب تقریر کو خاموشی سے سننے کی بجائے آپس میں باتیں کر رہے ہیں اور جلسے میں خلل ڈالنے کی کوشش کر رہے ہیں۔ میں درخواست کرتا ہوں کہ یا تو ان کو خاموش رہنے کے لئے کہا جائے یا پھر ان کو جلسے سے باہر نکال دیا جائے۔" شاہد احمد دہلوی نے ہماری طرف دیکھتے ہوئے بے بسی سے کہا: "آپ سے درخواست ہے کہ آپ خاموشی سے تقریر سنیں۔" اس پر حفیظ جالندھری ہم میں سے اٹھ کر مائکروفون پر چلے گئے اور منظور النساء صدیقی سے بولے: "بیٹی، میں بات کروں گا۔" اور سامعین سے مخاطب ہو کر بولے "پیارے، کتابیں چھاپنے کے لئے روپیہ چاہیئے۔ روپیہ کہاں سے آئے گا؟" اس پر ایک صاحب غضبناک ہو کر اٹھ کھڑے ہوئے اور بولے: "صاحبِ صدر، یہ کون ہے جو ہم میں سے اٹھ کر آپ کی اجازت کے بغیر مائکروفون پر بولنے لگا ہے۔ میں آپ سے درخواست کرتا ہوں کہ اس کو کہا جائے کہ وہ اپنی جگہ پر آ کر بیٹھ جائے اور مائکروفون ڈاکٹر صدیقی کو دے۔"

صاحبِ صدر نے جواب دیا: "مجھے حیرت ہے آپ ان کو نہیں جانتے۔"

ان صاحب نے کہا: "جی ہاں۔ میں انہیں نہیں جانتا، یہ کون ہیں؟"

صاحبِ صدر نے کہا: "یہ ابوالاثر حفیظ جالندھری ہیں، ان کو اس مذاکرے میں حصہ لینے کے لئے مدعو کیا گیا ہے۔"

بعد میں جب جلسہ برخاست ہو گیا تو شاہد احمد دہلوی نے حفیظ جالندھری سے کہا:

"حفیظ صاحب، یہ دیکھ کر بہت خوشی ہوئی کہ ایسے بھی ہیں جو آپ کو نہیں جانتے"۔

(بشکریہ ریڈیو پاکستان۔ کراچی)

"ماہِ نو" میں مضامین کی اشاعت سے متعلق شرائط

۱۔ "ماہِ نو" میں شائع شدہ مضامین کا معقول معاوضہ دیا جائے گا جس کے بعد وہ ادارہ کی ملکیت ہوں گے اور وہ انہیں حسبِ منشا ہر طور سے استعمال کرنے کا مجاز ہوگا۔

۲۔ مضامین بھیجتے وقت مضمون نگار حضرات "ماہِ نو" کے معیار کا خیال رکھیں اور یہ بھی تحریر فرمائیں کہ مضمون غیر مطبوعہ ہے اور اشاعت کے لئے کسی اور رسالہ یا اخبار کو نہیں بھیجا گیا ہے۔

۳۔ ترجمہ یا تلخیص کی صورت میں اصل مصنف کا نام اور دیگر حوالہ جات دینا ضروری ہیں۔

۴۔ ضروری نہیں کہ مضمون موصول ہوتے ہی شائع ہو جائے۔

۵۔ مضمون کے ناقابلِ اشاعت ہونے کے بارے میں ایڈیٹر کا فیصلہ قطعی ہوگا۔

۶۔ ایڈیٹر کو مسودات میں ترمیم و تنسیخ کرنے کا مجاز ہوگا مگر اصل خیال میں کوئی تبدیلی نہ ہوگی۔

۷۔ مضامین صاف اور خوش خط کاغذ کے ایک طرف تحریر کئے جائیں۔ ۸۔ پتہ بہت صاف اور مکمل درج کیجئے۔

۹۔ اپنے مضامین نظم و نثر کی نقول اپنے پاس بھی رکھئے۔ غیر طلبیدہ اور ناقابلِ اشاعت مضامین کی واپسی کے لئے ڈاک کے مناسب ٹکٹ روانہ کیجئے۔

(ادارہ)

افسانہ:-

بَدّل

ابو سعید قریشی

چَنّن اونٹوں کی بلبلاہٹوں اور جانگلیوں کے قہقہوں
سے گونج اٹھا
بیروں کی بجائے بیلے کی جھاڑیوں میں جیسے گھنگھرو
جھوم رہے تھے کھجوروں کے جھنڈوں میں گھوڑوں کی
ہنہناہٹیں جاگ اٹھیں۔ یوں لگ رہا تھا جیسے
میلہ لگا ہو۔

جب فصلیں کٹ چکتیں۔ کوٹھے بھر جاتے اور فاضل اناج منڈیوں میں پہنچ جاتا۔ زمینداروں، کسانوں، مزارعوں، اور کمینوں کو آئندہ فصل کی تیاری تک کوئی کام نہ ہوتا، دن دریا کے پاٹ کی طرح پھیل جاتے اور وقت کاٹے نہ کٹتا تو ہر سال یہی ہوا کرتا۔ مجرے، عشق، اغوا، قتل، ڈاکے، گھڑ دوڑ، نیزہ بازی۔ مینڈھوں کی لڑائی، بیلوں کی دوڑ...... اور بَدّل (بادل) اور بجلی کا دنگل۔

دیگوں کے منہ کھل جاتے اور کمی، کارندے مزارعے اور چھوٹے موٹے زمیندار دو دو تین تین دن سیدوں کے مہمان ہوتے۔

بَدّل تے بجلی دی کشتی! ..... بجلی اور بادل کا دنگل! ....

ڈاچی سوار کئی کئی دن پہلے مربعوں میں گھوم جاتا۔ سیدوں کی رعایا کے لئے گویا یہ حاضری کا حکم ہوتا۔ جھوک جھوک کے لوگ گھروں سے نکل کھڑے ہوتے اور کشتی کے دن ایک ایک کے بارے میں پوچھا جاتا کہ کون کہاں ہے۔ سید فضل شاہ کے بجلی اور رمضانی قلندر کے بدل کا جوڑ سو کام کا ایک کام تھا۔

بَدّل کے بارے میں مشہور تھا کہ جب وہ اکھاڑے میں اترتا ہے تو افق آنکھ سے اوجھل ہو جاتا ہے جیسے شاہ کی آندھی ہو جیسے، کالا بگولا....

رمضانی کو سال بھر اس دن کا انتظار رہتا۔ اس کو معلوم تھا کہ بدل جیتے یا ہارے میرے پانچ سو کھرے ہیں۔ جیتے تو بدل کا حق

ہارے تو سرکار کی طرف سے بخشش۔ برابر رہے تو حوصلہ افزائی اور سال بھر کے لئے چارے کی زمین الگ۔

لوگ بدل سے اسی طرح آشنا تھے جس طرح دریا کی باڑھ سے، جو ان کو ہر سال نئی مٹی دے جاتی تھی۔ رمضانی اسے کالا آم کے جنگلوں سے پکڑ کر لایا تھا لیکن اس کا بچپن کسی کو یاد نہیں تھا۔ کھجوروں کے جھنڈ اور جھنڈ کی چھاؤں میں نیلی محرابوں والے مقبرے کی طرح جس کے بارے میں کسی کو معلوم نہیں تھا کہ وہاں کون دفن ہے، لیکن اس کے باوجود وہ وہاں موجود تھا۔ بدل بھی علاقہ کی زندگی کا ایک ضروری جزو تھا ـــ اس سے آگے سوچنے کی ضرورت نہیں تھی۔ اس کا ڈولتا ہوا سایہ۔ جیسے پہاڑ ڈول رہا ہو۔ نوگزے پیر کے عرس، کوڑی شاہ کے میلے اور جھوک جھوک میں دیکھا گیا تھا۔

اس کی تھوتنی پر چمڑے کا پٹا چڑھا ہوا ہوتا۔ وہ طرح طرح کے تماشے دکھاتا، سنی بادشاہوں کو سلام کرتا، بچے اس کی سواری کیا کرتے اور قلندر کی جھولی پیسوں سے جھنجھنا اٹھتی۔ کچھ لوگوں کا خیال تھا کہ قلندر اسے ضرور افیم کھلاتا ہے اور اس کی ڈاڑھیں نہیں ہیں۔ لیکن ان لوگوں نے اس کو اکھاڑے میں نہیں دیکھا تھا۔

اس کے پاؤں بڑے بڑے تھے۔ ناخن سلامت تھے۔ اور ان پر جھریاں اتری ہوئی تھیں۔ یہ جھریاں اس کی عمر کا پتہ دیتی تھیں۔ لیکن وہ کتنے سال کا تھا یہ بھید قلندر ہی جانتا تھا۔ اس بارے میں زیادہ کریدنے پر وہ ہمیشہ ہنس دیتا: "جھریوں کا کیا ہے اصل بات تو یہ ہے کہ جان کتنی ہے کس میں۔"

بَدّل کے بال کالے اور لمبے تھے اور اس کی جلد کو تارے میرے کے تیل کی مالش نے صحت مند رکھا تھا۔ لیکن اس کے بدن کی بو سے پھر بھی جانوروں میں کھلبلی مچ جاتی۔ کھونٹوں سے بندھے ہوئے ڈھور ڈنگر سموں سے زمین کھودنے لگتے۔ بھیڑوں کے ریوڑ میں

اور بڑے بڑے آجڑی (ریوڑ کے رکھوالے) شکاری اور پھلکے کتے دم دبائے کان سمٹائے تھر تھر کانپنے لگتے۔ ان کے کٹے ہوئے کان پھوٹی ہوئی آنکھیں اور بدن پر ناخنوں کے نشان اس بات کا ثبوت تھے کہ بجلی سے الجھنے کا کیا نتیجہ ہو سکتا ہے۔ بجلی کے علاوہ کوئی اس کے مقابلہ میں نہیں ٹھہر سکتا تھا۔

بجلی کو زمیندار نے اس دن دریافت کیا تھا جب ڈاچی پہ بیٹھا وہ اپنے شکاری کتوں کو ہرن کے پیچھے لپکتا ہوا دیکھ رہا تھا۔ اسے رہ رہ کر غصہ آ رہا تھا کہ کم ہونے کی بجائے ہرن اور کتوں کا فاصلہ ہر آن بڑھتا ہی جا رہا تھا۔ قریب تھا کہ ہرن جنگل میں غائب ہو جاتا۔ اتنے میں ہانکے کی آوازوں کو دباتی ہوئی ایک اور آواز آئی "شاباش بجلی"! اور اس کے ساتھ ہی ایک سفید سی لہر کتوں کو پیچھے چھوڑتی ہوئی ہرن کی طرف لپکی اور کمند کی طرح اس کے گرد لپٹ گئی۔ ہرن لڑکھڑایا، گرا، پھر اٹھا لیکن بجلی اس کے سامنے دیوار بن کر کھڑا تھا۔ اس کے پیچھے فضل شاہ کے شکاری کتے تھے اور ادھر ادھر ڈاچی سوار اور ہانکا دینے والے۔ اتنے میں ایک کمند لہرائی اور وحشی یوں بندھا چلا آیا جیسے آزادی سے آشنا ہی نہیں تھا۔ بجلی ایک خانہ بدوش ساہنسی کا کتا نکلا جو تماشہ دیکھنے کے لئے شکاریوں کے ساتھ چلا آیا تھا اور "شاباش بجلی" کی آواز جو دوسری آوازوں پر چھا گئی تھی، اسی خانہ بدوش کی آواز تھی۔ "اور کمند بھی! کیوں او نے جوان۔ کتا وکاؤ اے؟" ساہنسی نے اتنے بڑے زمیندار کو جو درجن بھر کتوں اور سوا سو میوں کے ساتھ ہرن کا شکار کر رہا تھا، پہلی بار اتنا قریب سے دیکھا تھا۔ وہ گھبرا گیا اور ادھر ادھر دیکھنے لگا۔ جیسے بات نہیں سمجھ سکا۔ لیکن جب اسے معلوم ہوا کہ سائیں (آقا) یہ پوچھ رہا ہے کہ کتا بکاؤ ہے؟ تو ہاتھ باندھ کر کھڑا ہو گیا اور بولا کہ حضور آپ ہی کا ہے۔ بجلی کا قد عام کتوں سے قدرے چھوٹا تھا۔ کمال سفید جس میں کہیں کہیں ایک سنہری لکیر چھلک کر غائب ہو جاتی۔ خانہ بدوش نے بتایا کہ وہ بھیڑیے کی نژاد تھی۔ بجلی اپنے مالک کو دور چیلے کی جھاڑیوں میں ملا تھا جہاں کبھی کبھی دن کے وقت بھی بھیڑیئے دکھائی دے جاتے تھے۔ اس لئے یہ قرین قیاس تھا کہ اس کا باپ بھیڑیا ہی تھا۔ اور بجلی کا منہ تو بالکل بھیڑیئے کا منہ تھا۔

"یہ ریچھ کے ساتھ لڑے گا؟" فضل شاہ نے کتے کے مالک سے پوچھا۔

"ریچھ تے کائی شئے ہی ناہیں۔ شینہ نال سائیں!" — ریچھ تو کوئی شئے ہی نہیں تھا بجلی شیر سے بھی لڑ سکتا تھا۔ لیکن جب زمیندار نے بجلی کے عوض چار کلّے زمین کی پیشکش کی تو کتے کے مالک نے یہ کہہ کر قبول کرنے سے انکار کر دیا کہ کتا اور باز تو شوق کی باتیں ہوتی ہیں۔ آپ کو پسند آیا ہم نے دے دیا۔ رہی زمین تو نگولوں نے بھی کہیں گھر بنایا ہے۔ ہوا بھی کہیں بندھی ہے۔

اور آج لوگ دور دور سے پھر بجلی اور بادل جوڑ دیکھنے آ رہے تھے۔ بے کار وقت کاٹنے کا ایک اور بہانہ۔ کبڈی اور پنجہ آزمائی کی طرح۔

میدان کا سورج سوا نیزے پر آ گیا۔ اکھاڑے میں ریت کے ذرے چمکنے لگے۔ تماشائیوں کی ٹولیاں بٹ گئیں۔ ڈھول کی آواز قریب آ گئی اور قلندر کے پیچھے پیچھے بچوں، بوڑھوں اور نوجوانوں کا جلوس ریچھ کو لئے اکھاڑے کی طرف بڑھا۔

تماشائی پیچھے پیچھے ہٹ گئے۔ رمضانی قلندر کا قول تھا کہ انسان سمیت کسی جانور کا بھروسہ نہیں کون جانے کس وقت کیا کر بیٹھے۔

ڈھول کی آواز پھر گونجی اور زمیندار لال اور فیروزی رنگ کا لاچہ۔ زری کا کھوسہ اور سونے کے بٹنوں والا ریشمی کرتہ پہنے اپنے خاص کارندوں کے ساتھ آتا ہوا دکھائی دیا۔ اس کی پگڑی کا طرہ بجلی کے کانوں کی طرح کھڑا تھا۔ اس نے اپنی آستینیں الٹ رکھی تھیں اور اس کی فیروزہ جڑی انگوٹھی کے گرد گندھی ہوئی چرمی رسی لپٹی ہوئی تھی جس کے آگے آگے بجلی یوں نظر آ رہا تھا جیسے کمان کی باہوں سے نکلا ہوا تیر۔ گرنے سے بچنے کے لئے زمیندار پیچھے کی طرف جھکا ہوا تھا اور اس کے قدم یوں زمین پر پڑ رہے تھے جیسے آدمی اور جانور میں رسہ کشی ہو رہی تھی۔

ہجوم چپ ہو گیا۔ گردنیں جھک گئیں اور سینکڑوں ہاتھ سائیں کی سلامی کو اٹھے۔ زمیندار نے اپنی رعیت پر ایک پھیلی ہوئی نگاہ ڈالی۔ اکھاڑے کی دوسری طرف رمضانی قلندر نے زمین کو چھوا اور مالک کو دعا دی۔

"کیوں اوئے قلندر! ریچھ تیار اے......" زمیندار نے مونچھوں میں گندھا ہوا سوال رمضانی کی طرف پھینکا۔

"تباسے جو سائیں۔ نوکر کس کا ہے رمضانی بھی اور ریچھ بھی کمانے کس کا ہیں موتیوں والی سرکار"

"پر ریچھ کے جتنے کا آپ ہی تو نہیں کھا گیا" زمیندار نے کہا:

"بھا ہوا سائیں جو ٹھا جاوڑ" قلندر نے ہاتھ باندھ کر جواب دیا

"کوڈ پایا کھیندا اے... خدائی دا تپھتے لیتا بیا دِسوا اے کمزور تھی گیا اے۔"

رمضانی نے بتایا کہ اگر ریچھ زیادہ موٹا ہو جائے تو لڑنے کے قابل نہیں رہتا۔ اس کی ساری پھرتی ختم ہو جاتی ہے۔

زمیندار نے اپنی مونچھوں کو تاؤ دیا اور مسکرایا۔ اسے معلوم تھا کہ دنگل سے پہلے سدھے ہوئے جانوروں کی تندی کو خاص خاص ترکیبوں سے ابھارا جاتا ہے۔

ڈھول کی کھال پر تھپیاں پھر ناچ اٹھیں۔ تماشائیوں کا حلقہ پھیل گیا۔ قلندر نے بدل کے منہ سے چمڑے کا فیتہ کھول دیا۔ ریچھ نے جماہی لی اور جیسے دور کہیں بادل سا گرج اٹھا۔ اس کی ٹوٹی ہوئی داڑھیں اور دانت کیلوں کی طرح چمک رہے تھے۔ "سلام کر سرکار کو" قلندر نے نکیل کو ذرا جھٹکا دیتے ہوئے کہا۔ بادل پچھلے پاؤں پر کھڑا ہو گیا۔ اس کا ہاتھ اپنے ماتھے کی طرف اٹھا۔ زمیندار کی باچھیں کھل اٹھیں۔ دستور تھا کہ ریچھ کو زمین میں کھونٹا گاڑ کر لمبی رسی سے باندھ دیا جاتا تھا لیکن جب سے بجلی اور بادل کے جوڑ شروع ہوئے یہ رواج ترک کر دیا گیا تھا لیکن فضل شاہ نے کہا تھا کہ بدل کو اپنا جوڑ مل گیا ہے۔

ڈھول کی کھال پھر تھرکی۔ قلندر نے آواز لگائی "پیچھے پیچھے ہٹ جاؤ سگیو۔ استاد نے کہا ہے کہ آدم زاد اور جناور دونوں کا کوئی بھروسہ نہیں"

بہت سارے ڈھول ایک ساتھ گرجے۔ بدل اور بجلی بے چین ہو گئے اور پھر، اِدھر قلندر اور اُدھر فضل شاہ کی جانب سے دو نعرے بلند ہوئے۔ بے معنی وحشیانہ، لرزہ خیز اور ایک سفید شعلہ کالے بادل کی طرف لپکا جو اکھاڑے کے اندر کوئی سات فٹ اوپر کو اٹھ رہا تھا۔ یوں لگ رہا تھا جیسے وہ آسمان کو جا چھوئے گا اور بارش ہونے لگے گی لیکن پانی کے چھینٹوں کی بجائے ریت اڑی کتا اور ریچھ ایک دوسرے کا پیچھا کر رہے تھے۔ دائرہ باندھے۔ لپکتے ہوئے۔ آگ اور دھوئیں کا چکر ہو جیسے۔ اور سارے میں ریت کی چنگاریاں اڑ رہی ہوں۔ کتے کی کوشش تھی کہ ریچھ کو کمر سے پکڑے اور ریچھ کی کوشش تھی کہ کتا اس کے تھپڑ کی زد، جبڑے کی گرفت میں یا بازو کے نیچے آ جائے۔ ان کے دانت چمک رہے تھے اور ایک دوسرے کے گوشت میں گڑنے کے لئے بے تاب تھے۔ کبھی وہ الگ ہو جاتے اور کبھی پھر گتھ جاتے۔ لوٹتے۔ لپکتے۔ اچکتے۔ وار خالی دیتے .... وہ غرا رہے تھے۔ دھاڑ رہے تھے۔ چیخ رہے تھے۔ ہونک رہے تھے اور دونوں کی آوازیں مل کر عجیب، گڑگڑاہٹ پیدا کر رہی تھیں۔ تماشائیوں کی ہلاشیری اور نعروں نے اس میں بالکل جنگل کی فضا پیدا کر دی تھی۔

بچھڑتے بچھاڑتے، جھنجھوڑتے جھنجھوڑتے گرتے۔ لڑکھڑاتے سنبھلتے۔ گرجتے دوتے ریچھ اور کتا دونوں، اور ان کے ساتھ تماشائی بھی ایک ہی حقیقت کے مختلف پہلو دکھائی دیتے تھے ساری فضا۔ سارا ہنگامہ۔ ساری حرکت!

لہریں ایک دوسرے سے الجھ رہی تھیں۔ ایک کالی ایک سفید۔ ریت میں بھنور پڑ رہے تھے۔ زمین کھول رہی تھی۔ بادل کے کناروں پر۔ بادل کے اندر بجلی چمک رہی تھی۔ کوندا لپک رہا تھا۔ گرج تھی۔ چنگھاڑیں تھیں۔ چیخیں تھیں......

ایسے میں عام طور پر برابر چھڑا دیا جاتا۔ کئی سال سے یہی ہو رہا تھا لیکن کسی نے کہا "سرکار آج تو فیصلہ ہونا چاہیئے۔ قلندر...... ہر سال پانچ سو لے جاتا"۔

"ہاں سائیں" حواریوں نے تائید کی کہ بدل میں اب کیا رکھا ہے۔ اور کیا ناخن تک تو ترخ گئے ہیں سائیں اور دانت ہل چکے ہیں۔ رب تمہارا بھلا کرے"

"اوئے قلندرا...." زمیندار کی گالی جانوروں کی آواز کو دباتی ہوئی سنائی دی۔

"اج فیصلہ..... اج ریچھ نئیں یا کتا نئیں"

"جو حکم بادشاہو" رمضانی قلندر نے ہاتھ باندھ کر عرض کیا "بجلی بھی تساڈا نے بدل وی تساڈا پر اسان نی سمجھ وچ نئیں اوندا کہ اک دے بغیر دوجا نہ بدل جیسی نہ بجلی"۔ اس کو اپنے پانچ سو اڑ جانے کا... زمین کی پڑی ہے سائیں ـــ سرکار کی خوشی

(باقی صفحہ ۱۰۰ پر)

افسانہ :

خون کے پیاسے

حمید کاشمیری

فضلو نے کسی جسمانی ضرورت کے دباؤ کے تحت بار بار چارپائی سے اٹھنے کی کوشش کی لیکن جونہی وہ بیدار ہونے کے لئے پہلو بدلتا تو نیند کے گہرے اور دبیز پردے اپنی گرفت اور زیادہ مضبوط کر لیتے اور فضلو لمبے لمبے خراٹے لینے لگتا جیسے دودھ بلو رہا ہو۔ لیکن یکبارگی اس کے خراٹے رک گئے اور اسے محسوس ہوا کہ اس کے جسم کے اعضا اس کے اختیار سے باہر ہو رہے ہیں اور قوت برداشت جواب دے رہی ہے۔ اس کی آنکھیں پھٹ سے کھل گئیں اور وہ یکدم سانپ کی طرح بل کھا کر اٹھ بیٹھا۔ کمرے میں گہرا اندھیرا چھایا ہوا تھا۔ اور چھتی کھڑکی سے بھی روشنی کے کوئی آثار نمایاں نہیں ہو رہے تھے۔ سرہانے پڑی ہوئی لالٹین اس نے ہاتھوں سے ٹٹول کر بے چینی کے عالم میں جلدی جلدی جلائی، اور دھوئیں میں اٹی ہوئی لالٹین نے صرف اس قدر روشنی پیدا کی کہ کمرے کی تاریکی میں روشنی کا ایک ہلکا سا شگاف پڑ گیا۔ وہ اپنا پیٹ دونوں ہاتھوں سے تھام کر چارپائی سے نیچے اتر کر چلا تو لکڑی کی بوسیدہ، شکستہ اور غیر ہموار چھت چارپائی کی چولوں کی طرح چرچرا کر رہ گئی، اور جب فضلو تیز تیز چل کر زینوں سے نیچے اترنے لگا تو چھت یوں ہلنے لگی جیسے ابھی نیچے بخشو کی دکان میں گر جائے گی۔ لیکن فضلو کو اس کی خستگی اور بوسیدگی سے کوئی تشویش نہ تھی۔ وہ اس کے ہر نقص اور خامی کا عادی بن چکا تھا۔ بلکہ وہ اس بات سے ہی مطمئن اور مسرور رہتا کہ ٹوٹی پھوٹی چھت اور شکستہ سی چار دیواری جیسی بھی ہے اس کی اپنی ہے اور خود اس کا مالک ہے اور جس کے مالکانہ حقوق کے کاغذات کو اس نے صندوق کی تہہ میں کسی انمول ہیرے کی طرح محفوظ کر رکھا تھا۔

وہ جسمانی کرب کے عالم میں پیچ و خم کھاتا ہوا اپنے کمرے کے شکستہ اور جھولتے ہوئے زینے سے نیچے اترا تو خلاف معمول زینہ آگے سے بند ملا۔ فوراً اس کا ماتھا ٹھنکا۔ زینہ کے آگے ایک بہت بڑی الماری رکھ کر بخشو نے فضلو کی آمد و رفت کا راستہ بند کر دیا تھا۔ فضلو تڑپ کے رہ گیا۔ اس پر کچھ ایسی کیفیت طاری ہو گئی جیسے وہ ایک لمحے میں سمٹ کر زینے پر ڈھیر ہو جائے گا۔ اس نے زور زور سے الماری پہ دوہتڑ مارے بلکہ کوشش کی کہ وہ کسی طرح اسے اپنے راستے سے ہٹانے میں کامیاب ہو جائے لیکن الماری اتنی مضبوطی سے اپنی جگہ پر قائم رہی جیسے کسی تنے کی طرح زمین میں گڑی ہوئی ہو۔ وہ لگاتار الماری کو دھکیلتا اور دستک دیتا رہا لیکن بخشو ٹس سے مس نہ ہوا —— گزشتہ رات فضلو اور بخشو میں کسی بات پر شدید جھگڑا ہو گیا تھا لیکن اسے توقع نہیں تھی کہ بخشو ردِ عمل کے طور پر دروازہ بھی بند کر دے گا۔

فضلو دراصل صرف اوپر والے کمرے کا مالک تھا اور بخشو نچلے کمرے، دکان، کا۔ اوپر والے کمرے کا زینہ نچلی دکان میں اترتا تھا اور پھر دکان سے راستہ باہر جاتا تھا۔ اس کے علاوہ اوپر نکلنے جانے کا کوئی دوسرا راستہ نہ تھا۔ اس عجیب و غریب سرحدی تقسیم کی وجہ سے فضلو اور بخشو میں ہمیشہ تکرار رہتی کبھی کبھار گالی گلوچ تک نوبت پہنچ جاتی اور کئی مرتبہ تو ہاتھا پائی تک ہوتے ہوتے رہ گئی۔

آزادی سے پہلے پورا مکان چندو حلوائی کے پاس تھا۔ نیچے دکان میں چندو مٹھائیاں بیچتا تھا اور اوپر والے کمرے میں اس کے بال بچے رہتے تھے۔ فسادات میں بھاگم بھاگ جو پڑی تو چندو راتوں رات دکان مکان چھوڑ بال بچے سمیت ملک سے چلا گیا۔ فضلو اور بخشو جو ایک ساتھ مشرقی پنجاب کے ایک ہی شہر سے آئے تھے اور چندو کے مکان کی تاک میں بھی تھے، چندو کے جاتے ہی اس میں براجمان ہو گئے۔ بخشو نچلے حصے میں دودھ کا پتیلا رکھ کر بیٹھ گیا اور

فضلو نے اوپر والا کمرہ سنبھال لیا۔ چونکہ دونوں کا ناجائز قبضہ تھا لہٰذا شروع شروع میں دونوں میں بڑا ایکا سا اور آپس میں بڑے شیر و شکر تھے اور ہر بات پہ متفق رہتے تھے۔ اور کسٹوڈین کا خطرہ لٹکنے والی تلوار کی طرح انہیں ہر وقت اپنے سروں پر محسوس ہوتا تھا جسے ٹالنے کے لئے وہ پہروں سر جوڑ کر بیٹھتے اور منصوبے بناتے رہتے اور اس گٹھ جوڑ میں وہ ایک دوسرے کے اور گہرے رفیق اور ہمدرد بن گئے تھے لیکن آخر کار ایک دن کسٹوڈین کے عملے نے ان کے مکان کو دریافت کر لیا اور اس پر اپنی مہر بھی لگا دی اور دونوں پہ پانچ روپیہ مہینہ کرایہ بھی ٹھونک دیا۔ اور جب جیب سے کرایہ نکلنے لگا تو دونوں کو اپنے جائز کرایہ دار ہونے کا احساس بھی ہونے لگا اور پھر کبھی کبھار کسی بات پہ ٹکرار بھی ہو جاتی۔ فضلو اپنے شکستہ فرش پہ اگر پانی کا ایک گلاس بھی گرا دیتا تو وہ قطرہ قطرہ پھوٹ کر نیچے بخشو کے سر پر یا پتیلیوں پہ گرتا۔ یا وہ کوئی چیز زور سے فرش پر پھینک دیتا تو مٹی بارش کی طرح بخشو پر برسنے لگتی۔ یا بخشو اگر بلیوں اور چوہوں کی زد سے محفوظ رکھنے کے لئے کوئی چیز چھت میں ٹانگنے کی خاطر ایک کیل بھی گاڑتا تو وہ سیدھی اوپر فضلو کے فرش میں نکل آتی۔ یہ تمام باتیں دونوں کے درمیان اختلافات کا باعث بنتی گئیں اور انس، دوستی اور محبت کے دروازے آہستہ آہستہ بند ہو کر دونوں کے درمیان نفرت کی دیوار اٹھنے لگی۔

یہ کشمکش جاری تھی کہ کچھ عرصہ بعد متروکہ املاک کا نیلام شروع ہوا۔ لوگوں نے دھڑا دھڑ جائدادیں خریدیں لیکن اس عمارت کو مخدوش سمجھ کر کسی نے بھی کوئی دلچسپی نہیں لی۔ فضلو اور بخشو کے پاس اپنے ملے جلے دو تین ہزار کے کلیم تھے۔ لہٰذا انہی کلیموں پر بولی بول کر دونوں نے اپنا اپنا حصہ بھی خرید لیا۔ مگر مالکانہ حقوق حاصل کرنے کے بعد اختلافات اس قدر بڑھے کہ دونوں کے درمیان دشمنی اور نفرت کی ایک مستقل خلیج قائم ہو گئی۔ اب تو بات بات پر جھگڑا، گالی گلوچ اور ہاتھا پائی ہونے لگتی۔ بخشو نیچے دھوئیں والی لکڑیاں جلاتا تو اوپر فضلو کی آنکھیں جلنے لگتیں۔ اور فضلو کا دکان میں سے گزر کر آنا جانا بخشو کو ناگوار ہی نہیں ہوتا تھا بلکہ یہ اپنے مالکانہ حقوق میں مداخلت اور غاصبانہ حملہ کے مترادف نظر آتا۔

ویسے تو دونوں بہت ہی کم باہر نکلتے تھے۔ فضلو نے بھی کام دھندا چھوڑ رکھا تھا۔ بس سارا دن اپنے کمرے میں بیٹھا بلغم کھنکارتا اور بخشو بھی برائے نام دودھ کا پتیلا چولہے پر چڑھا کے پھونکیں مارتا رہتا۔ سارے دن میں مشکل سے دو چار گاہک آ جاتے تو آ جاتے ورنہ دودھ جمع کر کے دہی جما دیتا۔ پھر دہی بھی اگر بک گیا تو بک گیا ورنہ خود ہی لسی بنا کے پی جاتا۔ ذمہ داریاں تھیں نہیں۔ فقط اپنا اپنا پیٹ پالنا مقصود تھا۔ اور وہ بہر طور پال رہے تھے۔ فضلو اگر شام کو اتفاقاً کہیں باہر چلا جاتا تو بخشو ضد میں سر شام ہی دروازہ بند کر کے اور بتی بجھا کے سو جاتا اور فضلو کو ٹھٹھری ہوئی راتوں میں گھنٹہ گھنٹہ بھر باہر کھڑے ہو کر دروازے پر دستک دینی پڑتی۔ جب کہیں بخشو اکتاہٹ کے ساتھ دروازہ کھولتا اور ساتھ ہی بڑبڑانے لگتا۔

"مصیبت ہو گئی میرے لئے۔ جیسے کسی کے باپ کا نوکر ہوں۔ خود...... بائیسکوپ دیکھیں اور میں راتوں کو اٹھ اٹھ کے دروازے کھولوں!"

"کس...... نے بائیسکوپ دیکھا ہے......!" فضلو جواب میں ایک وزنی سی گالی دیتا۔

"دیکھ منہ سنبھال کے بول فضلو۔ نہیں تو کسی دن تیرا ایلا جا ہو جائے گا" بخشو متنبہ کرتا۔

"ارے کر کے دیکھ ناں۔ کب دیکھا تھا تو نے مجھے بائیسکوپ دیکھتے ہوئے؟"

"نہیں دیکھا تھا تو جا جہنم میں۔ پر سن لے میں کل سے دروازہ نہیں کھولوں گا۔ عزت پیاری ہے تو شام سے پہلے اوپر چڑھ کے سو جایا کر۔"

"سب جانتا ہوں۔" فضلو معنی خیز انداز میں جواب دیتا۔ "میں شام سے پہلے اوپر چڑھ کے سو جاؤں اور تو پیچھے محلے کے چھوکروں کو جمع کر کے بیٹھ جائے!"

"دیکھ بک بک نہ کر" بخشو تڑپ کر بولتا۔

"اب کیوں برا لگا تجھے" فضلو نمک پاشی کرتا۔ اور دبے قدموں شکستہ چرچراتا ہوا زینہ طے کر کے اوپر اپنے کمرے میں چلا جاتا۔ کمرے میں بجلی۔ پانی۔ غسل خانہ یا اسی قسم کی ضروریات کی دوسری چیزوں میں سے کوئی چیز بھی نہیں تھی اور نہ کبھی فضلو نے ان اشیا کی کمی کو محسوس ہی کیا تھا۔ لیکن جھگڑے والی رات کو خلافِ معمول جسمانی مجبوری کی وجہ سے وہ زینے سے نیچے جو اترا تو زینہ آگے سے بند ملا۔ تلملا کر رہ گیا۔

اس نے بہتیرے زور مارے لیکن الماری اتنی مضبوطی سے اپنی جگہ پر قائم تھی کہ ایک انچ آگے کی طرف نہ سرک سکی۔ پھر فضلو کے اپنے اعصاب نے بھی جیسے جواب دے دیا اور اسے اپنی ٹانگوں کے سہارے کھڑے رہنے کی سکت نہیں رہی۔ پھر اسے یوں محسوس ہوا جیسے رسہ کشی کرتے ہوئے اس کی گرفت سے رسہ آزاد ہو گیا ہو۔ وہ سمٹ سمٹا کے وہیں آخری زینے پر الماری کے ساتھ ڈھیر ہو گیا۔ پھر کچھ دیر بعد وہ نہایت سیدھے سبھاؤ طریقے سے اوپر چڑھ کے اپنے کمرے میں واپس چلا گیا۔ کھڑکی سے باہر جھانک کر گھپ اندھیری رات کا ایک نظر میں جائزہ لیا۔ اور ٹمٹماتی ہوئی بتی بجھا کر پھر چارپائی پر دراز ہو گیا۔ نیچے بخشو کو اس کی حرکت کا پتہ چل چکا تھا اور اب وہ گویوں کی طرح تال پر توڑ گالیاں اوپر برسا رہا تھا اوپر ایک ایک گالی فضلو کی سمجھ میں آ رہی تھی لیکن وہ ان پر کوئی دھیان نہیں دے رہا تھا۔ اس وقت اسے زیادہ فکر اس بات کی تھی کہ اگر بخشو نے زینہ نہ کھولا تو وہ نیچے کیسے اترے گا۔ روزمرہ کے جھگڑوں کا تو وہ عادی ہو چکا تھا لیکن یہ اچانک پیدا ہونے والا مسئلہ اس کے لئے جان لیوا ثابت ہو رہا تھا۔ اس نے سوچا کہ صبح اٹھ کر قانونی کارروائی کرے لیکن سنجیدگی سے غور کرنے کے بعد وہ اس نتیجے پر پہنچا کہ قانون بھی دوسرے کی دکان اسے راستے کے طور پر استعمال کرنے کی اجازت نہیں دے گا۔ بصورت دیگر اسے یہ بھی خدشہ پیدا ہو رہا تھا کہ معاملے کی پیچیدگی کے پیش نظر کہیں لینے کے دینے نہ پڑ جائیں اور دونوں میں سے کسی ایک کو مکان سے دستبردار ہی نہ ہونا پڑ جائے اور وہ شخص خود ہی نہ ہو۔ لہٰذا مصلحتاً اس نے قانونی کارروائی کرنے کا ارادہ ترک کر دیا اور صورت حال سے خود ہی نمٹنے کا فیصلہ کر لیا۔ اور اس توڑ جوڑ میں الجھے الجھے اس کی پھر آنکھ لگ گئی اور وہ دوبارہ دودھ بلونے کے سے انداز میں خراٹے لینے لگا۔

صبح حسبِ معمول اس کی آنکھ تو بہت جلد کھل گئی تھی لیکن وہ بہت دیر تک پڑے پڑے یونہی کروٹیں بدلتا رہا اور دن چڑھے اس وقت اٹھا جب عقبی کھڑکی سے سورج کی شعاعیں اندر داخل ہونے لگیں۔ نیچے بخشو کی دکان اور گلی میں زندگی کے آثار معلوم ہو رہے تھے لیکن فضلو کوئی چیز دیکھ نہیں سکتا تھا۔ پچھلی کھڑکی ایک گندے نالے کی طرف کھلتی تھی اور سامنے کی طرف کسی قسم کی کھڑکی یا دروازہ وغیرہ کچھ نہ تھا، سوائے ایک زینے کے جو بخشو کی دکان میں اترتا تھا۔ اس نے ایک مرتبہ پھر جھانک کر زینے سے نیچے دیکھا۔ وہ ہنوز آگے سے بند تھا۔ فضلو کشمکش کے عالم میں ایک دو مرتبہ زینے سے نیچے اترا اور بند حصے کے قریب پہنچ کر اوپر واپس چڑھ گیا۔ کوئی بھی حل اس کی سمجھ میں نہ آ رہا تھا۔ اس نے اشتعال میں آ کر زینے کی طرف منہ کیا اور بہ آواز بلند نیچے بخشو کو دو فحش گالیاں دیں۔ نیچے سے بخشو نے بھی ترکی بہ ترکی جواب دیا۔

"تو ہے۔ تیرا باپ ہے۔"

اس نے سوچا کہ وہ جواب میں اس کے دادا اور پردادا کا نام گنوا دے۔ لیکن ایسا کرنے سے اس کی مشکل تو حل نہیں ہو سکتی تھی۔ وہ سٹپٹا کے رہ گیا اور بخشو کو زچ کرنے کے لئے دو تین مرتبہ کچے فرش پر بندر کی طرح زور زور سے قلابازیاں لگا کر فرش پر زلزلہ سا طاری کر دیا جس کی وجہ سے مٹی کی ایک بوچھاڑ نیچے گری اور اس کے تبادلے میں چند صلواتیں اوپر آئیں اور فضلو ٹھنڈا ہو کے چارپائی پر بیٹھ گیا۔ بیٹھے بیٹھے سوچنے لگا اور سوچتے سوچتے پھر چارپائی پر دراز ہو گیا۔ لیکن کوئی بات اس کی سمجھ میں نہیں آ رہی تھی کہ وہ نیچے کیسے اترے۔ اس نے ابھی ناشتہ بھی نہیں کیا تھا اور چائے کی طلب تو خاص طور سے اسے بہت پریشان کر رہی تھی۔ وہ ہوٹل والے کو آواز دے کر چائے کا کپ اوپر ہی منگوا لیا کرتا تھا لیکن آج تو کہیں آواز دینے کی جگہ تھی اور نہ چائے والا ہی کسی طرف سے اوپر آ سکتا تھا۔ اسے محسوس ہوا جیسے بخشو نے اس کے آنے جانے کا راستہ ہی نہیں بلکہ کھانے پینے اور فراغت پانے کے تمام راستے بھی بند کر دیے ہوں۔ نفرت اور حقارت کے جذبے سے اس کے سینے میں ایک بھٹی سی دہکنے لگی اور انتقام کے شعلے اس کی آنکھوں میں بھڑکنے لگے۔ وہ جست لگا کے چارپائی سے اٹھا اور نیچے زینے کی طرف منہ کر کے گرجدار آواز میں دو دفعہ پکارا:

"یزید! - یزید!"

"شہید! - شہید!" بخشو نے ترکی بہ ترکی قافیہ ملایا۔

فضلو دانت پیستا ہوا واپس آیا اور وہ خالی الذہن ہو کر چارپائی پر

بیٹھ گیا۔ بیٹھے بیٹھے اسے ادوائن کی گرہ سی چبھنے لگی تو اچانک اسے رسی کا خیال آ گیا۔ وہ فوراً اٹھا اور اس نے ادوائن کھولنی شروع کر دی۔ رسی خاصی طویل اور مضبوط نکل آئی۔ اس نے ایک سرا کس کے جنگلی کھڑکی کے ساتھ باندھ دیا اور دوسرا سرا نیچے نالے کی طرف پھینک دیا۔ اگرچہ اس کا جسم بھاری تھا لیکن ڈرتا کانپتا لٹک کر وہ محفوظ طریقے سے نیچے اتر ہی گیا۔ نیچے پہنچ کر اس کی جان میں جان آئی۔ وہ نالے کا ایک طویل چکر کاٹ کے دکان کے سامنے کی طرف گلی میں آ گیا۔ بخشو بیٹھا دودھ کی کڑاہی میں کڑچھی چلا رہا تھا۔ فضلو پر نظر پڑی تو ہاتھ اچانک رک گئے اور کچھ حیرت زدہ سا ہو گیا۔ فضلو کے چہرے پر نفرت، حقارت اور انتقام کی سلوٹیں گہری ہو گئیں۔ اس نے آؤ دیکھا نہ تاؤ، ایک نعرہ لگایا اور بلّی کی طرح کود کر بخشو کی گردن دبوچ لی۔ بخشو نے بھی جواب میں ایک چمچہ اس کے سر پر جڑ دیا لیکن پیشتر اس کے کہ جھگڑا بڑھتا کچھ لوگوں نے بیچ بچاؤ کر کے چھڑا دیا۔ فضلو کو دو آدمی پکڑ کر دکان سے باہر لے آئے۔ اور بخشو دکان کے اندر ہی پیچ و تاب کھاتا رہا۔ تین آدمیوں نے اسے اپنی گرفت میں لے رکھا تھا اور وہ اپنے آپ کو چھڑانے کی بھرپور کوشش کرتے ہوئے چیخ چیخ کر کہہ رہا تھا۔

"مجھے چھوڑ دو۔ خدا کے لئے مجھے چھوڑ دو۔ میں آج اس کا خون پی کے رہوں گا!" اور جب لوگوں نے خدا کے نام پر بخشو کو چھوڑ دیا تو وہ چپکے سے دودھ کے پتیلے کے پاس بیٹھ کر اس میں چمچہ چلانے لگا۔ یوں وقتی طور پر جھگڑا تو ٹل گیا لیکن فضلو کے لئے ایک مستقل مسئلہ پیدا ہو چکا تھا۔

وہ اپنے نصف مکان کا مالک ہونے کے باوجود اس میں داخل ہونے کے راستے سے محروم ہو گیا تھا۔ اس نے گلی کے چند پڑوسیوں سے شکایت کی۔ پڑوسیوں نے سمجھایا بجھایا لیکن بخشو نے ایک نہیں سنی۔ صاف کہنے لگا: "میں اپنی دکان سے راستہ نہیں دوں گا۔ فضلو اوپر والے حصّہ کا مالک ہے، نیچے والے کا نہیں۔ نہ میں اس کے کمرے میں جاؤں نہ وہ میری دکان میں آئے۔"

فضلو جواب سن کے آگ بگولہ ہو گیا۔ لیکن پھر مصلحتاً خاموشی اختیار کی کہ شاید دیرینہ تعلقات کے پیش نظر بخشو اپنے فیصلے پر نظرثانی کر ڈالے۔ اس کا سارا دن ادھر ادھر یونہی بے مقصد گھومتے گذر گیا۔ اور شام کو جب واپس آیا تو اس کے پاس بانس کی ایک کچی سی سیڑھی تھی۔ جو اس نے نالے کی طرف جنگلی کھڑکی کے ساتھ لگا دی۔ اور پھر اس کے ذریعے اوپر چڑھ گیا۔

کچھ عرصہ تک تو وہ یونہی کسی کوہ پیما کی طرح نالے کی طرف کھڑی سیڑھی سے چڑھتا اترتا رہا۔ لیکن یہ عارضی سیڑھی اتنی غیر محفوظ تھی کہ اسے ہر وقت اپنی جان کے لالے پڑے رہتے کہ ذرا پاؤں پھسلا تو وہ ایک لمحے کے اندر دور نشیب کی طرف نالے میں پڑا ہو گا اور ایک دن تو عین اس کے پاؤں کے نیچے سے سیڑھی نکل ہی گئی تھی لیکن خوش قسمتی سے اس وقت وہ اوپر والی کھڑکی میں ہاتھ ڈال چکا تھا اور اس طرح موت کے منہ میں گرنے سے بال بال بچ گیا۔ اس دن تو اس کی روح فنا ہو گئی تھی۔ وہ ایسا خوفزدہ ہوا کہ دوسرے دن کمرے سے باہر ہی نہیں نکلا۔ اور تمام دن یوں بے مقصد بیٹھا رہا جیسے قیدِ تنہائی بھگت رہا ہو۔ پہاڑ سا دن اس نے بند کمرے میں سورج کی صاف روشنی اور دھوپ دیکھے بغیر گذار دیا۔ پھر ہیبت ناک رات سر پر آ گئی اور اسے اگلے دن کی فکر ستانے لگی۔ اب وہ جسمانی اعتبار سے بھی اس قابل نہیں رہا تھا کہ دوسرا دن بھی بند کمرے میں گذار دے۔ لہٰذا اگلے دن کے فکر سے رات اسے سخت بے چینی رہی اور نیند اس کی آنکھوں کے قریب نہ پھٹکی۔ وہ اپنے ذہن میں برابر کوئی کھچڑی پکاتا رہا۔ پھر جب دور کسی گھڑیال نے رات کے ایک بجے کی گھنٹی بجائی تو وہ چپکے سے اٹھا اور بتی جلائے بغیر اندھیرے ہی میں راستہ ٹٹولتا دبے قدموں زینے سے نیچے اتر آیا۔ اور راستہ روکنے والی الماری کا جائزہ لینے لگا۔ اندر کمرے میں بخشو کے خراٹے لینے کی آواز اسے صاف سنائی دے رہی تھی۔ اور اس کی گہری نیند سے مطمئن ہو کر فضلو نے آہستہ آہستہ الماری کو آگے دھکیلنا شروع کیا۔ اس نے اپنے دونوں پاؤں پیچھے زینے میں جما لئے اور کندھا لگا کے پوری الماری کو زور جو دیا تو الماری آگے سرک گئی۔ اور اسے محسوس ہوا کہ آدمی کے نکلنے کا راستہ بن گیا ہے۔ تجربے کے طور پر وہ الماری کے پیچھے سے گذر کر بخشو کے کمرے میں اتر آیا۔ عین اسی وقت بخشو نے "چور۔ چور!" کی آوازیں لگاتے ہوئے لالٹین روشن کی اور پھٹی پھٹی آنکھوں سے فضلو کی طرف دیکھنے لگا جو اب اوپر بھاگنے کی فکر میں تھا۔ لیکن بخشو نے اسے موقع ہی نہیں دیا اور نہایت پھرتی سے چھلانگ لگا کر اس کی گردن پیچھے سے اپنے بازوؤں میں جکڑ لی۔

"اب چھوڑ مجھے! میں ہوں! چور نہیں ہے!" فضلو نے گردن اس کے ہاتھوں سے آزاد کرانے کی کوشش کرتے ہوئے کہا۔ لیکن بخشو نے اپنی گرفت اور بھی مضبوط کر دی اور دانت کٹکٹاتے ہوئے بولا "چور نہیں تو پھر کیا لینے آیا تھا آدھی رات کو؟ کے ـــ بچے؟"

"گالی نہ دے ..... میری گردن چھوڑ دے۔ میں راستہ کھولنے آیا تھا" فضلو نے ملتجیانہ لہجے میں کہا۔

"تیری گردن تو آج توڑ کے ہی چھوڑوں گا" بخشو نے ہاتھوں کو مزید کستے ہوئے جواب دیا۔ فضلو کی گردن کی نسیں پھول گئیں اور اسے اپنی سانس گھٹتی ہوئی محسوس ہونے لگی۔ وہ مشتعل ہو گیا اور ہاتھ پیچھے کی طرف گھما کر انگلیاں بخشو کی کھوپڑی میں پھنسا لیں اور تیزی سے ایک زور دار جھٹکا جو دیا تو بخشو کے ہاتھ سوڈے کی بوتل کے کارک کی طرح فضلو کی گردن سے الگ ہو گئے۔ فضلو تاؤ میں آچکا تھا اس نے گردن چھڑاتے ہی بخشو کو سنبھلنے کا موقع ہی نہ دیا اور نوجوانی کے زمانے کا یاد کیا ہوا ایک داؤ گھما کے جو مارا تو بخشو چاروں شانے چت زمین پر آن گرا۔ انتقام کی آگ فضلو کے اندر اب پوری طرح بھڑک چکی تھی۔ اور وہ بہت جلدی معاف کرنے پر رضامند نظر نہیں آتا تھا۔ اس نے بپھر کر ایک بھرپور چھلانگ چت پڑے بخشو کے سینے پر لگائی۔ لیکن ماضی میں دونوں پہلوانی کے میدان میں دم مارتے رہے تھے۔ لہٰذا بخشو بھی اب مکمل طور پر تیار ہو چکا تھا۔ ایک مار کھاتے ہی جیسے اسے تاروں کی جگہ ماضی کے کئی داؤ نظر آگئے۔ اس نے پڑے پڑے فضلو کی ٹانگوں کو سینے پر آنے سے پہلے ہی خلا میں جا لیا۔ اور بائیسکل کے ہینڈل کی طرح جو گھمایا تو فضلو کئی گز دور منہ کے بل جا گرا۔ اور بے اختیار ایک آواز نکل گئی۔ لیکن وہ ساتھ ہی اچک کر کھڑا ہو گیا۔ اور بخشو اس سے پیشتر ہی تیار ہو چکا تھا۔ داؤ لگانے کے لئے دونوں کے بازو نصف دائروں کی طرح کھلے ہوئے تھے۔ اور درمیان میں فاصلہ کچھ اس طرح قائم تھا جیسے دو لڑاکا مرغ ایک دوسرے پر جھپٹنے کے لئے پر تول رہے ہوں۔ پھر ایکدم دونوں مقناطیسی انداز سے ایک دوسرے کی طرف لپکے اور گتھم گتھا ہو گئے۔

دور کسی گھڑیال نے جب رات کے دو بجائے تو فضلو اور بخشو بدستور ایک دوسرے سے دست و گریباں تھے۔ لگاتار ایک گھنٹے کی کشتی نے انہیں تھکا کے چور کر دیا تھا۔ لیکن کسی نے شکست تسلیم نہیں کی تھی۔

اس دوران میں وہ دونوں کئی دفعہ باری باری چت ہو چکے تھے لیکن وہ لڑائی تھی جس کا کوئی دیکھنے والا، فیصلہ کرنے والا اور چھڑانے والا ہی نہ تھا۔

جب گھڑیال نے رات کے تین بجائے تو اس وقت دونوں کے جسم بے جان ہو چکے تھے۔ اور انگ انگ درد کرنے لگا تھا۔ تاہم دونوں گتھم گتھا تھے لیکن بے حس و حرکت کھڑے دروازے سے ٹیک لگائے ایک دوسرے کے گریبان میں جائے پناہ تلاش کر رہے تھے۔ جیسے مرغ پروں میں منہ چھپا رہے ہوں۔ وہ کتنی ہی دیر تک اسی طرح ایک دوسرے سے لپٹے دمے کے مریضوں کی طرح لمبی لمبی سانس لیتے رہے، جیسے فرطِ محبت میں بغل گیر ہو رہے ہوں۔ اچانک گلی سے کسی راہگیر کے قدموں کی چاپ سنائی دی۔ فضلو نے سوچا کہ اگر دروازہ کھلا ہوتا اور راہ گیر کی نظر پڑ جاتی تو وہ ضرور انہیں چھڑا دیتا اور اس طرح اس اذیت ناک کشمکش سے وہ باعزت طور پر نجات حاصل کر لیتا۔ اس خیال سے کہ شاید پھر کوئی راہ گیر ادھر سے گذرے فضلو نے دروازہ کھولنے کے لئے ہاتھ آہستہ آہستہ اوپر کنڈی کی طرف بڑھایا۔ اور چہرہ بخشو کے گریبان میں برابر چھپائے رکھا۔ لیکن ایک تو اس پر نقاہت غالب تھی اور دوسرے کنڈی بھی سخت تھی لہٰذا کافی زور آزمائی کے بعد بھی فضلو سے نہ کھل سکی۔ غالباً اسی وقت اسی قسم کا مصالحانہ خیال بخشو کے ذہن میں بھی پیدا ہوا تھا اور اس نے ازراہ تعاون اپنا ہاتھ بھی اوپر کنڈی کی طرف بڑھایا۔ پھر دونوں نے مل کر بچا کھچا زور کنڈی پر صرف کیا اور دروازہ کھٹاک سے باہر کی طرف کھل گیا جس کے کھلتے ہی دونوں مردہ لاشوں کی طرح دھم سے دہلیز پر اوندھے آن پڑے۔ اور پھر صبح ہونے تک دنیا و مافیہا سے بے خبر، بے سدھ پڑے رہے۔ صبح اچانک ہلکی ہلکی پھوار پڑنی شروع ہو گئی اور چند بوندیں فضلو کے باہر کی طرف لٹکے ہوئے چہرے پر بھی پڑیں۔ اس نے بدک کر آنکھ کھولی۔ پلٹ کر دیکھا تو بخشو ابھی تک اس کے برابر پڑا بے خود سو رہا تھا۔ اور زینے کا راستہ اس نے رات جس حالت میں چھوڑا تھا اب تک ویسے ہی کھلا ہوا تھا۔ وہ بخشو کو سوتا چھوڑ کر بہت دنوں کے بعد اس زینے سے چڑھ کر اوپر اپنے کمرے میں گیا۔ اور جب وہ اوپر پہنچا تو اتنی سی دیر میں پھوار تیز بارش میں تبدیل

ہو چکی تھی۔ اور چھت پر پٹاخ پٹاخ — جیسے پٹاخوں کی لڑیاں چھوٹ رہی ہوں۔ چاروں طرف سے سیاہ کالے بادل امڈ امڈ کر آ گئے تھے اور بارش لحظہ بہ لحظہ تیز ہو رہی تھی۔ وہ چپکے سے اپنی جھولا نما چارپائی پر بیٹھ گیا۔ اچانک اسے نیچے کی طرف کچھ دھماکے سے محسوس ہوئے اور سارا مکان تھرتھرانے لگا۔ اس نے لپک کر زینے سے نیچے دیکھا تو بخشو نے پھر الماری رکھ کر زینہ بند کر دیا تھا۔ اور مضبوط کرنے کے لئے اب دبا دب کیلیں ٹھونک رہا تھا۔ فضلو سٹپٹا کے رہ گیا اور بڑبڑاتا ہوا واپس آ کر چارپائی پر بیٹھ گیا۔ بارش کی رفتار دمبدم تیز تر ہو رہی تھی۔ اور ٹین کی بوسیدہ چھت نے جابجا ٹپکنا شروع کر دیا تھا۔ وہ اپنے بستر کو پانی سے محفوظ رکھنے کے لئے کبھی پائنتی اور کبھی سرہانے کی طرف کھینچ دیتا۔ اور جب پانی کے چھت سے ٹپکنے کی رفتار بھی تیز ہو گئی تو اچانک اسے ایک تخریبی اور انتقامی کارروائی کا خیال آ گیا اور اسے فوری طور پر بروئے کار لانے کے لئے عقبی کھڑکی کی طرف سے بانس کی سیڑھی اس نے اندر کمرے میں کھینچ لی۔ اور دیوار کے ساتھ لگا کر اوپر چڑھا اور لوہے کی ایک سلاخ کی مدد سے چھت میں اندر کی طرف سے بہت بڑا سوراخ کر دیا۔ سوراخ کا ہونا تھا کہ پانی کا پرنالہ اندر کی طرف بہنے لگا۔ پھر اس نے زینے کے قریب اپنے فرش میں بھی اسی قسم کا ایک سوراخ کر دیا۔ پھر کیا تھا پانی دھان کے کھیت کی طرح کمرے میں پھیل کر، آبشار کی طرح سوراخ سے نیچے بخشو کے کمرے میں بہنے لگا۔ چند لمحے بھی نہ گذرے تھے کہ بخشو نے نیچے کھلبلی مچا دی تھی معلوم ہوتا تھا جیسے سیلاب آ گیا ہو۔ اس کی دکان ویسے ہی سطحِ زمین سے نیچی تھی اور پانی کی نکاسی کا کوئی بندوبست نہ تھا اور بخشو کے برتنوں سے پانی نکال پھینکنے کی آوازیں بادلوں کی گرج میں شامل ہو کر اوپر فضلو کو اس وقت بڑا مزہ دے رہی تھی۔ وہ پانی سے محفوظ جگہ منتخب کر کے بیٹھا ٹھاٹھ سے بیڑی کے کش لگا رہا تھا۔ اور پانی کے پرنالے کو عجیب نظروں سے دیکھے جا رہا تھا۔ نیچے بخشو کی دکان میں مچی ہوئی افراتفری سے اسے بڑا اطمینان محسوس ہو رہا تھا۔ اگرچہ اس کا اپنا کمرہ بھی زیرِ آب آ چکا تھا تاہم پانی کا بہاؤ نیچے کی طرف ہی تو تھا اور وہ اس بات سے مطمئن تھا کہ بخشو اس سے کئی گنا زیادہ مشکل میں مبتلا ہو چکا ہے! اسے پہلی دفعہ

اوپر والی منزل کی "افادیت" کا احساس ہو رہا تھا اس نے اللہ سے دعا کی کہ بارش کا سلسلہ ہفتے بھر تک تو جاری رہے تاکہ انتقام کے دہکے ہوئے الاؤ میں سے ایک ایک چنگاری باہر نکل سکے۔

غالباً زندگی میں پہلی مرتبہ اس کی دعا قبول ہوئی تھی اور ساون کی جھڑی کا سلسلہ ہفتے بھر تک تھمنے میں نہ آیا اور وہ اپنے کمرے سے ایک لمحے کے لئے بھی باہر نہ نکل سکا۔ اس دوران میں وہ کھانے پینے کی چیزیں اندر ہی سے مہیا کرتا رہا۔ کچھ تلچھے اندر پڑے تھے وہ اس نے کھائے۔ ڈبے میں چنے رکھے ہوئے تھے وہ ختم کئے۔ گڑ اور مٹی چٹ کر ڈالی اور بچی کھچی سوکھی روٹیوں تک کا صفایا کر ڈالا۔ اور کمرے ہی سے نشیبی نالے کو بھی استعمال میں لاتا رہا۔ یہاں تک کہ وہ خود بیزار ہو گیا۔ اور انتقام کا شائبہ تک اس کے سینے میں باقی نہ رہا۔ اگرچہ اسے بخشو کی صحیح حالت کا اندازہ نہیں تھا۔ تاہم اسے ہمدردی ہو چلی تھی اور وہ اپنے کئے پر ندامت بھی محسوس کرنے لگا تھا۔ اور اس کی اپنی حالت بھی قابلِ رحم ہو چکی تھی۔ اس کے گھر کی کوئی چیز پانی کی زد سے محفوظ نہیں رہی تھی اور کمرہ ایک مستقل دلدل کی صورت اختیار کر چکا تھا۔ اس نے کئی مرتبہ سیڑھی سے چڑھ کر چھت کا سوراخ اندر کی طرف سے بند کرنے کی کوشش کی لیکن کوئی کوشش کامیاب ثابت نہ ہوئی۔ پانی کا نالہ بدستور بہتا رہا۔ اس کا خیال تھا کہ بخشو بے بس ہو کر آمد و رفت کا راستہ کھول دے گا اور ضرور اوپر چڑھ آئے گا۔ لیکن اس کا یہ خیال بھی غلط نکلا اور شکست خوردگی اور ندامت کے احساس نے جیسے اسے فضا میں معلق کر دیا۔ پھر اسے اچانک محسوس ہوا کہ مکان کے فرش میں کچھ ایسی جنبش ہو رہی ہے جو کبھی پہلے پیدا نہیں ہوئی تھی اسے اپنے پاؤں کے نیچے سے فرش کھسکتا ہوا محسوس ہونے لگا۔ پھر یکایک ایک خوفناک گڑگڑاہٹ کے ساتھ شہتیر ٹوٹنے کی آواز آئی اور بوسیدہ فرش فضلو کو اپنی لپیٹ میں لئے گڑگڑاتا ہوا ریزہ ریزہ ہو کر نیچے گر گیا! پہلے تو فضلو خوف اور دہشت سے بے ہوش ہو گیا۔ اس خیال سے کہ وہ ملبے کے نیچے دب گیا ہے۔ لیکن تھوڑی دیر بعد اسے خود ہی احساس ہوا کہ وہ تو بالکل محفوظ ہے۔ اور ملبے کے نیچے نہیں بلکہ ملبہ اس کے نیچے آ گیا ہے۔

اس نے آنکھیں کھول کر حواس درست کرنے کی کوشش کی اور چھت کی طرف اس طرح دیکھا جیسے ایک طویل خواب سے بیدار ہوا ہو۔ پھر پھٹی پھٹی آنکھوں سے دیکھتا ہی رہا۔ اس کے کمرے والی منزل ہی غائب ہو چکی تھی۔ اور پانی کا پرنالہ کافی بلندی سے بہتا ہوا معلوم ہو رہا تھا۔ اس کے جسم پر اگرچہ کوئی ضرب نہیں آئی تھی لیکن وہ سر سے پاؤں تک کیچڑ میں لت پت ہو گیا تھا۔ اور اعضا بے جان معلوم ہو رہے تھے۔ اس نے برابر میں پڑی ہوئی کسی چیز کا سہارا لے کر اپنے پاؤں پر کھڑے ہونے کی کوشش کی تو اچانک اسکے کان میں ایک دبی دبی گھٹی گھٹی دردناک آواز پڑی۔ وہ چیخ اٹھا — "بخشو! — بخشو!" اس نے دیوانہ وار آوازیں دینی شروع کیں۔ پھر اسے بخشو ایک جگہ نظر آ گیا۔ اس کا سر باہر تھا اور باقی تمام دمڑملبہ کے نیچے دبا ہوا تھا۔ اور سر پر بھی بے شمار خراشیں نظر آ رہی تھیں۔

فضلو کو جیسے کوئی بجلی کی لہر چھو گئی۔ وہ تڑپ کر اٹھ بیٹھا۔ اور مشین کی سی تیزی کے ساتھ ملبہ اٹھا اٹھا کے پھینکنا شروع کر دیا۔ اس کے ہاتھ کٹ کر لہو لہان ہو چکے تھے مگر آخر کار اس نے بخشو کا سارا جسم ملبہ کے باہر نکال لیا۔ لیکن اس کی ایک ٹانگ اب بھی ٹوٹے ہوئے شہتیر کے نیچے دبی ہوئی تھی۔ وہ بالکل بے ہوش ہو چکا تھا اور خون کے لوتھڑے اس کی ٹانگ کے آس پاس جمع ہو گئے تھے۔ اور کیچڑ اس طرح سرخ ہو چکی تھی جیسے خون میں گوندھی گئی ہو۔ فضلو نے جھک کر غور سے دیکھا تو اس کی ران تقریباً نصف کٹ گئی تھی۔ بڑی مشکل سے اس نے شہتیر ہٹا کر اس کی ٹانگ باہر نکالی — اور پھر اس پر رقت طاری ہو گئی۔ وہ اس سے لپٹ کر روندھی ہوئی آواز میں پکارنے لگا "بخشو! او محمد بخش میرے یار۔ آنکھیں کھولو۔ دیکھو میں فضلو بول رہا ہوں۔ میرا مکان تو گر چکا ہے۔ اب سب تیرا ہی ہو گیا ہے۔ دیکھو تو سہی۔ اوپر چھت کی طرف دیکھو۔ تم جونہی آنکھیں کھولو گے میں چلا جاؤں گا۔ لیکن تم یہ کیا کر رہے ہو۔ ایسا نہ کرو۔ میں اکیلا رہ جاؤں گا۔ مجھے یہاں تمہارے سوا کوئی نہیں جانتا۔ اور تم بھی ..... اور بخشو ..... بخشو!" اس کی آواز رندھ گئی اور وہ پھوٹ پھوٹ کر رونے لگا۔

کچھ دیر بعد ایک ایمبولنس نے بخشو کو بے ہوشی کے عالم میں ہسپتال پہنچا دیا۔ اور فضلو ہسپتال کے برآمدے میں مرغ کی طرح سکڑ کر ایک بنچ پر بیٹھ گیا۔ اور وہ اندر سے آنے جانے والے ہر آدمی کی طرف یوں بے تاب نظروں سے دیکھتا جیسے کوئی مسیحا آ رہا ہو۔ پھر اس کی نظر آپریشن کرنے والے ڈاکٹر پر پڑی جو غالباً ابھی بخشو کے پاس سے ہو کر آ رہا تھا۔ وہ یکدم اٹھ کھڑا ہوا اور سہمے ہوئے انداز سے ڈاکٹر کے قریب پہنچ کر سوالیہ نظروں سے اس کے چہرے کی طرف دیکھنے لگا۔

"تم ہو اس کے وارث؟" ڈاکٹر نے فضلو سے پوچھا۔

"جی، جی، ڈاکٹر صاحب" فضلو نے دھڑکتے ہوئے دل سے جواب دیا۔

"اس کا خون بہت ضائع ہو گیا ہے۔ اسے کافی خون کی ضرورت ہے۔ کون کون دے گا خون اس کے لئے؟" "اور تو کوئی نہیں پر میں دوں گا اکیلا ڈاکٹر صاحب۔ میرا تمام خون نچوڑ کر اسے دے دو بس وہ بچ جائے!" فضلو تجسس آمیز لہجے میں بولا۔

"اچھا تم میرے ساتھ اندر آ ؤ۔" ڈاکٹر نے اسے کمرے کی طرف اشارہ کرتے ہوئے کہا۔

فضلو کے سینے میں تناؤ پیدا ہو گیا اور وہ خون کا ابلتا ہوا چشمہ بن کر ڈاکٹر کے ساتھ اندر کمرے میں داخل ہو چکا تھا:

★

مشرقی پاکستان:

"دکھی شاہ زادی"

(بنگلا لوک کہانی)

یونس احمد

مشرقی پاکستان کی لوک کہانیوں میں "پری بانو" کی کہانی بڑی ہی دل گداز ہے اور درد و سوز سے لبریز۔ اس میں ایک مغل شہزادے اور اس کی لڑکی، پری بانو' کی بے بسی و بیکسی کی جو تصویر کھینچی گئی ہے وہ کہاں تک قابل قبول ہے اور تاریخی اعتبار سے کہاں تک درست، اس کے بارے میں کئی رائیں ہو سکتی ہیں۔ مگر لوک کہانیاں یونہی مشہور ہو جاتی ہیں اور جرح و نقد کی متحمل نہیں ہو سکتیں۔ یوں اس بات سے انکار نہیں کیا جا سکتا کہ یہ شہزادہ بنگال دیس سے ہو کر انتہائی بے بسی کے عالم میں اراکان ضرور پہنچا تھا۔ "پور بو بنگو گیتیکا" (مشرقی بنگال کے گیت) کے فاضل مصنف ڈاکٹر دینیش چندر سین نے بھی اس سلسلہ میں کچھ لکھا ہے۔ ایک جگہ کہتے ہیں:

"پری بانو کی کہانی چاٹگام کے علاقوں میں بیحد مقبول ہے۔ یہ کہانی منظوم ہے اور اتنی پُر تاثیر کہ تاثر میں اضافہ کے لئے سارنگی، خنجری' یا دوسرے کسی ساز کے استعمال کی ضرورت ہی نہیں ہوتی۔ کچھ عرصہ ہوا آسو توش چودھری نے چاٹگام سے 'پری بانو' سے متعلق مجھے حسب ذیل تحریر روانہ کی تھی:

" آزاد آباد کے ایک صاحب، خلیل الرحمٰن کی زبانی 'پری بانو' کی منظوم کہانی کا مختصر حصہ میں سن چکا ہوں۔ یہ کہانی میرے دل کو بہت بھائی اور میں اس کی تفصیل جاننے کے لئے بڑا بیتاب رہا۔ کچھ دن کے بعد مہیش کھالی دیپ' میں دھن جے بروا کے ساتھ میں نے اس موضوع پہ تبادلہ خیال بھی کیا۔ انہوں نے مجھے 'گورستان' نامی ایک مقام میں جانے کی ہدایت کی کیونکہ ان کے قول کے مطابق انہوں نے یہ منظوم کہانی وہیں پر سنی تھی۔ چنانچہ میں وہاں گیا بھی لیکن تلاش و جستجو کے باوجود اس کہانی کی تاریخی اصلیت اور جزئیات کے جاننے میں کوئی کامیابی نہ ہوئی۔ البتہ اراکان کے اندرونی علاقے منگبمو ضلع ڈویژن' کے رہنے والے ایک صاحب ہیں، مولوی ابوالحکیم صاحب' انہوں نے مجھے اس کے چند بند ضرور سنائے جو انہیں یاد تھے۔ انہوں نے یہ بھی کہا کہ منگبمو میں، جس کا جدید نام ہوہونگ ہے'، شہزادہ کے نام پر ایک مسجد اور تالاب اب بھی بنا ہوا ہے اور تاریخ اتحام وتحانی سے کہ شہزادہ ادھر ضرور آیا تھا اور یہیں عالم جلاوطنی میں وہ اس دنیا سے سدھارا ہے۔"

بہر حال اصل تاریخی واقعہ کچھ بھی ہو اتنی بات ضرور ہے کہ شہزادہ کو اراکان میں حادثات ضرور پیش آئے تھے۔ "پری بانو" کے علاوہ "شاہ زادی کا ماتم" کے عنوان سے ایک اور منظوم کہانی بھی یہاں چاٹگام کے اندرونی علاقوں میں بڑے شوق سے پڑھی اور سنی جاتی ہے۔ اس کے واقعات بھی کم و بیش اسی طرح کے ہیں۔

"پری بانو" کی منظوم کہانی کس نے لکھی اور کب لکھی گئی اور اس کی اصل تاریخ کیا ہے، اس کا کوئی سراغ نہیں ملتا۔ اس لئے اس کہانی کو محض عوامی قصہ گوئی کا نمونہ ہی سمجھنا چاہیئے۔ اس کہانی کی سب سے بڑی خوبی فضا ––– اور ماحول ہے جو خالصتاً مقامی ہے۔ اصل زبان بھی بڑی رسیلی اور دل پر فوری اثر کرنے والی استعمال کی گئی ہے۔ اب میں اس کہانی کو پیش کرتا ہوں:

قسمت بھی کیا کیا لیل و نہار دکھاتی ہے۔ پری بانو کو دریا
کی غضبناک لہروں نے نگل لیا! میں یہ المیہ کیسے بیان کروں۔
الفاظ نہیں ملتے کہ اُس کے آخری سانسوں کا حال بیان
کر سکوں، کیا درد بھری کہانی ہے!

اس دنیا میں مکر، فریب، چھل' اور کپٹ کے سوا کچھ نہیں'

جدھر دیکھو قتل و غارت گری کا بازار گرم ہے، شمشیریں
نیام سے باہر نکل رہی ہیں اور کشتوں کے پشتے لگتے جا رہے ہیں۔
یہ تخت و تاج، یہ دھن دولت، یہ جہانبانی و جہانگیری
کچھ بھی تو نہیں!

شہزادہ کی داستان آج بھی خون کے آنسو رلاتی ہے۔
تخت و تاج سے محرومی، بھائیوں سے نزاع، جلاوطنی
کی زندگی ــــ اُس کی زندگی بالکل بے کیف اور بے رس تھی، ہر راحت
سے محروم، یہ جاہ و جلال اور مال و متاع کس کام کے جب بھائی بھائی
میں ٹھن جائے۔ ایسی شاہی سے تو بھکاری بننا بہتر جو دوسروں کے
محتاج تو ہیں پر سوتے ہیں سکھ کی نیند۔
یہ تخت و تاج، یہ دھن دولت، یہ جہانبانی و جہانگیری کچھ
بھی تو نہیں!
روز روز کے جنگ و جدال سے تنگ آکر آخر ایک دن شہزادہ
نے رختِ سفر باندھا ــــ مایوس، بےمراد شہزادہ۔ پری بانو اس کے
ساتھ تھی۔ زادِ راہ کے لئے خزانۂ شاہی سے کچھ اشرفیاں اور سونا چاندی
اس نے ساتھ لے لیا تھا۔ دونوں سفر کی سختیاں، صعوبتیں برداشت
کرتے غنیموں سے بچتے چاٹگام تک جا پہنچے۔

جلاوطنی نے آخر کار دونوں کو نڈھال اور بے سُدھ کر دیا تھا۔
دونوں کی آنکھوں سے نہ جانے آنسوؤں کے کتنے دریا بہہ گئے تھے۔
چاروں طرف محرومی و نامرادی تھی۔ تاریکیوں کی چادریں دبیز سے
دبیز تر ہوتی چلی گئیں۔ ایک گہرا سناٹا تھا جو ان کی ہنگامہ آفریں
زندگی میں داخل ہو چکا تھا۔
چاٹگام کے قیام کے دوران جب ان کی قسمت کا اندھیرا
دور نہ ہوا تو وہاں سے بھی ان کے قدم اکھڑ گئے اور دونوں ہاتھی پر
سوار ہو کر جنوب کی اَور روانہ ہوئے۔ پری بانو کا حُسن چودھویں
رات کے چاند سے بھی زیادہ روشن تھا ــــ لیکن حسن کی چمک
وقت کے بےرحم ہاتھوں سے آہستہ آہستہ دھندلاتی جا رہی تھی ــــ
دونوں چپ چاپ آگے بڑھتے گئے۔ منزل سے بے پروا!
انہیں منزل تک پہنچنے کی کوئی لگن بھی نہ تھی۔

ہواؤں کا تیز جھونکا آتا تو پری بانو کے ریشمی ملبوس کا
آنچل پرچم کی طرح لہرانے لگتا ــــ اور چند لمحے کے لئے اُس کے اُداس
رخساروں پر سرخ سیب کا سا رنگ دوڑ جاتا۔
پری بانو کے جسم پر جو گہنے تھے وہ سورج کی روشنی میں یوں
دمک رہے تھے جیسے روشنی کا فوارہ چھوٹ رہا ہو۔ جس نے بھی ان کو
دیکھا ان کی تکلیفیں دیکھ کر کلیجہ منہ کو آتا اور اُس کی آنکھیں بھر آتیں۔
کون تھا جو ان کی بےبسی پر نہ رویا ہو۔ عورتیں ان کی مصیبت دیکھ کر آہ و بکا
کرنے لگتیں۔ جوان لڑکیاں دھاڑیں مار مار کر رونا شروع کرتیں۔
ہائے ری قسمت کی ستم ظریفی! گاؤں کی ناریوں میں باتیں ہوتیں۔
"یہ کون بہشتی حور ہے جو یوں جنگل جنگل بھٹک رہی ہے؟
یہ بے مثال حُسن، یہ پُر وقار چہرہ،
یہ طلائی زیوروں کی نور افشانی،
زندگی کا یہ المیہ کتنا سبق آموز ہے!"
گاؤں کی اُن ناریوں کو شہزادہ اور پری بانو کے حالِ زار پر
رحم آگیا۔ کسی نے آگے جانے سے منع کیا۔ کسی نے دوسری اَور جانے
کا اشارہ کیا۔ کسی نے اپنے گھر میں مہمان بنانے کی دعوت دی۔
کسی نے کہا ــــ
"شہزادی تم میرے گھر چلو۔ میں تمہیں تلسی جیسا خوشبودار
چاول کھلاؤں گی۔ میں تمہیں پان کی ایسی گلوری بنا کر دوں گی جسے
کھا کر تمہارے خشک لب تازہ اور سرخ ہو جائیں گے"!

کسی نے کہا:
"دکھن اَور نہ جاؤ۔ پہاڑوں کا لامتناہی سلسلہ اور جنگل تمہاری
راہ میں حائل ہوں گے جہاں خونخوار شیر رہتے ہیں۔
ادھر نہ جاؤ خدا کے لئے ورنہ شیر تمہیں اپنا لقمہ بنائیں گے۔
کچھ اور آگے بڑے بڑے دریا ملیں گے جن کی سرکش موجوں
سے کسی کو مفر نہیں ــــ ان موجوں کے نیچے گھڑیال بھی تاک میں رہتے
ہیں۔ نہ جاؤ اُدھر، نہ جاؤ اُدھر!"

کوئی کہتی رہی:
آگے گھنے جنگل ملیں گے جہاں زہریلے سانپ رہتے ہیں،

جن کے کاٹے کا کوئی علاج نہیں
ایسی موت سے بھلا کیا حاصل!
پری بانو، خدا کے لئے ان جنگلوں میں نہ جاؤ۔ کہتے ہیں وہاں آدم خور بھی ہوتے ہیں —!
کسی نے نصیحت کی:
اُدھر دریائی ڈاکو ہیں جو مسافروں کو پل بھر میں لوٹ لیتے ہیں۔
میری بات مانو تو اُدھر کا رُخ نہ کرو!

لیکن دونوں ہاتھی کی پشت پر بیٹھے چلتے رہے — انجام سے بے پروا۔

یہاں تک کہ تیرہ دن کی صعوبتیں جھیلنے کے بعد ان کے سامنے ٹھاٹھیں مارتا ہوا دریا حائل ہوگیا۔ موجیں ساحل سے یوں سرپٹ رہی تھیں جیسے دریا بھیانک آندھی سے لڑ رہا ہو۔ شہزادے کی ہمت جواب دے گئی۔ پری بانو کی آنکھوں تلے اندھیرا چھا گیا — اتنا بڑا دریا کیسے پار کیا جائے گا۔

اسی پریشانی کے عالم میں تین دن بیت گئے۔ چوتھے روز ایک اراکانی ادھر آنکلا۔ اُس نے شہزادہ کی دل گداز داستان سنی تو اس کا بھی جی بھر آیا۔ اس نے شہزادہ اور پری بانو کو اراکان چلنے کی دعوت دی۔ دونوں تیار ہوگئے اور اس طرح وہ اراکان پہنچ گئے۔ یہاں کا حکمراں شہزادہ کی آمد کی خبر سن کر گھبرا گیا۔ اُس کو گمان ہوا کہ شہزادہ چڑھائی کی غرض سے اُس کے ملک میں داخل ہوا ہے۔ چنانچہ اس نے فوراً فوجیں جمع کیں۔ لیکن بعد میں جب اسے اصل حالات کا علم ہوا کہ شہزادہ بالکل نہتا ہے اور اس کی حالت بڑی زبوں ہے تو اس نے شہزادہ کو اپنے یہاں پناہ دے دی۔

آگے کی یہ روح فرسا داستان ہائے کیسے بیاں کروں —!

طمع اور لالچ کا بندہ انسان خود غرضی اور ہوس دنیا کے معاملہ میں اپنا کوئی جواب نہیں رکھتا — یہ دو دن کی مختصر اور بے ثبات زندگی ہمیں کیا کچھ نہیں دکھاتی۔

ایک دن کا واقعہ سنو!

پری بانو محل کے باہر دور تک پھیلے ہوئے فطری مناظر کو دیکھ رہی تھی کہ اراکان کا حکمراں ہوا خوری کرتے کرتے اُدھر آنکلا۔ وہ ہاتھی پر سوار تھا اور شاہی جاہ و جلال سے پوری فضا ساکت و خاموش تھی۔ یکایک اس کی نگاہ ہوس نے پری بانو کو دیکھ لیا۔ وہ ٹھٹھک گیا۔ ہاتھی کے قدم بھی رک گئے۔

پیاسے کو پانی اور بھوکے کو روٹی کے سوا اور کیا چاہئے۔

کہتے ہیں راجہ پری بانو کے تصور میں کھو گیا — وہ سچ مچ دیوانہ ہوگیا۔

اراکان کے راجہ کی داستانِ عشق جب شہزادے کو معلوم ہوئی تو اُس کی آنکھوں سے ساون بھادوں کی جھڑی لگ گئی۔ اس نے اپنا دل ڈوبتا ہوا محسوس کیا۔ اُس کی کائناتِ زندگی میں اور رہ کیا گیا تھا — نہ تخت و تاج کی تمنا تھی، نہ دھن دولت کی آرزو۔ اس کے لئے پری بانو ہی دنیا کی سب سے بڑی دولت تھی۔ اُس نے گلوگیر آواز میں پری بانو سے کہنا شروع کیا:

"تخت و تاج ہاتھ نہ آیا، ملک چھوٹا، اپنے پرائے ہوئے، احباب نے منہ موڑ لیا۔ تمہارے علاوہ دنیا میں میرا اب ہے کون؟ تمہاری ہی وجہ سے میری بے کیف زندگی میں تھوڑی سی رمق باقی رہ گئی ہے۔ اگر تم کو بھی کسی نے مجھ سے چھین لیا تو میں کیا کروں گا۔ میرے دل کی دنیا سُونی ہو جائے گی۔

شہزادے کی اشک آلود آنکھیں دیکھ کر اور یہ غم انگیز باتیں سن کر پری بانو کا دل بھی بھر آیا۔ وہ سوچنے لگی — مصائب و آلام کے اتنے سارے پہاڑ ایک دم سے یکایک کیوں ٹوٹ پڑے۔ اب راجہ ہمارا دشمن ہوجائے گا۔

آخرکار دونوں نے ملک کو چھوڑ دینے کا منصوبہ بنایا۔ آخر شب کو دونوں چپ چاپ، چھپتے چھپاتے نکل گئے اور انہوں نے پیچھے مڑ کر بھی نہ دیکھا۔ ان کے پاؤں اتنی تیزی سے اُٹھ رہے تھے جیسے اُن میں بجلی سما گئی ہو۔

چلتے چلتے دونوں ایک دریا کے کنارے پہنچے — خستہ حال اور بے جان۔ ڈر، خوف اور پریشانی سے دونوں مضمحل ہو چکے تھے۔ بارے ایک ماہی گیر کی ناؤ نظر آئی۔ جان میں جان آئی۔ شہزادے نے ماہی گیر کی منت کرتے ہوئے کہا۔

"تم ہمیں اپنی ناؤ دے دو۔ اس کے بدلے میں تم کو مالامال

(بقیہ صفحہ ۱۰۰ پر)

ڈرامہ۔

"ناآشنا"

اصغر بٹ

وقت: صبح ۔ ایک امیر گھر میں ملاقات کا وسیع کمرہ ۔
پچھلی دیوار میں ایک بڑا آبنوسی دروازہ جو ڈیوڑھی نما برآمدے میں کھلتا ہے ۔ برآمدے سے پرے پورچ اور اس سے پرے باغ ۔ آبنوسی دروازے کے سامنے چونکہ دبیز مخمل کے پردے لٹک رہے ہیں اس لئے سوائے پچھلے برآمدے کے آوازوں کے حاضرین تک اور کوئی آواز نہیں پہنچ سکتی ۔ کمرے کے بائیں کونے میں سیڑھیاں جو گھوم کر دائیں جانب اوپر کو پہنچتی ہیں ۔ چمکدار لکڑی کا کٹہرا کمرے میں بیل کی طرح لہرا کر نکل گیا ہے ۔
سیڑھیوں کے نیچے پچھلی دیوار سے لگا ہوا ایک معمر آدمی کا مجسمہ ۔ بائیں جانب سامنے تین گدّے دار آرام کرسیاں ۔ ان کے سامنے ایک تپائی ۔ دائیں جانب سامنے ایک خوبصورت بڑی سی سیاہ تپائی پر سفید رنگ کا ٹیلیفون ۔ دائیں جانب پچھلے کونے میں ایک صوفہ اور اس کے ساتھ صوفے کی دو کرسیاں ۔
دو چھوٹی تپائیوں پر چاندی کے گلدان اور راکھدان ۔ پورے کمرے میں بڑا ایرانی قالین ۔ دائیں دیوار میں بھی ایک دروازہ نظر آتا ہے جس پر ویسے ہی دبیز مخملی پردے پڑے ہوئے ہیں پچھلی دیوار پر ایک چھوٹا سا قیمتی قالین لٹک رہا ہے جس پر کوئی طغرا بنا ہوا ہے ۔ کمرے کا فرنیچر جدید اور رنگ ڈھنگ جدید و قدیم امیرانہ ذوق کے امتزاج کا نمونہ مجموعی تاثر بے حد اچھا ۔
پردہ اٹھتا ہے تو تقریباً پینتیس برس کا ایک مرد جس نے قیمتی سوٹ پہن رکھا ہے پچھلے دروازے میں سے داخل ہوتا ہے ۔ شریف، حساس اور ذہین چہرہ جو خوبصورت تو نہیں لیکن پُرکشش ضرور ہے ۔ وہ ذرا تجسس سے چاروں طرف کمرے کو دیکھتا ہے ۔
باہر کا دروازہ بند ہونے کی آواز ۔

★

نو وارد۔ (پلٹ کر آواز دیتا ہے): تور گل! بھئی میرا اٹیچی لیتے آنا۔
(پچھلے دروازے سے ایک پٹھان شوفر نیلے رنگ کی وردی پہنے ہاتھ میں اٹیچی لئے، داخل ہوتا ہے)

تور گل:۔ یہ تو میں نے خود ہی نکال لیا تھا، صاحب ۔

نو وارد:۔ ہاں کچھ بدل گیا ہے ۔ جب میں پچھلی دفعہ یہاں آیا تھا ......

تور گل:۔ جی ہاں، بیگم صاحب نے سب چیز بدل دیا ہے۔ آپ کا کمرہ تو اوپر ہی ہوگا نا؛
(سیڑھیوں کی جانب چلتا ہے)۔

نو وارد:۔ (ٹیلیفون کو دیکھ کر حیرت سے): اور یہ ٹیلیفون! یہ کب لگا؟

تور گل:۔ (رک کر) کوئی ایک مہینہ ہوا صاحب ۔

نو وارد:۔ اچھا، خان نے مجھے نہیں بتایا ۔

تور گل:۔ بڑا رقم خرچ ہوگیا صاحب ۔ ریلوے اسٹیشن سے لائن کھینچ کر لائے ہیں ۔

نو وارد:۔ یعنی پانچ میل سے!

تور گل:۔ سارا اپنے خرچہ پر کیا صاحب، ٹیلیفون والا کہتا تھا غیر علاقے میں ہم ٹیلیفون نہیں لگا کر دے گا ۔

نو وارد:۔ پھر؟

نورگل :۔ پھر بیگم صاحب نے خان سے بولا لاٹ صاحب کو چٹھی لکھو اور لکھو کہ جب ہم سارا خرچہ خود دے گا تو ٹیلیفون والا کیوں لگا کر نہیں دیتا۔

نووارد :۔ ہاں لاٹ صاحب، خان کی بڑی عزت کرتا ہے۔

نورگل :۔ خان بولتا تھا چھوڑو۔ لیکن بیگم صاحب نہیں مانتا تھا۔ دو مہینے ہوئے جب لاٹ صاحب ادھر دورے پر آیا تو بیگم صاحب نے خود ان سے بولا۔

نووارد :۔ (پھر کمرے کو چاروں طرف دیکھ کر) بیگم صاحب نے واقعی نقشہ بدل دیا ہے (نورگل سے جو سیڑھیوں کی طرف جا رہا ہے) تو کیا بیگم صاحب نے کہا تھا کہ ہمارا کمرہ اوپر ہوگا؟

نورگل :۔ نہیں صاحب۔ لیکن آپ جب بھی کبھی آتا ہے تو اوپر ٹھہرتا ہے۔

نووارد :۔ وہ بیگم صاحب کی حکومت سے پہلے کی بات ہے۔ خان کی شادی کے بعد میں پہلی دفعہ آیا ہوں۔ ممکن ہے میرا انتظام اب کے مہمان خانے میں ہو۔

(پچھلا دروازہ کھٹکھٹایا جاتا ہے)

نورگل :۔ (اٹیچی سیڑھیوں کے پاس رکھ کر پلٹتا ہے) میں دیکھتا ہوں صاحب، کون ہے۔

(پچھلے دروازے سے نکل جاتا ہے۔ ٹیلیفون کی گھنٹی بجتی ہے)

نووارد :۔ (ٹیلیفون اٹھا کر) ہیلو! میں شاہ زمان خان کے گھر سے بول رہا ہوں..... جی نہیں میرا نام شاہ زمان خاں نہیں ہے۔ میں ان کا ایک دوست ہوں جی مجھے معلوم نہیں۔ ابھی ابھی آیا ہوں.... میرا خیال ہے آپ مجھے نہیں جانتے..... جی میرا نام نوید ہے... جی بیرسٹر نوید..... بڑی خوشی کی بات ہے آپ مجھے جانتے ہیں.....

(نورگل ہاتھ میں لفافہ لئے داخل ہوتا ہے)

ایک منٹ ٹھہریئے۔ میں پوچھتا ہوں (ٹیلیفون پر ہاتھ رکھ کر نورگل سے) یہ ڈاکٹر قاسمی بول رہے ہیں۔ کہتے ہیں انہوں نے اپنے آنے کی اطلاع دی تھی اور ان سے کہا گیا تھا کہ گاڑی انہیں لینے کے لئے اسٹیشن آئے گی۔

نورگل :۔ صاحب یہ تار آیا ہے۔ آپ یہ لیں۔ میں بات کرتا ہوں (تار دیکر نوید کے ہاتھ سے ٹیلیفون لے لیتا ہے)۔ صاحب میں خان کا ڈرائیور بول رہا ہوں۔ ہم خود اسٹیشن پر خان کے مہمان کو لانے کے لئے گیا تھا۔ (نوید جو کچھ سوچ میں ہے۔ تار کو الٹ پلٹ کر کھول لیتا ہے اور جلدی سے پڑھ کر نورگل کو متوجہ کرنے کی کوشش کرتا ہے) جی..... بیگم صاحب نے صرف یہ بولا تھا کہ ہمارا مہمان آرہا ہے۔ ان کو لے آؤ۔ جب ہم اسٹیشن پر پہنچا تو نوید صاحب ہمیں نظر آیا۔ اگر وہ بولتا کہ کوئی اور بھی مہمان ہے..... ایک منٹ صاحب.....

(نورگل نے نوید کی پریشانی دیکھ لی ہے اور وہ ٹیلیفون پر ہاتھ رکھتا ہے)۔

نوید :۔ (جلدی سے) یہ میرے آنے کی اطلاع کا تار ہے۔ اس کا مطلب یہ ہے کہ خان کو میرے آنے کی خبر ہی نہیں ہوئی۔ تم ٹیلیفون مجھے دو اور فوراً گاڑی لے کر ڈاکٹر صاحب کو اسٹیشن سے لے آؤ۔

نورگل :۔ (ٹیلیفون نوید کے حوالے کر کے) بہت بہتر (بھاگتا ہوا پچھلے دروازے سے نکل جاتا ہے)۔

نوید :۔ (میٹھے لہجے میں) معاف فرمایئے ڈاکٹر صاحب، آپ کو زحمت ہوئی۔ میں نے ڈرائیور کو بھیج دیا ہے۔ وہ ابھی پانچ منٹ میں پہنچ جائے گا۔ ادھر سے پہاڑ کی اترائی ہے، اس لئے گاڑی جلدی پہنچ جائے گی۔ جی ہاں مجھے معلوم ہے کہ یہاں سواری نہیں ملتی اور غیر علاقے میں گذر کر آنا بھی آسان نہیں..... نہیں نہیں گھبرایئے نہیں آپ اسٹیشن پر ہی رہئے۔ یہاں سب کو معلوم ہے کہ آپ خان کے مہمان ہیں۔ کوئی آپ سے کچھ نہیں کہے گا۔ جی ہاں مجھے معلوم ہے اسٹیشن ماسٹر بڑا اچھا آدمی ہے..... اصل میں گڑبڑ یہ ہوئی کہ میں نے اپنے آنے کا جو تار کل دیا تھا

وہ آج میرے یہاں پہنچنے کے بعد آیا ہے۔ اس لئے بیگم
شاہ زماں کو صرف آپ کے آنے کی اطلاع تھی اور انہوں نے
ڈرائیور سے بھی ایک ہی مہمان کا ذکر کیا۔ ڈرائیور مجھے
جانتا ہے اس لئے اس نے پلٹ کے دیکھا ہی نہیں کہ کوئی
اور بھی ہے..... (ہنس کر) جی ہاں اچھا خاصا لطیفہ
ہوگیا۔ بہرصورت معذرت چاہتا ہوں کہ میری وجہ سے
آپ کو زحمت ہوئی.... جی ہاں، ابھی ملاقات ہوگی آپ سے۔
انشاء اللہ! (ٹیلیفون بند کر دیتا ہے)۔

(دائیں جانب پردہ ہٹا کر تقریباً پچیس برس کی ایک
خوبصورت عورت داخل ہوتی ہے۔ اس نے قمیض
شلوار اور دوپٹہ پہن رکھا ہے۔ آنکھوں میں
تیزی حرکات میں بھرپور جوانی کی خود اعتمادی۔)

بیگم زماں:- السلام علیکم ڈاکٹر صاحب، میں نے کار کی آواز سنی تو آگئی۔ ابھی خان کو آپ کے آنے کا پتہ نہیں چلا۔ مجھے بے حد خوشی ہے کہ آپ توقع سے دس منٹ پہلے ہی پہنچ گئے۔

نوید:- وعلیکم السلام (ذرا تذبذب کے ساتھ) اگر ڈاکٹر دس منٹ بعد پہنچ جاتا تو کیا فرق پڑتا۔

بیگم زماں:- پھر وہ مجھے آپ سے بات نہ کرنے دیتے۔

نوید:- (جو ابھی تک تذبذب میں ہے) تو کیا کوئی ایسی بھی بات ہے جو آپ خان سے چھپا کے کہنا چاہتی ہیں؟

بیگم زماں:- ڈاکٹر صاحب آپ میرے میاں کو نہیں جانتے۔ وہ بڑے ضدی آدمی ہیں۔ انہوں نے سوچ لیا ہے کہ میں آپ کو واقعات ٹھیک طور سے نہیں بتاؤں گی۔

نوید:- جی۔

بیگم زماں:- اور اب آپ سے کیا پردہ۔ وہ دراصل آپ کو بلوانے کے سرے سے خلاف تھے۔

نوید:- بیگم زماں میں اپنا تعارف کرا دوں۔ میں دراصل....

بیگم زماں:- (ٹوک کر) نہیں نہیں، آپ خواہ مخواہ برا مان گئے۔ یہ ان کا ڈاکٹروں سے بچنا بذاتِ خود غور طلب ہے۔ آپ تشریف رکھئے تا۔ میں جلدی جلدی آپ کو ان حالات سے آگاہ کر دوں جن سے ان کے علاج میں بڑی مدد ملے گی۔

(سیڑھیوں کے سامنے پڑی ہوئی تین کرسیوں میں سے درمیانی
کرسی پر بیٹھ جاتی ہے نوید بائیں کرسی پر بیٹھ جاتا ہے)

نوید:- دیکھئے ہوا یہ کہ میں مصروفیت کی وجہ سے اپنے آنے کی اطلاع بر وقت نہ بھجوا سکا.....

بیگم زماں:- (پھر بات کاٹ کر) نہیں آپ کے آنے کی اطلاع تو بر وقت مل گئی تھی۔ میں نے جان بوجھ کر سارے واقعات لکھ کر بھیجنا مناسب نہیں سمجھا۔ مجھے معلوم ہے آپ بہت مصروف ہیں۔ لیکن چونکہ آپ کو واپسی کی گاڑی پانچ گھنٹے سے پہلے نہیں ملے گی اس لئے میں نے سوچا زبانی بتا دوں گی۔ یہ اور بھی اچھا ہوا کہ خان کو دیکھنے سے پہلے ہی ہماری بات ہوگئی۔

نوید:- (مسکراتے ہوئے) بیگم زماں، میرا خیال ہے آپ کو اپنے میاں سے الگ کوئی بات مجھے نہیں بتانی چاہیئے۔ خصوصاً جب میں آپ کے میاں کو پہلے سے بھی جانتا ہوں مجھے عرض یہ کرنا تھا.....

بیگم زماں:- (ذرا برا مان کر اور پھر بات کاٹ کر) ظاہر ہے آپ میرے میاں کو جانتے ہوں گے۔ وہ کوئی ایسے گمنام تو ہیں نہیں۔ لیکن ڈاکٹروں سے ہر طرح کی بات کی جا سکتی ہے۔ اور آپ پر تو مجھے یوں بھی حق ہے۔ آپ کو شاید معلوم نہیں۔ آپ میرے بڑے بھائی زوار کے معالج بھی رہے ہیں۔

نوید:- (سوچتے ہوئے) زوار؟

بیگم زماں:- زوار جو آجکل کمشنر ہیں۔ انہوں نے ہی تو آپ کا نام تجویز کیا تھا۔

نوید:- جی ہاں میں زوار صاحب کو جانتا ہوں۔ لیکن بحیثیت ڈاکٹر کے نہیں۔ میں انہیں.....

بیگم زماں:- بیشک۔ انہوں نے کہا تھا آپ ڈاکٹر کے علاوہ ان کے بہت اچھے دوست بھی ہیں۔

نوید:- (مسکرا کر) میں زماں صاحب کا بہت اچھا دوست ہوں اور میرا......

بیگم زماں:- ظاہر ہے ڈاکٹر کو مریض کا بے حد اچھا دوست

ہونا چاہیئے اور پیشتر اس کے کہ وہ آجائیں اور ہمیں بات
کرنے کا موقع نہ ملے، میں جلدی جلدی عرض کر دوں انہیں
ایک بیحد مخلص اور اچھے دوست کی ضرورت ہے۔ ابھی تک
انہوں نے صرف ایک شخص سے دوستی کی ہے اور میرے
خیال میں وہ خاصا غلط آدمی ہے۔

نوید :۔ (تجسس سے) وہ کون ہے؟

بیگم زماں :۔ لاہور کا ایک بیرسٹر، نوید۔

نوید :۔ (چونک کر) جی!

بیگم زماں :۔ آپ کی حیرت بالکل بجا ہے۔ یہ بیرسٹر لوگ خاصے غلط
دوست ثابت ہو سکتے ہیں۔

نوید :۔ مگر مجھے تو یاد نہیں پڑتا کہ مجھ سے کوئی ایسی غلطی سرزد
ہوئی ہو۔

بیگم زماں :۔ آپ سے نہیں۔ توبہ! آپ غالباً میری بات نہیں
سن رہے ہیں۔ میں نوید بیرسٹر کا ذکر کر رہی ہوں۔ اگر
اس نے ان کو غلط راستے پر نہ لگایا ہوتا تو آج آپ کو
زحمت اٹھا کر یہاں آنا نہ پڑتا۔

نوید :۔ (گلا صاف کرتا ہے) بیگم زماں حاشا و کلّا، مجھے
زماں صاحب کی غلط حرکتوں کا علم نہیں تھا ورنہ...

بیگم زماں :۔ (جلدی سے بات کاٹ کر) نہیں نہیں میرا یہ مطلب
نہیں۔ مجھے معلوم ہے آپ سرجن ہیں اور آپ کو ایسے
امراض سے واسطہ نہیں اور خدا نہ کرے
میرے میاں کو کوئی ایسی بیماری ہو۔ میں نے آپ کو
لکھ دیا تھا ہمیں ان کے گھٹنوں کے بارے میں مشورہ
کرنا ہے۔ میں بیرسٹر نوید کا جو ذکر کر رہی تھی تو اس لئے
کہ ان کو اس حالت تک پہنچانے میں ان حضرت کا بڑا
ہاتھ ہے۔

نوید :۔ جی؟

بیگم زماں :۔ جی ہاں۔ وہ اصل میں کوئی بڑے "ڈان جوان" قسم
کے نوجوان تھے اپنے وقتوں میں!

نوید :۔ (جھینپ کر) میرا خیال ہے آپ کی اطلاع اس سلسلے
میں صحیح نہیں ہے میں خود.....

بیگم زماں :۔ اطلاع صحیح نہیں ہے! آپ خود خیال فرمایئے میرے
میاں اچھے بھلے کپتان تھے۔ بیحد اچھے افسر سمجھے جاتے تھے،
لوگوں کا خیال تھا کہ اگر وہ اسی عہدے پر فائز رہتے
تو جانے کہاں سے کہاں پہنچ جاتے۔ ان صاحب نے مشورہ
دیا چلو رائڈنگ کلب کے ممبر بنتے ہیں۔ چلئے یہاں تک
بھی ٹھیک ہے۔ میرے میاں بڑے اچھے سوار تھے۔
سب ٹھیک رہتا۔ لیکن اس نے مشورہ دیا پولو کلب
کے ممبر بنو۔ انہیں جو حادثہ پیش آیا وہ اس ہی کے
سبب تھا۔ گھوڑے سے گرے اور دونوں گھٹنے
ٹوٹ گئے۔

نوید :۔ لیکن یہ تو محض حادثہ ہے، اس میں اس بیچارے کا کیا
قصور؟

بیگم زماں :۔ اس کا یہ قصور ہے کہ خود تو رائڈنگ کلب ہی کے ممبر رہے
اور پولو کھیلنے کے لئے میرے میاں کو آگے کر دیا!

نوید :۔ تو کیا آپ کا خیال ہے وہ پولو کلب کا ممبر ہو جاتا تو یہ
حادثہ پیش نہ آتا؟

بیگم زماں :۔ ہو سکتا ہے۔ ہو سکتا ہے یہ حادثہ اسے پیش آجاتا۔

نوید :۔ (بے چینی سے کروٹ بدل کر) بیگم زماں تقدیر میں
جو کچھ ہوتا ہے ہو کے رہتا ہے۔

بیگم زماں :۔ خیر یہ بات تو یونہی چل نکلی۔ مجھے دراصل آپ سے
کہنا یہ تھا کہ آپ کو اس کے علاج میں جو سب سے بڑی
دقت پیش آئے گی وہ جراحی کی نہیں، نفسیات کی ہوگی۔

نوید :۔ نفسیات!

بیگم زماں :۔ جی ہاں نفسیات۔ اس افسوسناک حادثے نے انہیں
جسمانی طور پر ہی نہیں، روحانی طور پر بھی ناکارہ
بنا دیا۔

نوید :۔ (پریشانی میں) مگر مجھے ابھی تک جو اطلاع ملی ہے
اس کے مطابق تو ان کی ذہنی حالت بالکل ٹھیک ہے۔

بیگم زماں :۔ جی ہاں یوں تو وہ بالکل ٹھیک ہیں لیکن ان میں
زندگی سے نبرد آزما ہونے کا جذبہ ختم ہو چکا ہے۔
ان کے سامنے ایک ویران مستقبل ہے اور اسے

بسانے کو وہ بالکل تیار نہیں۔

نوید :- (مسکرا کر) ہمیں تو ایسا نظر آ رہا ہے کہ انہوں نے بسا لیا ہے۔

بیگم زماں :- (جملے میں طنز کو نظر انداز کرتے ہوئے) تو کیا آپ کے خیال میں انہیں شادی نہیں کرنی چاہئے تھی؟

نوید :- (جلدی سے) جی نہیں میرا مطلب یہ نہیں تھا۔ میں نے تو یہ عرض کیا کہ جب انہوں نے شادی کا فیصلہ کیا تو ظاہر ہے وہ اپنے مستقبل کو ویران نہیں دیکھ رہے ہوں گے۔

بیگم زماں :- یہی تو بات ہے۔ انہوں نے شادی کا فیصلہ نہیں کیا۔

نوید :- جی۔! میں سمجھا نہیں۔

بیگم زماں :- شادی کا فیصلہ میں نے کیا۔

نوید :- یعنی آپ نے ان کی طرف سے بھی خود ہی فیصلہ کر دیا!

بیگم زماں :- جی ہاں۔

نوید :- خوب! وہ آپ نے جوان کی ذہنی کیفیت والی بات کہی تھی وہ کیا تھی؟

بیگم زماں :- (یکایک ہنس کر) آپ سمجھے نہیں۔ ہوا یہ کہ میں پچھلے سال کالج کی لڑکیوں کو لیکر یہاں کا تاریخی قلعہ دکھلانے آئی تھی......

جاوید :- جی؟

بیگم زماں :- میں نے آپ کو بتایا نہیں کہ میں لاہور کالج میں تواریخ کی لکچرار تھی اور ہسٹاریکل سوسائٹی کی صدر۔ پچھلے سال ہم نے قلعہ دیکھنے کی اجازت طلب کی۔ مگر ان میرے بڑے بھائی کے ماتحت کام کر چکے ہیں۔ انہوں نے نہ صرف سارے انتظامات کر دیئے بلکہ میرے ٹھہرنے کا انتظام بھی زماں صاحب کے ہاں کر دیا۔ ایک روز کیلئے ہم آئے تھے لیکن اتفاقاً دس روز ٹھہرنا پڑا۔

نوید :- اتفاقاً یا عمداً؟

بیگم زماں :- جی نہیں اتفاقاً، ایک لڑکی بیمار ہو گئی تھی۔

نوید :- (شرارت سے) تو تاریخی قلعے کے ساتھ ساتھ ایک تاریخی واقعہ بھی پیش آیا۔

بیگم زماں :- (جھینپ کر) جی ہاں۔ کم از کم ان سے جو جاری گپ چلتی رہی وہ بڑی تاریخی تھی۔ ان کی نظر میں زندگی خزاں تھی، میری نظر میں بہار۔ میں نے سوچا اتنی اچھی شخصیت اس گوشہ نشینی اور تنہائی میں تلف ہو جائے گی۔ اسے بچانے کا ایک ہی طریقہ ہے۔

نوید :- شادی؟

بیگم زماں :- جی ہاں، لیکن ایسی شادی جس میں عورت اپنی تمام خوشیوں کو ان کی خاطر قربان کرنے کو تیار ہو جائے، ان کے ساتھ گوشہ نشینی اور تنہائی کی زندگی بسر کرنے میں اسے عذر نہ ہو۔

نوید :- (ہنس کر) یعنی محض خدمتِ خلق کا جذبہ تھا؟

بیگم زماں :- (پھر جھینپ کر) کوئی عورت محبت کے بغیر ایسی قربانی دینے کو تیار نہیں ہوتی۔

نوید :- اور چونکہ آپ نے گوشہ نشینی اختیار کر لی ہے اس لئے اب آپ کی نظر میں بھی زندگی خزاں ہو گئی ہے۔

بیگم زماں :- (یکایک مرجھا جاتی ہے) اگر ہوتی تو کتنا اچھا ہوتا!

نوید :- (دلچسپی سے) کیا مطلب؟

بیگم زماں :- میں اس کشمکش میں تو نہ ہوتی جس میں کہ ہوں۔

نوید :- (آہستہ سے) یعنی کیا، آپ نے شادی کر کے غلطی کی؟

(بیگم زماں جو دائیں جانب دیکھ رہی ہے فوراً ہونٹوں پر انگلی رکھتی ہے)

بیگم زماں :- میرا خیال ہے خان آ رہے ہیں (کرسی سے اٹھ کر دائیں جانب چلتی ہے، دائیں جانب مریضوں کی پہیوں والی کرسی کو دھکیلتا ہوا ایک باوردی اردلی داخل ہوتا ہے کرسی میں تقریباً نوید ہی کی عمر کا ایک خوبصورت مرد ہے۔ بھورے گھونگھر والے بال، بھوری بھری بھری سی مونچھیں، بڑی بڑی روشن اور سنجیدہ نیلی آنکھیں ایک دم متوجہ کر لیتی ہیں۔ مضبوط بازو اور فراخ شانے۔ ٹانگوں پر سرخ خانوں والا کمبل)

بیگم زماں :- ان سے ملئے، یہ ڈاکٹر قاسمی ہیں۔

شاہ زماں :- (حیرت سے) ڈاکٹر قاسمی؟

نوید :- ہیلو پیارے میں معذرت چاہتا ہوں میرے

آنے کی اطلاع تمہیں بروقت نہ مل سکی۔

خان :۔ (تپاک سے) ہیلو، تمہیں معلوم ہے کہ میں تم سے ناراض ہوں۔

(بیگم زماں حیرت سے کبھی اپنے شوہر کبھی نوید کی طرف دیکھتی ہے)

خان :۔ (بیگم سے) نصرت بھئی یہ نو نوید ہیں (بیگم زماں بھونچکا ہو کر نوید کو دیکھتی ہے)

نوید :۔ آداب عرض! (خان سے) دراصل ان کا قصور نہیں، میں نے اپنا تعارف نہیں کرایا۔ ورنہ یہ مجھے ڈاکٹر قاسمی سمجھ بیٹھیں۔

خان :۔ (مسکرا کر) اچھا تو انہوں نے اپنا تعارف کرا دیا، تم بھی ان کو کوئی اور سمجھے۔

نوید :۔ انہوں نے تو اپنا تعارف نہیں کرایا لیکن میں سمجھ گیا تھا تمہارے جیسے بدھو کے پاس اور کون رہ سکتا ہے۔

(بیگم زماں ایک دم غصے میں پلٹ کر دائیں جانب سے باہر چلی جاتی ہیں)

خان :۔ گدھے! سب لوگ تمہاری طرح نہیں ہیں!

نوید :۔ (ٹوک کر) میرا خیال ہے آپ کی بیگم ناراض ہو گئی ہیں۔

خان :۔ جس نے پہلی دفعہ بیگم کی عدم موجودگی پر دھیان دیا ہے، اچھا کہاں گئیں وہ؟
(آواز دے کر) نصرت .... نصرت ......
(پھر نوید سے) واقعی وہ تو غائب ہو گئیں۔ دراصل تم بدتمیزی سے باز نہیں آتے۔ (اردلی سے) تم جاؤ، ہم ابھی آتے ہیں۔

(اردلی پچھلے دروازے سے باہر چلا جاتا ہے)

نوید :۔ یار واقعی غلطی ہو گئی۔ فقرہ آگیا زبان پر اور روک نہ سکا۔ مجھے خیال ہی نہیں آیا کہ وہ برا مان جائیں گی۔

خان :۔ ہاں وہ میری معذوری کے معاملے میں بہت حساس واقع ہوئی ہیں۔ خیر چھوڑو اس بات کو۔ یہ بتاؤ میری شادی پر کیوں نہیں آئے؟

نوید :۔ (سیڑھیوں کے سامنے پڑی ہوئی دائیں کرسی پر بیٹھتے ہوئے) میں نے تو تمہیں لندن سے لکھ دیا تھا کہ شادی کی تاریخ چار مہینے بعد رکھو۔ مجھے یورپ میں کئی جگہ رکنا ہے۔

خان :۔ ہش تیرے کی! تم ان فرنگیوں کے چکر میں رہو اور ہم یہاں اپنی شادی ملتوی کرتے چلے جائیں۔ تمہارے نوکر ہیں!

نوید :۔ دیکھو یار اپنی بیگم کے سامنے لڑکیوں وڑکیوں کا ذکر نہ کر دینا۔ وہ پہلے ہی مجھ سے بہت خفا ہیں۔ سمجھیں گی جانے کیسا آوارہ آدمی ہے۔

خان :۔ تو تمہیں ہو کیا؟

نوید :۔ بالکل نہیں۔ وہ لارڈ ٹام ڈری کی بیٹی کو چلتے یا دوانے کبھی کبھی جو لے جایا کرتا تھا تو اس کا یہ مطلب تھوڑا ہی ہے کہ میں ——

خان :۔ اچھا یہ بتاؤ تم اپنی بیوی سے لارڈ ٹام ڈری کی بیٹی کا ذکر کر دیا کرتے تھے؟

نوید :۔ ذکر کرنے کو تو کر دیتا لیکن بیوی کی ذات ہی اللہ میاں نے کچھ بڑی شکی بنا دی ہے۔ وہ بیٹھی بات کے پچھو سڑے نکالتی رہتی، جینا حرام کر دیتی۔

خان :۔ اچھا یہ بتاؤ بیوی کو علاج کے لئے لے گئے تھے۔ اس کا کچھ علاج بھی کرایا تم نے لندن میں یا اپنے ہی درد دل کا علاج کراتے رہے؟

نوید :۔ کئی ڈاکٹروں کو دکھایا۔ (کرسی سے اٹھ کر ادھر ادھر دیکھتا ہے) لیکن ہوا کچھ نہیں۔

خان :۔ یعنی تمہارا مطلب ہے بچہ نہیں ہوا!

نوید :۔ بچہ تو بعد کی بات ہے، پہلے تو وہ خود ٹھیک ہو جاتی۔

خان :۔ کھڑے کیوں ہو گئے ہو۔ بیٹھ جاؤ (نوید بیٹھ جاتا ہے) میاں تمہارا یہ غم اور تمہاری اداسی سب فراڈ ہے۔ میں خوب جانتا ہوں تمہیں۔

نوید :۔ واللہ اب تو تنگ آگیا ہوں۔

خان :۔ کس سے؟ بیوی سے؟

نوید :- بیوی کی بیماری سے۔

خان :- ایک ہی بات ہے۔

نوید :- نہیں بھائی میں مذاق نہیں کر رہا۔ واللہ تنگ آ گیا ہوں۔ اب تو پانچ برس ہو گئے اس بیماری کو۔

خان :- (یکایک سنجیدہ ہو کر، تو بھابی کیا کہتی ہے؟

نوید :- وہ بھی تنگ آ گئی ہے۔ کہتی ہے دوسری شادی کر لو۔

خان :- پھر؟

نوید :- دوسری شادی کہہ دینا آسان ہے، برداشت کرنا مشکل ہے۔ وہ اس قدر چاہتی ہے مجھے کہ اگر میں نے کبھی دوسری شادی کر لی تو وہ یا اسے مار دے گی یا خود مر جائے گی۔

خان :- (سنجیدگی اب اداسی میں بدل جاتی ہے) مجھے بھی تو چار سال ہو گئے اسی کرسی کے ساتھ۔

نوید :- (جھک کر اپنا اٹیچی اٹھاتا ہے اور اسے کھولتا ہے) تمہاری شادی کا تحفہ تو میں دینا ہی بھول گیا (اٹیچی میں سے سنہری فونٹین پن کی ڈبیہ نکالتا ہے) یہ لندن سے پارکر کا جوڑا لیتا آیا تھا۔

خان :- (لے کر) ٹھیک ہے لو۔ یہ ہماری بیگم کو دے دو تو زیادہ خوش ہوں گی۔

نوید :- نہیں بھیا یہ تمہارا ہے۔ ان کے لئے اور چیز مل گئی اتفاق سے۔

خان :- اتفاق سے؟

نوید :- ڈائمنڈ نکلس کا ایک سیٹ (اٹیچی سے ڈبیا بند نکلس کا سیٹ نکالتا ہے)

خان :- بیوقوف! اتنا پیسہ کیوں برباد کیا؟ ہیرے سے کم کوئی چیز نہیں مل سکتی تھی کیا؟

نوید :- ـــــ ذرا سستا مل گیا۔ دیکھو کیسا ہے۔

خان :- بے حد خوبصورت آخر کتنا سستا ہو گا (ہاتھ میں لے کر دیکھتا ہے)

نوید :- اصل میں جوہری کے پاس ملتے جلتے تقریباً ایک ہی دام کے دو سیٹ تھے ہماری بیگم ایک کی قیمت پر جھگڑ رہی تھیں تو وہ بولا اگر دونوں اکٹھے لو تو دوسرے سیٹ کی قیمت آدھی لوں گا۔ بیگم نہ مانیں اور چھوڑ کر چلی آئیں۔ میں نے بعد میں جا کر چپکے سے دونوں سیٹ لے لئے۔

خان :- تو جب تم نے وہ سیٹ لا کر بیگم کو دکھائے تو وہ بگڑیں نہیں؟

نوید :- میں نے دکھائے ہی کب؟ ایک لارڈ ڈڈلی کی بیٹی کو دے دیا، دوسرا بھابی کے لئے لے آیا۔

خان :- بہت خوب! بیچاری بھابی!

نوید :- اپنی بیگم کے بارے میں کہہ رہے ہو یا ہماری بیگم کے بارے میں!

خان :- (سوال کو نظر انداز کرتے ہوئے اور سیٹ نوید کو لوٹاتے ہوئے) تم خود ہی انہیں دے دینا۔

نوید :- نہیں بھائی تم دے دینا، مجھے ان سے ڈر لگتا ہے۔

خان :- پاگل ہو گئے ہو! تحفہ لائے ہو تو دو اپنے ہاتھ سے (نوید سیٹ کو اٹیچی میں رکھ لیتا ہے) ہاں، اور وہ ڈاکٹر قاسمی کیا ہوا؟

نوید :- نورگل نے اسے دیکھا نہیں، بس مجھے لے کر چلا آیا۔ اب اسے لینے گیا ہے۔ ہاں یہ بتاؤ آپریشن کرانے کا ارادہ ہے کیا؟

خان :- (چہرے پر یکایک قنوطیت برسنے لگتی ہے) خدا جانے بیکار کا قصہ ہے سارا۔ نصرت کا خیال ہے شاید میں پھر چلنے پھرنے کے قابل ہو جاؤں۔

نوید :- تو تمہیں چلنے پھرنے پر کیا اعتراض ہے؟

خان :- اول تو آپریشن ہو نہیں سکتا۔ اور اگر ہو بھی جائے اور میں چلنے پھرنے بھی لگوں تو کیا فرق پڑتا ہے، مجھے بھاگ دوڑ میں اب کوئی دلچسپی نہیں۔

نوید :- تم تو روز بروز زیادہ قنوطی ہوتے جا رہے ہو۔

خان :- جانتا ہوں۔ میں نے محسوس کیا ہے کہ جب سے میری ٹانگیں بیکار ہوئی ہیں، میرا ذہن زیادہ صاف ہو گیا ہے۔ کہتے ہیں جسم کا ایک عضو کمزور ہو جائے تو کوئی دوسرا مضبوط

ہو جاتا ہے۔

نوید ۔ تمہاری باتوں سے تو ایسا لگتا ہے کہ تمہارا ذہن پہلے سے بھی کمزور ہو گیا ہے۔

خان ۔ (اس کی بات کو نظر انداز کرتے ہوئے، پین کی ڈبیہ اٹھا کر) اس لحاظ سے دیکھا جائے تو تمہارا یہ تحفہ بہت مناسب ہے۔ کتابیں پڑھتے پڑھتے تنگ آ گیا ہوں۔ اب کچھ لکھنا شروع کر دوں گا۔

نوید ۔ دیکھو پیارے، مان لیا اب تم فلاسفر ہوتے جا رہے ہو۔ لیکن اس ڈاکٹر کے معاملے میں تمہیں چاہئے کہ بھابی سے پورا پورا تعاون کرو۔

(دائیں جانب سے بیگم زماں داخل ہوتی ہے۔ وہ اپنے غصہ پر قابو پا کر چہرے پر مسکراہٹ لانے میں کامیاب ہو گئی ہے)

نصرت ۔ (نوید سے) معاف کیجئے اس وقت میں آپ کو خوش آمدید کہے بغیر چلی گئی۔ دراصل میں کچھ یکایک پریشان سی ہو گئی۔ (نصرت کا انداز تخاطب رسمی طور پر خوشگوار ہے لیکن اس میں ذرہ برابر بھی گرمجوشی نہیں)

نوید ۔ غلطی میری تھی۔ ہم ہمیشہ سے ایک دوسرے کو یونہی چھیڑتے رہے ہیں۔ لیکن آپ کی موجودگی میں ایسی چھیڑ خانی بدتہذیبی تھی۔

نصرت ۔ نہیں نہیں کوئی بات نہیں۔ مجھے خان کے دوست بہت عزیز ہیں۔ ان کی بے تکلفی قابل معافی ہے۔

نوید ۔ (یکایک سنجیدہ ہو کر) خان کے دوست بہت کم ہیں۔

خان ۔ دوست کم ہوں تو اچھا ہے۔ وہ زیادہ مخلص ہوتے ہیں۔

نصرت ۔ اور اگر کوئی دوست وکیل، یا ڈاکٹر ہو تو اور بھی اچھا ہے۔ دوسروں کے راز اپنے دل میں رکھنا ان کی تربیت کا حصہ ہوتا ہے۔ انہیں بہت سی باتیں معلوم ہوتی ہیں لیکن وہ کبھی ایک کی بات دوسرے کو نہیں بتاتے (معنی خیز نظروں سے نوید کو دیکھتی ہے)۔

نوید ۔ بجا فرمایا آپ نے۔ وکیل کے لئے رازداری بڑی اہم ہے۔ اس کے پاس ہر طرح کے راز محفوظ رہتے ہیں۔

خان ۔ ہماری طرف سے تم وکالت چھوڑ کر گھسیارے ہو جاؤ۔ ہمیں تمہاری وکالت سے کیا فائدہ۔ ہمیں کون سے راز تمہارے پاس رکھوانا ہیں۔ ایک وہ لاہور میں ہماری جائداد کا مقدمہ ابھی تک چل رہا ہے، وہ تو تم نے جیت کے دیا نہیں۔

نوید ۔ بھئی وہ تو دیوانی مقدمہ ہے۔ اس میں تو وقت لگے گا۔ گھبراؤ نہیں زمین کا جتنے پیسوں میں سودا ہوا تھا اتنے ہی میں دلواؤں گا۔ زمیندار عہد شکنی نہیں کر سکتا۔ (پھر اچانک بات بدل کر) ہاں بیگم زماں! میں آپ کی شادی پر حاضر نہیں ہو سکا تھا۔ اس موقع پر جو تحفہ پیش کرنا تھا وہ اب حاضر کرتا ہوں۔ (اٹیچی سے ڈبیہ نکال کر بیگم زماں کو دیتا ہے)

بیگم زماں ۔ (لیتے ہوئے) شکریہ! اچھا اب چلئے اندر چلیں بیٹھیں۔ کچھ کافی بنوائی ہے۔

خان ۔ ذرا ڈبیہ کھول کر تو دیکھو۔ اس احمق نے ڈائمنڈ نکلس خرید مارا ہے۔

بیگم زماں ۔ (کھول کر دیکھتی ہے) واقعی بے حد خوبصورت ہے۔ یہ انہوں نے زحمت کیوں کی؟

(خان محسوس کرتا ہے کہ اس کی بیوی کو اس تحفہ سے کوئی خوشی نہیں ہوئی اور وہ حیرت اور پریشانی کے ملے جلے جذبات سے اسے دیکھتا ہے)

نوید ۔ معلوم ہوتا ہے آپ کو تحفہ پسند نہیں آیا۔

بیگم زماں ۔ (مسکرانے کی کوشش کرتے ہوئے) وہ کیوں؟ اتنی اچھی چیز کیسے پسند نہیں آئے گی۔

(باہر کار کا دروازہ بند ہونے کی آواز)

بیگم زماں ۔ میرا خیال ہے ڈاکٹر صاحب آ گئے۔

پچھلے دروازے میں نور گل نمودار ہوتا ہے اور ایک ہاتھ سے دروازے کے سامنے سے پردہ اٹھاتا ہے۔ اس کے پیچھے ڈاکٹر قاسمی ہاتھ میں ڈاکٹر والا سیاہ رنگ کا بیگ لئے داخل

ہوتے ہیں کوئی پچاس برس کے ہشاش بشاش آدمی ہیں۔
سر کے بال کھچڑی، ڈاڑھی مونچھ صفاچٹ۔ آنکھوں پہ
عینک اور چہرے پہ مسکراہٹ)

خان :۔ آئیے ڈاکٹر صاحب، معاف فرمائیے آپ کو اسٹیشن پر انتظار
کرنا پڑا۔ میرا نام شاہ زمان ہے۔

ڈاکٹر قاسمی :۔ (ہاتھ ملاتے ہوئے) سلام علیکم۔ جی نہیں کوئی بات
نہیں آپ کے دوست نوید صاحب نے وجہ بتا دی تھی۔

خان :۔ (نوید کی طرف اشارہ کر کے) او ہاں۔ ہم نے ملئے یہ ہیں
وہ نوید صاحب۔

(ڈاکٹر قاسمی اور نوید مسکراتے ہوئے مصافحہ کرتے ہیں)

خان :۔ یہ ہیں ہماری بیگم (ڈاکٹر قاسمی آداب بجا لاتا ہے)

ڈاکٹر :۔ جی ہاں اگرچہ ان سے پہلے کبھی ملاقات نہیں ہوئی —
لیکن زماں صاحب میرے بڑے کرم فرما ہیں اور دوست
بھی۔ اس نسبت سے یہ میری بیٹی ہیں۔

بیگم زماں :۔ (مسکرا کر) بہت بہت شکریہ ڈاکٹر صاحب۔

ڈاکٹر :۔ اگر آپ اجازت دیں تو معائنہ شروع کر دیا جائے۔
پھر کچھ دیر بیٹھ کر باتیں بھی کرنا ہیں۔

بیگم زماں :۔ جی ہاں (دائیں جانب اشارہ کرتی ہے) آئیے اس برابر
والے کمرے میں چلتے ہیں۔ (خان کی کرسی کی طرف بڑھتی ہے)

خان :۔ نہیں نصرت تم یہیں بیٹھو۔ نوید اکیلے ہوں گے۔

ڈاکٹر :۔ (نصرت سے) آپ زحمت نہ کیجئے، میں انہیں خود ہی لے جاؤں گا
اپنی رائے قائم کر لوں، اس کے بعد آپ سے تبادلۂ خیال
کروں گا (کرسی کو دائیں جانب دھکیلتے ہوئے) ادھر ہی
کو جانا ہے نا؟

خان :۔ جی ہاں۔

ڈاکٹر کرسی کو دھکیلتا ہوا دائیں جانب نکل
جاتا ہے۔ کمرے میں خاموشی چھا جاتی ہے۔ نوید
بیگم زماں کی طرف دیکھتا ہے لیکن وہ نظریں
جھکا کر دائیں جانب چل دیتی ہیں اور ٹیلیفون کے
قریب پڑی ہوئی ایک کرسی پر بیٹھ جاتی ہیں۔ نوید
سیڑھیوں کے سامنے پڑی ہوئی کرسیوں میں سے
ایک پر بیٹھ جاتا ہے۔

نصرت :۔ شکریہ! آپ نے خان سے ہماری گفتگو کا ذکر نہیں کیا۔

نوید :۔ آپ نے خود ہی فرمایا تھا نا کہ ہم وکیلوں کو تو راز داری
کی عادت ہوتی ہے۔

نصرت :۔ چونکہ آپ سے یہ بات بہ حیثیت وکیل کے نہیں ہو رہی تھی

نوید :۔ بہ حیثیت ڈاکٹر کے تو ہو رہی تھی۔ چلئے ہٹائیے اس
قصے کو آپ نے یوں بھی میرے بارے میں اب رائے
بدل لی ہوگی۔

نصرت :۔ (طنزیہ) بدلنی تو چاہئیے۔ ایک تو آپ نے راز کو راز
رکھا اور دوسرے اتنا بڑا مسیحا تحفہ لا کر دیا۔

نوید :۔ (جھینپ کر) جی نہیں اس خیال سے نہیں۔ بلکہ یوں
کہ جب تک کسی کو ذاتی طور پر آدمی نہ جانتا ہو ممکن ہے
اس کے بارے میں اچھی رائے نہ ہو۔ دوستی اور خیرسگالی
کی ملاقات کے بعد رائے بدل سکتی ہے۔

نصرت :۔ جی ہاں، اگرچہ بدلنے میں وقت لگتا ہے۔

نوید :۔ (سوچتے ہوئے) اور وقت نہیں ہے۔

نصرت :۔ کیوں آپ بھی شام کی گاڑی سے واپس جائیں گے؟

نوید :۔ جی ہاں۔ چند کاغذات پر دستخط کرانے کی غرض سے
آیا تھا، اس زمین کے مقدمے کے سلسلے میں۔ اس کے بعد
مجھے فوراً لوٹنا ہوگا۔ پرسوں عدالت میں حاضری ہے۔

نصرت :۔ (بے یقینی سے) لیکن یہ کاغذات تو آپ ڈاک کے ذریعے
بھی بھیج سکتے تھے؟

نوید :۔ اس کے علاوہ زماں سے مدت ہوئی ملا بھی تو نہیں تھا۔
اگر آپ ناراض نہ ہوں تو عرض کروں آپ سے بھی ملنے کو
جی چاہتا تھا۔

نصرت :۔ (ذرا جھینپ کر) شکریہ۔ مجھے افسوس ہے آپ کو
اس ملاقات سے ناامیدی ہوئی۔

نوید :۔ جی نہیں، میں آسانی سے ناامید ہونے والوں میں سے
نہیں ہوں۔

نصرت :۔ امید قائم رکھنے کے لئے بھی تو وقت چاہئیے — اور وقت
ہے نہیں!

نوید :۔ (ذرا کسمسا کر) جی ہاں یہ مجبوری تو ہے۔ لیکن انشاءاللہ
پھر ملاقات ہوگی۔ ابھی تو پوری زندگی پڑی ہے۔

نصرت :۔ (اچانک) آپ سچ سچ بتائیے کہ آپ کا اصل میں ارادہ
تو چند روز قیام کا تھا نا۔ یہ آج ہی شام لوٹنے کا فیصلہ
آپ نے ابھی ابھی کیا ہے؟

نوید :۔ (چونک کر) میں آپ سے جھوٹ نہیں بولوں گا میرا
ارادہ واقعی چند روز ٹھہرنے کا تھا۔

نصرت :۔ اور عدالت میں پرسوں حاضری؟

نوید :۔ ظاہر ہے وہ بات میں نے گھڑی تھی۔

نصرت :۔ (مسکرا کر) لیکن آپ کا جھوٹ بڑی جلدی پکڑا گیا۔
بہرحال آپ اپنا ارادہ نہ بدلئے، ہم آپ کے آرام کا
ہر طرح سے خیال رکھیں گے۔"

نوید :۔ شکریہ! مجھے معلوم ہے کہ مجھے یہاں کوئی تکلیف
نہیں ہوگی لیکن جس بات کے لئے آیا ہوں وہ میسّر
نہ آئی تو میرا ٹھہرنا بیکار ہے۔

نصرت :۔ تو آپ کس غرض سے آئے ہیں؟

نوید :۔ پچھلے دنوں کام کی بہتات سے میرے اعصاب ذرا
جھنجھنا گئے تھے میں نے سوچا یہاں پہ مجھے ذہنی سکون
مل جائے گا لیکن اب یہ مشکل نظر آتا ہے۔

نصرت :۔ (فوراً بات بدل کر) خان کہہ رہے تھے آپ کی بیوی
مستقل بیمار رہتی ہیں

نوید :۔ جی ہاں۔

نصرت :۔ تو اب وہ گھر میں اکیلی ہیں کیا؟

نوید :۔ جی نہیں ان کے پاس خادمائیں ہیں۔

نصرت :۔ نہیں میرا مطلب ہے ان کا کوئی عزیز ان کے پاس
نہیں؟

نوید :۔ (ذرا بجھ کر) جی نہیں۔

نصرت :۔ میں تو یہ سوچ بھی نہیں سکتی کہ اپنے آرام کی خاطر
خان کو تنہا چھوڑ کر کہیں چلی جاؤں۔

نوید :۔ آپ کی شادی ہوئے چند ہی مہینے ہوئے ہیں۔

نصرت :۔ اگر چند سال بھی ہو چکے ہوتے تو میں پھر بھی یہی
سوچتی۔

نوید :۔ بیگم نعمان، دنیا کا ہر شخص ایسی قربانی کرنے کے لئے
تیار نہیں ہوتا۔ زندگی کی تلخ حقیقت آہستہ آہستہ
اُسے تصور کی بلندی سے نیچے اتار لاتی ہے۔ میں نے
سال بھر بیوی کی بے حد خدمت کی، دنیا بھر کے ڈاکٹروں
کو دکھایا، انہیں چکروں میں اپنی پریکٹس کو بھی نقصان
پہنچایا۔ لیکن آخر مجھے بھی زندہ رہنا ہے۔ آپ یہ
سنیاس لے سکتی ہیں کیونکہ آپ کے لئے زندگی کی
دوڑ اہم نہیں ہے۔ میں تو اس دوڑ میں شریک
ہوں اور شریک رہوں گا۔

نصرت :۔ مگر بیوی بہرحال آپ کی ذمہ داری ہے۔

نوید :۔ (مسکرا کر) جی ہاں آپ نے صحیح فرمایا۔ اس ذمہ داری
کی وجہ سے ہی آج شام واپس جا رہا ہوں۔

نصرت :۔ جی نہیں، آپ اس لئے لوٹ رہے ہیں کہ آپ کو یہاں
گھر گوشۂ عافیت نظر نہیں آیا۔ بہت ممکن ہے
آپ گھر لوٹنے کے بجائے کسی اور گوشۂ عافیت کا
رُخ کریں۔

نوید :۔ (سوچتے ہوئے) یہ آپ نے واقعی اچھی بات
سمجھائی:

. . . .

مقاماتِ آہ و فغاں اور بھی ہیں!

نصرت :۔ مجھے واقعی آپ کی بیوی سے ہمدردی ہوتی جا رہی ہے

نوید :۔ میں انہیں جب جا کر یہ بتاؤں گا تو انہیں بڑی
خوشی ہوگی۔

نصرت :۔ (اطمینان سے) آپ طنز فرما رہے ہیں۔

نوید :۔ جی نہیں۔ میں نہایت دیانت سے عرض کر رہا ہوں۔

نصرت :۔ مجھے آپ کی دیانت پر شبہ ہے۔

نوید :۔ (یکایک چونک کر) اس بات کے کئی مطلب ہو سکتے
ہیں (رک کر ذرا شرارت سے) معلوم نہیں آپ کے
ذہن میں کس قسم کی بددیانتی ہے۔

نصرت :۔ (اب کے نصرت چونکتی ہے) جی نہیں یہ بددیانتی

میرے ذہن میں نہیں آپ کے ذہن میں ہے۔

نوید :۔ (مسکرا کر) اچھا وکیل وہ ہے جو سخت سے سخت جرح سن کر بھی مسکراتا رہے۔

نصرت :۔ (ذرا ترشی سے) اگر آپ کے ذہن میں بد دیانتی نہ ہوتی تو اپنا تعارف کرانے میں اتنی تاخیر نہ کرتے۔

نوید :۔ (سنجیدگی سے) آپ دیانت کی بات پوچھتی ہیں؟

نصرت :۔ جی ہاں سچ سچ بتائیے۔

نوید :۔ میرا ارادہ تھا اپنا تعارف کرا دوں لیکن آپ کی گفتگو اتنی ـــ (ذرا رک کر) اتنی یعنی دلچسپ ہوتی چلی گئی کہ اگر میں زبردستی بول پڑتا تو سارا مزہ کرکرا ہو جاتا۔

نصرت :۔ خیر، اس سے یہ ثابت ہو گیا کہ آپ کے بارے میں میری رائے ..... (پھر رک کر) اچھا آپ یہ بتائیے کہ آپ کی اور خان کی دوستی کس بات پر قائم ہے؟

نوید :۔ محبت پر۔

نصرت :۔ (ذرا جھنجھلا کر) جی نہیں میرا مطلب یہ نہیں تھا۔ ظاہر ہے کہ محبت نہیں تو کوئی اور اسی قسم کی چیز ہوگی۔ میں پوچھنا یہ چاہ رہی تھی آپ کی دوستی کی بنیاد کیا ہے۔

نوید :۔ یعنی یہ کہ زماں مجھے کیوں اچھا لگتا ہے۔

نصرت :۔ جی ہاں، یوں بھی کہا جا سکتا ہے۔

نوید :۔ زماں میں بہت سی خوبیاں ہیں۔ اکثر ایسی جنہیں محسوس کیا جا سکتا ہے، بیان نہیں کیا جا سکتا۔

نصرت :۔ مثلاً؟

نوید :۔ (ذرا طنز سے) آپ کو شاید وہ نظر نہ آئیں۔

نصرت :۔ (بھڑک کر) نوید صاحب میں ان کی بیوی ہوں اور بیوی کی سے زیادہ ..... (رک کر نرم لہجہ میں) اصل میں میں انہیں شوہر کی حیثیت سے جانتی ہوں، دوست کی حیثیت سے نہیں۔ ہو سکتا ہے ان کی شخصیت کا وہ رخ جو دوست دیکھ سکتے ہیں، میں نہ دیکھ سکی ہوں۔

نوید :۔ (نصرت کی نرمی سے متاثر ہو جاتا ہے) میرا مقصد آپ کے جذبات کو ٹھیس پہنچانا نہیں تھا۔ میں معافی چاہتا ہوں۔

نصرت :۔ بہر صورت یہ بحث بیکار ہے۔ ہم ایک دوسرے کو سمجھنے میں کامیاب نہیں ہو سکتے۔

نوید :۔ زبانِ یارِ من ترکی و من ترکی نمی دانم۔

نصرت :۔ مگر جواب تو آپ ترکی بہ ترکی دیتے ہیں۔

نوید :۔ اگر گستاخی نہ ہو تو میں بھی کچھ پوچھنے کی جرأت کروں؟

نصرت :۔ فرمائیے؟

نوید :۔ آپ کی شادی کی بنیاد کیا ہے؟

نصرت :۔ (اطمینان سے) محبت۔

نوید :۔ (ہنس کر) ہو گئی ہے غیر کی شیریں بیانی کارگر
عشق کا اس کو گماں ہم بے زبانوں پر نہیں!

مرزا غالب۔ یعنی ہماری ہی طرف سے یہ عذرِ دوستی ناقابلِ قبول تھا۔ آپ کی طرف سے یہ بنیاد نہایت معقول ٹھہری۔

نصرت :۔ (ذرا طنز سے) تو کیا آپ کا خیال ہے کہ میں نے زماں سے پیسے کے لئے شادی کی ہے؟

نوید :۔ جی نہیں، مجھے معلوم ہے آپ کے یہاں پیسوں کی کمی نہیں تھی۔

(ڈاکٹر قاسمی دائیں جانب سے داخل ہوتا ہے)

ڈاکٹر قاسمی :۔ خان کہہ رہے ہیں آپ سب لوگ ڈرائنگ روم میں آجائیے، کافی تیار ہے۔

نصرت :۔ آپ نے معائنہ کر لیا؟

ڈاکٹر قاسمی :۔ ابتدائی اور سرسری معائنہ تو کر لیا ہے، تفصیلی معائنہ آپ سے گفتگو کرنے کے بعد کروں گا۔

نوید :۔ اگر اجازت ہو تو میں لپک کر پہلے پہنچ جاؤں۔ کافی کی طلب ہو رہی ہے اور پھر ڈاکٹر صاحب کے ساتھ لوٹنا بھی ہے۔

ڈاکٹر قاسمی :۔ اچھا تو آپ بھی آج ہی جائیں گے؟

نوید :۔ (دائیں دروازے پر) جی ہاں آپ کی محبت، واللہ، از بس کہ خوش آئی ہے ـــ

ڈاکٹر قاسمی :۔ (خوش ہو کر) شکریہ (نوید دائیں جانب سے نکل جاتا ہے۔ نصرت کی طرف متوجہ ہو کر) یہ وکیل ہیں کہ شاعر؟

نصرت :۔ (طنز سے) معلوم ہوتا ہے دونوں کی خرابیاں آپ میں ہیں۔

ڈاکٹر قاسمی :۔ جی؟ خیر۔ لیکن آدمی دلچسپ معلوم ہوتا ہے۔ چلئے سفر اچھا کٹ جائے گا۔

نصرت :۔ (موضوع بدل کر) تو اس ابتدائی معائنے کے بعد آپ کی رائے کیا ہے؟

ڈاکٹر قاسمی :۔ ہاں، فی الحال کچھ نہیں کہا جا سکتا۔ ہمارا تجربہ یہ ہے کہ اگر کوئی عام مریض ایک مہینہ بستر پر لیٹا رہے تو اس کی ٹانگوں کے پٹھے بہت کمزور ہو جاتے ہیں۔ ان کا علاج الگ کرنا پڑتا ہے۔ اور انہوں نے تو اپنی ٹانگوں کو چار برس سے حرکت ہی نہیں دی۔

نصرت :۔ یعنی امید زیادہ نہیں۔

ڈاکٹر قاسمی :۔ زیادہ تو یقیناً نہیں۔ اصل میں سب سے پہلے انہیں اس ذہنی منزل پر لانا ضروری ہے جہاں وہ بہت سی تکلیف اور زحمت برداشت کر سکیں جو انہیں صحت یاب ہونے کے لئے بہر حال کرنی پڑے گی۔ کیا آپ کے خیال میں آپ انہیں اس منزل پر لا سکتی ہیں؟

نصرت :۔ (سوچ کر اداسی سے) مشکل ہی نظر آتا ہے۔

ڈاکٹر قاسمی :۔ تو کیا ان کا کوئی دوست ایسا نہیں جسے دیکھ کر انہیں زندگی کی اچھی باتیں یاد آئیں جو انہیں ڈوبنے سے بچا سکے، انہیں ہاتھ پاؤں مارنے کو کہے اور آہستہ آہستہ ابھرنے کے لئے اکسا سکے؟

نصرت :۔ (اداسی سے) نہیں کوئی نہیں ..... (پھر یکایک چونک کر) ہاں شاید نوید۔

ڈاکٹر قاسمی :۔ لیکن نوید تو آج شام واپس جا رہے ہیں اور اس کام کے لئے وقت درکار ہے۔

نصرت :۔ تو آپ کا کیا خیال ہے اگر انہیں روک لیا جائے تو خان کے صحت یاب ہونے کی کچھ امید ہو سکتی ہے؟

ڈاکٹر قاسمی :۔ میں قطعی طور پر ناامید بھی نہیں ہوں۔

نصرت :۔ اگر ایک فی صد بھی امید ہو تو میں انہیں روکنے کی کوشش کروں گی۔

ڈاکٹر قاسمی :۔ (مسکرا کر) فائدہ ہو یا نہ ہو، انہیں روکنے میں کوئی نقصان تو نہیں ہے۔

(اندر سے زمان کی آواز)

زمان :۔ بھائی آپ لوگ آ بھی چکو۔

نصرت :۔ آ رہے ہیں۔ (ڈاکٹر قاسمی سے) اچھا ڈاکٹر صاحب میں کوشش کرتی ہوں۔

(دونوں دائیں جانب چلے جاتے ہیں)

(پردہ گرتا ہے)

★

بدّل :——— بقیہ صفحہ ،،

تھوڑی منظور ہے ...... کو۔

"کیوں اوئے" زمیندار کی آواز میں غصہ تھا۔ رمضانی نے اپنی پگڑی گلے میں ڈال لی اور ہاتھ باندھ کر کھڑا ہو گیا۔ "تو پھر ڈرتا کیوں ہے۔ ہونے دے فیصلہ"

اور زمیندار کے اشارے پر ایک مرتبہ پھر "ٹلا شیری" کا شور بلند ہوا اور اس کے ساتھ ہی اکھاڑے کے مرکز سے ایک بگولا سا اٹھا جس میں دو سائے۔ ایک سیاہ ایک سفید حرکت کرتے ہوئے نظر آئے اور پھر یکایک ایک خوفناک آواز ابھری جیسے زلزلے۔ طوفان اور آندھی کی سی آواز۔

تماشائیوں کے دل دھل گئے اور ان کی نگاہیں اس آواز کا منبع ڈھونڈنے کے لئے سارے میں گھوم گئیں لیکن آسمان نیزوں کی طرح صاف۔ زمین اپنی جگہ پر قائم تھی اور انہیں ہر ال طغیانی کی مٹی اور قالتو فصلیں دے جانے والا دریا تپن کے پرے ریت کی طرح چپ چاپ پڑا تھا۔

ان کی نگاہیں اکھاڑے کے اندر لوٹ آئیں۔ آواز ایک بار پھر ابھری۔ پہلے سے کہیں زیادہ بلند اور پھر یکایک خاموشی چھا گئی اور اس کے ساتھ ہی ریت اور مٹی کا کھولتا ہوا گرد ھا ڈ سا جہاں رنجھا اور کتا لڑ رہے تھے ٹھنڈا ہو گیا۔ بگولا بیٹھ گیا۔ لہرا تر گئی۔ طوفان تھم گیا۔

قلندر اور زمیندار دونوں نے ایک دوسرے کی طرف دیکھا اور اکھاڑے کے مرکز کی طرف لپکے مٹھی ہوئی ریت میں رنجھو مردہ پڑا تھا اور اس کے سائے میں تنمس شاہ کا کتا جیسے ستا رہا تھا۔

اور فضا مبارک بادیوں سے گونج اٹھی —— لیکن سید فضل شاہ کچھ اور ہی سوچ رہا تھا "بدّل دی نشا دا تجلی، وی نشانی —— پر ایک دے بغیر دوجا آسمان دی سمجھ نہ آجے تے کوئی نیئں آندا —— اوئے؟"

دکھی شاہزادی :——— بقیہ صفحہ ۷۸

کر دوں گا۔ ہم تمہارا یہ احسان کبھی نہ بھولیں گے۔"

ماجھی رضامند ہو گیا تو پری بانو نے اپنا طلائی ہار اس کی طرف پھینک دیا۔

اس وقت دریا کی لہریں غضبناک ہو رہی تھیں۔ دونوں ناؤ پر بیٹھ گئے۔ شہزادے نے پتوار سنبھال لیا اور ناؤ آگے بڑھنی شروع ہوئی۔ سرکش موجوں کے ٹکرانے سے کان پڑی آواز سنائی نہ دیتی تھی۔

اتنا لمبا چوڑا دریا، طوفاں بدوش لہریں اور چھوٹی سی ناؤ! زندگی جیسے بھنوروں میں گھر گئی ہو۔

پری بانو دم بخود صرف شہزادے کی اور دیکھتی رہی —— زندگی میں پہلی بار اس نے پتوار ہاتھ میں لیا تھا —— ناتجربہ کار ملاح! اس کا دل دھڑکنے لگا۔ اگر ناؤ کو غضبناک لہروں نے اپنا لقمہ بنا لیا تو —— ! بے بسی کے اس عالم میں اس نے خدا سے دعائیں مانگنی شروع کیں۔

کچھ دیر بعد شہزادے نے مایوس ہو کر پری بانو سے کہا۔

"بانو آج ہماری آخری ملاقات ہے۔ شاید اب ہم ایک دوسرے سے ہمیشہ کے لئے بچھڑ جائیں گے۔ بپھری ہوئی موجیں ہماری تباہی کی نشاندہی کر رہی ہیں۔"

رات بیت چکی تھی!

پورب اور سے سورج نے آہستہ آہستہ سر نکالا۔ شہزادے نے آخری بار پری بانو کے اداس اور مضمحل چہرے کو دیکھا اور پل بھر میں ناؤ کو موجیں نگل گئیں!

قسمت بھی کیا کیا کھیل و نہار دکھاتی ہے *

ماہِ نو، کراچی، شمارۂ خصوصی، مارچ ۱۹۶۳ء

رپورتاژ

"جہاں رنگینیاں اُگتی ہیں"

(افسانہ وافسوں کی سرزمین، ہنزہ ونگر)

اللہ بخش راجپوت

نہ یہاں کوئی طلسم بند ہے نہ یہاں پریاں رہتی ہیں اور نہ یہاں کوئی جادو اور سیمیا کے شعبدے ہی دکھائے جاتے ہیں، مگر پھر بھی اس خطہ کو سیاحوں کی داستان طرازیوں نے ایک طلسمی صفت ضرور عطا کر دی ہے اور فطرت کی فیاضیوں نے اسے جس طرح مالا مال کیا ہے اس کو کہانیوں میں کچھ اس طرح تن دیا گیا ہے کہ حیرت و استعجاب کے سوا اور کوئی احساس پیدا نہیں ہوتا۔ بظاہر اس کی ایک وجہ یہ معلوم ہوتی ہے کہ بہت کم لوگ اس علاقے تک پہنچتے ہیں اور بیرونی دنیا سے اس کا ربط اتنا محدود رہا ہے کہ باہر والے اسے الف لیلوی سرزمین سمجھتے ہیں، حالانکہ وہ پاکستان ہی کا ایک حصہ ہے، اپنے ہی شمالی کوہستان کا جگر گوشہ۔

اسے داستانی شہرت یوں حاصل رہی ہے کہ اس کے چاروں طرف ناقابلِ عبور پہاڑوں کا حصار کھنچا ہوا ہے۔ ان پہاڑوں کو عبور کر کے یہاں تک پہنچنا جوئے شیر لانے سے کم نہیں۔ مگر جو مہم پسند اور ذوقِ نظارہ کے شیدا ہیں ادھر آتے ہی رہے ہیں۔ صدیوں سے یہ مقام انسانی قدموں کی چاپ سنتا رہا ہے، مگر کبھی کبھار۔

یہاں قدیم پہاڑی راستے ہیں جو مصیبتیں جھیلے بغیر عبور نہیں کئے جا سکتے۔ صرف مصیبتیں اور سفر کی صعوبتیں ہی نہیں، جان جوکھوں میں ڈالنی پڑتی ہے۔ اب فضائی سفر نے ان ہولناک سفروں کی کہانیاں دہرانے کا موقع کھو دیا ہے مگر جو لوگ اب بھی قدیم طریقۂ سفر سے کام لیتے ہیں طرح طرح کے دکھ جھیل کر ہی یہاں تک پہنچتے ہیں۔ اور ان فلک بوس پہاڑوں پر سے گذرتے ہوئے ان ہوائی جہازوں کو بھی ہر وقت خطرے سے ہی واسطہ رہتا ہے۔

اس علاقہ کے اُدھر وسط ایشیا کا مشہور سلسلۂ کوہ پامیر کو چک ہے تو اِدھر پاکستان کا اپنا کوہستانی رقبہ۔ مگر ہزاروں سال سے یہ سرزمین سوداگروں، سیاحوں، کوہ پیماؤں، مبلغوں یاتریوں، مہم پسندوں اور جہاں گردوں کی توجہ کا مرکز رہی ہے۔ یہاں کے پہاڑ بڑے نکیلے بہت ہیبتناک اور نہایت بلند ہیں، راہیں پُرپیچ اور درے بڑے بھیانک مگر انسان کی ہمتِ بلند ان تمام مشکلوں کو سر کرتی اور عزم و ارادہ، ہر دشواری کو فتح کر لیتا ہے۔ جب سفر کی اتنی آسانیاں نہ تھیں، سفر تو اُس وقت بھی ہوتا تھا، اور اب بھی ہو رہا ہے، مگر دور افتادہ، الگ تھلگ، اور دشوار گذار راہوں نے اسے محصور اور محدود ضرور کر رکھا ہے۔ یوں چودھویں صدی میں یورپی سیاح، مارکو پولو بھی ادھر سے گذرا تھا جب وہ چین کے حاکم قبلائی خان سے ملنے جا رہا تھا اور اب اس عہد میں فرنیک آدربین شوبر جیسے شوریدہ سر جہاں نورد بھی یہاں پہنچتے رہے ہیں۔ ان لوگوں نے جو حالاتِ سفر لکھے ہیں انہیں پڑھ کر کمر میں چیونٹیاں سی چلنے لگتی ہیں اور ہول سے رونگٹے کھڑے ہو جاتے ہیں۔

یہ مقام ہمارے ہی ملک کا ایک حصہ ہے۔ بالکل شمال میں۔ اسے انتظامی اصطلاح میں "گلگت ایجنسی" کا علاقہ کہا جاتا ہے۔ مقبوضہ کشمیر کی سرحد سے شروع ہو کر مغرب کی جانب چترال و افغانستان تک پھیلا ہوا ہے اور اس طرف شمال میں چین کا سرحدی صوبہ سنکیانگ لگتا ہے۔ اور جنوب میں ہزارہ اور ایبٹ آباد کے اضلاع آن ملتے ہیں۔ اس علاقہ میں آجکل ہنزہ اور نگر کی ریاستیں ہیں۔ نقشہ دیکھنے سے معلوم ہوتا ہے کہ وہ شمال کی جانب "دنیا کی چھت" سے شانہ ملائے

کھڑا ہے آج کل کے مہم جویوں کے لئے اس داستانی سرزمین تک پہنچنا ایسا ہی رومانی تجربہ ہے جیسے کسی وقت میں خیالی "بحرِ ظلمات" تک پہنچنا تھا۔ مہم پسند جہاں نوردوں کے لئے تو ایسے ہی دشوار گذار، خوفناک، ناہموار اور پُر اسرار قطعاتِ ارض ہی توجہ کا مرکز ہوتے ہیں۔ یہ سرزمین اپنے کوہستانی حصار کے سبب بیرونی دنیا سے بہت کم واسطہ رکھتی ہے اور ہنزہ کے حکمراں کو تو لوگ شاہِ یوتوپیا" کہتے ہیں۔ یوٹوپیا، وہ خیالی سرزمین جسے یونانیوں کے قصّے دنیا میں اتنا مشہور کر چکے ہیں۔

ہنزہ کی سڑک کا حال کیا بیان کیا جائے ـــــ بس ایک قدیم الایام راستہ پہاڑوں پہاڑوں چلا گیا ہے جس پر خچر اور یاک ہی آجا سکتے ہیں اور وسطِ ایشیا کے کاشغر سے پاکستان کے گلگت تک پھیلا ہوا ہے۔ اس تمام علاقہ کی شہرت اس کے پُر اسرار اور پُر ہول اِس راستہ کی وجہ سے ہی ہے۔ آدمی وہاں صرف قدرتی نظارے دیکھنے نہیں جاتا بلکہ اطراف کی دنیا سے رابطہ پیدا کرنے کا واحد زمینی راستہ یہی ہے اور دنیا کا کوئی بھی خطہ کبھی بھی ایسا نہ رہا کہ باہر کی دنیا کے لئے سربمہر کتاب کی مانند ہو۔ انسان ہر جگہ پہنچا ہے اور ہر مقام کی حقیقت ایک نہ ایک دن اسے ذاتی تجربوں سے معلوم ہو گئی ہے۔ ہنزہ اور گلگت کے علاقے میں اس سڑک کی لرزہ خیز داستانیں اس قدر دور دور پھیل چکی ہیں کہ شاید لوگوں کا حوصلہ اسی وجہ سے پست ہوا ہے اور یوں یہ مقام اپنے "گوشۂ عافیت" میں اپنے الگ تھلگ وجود کو لئے صدیوں سے ایک پُر اسرار زندگی بسر کرتا چلا آرہا ہے۔ اب زمانہ بدل چکا ہے۔ زمینی سفر کی بھی آسانیاں ہیں اور اس تک پہنچنے کے لئے "اڑن کھٹولا" بھی موجود ہے جو ذرا سی دیر میں ہمیں اس سرزمین پر پہنچا دیتا ہے۔

جیسا کہ میں نے عرض کیا تاریخ کے ہر عہد میں دنیا کے بعید ترین گوشوں سے لوگ یہاں پہنچتے رہے ہیں سیاحوں اور سوداگروں کا تانتا نہیں بندھا تو آمد و رفت ایسی کم بھی نہیں رہی ہے۔ ہم سب جانتے ہیں کہ چین اور وسط ایشیا کے مال سے لدے ہوئے کارواں اسی تاریخی سڑک سے گذرتے تھے۔ چین کا ریشم، تبت کا مشک، وسط ایشیا کی قالینیں، سمور اور نوادر ادھر آتے رہے ہیں۔ پھر یہاں سے پاک و ہند کی تجارتی منڈیوں تک پہنچتے تھے اور سوداگر منہ مانگے دام پاتے تھے۔ اس مال کا تبادلہ طرح طرح کی چیزوں سے ہوتا جیسے گرم مصالحے، کپڑا، جوتا، جواہر۔ اگر ایک دفعہ بھی کوئی سوداگر اپنا مال لیکر ادھر آ گیا تو ساری عمر کی کمائی ہو گئی ـــ مگر کارواں کے کارواں غائب بھی ہو جاتے تھے۔ سوداگروں کو یہاں کے پہاڑ ہڑپ کر جاتے اور یہ بھی پتہ نہ چلتا کہ وہ اور ان کا مال کیا ہوا۔ اس کی وجہ یہاں کی آفاتِ ارضی و سماوی ہیں۔ ہر وقت پہاڑوں کا ٹوٹ پھوٹ، تودوں کا گرنا، راستوں کا مسدود ہو جانا ایک عام حادثہ ہے۔ دریاؤں کے کگاڑے پھسل جاتے ہیں، چٹانیں آن گرتی ہیں۔ آندھیاں، جھکڑ، بجلی۔ رعد۔ طوفان، اولے، برف، الامان والحفیظ! کونسی قیامت ہے جو یہاں نہیں ٹوٹتی۔ اور نہ اس کا کوئی مقرّر وقت ہے نہ جگہ ـــ فطرت اپنی پوری رعنائی کے ساتھ جلوہ گر ہے تو یہاں اس کی زبردست سفاکی اور غیظ بھی اسی شدت کے ساتھ اپنا روپ دکھاتا ہے۔

ہزاروں سال سے سیاحوں کے قدم یہاں پہنچتے رہے ہیں۔ ان کے لکھے ہوئے سنسنی خیز حالات پڑھنے سے کچھ معلومات تو حاصل ہوتی ہیں مگر اس طلسمی سرزمین کی اصل کیفیت آنکھوں دیکھے حال سے بھی معلوم نہیں ہوتی۔ بس وہی بات رہتی ہے کہ ایک بار دیکھا ہے، بار بار دیکھنے کی ہوس ہے!

سفر کی صعوبتیں، پُر ہول راستے اور خطرے ضرور لاحق ہوتے ہیں مگر اس سفر میں جو ثمر تھری ہے اسے انگیز کر لینے کے بعد پھر انسان کو یہ گلپوش وادیاں مسحور بھی اتنا ہی کرتی ہیں۔ اسے جنتِ ارضی کہنا بیجا نہ ہوگا۔ چاروں طرف برف پوش چوٹیاں، پھلوں سے لدے ہوئے اشجار، خوبرو انسان، سبھی انسان کو طلسم و سحر کی دنیا میں لے جاتے ہیں۔

مُہم پسند، کوہ پیما، شکاری، ـــ مناظرِ قدرت کے شیدائی کے لئے یہ مقام عجیب ہے۔ آپ کو مچھلی کے شکار کا شوق ہو، پولو کے دلدادہ ہوں، عکس کشی سے دلچسپی ہو تو یہاں بڑے خوبصورت مواقع موجود ہیں۔

آج سے بیس سال پہلے یہ کوہستانی خطہ چاروں طرف سے گھرا ہوا ہونے کے سبب دنیا سے بہت ہی الگ تھلگ تھا۔ اب

ان حصاروں کو عبور کرنا ایسا دشوار نہیں رہا۔ اس کے ایک طرف فلک بوس ہمالیہ کی چوٹیاں ہیں تو دوسری طرف قراقرم کا پُرشکوہ سلسلۂ کوہ۔ ان پہاڑوں تک پہنچنے کے لئے اب پاکستان بننے کے بعد سے بڑی سہولتیں پیدا ہو چکی ہیں۔ ہمارے موجودہ دارالحکومت، راولپنڈی، سے گلگت تک ایسی سڑک بن چکی ہے جس پر جیپ مزے سے چلتی ہے۔ راستہ میں وادیٔ کاغان کی ایک دوسری ارضی بہشت پڑتی ہے۔ بابوسر کا ۱۴۰۰۰ فٹ بلند درہ بھی یہیں ہے۔ مزید آسانی کے لئے گلگت اور بلتستان کے صدر مقام سکردو کے ساتھ فضائی سروس قائم ہو چکی ہے۔ راستہ یہی کوئی دو سو میل کا ہوگا۔ جب ہوائی جہاز سے آدمی سفر کرے تو ان بلند و بالا برف پوش پہاڑوں کی چوٹیوں پر سے گذرتے وقت دل ہولنے لگتا ہے۔ نیچے دیکھو تو دریائے سندھ کی وادی شروع ہے۔ غرض ہر طرح نظاروں کی کثرت ہے، ہر قدم پر سفر کی تھرتھری موجود ہے۔

چنانچہ جب میں نے پچھلے دنوں موسم خزاں کے دوران اس سفر کا ارادہ کیا تو یہی مناسب سمجھا کہ پنڈی تک طیارہ سے پہنچنا چاہئے اور پھر وہاں سے گلگت۔ گلگت سے ہنزہ، نگر اور دیگر شمالی علاقوں کی سیر بذریعہ جیپ کرنی چاہئے۔

میرے ہمسفر ایک نوجوان فلسازتھے۔ انہیں بھی اس طلسمی سرزمین کو دیکھنے کا بڑا شوق تھا اور چونکہ میں پہلے ادھر کا سفر کر چکا تھا اس لئے میں نے وہاں کے حیرت افزا قصے سنا سنا کر ان کی آتشِ شوق کو اور بھی بھڑکا دیا تھا۔ یوں میری اور ان کی سرحدیں الگ الگ تھیں۔ میرا تعلق لوح و قلم کی پرورش سے ہے اور وہ سلولائیڈ کے فنکار ہیں، مگر دونوں کا مقصد ایک ہی تھا — اس علاقہ میں جو جادوئے رعنائی و زیبائی ہے، اس کو ایک دستاویزی فلم میں سمو دیا جائے، اور میں اس داستانی سرزمین کی کہانی آپ کے سامنے اس طرح بیان کر سکوں کہ اس آنکھوں دیکھے حال کے کہنے اور سننے کا مزا آ جائے اور میرے پڑھنے والے اس بات کا کچھ اندازہ کر سکیں کہ مشاطۂ فطرت نے اس عروسِ ارضی کی زلفیں کن کن سدابہار پھولوں سے سجائی ہیں۔

ہم کراچی سے بذریعہ طیارہ راولپنڈی کے ہوائی اڈہ چکلالہ، پر پہنچے۔ پی۔ آئی۔ اے کے کمرۂ انتظار میں بیٹھے اس جہاز کا انتظار کر رہے تھے جو ہمیں گلگت لے جانے والا تھا۔ جوں جوں منزل قریب آتی جا رہی تھی شوقِ دید فزوں تر ہوتا جا رہا تھا لیکن یہ چند لمحاتِ فرصت کچھ بے مصرف ہی نظر آ رہے تھے اور اس وقت ہماری طبیعت میں یہ بے لطفی قدرتی بات تھی۔ مگر یہ حالت بہت جلد تبدیل ہو گئی کیونکہ قافلۂ سفر میں ایک عجیب اضافہ ہوا۔ کیا دیکھتے ہیں کہ ایک غیر ملکی جوڑا چلا آ رہا ہے۔ بعد میں معلوم ہوا کہ یہ سویڈن کے رہنے والے ہیں۔ دونوں کے لبوں پر دور تک پھیلی ہوئی مسکراہٹ ہر ایک کو خوش آمدید کہتی چلی آ رہی تھی۔ معلوم ہوا دونوں سٹاک ہوم سے سیدھے چلے آ رہے ہیں اور لوازمات سفر سے ہر طرح لیس ہیں۔ فلمبندی کا سامان، صدابندی کے آلے۔ کوہ پیمائی کے جملہ ساز و سامان۔ اللہ اللہ! یہ ذوقِ سفر بھی کیا چیز ہے جو وقت اور فاصلے کی طنابیں کھینچ کر انسان کو کہاں سے کہاں پہنچا دیتا ہے۔ یہ دیکھ کر عجب مسرت ہوئی کہ آج کا مصروف انسان بھی اگر چاہے تو اپنی مہم جوئی کی سپرٹ زندہ رکھنے کے لئے کچھ نہ کچھ وقت نکال ہی لیتا ہے۔ اصل چیز ذوقِ نظارہ ہے یا فطرت کے چیلنج کو قبول کرنے کی لگن۔

صبح کا وقت اور ستمبر کا مہینہ تھا۔ دھوپ خوب کھلی ہوئی تھی۔ ہوائی سفر مختصر تھا، یہی کوئی گھنٹہ بھر میں ہم پنڈی سے گلگت پہنچ جائیں گے۔ راہ میں وہ گلپوش وادی پڑتی تھی جسے عالمی نقشۂ سیاحت پر اب ایک ممتاز جگہ حاصل ہو چکی ہے، — وادیٔ کاغان۔

ایبٹ آباد پر سے گذرے تو چوٹیوں کا ایک لامتناہی سلسلہ شروع ہو چکا تھا۔ اُدھر بادلوں کا ہجوم سیل تاتار کی طرح اُمڈا چلا آتا تھا۔ پائیلٹ ان کی زد سے بچنے کے لئے کبھی بلندیوں کو چھونے لگتا کبھی نیچے غوطہ لگاتا یہاں تک کہ ہم کوئی پندرہ ہزار فٹ کی بلندی پر پہنچ گئے — فضا اجلی اجلی، جہاں بیکراں کے معنی کچھ ابھی سمجھ میں آئے۔

اور پھر دیکھا کہ ہمارا طیارہ یکایک بل کھاتا وادیٔ سندھ کی تنگ راہوں پر سے گذر رہا ہے۔ پل صراط سے زیادہ باریک راہیں۔ یوں لگتا تھا جیسے طیارہ تلوار کی دھار پر چل رہا ہو۔ کبھی یوں لگتا کہ اس پہاڑ سے ٹکرایا، کبھی اس چوٹی سے بال بال

بچا۔ اعصابی تناؤ کی کیفیت محسوس ہونے لگی۔ میں نے اپنی آنکھیں بند کرلیں اور ٹانگیں پھیلا دیں۔ اگر ہمارے ننھے سے ٹاکر طیارہ نے ہواپیمائی میں ذراسی غلطی کی تو بس خدا ہی حافظ ہے! مگر کیا بھی کیا جائے، آسمان دور تھا اور زمین بھی دور — بہت دور۔ اور بہت سخت!

مگر سفر، خاص کر ہوائی سفر میں اس قسم کے خدشے تو مول لینے ہی پڑتے ہیں۔ ایں ہم اندر عاشقی ... بہرحال ایک عالم سکر و بے نیازی کا طاری تھا۔ الحمدللہ! یہ پر خطر لمحے جلدی ہی گزر گئے۔

علاقہ یوں بھی خطرناک ہے۔ ۳۳ اونچی اونچی نہایت بلند چوٹیاں، جو بیس ہزار فٹ سے بھی اوپر — گویا آسمان کی قربی پڑوسی۔ مشہور ننگا پربت یہیں تو واقع ہے۔ ۶۶۰، ۲۶ فٹ اونچا پہاڑ۔ اور وہ عالمی شہرت کا مالک، کے۔ ٹو — ۲۵۰، ۲۸ فٹ اونچا، جسے دنیا کی دوسری بلند ترین چوٹی کہا جاتا ہے۔ ننگا پربت پر دنیا کی بلند ترین پندرہ ہزار فٹ اونچی چوٹی، یہیں تو ہے۔ بس یوں لگتا تھا کہ ایک دیوار سنگ ہے جو فرش سے عرش تک چلی گئی ہے۔ العظمت للہ!

مگر ان بلندیوں کی پستی بھی دیدنی تھی۔ پہاڑی ڈھلانیں، ہر طرف سبزہ، جدھر نظر جاتی تھی فرش زمردیں بچھا دکھائی دیتا تھا۔ ایسی ہریاول کہ آنکھیں تراوت سے ٹھنڈی ہو جائیں۔ اور تصور وجد میں آ جائے۔ تیز رو ندیاں — وہ کہکشانِ ارضی، الگ جلوہ فروش تھیں۔ اونچے اونچے برفپوش پہاڑوں کے دامن میں گلیشیروں سے نکل کر بل کھاتی، اٹھلاتی اور گنگناتی نیچے اتری چلی آ رہی تھیں۔ طیارہ ایسے ہی ماحول سے گزر رہا تھا۔ نیچے وادیٔ سندھ کی شروعات تھی۔ بال سے باریک چکا دخم — یہ ننھا سا طیارہ فطرت کے ان عظیم مظاہر کے بیچ میں ایک ذرہ بے مقدار سے زیادہ نہ تھا۔ مگر پائیلٹ کی چابکدستی اور ہنرمندی کا قائل ہونا پڑا کہ وہ تمام مقاماتِ خطر سے ہمیں صاف بچا کر لے گیا۔ مگر یہ لمحہ میری زندگی کے کبھی نہ بھولنے والے واقعات کی ایک کڑی ضرور بن گیا۔

طیارہ بنجی کے نزدیک پہنچا تو یوں لگا جیسے پہاڑوں نے ہمیں راہ دیدی ہو۔ اب سامنے ایک کشادہ وادی تھی ......

معلوم ہوا کہ ہم گلگت کے ہوائی اڈہ پر اترنے والے ہیں۔ طیارہ گلگت کی ہوائی پٹی کے اوپر چکر لگا رہا تھا۔ آنِ واحد میں جہاز کے پہیوں نے اس طلسمی سرزمین کے دامن کو، جو دریا کے متوازی چلا گیا تھا، پہلی بار بوسہ دیا۔

سب سے پہلے سویڈش جوڑا طیارہ سے باہر نکلا۔ اس جنت ارضی کی سرحد میں پہلی بار داخل ہونے پر کچھ مسرت، کچھ حیرت کے ملے جلے جذبات چہروں پر لئے ہوئے۔

گلگت کا یہ ننھا سا ہوائی اڈہ بھی بڑی دلچسپ جگہ ہے۔ جیسے ہی جہاز رکا نہ جانے کدھر سے بہت سے گلگتی مزدور ہماری طرف دوڑ پڑے۔ سامان اتارنے چڑھانے کا شور و غوغا بلند ہونے لگا۔ ان لوگوں کی پھرتی دیکھنے کے قابل تھی۔ وہ جلد سے جلد مال اتارنا اور چڑھانا چاہتے تھے۔ کیونکہ جہاز واپس پنڈی جا رہا تھا۔ جلد سے جلد واپسی کی ہر ممکن تدبیر کی جا رہی تھی۔ جہاز بہت سامان لے کر آیا تھا۔ خچر گاڑیاں عین جہاز کے پاس آن گئیں۔ یہ مال لے کر سیدھی شہر کا رخ کریں گی۔ جہازی عملہ بڑی تیزی سے کام کر رہا تھا۔ ہر طرف بھگدڑ مچی ہوئی تھی۔ یہ ساری عجلت یوں تھی کہ موسم کا کوئی اعتبار نہیں۔ تجربہ کار سے تجربہ کار ماہر موسمیات بھی یہ نہیں کہہ سکتا کہ ذراسی دیر میں فضا کیسی ہو جائے گی۔ یہاں ذراسی دیر میں موسم کا مزاج برہم ہو جاتا ہے۔ جبینِ افق پر شکنیں پڑنے سے پہلے پہلے جہاز کو خطرہ کی حد سے نکل جانا ضروری تھا۔ پچھلے دنوں جب میں چند دنوں کے لئے گلگت گیا تھا تو واپسی میں کئی دن کے لئے رکنا پڑا کیونکہ بادلوں بلکہ دَل بادلوں، نے پوری وادی کو گھیر رکھا تھا اور یہ سارا علاقہ باقی دنیا سے منقطع ہو چکا تھا۔

ہوائی اڈے پر ہمارا استقبال یہاں کے ایک افسر، عباس صاحب نے کیا۔ یہ صاحب شمالی اضلاع کے پولیٹیکل ایجنٹ کے نمائندے تھے۔ انہوں نے ہمیں گلگت ریسٹ ہاؤس کے ایک آرام دہ کمرہ میں ٹھہرایا۔ سیاحوں اور مہمانوں کو جو سہولتیں اس دورِ دست مقام پر پیش کی جا سکتی ہیں وہ سب بڑے اخلاق و محبت کے ساتھ ہمیں یہاں مہیا کر دی گئی تھیں۔

گلگت کا چھوٹا سا شہر نئے تعمیر شدہ ہوائی اڈہ سے کوئی میل بھر دور ہوگا۔ آجکل یہ جگہ گلگت ایجنسی اور "شمالی اضلاع"
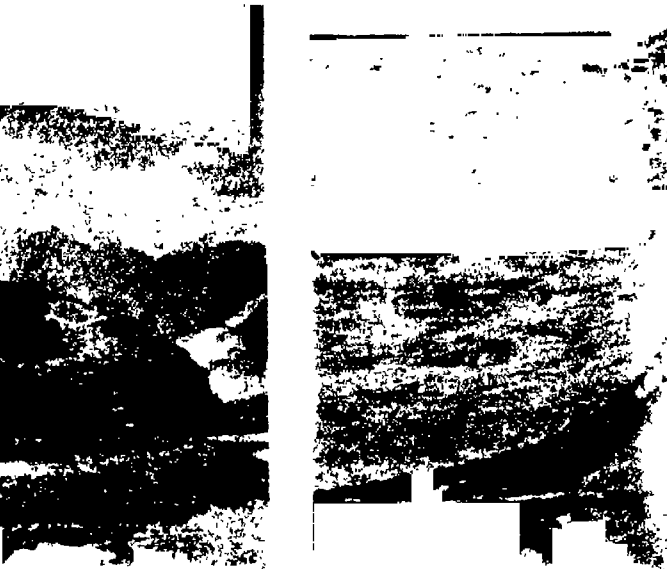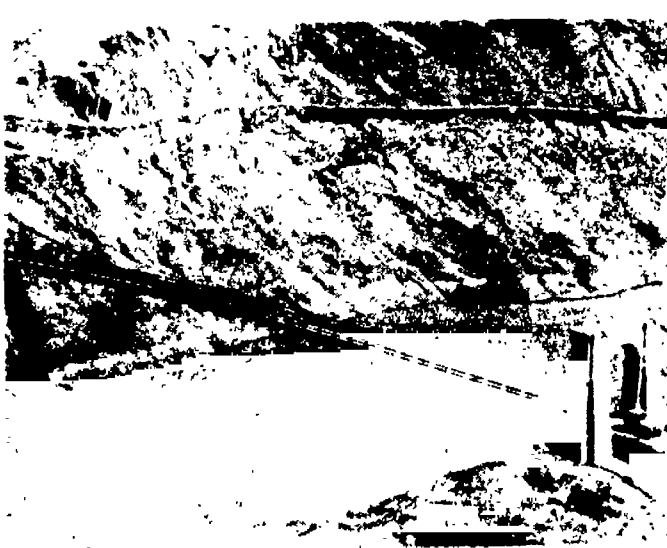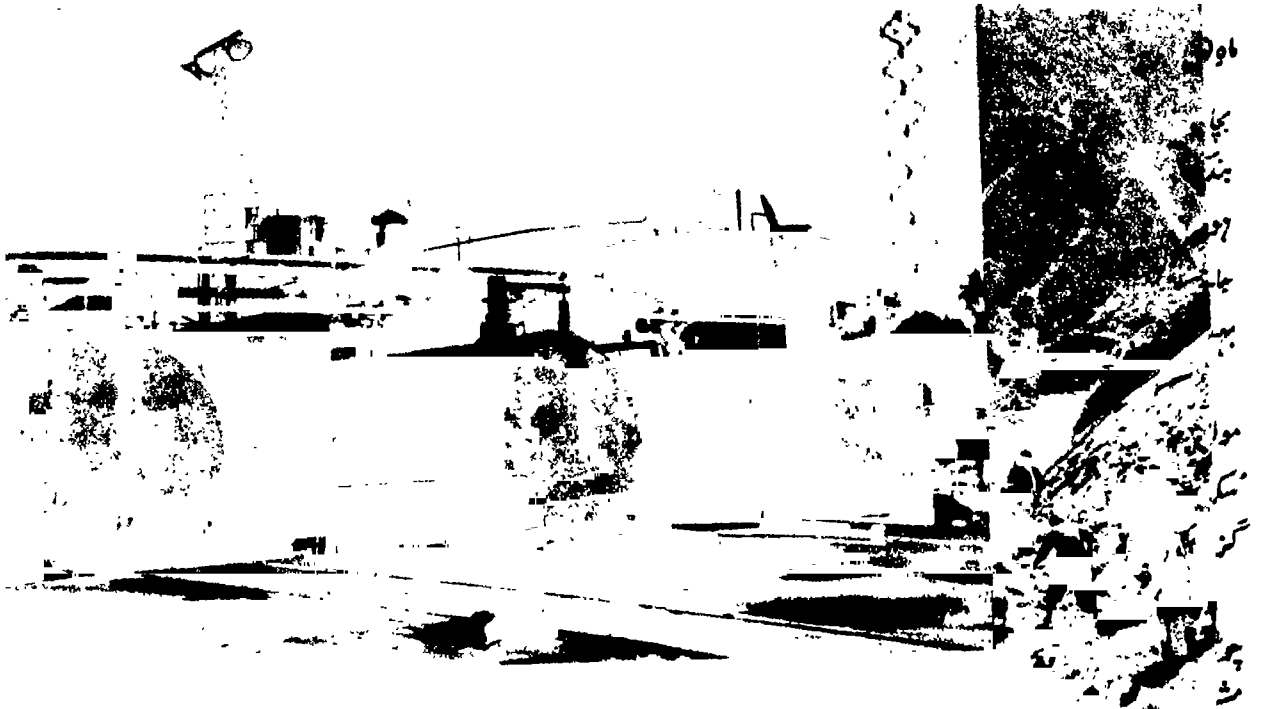
مغربی پاکستان کی طرح مشرقی پاکستان میں صنعتی ترقی کی رفتار کو تیز سے تیز تر کرنے کی مساعی پورا زور دیا جا رہا ہے تاکہ ہمارا یہ بازو بھی، جو وسائل سے مالا مال ہے، اپنی صلاحیتوں کو بخوبی بروئے لا سکے۔

مشرقی پاکستان کی صنعتی ترقی کے لئے کاغذ کھاد بنانے اور دریاؤں کی تسخیر کے منصوبوں کامیابی کے ساتھ عمل کیا جا چکا ہے۔

ا شار ممدود ہو جاتی

کی جو ماں

رخانہ (ڈھنا) :
خود کفیل ہو چکے ہیں
رشہ ہیں ۔

تسخیر سے تعمیر : ... پر بند کی تعمیر

کا انتظامی مرکز ہے یعنی صدر مقام۔ اس کی آبادی پندرہ ہزار ہے اور ایک تنگ وادی میں واقع ہے۔ سطح سمندر سے تقریباً ۴۷۰۰ فٹ بلند۔ چاروں طرف سرمئی رنگ کے نہایت بلند پہاڑوں کا سلسلہ ہے اور دریائے گلگت پورے علاقے کو محیط۔ غرضیکہ یہ مقام اپنی قدرتی خوبصورتی اور نفیس و پرسکون ماحول کے اعتبار سے بڑا ہی راحت فزا اور قابل دید مقامِ سیاحت ہے۔ یہاں ایک چھوٹا سا بازار بھی ہے جو اب ائرپورٹ تک پھیلتا جا رہا ہے۔ اس بازار میں شمالی اضلاع کے ہر مقام کے لوگ چلتے پھرتے نظر آئیں گے۔

تاریخی عہد سے لیکر اب تک گلگت اطراف و اکناف کا تجارتی مرکز رہا ہے۔ کسی زمانہ میں وسط ایشیا کے کارواں یہیں آکر دم لیتے تھے۔ سنکیانگ سے اس علاقہ تک جو اب پاکستان کہلاتا ہے جو رشتۂ مواصلت قائم تھا، گلگت اس کا مرکزی نقطہ تھا۔ کاروباری لوگ اُدھر سے اِدھر آتے جاتے رہتے تھے۔ چین اور وسط ایشیا کا مالِ تجارت، نوادرات اور سوغاتیں یہیں پہنچتی تھیں۔ پھر یہاں سے بہت سا مال و اسباب لدکر سرحد چلا جاتا تھا۔ پہاڑی سفر کی خطرناک مہمیں، پُرپیچ ڈراؤنے راستے جیسے پہلے تھے اب بھی ہیں مگر حوصلہ مند تاجروں اور رہ نوردانِ شوق ان سب مشکلوں کو حل کر لیا کرتے تھے۔ آج کل گلگت کے کاروباری تعلقات اپنے ہی ملک کے دوسرے حصّوں سے قائم ہیں۔ یعنی گلگت سے پنڈی کے درمیان ہر وقت کاروباری سلسلے چلتے رہتے ہیں۔ سڑک کے راستے سے بھی اور ہوائی جہاز سے بھی۔

ہاں، تو میں ذکر کر رہا تھا کہ ہم لوگ بخیریت گلگت پہنچ گئے، اور دوسرے روز صبح جیپ میں سوار ہو کر گلگت سے آگے چل پڑے۔ ہماری منزل مقصود نگر اور ہنزہ تھی۔ گلگت تو سمجھئے ایک ابتدائی مستقر تھا، یعنی، دیہات سے آگے چلیں گے دم لے کر۔

عظیم دریائے گلگت پہ برف کی چادر جم چکی تھی۔ اسے عبور کرنے کے لئے ہمیں اس جھولے نما پل پرسے گذرنا پڑا جس کے بارے میں ہمیں معلوم ہوا کہ یہ ایشیا میں سب سے لمبا پل ہے۔ ہمیں یہ بھی بتایا گیا کہ ۱۹۴۸ء میں جب ہندوستانی فوج کے طیاروں نے گلگت پہ حملہ کیا تھا تو اس کو بھی تباہ کرنے کی کوشش کی گئی تھی مگر خوش قسمتی سے کوئی بھی بم اس پر نہ گرا، یعنی بم اِدھر اُدھر دریا میں جا پڑے اور یہ عجوبۂ روزگار پل تباہی سے بچ گیا۔ ان بموں میں لگے ہوئے پروں کو محفوظ کر لیا گیا ہے۔ اور آجکل پولیٹکل ایجنٹ صاحب کے بنگلے پر بطور یادگار رکھ دیئے گئے ہیں۔

دریا کے مشرقی کنارے کو عبور کر کے ہم جانبِ جنوب روانہ ہوئے۔ سڑک پر بڑی خاک تھی جو ایک پہاڑی کے ساتھ ساتھ کوئی تین میل تک چلی گئی تھی۔ یہ سفر کرتے ہوئے ہم وادی ہنزہ میں داخل ہو گئے جو کافی چوڑی مگر بے برگ و گیاہ ہے۔ دور تک کوئی سبزہ گاہ بھی نظر نہ آتا۔ دونوں طرف تودۂ ریگ کے رنگ سے ملتی جلتی پہاڑیاں، یا سرمئی پہاڑ تھے جن میں سے تنگ پُرپیچ راستے بلتے چلے گئے تھے۔ یہ راستے کیسی کیسی صناعی کے ساتھ بنائے گئے تھے، اس کا اندازہ صرف دیکھنے کے بعد ہی کیا جا سکتا ہے۔ مگر ہم لوگ ان پُرخطر راہوں کے ایسے عادی ہو چکے تھے کہ انہیں دیکھ کر کسی قسم کا اعصابی تناؤ محسوس نہ ہوتا تھا۔

گلگت سے ہم کوئی بارہ میل اِدھر آئے ہوں گے کہ ایک نئی آفت کا سامنا کرنا پڑا۔ راستہ میں کسی پہاڑی کا ایک تودہ گر کر سڑک کو مسدود کر چکا تھا۔ مزدور بیلچے لئے صاف کرنے میں مشغول تھے مگر انہوں نے بتایا کہ سڑک کھلنے میں کوئی چار گھنٹے لگ جائیں گے!

پہلے سوچا اب کون اتنا انتظار کرے آؤ گلگت واپس چلیں، مگر پھر خیال آیا کہ وادیٔ شوق میں قدم رکھنے کے بعد آگے ہی بڑھنا چاہیئے۔ اسی اثنا میں کیا دیکھتے ہیں کہ ایک اور جیپ چلی آ رہی ہے۔ لیجئے وہی اپنے پرانے دوست تھے۔ سویڈن کے رہرو۔ ان کے ساتھ ایک مقامی افسر بھی بطور گائڈ آئے تھے۔

ہم لوگوں نے فیصلہ کیا کہ اپنی جیپیں تو یہیں چھوڑیں اور خود آگے بڑھیں۔ چند مزدوروں کی مدد سے اس تودۂ سنگ کے اس طرف پہنچیں اور نومل کی طرف پیدل چل پڑیں، جو ہماری اگلی منزل تھی۔ یہ ہمارا پہلا پڑاؤ تھا۔ یہاں ریسٹ ہاؤس بنا ہوا ہے اور کوئی پانچ میل دور تھا۔ وہاں ہم کھانے کے وقت پر پہنچ سکتے تھے۔ ڈرائیور کو یہ ہدایت دی گئی کہ جیسے ہی راستہ کھلے وہ سامان اور جیپیں لیکر نومل

پہنچ جائیں۔ مسٹر اور مسز آلسینز نے بھی یہی تدبیر اختیار کی۔

ہیڈل کا راستہ کوئی گھنٹہ بھر میں طے ہو گیا۔ راہ میں ہمیں کئی پہاڑیوں کے اوپر تک پہنچنا پڑا اور جب نیچے اترے تو ہری بھری وادی لوٹل میں داخل ہو چکے تھے۔ دوپہر کے کھانے کا وقت بھی آن پہنچا تھا۔ ریسٹ ہاؤس بڑی پُر فضا جگہ بنا ہوا ہے۔ چاروں طرف پھلوں کے باغات ہیں۔ کھانا بڑا نفیس تھا اور کوئی تین گھنٹے تک ہم لوگ خوب سستائے۔ چار بجے کے قریب ہمارے ڈرائیور اپنی جیپیں لیکر آ گئے تھے۔ اب ہماری اگلی منزل مغزہ تھی جس کے لئے ہم تیار تھے۔ سویڈی جوڑا بھی روانگی کے لئے تیار تھا۔ اس کے ساتھ ایک مقامی گائیڈ اور باورچی بھی تھا۔

لوٹل سے آگے بڑھے تو عجب عالم تھا۔ جس طرف نگاہ جاتی تھی پُر ہول پہاڑوں کا ہیبتناک سلسلہ، تنے ہوئے سنتریوں کی طرح سینہ تانے راستہ روکے ہمارے آگے کھڑا تھا۔

گواچ کے مقام تک ہماری جیپ ابھی پہنچی ہی تھی کہ ایک دم کسی پہاڑ کے نیچے اترنی شروع ہو گئی اور اچانک ایک گہری ندی میں داخل! الاماں! خیر، اس تجربہ سے ابھی حواس قائم ہوئے ہی تھے کہ ایک اور پُر ہول مقام آ گیا۔ یہاں گاڑی ہو یا کوئی حیوان بہتے پانی سے گذرے بغیر ادھر سے اُدھر نہیں پہنچ سکتا۔ ایک گہری کھدی ہوئی آبی راہ کے گرد چکر کاٹتے ہوئے ہم آہستہ آہستہ آگے بڑھے۔ سر چکرا دینے والی چڑھائیاں تو ابھی آگے آنے والی تھیں اور ہم ذہنی طور پر ان کے لئے تیار تھے۔ گاڑی انتہائی سستی کے ساتھ چل رہی تھی۔ ہر موڑ اتنا خطرناک تھا کہ زندگی کا موڑ معلوم ہوتا تھا۔ ہر خم پر جیپ چیونٹی کی چال چلتی تھی اور یہ تو بہت ہوا کہ اس کے چاروں پہیے سنگریزوں میں پڑے پوری رفتار سے گھمر گھمر کر رہے ہیں مگر گاڑی یکدم ایک جھٹکے کے ساتھ ٹھہر گئی! لیجئے آگے ایک "V" کی شکل کی گولائی آ گئی۔ اب اس پر چکر کاٹئے تو آگے بڑھیئے!

غرض سفر کا یہی عالم رہا۔ سوچا ایسے خطرناک راستوں کو عکس کی قید میں لایا جائے مگر ہم نے سوچا اگر عکاسی کے چکر میں پڑے اور ڈرائیور کو ذرا بھی گڑبڑایا تو پوری پارٹی کی جانیں خطرہ کے منہ میں پہنچ جائیں گی! لیجئے ایک ایسا سخت مقام بھی آ ہی گیا۔

آلسینز کی جیپ ایک تیکھے سے خم پر پہنچی ہی تھی کہ ایک دم الٹی چڑھنے لگی! معلوم ہوا کہ ڈرائیور صاحب نے الٹا گیئر لگا دیا حالانکہ اس سیدھی تنی چڑھائی پر ایکسیلیٹر دبانا چاہئے تھا! اور یہ قطعی معجزہ ہوا کہ جیپ اترائی کے پاس پہنچتے ہی زبردست جھٹکے کے ساتھ خود ہی رک گئی، ورنہ حشر معلوم تھا!

اس خوفناک واقعہ نے ہمارے بھی اوسان خطا کر دیئے تھے۔ کم از کم پندرہ منٹ تک ہم اپنے اعصاب پر قابو نہ پا سکے۔

خیر یہ لمحات بھی گذر گئے اور ہم نے پھر سفر شروع کر دیا۔ جب آلسینز کی جیپ الٹی چڑھنے لگی تھی تو مسز آلسینز اپنی سیٹ سے اچھل پڑی تھیں اور دوبارہ اس پر بیٹھنے کے لئے تیار نہ ہوتی تھیں۔ ہم سب دیکھ رہے تھے کہ خوف کے مارے ان کا چہرہ زرد تھا، بری طرح بدحواس تھیں۔ اس صورت حال کا مقابلہ ایک حسنِ تدبیر سے کیا گیا۔

طے ہوا کہ ہم ان کی جیپ پر پیچھے پیچھے چلیں۔ اگر اتفاق سے ایسا ہی کوئی حادثہ رونما ہو جائے تو ہم فوراً مدد کو دوڑیں، ویسے حوصلہ ہارنے کی کوئی بات نہیں تھی۔ اس طرح کی باتیں کر کے ہم نے آلسینز کو پھر روانہ کر دیا۔ افتاں و خیزاں ہم بھی چھالٹ تک پہنچ گئے۔ یہ جگہ لوٹل سے ۱۵ میل سے زیادہ نہ تھی، مگر پہنچتے پہنچتے کوئی تین گھنٹے لگ گئے! شکر ہے ہمارے اندیشے غلط ثابت ہوئے۔

ہم لوگ رات بھر یہاں کے ریسٹ ہاؤس میں ٹھہرے جہاں ہمیں دو نہایت آرام دہ کمرے مل گئے تھے۔ پچھلے تجربات کی یادیں کچھ ایسی دلخوش کن بھی نہ تھیں مگر یہاں آکر ایسا معلوم ہوا کہ آغوشِ راحت نے ہمیں اپنے بیچ میں لے لیا ہے اور ساری کوفت اب دور ہو جائے گی۔ چاروں طرف اونچے اونچے برف پوش پہاڑوں کے سنتری چپ چاپ ہاتھ باندھے کھڑے تھے اور ان کے سامنے یہ ننھی سی خوبصورت بستی تھی، اس کا یہ مہمان خانہ تھا جس کے سبزہ زار پر ہم لوگ بیٹھے تھے، تاروں بھرا آسمان اوپر

تھا۔ فضا میں سکون تھا اور یہ سب اعصاب کو راحت پہنچا رہے تھے۔

صبح اٹھے تو تازہ دم تھے۔ صحت افزا مقام کی تازگی بخش ہوا ہمارے رگ و پے میں سرایت کر رہی تھی۔ ذہنی کوفت، جسمانی تکان اور اعصابی کھنچاؤ کی تمام کیفیتیں اب دور ہو چکی تھیں اور آج کے سنسنی خیز سفر کے لئے ہم بالکل تیار تھے۔

چھلت سے، جو نگر اسٹیٹ کا ایک گاؤں ہی ہے، ہم نے میر صاحب والیٔ ہنزہ کو بذریعہ ٹیلیفون اطلاع بھیجی کہ ہم لوگ کب کہاں پہنچ رہے ہیں۔ ہمارا ارادہ یہ تھا کہ میر صاحب نگر کے صدر مقام پر پہلے پہنچیں اور وہاں سے ہو کر پھر بارہ میل واپس آکر ہنزہ کی طرف رخ کریں۔ میر صاحب کے علاقے تک پہنچنے کیلئے ہمیں ایک دریا عبور کرنا تھا جس کے لئے چرخی نما ایک کل لگی ہوئی تھی۔ یہ کل ایک کھٹولے کو تاروں کے رستے پر چلاتی تھی۔

چھلت سے ہم مناپن کی طرف روانہ ہوئے۔ بڑی لمبی اکاری چڑھائی تھی جو تقریباً اٹھارہ میل تک چلی گئی تھی۔ جدھر دیکھو بھوتوں جیسے پہاڑ منہ اٹھائے کھڑے تھے یا دریاؤں کے دامن تھے۔ بہت سی جگہیں تو ایسی آئیں کہ انجن نے آگے بڑھنے سے انکار کر دیا اور اس ڈر سے کہ کہیں گاڑی پھر الٹی نہ چل پڑے، فوراً بریک لگانے پڑتے تھے۔ بعض دفعہ پھرتی سے اتر کر بڑے بڑے پتھر پچھلے پہیوں کے نیچے روک کے لئے لگانے پڑتے۔ پھر یہ تو بہت ہوا کہ جیپ نے چڑھائی کے آگے اپنے ہتھیار ڈال دیئے اور ہمیں دھکا لگا لگا کر کہیں چڑھائی پر اسے پہنچانا پڑا۔ وہی مثل ہوئی کبھی ناؤ پانی میں، کبھی پانی ناؤ میں!

اکثر جگہ ہم اتر کر پیدل نہ چلتے، تو کیا کرتے۔ الٹے سے تو یہی بہتر تھا کہ اپنے کس بل کے جوہر دکھانے کے اس موقع سے فائدہ اٹھایا جاتا۔

اسی قصے میں دوپہر ہو گئی اور ہم لنچ کے وقت مناپن پہنچ گئے۔ یہاں کا ریسٹ ہاؤس بھی خوب ہے۔ بڑی پر فضا جگہ بنا ہوا ہے۔ چاروں طرف ہریاول ہی ہریاول اور پھلوں کے نفیس باغیچے۔ یوں مناپن کا سارا علاقہ نہایت سرسبز اور بڑا شاداب ہے بلکہ اطراف و جوانب کے علاقوں کی خشک اور مٹی ریت اڑاتے سرمئی رنگ پہاڑوں کے مقابلے پر تو یہاں کے پہاڑ بڑے ہی شاداب تھے، ہر طرف خضرا ہی خضرا پھیلا ہوا تھا۔

تحدیثِ نعمت کے طور پر عرض کرتا ہوں کہ مناپن میں دوپہر کے کھانے پر ہمیں وہ وہ انواع و اقسام کے کھانے کا اتفاق ہوا کہ طبیعت سیر ہو گئی۔ روسٹ چکن، آلو، تازہ پھل، اور آخر میں، بڑی نفیس گرم گرم چائے۔ یہ سب ضیافت یوں اور بھی مفید ثابت ہوئی کہ ہمیں ابھی ۱۹ میل کا سفر اور کرنا تھا — نگر کے صدر مقام تک۔

یہاں جس راستے سے واسطہ پڑا اس کی بابت مشہور ہے کہ بڑا ہی پُرخطر ہے۔ پُرخطر ان معنوں میں کہ دونوں جانب نرم مٹی کے بنے ہوئے اونچے اونچے تودے ہیں اور وہ پھسل پھسل کر نیچے گرتے رہتے ہیں۔ اسی لئے وادی میں اکثر راستے مسدود ہو جاتے ہیں جنہیں بڑی مشکل سے صاف کیا جاتا ہے۔ یہاں بڑی تند ہوائیں چلتی ہیں یا بارش ہو جاتی ہے، نتیجہ یہ کہ مسافر جہاں کے تہاں رکے رہتے ہیں اور کوئی نہیں کہہ سکتا کہ راستے صاف ہونے میں کتنا عرصہ لگے گا۔

ہر میل کے بعد ننھے ننھے گاؤں پڑتے تھے۔ چاروں طرف ہریاول یا کہیں کہیں آبپاشی کی نمود دکھائی دی۔ غرض جو کچھ نظر آیا نظروں کی آسودگی کا سامان تھا جس نے سفر کی صعوبتوں کو کم کرنے میں بڑی مدد دی۔ تقریباً پانچ بجے شام ہم نگر کے قریب پہنچ گئے۔

نگر کے آس پاس کا علاقہ حقیقت میں بہت ہی سرسبز ہے۔ ایک بہار بداماں وادی۔ نرم رو ندیوں کا جال، پھلدار درختوں کی کثرت سے پورا علاقہ مالا مال۔ سڑک ایک تنگ میدان میں سے نکلتی ہوئی آگے چلی جاتی ہے۔ اس میدان کو میر صاحب ہنزہ پولو گراؤنڈ کے طور پر استعمال کرتے ہیں۔ سڑک ریسٹ ہاؤس تک پہنچتی ہے اور میر صاحب کا محل بالکل ملحق ہے۔

میر صاحب کے مستعد و تمیزدار ملازمین نے ریسٹ ہاؤس میں ہمیں خوش آمدید کہا اور بڑے آرام سے ٹھہرا کر یہ لوگ نہ جانے کہاں چلے گئے۔ تھوڑی دیر بعد کیا دیکھتے ہیں کہ بڑے بڑے خوانوں میں طرح طرح کے فواکہات اور لوازمات خورد و نوش لئے چلے

آ رہے تھے۔ یہ سب تکلف شاید اس وجہ سے بھی تھا کہ ہم لوگ خود میر صاحب ہنزہ کے مہمانانِ خصوصی تھے۔ مگر یہ معلوم کر کے بڑا افسوس ہوا کہ ہمارے میزبانِ گرامی کے مزاج ناساز تھے اور وہ ہمارے ساتھ چائے میں شریک نہیں ہو سکتے تھے، مگر اطلاع یہ تھی کہ صبح ناشتہ پر ان کے محل میں ضرور ملاقات ہو سکے گی۔

شب کو کھانے کا اہتمام اور بھی پرتکلف تھا جیسے لگانے اور کھلانے کے لئے کوئی نصف درجن ملازمین تعینات تھے۔ کھانے کے شاہانہ التزام کے ساتھ ساتھ قیامِ شب کا بندوبست بھی ایسا ہی پرتکلف تھا۔

پوری وادیٔ نگر کو پانی رکاپوشی نامی پہاڑ کے گلیشیر سے فراہم ہوتا ہے۔ سارے جاڑے سورج کی شکل نظر نہیں آتی۔ اس کے مقابلہ پر وادیٔ ہنزہ میں سارے سال سورج خوب چمکتا ہے، جس نے اسے بڑا سرسبز اور ہرا بھرا بنا دیا ہے۔

نگر کی بستی بلتیت کے عین مقابل واقع ہے۔ جو دریا کے اس پار ہنزہ کا صدر مقام ہے۔ ان دونوں نواح کو ملانے کے لئے تاروں کا بنا ہوا کوئی بارہ میل لمبا پل ہے جو دریائے ہنزہ کی ۵۰۰ فٹ چوڑائی پر پھیلا ہوا ہے۔ اس پر سے گذرتے وقت اچھے اچھے منجھے ہوئے سیاحوں کے بدن میں بھی سنسنی سی دوڑنے لگتی ہے!

صبح کو جب ہم لوگ اس مقام پر پہنچے تو پھر آسینز پیچھے پیچھے اپنی جیپ میں آتے دکھائی دیئے۔ یہاں ایک اور تماشا دیکھا۔ دریا عبور کرنے کے لئے دو گہواروں کو کام میں لایا جاتا ہے۔ ایک تو اتنا بڑا ہے کہ اس میں بس ایک جیپ سما سکتی ہے، مگر دوسرا ایک چھوٹی سی چوبی تختے سے زیادہ بڑا نہ تھا۔ بس کوئی دو آدمی کھڑے رہ سکتے تھے۔ یہ دونوں گہوارے تاروں کے رستے کے ساتھ لٹک رہے تھے جو اس کنارے سے اس کنارہ تک تنا ہوا تھا۔ گہواروں کو چلانے کے لئے وہی چرخی سی تھی جو ایک چٹان پر نصب کر دی گئی تھی۔ چھوٹا گہوارہ سن کے رسوں سے لٹک رہا تھا اور دونوں کناروں پر سے ہاتھ کے ذریعے چلتا تھا۔ مگر اس وقت مزدور موجود نہ تھے اس لئے جیپوں کو دریا پار کرانا بجائے خود ایک مسئلہ بن گیا۔

دونوں پارٹیوں نے مل کر یہ طے کیا کہ امدادِ باہمی کے اصول سے کام کیا جائے۔ اس کا طریقہ یہ سوچا گیا کہ سب مل کر ایک جیپ کو مع ڈرائیور بڑے گہوارے میں داخل کر دیں اور دوسرے کنارے سے چرخی کو چلایا جائے۔ اس عمل میں ہمارے ہاتھ بھی چھل گئیں اور جرِ ثقیل کے اس کارنامے کو مکمل کرنے میں تین گھنٹے لگ گئے۔ مگر شکر ہے کہ کوئی حادثہ پیش نہ آیا اور ہم لوگ مع اسباب ہنزہ کی طرف پہنچ گئے۔ واپسی میں یہ جانکاہ محنت نہیں کرنی پڑی کیونکہ مقامی مزدوروں کا انتظام ہو چکا تھا۔ انہوں نے ایک جیپ اسی طرح کھینچ کھینچ کر دریا پار کرا دی مگر دوسری جیپ پار کرانے کے موقع پر عجب ماجرا ہوا۔

چاروں طرف نہایت بلند و بالا پہاڑوں کا مہیب سلسلہ ہے۔ جب دوسری جیپ پار کرائی جا رہی تھی ان بلند پہاڑوں میں زور کے جھکڑ چلنے لگے۔ جونہی گہوارہ کنارہ کے بالکل قریب پہنچا سن کے وہ رستے جو گہوارہ کے نچلے حصہ میں لگے ہوئے تھے چٹاخ سے ٹوٹ گئے! ادھر ڈرائیور، جیپ کو باہر نکالنے کے لئے انجن اسٹارٹ کر چکا تھا۔ جیپ بجائے زمین پر آنے کے پھر اپنے گہوارے کے ساتھ تار کے رستے پر دوسرے واپس ہونے لگی! کیا قیامت تھی!

ہم سب لوگ بجلی کی سی تیزی کے ساتھ لبِ دریا پہنچے اور گہوارے کو پکڑا جو بڑا جان جوکھوں کا کام تھا۔ یہ محض ایک معجزہ تھا کہ گہوارہ رک گیا ورنہ جیپ اور ڈرائیور کی خیر نہ تھی۔ اتفاق ایسا ہوا کہ شمالی اضلاع کی مقامی پلٹن کے کچھ جوان جو گلگت واپس جا رہے تھے عین موقع پر آ گئے۔ ان دوستوں نے بڑے بڑے پتھر اٹھا اٹھا کر گہوارہ کے نچلے حصہ میں رکھ کر اسے قابو میں کیا۔

وہ جگہ جہاں سے ہم نے تار کے رسوں کے ذریعے دریا عبور کیا تھا ہندی کہلاتی ہے۔ یہاں سے بلتیت کے مقام پر پہنچنے کے لئے ہمیں اس قدیم راستہ پر بھی چلنے کا اتفاق ہوا جو ۱۴ میل لمبا ہے اور جس پر سے کبھی مشہور یورپی سیاح مارکوپولو گذرا تھا۔ یہ بڑی تنگ راہ ہے، بس جیپ کے چار پہیے بمشکل جم سکتے ہیں۔ راستہ کبھی سیدھی چڑھائی، کبھی اترائی، کبھی ندی حائل اور پتھروں کی سلوں پر سے گذرنا۔ ہوتے ہوتے چلتے رہے کہ ناگاہ ایک بڑا

پہاڑی درہ آگیا۔ پھر خم کھا کر اس جگہ آن پہنچے جسے مرتضیٰ آباد کہتے
ہیں۔ ایک خوبصورت گاؤں۔ اس کے آگے میل بھر سے کم ہریاول کا
ٹکڑا آیا۔ یہاں ایک اور گاؤں حق آباد پڑتا ہے۔ آگے وادی چوڑی
ہوتی چلی گئی ہے۔ جا بجا پہاڑی ڈھلانوں پر بنے ہوئے کھیتوں کے
تختے چلے گئے ہیں جو بلند ہوتے ہوتے قلۂ کوہ کو چھوتے معلوم ہوتے
ہیں۔ یہیں علی آباد ہے جو بہت خوش منظر جگہ ہے۔ خوبصورت
صاف ستھرے بچے، شائستہ لباس میں ملبوس یہاں کی عورتیں،
سروں پر لال لال کڑھی ہوئی ٹوپیاں اوڑھے ہوئے۔ جو تھا
ہرے بھرے کھیتوں میں کسی نہ کسی کام میں لگا ہوا تھا۔ کھیت
تھے کہ یہاں سے وہاں تک بکھرے پڑے تھے۔ آگے بڑھے تو
حیدر آباد آگیا۔ یہ بستی بھی بڑی سرسبز نظر آئی۔ ہر طرف بلند و بالا
اشجار کھڑے جھوم رہے تھے۔ کھیت کھلیان کی بہار الگ تھی۔
گاؤں کوئی دو میل کے احاطے میں تھا اور دو سو کے قریب مکانات
ہوں گے۔ یہ جگہ بلتیت جانے والی سڑک پر واقع ہے۔

پھلوں کے باغات اور ہرے بھرے کھیتوں کے بیچ
میں سے گزرتے ہوئے ہم کوئی دو میل آگے گئے ہوں گے کہ بلتیت
کی بستی آگئی۔ یہ ریاست ہنزہ کا صدر مقام ہے۔ سڑک پر
یہاں کے باشندے بھی نظر آئے جن کی طرے کنارے والی نمدے
کی ٹوپیاں الگ پہچانی جاسکتی تھیں۔ بدن پر لمبے لمبے چغے ہر ایک
نے پیٹھ پر کوئی بوجھ اٹھا رکھا تھا۔ تازہ کٹی ہوئی فصل معلوم ہوتی
تھی۔ میر صاحب ہنزہ کی سرکاری رہائش گاہ ذرا آگے کریم آباد میں
ہے۔ جو سڑک یہاں تک پہنچتی ہے اس پر بالو ہی بالو ہے اور دونوں سے
دھنس جاتی ہے۔ دونوں طرف بلند قامت اشجار سنتریوں کی
طرح کھڑے ہیں۔ بائیں جانب ایک نہر چلی گئی ہے جس میں پہاڑوں
کی پگھلی ہوئی برف کا پانی دوڑتا رہتا ہے کوئی چار بجے سہ پہر کو
ہم شاہی محل کے دروازے پر پہنچ گئے جہاں میر صاحب کے
خدام نے بڑے تپاک سے ہمارا استقبال کیا اور کہا کہ ہم اپنی
جیپیں سیدھی مہمان خانے تک لے جائیں جہاں ہمارے قیام کا
بندوبست کیا جا چکا تھا۔

یہاں ہمیں اپنے اپنے کمروں پر سرسری سی نظر ڈالنے
میں ابھی ایک دو منٹ ہی گزرے تھے کہ پرچہ لگا، میر صاحب
محترم ہمارا انتظار چائے کی میز پر کر رہے ہیں۔ خدام نے بتایا کہ
ہم لوگ کپڑے بدلنے کے تکلف میں نہ پڑیں۔ میر صاحب خود
بہت بے تکلف انسان ہیں اور تکلف و رسومِ ملاقات کی اتنی
پروا نہیں کرتے۔ چنانچہ ہم سفری لباسوں ہی میں جو گرد سے
اٹے ہوئے تھے، روانہ ہو گئے اور محل کی سیڑھیاں چڑھ کر
شاہی میز پر پہنچ گئے۔

یہ جگہ محل کا ایک سجا ہوا پائیں کمرہ تھا جہاں سے
وادیٔ ہنزہ کا دور دور تک نظارہ کیا جا سکتا ہے جس
مردِ وجیہ نے دلی گرمجوشی کے ساتھ ہمارے ساتھ مصافحہ
کیا اور ہمیں خوش آمدید کہا وہ خود میر صاحب ہنزہ ہی تھے۔
جمیل شکیل، وقار و تمکنت کی تصویر، لبوں پر تبسم۔ ہر ادا
سے اخلاق و شائستگی ٹپکتی ہوئی۔

چند ہی منٹ بعد حضور رانی صاحبہ بھی تشریف
لے آئیں۔ ہمراہ ایک چھوٹی سی بچی بھی تھی، ان کی دخترِ نیک اختر۔
دونوں نے بڑا نفیس خالص پاکستانی لباس پہن رکھا تھا۔
لمبی سی رنگین پھولدار نفیس قمیص، بڑے گھیر کی سلکی شلوار اور
اوپر سے ایک باریک ریشمی چادر اوڑھی ہوئی تھی ان دونوں کا
ہم سے تعارف کرایا گیا۔

تپاک اور گرمجوشی کی فضا میں چائے نوشی کا سلسلہ شروع
ہوا۔ ہم لوگ اپنے مسافرت کے لباس کو دیکھتے تو بری طرح
کٹتے۔ عجب حلیے بنے ہوئے تھے۔ مگر ایک والیٔ ریاست اور
ان کی عالیہ رانی صاحبہ نے ہم مہمانوں کا جس طرح استقبال کیا
وہ رسوم و قیود سے بلند تھا۔ حقیقت یہ ہے کہ میر صاحب
بڑے چھوٹے کا خیال کئے بغیر ہر ایک کو اسی خندہ پیشانی سے
اور اپنی روایتی مہمان نوازی کے ساتھ شرفِ ملاقات
بخشتے ہیں۔

یہ مقام دنیا کے اس سرے پر واقع ہے۔ چاروں
طرف بلند ترین پہاڑوں نے اسے باقی متمدن دنیا سے
الگ تھلگ کر رکھا ہے مگر ان قدرتی مشکلات کے باوجود
میر صاحب کے محلِ شاہی میں ہم مہمانوں کے لئے وہ سب
آسائشیں مہیا کر دی گئی تھیں جن کی شاید اس دور افتادہ

جگہ پر توقع نہ کی جا سکتی تھی۔ اب مثلاً چائے ہی پر ایسی عمدہ پیسٹریاں، ایسے خوش ذائقہ کیک، سینڈوچ اور سنیکس چنے گئے تھے کہ کسی اعلیٰ درجہ کے رسٹورینٹ ہی میں ملنے ممکن ہیں۔ میزبانی کا یہ اہتمامِ بلیغ، اور جیسا کہ میں نے ابھی عرض کیا، ایسے دور دست مقام پر، ہمارے لئے ایک حیرت انگیز بات تھی۔

جب تک ہم بلتیت میں رہے لنچ اور ڈنر شاہی محل میں ہی کھاتے رہے۔ ہر موقع پر میر صاحب اور علیہ رانی صاحبہ بنفسِ نفیس موجود ہوتے۔ کھانوں میں خالص پاکستانی کھانے بھی ہوتے اور انواع و اقسام کے انگریزی کھانے بھی۔ یہ سب اس قدر نفیس اور خوش ذائقہ ہوتے کہ دنیا کے جدید شہروں ہی میں میسر آسکتے ہیں۔ بعض دفعہ مہمانوں کی خاطر وسطِ ایشیائی اور چینی کھانوں کا بھی اہتمام کیا گیا۔ میر صاحب نے فرمایا کہ یہ سب کھانے شاہی محل میں ان کے اپنے باورچی اور رکابدار تیار کرتے ہیں۔ آلسینبز تو اس مہمانداری کے بہت ہی گرویدہ ہو گئے اور کہنے لگے مجھے ایسا لگ رہا ہے جیسے ہم سویڈن میں بیٹھے ہوں۔ ایسا معلوم ہوتا ہے کہ مشرقی مہمانداری اور اسلامی مہمان نوازی کا انہیں یہ پہلا تجربہ ہوا تھا۔ ان غیر ملکی سیاحوں کو میر صاحب کے ننھے ننھے بچے بڑے پیارے لگے اور بہت جلد ان سے مانوس ہو گئے۔ پھر ایک شام کو عجیب حیرت کی بات ہوئی۔

کیا دیکھتے ہیں کہ ڈنر کی میز پر مسز آلسینبز ہنزہ خواتین کے لباس میں سجی ہوئی چلی آرہی ہیں۔ ہنزہ خواتین کا ریشمی ملبوس اور اس پر ہنزہ کی زنانی ٹوپی، اوپر سے ریشمی چادر لٹکتی ہوئی!

ہم لوگ میر صاحب اور علیہ رانی صاحبہ کے تین دن مہمان رہے اور اس جنت ارضی تک پہنچنے میں ہمیں جو جو خطرے اور صعوبتیں پیش آئی تھیں انہیں اس اثنا میں ذہن سے محو کر چکے تھے۔ التفاتِ شاہانہ اور میزبانی کے ان لوازمات نے ہمیں ہر چیز بھلا دی۔

اس میں شک نہیں کہ وادیٔ ہنزہ اپنے فطری جمال و رعنائی کے باعث ایک بے مثل جگہ ہے۔ اسے اگر لوگ جنت ارضی کہتے ہیں تو بیجا نہیں۔ چاروں طرف اونچے اونچے قلہ ہائے کوہ نے اسے گھیر رکھا ہے۔ یہ پہاڑ آسمان سے باتیں کرتے ہیں۔ یہاں جو لوگ بسے ہوئے ہیں وہ پاکستان کے باقیماندہ علاقوں کے مقابلے پر دوسری نسل سے ہیں۔ ان لوگوں کا کہنا تو یہ ہے کہ ہماری اصل سکندر اعظم کے ہمراہیوں سے ملتی ہے۔ ان کی اپنی ہی ایک زبان ہے جس کو "بشسکی" کہتے ہیں۔ اس کی اصل کا بھی سراغ نہیں لگایا جا سکا۔ مرد و زن بہت ستھرے پاکیزہ پھولدار لباس استعمال کرتے ہیں۔ ہنزہ کا موجودہ شاہی خاندان کوئی چھ سو سال پرانا ہے اور باشندے قریب قریب سب ہی اسماعیلی (آغا خانی) ہیں۔

اونچے اونچے پہاڑوں کے بیچ میں جو پتلے پتلے زمینی قطعے پائے جاتے ہیں بڑی محنت سے تیار کئے جاتے ہیں اور انہیں درجے دار کھیتوں میں تبدیل کر دیا گیا ہے، آب رسانی کے لئے عجب عجب کمالات دکھائے گئے ہیں۔ برف پوش پہاڑوں سے اترنے والے پانی کو بڑی کاریگری کے ساتھ کھیتوں تک پہنچایا جاتا ہے۔ آب و ہوا بڑی عمدہ ہے۔ پھلوں کی انواع اور بہتات کا تو کچھ نہ پوچھو۔ پیداوار میں گندم، مکئی اور جَو بہت ہوتا ہے۔ کچھ چاول بھی بویا جاتا ہے۔

باشندوں کی اپنی مخصوص روایات ہیں۔ ان کے تہوار الگ ہیں۔ جون کے آخری ہفتے میں یہاں ایک میلہ ہوتا ہے جو فصل کا جشن سمجھا جاتا ہے۔ اس موقع پر میر صاحب ہر گاؤں کے نمائندوں اور چودھریوں کو شرف ملاقات بخشتے ہیں۔ ہر ایک اپنی فصل کا نمونہ مٹھی میں لے کر آتا اور میر صاحب کی برکت حاصل کرتا ہے۔ اس کے بعد رقص و سرود کی محفل جمتی ہے۔ ہر طرف خوشیاں منائی جاتی ہیں۔ نگر کے علاقہ میں سب سے بڑا تہوار عید الضحیٰ مانا جاتا ہے۔ گاؤں کے چودھری اچھے اچھے لباس پہن کر میر صاحب کے پاس عید کے سلام کے لئے حاضر ہوتے ہیں اور وہ بھی ان سے مل کر عید کی مبارکباد دیتے ہیں۔ ساری رعیت خوش ہے۔ ان تقریبوں میں مرد عورت بچے، جوان بوڑھے سب ہی شوق سے شریک ہوتے۔ غرض اسلامی مساوات کا نمونہ ہر جگہ نظر آتا ہے۔

ہر سال دسمبر کے اواخر میں شادیوں کا رواج ہے۔ یہ وقت فصلوں کے پکنے کا ہوتا ہے اور اگلی فصل کے دانے بو دیئے جاتے ہیں۔ یہ جشن بھی بڑا شاندار ہوتا ہے۔ جدھر بھی دیکھو دولہا لئے دلہن کے گھر جاتا نظر آتا ہے۔ آگے آگے باجے والے ہوتے ہیں، ہر طرف خوشی کا دور دورہ ہوتا ہے۔ ضیافت کے لئے "یاک" کی قربانی کی جاتی ہے کیونکہ اس موسم میں بھیڑ بکرے ملنے مشکل

ہوتے ہیں۔

ضیافت کے بعد چوگان کا مقابلہ ہوتا ہے۔ پولو (چوگان) یہاں کا قومی کھیل ہے اور ہر جوان اس میں دلچسپی لیتا ہے۔ شادی کے موقع پر دو پارٹیاں بن جاتی ہیں۔ ایک دولھا والوں کی، دوسری دلھن والوں کی۔ پولو یہاں کا محبوب مشغلہ ہے، بلکہ پوری وادی کو اس کھیل سے دلچسپی ہے کیونکہ یہ ان کی مردانہ تنومندی اور ورزشِ شہسواری کا پورا سامان مہیا کرتا ہے۔ میرا خیال ہے کہ پامیر (وسط ایشیا) کے پہاڑ بالکل ملے ہوئے ہیں اور وہاں انسان نے خانہ بدوشی کے عہد میں سب سے پہلے گھوڑے کو ہی سدھایا تھا۔ اس لئے یہ کھیل اُدھر سے یہاں تک پہنچا ہے۔

ہر گاؤں میں ایک قطعۂ زمین پولو گراؤنڈ کے لئے چھوڑ دیا جاتا ہے۔ اس کے گرد چھوٹی سی ایک دیوار بنا دی جاتی ہے۔ کوئی موقع ہو چوگان کا مقابلہ ضرور ہوگا، باجے والے پہلے سے موجود ہوتے ہیں۔ جب مقابلہ کا جوش و ولولہ عروج پر پہنچتا ہے یہاں کی دھادھم بھی اونچی ہوتی چلی جاتی ہے۔ آلاتِ موسیقی میں طرح طرح کے ڈھول، تاشے، نفیریاں وغیرہ ہوتی ہیں۔ جوں جوں کھیل کا جوش بڑھتا ہے اور ایک سوار دوسرے سوار پر چڑھ دوڑنے کے لئے آگے بڑھتا یا گھوڑے کو ایڑ لگاتا ہے، باجے بھی زور زور سے بجنے لگتے ہیں۔ غرض عجب سماں ہوتا ہے۔ یہاں یہ بھی قاعدہ ہے کہ کوئی کھلاڑی مقابل کے گھوڑے کو مارے یا اس کی پولو اسٹک توڑ ڈالے تو بھی فاؤل نہیں مانا جاتا۔ جیتنے کے لئے ۹ پوائنٹ حاصل کرنے ہوتے ہیں، ان شمالی اضلاع کے لوگ اپنی صحت و توانائی اور تناک نقشے کی خوبی کے لئے دور دور مشہور رہیں۔ مگر سب سے زیادہ شہرت یہاں کے لوگوں کی درازیٔ عمر ہے۔ نسلیات کے ماہروں نے یہ معلوم کرنے کی کوشش کی ہے کہ اس خطے کے لوگوں کی چھلکتی ہوئی جوانی، تنومندی اور حیرت انگیز طویل العمری کا اصل باعث کیا ہے۔ اس کی اصل وجہ یا راز کو سمجھنا کچھ مشکل نہیں۔ یہ لوگ اپنی عادتوں میں سادہ ہیں۔ غذا بڑی سادہ کھاتے ہیں اور پانی بڑا صحت بخش ہے۔ ان باتوں نے مل کر یہاں کے لوگوں کی صحت و خوبروئی میں بڑا اضافہ کیا ہے۔ یہاں کے آدمی ۹۰ برس کی عمر میں بھی کچھ ایسا بوڑھا نہیں لگتا۔ جسے دیکھو چہرہ سے خون ٹپکتا ہوا ملے گا۔ سو سال کی عمر پالینا یہاں عام بات ہے۔ پھر خوبی یہ کہ ان کی مستعدی ویسی ہی رہتی ہے۔ یہاں لوگ کہتے ہیں کہ ہنزہ کا آدمی ویسے تو مرتا نہیں بس کسی پہاڑ سے گر پڑے تو اور بات ہے۔ طویل العمری کے سلسلے میں یہ بات بھی سمجھ میں آتی ہے کہ گلشیریوں سے پگھل کر آنے والا پانی اپنے ساتھ پہاڑوں کے دوسرے جوہر بھی بہالاتا ہے جن میں سنا ہے سونے تک کے ذرات موجود ہوتے ہیں۔ ویسے پانی میں ابرق کا جز غالب نظر آتا ہے۔ جب قدرت نے ہر چھوٹے بڑے کو اپنے خزانے کی یہ لازوال دولتیں اس طرح عام دے رکھی ہوں تو وہاں کے لوگوں کی عمریں لمبی نہ ہوں گی تو پھر کن کی ہوں گی؟

میر صاحب، والیٔ ہنزہ کی اپنی ریاست میں بڑے ہی جمہوری طریقے پر حکومت کرتے ہیں۔ انہیں ہر علاقہ سے روزانہ ذرا ذرا سی رپورٹ ملتی رہتی ہے۔ اس کام کے لئے پرانی وضع کا "کرینک" ٹیلیفون استعمال کیا جاتا ہے۔ اس کا سلسلہ سارے علاقے سے ملا ہوا ہے۔ وہ بلتیت میں اپنے محل کے سامنے ایک کھلا یعنی عام دربار بھی کرتے ہیں جس میں عوام کے نمائندے آکر جمع ہوتے ہیں۔ اسے مقامی اسمبلی سمجھنا چاہیئے۔ باہمی گفت و شنید سے آپس کے سب مسئلے جلد از جلد طے کر دئے جاتے ہیں۔ زیادہ تر جھگڑے نہری پانی کے مسئلے سے تعلق رکھتے ہیں یعنی اس دیہاتی نے اُس دیہاتی کا پانی کاٹ لیا۔ چوری، قتل اور اغوا کے واقعات دنیا کے اس حصے میں شاذ ہی ہوتے ہیں۔

ہنزہ کے اُدھر جو علاقہ ہے وہ بڑے شکار کے لئے بہت موزوں ہے۔ یہاں ایک قسم کی جنگلی بھیڑ ہوتی ہے جسے مشہور سیاح مارکوپولو کے نام پر شہرت ملی ہے۔ مارکوپولو چودھویں صدی میں پامیر کی سطح مرتفع کو عبور کر کے اس نواح سے گزرا تھا اور اسے یہ عجیب بھیڑیں نظر آئی تھیں۔ ان بلند و بالا پہاڑوں پر آج بھی "مارکوپولو بھیڑ" خمیدہ سینگوں والا بکرا اور مارخور ملتے ہیں بعض دفعہ کوئی تیرہ ہزار فٹ کی بلندی پر۔ شکار کی سنسنی کے رسیا جب یہاں تک پہنچ کر ایسے شکار مار لیتے ہیں تو ان کے فخر کی کوئی انتہا نہیں رہتی۔ یہ حیوانات شاید اسی حصۂ ارض میں ملتے ہیں اور عجائباتِ حیوانی میں شمار ہیں۔

ہنزہ اور نگر کے علاقوں کے علاوہ گلگت و بلتستان کی ایجنسی میں اور بھی کئی مقامات اپنے قدرتی حسن و رعنائی کے باعث مشہور ہیں۔ مثلاً سکردو کے ارد گرد کا ہی علاقہ چاروں طرف گلیشیئر سے ڈھکے ہوئے پہاڑ ایک پیالہ کی طرح مدوّر چلے گئے ہیں۔ بیچ میں جا بجا سبز رنگ جھیلیں انگوٹھی میں نگینے کی طرح جڑی ہوئی نظر آتی ہیں۔ جھیل ست پڑا کے وسط میں تو واقعی ایک پرستانی جزیرہ بھی موجود ہے۔ اس تک پہنچنے کے لئے ننھی ننھی خوبصورت کشتیوں سے کام لیا جاتا ہے جن کی سجاوٹ اور سطحِ آب پہ ان کی آہستہ روی انسان کو واقعی پریوں کی دنیا میں پہنچا دیتی ہے۔ اس جھیل میں ٹراؤٹ مچھلی بھی بہت ہے اور مچھلی کے شکاری خاص طور پر اس جگہ کو پسند کرتے ہیں۔

گلگت کے اطراف و جوانب اور چترال کی راہ پر ہمیں جو بھی جگہ ملی بڑی پاکیزہ، خوبصورت اور ہری بھری تھی۔ جدھر نظر اٹھتی تھی تناور درختوں کی قطاریں، پھلوں سے لدے ہوئے پیڑ اور شاداب وادیوں کے قطعے چلے گئے ہیں۔ خاص کر پنیال، گوپس اور پھنڈر جھیل کے اطراف میں۔ جو ندی راہ میں پڑی بلور کی مانند صاف، موتی کی جھلک والے پانی سے چھلکتی ہوئی۔ انسان حیران رہ جائے کہ ان دو آنکھوں سے کیا کیا دیکھے!

گلگت میں ہر طرف کا آدمی نظر آتا ہے۔ خاص کر گرمیوں میں دنیا کے ہر خطے کے لوگ ادھر آنکلتے ہیں۔ کوئی سیاح ہے۔ کوئی کوہ پیما، کوئی کاروبار کے ارادہ سے آیا ہے۔ غرض فرصت کے اوقات گذارنے ہوں یا تجارت کرنا ہو یہاں آکر وقت اچھی طرح کٹتا ہے۔ اور راستے کی صعوبتیں جھیلنے کی باتیں تو ہمیشہ ہی یاد آتی ہیں۔

گلگت سے واپسی پر عام طور پر وہ راستہ اختیار کیا جاتا ہے جو وادیٔ کاغان کے نام سے اب ہر جگہ مشہور ہے۔ راستہ اچھا ہے، جیپ بہ آسانی گذر سکتی ہے۔ یہاں پہنچ کر ۱۴ ہزار فٹ بلند بابوسر پاس ہے۔ وہاں سے نیچے چلیں تو جھیل "سیف الملوک" کا مقام آتا ہے۔ ہرا بھرا زمردیں علاقہ۔ اسی طرح ناران، بالاکوٹ، ایبٹ آباد اور پھر پاکستان کے میدانی علاقے آجاتے ہیں۔

ایسا معلوم ہوتا ہے کہ دنیا کے اس رقبے میں وقت اپنی ساری اہمیت سے دستبردار ہو چکا ہے۔ زندگی ایک طویل مگر راحت آمیز، عالمِ سرخوشی میں تبدیل ہو جاتی ہے جس کا تجربہ تو کیا جا سکتا ہے مگر قیدِ بیان میں لانا محال ہے۔ یہاں کی زندگی ماحول اور کیفیت کا عالم وہی ہے جو صدیوں پہلے تھا۔ سیاحوں مسافروں اور جہاں گردوں کو یہاں جو دنیا اس وقت نظر آتی ہے اب بھی شاید ویسی ہی ہے یعنی جدید تمدن کی مشینی باتیں ادھر کم پہنچی ہیں۔ اس لئے طلسمی ماحول جوں کا توں مل جائے گا۔

یہاں کی رومانی فضا کو منتشر کرنے والی یا تو جیپ کی آواز ہے یا سر پہ سے گزرتے ہوئے کسی ہوائی جہاز کی غوں غوں اور یہ جیپ بھی عجب سواری ہے۔ نئی سواریوں میں شاید ہی کوئی سواری ایسے دشوار گزار راستے طے کرا سکے۔ یہ بڑی عمدہ خدمت گذار ہے۔ میرے سفر میں بڑے بڑے پیچ و خم آئے۔ کیا کیا نشیب، کیسے کیسے فراز، پُر ہول راستے، کھڈ، گھاٹیاں ہر جگہ ہمت کا امتحان تھا، ہر جگہ حوصلہ کی بات تھی مگر میرا یہ رفیقِ سفر بڑا ہی مستعد ملا تھا اور ہر موقع پر آگے بڑھنے میں مدد دیتا تھا۔ یہاں کے لوگ اپنی پُرسکون دنیا میں بسے ہوئے اور اسی میں کھوئے ہوئے ہیں کہیں کھیت کھلیان ہے، کہیں فصلیں کٹ رہی ہیں، کہیں پھل توڑے جا رہے ہیں۔ کوئی شکار کو نکل گیا ہے کسی نے مچھلی پکڑنے کے لئے ندی کا رخ کیا ہے اور وہاں میں بھولا جا رہا تھا — پولو سے کون دل نہیں بہلاتا اور باہر والے کے لئے بہت کچھ ہے۔ نلتر کی برف بستہ ڈھلانوں پر سے پھسلنے کا کھیل بھی ایک عجب تھرتھری ہے جس کا لطف یہاں پہنچ کر ہی اٹھایا جا سکتا ہے۔ میرا احساس ہے کہ جس نے یہ حظ اٹھایا، راحتِ دنیا کا ایک بڑا حصہ اسے مل گیا!

غرض اس وادی میں ایک عجیب سکون ہے — سکونِ مطلق۔ یہ ایک ابدی راحت کا گہوارہ ہے جس کے طلسم کو دنیا کی کوئی بھی ہلچل نہیں توڑ سکتی ؂

سُنہرے بالوں والی شہزادی

(پنجابی لوک کہانی)

شفیع عقیل

کہتے ہیں کسی شہر میں ایک سوداگر رہتا تھا۔ اس کا کام یہ تھا کہ وہ دوسرے شہروں میں جاتا اور وہاں سے طرح طرح کا مال، اسباب خرید کر لاتا، اسے بیچتا اور خوب نفع کماتا۔ اس طرح وہ اور اس کی بیوی ہنسی خوشی زندگی بسر کرتے رہے۔ کچھ دنوں بعد ان کے ہاں ایک لڑکا پیدا ہوا جس نے ان کی سونی سونی زندگی میں خوشیاں بھر دیں۔ لیکن ابھی لڑکا چھوٹا سا ہی تھا کہ سوداگر فوت ہو گیا۔ اس نے تجارت اور سوداگری سے خاصا روپیہ کمایا تھا اس لئے اس کی بیوی گھر کی جمع پونجی پر گزر بسر کرنے لگی۔

اب اس کی امیدوں کا تارا اور زندگی کا سہارا صرف اس کا بیٹا تھا۔ دن رات ایک دوسرے کے پیچھے بھاگتے دوڑتے گزرتے گئے اور سوداگر کا بیٹا جوان ہوتا گیا۔ اس کی ماں نے اسے پڑھایا لکھایا اور جب وہ جوان ہو گیا تو اس نے اپنی ماں سے پوچھا: "ماں میرے والد کیا کام کرتے تھے؟"

ماں نے اسے بتایا کہ وہ سوداگری کرتے تھے اور اس طرح دوسرے شہروں سے سامان خرید کر لاتے تھے۔ اسے اپنے شہر میں لا کر بیچتے تھے اور نفع کماتے تھے۔

یہ سن کر لڑکا کہنے لگا: "ماں، میں بھی سوداگری کروں گا۔"

اس کی ماں نے پہلے تو اسے سمجھایا کہ وہ کسی دوسرے دیس نہ جائے لیکن جب اس نے بیٹے کی ضد دیکھی اور یہ سوچا کہ آخر اسے کچھ نہ کچھ تو کرنا ہی ہے تو اسے اجازت دے دی۔ اس نے اسے تین سو روپے دئے اور سوداگر کا بیٹا ماں سے رخصت ہو کر سوداگری کے لئے روانہ ہو گیا۔

وہ اپنے شہر سے نکل کر پچھم کی طرف چل پڑا۔ چلتے چلاتے وہ اپنے شہر سے بہت دور نکل گیا۔ جب وہ ایک جنگل میں سے گذر رہا تھا تو اسے راستہ میں ایک جوگی ملا۔ اس جوگی کے پاس قسم قسم کے سانپ تھے۔ سوداگر کے بیٹے نے اس سے پوچھا: "کیا تم سانپ بیچو گے؟"

جوگی بولا: "ہاں بیچوں گا مگر ایک سانپ کی قیمت ایک سو روپیہ ہوگی!"

سوداگر کے بیٹے نے فوراً اسے سو روپیہ نکال کر دے دئے اور اس سے ایک سانپ لے کر آگے چل دیا۔ ابھی وہ تھوڑی دور ہی گیا تھا کہ اسے ایک اور آدمی ملا۔ اس آدمی کے پاس بہت سے طوطے تھے۔ سوداگر کے بیٹے نے اس سے پوچھا: "کیا تم طوطے بیچو گے؟"

اس نے جواب دیا: "بیچوں گا۔ مگر ایک طوطے کی قیمت سو روپے ہوگی!"

سوداگر کے بیٹے نے اسی وقت جیب سے سو روپے نکال کر اس کے ہاتھ پر رکھ دئے اور اس سے ایک طوطا خرید کر آگے چل دیا۔ ابھی اس نے چند منزلیں اور طے کی تھیں کہ راستے میں اسے ایک آدمی ملا، اس آدمی کے پاس بلیاں تھیں۔ سوداگر کے بیٹے نے اس سے دریافت کیا: "کیا تم بلیاں بیچو گے؟"

اس آدمی نے جواب دیا: "ہاں، میں بیچوں گا لیکن ایک بلی کی قیمت ایک سو روپیہ ہوگی!"

سوداگر کے بیٹے نے اسی وقت سو روپیہ دے دئے اور اس سے ایک بلی لے لی۔ اب اس کے پاس ایک سانپ، ایک طوطا اور ایک بلی تھی اور ماں کے دئے ہوئے تین سو روپے ختم ہو چکے تھے۔ اسلئے وہ آگے بڑھنے کے بجائے واپس اپنے شہر کی طرف چل پڑا۔

جب وہ واپس گھر پہنچا تو اس کی ماں نے مارے خوشی کے اس سے پوچھا: "بتاؤ بیٹا، کیا سوداگری کر کے لائے ہو؟ مجھے بھی تو دکھاؤ؟"

اور جب اس کی ماں نے یہ دیکھا کہ اس کا بیٹا تین سو روپے میں صرف ایک سانپ، ایک طوطا اور ایک بلی خرید کر لایا ہے تو وہ بہت پریشان ہوئی۔ لیکن پھر اس خیال سے خاموش ہو رہی کہ ابھی انجان ہے ذرا اور بڑا ہو گا تو خود بخود سمجھ جائے گا۔ اب سوداگر کے بیٹے کو بھی احساس ہوا کہ وہ بڑا نادان ہے اور اس نے تین سو روپے یونہی بیکار ضائع کر دئے۔ بھلا یہ فضول سی چیزیں اسے کیا فائدہ پہنچا سکتی ہیں۔ وہ اداس بیٹھا اپنے دل میں یہی کچھ سوچ رہا تھا کہ سانپ اسے دیکھ کر بولا: "تم اداس نہ ہو۔ میں تمہیں اپنی قیمت دلوا دوں گا!"

اس پر طوطا بولا: "میری طرف سے بھی بے فکر رہو۔ میں بھی ایک نہ ایک دن

تمہیں دلوا دوں گا۔"

بلی نے سانپ اور طوطے کو یہ کہتے ہوئے سنا تو کہنے لگی: "میں ابھی تمہیں یقین دلاتی ہوں کہ ایک نہ ایک روز تمہیں تمہاری قیمت ضرور دلوا دوں گی۔"

ان تینوں کی باتیں سن کر سوداگر کے بیٹے کی کچھ ہمت بندھی۔ اسے امید کی کرن دکھائی دی اور وہ سانپ، طوطے اور بلی کی دل و جان سے پرورش کرنے لگا۔

کچھ عرصہ بیت جانے کے بعد ایک روز سانپ سوداگر کے بیٹے سے کہنے لگا: "چلو۔ آج میں تمہیں اپنی قیمت دلاؤں!"

اتنا کہنے کے بعد اس نے سوداگر کے بیٹے کو ایک جنگل کا اتا پتہ بتا کر یہ کہا: "اس جنگل میں سانپوں کا بادشاہ رہتا ہے۔ تم مجھے اس جنگل میں لے چلو۔ راستہ میں تمہیں بے شمار چھوٹے بڑے سانپ اور بچھو دکھائی دیں گے۔ وہ تمہاری طرف بڑھیں گے مگر تم ان سے ڈرنا نہیں۔ وہ تمہیں کاٹیں گے نہیں اور نہ کوئی نقصان پہنچائیں گے۔ تم سیدھے چلے جانا۔ یہاں تک کہ ایک جگہ تم کو وہاں بہت سے چھوٹے بڑے سانپ بیٹھے نظر آئیں گے۔ ان اَنگنت سانپوں کے درمیان ایک بڑا سا ایسا سانپ بیٹھا ہوگا جس کے سر پر کلغی ہوگی اور اس کے ماتھے پر ایک خوبصورت موتی بھی چمک رہا ہوگا۔ تم مجھے اس سانپ کے آگے رکھ دینا۔ یہ سانپ جنگل کے تمام سانپوں کا بادشاہ اور میرا باپ ہے جب وہ مجھے دیکھے گا تو بہت خوش ہوگا۔ وہ تم سے کہے گا، مانگو جو کچھ مانگتے ہو۔ تم جواب میں کہنا۔ خدا کا دیا آپ کا دیا سب کچھ ہے۔ وہ دوسری بار کہے گا، تم پھر یہی جواب دینا۔ اور جب وہ تیسری بار تم سے پوچھے تو کہنا، پہلے مجھے قول دیں۔ وہ قول دیدے تو پھر کہنا، آپ کے ماتھے پر جو موتی چمک رہا ہے، یہ مجھے دیدیں۔ اس موتی میں یہ خاصیت ہے کہ تم اس سے جو مانگو گے وہ پلک جھپکتے تمہارا کہا کر دے گا۔"

سوداگر کے بیٹے نے سانپ کو اٹھا لیا اور اس کے بتاتے ہوئے راستہ پر اس جنگل کی طرف چل دیا جہاں سانپوں کا بادشاہ رہتا تھا۔ وہ کئی دن اور کئی راتیں چلتا رہا۔ آخر کار اس جنگل میں پہنچ گیا جو اس کی منزلِ مقصود تھی۔ اس نے دیکھا راستے میں ہر طرف چھوٹے بڑے سانپ اِدھر اُدھر رینگ رہے تھے۔ کہیں خوفناک اژدہے لیٹے ہوئے تھے اور کہیں بچھو بیٹھے نظر آ رہے تھے۔ یہ سب کچھ دیکھ دیکھ کر وہ دل ہی دل میں ڈر رہا تھا، لیکن سانپ کے کہنے کے مطابق اس نے ہمت نہ ہاری اور آگے ہی بڑھتا گیا۔ اس نے دیکھا کہ جوں جوں وہ آگے بڑھتا جاتا ہے، راستے میں بیٹھے ہوئے سانپ اور بچھو اسے راستہ دیتے جاتے ہیں۔ اسی طرح آگے بڑھتا ہوا وہ اس جگہ پہنچ گیا جہاں اس نے دیکھا کہ وہاں بہت سے چھوٹے بڑے سانپ جمع تھے اور ان کے درمیان ایک بڑا سا سانپ بھی بیٹھا تھا۔ اس کے سر پر کلغی تھی اور ماتھے پر چمکتا ہوا موتی بھی دکھائی دے رہا تھا۔ سوداگر کے بیٹے نے آگے بڑھ کر اس سانپ کو سانپوں کے بادشاہ کے آگے رکھ دیا اور کہنے لگا: "اس سانپ کی زندگی میں نے بچائی ہے۔ اسے پالا ہے اور اب یہ آپ کی امانت ہے اور آپ کے پاس لایا ہوں!"

جونہی سانپوں کے بادشاہ نے اپنے سامنے بیٹے کو دیکھا تو وہ خوشی سے ناچ اٹھا، اور خوش ہو کر سوداگر کے بیٹے سے بولا: "میں تم سے بہت خوش ہوا ہوں۔ تم نے میرا بیٹا مجھے ملا دیا!" اتنا کہنے کے بعد اس نے سوداگر کے بیٹے کو دیکھتے ہوئے کہا:

"مانگو جو کچھ مانگتے ہو۔" اس پر سوداگر کے بیٹے نے سانپ کے بتانے کے مطابق جواب: "خدا کا دیا آپ کا دیا سب کچھ ہے!"

سانپوں کے بادشاہ نے دوبارہ کہا: "مانگ لو جو کچھ تمہاری مرضی ہے۔"

سوداگر کے بیٹے نے پھر یہی جواب دیا: "خدا کا دیا، آپ کا دیا سب کچھ ہے!"

یہ سن کر سانپوں کا بادشاہ بہت خوش ہوا اور اصرار کرنے لگا: "یہ تیسری اور آخری بار ہے۔ مانگ لو جو کچھ مانگتے ہو۔"

جواب میں سوداگر کا بیٹا کہنے لگا: "پہلے مجھے اپنا قول دیں!"

سانپوں کا بادشاہ خوش تو تھا ہی۔ برسوں کے بعد اسے اس کا پیارا بیٹا ملا تھا۔ اس نے فوراً قول دے دیا۔ سوداگر کے بیٹے نے جب قول لے لیا تو وہ اس کے ماتھے کی طرف اشارہ کر کے کہنے لگا: "اگر آپ کو مجھے کچھ دینا ہی ہے تو وہ موتی دیدیں جو آپ کے ماتھے پر چمک رہا ہے!"

اتنا سننا تھا کہ یکایک سانپوں کا بادشاہ غصہ میں آ گیا، لیکن وہ اسے اپنا قول دے چکا تھا۔ اس نے سوچا، مجھے اپنا عہد پورا کرنا چاہئے۔ اور یہ سوچ کر اس نے اپنے ماتھے سے وہ موتی اتار کر اسے دے دیا اور سوداگر کا بیٹا موتی لے کر خوشی خوشی گھر لوٹ آیا۔

گھر آ کر سوداگر کے بیٹے نے سوچا، ذرا میں موتی کو آزماؤں تو سہی۔ دیکھوں، سانپ کی بات صحیح بھی ہے یا نہیں، چنانچہ اس نے موتی کو ہاتھ میں لے کر کہا: "اے موتی! میرے سونے کے محل بن جائیں۔"

اس کا اتنا کہنا تھا کہ آناً فاناً اس کا گھر سونے کے محل میں تبدیل ہو گیا۔ اس کے چاروں طرف جگمگ جگمگ کرتی دیواریں اور چمکتے دمکتے دروازے بنے ہوئے تھے۔ اسے یوں محسوس ہو رہا تھا جیسے آنکھ کے پلکارے میں وہ کسی خواب کی دنیا میں پہنچ گیا ہو۔ پھر اس نے موتی کو ہاتھ میں لے کر کہا:

"اے موتی! میں اس ملک کا بادشاہ بن جاؤں؟"

یہ کہنا تھا کہ وہ اس ملک کا بادشاہ بن گیا۔ اس کے اردگرد نوکر چاکر، اور کنیزیں حاضر تھیں، باادب درباری بھی موجود تھے اور وہ بڑی شان و جلال سے تخت پر بیٹھا تھا۔

اس نے ایک بار موتی سے کہا: "اے موتی! میری ملکہ سونے کے بالوں والی شہزادی ہو۔"

الفاظ اس کے منہ سے نکلنے کی دیر تھی کہ اس کے سامنے ایک حسین و جمیل نوجوان شہزادی بیٹھی ہوئی تھی جس کے بال سونے کے تھے۔ یہ دیکھ کر سوداگر کا بیٹا بہت خوش ہوا۔ اس نے اس خوبصورت سنہرے بالوں والی شہزادی کو اپنی ملکہ بنا لیا اور ملک میں راج کرنے لگا۔ اس نے اپنے طوطے اور بلی کی حفاظت کے لئے نوکر مقرر کر دیے تھے اور اپنی ماں کی خدمت کے لئے کنیزیں بھی تعینات تھیں۔ اور اس طرح اب وہ سوداگر کے بیٹے سے بادشاہ بن چکا تھا۔

دن بیت رہے تھے۔ ایک روز شہزادی ندی پر نہانے گئی۔ اس کے ساتھ اس کی کنیزیں بھی تھیں۔ جب وہ نہا چکی تو اس نے وہیں پر اپنے گیلے بال گندھوائے۔ بالوں میں کنگھی کرتے وقت کنگھی کے دانتوں میں جو چند بال ٹوٹ کر رہ گئے تھے کنیز نے ندی میں پھینک دئے اور شہزادی کنیزوں کے ساتھ واپس محلوں میں چلی آئی۔

کرنا خدا کا ایسا ہوا کہ کنیز نے شہزادی کے سنہرے بالوں کا جو گچھا ندی میں پھینکا تھا وہ بہتا ہوا کسی دوسرے ملک میں جا پہنچا۔ اس ملک کے ایک شہر کے قریب ہی سے یہ ندی گذرتی تھی اور اس وقت وہاں اس ملک کا نوجوان شہزادہ اپنے دوستوں کے ساتھ نہا رہا تھا۔ سنہرے بالوں کا وہ بہتا ہوا گچھا اس کے ہاتھ آگیا۔ اس نے اپنے قریب سے کوئی سنہری چیز بہتے ہوئے دیکھی تو ہاتھ بڑھا کر اسے پکڑ لیا۔ اور جب اس نے دیکھا کہ یہ کسی عورت کے بال ہیں تو وہ چند لمحوں کے لئے حیران رہ گیا۔ اس نے آج تک کسی عورت کے اس قدر خوبصورت اور حسین بال نہیں دیکھے تھے۔

اس نے اپنے دل ہی دل میں سوچا، جس عورت کے اتنے خوبصورت بال ہیں خدا جانے وہ خود کتنی حسین و جمیل ہوگی۔ وہ اس سونے کے بالوں والی اَن دیکھی شہزادی پر عاشق ہو گیا۔ وہ اداس اداس گھر آیا اور اسی فکر میں دن رات کھویا کھویا سا رہنے لگا۔ وہ نہ کسی بات میں دلچسپی لیتا اور نہ کہیں آتا جاتا۔ اس کے باپ یعنی بادشاہ کو جب اس بات کی خبر ہوئی، تو اس نے شہزادے کو پاس بُلا کر اس کی اداسی کی وجہ پوچھی۔ جواب میں شہزادے نے سنہرے بالوں کا وہ گچھا پیش کر دیا اور کہا: "جب تک مجھے یہ سونے کے بالوں والی شہزادی نہیں ملے گی، میری زیست ممکن نہیں!"

بادشاہ نے اسے سمجھایا: "خدا جانے یہ کون ہے۔ کہاں ہے۔ تم اپنی ضد سے باز آجاؤ۔"

لیکن شہزادے نے کہا: "اگر مجھے یہ شہزادی نہ ملی تو میں زہر کھا کر مر جاؤں گا!"

بادشاہ کا اکیلا بیٹا تھا، وہ اس کی خواہش رد نہ کرنا چاہتا تھا لیکن وہ اس کی خواہش کیسے پوری کرے؟ اس کی سمجھ میں کچھ نہیں آ رہا تھا۔ ادھر بیٹے کی اداسی بھی اس سے نہیں دیکھی جاتی تھی۔ وہ بڑا پریشان تھا۔ اس نے اپنے دانا وزیر کو بلا کر اس سے مشورہ کیا اور اس کی رائے مانگی تو وزیر کہنے لگا:

"جہاں پناہ! یہ کام تو کٹنیوں کے ذریعہ ہو سکے گا۔ اور کسی کے بس کا نہیں۔"

بادشاہ نے حکم دیا، اسی وقت شہر بھر کی کٹنیاں ہمارے سامنے پیش کی جائیں۔ حکم کا ہونا تھا کہ تمام کٹنیوں کو طلب کر لیا گیا۔ جب تمام کٹنیاں حاضر ہو گئیں تو بادشاہ باری باری ان کی ذہانت اور چالاکی کا اندازہ کرنے لگا۔ ہر کٹنی ایک دوسری سے بڑھ کر اپنی مکاری اور مہارت کے قصے بیان کرنے لگی۔ ایک نے کہا: "بادشاہ سلامت! میں آسمان پر جا سکتی ہوں مگر واپس نہیں آسکتی!"

دوسری بولی: "جہاں پناہ میں آسمان پر جا بھی سکتی ہوں اور پھر واپس بھی آسکتی ہوں!"

اس پر تیسری نے کہا: "حضور! میں آسمان پر جا کر واپس بھی آسکتی ہوں اور آسمان کی تھگلی بھی لا سکتی ہوں، مگر اسے دوبارہ اس جگہ لگا نہیں سکتی۔"

جب ان تینوں کٹنیوں نے اپنے اپنے کمالات اور مکاری کے قصے بیان کر دئے تو ایک اور بوڑھی کٹنی آگے بڑھی۔ اس نے دونوں ہاتھ باندھ کر بادشاہ سے عرض کی: "بادشاہ سلامت! میں آسمان پر جا کر واپس بھی آسکتی ہوں۔ اس کے علاوہ میں آسمان کی تھگلی بھی لا سکتی ہوں اور اسے دوبارہ اس کی جگہ لگا بھی سکتی ہوں۔"

یہ بوڑھی کٹنی ان سب سے زیادہ ہوشیار اور جہاندیدہ تھی۔ وزیر نے بادشاہ سے کہا: "جہاں پناہ! اس غلام کی رائے میں تو یہ کٹنی ہی ٹھیک رہے گی۔ یہ کام اسی کے سپرد کیا جائے۔"

بادشاہ کو بھی اس رائے سے اتفاق تھا۔ اس نے اس کٹنی کو ساری بات بتائی اور سونے کے بالوں والی شہزادی کا پتہ لگانے اور اسے لانے کا کام اسی کے سپرد کر دیا۔ اسے بہت سا زر و دولت دینے کے بعد بادشاہ نے کہا: "اگر تم نے یہ کام کر دیا تو تمہیں مالا مال کر دیا جائے گا۔"

اس پر کٹنی پھر بولی: "حضور والا! اس سلسلے میں مجھے چند آدمی اور ایک کشتی دی جائے۔ اس کے علاوہ اتنا خرچ بھی دے دیا جائے کہ ہم کئی ماہ تک باہر رہ کر گزر بسر کر سکیں۔"

بادشاہ کے حکم کی دیر تھی۔ اسی وقت وہ سب کچھ کٹنی کو پیش کر دیا گیا جو جو اس نے طلب کیا تھا۔ کٹنی نے ان آدمیوں کو ساتھ لیا اور ضروری سامان کے ساتھ کشتی میں بیٹھ کر ندی کے کنارے کنارے پانی کے بہاؤ کے خلاف روانہ ہو گئی۔

وہ کئی دن اور کئی راتیں کشتی میں سفر کرتے رہے۔ جب تھک جاتے تو کچھ دیر کے لئے سستا لیتے اور پھر تازہ دم ہو کر آگے چل پڑتے۔ جہاں کوئی شہر آتا وہ وہاں کشتی روک لیتے۔ کٹنی شہر میں گھوم گھر جاتی، شہزادی کا اتا پتا معلوم کرنے کی کوشش کرتی اور جب اسے شہزادی کے بارے میں کچھ معلوم نہ ہوتا تو وہ دوبارہ کشتی میں بیٹھ کر سفر کرنے نکل پڑتی۔ اس طرح وہ کئی شہروں کے پاس رکے۔ کٹنی نے گھر گھر چھان مارا مگر اسے شہزادی کا کہیں پتہ نہ چل سکا۔ لیکن اب یہ لوگ واپس بھی نہیں جا سکتے تھے۔ کٹنی کو معلوم تھا کہ سونے کے بالوں والی شہزادی کے بغیر واپس جانا موت کو دعوت دینا ہے۔ بادشاہ اس کا جن بچہ کولہو پلوا دے گا۔ اور یہی سوچ کر انہوں نے اپنی تلاش جاری رکھی۔ یہاں تک کہ ایک عرصہ کی کوشش اور تلاش کے بعد آخر کار وہ اسی شہر کے پاس پہنچ گئے، جہاں سونے کے بالوں والی شہزادی رہتی تھی۔ کٹنی نے اپنے آدمیوں کو کشتی میں چھوڑا اور انہیں وہاں رہنے کی ہدایت کر کے خود لوگوں سے پوچھتی پچھاتی شہزادی کے محلوں میں جا پہنچی۔

محلوں میں پہنچ کر اس نے جونہی شہزادی کو دیکھا لپک کر اس کو گلے لگا لیا اور آنسو بہاتے ہوئے بولی: "بیٹی! میں تجھے ڈھونڈتے ڈھونڈتے پاگل ہو گئی — تو نے تو مجھے بالکل ہی بھلا دیا!"

شہزادی ایک اجنبی بڑھیا کو دیکھ کر حیران تھی کہ یہ کون ہے جو اس سے اس طرح کی باتیں کر رہی ہے۔ اس نے تو اسے پہلے کبھی نہیں دیکھا تھا۔ مکار کٹنی نے شہزادی کو اس طرح حیران دیکھا تو بڑے پیار سے بولی: "تو نے پہچانا نہیں بیٹی! میں تو تیری خالہ ہوں۔ بچپن میں تجھے دیکھا تھا۔ پھر قسمت کچھ ایسا ہوا کہ ہم دوسرے دیس چلے گئے۔ خدا کا لاکھ لاکھ شکر ہے کہ اس نے تجھے ملا دیا ورنہ میں تو یہ سوچ بیٹھی تھی کہ بیٹی کو دیکھے بغیر ہی آنکھیں بند ...

شہزادی ابھی تک حیران و پریشان تھی۔ اس نے تو کبھی اپنی خالہ کے بارے نہ سنا تھا اور نہ اسے خود دیکھا تھا۔ یہ دیکھ کر کٹنی بھرے لہجہ میں بولی: "میں نے دل میں سوچا اگر بیٹی نے پہچان لیا تو ... ورنہ اسے دیکھ کر اپنا دل ٹھنڈا کر لوں گی۔"

شہزادی بھولی بھالی تو تھی ہی۔ اوپر سے کٹنی نے یہ باتیں کچھ ... کہی تھیں کہ اس کا دل پسیج گیا۔ وہ اس کی چکنی چپڑی باتوں میں آ گئی۔ ... سوچا، ہو سکتا ہے یہ میری خالہ ہی ہو اور میں اسے پہچان نہ سکی ہوں۔ ... وہ کہنے لگی: "خالہ! خدا کا شکر ہے کہ اس نے تجھے مجھ سے ملوا دیا۔ میں تو ... دیکھنے کے لئے ترس گئی تھی۔ بڑی تمنا تھی تم سے ملنے کی!"

کٹنی نے اپنا جادو چلتا دیکھا تو ادھر ادھر سے دسوں باتیں ... کرنے لگیں۔ اور اس طرح شہزادی نے اسے اپنی خالہ سمجھ کر اپنا مہمان رکھ ... اس کی بڑی عزت کرتی اور مہمان نوازی میں کسی قسم کی کسر نہ اٹھا رکھتی۔ ... کے بھیس میں ہر طرح سے چوکنی تھی۔ وہ بات بات کی خبر رکھتی، محل کے ... بارے میں جاننے کی کوشش کرتی اور ذرا ذرا سی چیز کے متعلق پوچھ گچھ کرتی۔ ... کا بیٹا جو اب بادشاہ تھا اور سونے کے بالوں والی شہزادی اس کی ملکہ تھی ... پاس جو سانپوں کے بادشاہ کا دیا ہوا موتی تھا، وہ اسے اپنی جان سے ... رکھتا تھا۔ اس نے اسے ایک پیتل کی انگشتری میں جڑوا کر انگلی میں پہن رکھا ... ایک پل کے لئے بھی اپنے سے جدا نہیں کرتا تھا۔ کٹنی بھی جب سے یہاں ... دیکھ رہی تھی کہ بادشاہ کے ہاتھ میں سونے کی بجائے پیتل کی انگشتری ہے، اس میں ضرور کوئی راز ہے۔ اس نے یہ بھی دیکھا کہ بادشاہ اسے اپنے ... کبھی نہ اتارتا تھا اور نہ اس کے لئے کسی پر بھروسہ ہی کرتا تھا۔ یہ دیکھ کر ایک روز شہزادی سے کہا: "بیٹی! بادشاہ نے ہاتھ میں پیتل کی انگشتری رکھی ہے، یہ بادشاہ کی شان کے خلاف ہے۔ ان سے کہو کہ وہ سونے کی جڑی انگشتری پہنا کریں۔"

اس پر شہزادی نے جواب دیا: "خالہ! تمہیں نہیں معلوم کہ انگشتری کی وجہ ہی سے تو ہم بادشاہ ہوئے ہیں۔ یہ سونے کے محل، یہ ...

" نمود " (ایک تجریدی مطالعہ)

نقاش : امین

سب اسی کی وجہ سے ہے!"

کٹنی کا قیاس ٹھیک نکلا تھا۔ وہ دل ہی دل میں بہت خوش ہوئی۔ اسے کامیابی کی امید نظر آ رہی تھی۔ وہ شہزادی سے بڑے پیار سے کہنے لگی:۔

"بیٹی! اگر ایسی ہی بات ہے تو پھر اس قسم کی چیز تو تمہیں اپنے پاس رکھنی چاہئے۔ مردوں کا کوئی بھروسہ نہیں۔ کسی وقت عورت سے بددل ہو جائیں۔ یا ان پر کوئی مصیبت ہی آ جائے ۔۔۔ میری تو رائے یہ ہے کہ آج رات جب بادشاہ محلوں میں آئے تو تم اس سے یہ انگشتری لے لینا!"

مردوں کی بے وفائی کے قصے شہزادی نے بھی سن رکھے تھے۔ وہ کٹنی سے اور بھی مانوس ہو گئی۔ اس نے سوچا، خالہ ٹھیک ہی تو کہتی ہے۔ مردوں کا کیا بھروسہ۔ چنانچہ اسی رات جب بادشاہ محل میں آیا تو اس نے اس سے وہ انگشتری مانگی۔ بادشاہ نے بہتیرا اسے سمجھایا کہ اس کا میرے پاس ہی رہنا ٹھیک ہے مگر شہزادی ضد کرنے لگی۔ بادشاہ شہزادی کو دل سے چاہتا تھا۔ وہ اسے ناراض نہیں کر سکتا تھا۔ اسلئے اس نے انگشتری اتار کر اسے دیدی اور کہا، بیگم! اسے حفاظت سے رکھنا!"

اور اب وہ انگشتری بادشاہ کی بجائے شہزادی کی انگلی میں تھی۔

کئی دن گذر گئے۔ کٹنی یہ تو سمجھتی تھی کہ وہ انگشتری جس کی وجہ سے محل سونے کے تھے، اب بادشاہ کے قبضہ سے نکل کر شہزادی کے پاس تھی اور اس سے اس کا حاصل کرنا کوئی مشکل چیز نہ تھی لیکن وہ اس بات سے قطعی ناواقف تھی کہ آخر ایک انگشتری کی وجہ سے بادشاہت کیسے مل سکتی ہے؟ محل سونے کے کیونکر ہو سکتے ہیں۔؟ مگر اسے یہ سب کچھ جاننے کی ضرورت بھی نہیں تھی۔ وہ تو سونے کے بالوں والی شہزادی کو لینے آئی تھی اور بس۔۔۔ اور یہی سوچ کر ایک روز جب بادشاہ سو رہا تھا اس نے شہزادی سے کہا۔

"آؤ بیٹی! آج ذرا ندی کی سیر کر آئیں"

بھلا شہزادی کو اس پر کیا اعتراض ہو سکتا تھا۔ وہ تو سمجھتی تھی کہ اپنی خالہ کے ساتھ سیر کرنے جا رہی ہے لیکن جب وہ دونوں ندی پہنچیں تو کٹنی باتوں باتوں میں اسے وہاں لے آئی جہاں اس کے آدمی کشتی میں بیٹھے اس کا انتظار کر رہے تھے۔ انہوں نے کٹنی کو دیکھا تو اس طرح ہو گئے جیسے وہ اسے جانتے ہی نہ ہوں۔ ادھر کٹنی جب ندی کے کنارے کشتی کے قریب پہنچی تو اس نے انجان بنتے ہوئے شہزادی سے پوچھا: "بیٹی! یہ کیا ہے پانی میں؟"

شہزادی کو اس کی بیوقوفی پر بڑی ہنسی آئی، اور سمجھاتے ہوئے کہنے لگی: "خالہ! یہ کشتی ہے۔ اس میں بیٹھ کر دریا کی سیر کرتے ہیں"

اس پر کٹنی نے کہا: "بیٹی! میں نے کبھی اس میں بیٹھ کر سیر نہیں کی۔ چند منٹ کے لئے مجھے بھی ندی کی سیر کرا دو؟"

شہزادی نے دل میں خیال کیا، چند منٹ میں بھلا کیا دیر ہو جائے گی، چلو اسے ندی کی سیر کرا ہی دوں۔ اس نے کشتی والوں کو اشارہ کیا تو وہ فوراً کشتی قریب لے آئے اور وہ دونوں کشتی میں بیٹھ گئیں۔ جونہی شہزادی اور کٹنی کشتی میں بیٹھے، کٹنی نے اپنے آدمیوں کو اشارہ کیا اور دیکھتے ہی دیکھتے کشتی شہزادی کو لے کر ندی کے درمیان پہنچ گئی اور پانی کے بہاؤ پر چلنے لگی۔ شہزادی بڑی پریشان ہوئی۔ یہ سب کچھ اس قدر جلدی ہوا تھا کہ وہ کچھ سوچ بھی نہ سکی تھی۔ اس نے شور کرنے کی کوشش کی تو کٹنی کے آدمیوں نے آگے بڑھ کر اس کا منہ باندھ دیا۔ کٹنی نے اسے بے بس دیکھا تو جھٹ سے اس کے ہاتھ سے وہ موتی والی انگشتری اتار لی اور وہ شہزادی کو لے کر اپنے شہر کی طرف چل دئے۔

مہینوں کا سفر دنوں میں اور دنوں کا سفر گھنٹوں میں طے کرتے ہوئے وہ اپنے شہر پہنچ گئے۔ کٹنی نے سونے والی شہزادی کو ساتھ لیا اور بادشاہ کے سامنے لے جا کر پیش کر دیا۔ بادشاہ شہزادی کو دیکھ کر بہت خوش ہوا۔ اس نے کٹنی کو انعام و اکرام سے مالا مال کر دیا اور اس سے وہ انگشتری بھی لے لی جس میں سانپوں کے بادشاہ کا موتی جڑا ہوا تھا۔ شہزادے کو جب پتہ چلا کہ سونے کے بالوں والی شہزادی آ گئی ہے تو اس میں جیسے پھر سے زندگی آ گئی ہو، محلوں میں ہر طرف خوشیاں منائی جانے لگیں، شہزادی کی شہزادے سے شادی کر دی گئی اور اس کے ساتھ ہی بادشاہ نے وہ انگشتری شہزادے کو دے کر کہا، "یہ انگشتری اپنے پاس بڑی حفاظت سے رکھنا۔ مجھے کٹنی نے بتایا ہے کہ اگر یہ انگشتری چلی گئی تو سونے کے بالوں والی شہزادی بھی چلی جائے گی"

شہزادے نے باپ کی نصیحت کے مطابق وہ انگشتری ہاتھ میں پہن لی اور اسے اپنی جان سے زیادہ عزیز رکھنے لگا۔

دوسری طرف جب سوداگر بادشاہ سو کر اٹھا تو اس نے دیکھا وہاں نہ سونے کے محل تھے۔ نہ سونے کے بالوں والی شہزادی، نہ کنیزیں اور نہ دربار۔ وہ پہلے کی طرح ایک سوداگر بچہ تھا۔ سانپوں کے بادشاہ والا موتی جانے کے ساتھ ہی ہر چیز غائب ہو چکی تھی۔ اس کے پاس صرف ایک طوطا تھا اور ایک بلی تھی یا پھر اس کی بوڑھی ماں جو اس کے ہر دکھ درد کی ساتھی تھی۔ سوداگر بڑا پریشان تھا لیکن اب کیا کر سکتا تھا۔ اسے افسوس ہو رہا تھا کہ اس نے شہزادی کو انگشتری کیوں دیدی تھی۔ مگر وقت گزر چکا تھا اور پچھتانا بیکار تھا۔ وہ اداس اداس بیٹھ

لگا۔ نہ کچھ کھاتا نہ پیتا۔ ہر وقت کھویا کھویا سا رہتا۔ طوطے اور بلی نے جب اسے اس طرح اداس دیکھا تو آپس میں مشورہ کرنے لگے اور ایک دوسرے سے کہنے لگے: "سانپ تو اپنی قیمت چکا چکا ہے۔ اب ہماری باری ہے۔ ہمیں بھی سوداگر کے بیٹے کو اپنی قیمت دلانی چاہئے؟"

پھر وہ دونوں کچھ طے کرتے ہوئے بولے: "چلو، ہم شہزادی کو ڈھونڈ کر لائیں۔"

یہ طے کر کے طوطا اور بلی خاموشی سے چل دئے، وہ دونوں بھی ندی کے کنارے کنارے پانی کے بہاؤ کی طرف چل دئے۔ بلی نیچے نیچے چلتی چلی جاتی اور طوطا اس کے اوپر اوپر اڑتا جاتا۔ اور اس طرح وہ دونوں اپنی شہزادی کی تلاش میں دن رات سفر کرنے لگے۔ راستہ میں جو شہر آتا وہ وہاں جاتے۔ طوطا اڑ کر اور بلی گھوم کر گھر گھر شہزادی کو تلاش کرتے اور جب سارا شہر دیکھنے کے بعد مایوس ہو جاتے تو وہ پھر ندی کے کنارے کنارے چل دیتے۔ کرنا خدا کا ایسا ہوا کہ یہ دونوں بھی چلتے چلاتے کسی دوسرے ملک کے اسی شہر میں پہنچ گئے جہاں سونے کے بالوں والی شہزادی مجبوری اور بے بسی کی زندگی گزار رہی تھی۔ طوطا اور بلی دونوں گھومتے گھماتے اور ڈھونڈتے ڈھونڈتے بادشاہ کے محلوں میں چلے گئے۔ اور پھر شہزادی کے محل میں جا پہنچے۔ جونہی شہزادی نے انہیں دیکھا، دیکھتے ہی پہچان گئی کہ یہ طوطا اور بلی اسی کے اپنے ہیں اور اس کی تلاش میں آئے ہیں۔ اس نے انہیں گلے لگایا، پیار کیا اور سوداگر کے بیٹے کا حال دریافت کرنے کے بعد بتایا کہ مجھے اس طرح ایک کٹنی دھوکے سے یہاں لے آئی ہے۔ میں جسے خالہ سمجھ بیٹھی تھی وہ تو اصل میں کٹنی تھی اور وہ مجھے یہاں لے آئی۔ بلی نے شہزادی سے پوچھا: "وہ موتی والی انگشتری کہاں ہے؟"

شہزادی نے انہیں بتایا: "وہ شہزادے کے پاس ہے اور وہ اپنی جان سے زیادہ اس کی حفاظت کرتا ہے۔ وہ ہر وقت انگشتری ہاتھ میں پہنے رکھتا ہے۔ اور جب رات کو سونے لگتا ہے تو اتار کر اپنے منہ میں رکھ لیتا ہے تاکہ اس کے کھو جانے کا خطرہ ہی نہ رہے۔"

یہ سن کر بلی بولی: "شہزادی! تو فکر نہ کر، ہم انگشتری ضرور حاصل کر لیں گے۔ تو ہمیں صرف اتنا بتا دے کہ شہزادہ سوتا کہاں ہے؟"

شہزادی طوطے اور بلی کے آنے سے بہت خوش تھی۔ اس کی امیدیں پھر سے زندہ ہو رہی تھیں۔ اس نے بلی اور طوطے کو شہزادے کی خواب گاہ بتا دی اور بلی اور طوطا دونوں شہزادے کی خواب گاہ میں چھپ کر رات ہونے کا انتظار کرنے لگے۔

جب رات ہو گئی تو انہوں نے دیکھا کہ شہزادہ سونے کے لئے اپنی خواب گاہ میں آیا ہے۔ اس نے اپنا لباس تبدیل کیا اور انگشتری اتار کر منہ میں رکھ لی اور پھر سونے کے لئے لیٹ گیا۔ بلی اور طوطا ایک کونے میں چھپے ہوئے یہ سب کچھ دیکھتے رہے۔ جب انہوں نے دیکھا کہ شہزادہ سو گیا ہے تو وہ آہستہ سے آگے بڑھے۔ بلی دبے پاؤں، ہولے ہولے شہزادے کے پلنگ پر چڑھ گئی۔ پلنگ پر چڑھنے کے بعد اس نے اپنی دم کے چند بال شہزادے کی ناک میں ڈال دئے جس کی وجہ سے شہزادے کو زور کی ایک چھینک آ گئی۔ اس کا چھینکنا تھا کہ اس کے ساتھ ہی اس کے منہ میں رکھی ہوئی سانپوں کے بادشاہ کے موتی والی انگشتری اچھل کر دور جا گری۔ یہ دیکھ کر طوطا بجلی کی سی تیزی سے آگے بڑھا اور اس نے انگشتری اپنی چونچ میں پکڑ لی اور دونوں فوراً وہاں سے بھاگ کر شہزادی کے پاس پہنچ گئے۔ اور کہا:

"شہزادی! بے فکر ہو جاؤ۔ ہم نے انگشتری حاصل کر لی ہے اور اب ہم واپس جا رہے ہیں۔ اللہ نے چاہا تو چند دن کے اندر سوداگر کے بیٹے کے پاس تو پہنچ جائے گی۔"

اتنا کہنے کے بعد طوطا اور بلی جس طرح آئے تھے اسی طرح ندی کے کنارے کنارے واپس چل دئے۔ بلی نیچے نیچے چلتی اور طوطا اس کے اوپر اوپر اڑتا چلا جاتا۔ اس طرح وہ دنوں کا سفر گھنٹوں میں طے کرتے ہوئے آخر کار سوداگر کے بیٹے کے پاس پہنچ گئے۔ سوداگر کا بیٹا ان کے اس طرح اچانک گم ہو جانے پر پہلے ہی سخت پریشان تھا۔ وہ اپنے دل ہی دل میں سوچ رہا تھا۔ بادشاہی گئی۔ سونے کے محل گئے۔ سونے کے بالوں والی شہزادی گئی۔ سب کچھ چلا گیا اور اب طوطا اور بلی بھی چلے گئے۔ یہی سب کچھ سوچ سوچ کر وہ بہت زیادہ پریشان ہوتا۔ لیکن جب طوطا اور بلی اس کے پاس پہنچے تو وہ انہیں دیکھ کر خوش ہو گیا۔ اس نے دیکھا سانپوں کے بادشاہ کے موتی والی انگشتری طوطے نے اپنی چونچ میں پکڑی ہوئی ہے۔ اس نے آگے بڑھ کر دونوں کو گود میں لے لیا اور پیار کرنے لگا۔ اس کے بعد اس نے طوطے سے انگشتری لے کر اپنے ہاتھ میں پکڑ لی اور بولا: "اے موتی! میرے سونے کے محل واپس مل جائیں۔"

اس نے دیکھا، وہ سونے کے عالیشان محلوں میں کھڑا تھا۔

(باقی صفحہ ۱۳۴ پر)

ایک تصویر، دو رُخ

ایک رخ : "خونِ جگر ہونے تک" : فضل احمد کریم فضلی
دوسرا رخ : "دی جمعدار" : رفیق خاور
ناشر : (اردو، انگریزی) : کیسلز لمیٹڈ۔ (لندن)

سلیم خان گمّی

دونوں رُخ میرے سامنے تھے۔ پہلے رُخ کا تو مجھے سان گمان بھی نہ تھا بلکہ میں نے تو دوسرے رُخ ہی کو واحد رُخ سمجھا تھا اور غالباً اب بھی سمجھتا ہوں۔ پہلا رُخ گویا میرے لئے ہے ہی نہیں اور ہو بھی تو دوسرے نے اس کو نظروں سے محو کر دیا ہے۔ کم از کم میری حد تک تو ایسا ہی ہے۔

ہوا یوں کہ پچھلے سال لاہور سے راولپنڈی تک سفر کر رہا تھا۔ بڑا لمبا چوڑا سفر، وقت کٹے تو کیسے؟ مجھے یوں بھی رسالے پڑھنے کا جنون ہے۔ اس لئے بک اسٹال پر جا نکلا۔ تازہ "السٹریٹڈ ویکلی آف انڈیا" نظر پڑا۔ غالباً یہ مارچ، اپریل یا ان کے لگ بھگ کوئی مہینہ تھا۔ اور رسالوں کی طرح اسے بھی خرید لیا۔ سرورق الٹتے الٹتے نظر ایک عنوان پر جا پڑی: "دی جمعدار"۔ چہ خوب! ساتھ ہی لکھا تھا "ایک پُر لطف کردار"۔ اس سے دلچسپی اور بھی بڑھی۔

کہاں ہمارے یہاں کے حولدار اور جمعدار اور کہاں ولایت۔ لیکن رڈیارڈ کپلنگ تو مدتیں گزریں اس معاملہ میں پہل کر چکا ہے۔۔۔ ۔ ۔ ۔ ۔ ۔ ۔ ۔ ۔ ۔ اس لئے اس نام میں تو کوئی اچنبھے کی بات نہ تھی۔ اور اہلِ انگلستان کے لئے تو "خونِ جگر ہونے تک" سے زیادہ، جو تصویر کا پہلا رُخ ہے، بہر حال جمعدار ہی زیادہ دلچسپ ہے۔ کیونکہ دو عالمی جنگوں نے برصغیر کے اِن جانبازوں کو ایک عالم سے روشناس کر دیا ہے۔ مگر میرے لئے تو پہلے دوسرے رُخ کے علاوہ، جن کے اوّل و دوم ہونے کا فیصلہ میں ابھی نہیں کر سکا، زیادہ اچنبھے کی بات یہ تھی کہ جس بات کا ذکر پہلے کرنا چاہیئے تھا وہ بالکل آخر میں بیان کی گئی تھی یعنی انگریزی رُخ جناب رفیق خاور کا مرہونِ منت ہے کیونکہ میرے سامنے تو تصویر کا ایک' اور ایک ہی رُخ ہے اور میری ہٹ دھرم طبیعت کچھ ایسا ہی تصور کرنے پر مصر ہے۔ یوں یہ بات خود تبصرہ سے بھی صاف جھلکتی ہے۔ کیونکہ تصویر، پوری طرح بولتی ہوئی تصویر، جیسی بن سکتی تھی اور جمعدار کو جمعدار یعنی کلچپ بنا سکتی تھی، وہ نقارہ تھا "انقلاب" نہ رہے اور تمام تر حل بن جائے۔

پیش کرنے والا اُسے اس انداز سے پیش کرے گویا وہ پہلی بار خود ہی اس کی عکاسی کر رہا ہے اور درمیان میں دو دلدار کوئی حجاب نہ رہے۔ ایسی تمام پیشکشوں میں کامیابی کا دارومدار اس ہی بات پر ہوتا ہے۔ انگریزی رُخ کا نقاش اس حقیقت کو خوب جانتا تھا۔ اس لئے اس نے سارا زور پہلے رُخ کو بھول جانے پر صرف کیا ہے تاکہ وہ پوری توجہ دوسرے رُخ پر مبذول کر سکے۔ اس طرح مذکورہ بالا ریویو میں جو کچھ کہا گیا ہے۔ اسے اس دوسرے رُخ ہی کے بارے میں تصور کرنا چاہیئے۔

پہلا رُخ، دوسرا رُخ ــــ اس کا احساس میرے دل میں جوں کا توں باقی ہے۔ انگریزی رُخ دیکھتے ہی مجھے ایسا لگا جیسے اس کی سطح آفاقی ہے۔ اس کا لب و لہجہ، اس کی اٹھان ایسی ہی لگتی ہے جیسے تھامس ہارڈی نے بنگال پر قلم اٹھا لیا ہو، اور یہ کہانی میں اس کے صاف و شستہ، تر و تازہ، مسحور کن انداز میں ہو سنجیدہ ہونے کے باوجود کیف آفریں اور باوقار۔

وہ جوشش و پیچ کی بات تھی، اب بھی ہے۔ میں یہ باور نہیں کر سکا کہ پہلا رُخ پہلا ہی ہے اور دوسرا رُخ دوسرا۔ اور یہ یونہی نہیں ہے۔ دونوں کے تیور ہی ایسے ہیں۔ مثلاً ناول کا پہلا ہی پیراگراف لیجئے:

"It was an exhilarating July morning in 1939; The entire land of Bengal seemed to be bathed in green. The rippling sea of paddy fields was fringed by tall, delicate betel-nut trees; here and there rose groves of coconut and palm trees, and thick, dark clumps of bamboo."

اسے دیکھتے ہی گمان ہوتا ہے کہ یہ رُخ دوسرا رُخ نہیں ہو سکتا۔ اور چراغ سے چراغ جلانے والے نے بڑے سلیقے سے کام لیا ہے۔ اس نے اپنے رُخ پر دوسرے کا سایہ نہیں پڑنے دیا۔ قلم اس کا اپنا ہی قلم رہا ہے اور تیور بھی اس کے اپنے ہی تیور رہے ہیں۔ بالخصوص خط کشیدہ جملہ کتنا عمدہ ہے۔ بیان میں وہ چیز نہیں جسے انشا پردازی کہتے ہیں۔ حسب معمول کوئی بات بڑھا چڑھا کر یا شاعری کا رنگ دے کر نہیں پیش کی گئی۔

دوسرا رُخ ہونے کی بات جب بنتی کہ عبارت میں کوئی جھول ہوتا۔ کوئی عبارت تشریح کے لئے اضافہ کی جاتی۔ خطوط وحدانی بکثرت برتے جاتے اور جا بجا حاشیے ہوتے۔ ایسی سب باتیں تو بیان ہی میں سمو دی گئی ہیں جس سے اور بھی کسی اور رُخ کا شائبہ نہیں رہتا۔ مثلاً ایک چھوٹی سی بات لیجئے۔ ہمارے یہاں روزہ، نماز، تہجد کون نہیں جانتا مگر اہل مغرب انہیں کیا جانیں؟ ان کے لئے تو کوئی ایسی ترکیب کرنی ہوگی کہ وہ ان کا مطلب سمجھ جائیں۔ اگر کہیں ذرا بھی شبہ پیدا ہوگا کہ جو کچھ کہا گیا ہے وہ کافی نہیں تو بات بگڑ جائے گی۔ شرط یہی ہے کہ ایک رُخ کے پس پردہ کوئی دوسرا رُخ نہ دکھائی دے۔ چنانچہ تہجد کے سلسلہ میں کہیں pre-dawn prayer اور کہیں optional early morning prayer کہہ کر کسی تشریح کی گنجائش نہیں رہنے دی گئی۔ بات ہر جگہ پوری ہے اور اس پر وہی چھاپ ہے جو اصل پر ہونی چاہیے۔

ایک اور جنس لیجئے، بہت گراں مایہ، عزیزہ اہلیہ — ہر شوہر اپنی نصف بہتر کو اسی نام سے یاد کرتا ہے۔ مگر انگریز لوگ اسے کس طرح پکارتے ہیں، انہیں یہ نازک رشتہ کیونکر سمجھایا جائے، یہ بات اچھے اچھوں کو چکرا دینے کے لئے کافی ہے۔ پھر اس کے لئے کیا حکمت برتی جائے کہ سب عزیزہ اہلیہ کو جان جائیں؟ انگریزی میں اس کو dear spouse کہا گیا ہے۔ اور انسان ایسی چیز کے اس ولایتی روپ سے محظوظ ہوئے بغیر نہیں رہ سکتا۔

ایسے ہی خبر نہیں کتنے نام اور ہیں۔ مثلاً جمعدار صاحب کے حجرا دے شان یا چھاتو کو لے لیجئے۔ شان کے جو معنی ہیں وہ تو ہم جانتے ہیں۔ مگر انگریز لوگ اس شان یا اس کی شان نزول کا کیا علم اور وہ ان القاب و خطابات یا القابوں کو کیا جانیں جن سے ہم اپنے یہاں خود کو یا دوسروں کو نوازتے ہیں۔ پورا نام یہ ہے "ابو البرکات تاج الاسلام محمد ذو القرنین شان خدا"۔ انگریزی میں جو کچھ کہا گیا ہے وہ اس کا برجستہ جواب ہے:

Father of Blessings, crown of Islam, Praised of Two Horns, Glory of God.

ایسی آمنے سامنے کی باتوں کا تقابل لطف سے خالی نہیں۔

ایک جگہ ایک بزرگ آتے ہیں پنیر الاسلام۔ بڑا انوکھا نام ہے۔ ہم لوگ جو پنیر کھاتے ہیں سنتے ہی پنیر کا مزا بھی لینے لگتے ہیں، اور اس نرالی ترکیب کا بھی۔ یقین ہے انگریز بھی The cheese of Islam سے اتنے ہی محظوظ ہوتے ہوں گے۔

آپ پوچھیں گے کہ اگر ایسی ہی بات تھی اور سارا ناول بنگال ہی کی فضا میں رسا بسا ہوا تھا۔ نام، چیزیں، اجناس — سب کے سب بنگلا ہی بنگلا تھے۔ یہاں تک کہ یہاں کے مشہور عالم رس گلے بھی تھے اور جلیبیاں بھی جن کا ایک دو جگہ ذکر آیا ہے تو اس رُخ کی دوسرے رُخ میں کایا پلٹ ممکن ہی کیسے تھی؟ یہ بڑا اپنے کا سوال ہے۔ اس میں تو کہیں نہ کہیں دوسرا رُخ بنانے والے کو ہار ماننی ہی پڑے گی لیکن حیرانی یہی ہے کہ کہیں ایسا نہیں ہوا۔ جبھی مجھے پھر وہی پرانی بات دہرانی پڑتی ہے: یہ شش و پنج کہ کس رُخ کو اصل رُخ کہا جائے۔

کھانے پینے کی چیزوں میں دن رات مچھلی، بھات، دال کا استعمال عام ہے۔ جبھی تو دال گلنا نہ گلنا جیسا عمدہ محاورہ بن چکا ہے۔ یہ دال اپنے یہاں تو خیر کسی نہ کسی طرح گل ہی جاتی ہے، لیکن کہیں اور کیسے گلے یہ بڑا ٹیڑھا معاملہ ہے۔ اگر ہم سچ مچ ولایت جاکر دال گلانے لگیں تو کیا ہوگا۔ لکھنے والے نے تو یہ بات بڑے مزے سے لکھ دی تھی کہ:

"دال گلتی نظر آرہی تھی۔ انہیں مناسب معلوم ہوا کہ وہ دو ایک آنچ اب جاکے خود دے آئیں تاکہ جو کچھ کسر گلنے میں رہ گئی ہو وہ بھی پوری ہو جائے۔"

اب یہاں سارا سلسلہ ہی دال۔ آنچ۔ کسر اور گلنے کا ہے۔ نہ انگریز دال پکائیں نہ گلائیں۔ ان کے یہاں اس عمل کا کیا جواب ہے؟ دیکھئے:-

He felt that the achievement of his cherished object was at hand, and he deemed it proper to push the advantage home. A little more steam and his stew would be ready.

ہم اسے اس کا بدلا ہوا روپ کہہ سکتے ہیں۔ بلکہ یہ تو بالکل الگ چیز ہے۔ روپ رنگ کی بات تو ملنے نہیں بن پڑتی۔ خیر یہ جانے دیجئے۔

ٹینی مرغا، صیل مرغا، ان کی پالیاں اور نوک جھونک کا تماشہ تو ہم آئے دن دیکھتے ہی رہتے ہیں۔ خبر نہیں مغربی ملکوں میں بھی مرغوں، بٹیروں، مینڈھوں وغیرہ کی کشتیاں دنگل ہوتے ہیں یا نہیں۔ ہوتے ہیں تو اس فن کے ہر ہر داؤ پیچ کی اصطلاحیں بھی ہوں گی۔ اور جو کوئی ایسا سین دکھانا چاہے وہ اس کو بخوبی پیش کر سکتا ہوگا۔ مگر یہاں کے آدمی کے لئے وہاں کی ان پیشہ ورانہ باتوں کا علم اور ان کو ادا کرنا کافی ٹیڑھی کھیر ہے۔ اب دیکھئے دو مرغوں کی معرکہ آرا لڑائی کا جو نقشہ نیچے پیش کیا گیا ہے۔ وہ کیا دشواریاں پیدا نہیں کرے گا۔ اور سات سمندر پار رہنے والوں کے سامنے اس کا ٹھیک ٹھیک نقشہ پیش کیا جا سکے گا تو کیسے۔

"جلودھر نے ٹینی مرغے کی طرح جب امیر غریب، بلیک مارکیٹ، گرانی، خون چوسنے وغیرہ کی چونچ ماری تو مجمع اسے شاباشی دے رہا تھا، مگر جب جمعدار صاحب نے صیل مرغے کی طرح پنیر میاں کو غلامی کی ضربِ کاری لگائی تو ان کی واہ واہ ہونے لگی۔

مہم واقعی کٹھن ہے۔ اور بظاہر میدان چھوڑے بغیر چارہ نظر نہیں آتا یعنی یا تو سارے معاملے ہی کو گول کر دیا جائے یا کوئی راہِ فرار اختیار کر لی جائے۔ انگریزی رخ کی بڑی خوبی یہ ہے کہ اس میں نہ تو کڑی سے کڑی صورتِ حال سے گریز کیا گیا ہے اور نہ لکیر کا فقیر بنکر ہر جگہ استاد ازل گفت ہماں می گویم کا وطیرہ اختیار کیا گیا ہے بلکہ ہر اونچ نیچ کا پورا پورا سامنا کیا گیا ہے اور ایسی راہ اختیار کی گئی ہے جو بالکل اپنی ہو ؎

آئی ہے شہ تو اپنی جگہ سے ٹلے نہیں

ایرا ہی دے کے ہم نے بچایا ہے کشت کو

مگر کشت اور ایرا کی بات تو جب پیدا ہوتی ہے کہ واقعی شہ آئی ہو اور اسے بچایا گیا ہو۔ یہاں بچنے بچانے کا سوال ہی نہیں۔ شاطر کو صرف اپنی چالوں سے سروکار ہے۔ اس لئے بازی سراسر اس کی اپنی ہے۔ وہ اپنے حریف کے ہشکنڈے کو ایک نظر دیکھ کر آنکھیں میچ لیتا ہے اور پھر ایسی چال چلتا ہے کہ وہ دیکھتا ہی رہ جائے اور یہ کہیں کا کہیں نکل جائے۔

When Jaladhar, like a common cock, struck a blow against the black-market, and the rich sucking the blood of the poor, people hailed him; but when, like a pedigree cock, the Jamadar, replied with a deadlier thrust ......, they started saying! "Go on! Go on!"

ایک دو اور مستند دیکھئے :-

(۱) وقت گزرتا گیا، لڑائی زور پکڑتی گئی قیمتیں ایک کی دس ہونے لگیں، بازار میں چیزیں دس کی جگہ ایک، نظر آنے لگیں۔ جیبیں بھرنے لگیں، پیٹ خالی ہونے لگے۔

(۲) جمعدار صاحب کی مالی حالت یوں بھی پتلی ہو رہی تھی۔ اب یک نہ شد دو شد مفلسی میں آٹا گیلا۔

ان سے زیادہ خطرناک مہرے شاید ہی پٹ جا سکیں اور بازی ننانوے فی صد پٹ نظر آتی ہے۔ کیونکہ ان پے در پے چالوں کا جواب تقریباً محال ہے۔ مگر جو ایک فیصد امکان باقی رہ گیا تھا، اس نے کایا ہی پلٹ دی ہے :-

1. During the following months, the war spread and its effects became worse. Prices shot up tenfold and the quantity of goods on the market shrank by nine-tenths. As some pockets swelled other stomachs became empty.

2. The Jamadar's financial position was already precarious. His involvement in a criminal case came as another bolt from the blue.

اسی طرح بساط پر مہروں کی یہ نشست اتنی مضبوط ہے کہ کسی بھی مہرے کو ادھر ادھر ہلانا جلانا بعید از امکان نظر آتا ہے :-

"بہت سے مردہ دلوں میں زندگی کی لہر دوڑ گئی۔ اُمید کی دیوی کی آنکھوں میں مسکراہٹ کھیلنے لگی۔ اس کی اٹا و غلط انداز ہر طرف پڑ رہی

تھی۔ ہر ایک یہی محسوس کر رہا تھا کہ مجھی پر پڑ رہی ہے اور شہید ہوا جا رہا تھا۔ پنیر میاں قدرتاً ایسے شہیدوں کی صفِ اول میں تھے۔"

مگر ایک ہی ہاتھ میں جہاں جہاں کالے مہرے تھے وہاں سفید ہی سفید مہرے دکھائی دیتے ہیں :-

Many dead hearts started pulsating with new life. The goddess of Hope was all smiles. Her glances fell meaningly on all sides. Everyone felt that they were focussed on him and was thrilled accordingly. Panir Miyan was naturally in the forefront.

کھیل کی خوبی وہاں دکھائی دیتی ہے جہاں ایسی ہی الٹی سے الٹی چالوں کے ساتھ بساط بھی بری طرح دُور دُور پھیلی ہوئی ہے۔ اور فیل فرزیں دوڑانے کے لئے میدان بہت ہی وسیع ہے۔ یہیں شاطر کے جوہر سب سے زیادہ کھلتے ہیں اور دیکھنے والا اس کی چابکدستی کی داد دے سکتا ہے۔ جتنی سٹی گم کر دینے والی چالیں پڑتی ہیں اتنی ہی اس کے ذہن کی تیزی بڑھتی جاتی ہے۔ اور اپنا رنگ دکھاتی ہے۔ اسی سے کھیل کی سطح بہرحال اونچی، اور اونچی ہوگی۔ ایک مقام پر یہ نقشہ دکھائی دیتا ہے۔

"کالی گنج میں بڑی دھوم دھام نظر آ رہی تھی۔ سینکڑوں کشتیاں چلی آ رہی تھیں۔ تاحد نظر سرخ پیلے پیلے بادبانوں، جھنڈیوں اور جھنڈوں کی بدولت ساری فضا قوس قزح بنی ہوئی تھی۔ کنارے پر بانس اور ٹین کی عارضی دکانیں لگائی جا رہی تھیں۔ ہر طرح کی دکانیں تھیں، کھانے پینے سے لے کر بنازے تک، کچھ کشتیاں رنگین گٹھڑیوں سے لدی ہوئی تھیں، قریب آئیں تو گٹھڑیاں بولتی چالتی جاندار نظر آئیں، ان کی آغوش میں چھوٹی چھوٹی گٹھڑیاں بچوں کی صورت میں اچھلیں، ہر بڑی گٹھڑی کے ساتھ تین تین چار چار چھوٹی گٹھڑیاں تھیں۔ مرد دوسری کشتیوں سے اترے، طرح طرح کی ڈاڑھیوں اور رنگ برنگ کے تہمدوں سے بنے سنورے کچھ ڈاڑھیاں نورانی تھیں، کچھ سڈول۔"

اور بساط الٹتے ہی صورت حال یوں دگرگوں ہو جاتی ہے :-

There was great activity at Kaliganj. Gaily coloured boats were coming from every direction. As far as the eye could see, the river was like a rainbow of red, blue and yellow sails, pennons and flags. On the bank temporary shops made of bamboos and tin sheets had been set up. There were all kinds from restaurants to trinket shops. Some boats were loaded with coloured bundles. When they came near, the bundles suddenly became alive. In their laps other smaller bundles in the form of children sprang up. Every big bundle had three or four smaller ones with it. The male passengers began to alight from other boats, all adorned with beards in various styles and waist-bands of different hues. Some beards had an aura of saintliness, some were well-shaped ....."

قدرتی طور پر چال چلتے وقت ہاتھ اسی کا اونچا ہوتا ہے جو پہل کرے۔ مدمقابل کا ہاتھ جبھی اونچا ہوتا ہے کہ وہ چال کا توڑ کرے۔ مثلاً کھیل کے اس روپ میں ہار نہیں تو ادھی کہیں نہیں گئی ہوئی :-

یکایک زمین و آسمان جنبش میں آ گئے، زمین پر ہوا کے گھوڑے دوڑنے لگے، آسمان پر بجلی کے نیزے چمکنے لگے، کچھ دیر بعد ان پرانے ہتھیاروں کی جگہ نئے سامانِ حرب استعمال کئے جانے لگے۔ ہوائی جہاز اڑنے لگے، توپیں گرجنے لگیں، بم پھٹنے لگے۔ جمعدار صاحب نے "یسبح الرعد بحمدہ" کہتے ہوئے کان میں انگلی دے لی۔ ان کا دل دھڑ دھڑ کر رہا تھا۔ گرج کی آواز سے جلو دھر اور پھول محمد چونک کر اٹھ بیٹھے، ہوا اندر کی

"رم جھم یہ پھوار"

خواجہ غلام فرید
مترجم : حشمت فضلی

پردیسی پیا
پروائی ہوا
ہولے ہولے لہرائے
برسات آئی، خوشیاں لائی
ہر شے پہ ہے مستی چھائی
پھوگ ہنسنے لگی
کھپ (؟) کھلنے لگی
سبزہ جھومے اٹھلائے
پردیسی پیا
پروائی ہوا
ہولے ہولے لہرائے
بادل گرجے، بجلی کوندی
مٹی سے اٹھی خوشبو سوندھی
گرمائے جگر
قلب اور نظر
مستی میں من لہرائے
پردیسی پیا
پروائی ہوا
ہولے ہولے لہرائے
جب تک ہے یہاں برکھا رانی
تالابوں میں ہے جب تک پانی
ٹھہریں گے یہیں
جائیں نہ کہیں
کیوں کوئی یہاں سے جائے
پردیسی پیا
پروائی ہوا
ہولے ہولے لہرائے
شاداں ہے فرید اس موسم سے
جلوے ہر سو ہیں رم جھم کے
میٹھا میٹھا
اک نشہ سا
جذبات میں گھلتا جائے
پردیسی پیا
پروائی ہوا
ہولے ہولے لہرائے

۲:

برسو ری انکھیوں نیر سجا کے
جیسے گھٹائیں برسیں چھا کے

ساون آیا بن سجنا کے   بدلے ہوئے طوفان بلا کے
وعدے کر کے کبھی نہ آئے   بھولے دل پر چوٹ لگا کے
دل چھینا راول جوگی نے   بانسریا کی تان اڑا کے
اتنا ظلم مناسب ناہیں   سجنا تجھ سے پریت لگا کے
مجھ کو اکیلی چھوڑ کے تھل ہیں   جا بیٹھے پردیس میں جا کے
روٹھو نہ جانا راجہ مجھ سے   میرے اجڑے من کو بسا کے
ڈھونڈھونگی تجھ کو جوگن بن کر   اپنے بدن پر راکھ رما کے
پاپی پپیہے غم نہ چھیڑ اب   پھونک نہ کوئل کوک سنا کے
ہجر کی آگ پہ لوٹ رہی ہوں   بے بسی ہوں میں پریت لگا کے
تم بن مجھ کو چین نہیں ہے   شاد کرو دل چھب دکھلا کے
بادل گرجیں بجلی چمکے   رم جھم بارش زور گھٹا کے

مشکل بار اٹھا کے فرید اب
جینا ہے دو بھون سجنا کے

بنگلا ادب:

جسیم الدّین

(شخصیت اور شاعری)

وقار راشدی

ٹیگور کی زندگی کا آخری دور تھا کہ بنگلا ادب میں جدید رجحانات پیدا ہوئے۔ میری مراد جنگِ عظیم اوّل (۱۹۱۴ - ۱۹۱۸) سے ہے۔ اس جنگ کا اثر برّصغیر کے معاشری حالات اور سیاست دونوں پر پڑا۔ قدرتی بات تھی کہ بنگال کے مسلم اہلِ قلم بھی اس طوفانی عہد کے تقاضوں سے روشناس ہوئے۔ اور ان میں بھی اپنی انفرادیت کا جذبہ جاگا۔ چنانچہ قاضی نذرالاسلام نے مسلم بنگالی ادب میں اپنے نئے گرجدار آہنگ اور اسلامی تصوّرات سے ایک نئی جوت جگانی شروع کی۔ پھر تو ایک باقاعدہ تحریک کے طور پر مسلم بنگالی ادب کی ایک تحریک سی چل پڑی اور مسلم تاریخ، ثقافت اور اسلامی رجحانات و احساسات نے ہمارے بنگالی ادب پر اپنا اثر مرتب کرنا شروع کر دیا۔

جب تحریک پاکستان کا آغاز ہوا تو مسلمانوں میں ذہنی و فکری بیداری کی ایک نئی لہر دوڑ گئی جس سے ادب بھی متاثر ہوا۔ ادیب قلم سے ہی نہیں عمل سے بھی اس ملّی جہاد میں شریک ہوئے اور حصولِ پاکستان کی جدوجہد میں انہوں نے صعوبتیں اٹھائیں اور مسلمانوں میں اپنی خودی کا احساس پیدا کیا۔

جن مسلم فنکاروں نے آزادیٔ ملک و ملّت کے لئے اپنے قلم سے بیداری کی روح پھونکی اور مسلم ثقافت کی روح کو پانے کی کوشش کی اُن میں جہاں اور ممتاز اہلِ قلم کے نام لئے جا سکتے ہیں وہاں بنگلا کے مشہور شاعر جسیم الدین کا نام خاص طور پر قابلِ ذکر ہے۔

جسیم الدین کی شخصیت سے تعارف حاصل کرنے کے سلسلے میں ان کی ابتدائی زندگی کا کچھ احوال بیان کر دینا بیجا نہ ہوگا۔ موصوف مشرقی پاکستان کی دھرتی کے لال ہیں۔ اُن کا گھر فرید پور کے مقام تمبول خانہ میں ہے۔ ۱۹۰۳ء میں پیدا ہوئے۔

ابتدائی تعلیم مقامی مدرسوں میں حاصل کی اور اعلیٰ تعلیم کے لئے کلکتہ پہنچے۔ یہاں کی یونیورسٹی سے بنگلا ادب میں ایم۔ اے کی سند حاصل کی۔ انہیں بنگلا ادب کی وہ شاخ جو مسلمان مانجھیوں سے مخصوص ہے اور اس عوامی ادب سے جسے پوتھی ادب کہا جاتا ہے خصوصی لگاؤ تھا۔ انہوں نے گاؤں گاؤں پھر کر پوتھی ادب کے وہ پارے جمع کئے جو تلف ہوتے جا رہے تھے اور لوگوں کو صرف زبانی یاد تھے اور جن کی طرف غیر مسلم ادیبوں نے کبھی نگاہ التفات بھی نہ ڈالی تھی۔ مسلم لوک گیتوں اور مسلم عوامی ادب کے یہ جواہر ریزے بڑی حد تک جسیم الدین کی انتھک مساعی کی بدولت ہی منظرِ عام پر آ کر محفوظ ہوئے۔

پاکستان بننے کے بعد جسیم الدین ڈھاکہ یونیورسٹی میں آ گئے اور بنگالی ادب و زبان کی تدریس کا شغل اختیار کیا۔ آج کل وہ مشرقی پاکستان کے شعبۂ اطلاعات سے متعلق ہیں۔

تالاب کے کنارے ناریل اور کیلے کی حسین قطاریں، چھالیہ کے اونچے اونچے شرمیلے پیڑ، حدِ نظر تک دھان کے لہلہاتے کھیتوں کا سلسلہ، ہر طرف بل کھاتی ندیاں، ندیوں پر رینگتی ہوئی طرح طرح کی خوبصورت رنگین، کومل کومل کشتیاں، آسمان پر رنگ برنگے پنچھی کی طرح لہراتے بل کھاتے بادل ـــــ یہ ہیں وہ حسین مناظر، وہ دلفریب خوش رنگ نظارے جن سے مشرقی پاکستان کے عوام کے دلوں میں معانی کی لہریں اٹھتی اور ذہنوں میں گداز اور نغمہ و شعریت کی تصویریں ابھرتی ہیں۔ یہی وجہ ہے کہ یہاں شعر اور نغمہ و موسیقی لوگوں کی گھٹی میں پڑا ہے۔

مغربی پاکستان کی طرح مشرقی پاکستان کی آبادی کا بھی

بڑا حصّہ دیہات میں ہی بسا ہوا ہے۔ یہاں کے باسیوں کی روز مرّہ زندگی پر یہاں کی نرم نرم مٹی اور سبک رو ندیوں کا بڑا اثر ہے اور آپ جدھر جائیں فضا لوک گیتوں کی جھنکار سے مملو اور عوامی کہانیاں اپنی دھرتی کے رنگ آہنگ سے مرصّع پائیں گے جن کے ہر بول اور ہر روپ میں یہاں کے عوام کے دل کی دھڑکنیں اور ان کی زندگی کے سوز و گداز کی گونج نظر آئے گی۔ جسیم الدین کی شاعری میں جو لوچ، تأثر اور نرماہٹ آئی ہے وہ اسی ماحول کی دین ہے۔

جسیم الدین نے یوں تو بہت سے موضوعات پر لکھا ہے مگر لوک گیت، لوک کہانیاں اور لوک ڈرامے ان کے مخصوص موضوعات ہیں۔ ان کی شاعری کا سب سے زیادہ حصّہ عوامی گیتوں پر مشتمل ہے۔ اس باب میں پروفیسر سید علی حسن نے بالکل صحیح کہا ہے کہ ان کے کلام کا محور "میمن سنگھ گیتیکا" یا میمن سنگھ (ضلع) کے گیت ہیں یا وہاں کی حیات پرور رومانی کہانیاں اور وہاں کے مقبول عوام رقص۔ انہوں نے ہی ہمیں دیہاتی نغموں سے بھرپور طریقہ پر روشناس کرایا ہے۔ ان کے مستعمل الفاظ خصوصاً اسم اور صفتیں، تمثیلات اور تشبیہیں، سب میں عوام کی اصل زندگی جھلکتی ہے۔ دوسرے شعرا نے بھی اس میدان میں قدم رکھا ہے مگر جسیم الدین نے عوام میں رہ بس کر اور ان کی روح میں جھانک کر جس طرح عوام کے دل کی دھڑکنیں سنی ہیں، کوئی نہ سن سکا۔

مشرقی پاکستان کے لوک گیتوں کی کئی قسمیں ہیں جیسے معرفتی، مرشدی، باول، زاری، گم بھیرا اور بھاٹیالی وغیرہ۔ جسیم الدین نے ان تمام اقسام کی چھان بین کی ہے اور ان گیتوں کو جمع کیا ہے۔ مشرقی پاکستان کے گیتوں میں سب سے زیادہ دلنواز و دلنشیں گیت بھاٹیالی گیت کہلاتے ہیں۔ جب کسی دیہاتی لڑکی کے لبوں سے اس قسم کے گیتوں کا سرچشمہ پھوٹتا ہے تو فضا نغمہ ہی نغمہ بن جاتی ہے۔ جسیم الدین نے ایک گیت لکھا ہے جس میں بیان ہوتا ہے کہ محبوبہ اپنے پریمی کے انتظار میں ہے اور سوزِ ہجر نے اسے پھونک رکھا ہے۔ اس پُر درد لمحہ کی یاد اس طرح دہرائی گئی ہے:

گنگا کا کنارا ٹوٹ گیا

اے دوست جدائی میں تیری

بے حال ہوں میں روتے روتے

اس پار تو ہے میری کٹیا

اور ندی کے اُس پار ہے تو

(جو ٹوٹ گیا)

اُس پار سے کیسے آئے گا تُو

اب ملنے کی امید نہیں

میں کھول رہی ہوں کالی لٹیں

کالی راتوں کے سایوں نے

سارے سنسار کو گھیر لیا

آکاش پہ جتنے تارے ہیں

ہر ایک کو گن کر بیٹھی ہوں

ہر آس ملاپ کی ٹوٹ چکی۔

ہر آن بہار کی بیت چکی

یہ جسیم الدّین کی بنگلا کتاب "رنگیلا نائر مانجھی" (رنگین ناؤ کا ملاح) سے براہ راست ترجمہ ہے۔ ان کی ایک اور کتاب "پدّا پار" (پدّا۔ ندی کے اُس پار) بھی شائع ہو چکی ہے۔ جو ایسے ہی نفیس بھاٹیالی گیتوں کا مجموعہ ہے۔

اُن کے لکھے ہوئے لوک گیتوں کی طرح ان کی لوک کہانیاں اور لوک ڈرامے بھی بڑے اچھوتے، نفیس اور مقبول عام ہیں اور ان کہانیوں اور ڈراموں کو بنگلا ادب کے انمول رتن سمجھا جاتا ہے۔

ہر بچہ کہانیاں سنتا ہے۔ جسیم نے بھی اپنے بچپن میں بہت سی کہانیاں سنی تھیں۔ جن کو وہ بھلا نہ سکے۔ اور جب بڑے ہوئے تو لاشعور سے یہ کہانیاں پھر ابھر آئیں اور انہوں نے ان کہانیوں کے تانے بانے جوڑ کر اپنے مخصوص البیلے انداز میں پھر مرتب کر دیا۔ دو کہانیوں "آسمان سنگھو" اور "مدھومالا" نے ناٹکوں کی شکل اختیار کی جنہیں بے پناہ مقبولیت حاصل ہوئی۔ "آسمان سنگھو" کی تحریر و ترتیب کی بابت خود جسیم الدّین نے اپنی بنگلا تالیف "مدھومالا" (ص ۹۲) میں کیفیت اس طرح بیان کی ہے:-

"میں نے یہ ناٹک آسمان سنگھو، آج سے

کوئی پچیس سال قبل لکھا تھا، مگر اشاعت
کی نوبت نہ آسکی۔"

اس بیان سے اندازہ ہوسکتا ہے کہ جسیم الدین کتنے طویل عرصہ سے عوامی ادب پہ کام کر رہے ہیں اور ان کے قلم نے کیا کیا جوت جگائے ہیں۔

"آسمان سنگھ" حقیقی معنوں میں عوامی ڈرامہ ہے۔ اس کی ایک خصوصیت یہ ہے کہ اس میں دیہات کی ٹھیٹ زبان کے بجائے کلکتہ کی آسان اور عام فہم بنگلا استعمال کی گئی ہے تاکہ شہری اور دیہاتی سب ہی اس ڈرامہ کو سمجھ لیں اور اسٹیج کی عوامی ضروریات بھی پوری ہوسکیں۔

"مدھومالا" بھی ڈرامہ ہے اور بڑا ہی دلکش۔ اس کی کہانی کو ایک حسین و رنگین خواب کہا جاسکتا ہے جس میں حیات و کائنات کی تمام رنگینیاں، رعنائیاں اور دلفریبیاں سمٹ کر آگئی ہیں۔ اس ڈرامہ کی زبان میں یہ التزام رکھا گیا ہے کہ دیہات کی پوری فضا کو برقرار رکھا جائے۔ وہاں کے عوامی محاورے، سادگی اور کیف پوری طرح جلوہ گر نظر آتے ہیں۔ جگہ جگہ ایسے گیت بھی آتے ہیں جن سے فضا نغمگی سے مملو ہوجاتی اور ذہن ایک عجیب کیف محسوس کرتا ہے۔

"مدھومالا" بہت مقبول ڈرامہ ہے اور اس کے کئی ایڈیشن شائع ہو چکے ہیں۔ کتاب کے دیباچہ میں خود جسیم الدین نے اس کی کیفیت اس طرح بیان کی ہے:-

"میں نے یہ ناٹک اپنے ایک دادا سے سنا تھا یہ میرے والد کے چچا تھے اور اس کہانی کے گیتوں کو اپنی مخصوص طرز اور خصوص سُروں میں سنایا کرتے تھے۔ یہ بول سن کر میری روح وجد کرنے لگتی تھی اور میرا وجود کیف، سرور اور رقص و اسرار کی دنیا میں تحلیل ہوجاتا تھا۔ میں بہت چھوٹا سا تھا اور یہ ڈرامہ سنتے سنتے میں اپنے دادا کی گود میں سو جاتا تھا ــــ اور اکثر سپنوں میں مجھے کہانی کی ہیروئن' مدھومالا اور اس کا ہیرو مدن' کما نظر آنے لگتے تھے کہ پیار کے جھولے میں جھول رہے ہیں اور بس یہ لگتا تھا کہ ساری کائنات وفورِ الفت سے ہمہ نغمہ ہمہ رقص بنی ہوئی ہے۔ آج میں نے اس کہانی کو ایک نیا روپ دے کر یہاں پیش کیا ہے، کاش! میرے یہ دادا جو نابینا تھے اس وقت موجود ہوتے ــــ وہ اسے سن کر کتنا خوش ہوتے۔"

• جسیم الدین نے دیہی زندگی پر ایک اور ڈرامہ "پلّی بودھو" (" [illegible] ") بھی تحریر کیا ہے جو ۱۹۵۵ء میں "نوروز کتابستان" ڈھاکہ نے شائع کیا تھا۔ اس کے علاوہ اور بھی کئی ڈرامے منظرِ عام پر آچکے ہیں اور ان کی ادبی و فنی صلاحیتوں کا لوہا منوا چکے ہیں۔ شعر و نغمہ کا ایک عجیب امتزاج اس ڈرامہ میں بھی پایا جاتا ہے جیسے "بیدیر مئے" (سپیرے کی لڑکی) کا نام دیا گیا ہے۔

جیسا کہ ابتدائی سطور میں عرض کیا گیا قدیم بنگالی ادب پر ہندو تہذیب و ثقافت اور ہندو تاریخ و روایات کا اثر غالب تھا اور ٹیگور کے عہد تک یہی رجحانات بنگالی ادب میں ایک نمایاں حیثیت رکھتے تھے مگر مسلم نشاۃ الثانیہ کا جب ایک دور شروع ہوا تو مسلم فنکاروں نے اسلامی نظریات، تاریخ اور ثقافت کا عنصر اپنے ادب میں داخل کرنا شروع کیا۔ اس کی ابتدا کلکتہ میں مسلم دانشوروں، ادیبوں اور شعرا کے اہتمام سے ہوئی۔ ان مسلمان اہلِ قلم کے ناموں میں جو اس تحریک میں نمایاں حصہ لے رہے تھے مولانا اکرم خان، سید امداد علی، قاضی نذر الاسلام اور کوی غلام مصطفیٰ کے ناموں کا خاص طور پہ ذکر کیا جاسکتا ہے جنہوں نے اپنی سیاسی مصروفیات کے ساتھ ساتھ ادبی محاذ پر بھی مسلم فکر و فن کے احیا کی عملی کوششیں کیں جو بالآخر تشکیلِ پاکستان کی صورت میں منتج ہوئیں۔ ان دانشوروں کی کوششوں سے ہی بنگلا ادب ایک نیا موڑ اختیار کرتا ہے۔ ان لوگوں کی مساعی یہ تھیں کہ ادب کے ذریعہ ہم اپنی تاریخ کو دہرائیں، اپنے کلچر کی اہمیت سے مسلم عوام کو باخبر کریں۔

تحریکِ قیامِ پاکستان (لاہور، ۱۹۴۰ء) کے فوراً بعد، یعنی ۱۹۴۲ء میں کلکتہ کی ایک ادبی مجلس، "پوربو پاکستان ... سوسائٹی" نے اس کام کو آگے بڑھایا اور پھر ۱۹۴۷ء میں ڈھاکہ کی مجلس "پوربو پاکستان شاہتیہ شنگشد" قائم ہوئی جس نے پہلی انجمن کے ساتھ اشتراکِ عمل کیا اور مسلم بنگالی ادب کو اسلامی روایات اور اسلامی مزاج سے مالامال کرنے کے لئے ادیبوں کو ترغیب دی۔ چنانچہ مسلم ثقافتی ادب کی دریافت اور تحفظ کا بڑا کام اس دور میں ہوا۔ زبان کی اصلاح کے سلسلے میں عربی، فارسی اور اردو کے عام فہم مروّج الفاظ کو نہایت

سادگی و صفائی کے ساتھ اپنی تحریروں میں شامل کیا۔ یہ ایسے الفاظ تھے جو یہاں کے مسلمان ہر وقت اپنی روزمرہ زندگی میں استعمال کرتے تھے مگر غیروں کی روش نے انہیں ادبی اہمیت کے حق سے محروم کر رکھا تھا۔

اس تحریک کے زمانہ میں یہ بھی ہوا کہ مسلم اخوت کا جذبہ پیدا ہوا اور تراجم کے ذریعہ اسلامی ملکوں اور عالمی اسلامی ادب کے ساتھ رشتے استوار کئے گئے۔ ڈھاکہ یونیورسٹی کی شائع کردہ تاریخ ادب بنگالہ (ص۸۰) کے حوالہ سے یہ بات بلا خوف تردید کہی جا سکتی ہے کہ مسلم دانشوروں اور اہل قلم میں، جو اس تحریک میں نمایاں حصہ لے رہے تھے، جسیم الدین کا نام ایک ممتاز جگہ پر نظر آتا ہے۔

جسیم الدین نے اپنی نظموں میں ہیئت اور آہنگ کا تجربہ بڑی کامیابی کے ساتھ کیا ہے انسان کی برتری، اعلیٰ انسانی اخلاق و اقدار کی فتح، ان کے خاص موضوعات سخن ہیں۔ ان کی معرکۃ الآرا نظم "قبر" میں یہ خصوصیات خاص طور پر نظر آتی ہیں۔ ہر چند کہ یہ نظم موصوف کے ابتدائی کلام کا نمونہ ہے مگر وہ ان کے آنے والے ادبی دور کی جھلک بھی رکھتی ہے۔ طبیعت میں جو جدت اور خیال میں جو ندرت و رعنائی ہے اس کا سراغ اس نظم میں ملتا ہے۔ پرانے خیالوں کو نئے اسلوب و پیغام کے ساتھ موضوعِ سخن بنانے کی یہ بڑی اچھی مثال ہے۔ مثلاً اس نظم میں ایک سن رسیدہ دیہاتی بزرگ ہیں جو اپنی چہیتی پوتی کو اپنی زندگی — ایک درد بھری زندگی —— کی کہانی سناتے جاتے ہیں۔ بوڑھے بزرگ اس بچی کو اپنے ساتھ لے جاتے ہیں اور اپنی بیوی کی قبر دکھاتے ہیں، پھر دوسرے عزیزوں کی قبروں پر لے جا کر ہر ایک کی خوبیاں گنواتے ہیں اور ننھی بچی کو اعلیٰ انسانی اقدار کی اہمیت ذہن نشین کراتے ہیں۔ بوڑھے کی باتوں میں بڑی صفائی، سچائی اور گداز و خلوص ہے۔ انسانی زندگی اور موت کا تاثر ایک بھرپور وار کرتا ہے اور میرا خیال ہے کہ بنگلا ادب میں شاید ہی کوئی نظم ایسی ہو جو دل پر اتنا گہرا اور اتنا دیرپا اثر چھوڑتی ہو۔ شاید یہی بات ہے کہ جسیم الدین کی نظموں میں سب سے زیادہ شہرت "قبر" کو حاصل ہوئی۔ یوں ان کی نظموں کے بھی کئی مجموعے ہمارے سامنے آچکے ہیں جیسے "رکھالی"۔ "بالوچر" (ریتیلا میدان)۔ "دھان کھیت" "ماٹیر کنیا" (نوحۂ ارض)۔ ان کے منظوم افسانوں میں "نقشی کانتھر ماٹھ" (منقش کپڑوں کا میدان) اور "سویان ماد یا گھاٹ" کو تو بین الاقوامی شہرت حاصل ہو چکی ہے۔ اوّل الذکر کا انگریزی میں منظوم ترجمہ بھی شائع ہو چکا ہے۔ (مسز اے۔ ایم ملفورڈ۔ THE FIELD OF EMBROIDERED QUILT)

ان نظموں میں بھی دیہی زندگی کی عکاسی بڑے ماہرانہ اور فنکارانہ طریق پر کی گئی ہے۔ کتاب مشرقی پاکستان میں پہلے ہی بہت مقبول تھی مگر انگریزی ترجمہ اور پھر اس کے اردو ترجمہ کی وجہ سے اس کی شہرت دور دور تک پہنچ گئی اور اردو داں طبقہ بھی اس عظیم منظوم افسانے سے روشناس ہو گیا۔

جسیم الدین مشرقی پاکستان کے ان عظیم فنکاروں میں سے ہیں جو شعر و ادب اور ثقافت کی ہم آہنگی کے دل سے قائل، بیحد محبِ وطن اور ملک کے دونوں بازوؤں کی یگانگت کے دلدادہ ہیں اور اپنی تحریروں اور عملی اقدامات کے ذریعے آپس کی محبت اور افہام و تفہیم کے راستہ پیدا کرنا چاہتے ہیں اور اپنی پُرخلوص کوششوں میں بڑے کامیاب ہیں۔ ان ہی کی وجہ سے ہم مشرقی پاکستان کے ادب سے اور بھی زیادہ قریب آگئے ہیں۔ اقبالؒ پر ان کی مشہور نظم — "پوتھو بھولا کو بی" ان کی اردو سے محبت اور شاعرِ مشرق سے اُن کی والہانہ عقیدت کی عکاس ہے۔ ان کی اور بھی کئی نظمیں حبّ وطن، قومیت اور ملکی شیرازہ بندی کے موضوع پر موجود ہیں۔

"ادارۂ مطبوعات پاکستان" (کراچی) نے اپنی وقیع تالیف "خیابان پاک" میں جسیم الدین کی ایک نظم "چرواہے کا دل" شامل کی ہے، (ص۳۳)، جو ان کے مخصوص عوامی رنگ، اسلوب اور ذہنی میلان کی بڑی اچھی مثال ہے اور میں اسے آخر میں قارئین کے مطالعہ کے لئے پیش کرتا ہوں جس سے ہمیں مشرقی پاکستان کے اس عظیم فنکار کے فکر و نظر کی وسعت کا کچھ اندازہ ہو سکتا ہے:

"چرواہے کے دل کا درد کسے معلوم؟
ہم اپنی خوشیوں میں، اپنے درد کے اندر
اُس کے دل کے بھید کو ناحق ڈھونڈ رہے ہیں
ہم نے اپنے درد کتابوں میں، نظموں میں

(باقی صفحہ ۱۳۴ پر)

فن :

ایوانِ زریں

(اباسین آرٹ سینٹر، پشاور کی نمائشِ نقاشی)

محمد اعلایل

تاریخ اپنے آپ کو دہراتی ہے۔ اس کا ثبوت ہمیں زندگی کے ہر شعبے میں نظر آتا رہتا ہے۔ خاص کر تہذیبی و ثقافتی عوامل کے لوٹ پھیر کی داستان تو ہمیں ہر وقت ہی اس مشہور مقولے کی صحت کا یقین دلاتی رہتی ہے۔ اس وقت بھی سابق صوبۂ سرحد کی ثقافتی زندگی، بالخصوص فنی دنیا میں ایک نئی تحریک اور نیا جذبۂ شوق کارفرما نظر آتا ہے، بالخصوص نوجوان فن کاروں میں اپنی ثقافتی میراث کے تحفظ اور اسے ترقی دینے کا احساس قوی تر ہوتا جا رہا ہے۔ شاید اکی بڑی وجہ یہ ہے کہ یہ خطہ گندھارا آرٹ کا گہوارہ رہا ہے اور گندھارا تہذیب کا مسکن ہونے کے باعث اسے فن کی دنیا میں ہمیشہ ہی ایک ممتاز جگہ دی گئی ہے۔ آجکل گندھارا آرٹ کے نمونوں کی نشاندہی، پرانے شاہکاروں کی حضری دریافت اور تاریخی آثار کی برآمدگی کے باعث یہ حصۂ ملک عالمی شہرت کا مالک بن گیا ہے اسی وجہ سے یہاں کے نوجوانوں میں فنونِ جمیلہ کی طرف زیادہ رجحان پیدا ہو رہا ہے اور فرزندان کوہ بھی قلم و مُوقلم سے نئے نئے اصنامِ خیالی اور نئے نئے پیکرانِ جمیل دلکش سطح قرطاس پر منتقل کرنے میں لگے ہوئے ہیں۔

یہاں کے نوجوانوں میں فن سے دلچسپی برابر بڑھ رہی ہے اور یہاں کی مشہور فنی درسگاہ "اباسین آرٹ سینٹر" نے، جس کا قیام اب سے کوئی آٹھ سال قبل ہوا تھا، بڑا اہم کردار ادا کیا ہے۔ اس مرکزِ فن نے ہی پچھلے دنوں اپنی سالانہ نمائشِ فن کا اہتمام کیا جس میں کوئی پندرہ مصوروں نے حصہ لیا اور تقریباً اسّی نمونہائے فن اس نمائش میں پیش کئے گئے جن کا ذکر میں یہاں کرنا چاہتا ہوں۔

یہ دیکھ کر مسرت ہوتی ہے کہ ادھر کے مشہور فن کار شہزادہ سلطان حیدر کی مساعی سے یہ مرکز برابر ترقی کر رہا ہے اور یہاں کے ذہین نوجوان طبقہ میں نقاشی سے لگاؤ پیدا ہو رہا ہے۔ نمائش میں جو تصاویر پیش ہوئیں وہ آب رنگی بھی تھیں اور روغنی بھی۔ مجھے اس نمائش میں بطور فنکار اور بطور مبصر دونوں طرح شریک ہونے کا موقع ملا تھا۔

میں اولاً خواتین فنکاروں کا ذکر کروں گا۔ آنسہ فرزانہ حفیظ کی کئی تصاویر اس نمائش میں موجود تھیں۔ اس سے قبل ایڈورڈ کالج (پشاور) میں جو نمائش فن ترتیب دی گئی تھی اس میں بھی ان کے کئی نقوش منظرِ عام پر آئے تھے۔ یوں تو فرزانہ کو ڈیزائن یا ہیئت نگاری سے لگاؤ ہے مگر عہدِ جدید کے فنی میلان کا تقاضہ ہے کہ اب ان کے کام میں تجریدیت کی جھلک بھی آنی شروع ہو گئی ہے۔ مثلاً ان کی ایک تصویر "مچھلی" — جسے یہاں بہت سراہا گیا اور فنی انعام کی مستحق قرار پائی۔ اسی طرح "آہوانِ صحرا" کو بھی بہت پسند کیا گیا۔ وہ اِن تجریدی نقوش میں تکونوں کی مدد سے اپنے خیال کا اظہار کرتی ہیں۔ ان کے نقش "انتظار" میں بھی گہرے احساس کی جھلک نظر آتی ہے جس کے لئے انہوں نے پیکر کی نرگسی آنکھوں میں نظر آنے والی ایک کیفیت سے کام لیا ہے۔

فرزانہ کے علاوہ آنسہ ایس بخش نے بھی حصہ لیا تھا وہ کافی عرصہ سے پرورشِ فن میں مصروف ہیں۔ ان کی ایک تصویر ہے "مسجد مہابت خاں کا مینار" یہ مسجد پشاور کی عظیم و تاریخی عمارت

ماہِ نو، کراچی، شمارۂ خصوصی مارچ ۱۹۶۳ء

نامی میڈیکل کالج کا طالب علم ہے،
ض کو پہچاننے پر ہی اکتفا کرنا نہیں
رس چاہتا ہے۔ اس سیماب وش
رنگا رنگوں مظاہر سے بڑی دلچسپی ہے۔
لیز تیز اور شوخ آبی رنگ استعمال
ح کو مسخر کرنے میں بڑی مدد دیتا ہے۔
ہ بھی بڑا عمدہ مطالعہ ہے۔
رکشی میں مصروف ہے اور اس کے
آتی ہے۔ خاص کر غروبِ آفتاب
سمان پر بکھرے ہوئے بادلوں کے
ست کے ساتھ اپنی آخری آب و تاب
ف عطا کرتا ہے۔
کام کی بابت کچھ عرض کرنے کی اجازت
اپنے چند نقوش کا ذکر کرتا ہوں ——
ح پر پیش کیے گئے تھے۔ مجھے یوں تو
ب معروضی نقش بنانے کی طرف رجحان
استعمال کرتا ہوں اور وہ بھی
نگوں کیفیت کا اظہار مقصود ہوتا ہے۔
ٹروں کی مدد لیتا ہوں۔ میرا ایک
شی کے نمونوں سے بھی ہمارا تعلق برقرار
ب" اور "الف لیلہ" کچھ ایسی ہی سوچ
تی درسگاہ "ایشین آرٹ سینٹر" کی
کیا ہے، مگر نکتہ وروں نے یہ کہہ کر
بڑی اداسی ہے۔ معلوم نہیں کہ یہ خوبی
نصب العین کے مطابق جو کچھ بھی
سامنے آچکا ہے، اب یہ ان دیدہ وروں
مال کریں۔
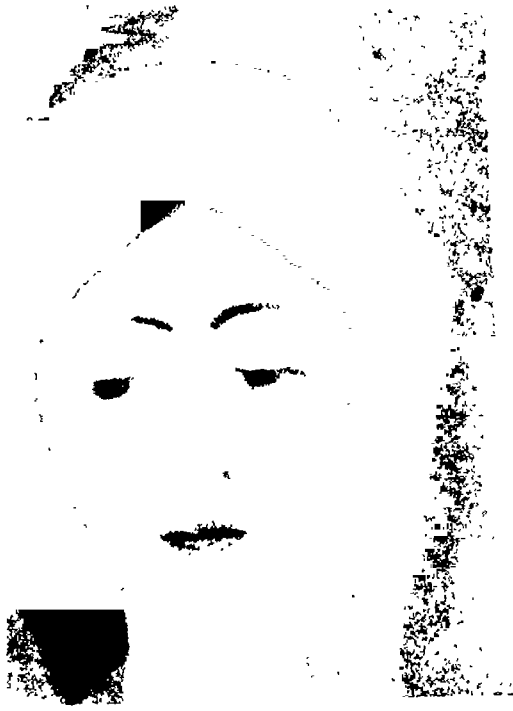
★

انجمن مصنفین پاکستان کا
سکریٹری جنرل، انجمن مصنفین پاکستان،

ہمصفیران چمن: اجلاس کے موقع پر

لی اعزاز: سید جعفر طاہر
ادبی انعام (۱۹۶۲ء) — طویل نظم:
"ہفت کشور"
دوسرا انعام: خدیجہ مستور:
(ناول "آنگن")

سید قدرت نقوی

سید وفا

رفیق خاور

ہے اور اس کے مینار کا یہ نقش مسجد کی عظمت و رفعت کا بڑا اچھا پہلو پیش کرتا ہے۔

بیگم رشیدہ نواز نے اس نمائش میں پانچ نقوش پیش کئے تھے۔ وہ بھی اسی مرکز کی پرانی طالبہ ہیں اور گو مصوری کے لئے انہیں وقت کم ملتا ہے مگر پھر بھی جو نقش مکمل کر لیتی ہیں وہ خیال، جذبات اور ترتیب و تکمیل کے اعتبار سے بہت نفیس چیز ہوتا ہے۔ ان کی تصویر "معصوم" جو اس نمائش میں رکھی گئی تھی، بہت پسند کی گئی۔ یہ روغنی تصویر اپنے موضوع کا بڑا اچھا اظہار ہے۔

ایک ننھی سی فنکار بچی ہے، زاہدہ سیٹھی۔ یہاں کے فنی حلقے کی سب سے کم عمر فنکار۔ اس چھوٹی سی عمر میں اس نے فن سے اپنی دلچسپی اور اپنے فنی مستقبل کا بڑا اچھا ثبوت دیا ہے۔ نمائش میں اس کی پانچ تصویریں آئی تھیں، زیادہ تر رنگین پنسلوں کا عمل تھا اور ہر نقش خوش ذوقی کی جھلک تھا اور انہیں دیکھ کر یہ کہا جا سکتا تھا کہ صحیح رہنمائی میں وہ ایک دن ضرور ایک اچھی فنکار ثابت ہوگی۔

اب میں کچھ ذکر فنکار طلبہ کا بھی کرنا چاہتا ہوں جن کے فنی ذوق کی جھلکیاں اس نمائش میں دیکھنے کا مجھے اتفاق ہوا۔ فرزانہ حفیظ کے بعد سلیم اصغر مرکز کے سب سے پرانے طالب علم ہیں اور اس اثنا میں ان کے فن میں کافی ترقی پیدا ہوئی ہے۔ وہ زیادہ تر منظر کشی کی طرف راجع ہیں۔ مظاہرِ فطرت اور مناظرِ قدرت سے انہیں طبعی لگاؤ ہے۔ انہوں نے اٹھارہ آب رنگی و روغنی نقوش اس نمائش میں پیش کئے تھے۔ ان نقوش میں اس نے سرحد کی قدرتی کیفیتوں اور یہاں کے باشندوں کے چہروں کو دکھایا تھا۔ سلیم جہاں گرد بھی تو ہے اور اسی وجہ سے وہ مناظرِ قدرت کو بڑی عمدگی کے ساتھ اپنے کینوس پر منتقل کرتا رہتا ہے۔ ترتیب کی خوبی و رنگوں کے ستھرے استعمال کا اسے خاص خیال رہتا ہے۔ اسے نارنجی رنگ مرغوب ہے اور وہ اس کی ذہنی افتاد کا خوب ساتھ دیتا ہے۔ "غروب"، "خزاں" اور "آمدِ سرما" تو ناظر کو کم از کم یہی بات سمجھاتے ہیں۔

محمد صادق یوں تو مقامی میڈیکل کالج کا طالب علم ہے، مگر ایسا معلوم ہوتا ہے کہ وہ نبض کو پہچاننے پر ہی اکتفا کرنا نہیں چاہتا بلکہ نبضِ حیات پر بھی دسترس چاہتا ہے۔ اس سیماب وش نوجوان کو حیاتِ انسانی کے گوناگوں مظاہر سے بڑی دلچسپی ہے۔ "فورٹ روڈ" میں اس نے جو تیز اور شوخ آبی رنگ استعمال کئے ہیں اس نے ماحول کی روح کو مسخر کرنے میں بڑی مدد دی ہے۔ اس کا ایک نقش "پٹھان لڑکا" بھی بڑا عمدہ مطالعہ ہے۔

وارث خاں بھی منظر کشی میں مصروف ہے اور اس کے نقوش میں بڑی جاذبیت نظر آتی ہے۔ خاص کر "غروبِ آفتاب" میں دریا کے اوپر پھیلے ہوئے آسمان پر بکھرے ہوئے بادلوں کے پیچھے ڈوبتا ہوا سورج بہت نفاست کے ساتھ اپنی آخری آب و تاب دکھاتا اور منظر کو ایک عجیب کیف عطا کرتا ہے۔

اگر ایک فنکار کو اپنے کام کی بابت کچھ عرض کرنے کی اجازت دی جا سکتی ہے تو آخر میں میں بھی اپنے چند نقوش کا ذکر کرتا ہوں ــــ میرے کوئی چودہ نقوش اس موقع پر پیش کئے گئے تھے۔ مجھے یوں تو چہرہ نگاری سے دلچسپی ہے مگر اب معروضی نقش بنانے کی طرف رجحان ہو رہا ہے۔ زیادہ تر آبی رنگ استعمال کرتا ہوں اور وہ بھی بڑے ہلکے ہلکے جن سے ایک خوابگوں کیفیت کا اظہار مقصود ہوتا ہے۔ تجریدیت میں قوسوں اور دائروں کی مدد لیتا ہوں۔ میرا ایک تصور یہ بھی ہے کہ اسلامی نقاشی کے نمونوں سے بھی ہمارا تعلق برقرار رہنا چاہیئے۔ چنانچہ "محرابیں" اور "الف لیلہ" کچھ ایسی ہی سوچ کے نمونے ہیں۔ میں نے اپنی فنی درسگاہ "ابابیل آرٹ سینٹر" کی عمارت کو بھی کینوس پر منتقل کیا ہے، مگر نکتہ وروں نے یہ کہہ کر مجھے چونکا دیا کہ اس نقش میں بڑی اداسی ہے۔ معلوم نہیں کہ یہ خوبی ہے یا خامی؟ بہرکیف میں اپنے نصب العین کے مطابق جو کچھ بھی بنا سکا ہوں وہ اہلِ نظر کے سامنے آ چکا ہے، اب یہ ان دیدہ وروں کا کام ہے کہ وہ میری صحیح رہنمائی کریں۔

★

کون ہے جو نہیں ہے حاجتمند؟

امیر حسن سیال

"ہم نے یہ مانا کہ دلّی میں رہیں کھائیں گے کیا" غالب نے یہ کہا ہی تو کہا تھا۔ قبلِ غمِ انفس ہی کے بارے میں ہی۔ مگر غمِ جاناں کے ساتھ ساتھ غمِ دوراں بھی تو ہے۔ اس سے نہ کبھی مفر ہوا ہے نہ ہوگا۔ ہمارے ابوالآبا حضرت آدمؑ سے بھی تو خوشۂ گندم ہی نے باغِ بہشت چھڑایا تھا۔ اور اب کون ہے جو حاجتمند نہیں؛ امیر ہو یا غریب، بادشاہ ہوں یا فقیر، سب کے سب کسی نہ کسی طرح ضرورحاجت مند ہیں۔

مگر ـــــ کس کی حاجت روا کرے کوئی؟ ـــ ہم یہ نہیں مانیں گے۔ آپ نے سنا ہی ہوگا۔ کارسازِ ما بہ فکرِ کارِ ما۔ شیخ سعدیؒ نے صدہا سال پہلے، غالب کا بہت برجستہ جواب دے دیا تھا،۔

اے کریمے کہ از خزانۂ غیب
گبر و ترسا وظیفہ خور داری
دوستاں را کجا کنی محروم
تو کہ با دشمناں نظر داری

اور یہ کہ؛

بہ ناداں آں چناں روزی رساند
کہ دانا اندراں حیراں بماند

اور صرف کارسازِ حقیقی ہی نہیں، اُس کے زیرِ سایہ ہزاروں دنیاوی کارساز بھی تو ہیں جو شب و روز و ماہ و سال خلقِ خدا کی حاجت روائی کرتے رہتے ہیں۔ مانا کہ زر، بقول شخصے، قاضی الحاجات ہے جس سے آسودگی و خوش حالی میسر آتی ہے لیکن اس کا سر و سامان کرنے والے بھی تو موجود ہیں۔ دنیا کی اکثر مملکتیں کیا ہیں؟ ـــ رفاہی ادارے جن کا مقصد اپنے شہریوں کے لئے زیادہ سے زیادہ آسائشیں اور راحتیں مہیا کرنا ہے۔ وہ اپنے سینکڑوں کارگزاروں کی آنکھوں سے دیکھتے، اپنی زیرِ نگرانی بندگانِ خدا کی حاجتوں کا سراغ لگاتے اور پھر صدہا بیدار مغز اربابِ فکر و نظر کے ذریعہ ایسی تدابیر اختیار کرتے ہیں جو ان کے وابستگان و متعلقین کی زیادہ سے زیادہ مرفہ الحالی کی کفیل ہوں۔ عوام کی ذاتی طور پر حصولِ معاش اور مال و زر کو بڑھانے کی کوششیں بجا و درست۔ انہیں امکان بھر اپنی ثروت کو بڑھانے کی کوشش کرنی چاہئے۔ لیکن حکومت کی حقیقی غرض و غایت اور فریضہ یہی ہے۔ کہ وہ ان کی اوقات کو بہتر بنانے کی تدبیریں سوچے، انہیں عمل میں لائے اور آمدنی بڑھانے میں سب کی مدد کرے۔

سوال یہ نہیں کہ زر پیدا کیا جائے بلکہ اس کو بڑھایا کیسے جائے۔ تاکہ ہر انسان کی آمدنی بڑھے اور جہاں چھوٹے بڑے شہری آمدنی میں اضافے سے زیادہ خوش حال ہوں وہاں ساری قوم میں بھی اس خوش حالی کا عکس دکھائی دے۔ دولت چلتی پھرتی چھاؤں ہے۔ اور یوں بھی لوگ یہ چاہتے ہیں کہ دولت چلتی پھرتی ہی رہے! مگر بعض خدا کے بندے تو ایسے ایسے وطیرے اختیار کرتے ہیں کہ چلنا پھرنا تو کجا دم اُلٹنے لگتی ہے۔ وہی حالی کی بات ـــ نہیں کرتے خست لٹانے میں اس کے!

کون نہیں چاہتا کہ روپیہ ایسے کاموں پر لگایا جائے جن سے وہ بڑھ چڑھ کر اُن کے ہاتھ واپس آئے، تاکہ وہ بھی خوش و خرّم ہوں اور ان کے عزیز اقربا بھی۔ اور وہ خوش حال تو ساری دنیا خوش حال۔ روپیہ ٹھیک خرچ کرنا، بچانا اور اس کو بڑھانا، یہ سب اپنی اپنی جگہ فن ہیں۔ اور ہمیں ہر وقت اس تاک میں رہنا چاہئے کہ کس طرح روپے کو ایسے کاموں پر لگائیں کہ زیادہ سے زیادہ فائدہ ہو۔

روپیہ بڑھانے کا ایک طریقہ تو ہم آئے دن سرِ بازار دیکھتے ہی رہتے ہیں۔ کوئی مداری یا چتے باز راستے میں کھڑا ہو جاتا ہے۔ اور پلک جھپکنے میں ایک کے دو تین چار روپے بنا دیتا ہے۔ یا کوئی پیر فقیر نقل چاندی کے زیور کو سونے کا زیور بنا تا پھرتا ہے اور اس طرح سادہ لوح لوگوں کو ٹھگ کر نو دو گیارہ ہو جاتا ہے۔

شعبدہ بازی سے قطع نظر ایک طلسمی طریقہ بھی ہے۔ یعنی "کھل سم سم" کہا اور خزانوں کے دروازے آپ ہی آپ کھل گئے۔ یا

الٰہ دین نے جادو کی چراغ کو رگڑا اور حضرتِ جن نے دنیا جہان کی دولت اور لعل و جواہر لا کر قدموں میں ڈھیر کر دئے۔

یہ طریقے بھی شیخ چلی کی تدبیروں سے زیادہ نہیں ہیں۔ ایسے طریقوں سے کیا فائدہ؟ ہمیں تو ایسے طریقے آزمانے چاہئیں جو محفوظ بھی ہوں اور فائدہ مند بھی۔ اگر ہم سوچیں اور اپنے گرد و پیش نظر ڈالیں تو ایسے طریقے دستیاب ہونا مشکل نہیں۔ ہم خود ایسے طریقے نہ سوچ سکیں تو جیسا کہ پیچھے بیان کیا گیا ہے، دوسرے کارساز تو موجود ہیں۔ اور سب سے بڑھ کر خود حکومت موجود ہے جو عوام کو برابر ایسے طریقے سمجھاتی رہتی ہے۔ سیونگ سرٹیفکیٹوں کا تو آپ کو غالباً پہلے ہی علم ہوگا۔ انعامی بانڈوں کو دیکھئے، یہ کتنے مفید ثابت ہوئے ہیں۔ ان کی بدولت ہمارے دیکھتے ہی دیکھتے کتنے ہی لوگ مالامال ہو گئے۔ اور مزا یہ کہ اصلی رقم جوں کی توں سلامت رہی۔ ایسی ہی اسکیمیں ہیں جن سے ہم آج ڈھیروں زرِ مبادلہ کما رہے ہیں۔ یہ نہ سمجھئے کہ اس میں دوسروں یا حکومت ہی کا فائدہ ہے۔ دوسروں کی بھلائی اور حکومت کی اچھائی بالآخر ہماری اپنی ہی بھلائی اور اچھائی نہیں تو اور کیا ہے؟

ہم خوش قسمت ہیں کہ آج حکومت ہماری اپنی حکومت ہے۔ عوام کی حکومت، ایک خیر خواہ حکومت جو عوام کی حالت کو زیادہ سے زیادہ بہتر بنانے میں برابر کوشاں ہے جس کا واضح ثبوت وہ بے شمار منصوبے اور تدبیریں ہیں جو اس نے رفاہِ عامہ کی خاطر اب تک اختیار کی ہیں ظاہر ہے کہ اقتصاد کا مسئلہ ہر زمانے میں بہت ہی اہم بنیادی مسئلہ رہا ہے۔ اور آج کل کے مشینی اور سائنسی زمانے میں تو یہ قوموں کی خوشحالی اور بڑائی ہی کا مسئلہ نہیں بلکہ ان کے جینے مرنے کا سوال ہے کسی نے زر کو یونہی تو قاضی الحاجات نہیں کہا۔ اسی لئے ہماری حکومت نے ملکی معیشت ہی کو بہتر سے بہتر بنانے کے لئے ایک اقتصادی کونسل قائم کر رکھی ہے۔ اور اس کے مشورہ، نیز دیگر مشیرانِ کار کی صلاح کے مطابق وقتاً فوقتاً نئی نئی تدابیر اختیار کرتی رہتی ہے۔ انعامی بانڈوں کا شمار ایسی ہی نفع بخش تدابیر میں ہے۔

اور اب حال ہی میں ایک اور بہت اچھی تدبیر کی گئی ہے جس کی بڑی ضرورت تھی اور جس سے بہت ہی عمدہ نتائج رونما ہونے لازم ہیں۔

مشرقی پاکستان ہو یا مغربی پاکستان۔ ان میں بے شمار صنعتی، تجارتی اور کاروباری ادارے ہیں، جو اپنے اپنے طور پر ملکی ضروریات کو پورا کرتے اور ملکی معیشت کو بہتر بنانے میں مدد دیتے ہیں۔ ان کی کامیابی درحقیقت ہماری قومی کامیابی ہے۔ اور قومی خوشحالی کا ایک بہت ہی اہم ذریعہ۔ ایسے ادارے بھی، ظاہر ہے، روپے پیسے ہی سے چل سکتے ہیں جسے عام طور پر "سرمایہ" کہا جاتا ہے۔ یہ سرمایہ حصص کی فروخت سے حاصل ہوتا ہے۔ قطرہ قطرہ بہم شود دریا۔ چھوٹے بڑے شہری اپنی اپنی استطاعت کے مطابق حصے خریدتے ہیں اور ان سے جو سرمایہ ہاتھ آتا ہے اس سے ہر قسم کے کاروباری ادارے چلتے رہتے ہیں۔ مگر ان حصوں کی قدر و قیمت یکساں نہیں رہتی۔ گرد و پیش کے حالات ان پر برابر اثر ڈالتے رہتے ہیں۔ اور انہی سے مارکیٹ کے حالات پیدا ہوتے ہیں۔

یہ وہ چیز ہے جسے اچھے اچھے ماہرینِ اقتصادیات بھی مشکل ہی سے سمجھ سکتے ہیں۔ چہ جائیکہ عام لوگ، خاص کر ان پڑھ لوگ انہیں سمجھ سکیں۔ اگر وہ کسی کاروبار میں روپیہ لگائیں یا حصے خریدیں تو خبر نہیں ان کا کیا حشر ہو۔ کیا معلوم بہتر ہونے کی کوشش ہی انہیں لے ڈوبے اور جو تھوڑا بہت سرمایہ یا جمع پونجی ان کے پاس ہے وہ اسے بھی کھو بیٹھیں۔ کون نہیں جانتا کہ سٹہ کھیلنے سے کتنے لوگ تباہ ہو جاتے ہیں۔ یہ تو ایک طرح کا جوا ہے۔ سوچ سمجھ کر حصے خریدنے میں کوئی برائی نہیں۔ لیکن عام ناواقف انسانوں کے لئے یہ اندیشے سے خالی نہیں۔ نذرانا زرمی کشد کا لطیفہ کسے یاد نہیں۔ کسی شخص کے پاس ایک ہی اشرفی تھی۔ اس نے کسی صراف کے یہاں اشرفیوں کا اتنا بڑا انبار لگا دیکھا۔ اس نے کہا اس سے بہتر قسمت آزمائی کا موقع اور کیا ہوگا۔ آؤ دیکھا نہ تاؤ، جھٹ اپنی اکلوتی اشرفی اس ڈھیر پر پھینک دی اور لگا ٹکر ٹکر دیکھنے کہ کب جادو کے زور سے وہ ڈھیر کا ڈھیر اڑ کر اس کی طرف آ جاتا ہے۔ مگر "ایں خیال است و محال است و جنوں" نہ وہ ڈھیر ہی آیا، نہ وہ اشرفی ہی لوٹ کر آئی۔ اور وہ حضرت خالی ہاتھ ملتے رہ گئے۔ پھر کسی نے سمجھایا۔ زر اس طرح زر کو نہیں کھینچا کرتا۔ اس کے اور ہی عقلمندانہ طریقے ہوتے ہیں۔

یہی کیفیت سرمایہ لگانے کی بھی ہے۔ ہر کس و ناکس کو نہ بازار کے حالات کا علم ہوتا ہے، نہ سرمایہ کاری کے اونچ نیچ کی خبر۔ یہ دیکھتے ہوئے حکومت نے ایک بہت ہی عمدہ قدم اٹھایا ہے۔ یہ کہ جس طرح دوسرے ترقی یافتہ ملکوں —— امریکہ، جرمنی، برطانیہ، سوئٹزرلینڈ — میں اس مقصد کے لئے ماہرین کے ادارے موجود ہیں، اسی طرح ہمارے یہاں بھی سرمایہ لگانے کا ادارہ قائم کیا جائے، جس کا کام یہ ہوگا کہ سرمایہ لگانے والوں کی خاصی بڑی تعداد کو، خصوصاً وہ جو اپنی جیب میں ایک ہی اشرفی

یعنی بہت تھوڑا سا سرمایہ رکھتے ہیں، جنہیں اُترے چڑھے بھاؤ، شیئر مارکیٹ فائدے نقصان کے امکان وغیرہ کا کوئی علم نہیں ہوتا، انہیں حصص اور امانیات یعنی سیکیورٹیوں کی خرید میں حصہ لینے کے مواقع سے بہرہ ور کیا جائے۔ وہ خود اُن کی خرید فروخت کرنے کی بجائے اس ادارہ میں جس کا پورا نام "نیشنل انویسٹمنٹ (یونٹ) ٹرسٹ" ہے، اپنی اپنی رقوم جمع کر دیا۔ اس طرح سرمایہ کا بہت بڑا ذخیرہ فراہم ہو جائے گا۔ یہ سرمایہ اُن لوگوں کی تحویل میں ہوگا جو حصص و امانیات میں سرمایہ کاری کے مواقع سے پوری پوری واقفیت رکھتے ہیں۔ بالفاظ دیگر وہ اس نوعیت کے کاروبار کے ماہرین خصوصی ہیں۔

اس مشترکہ فنڈ کے عملاً استعمال کی صورت یہ ہے کہ سرمایہ متفرق قسم کی مدات میں لگایا جاتا ہے تاکہ چھوٹے درجے کے سرمایہ کار کا روپیہ ایک ہی مد میں نہ لگے جس سے اس کو نقصان کا احتمال ہو۔ تھوڑی پونجی والوں کے لئے تو معمولی نقصان بھی بہت ہے۔ اسلئے یہی بہتر ہے کہ سرمایہ کسی ایک جگہ نہ لگایا جائے۔ اس طرح سرمایہ کار کو یہ سہولت ملتی ہے کہ وہ یونٹ ٹرسٹ کے ذریعہ گوناگوں سلسلوں میں روپیہ لگائے۔

یہ بلا شبہ ایک بڑا سنہری موقع ہے اور آپ کو یہ جاننے میں یقیناً دلچسپی ہوگی کہ اس اسکیم کی پوری تفصیلات کیا ہیں۔ آیئے ہم اس پر ایک سرسری نظر ڈالیں۔

کسی یونٹ ٹرسٹ میں دو فریق ہوتے ہیں۔ ایک بندوبست اور دوسرا اکارکردگی کا کفیل۔ انتظامی فریق درحقیقت ایک انتظامی کمپنی ہوتا ہے۔ اور دوسرا ٹرسٹی بنک۔

یہ دونوں فریق مل کر ایک دستاویز مرتب کرتے ہیں جس میں دونوں کے اختیارات اور وظائف درج ہوتے ہیں۔ موٹی بات یہ ہے کہ انتظامی کمپنی ٹرسٹ کی سرمایہ کاری کا انتظام کرتی ہے۔ اور ڈیویڈنڈ یا یونٹ سرٹیفکیٹوں کی واپسی کے بارے میں لائحۂ عمل طے کرتی ہے۔ اس کے برعکس بنک، ٹرسٹ کے فنڈ اور دیگر املاک کا متکفل ہوتا ہے۔

یہ بات دلچسپی سے خالی نہیں اور سرمایہ کاروں کے لئے بڑی حوصلہ افزا بھی ہے کہ جس جس ملک میں اس طرح کے ٹرسٹ قائم کئے گئے ہیں وہ بہت کامیاب اور چھوٹے سرمایہ کاروں کے لئے نعمتِ عظمیٰ ثابت ہوئے ہیں بعض ممالک میں تو وہ ایسے مالیاتی ادارے ثابت ہوئے ہیں جو اور سب اداروں سے زیادہ تیزی کے ساتھ پروان چڑھے اور دنوں میں کہیں کے کہیں پہنچ گئے۔ یہاں تک کہ ان میں دلچسپی لینے والے سرمایہ کاروں کی تعداد ہزاروں تک پہنچ۔ اس سلسلہ میں اکثر یونٹ ٹرسٹوں کا ریکارڈ بڑا حیرت انگیز ہے چنانچہ یہ حقیقت ہے کہ پچھلے دس سال ہی کے عرصہ میں بعض یونٹوں کے اثاثے ۵۰۰ فیصد کی حد سے بھی اس پار نکل گئے ہیں۔

ایسے یونٹوں کی کارکردگی کے لئے بے انتہا محتاط قسم کی نگرانی لازم ہے۔ بالخصوص ہمارے ملک میں جہاں سرمایہ کی مارکیٹ پوری طرح ترقی یافتہ نہیں ہے۔ اور غیر تندرست عناصر کے استحصال سے بچنا از بس ضروری ہے۔ دوسرے ملکوں میں یونٹ ٹرسٹ نجی ادارے ہیں۔ لیکن ہمارے ملک کی بات اور ہے۔ اس میں سرمایہ کاری کی مارکیٹ ابھی ابتدائی نشوونما کی حالت میں ہے۔ اس لئے ضروری تھا کہ اس کی عنانِ کار حکومت ہی کے ہاتھ میں رہے۔ چنانچہ ایسا ہی کیا بھی گیا ہے۔ اگر اس کو حکومت کے ہاتھوں میں نہ رکھا جاتا تو اور کئی باتوں کی طرح جن کا ہم سب کو تجربہ ہے نفع خوروں اور دوسرے بدقماش لوگوں کی بن آتی۔ ہر طرح انہیں کی چاندی ہوتی۔ انتظامی کمپنی جو بڑے بڑے صنعت کاروں اور ملک کے اہم مالی اداروں پر مشتمل ہے قطعاً ایک خدماتی ادارہ ہے نہ کہ منفعت کوش ادارہ۔ مدعا یہ ہے کہ ہمارے ملک کے جو لوگ مال و دولت سے بہرہ ور ہیں وہ اپنے کم حیثیت بھائیوں کو زیادہ خوش حال بننے میں مدد دیں۔ اور اپنی دولت کا کچھ حصہ اس کارِ خیر میں لگائیں۔

ظاہر ہے کہ اس اسکیم میں بھی زیادہ سے زیادہ لوگ شریک ہوں گے۔ اور دوسری اسکیموں کی طرح اس سے بھی روپیہ گردش میں آئے گا یعنی ایک ہاتھ سے نکل کر دوسرے ہاتھوں میں جائے گا گھومے پھرے گا۔ اور ایک ہی جگہ جم سمٹ یا بند ہو کر بے کار نہیں ہو جائے گا۔ یہ کاروبار، تجارت اور صنعتوں وغیرہ میں لگ کر اور بھی دولت پیدا کرے گا۔

اس طرح امیر لوگوں کی دولت بھی ان کے پاس بند نہیں رہے گی بلکہ باہر اچھے اچھے دھندوں میں کام آئے گی۔ اس سے سب کو فائدہ ہوگا۔ اور اہلِ ثروت بھی اپنے دھن دولت میں ایسے لوگوں کو حصہ دار بنائیں گے جو زیادہ نہیں کما رہے ہیں۔ اس طرح ہر لحاظ سے توازن ہی توازن پیدا ہوگا۔ اور یہ سب آپ کے اپنے ہاتھوں میں ہے۔ آپ چاہیں تو اپنی عاقبت بھی سنوار سکتے ہیں اور دوسروں کی اوقات بھی بہتر بنا سکتے ہیں۔ لیکن اس کے لئے تو ہم اپنے ہاتھ روک کر کچھ بچا بھی لیں اور اس بچت کی رقم یا فالتو رقم کو انویسٹمنٹ سرٹیفکیٹوں پر لگا دیں تو دنوں میں کہیں کے کہیں پہنچ جائیں گے۔

انوسٹمنٹ یونٹ کی اسکیم اوسط درجہ کے لوگوں کے لئے تو بہت ہی مفید ہے۔ کون نہیں جانتا کہ متوسط طبقہ ہی دراصل ہماری قوم اور ملک کی ریڑھ کی ہڈی ہے۔ یہ مضبوط تو وہ مضبوط، یہ کمزور تو وہ کمزور۔ اور جب اس طبقہ کو طرح طرح کی اسکیموں سے فائدہ پہنچے گا اور یہ زیادہ آسودہ و خوش حال ہوگا، تو بالآخر ساری قوم ہی مضبوط ہو جائے گی۔

ہمارے یہاں اس منصوبے نے جو صورت اختیار کی ہے۔ اس کے مطابق انتظامی کمپنی کا نام ہے "نیشنل انوسٹمنٹ ٹرسٹ لمیٹڈ" جس کی شرکت محدود ہے۔ اس کے تمام شرکاء نے کمپنی کے ایک ایک لاکھ روپے کے حصے خریدے ہیں۔ اس منصوبے کی نمایاں خصوصیات حسب ذیل ہوں گی:

(۱) ٹرسٹ کے یونٹ سرٹیفکیٹ بنک دولت پاکستان اور اس کے ایجنٹ — حبیب بنک لمیٹڈ، مسلم کمرشل بنک لمیٹڈ اور یونائیٹڈ بنک لمیٹڈ۔ فروخت کریں گے۔ چنانچہ یہ سرٹیفکیٹ ان بنکوں سے حاصل کئے جا سکتے ہیں۔ اس اسکیم کو مشرقی پاکستان میں وسیع طور پر پھیلانے کے لئے ایسٹرن مرکنٹائل بنک لمیٹڈ کو بھی ایجنٹ مقرر کیا جا رہا ہے۔ سرٹیفکیٹ ابتدائی مرحلوں میں چیدہ چیدہ مرکزوں سے فروخت کئے جائیں گے۔ اگر ضرورت محسوس ہوئی تو بعد میں اس مقصد کے لئے اور مرکز بھی قائم کئے جائیں گے۔

(۲) سرٹیفکیٹ ۵، ۱۰، ۱۰۰، ۱۰۰۰ اور ۱۰۰۰۰ روپے۔ کے یونٹوں پر مشتمل ہوں گے کسی یونٹ کی قیمت فروخت ابتدائی مرحلے میں ۱۰ روپے ہوگی۔

ابتدائی دور کے بعد قیمت، ٹرسٹ کے اثاثے کے مطابق مارکیٹ میں قیمت کے مطابق بدلتی رہے گی۔

(۳) انتظامی کمپنی نے خصوصی رعایت کے طور پر ابتدائی دور میں سرٹیفکٹوں کی فروخت پر ابتدائی مجرا کی وصولی معاف کر دی ہے۔ اس ابتدائی مجرا میں سے فروخت کرنے والوں کو کمیشن واجب الادا تھا۔ اس امر کے پیش نظر فروخت کرنے والے بنکوں نے یہ منظور کیا ہے کہ وہ یہ کام بلامعاوضہ کریں گے۔

(۴) جب بھی کوئی چاہے ٹرسٹ کے یونٹ سرٹیفکیٹ، ٹرسٹ کے منظور کردہ ایجنٹوں کو واپس کر کے نقد قیمت وصول کر سکتا ہے۔ اگر اس دوران میں یونٹوں کی قیمت بڑھ گئی ہو تو فروخت کرنے والے کو بڑھی ہوئی شرح کے مطابق رقم دی جائے گی۔

(۵) انتظامی کمپنی وقتاً فوقتاً یونٹوں کی فروخت اور دوبارہ قیمتاً خرید کا اعلان کرتی رہے گی جو ٹرسٹ کی سرمایہ کاری کی قیمت پر موقوف ہوں گی۔

[illegible]

کے مطابق معینہ میعاد پر تقسیم کر دی جائے گی۔

(۶) حکومت پاکستان نے ان رقوم کو ٹیکس معاف قرار دیا ہے جو یونٹ سرٹیفکیٹوں پر لگائی گئی ہوں۔

(۷) صوبائی حکومتوں نے یونٹ سرٹیفکٹوں کی فروخت و انتقال کو اسٹامپ فیس سے مبرا قرار دیا ہے۔

(۸) حکومت نے یہ بھی منظور کیا ہے کہ ہر نئے اجرائے سرمایہ پر یہ شرط عائد کی جائے کہ اس میں نیشنل انوسٹمنٹ لمیٹڈ کے لئے معقول رقم شامل ہو۔ اس سے یونٹ ہولڈروں کی ایک بڑی تعداد کو یہ موقع ملے گا کہ وہ نئے سرمایوں نئے اجراء سے سرمایہ میں جو اضافہ ہو اس سے فائدہ اٹھائیں۔

ظاہر ہے کہ ایسے عمدہ منصوبے کا جلد از جلد جاری کر دینا ہی مناسب تھا تاکہ عوام اس سے فی الفور فائدہ اٹھا سکیں۔ لہٰذا ہمارے وزیر خزانہ جناب محمد شعیب نے بڑی مستعدی اور دوراندیشی سے کام لیتے ہوئے گزشتہ سال ختم ہونے سے پہلے ہی ۲۶ دسمبر کو اس نہایت اہم اور منفعت بخش ادارے کا افتتاح کر دیا۔ اور اب مختلف مرکزوں میں فروخت کا سلسلہ بڑی تیزی سے شروع ہو گیا ہے۔ یہ ایک نہایت عمدہ اقدام کا بروقت آغاز ہے اور بلایقین کہا جا سکتا ہے کہ پاکستان کا ہر شہری یہ سنتے ہی کہ اس قسم کا ٹرسٹ قائم ہو چکا ہے، اس سے گہری دلچسپی محسوس کرے گا۔ اور چند افراد ہی نہیں بلکہ ساری قوم اس سے فائدہ اٹھانے کی کوشش کرے گی۔ بلاشبہ اس کے نتائج نہایت معرکہ آرا ثابت ہوں گے۔ ہمارے ملی خوابوں کی ایک اور شاندار تعبیر۔

غالبؔ کی تصویر آفرینی : بقیہ صـ۲۳

ہیں "دیدہ ور" ہوں، لہٰذا ژرف نگاہی، دقت، پیچیدہ بیانی اور فکری تعمق ان کا خاص رجحان بن گیا ہے۔ یہ ان کی تصویر سازی میں بھی ظاہر ہوا ہے اور وصف الحال میں بھی۔

مجھے کچھ ایسا محسوس ہوتا ہے کہ غالبؔ کی ان ذہنی خصوصیات نے ان کی تصویر سازی کو جہاں انفرادیت اور ندرت بخشی ہے وہاں ان کے "عالم تصویر" کی جلوہ گری پر کچھ پہرے بھی بٹھا دئے ہیں۔ مقابلہ و موازنہ کچھ اچھی عادت نہیں مگر میرؔ کی تصاویر میں جو وسعت ہے، اس سے ان کے حق میں یہ کہا جا سکتا ہے کہ وہ مشاہدات کے وسیع تر رقبے کے ناظر اور مبصر تھے، جو اگرچہ غالبؔ کی دسترس سے باہر نہ تھا مگر غالبؔ نے اپنے ذہنی رجحان کی وجہ سے، اس کو اپنے لئے قابل

[illegible]

جسیم الدین ——— بقیہ صفحہ ۱۲۷

لکھ ڈالے، دنیا نے پڑھے، دنیا نے جانے
لیکن الھڑ چرواہے کے دکھ کی باتیں
کس کو خبر، کسے معلوم!
اُن کو بنسی کی تان بتا سکتی ہے
چرواہے کے الھڑ دل کی لوح کے اوپر
صدیوں کا اک درد لکھا ہے

اس کو ہمارے شاعر نے کب شعر کے اندر نظم کیا ہے۔
میں اس درد کی — چرواہے کے دل کی تڑپ کا
کھوج لگاؤں
جب دھرتی پر کان دھروں میں
دھرتی کی آواز، زمیں کے دل کی دھڑکن
مجھ سے بات کیا کرتی ہے۔
شاعر گیت لکھا کرتے ہیں برندابن کے
دیوتاؤں کی عجیب کراماتوں کی باتیں
بادشاہوں اور شہنشاہوں کے دُکھ سکھ کی
لیکن کھیت کے بیٹوں کے دل کا بھید کسے معلوم!"

جسیم الدین نے ملک کے نونہالوں کو بھی اپنے کلام کے انمول خزانوں سے محروم نہیں رکھا ہے اور بچوں کے ادب کو مالا مال کرنے کے لئے کئی اہم کتابیں ان کے قلم سے نکلی ہیں۔ بچوں کے ادب کے سلسلے میں بھی ان کی ذہانت اور تحریر کی دل آویزی نمایاں ہے۔ ہر کتاب بچوں کی نفسیات، مزاج اور افتاد طبیعت کو سامنے رکھ کر لکھی گئی ہے۔ ان میں "ہجاشو" اور "پیشیر بانشی" (ایک پیسہ کی بانسری) بچوں میں بڑے شوق سے پڑھی جاتی ہیں۔

جسیم الدین بڑے ملنسار، بہت ہی ہنس مکھ اور دل موہ لینے والی شخصیت کے حامل ہیں۔ ان کے مزاج میں شگفتگی اور باتوں میں رس ہوتا ہے۔ بنگلا ادب طنز و مزاح کے سدابہار گوشوں سے بھی خالی نہیں اور جسیم الدین نے اپنی باغ و بہار طبیعت کے جوہر اس میدان میں بھی دکھائے ہیں۔ ان کے فکاہی افسانوں کا ایک مجموعہ "بنگالیر ہانشیر گلپو" (ہنسی کی بنگلا کہانیاں) بھی شائع ہو چکا ہے اور ان کی طبیعت کی شگفتگی، لطافت اور البیلا پن ان کہانیوں میں جابجا جھلکتا ہے بلکہ بقول قاضی مظہر حسین یہ تحریریں "ہمارے مزاحیہ ادب کے سرمایہ میں ایک بیش قدر اضافہ ہیں"۔

سنہری بالوں والی شہزادی: ——— بقیہ صفحہ ۱۲۸

اس نے کہا، "اے موتی! میری بادشاہت واپس مل جائے؟"

اس نے دیکھا، وہ شاہی لباس میں کھڑا تھا اور درباری اس کے سامنے سر جھکائے کھڑے تھے۔ اس نے کہا، "اے موتی! میری سونے کے بالوں والی شہزادی واپس مل جائے؟"

اس نے دیکھا، سونے کے بالوں والی شہزادی اس کے سامنے کھڑی تھی۔ اس نے بڑھ کر اسے گلے سے لگا لیا — اور جب یہ سب کچھ ہو چکا۔ سوداگر کے بیٹے کو اس کی بادشاہی مل گئی، اس کے سونے کے محل واپس مل گئے، اس کی سونے کے بالوں والی شہزادی اس کے پاس آ گئی تو طوطا اور بلی اس سے کہنے لگے، "اے بادشاہ! اب ہمیں رخصت کر دے!" اس نے حیران ہو کر ان کی طرف دیکھا تو وہ بولے،

"ہم نے تم سے وعدہ کیا تھا کہ ہم تمہیں اپنی قیمت دلائیں گے۔ ہم نے وہ وعدہ پورا کر دیا۔ اب ہمیں جانے کی اجازت دے!"

اس نے انہیں بہت روکا مگر طوطا اور بلی نہ مانے اور وہاں سے چل دئے۔

اس واقعہ کو بیتے ہوئے صدیاں گذر گئیں مگر سنا ہے لوگ اب بھی بلیاں اور طوطے اس لئے پالتے ہیں کہ شاید کہیں وہی طوطا یا بلی مل جائے جو سانپوں کے بادشاہ کے دئے ہوئے موتی والی انگشتری کے بارے میں جانتے ہیں — کچھ لوگ یہ بھی کہتے ہیں کہ سوداگر کے بیٹے کے مرنے کے بعد وہ موتی پھر اپنے آپ سانپوں کے بادشاہ کے پاس واپس پہنچ گیا تھا — اسی لئے سپیرے سانپ پکڑتے ہیں کہ شاید وہ سانپ پھر اپنے باپ سے ناراض ہو کر چلا آیا ہو!

ادارہ کو تمام پاکستانی اہلِ قلم کے حالات درکار ہیں۔
التماس ہے کہ وہ اپنے حالات جلد از جلد ہمیں مہیا فرما دیں۔
(ادارۂ مطبوعاتِ پاکستان پوسٹ بکس ۱۸۳ کراچی)

ماہِ نو، کراچی، شمارہ خصوصی، مارچ ۱۹۶۳ء

نقد و نظر:

"راہ سخن وا کرے کوئی"

ر۔ خ

دہانِ زخم ہو نہ ہو، راہ سخن تو کسی نہ کسی طرح وا ہو ہی جاتی ہے۔ جیسی کہ پروفیسر میرزا محسن غازی کی ایک حالیہ مطبوعہ تقریر بہ عنوان "اقبال" (شائع شدہ کلکتہ) سے وا ہوئی ہے۔ موصوف لکھتے ہیں:۔

"ایک روز ایسا اتفاق ہوا کہ باوجود کوشش کے اقبال شعر نہ کہہ سکے۔ خیال ہوا کہ شاید شعر کہنے کی قوت و توفیق قدرت نے سلب کر لی ہے۔ مجبوراً اُردو نثر لکھنے کی طرف توجہ کی اور تقریباً ایک سال تک بس اُردو نثر ہی لکھتے رہے۔ ایک رات ہاتھ سر پہ لگائے آسمان کی طرف ستاروں کو دیکھ رہے تھے کہ دفعتاً دل میں ایک ولولہ اٹھا اور جوش میں آکر شعر گوئی کی طرف خود بخود مائل ہو گئے۔ پھر کیا تھا شعر دریا کی روانی کی طرح زبان سے نکلنے لگے۔ اور شعر گوئی کی یہ روانی آخر وقت تک جاری رہی اور کمی نہ ہوئی۔"

بڑی مشکل سے ہوتا ہے چمن میں دیدہ ور پیدا — اور جدیدہ ور ہیں وہ اصل حقیقت کو بھانپ ہی گئے ہوں گے کہ اس حکایت یا روایت کا سرچشمہ سر عبدالقادر مرحوم ہیں۔ جنہوں نے اس کو "بانگِ درا" کے دیباچہ میں نقل کیا ہے۔ مگر جیسا کہ افواہوں کے سلسلے میں اکثر ہوتا ہی ہے، بات پہلے راوی سے دوسرے راوی تک پہنچتے پہنچتے کچھ کی کچھ ہو گئی ہے۔ باقی روایت نے صرف اتنا ہی کہا تھا کہ جب حکیم ملت ولایت تشریف لے گئے تو انہوں نے دیکھا کہ لوگ کس طرح شب و روز سرگرم کار رہتے ہیں۔ اور جس زور و شور سے ہمارے یہاں کے لوگ شعر و شاعری میں غرق بلکہ فنافی الشعر رہتے ہیں، اس کا یورپ میں شائبہ تک نہیں۔ اس لئے وہ ترک شعر گوئی پر آمادہ ہو گئے تھے اور انہوں نے مدیر مخزن کو یہ لکھ دیا تھا کہ — جو کام کچھ کر رہی ہیں قومیں انہیں مذاقِ سخن نہیں ہے۔

دوسرے راوی نے اس کی جو تفسیر کی ہے وہ اس ہی کا حصہ ہے۔ اور ستاروں اور دریا کی روانی کی وہ تصویر بھی جو اس کے بعد پیش کی گئی ہے۔ اتنی سی بات تھی جسے افسانہ کر دیا۔ افسانہ کی لے یہیں ختم نہیں ہو جاتی۔ بلکہ اس کا سلسلہ کچھ اور آگے بڑھتا ہے۔ "اگر میں تناسخ کا قائل ہوتا" تو ضرور کہتا۔ یہاں بھی مقرر کے راوی کا روپ دھارنے میں تناسخ ہی کی کرشمہ آرائی ہے۔ اس کے بعد سر ورق کے ان اشعار کی صداقت میں کوئی شک نہیں رہتا کہ:

خورشید کو کچھ حاجتِ زیور نہیں زنہار
پھولوں پہ کوئی عطر لگائے تو ہے بیکار
اعلیٰ ہے اگر جنس تو کیا حاجتِ اظہار
خود مشک ہو خوشبو نہ کہ خوشبو کہے عطار

ٹائپ میں طبع شدہ یہ رسالہ جو عطار کی خدمات سے بے نیاز ہے مصنف سے ۱۱/۱۲ جھاؤ تلا روڈ، کلکتہ سے دستیاب ہو سکتا ہے۔

دورِ جدید کے عنوان — حالیؔ، کی یاد اب بھی تازہ ہے۔ جس کی ایک بڑی وجہ یہ ہے کہ اپنے پیر مغاں، سرسید علیہ الرحمۃ کی طرح وہ بھی ہماری احیائے ثانیہ کا نفسِ ناطقہ تھے — تنقید میں ایک نئے تصور اور دستور العمل کے بانی مبانی۔ نثر میں ایک خالص نثری اسلوب کے حامل۔ اور شاعری میں اولین شخص جس نے دہانِ زخم سے راہ سخن وا کی — زندگی ہو، یا تنقید یا ادب، وہ بدستور زندہ ہیں اور ان کا اثر کارفرما۔ انہوں نے تنبیہہ کی تھی کہ..... حالیؔ نہ چھیڑنا تھا۔ دورِ خزاں کا قصہ فصلِ گل و سمن میں۔ آج جب بہار ہی بہار ہے۔ حالیٔ شیوا بیاں کو یقیناً دورِ خزاں کی شکایت نہ ہوتی۔ اور اگر بعد کے حریفانِ پنجہ فگن کی اکھاڑ پچھاڑ کے باوجود وہ زندہ ہیں تو ان کے ساتھ ان کی صف کے دوسرے لوگ بھی زندہ ہیں۔ ان کی یاد برابر تازہ ہے سب سے پہلے سرسید رح۔ اور پھر درجہ بدرجہ وہ اشخاص جنہوں نے ان کے عہد میں یا ان کے بعد ان کا سلسلہ جاری رکھا۔

چونکہ تحریک پاکستان کی جڑیں درحقیقت اسی دور کے ارباب فکر و عمل کی سرگرمیوں میں پیوست ہیں۔ اس لئے دورِ آزادی میں بجا طور پر ان کو خصوصاً مرکز توجہ بنایا گیا۔

اس قافلہ کے سالار اعظم سرسید تھے۔ جو اسلامی نشاۃ الثانیہ کی روح رواں ہوتے ہوئے دو قومی نظریہ اور بالآخر تحریک پاکستان کے حقیقی بانی مبانی بھی تھے۔ یہ حقیقت قبل ازیں نظروں سے اوجھل رہی۔ لیکن قیام پاکستان پر اسباب و علل کی تلاش نے اسے واشگاف طور پر ظاہر کر دیا۔ چنانچہ "ماہ نو" ہی میں بعض مضامین شائع ہوئے جن میں سرسید کے اس مرکزی کردار کی توضیح کی گئی تھی۔ وہ کردار جو انہوں نے تحریک پاکستان کے محرک اول کی حیثیت سے ادا کیا تھا۔ اور جس کا سلسلہ بعد میں اقبال اور قائد اعظم تک جاری رہا۔

اس سے قطع نظر بعض اور امور بھی ہیں۔ سرسید اور ان کا دور درحقیقت اُن گوناگوں مسائل کا آئینہ دار ہے جو دورِ جدید کے طلوع ہونے پر نمودار ہوئے تھے۔ ان میں سیاسی، معاشرتی اور مذہبی مسائل کے علاوہ زبان، ادب اور تعلیم کے مسائل بھی تھے۔ چونکہ سرسید اور ان کے رفقائے کار کی حیثیت مقیاس حیات کی تھی، اس لئے انہیں ان سب معاملات کی طرف اعتنا کرتے ہوئے مناسب اقدامات کرنے پڑے۔ آج کم و بیش ایک صدی کے بعد حالات کہاں کے کہاں پہنچ چکے ہیں۔ اور ہم ان سے واقف ہونا تو کجا ان کا تصور بھی نہیں کر سکتے۔ خصوصاً سرسید نے جو کچھ لکھا یا کیا تھا یا دوسروں نے ان کے بارے میں بیان اور تحریر کیا تھا، وہ بڑی حد تک ہماری نظروں سے پرے ہٹ چکا ہے۔ اور ہم اس سے مطالعہ و تحقیق ہی کے ذریعہ روشناس ہو سکتے ہیں۔ ان حالات میں یہ ضروری تھا کہ اس اہم دور اور اس کی ممتاز ترین شخصیت کو پھر ہمارے قریب لایا جائے اور موجودہ حالات و ظروف کو پیش نظر رکھتے ہوئے ان دونوں پر نئے سرے سے روشنی ڈالی جائے۔

مولوی محمد امین زبیری مرحوم کی تصنیف "تذکرۂ سرسید" میں، جسے یونائیٹڈ پبلشرز لاہور نے شائع کیا ہے، ان امور کا بوجہ احسن اہتمام کیا گیا ہے۔ سوانح نگاری میں ذہنی کاوش سے زیادہ یہ سلیقہ درکار ہوتا ہے کہ کسی فرد کے حالات، کوائف اور اس کی شخصیت کے اہم پہلو اچھی طرح سامنے آجائیں۔ اور یہ بھی حتی الوسع معروضی پیرایہ میں۔ اس لحاظ سے یہ کوشش خاصی کامیاب ہے۔ اس سے اس دور اور سرسید کی واضح تصویر نظروں میں پھر جاتی ہے۔ عام طور پر معلوم و معروف امور کے علاوہ ایک مستقل باب دو قومی نظریہ اور زبان و تہذیب کے مسائل کے لئے وقف ہے۔ جو بالقوۃ و بالفعل تحریک پاکستان کے محرکات ہیں۔ سوانح اور شخصی اوصاف بجائے خود دلچسپ ہیں جن میں سرسید کی فکر سلیم، معاملہ فہمی اور علمی صلاحیت خاص طور پر نمایاں ہیں۔ جدید ناظران کے غیر معمولی ادراک و فہم، تبحر علمی، ذوقِ تحقیق، روشن خیالی، شوق و شغف، نمو پذیری صحیح نباضی اور حالات کے مطابق تبدیلی روش سے متاثر ہوتا ہے۔ نشاۃ الثانیہ کے اکثر فکری، دینی، تعلیمی، تہذیبی، تعمیری اور اصلاحی معاملات کا سنگ بنیاد سرسید ہی نے رکھا۔ اوّلیات کی مہمیں انہیں نے سر کیں۔ پیش قدمی ان کی اور پیشرفت دوسروں کی۔ چنانچہ سید امیر علی اور اقبال نے بعد میں انہی کے روشن خیال مشرب حیات کی بنا پر عمارات تعمیر کیں۔ یہ سرسید ہی تھے جنہوں نے نئی تصورات، معتقدات اور رسم و رواج کو بہ دلائل و شواہد حقیقی اسلام سے دور ثابت کر کے ایک زندہ مذہب کو قابل اختیار قرار دیا۔ اور یہی روش ہے جس پر فکری و عملی حیثیت سے آج صدر پاکستان بھی گامزن ہیں۔

مرتب خود اسی دنیا کا فرد تھا جسے سرسید نے پیدا کیا تھا۔ اور جس میں کم و بیش اسی وضع کے بے شمار انسان پیدا ہوئے تھے۔ اس لئے گو اس کی اٹھان وہ نہیں پھر بھی وہ اسے پیش کرنے میں کافی کامیاب رہا ہے۔ بالخصوص ایسے دور کے لئے جو نہ اُس کا دور رہا ہے نہ سرسید کا۔ یہ کہ ہم اس سے بہت کچھ حاصل کر سکتے ہیں، کتاب کے لئے بھی اعتبار افزا ہے اور مرتب کے لئے بھی۔

تحریر میں سبک سرسید کی سلاست بھی جھلکتی ہے اور قدامت بھی۔ پیشکش — طباعت، کتابت، صحت اور کاغذ — کا اہتمام حسب دلخواہ نہیں۔

سرسید ہی کی ادبی کہکشاں کے دو اور فرد ہیں: محمد عزیز مرزا اور سید وحید الدین سلیم جن کے "مجموعۂ تصنیفات" کو انجمن ترقی اردو پاکستان نے "خیالات عزیز" اور "مضامین سلیم" کے نام سے پیش کیا ہے۔ حال میں انجمن نے اس قسم کی بہت سی کتابیں شائع

کی ہیں جو غالباً حسن کارکردگی کی ایک پُرزور مہم کا نتیجہ ہیں۔ اور اُن کے مسودات بابائے اُردو کے فراہم کئے ہوئے معلوم ہوتے ہیں۔ جواب کافی عرصہ کے بعد منظرعام پر آرہے ہیں۔ اور بھی کئی اداروں نے ماضی کی ایسی ہی کتابوں کی اشاعت کا بیڑا اٹھایا ہے۔ جو اپنی جگہ خوب ہے بشرطیکہ ان کا صرف یہی مطمح نظر بن کر نہ رہ جائے۔ اور جس قسم کی تازہ بتازہ نو بنو اعلیٰ تخلیقی تصنیفات بروئے کار آنی چاہئیں، ان کی تعداد برائے نام ہو۔ موجودہ صورت حال کچھ اس ہی کے لگ بھگ ہے۔

کہنگی کو تشریف نوی پہنانے کا اتنا فائدہ ضرور ہے کہ جن مصنفین کو کسی زمانے میں شہرت حاصل رہی ہے ہم ان کے افادات سے پھر روشناس ہو جاتے ہیں۔ اس دوران میں ان کی شہرت اور افادیت کئی مرحلوں سے گزر چکتی ہے۔ اور اس کا حال بسا اوقات اچنبھے سے خالی نہیں ہوتا۔ مثلاً "خیالات عزیز" کو نواب وقار الملک مرحوم نے ان الفاظ میں پیش کیا ہے:۔

"اب اس دیباچہ کے ہیرو مولوی عزیز مرزا صاحب کے اس مجموعۂ تصنیفات کو امید ہے کہ تمام پبلک بلا لحاظ قوم و ملت یکساں دلچسپی کے ساتھ مطالعہ کرے گی اور مصنف کو دعائے خیر سے یاد کرے گی۔"

دعائے خیر تو بہرحال لازم ہے لیکن یکساں دلچسپی کے امکانات بعید نظر آتے ہیں۔ ہم دیباچہ میں بڑے شوق سے "ادبی و لٹریری تحقیق"، "لٹریری مشاغل"، "لٹریری قابلیت" کا تذکرہ ان الفاظ میں پاتے ہیں کہ "آج ان کا شمار ملک کے مشہور و معروف جادو نگاروں میں ہے اور سرسید مرحوم کے لگائے ہوئے علمی چمن کے پہلے موسم گل کا ایک خوبصورت و شاداب پھول ثابت ہوئے۔" مگر دیباچہ کے "ہیرو" میں کوئی ایسے تیور نظر نہیں آتے جو اسے بہمن و اسفندیار کا حریف بنا دیں۔ اس کے طرز بیان سے صاف معلوم ہوتا ہے کہ اس پر مولانا محمد حسین آزاد کا سایہ ہے۔ جن کی کتنے ہی ادیبوں نے ریس کی ہے اور بہک گئے ہیں۔ بلکہ اب تو یہ بات بھی غور طلب ہے کہ وہ خود اپنی ہی مے سے کس قدر بہکے ہوئے ہیں۔ زیر نظر مجموعے کا پہلا ہی مضمون "اکبر اعظم" بری طرح اس حقیقت کا غماز ہے۔

"نام کو اللہ اکبر کیا ترے توقیر ہے
داخل ہر بانگ ہے شامل بہر تکبیر ہے

بابر کی اولوالعزمی (کذا) نے چاروں طرف سے مایوس ہو کر پٹھانوں کی خانہ جنگیوں کی بدولت ہندوستان میں پاؤں رکھنے کی جگہ پائی تھی کہ عام روایت کے بموجب محبت پدری کے جوش میں اپنی جان بیٹے کی صحت پر قربان کی اور اس کا لاڈلا بیٹا ابھی عروس سلطنت سے ہم آغوش بھی نہ ہونے پایا تھا کہ پٹھانوں کی متفرق قوت شیر خاں کی حوصلہ مندی کی شکل میں نمودار ہوئی۔"

ظاہر ہے کہ اس قسم کی استعارہ آمیز انشا پردازی لوب و لہجہ آج کل کے سنجیدہ ذوق کے منافی ہے جسے صاف سیدھی، سلجھی ہوئی، بے تکلف بات ہی پسند ہے۔ مذکورہ مضمون سارے کا سارا "قصص ہند" کے پیرائے میں لکھا گیا ہے۔ اور جدید قاری کے لئے اس کی چند سطریں عبور کرنا بھی دشوار ہے۔ اس لئے کہ انداز بیان بالکل ٹھیٹری ہے اور جو اسلوب تاریخ یا سوانح نگاری کا ہونا چاہئے، وہ یکسر مفقود ہے۔ حقیقت یہ ہے کہ ہمارے یہاں تاریخ کا جچا تلا، متین اسلوب ابھی تک کم ہی پیدا ہوا ہے۔ بدقسمتی سے انشا پردازی کے پرانے تصورات اب بھی ہمارے دل و دماغ پر چھائے ہوئے ہیں۔ اور تنقید کی ایک بہت بڑی مہم یہ ہے کہ ادب و فکر کے راستے سے اس سنگ گراں کو پرے ہٹایا جائے۔ ظاہر ہے کہ اس کے لئے خود تازہ فکر کی ضرورت ہے جس میں جدید عالمی انداز نظر اور بصیرت کو زیادہ سے زیادہ سمویا گیا ہو۔ غور سے دیکھا جائے تو جس چیز کو فی زمانہ ادب و فکر کا اضمحلال یا جمود قرار دیا جا رہا ہے۔ اس کا بنیادی سبب یہی ہے۔ کیا ہمارا شعور اس اہم تقاضے سے عہدہ برآ ہو سکے گا یا نہیں۔ ہماری آئندہ ترقی کا دار و مدار تمام تر اسی بات پر ہے۔

کہتے ہیں تاج محل کو دیکھ کر ایک فرنگی خاتون نے بے اختیار یہ کہا تھا کہ اگر اسے یقین ہو کہ وفات پانے پر اسے بھی ایسا ہی شاندار مقبرہ نصیب ہوگا تو وہ ابھی مرنے کو تیار ہے۔ محشر بدایونی کے "شاعر نامہ" کو دیکھ کر جس کے جستہ جستہ اوراق دوش ہوا اور اس سے بڑھ کر دوش غنا پر اڑتے ہوئے چھوٹوں بڑوں سب تک پہنچتے ہی رہے ہیں۔ اور اس کے غنا پارے ہیں بھی چھوٹوں بڑوں سب کے لئے۔ اگر کسی شاعر کے دل میں یہی تمنا پیدا ہو تو عجب نہیں "محشر نامہ کہئے شاعر نامہ کو" "حفیظ ہوشیارپوری کے ان الفاظ نے اس کو تاریخ بنا دیا ہے۔ گو وہ خود اس محشر نامہ عرف شاعر نامہ میں شامل نہیں ہیں کیونکہ ہماری طرح ان کے لئے بھی۔ روز محشر کہ جانگداز بود — ابھی دور ہے جس نگارش

سے قطع نظر پیش کش کے باب میں روایتی حسن کاری بھی اس میں زفق تا بہ قدم کرشمہ کار ہے۔ اس لئے کیا اس کے محشر نامہ ہونے میں کوئی شک ہے! یہ جنس گراں مایہ کسی قیمت پر بھی ارزاں ہے۔

ریپلیکا ہی کی ایک اور حالیہ پیشکش اصغر بٹ کا چار بابی ڈرامہ "امانت" ہے۔ اُردو میں ایک نادر صنف کا نادر منظر۔ پلاٹ دوہری بلکہ تہری مثلثوں یا مثلث نماؤں سے گزرتا ہے۔ ایک شہری یعنی بیرسٹر، ایک 'جنگلی' یعنی جنگلاتی افسر، اور ایک سیدھے سادے انسان سے ہوتے ہوئے مثلثیں اور مثلث نمائیں تبدریج چھٹتی جاتی ہیں اور بالآخر دو ہی ضلع رہ جاتے ہیں۔ جن کے اول آمل جانے کا کوئی گمان نہیں ہوتا۔ گو سمجھدار قاری کا ماتھا پہلے ہی ٹھنک جاتا ہے۔ کہ اونٹ کس کروٹ بیٹھے گا یا اسے بٹھایا جائے گا۔ یوں جس واقعہ پرۂ پلاٹ" کی بنیاد ہے وہ ہونے سے زیادہ بنانے سے تعلق رکھتا ہے۔ مگر اس بنانے اور مثلث نماؤں سے دو ضلعوں تک پہنچانے میں جس صفائی سے کام لیا گیا ہے۔ وہ بہت خوب ہے۔ اور اس صفائی کے معنی ہیں چابکدستی۔ استادانہ ہنرمندی۔ بات' اور اس کے ساتھ بات چیت کو ڈرامائی سانچے میں ڈھالنے کا سبھاؤ۔ بلکہ ان کو ڈرامائی رو میں بہا دینا۔ ایسے کہ وہ نہایت بے تکلفی سے اس میں بہنے لگ جائیں۔ ظاہر ہے کہ اس کے لئے خاصے ہیر پھیر کی ضرورت ہے۔ ایسے پلاٹ کے لئے زیادہ ترطباعی اور اس سے بھی زیادہ زندہ دلی اور بذلہ سنجی کی ضرورت ہے۔ اور یہ کہنا کہ ڈرامہ نگار نے شروع سے آخر تک ایسا سلسلہ پیدا کر دیا ہے۔ ایک ہی معنی رکھتا ہے۔ یہ کہ وہ ان تمام ڈرامائی صلاحیتوں سے بخوبی بہرور ہے۔

بہرحال امانت مختلف ہاتھوں سے گزرتے ہوئے بلا خیانت صحیح ہاتھوں تک پہنچ جاتی ہے۔ بلکہ وہ خود ہی اپنے آپ کو ان تک پہنچا دیتی ہے۔ اور پردہ عین وہیں گرتا ہے جہاں گرنا چاہیئے۔ بڑے ہی ڈرامائی طور پر۔ اس کے بعد کچھ کہنا امانت میں خیانت ہے۔ اور ہم اس دست بدست سلسلہ میں چوتھی مثلث بننا پسند نہیں کرتے۔

ایک نگاہ غلط انداز پنجابی کی طرف بھی۔ آج کل اس زبان میں خاصی ہنگامہ آرائی دکھائی دیتی ہے۔ اور لکھنے والے کافی ذوق و شوق سے رسالے بھی شائع کر رہے ہیں اور کتابیں بھی۔ بلکہ بعض اُردو اخباروں اور رسالوں نے بھی عام دلچسپی کے پیش نظر پنجابی نقوش کے لئے مستقل جگہ پیدا کر لی ہے۔ "چانن" — آپ اسے روشنی کہہ لیں — ٹھیٹھ اور خوب بولتا ہوا پنجابی لفظ — پنجابی میں مضامین کے اس اولیں مجموعہ کی برمحل عکاسی کرتا ہے۔ زبان' لیکھک۔ شہباز ملک، کی اپنی ہی زبان تھی۔ اس لئے اُس نے اس کا جی بھر کر جادو جگایا ہے۔ موضوعات عام پاکستانی دلچسپی کے موضوعات ہیں۔

سال نو کی تشریف آوری کے باعث آج کل ہمارے رسائل و جرائد کے خصوصی شماروں کا دور معلوم ہوتا ہے۔ اس کا ثبوت خود یہ شمارہ ہے۔ اس کے علاوہ کراچی ہی کے دو ماہناموں "نگارش" اور "جام نو" کے خاص شمارے بھی ہیں جنہیں خاص الخاص کہنا چاہیئے۔ کیونکہ وہ اسی اہتمام ہی سے پیش کئے گئے ہیں۔ دونوں خاصے وزن دار — یوں بھی اور یوں بھی۔ یعنی ظاہری اعتبار سے بھی اور معنوی اعتبار سے بھی۔ اتفاق سے دونوں افسانہ نمبر ہیں۔ اس لئے کہ پہلے کی طرح اب بھی لوگ افسانہ ہی چاہتے ہیں۔ "نگارش" میں "روپ روپ" کے تحت جس طرح روپ ونت کا روپ سنوارا گیا ہے۔ وہ ابن انشا ہی کا حصہ ہے۔ یہ چٹخارہ، یہ بھولپن سے ہنستے ہوئے ایسی ایسی کائیاں چالیں کہ چٹکیوں پر چٹکیاں لیتے جائیں اور کوئی اُف نہ کر سکے! مگر "انشاجی" کی بات ہی کیا ہے۔ وہ یہ کھیل برسوں سے کھیل رہے ہیں جسے کوئی دیکھتا ہی نہیں۔ کون ہے جو بھولے سے بڑے انشا کی طرح چھوٹے انشا کے بارے میں بھی یہ کہدے کہ اس نے ایجاد کی ٹہنی میں ظرافت کے پھول لگائے ہیں۔ کوئی محمد حسین آزاد ہو تو یہ بات کہے۔ اور ہم آپ آزاد نہیں ہیں۔ اسی لئے کسی نے ابھی تک انشا کو فکاہ کی سند نہیں دی۔

دونوں رسالوں کے خصوصی شماروں میں نام بھی اچھے کام بھی اچھے ہیں۔ اور شاید ان کے دام بھی اچھے ہی ہیں۔

"صدف" کراچی پورٹ ٹرسٹ کا ماہنامہ رسالہ ہے جس میں زیادہ تر اسی ادارہ کے اراکین ہی حصہ لیتے ہیں۔ اور "گھر ہیں جیب میں" اس کی تمام یکدانہ نہ سہی۔ پھر بھی جو کچھ ہے خوب ہے۔ "صدف" نے اپنے ہی موتیوں پر قناعت نہیں کی بلکہ دور نزدیک سے اوروں کے موتی بھی سمیٹنے کی کوشش کی ہے۔ جو بہت اچھا ہے۔ اس کے ذوق و شوق کی بیّن علامت۔ اس لئے کہ — سما سکتا نہیں پہنائے فطرت میں مرا سودا!

فردوس جو فردوس نہیں : بقیہ صفحہ ۲۰

کچھ تجویزیں پیش کی ہیں ظاہر ہے کہ تقسیم کی تجویز تو کسی حال قابلِ قبول نہیں ہو سکتی۔ اب یہ مذاکرات کلکتہ میں ہوں گے۔ اور بھارت کو سوچنے کا بڑا موقع ہے، خاص کر اس امر کے پیش نظر کہ گردو پیش منڈلانے والے خطرات زیادہ سنجیدہ طریق فکر کی دعوت دے رہے ہیں۔

مسئلہ کشمیر پر کلکتہ میں ہونے والی متوقع بات چیت کس نہج پر ہوگی اور اس کا کیا نتیجہ نکلے گا اس پر حتمی رائے کا اظہار اس وقت ممکن نہیں۔ تاہم ایک بات ضرور کہی جا سکتی ہے، جس کی طرف خود صدر پاکستان، فیلڈ مارشل محمد ایوب خاں نے بھی اشارہ کیا ہے۔ آپ نے لندن کے اخبار "سنڈے آبزرور" کے نمائندے کو راولپنڈی میں انٹرویو دیتے ہوئے کہا ہے کہ پاکستان کا موقف شروع ہی سے یہ رہا ہے کہ اہل کشمیر کو اپنی رائے ظاہر کرنے کی آزادی ملنی چاہئے۔ کشمیری عوام اپنی رائے کا بہترین استعمال کرنے کی پوری پوری صلاحیت رکھتے ہیں اور ان کا یہ بنیادی حق اُن سے نہیں چھینا جا سکتا۔ اس لئے انہیں آزادی دلوانے کی جد و جہد برابر جاری رہے گی۔

ابھی کراچی میں جو آخری اجتماع ہوا تھا اس سے قبل انگلستان کے ایک فوجی مدبر و ماہر نے جو چونکا دینے والے حقائق بیان کئے انہیں سامنے رکھا جائے تو وہ گہری سوچ بچار اور کسی فیصلہ کن نتیجہ کی اہمیت کو اور بھی نمایاں کر دیتے ہیں۔ دیوار پر کی تحریر تو بہر حال موجود ہی ہے۔ اور یہ تحریر کشمیر کے کہساروں کی دیوار پر بھی موجود ہے، اگر ہم اسے پڑھنے کی زحمت گوارہ کریں اور یہ تحریر بجز تاریخی نظائر اور تاریخی عبر و حقائق کے اور کچھ نہیں۔ فاعتبروا یا اولی الابصار۔

علمی اصطلاحات کا اُردو ترجمہ : بقیہ صفحہ ۴۶

ہے۔ اس کو چھوڑ کر "پہلوی" ایک نیا لفظ گھڑنے کی کیا ضرورت ہے جس کی افادیت اور موزونیت دونوں مشکوک ہیں۔

یہاں سے ایک اصول یہ دریافت ہوا کہ اصطلاحات کا ہماری زبان میں کوئی قدیم ترجمہ موجود نہ ہو تو نیا لفظ وضع کیا جائے۔ وضع اصطلاح میں عموماً لغوی معنی کو سامنے رکھ کر اس کا لفظی ترجمہ کر دیا جاتا ہے۔ جیسے

CEREBRAL (مغی) LATERAL (پہلوئی)

VOICED (مصیت) دغیرہ (منفوس نفسی)۔ یہ درست نہیں۔ لغوی معنی کی جگہ اصطلاحی معنی کو پیش نظر رکھ کر ایسا لفظ وضع کرنا چاہئے جو اصطلاحی مفہوم کو واضح کر دے اور اتنا روشن ہو کہ مزید تشریح و تعریف کی ضرورت پیش نہ آئے۔ ترجمے کا مقصد اصطلاح کی توضیح ہے جو اصطلاح کے لغوی مفہوم کی رعایت اور اس کے پابند لفظی ترجمے سے نہیں، اصطلاحی مفہوم کو اردو میں منتقل کرنے سے حاصل ہوتی ہے۔ مثلاً مخی (= دماغی) سے ہمیں کوئی روشنی نہیں ملتی۔ اس کے مقابلے میں ملفوفی (= لپٹے ہوئے) سے پتا چلتا ہے کہ یہ وہ آوازیں ہیں جن کو ادا کرتے وقت زبان الٹ جاتی اور لپٹ کر دہری ہو جاتی ہے۔ اسی طرح "منحرف" وہ آواز ہے (ل) کہ بوقت تلفظ زبان کے کناروں سے ہوا سرسرا کر نکل جائے۔ voiced کا ترجمہ مصیت (= آواز دینے والا) اور مسموع (= سنا ہوا) کیا گیا ہے۔ مجہورہ ان سے بہتر ہے، اس لئے کہ ان آوازوں میں ایک طرح کی جھنکار ہوتی ہے۔ اس مفہوم کو ادا کرنے کے لئے مجہور (= جہر اور جھنکار والا) سے بہتر لفظ ہماری زبان میں نہیں۔ اس کے مقابلے کی آوازیں کمزور اور دھیمی ہوتی ہیں۔ انگریزی میں انہیں (unvoiced) کہتے ہیں۔ اہلِ اردو نے اس کا ترجمہ غیر مصیت (= جس کی آواز نہ ہو) کیا۔ یہ اصطلاح اور اس کا ترجمہ دونوں غیر واضح ہیں۔ ان سے آوازوں کی حقیقت بے نقاب نہیں ہوتی۔ میں نے مہموسہ (= دھیمی آواز والے) تجویز کیا ہے جو ان آوازوں کی حقیقت پر دلالت کرتا ہے۔ سنسکرت میں مجہورہ کو گھوش وت (= جھنکار والا) اور مہموسہ کو اگھوش وت کہتے ہیں۔

میر کی عشقیہ مثنویاں: بقیہ ص ۳۰

"جذبِ الفت" (قائم)، "نیرنگِ عشق" (مرزا علی لطف)، "بحرالمحبت"، "جذبۂ عشق"، "شعلۂ عشق" اور "گلزارِ محبت" (مصحفی)، "حسن و عشق" اور "پارسا نامہ" (لسمبل فیض آبادی) جعفر علی خاں راغب دہلوی کی ایک مثنوی شامل دیوان، "سراپا سوز" (قاضی ختم) "سوز و ساز" (طالب علی خاں)، شیخ عبد الرؤف شعور شاگرد مصحفی کی مثنوی، "آہ و زاریِ مظلوم" (مومن)۔

لکھنؤ پر جب تک دہلوی اثرات رہے واردات عشق کی مثنویوں میں میر کی تقلید فرض تھی۔ جب لکھنؤ نے دلّی سے اپنی برأت اور اپنی خود مختاری کا اعلان کیا تو مثنوی میں بھی اپنی ڈگر جدا نکالی۔ اِدھر زمانہ بھی بدل چکا تھا۔ لوگوں کے مزاج لذائذ اور لہو و لعب کی طرف مائل ہو گئے تھے۔ نواب مرزا شوق نے اپنی کارستانیوں کا ڈھنڈورا اس زور سے پیٹا کہ میر کی مہذب اور نحیف آواز دب کر رہ گئی۔ لیکن وقت منصف ہے۔ آج میر کی تصانیف کو اردو مثنوی کی ایک گراں بہا طرز تسلیم کیا جاتا ہے اور اس طرز کے متعدد لکھنے والوں میں میر سے رشحاتِ فکر ہی سرفہرست نظر آتے ہیں۔

ایک تصویر، دو رخ، — بقیہ صفحہ ۱۱۹

گئی۔ اڑیل خاں صاحب جوش میں آ گئے۔ غصّے میں بپھر گئے۔ ہر موج پہلے سے زیادہ اونچی آنے لگی۔ کشتی کسی ڈرپوک کے دل کی طرح ڈوبنے اچھلنے لگی...... یکایک بجلی زور سے چمکی، جلو دھر نے کہا " ذرا کنارے کی طرف دیکھو۔ کنارے کی طرف" سب کی نگاہیں اٹھ گئیں۔ بجلیاں چمک رہی تھیں، ان کی روشنی میں کنارے پر عجیب تماشا نظر آیا، فضا میں نرالا رقص ہو رہا تھا، طوفان اپنے مرکز پر یکایک ناچنے لگا تھا، زمین سے کئی سو فٹ اوپر مکانوں کے ٹین ناچ رہے تھے اور آسمان کی طرف ناچتے چلے جا رہے تھے، یہ رقص یکایک رقص بسمل بن گیا۔ ٹین ناچتے ہوئے آئے۔ شپ سے سرکٹ کے الگ ناچنے لگتا، دھڑ الگ ناچتا رہتا۔ ایک عورت کا سر بھی بکھرے ہوئے بالوں کے ہالے کے درمیان ناچنے لگا۔ ایک گھانے کا سر بھی ناچ اٹھا۔ اور چھتنگ کے آدمی کے پیٹ سے ٹکرایا۔ پیٹ میں سنگینیں گھس گئیں۔ اب فضا میں بہت سے سر اور بہت سے دھڑ الگ الگ ناچ رہے تھے۔ جانوروں کے، مردوں کے، عورتوں کے، بچوں کے، آناً فاناً یہ ناچتی ٹولی فضا میں بکھر گئی۔ ناچنے والے زمین پر اس طرح گرے جس طرح بطخیں شکاری کی بندوق سے گرتی ہیں"۔

"مگر جس زناٹے کے ساتھ غضبناک طور پر یہ طوفانی ریلا کیا گیا تھا۔ اس کے سامنے وہی خون خرابہ لازم تھا جس کا نقشہ اس میں پیش کیا گیا ہے مگر شاطر نے اپنے آپ کو پوری طرح سنبھالے رکھا ہے۔

چند اور مقابل کی چوٹیں دلچسپی سے خالی نہ ہونگی:۔

" بنگال کی فضا غزل تو اب بھی بنی ہوئی تھی مگر اب میر کی غزل کی جگہ حافظ کی غزل لے رہی تھی، ساقی مائل بہ کرم تھا۔ شراب و شاہد کا دور دورہ تھا، کاگ اڑ رہے تھے، شراب بوتلوں سے اچھل رہی تھی ہنستی گاتی قہقہے لگاتی، لوگ بھی ہنس رہے تھے، گا رہے تھے، قہقہے لگا رہے تھے، سیم تنوں پر کاغذ کی شکل میں چاندی برسائی جا رہی تھی سیم تن بھی نقرئی تبسم کی بارش کر رہے تھے، دونوں طرف سخاوت کا جوش تھا، یہ کہنا مشکل ہوا جا رہا تھا کہ کون زیادہ سخی ہیں، پینے والے یا پلانے والے، بنگال کی رنگین فضا کو یہ رنگ رلیاں اور بھی زیادہ رنگین بنا رہی تھیں"

"بنگال کا جادو شباب پر تھا، آسمان کے سر پر چڑھ کر بول رہا تھا زمین کے سر پر چڑھ کر بول رہا تھا، گھٹاؤں کے بھیس میں پریاں قطار اندر قطار آ رہی تھیں۔ رنگ برنگ کی ساڑیاں پہنے، طرح طرح کے دوپٹے اوڑھے گوٹے لچکے سے آراستہ پیراستہ، کسی رنگین مزاج نے پوری قوس قزح ہی اٹھا کے زیب تن کر لی تھی، کسی چنچل نے لپک کے پیچ پیچ کی تڑپتی ہوئی بجلیاں اپنے آنچل میں ٹانک لی تھیں۔ اُودے اُودے، نیلے نیلے، پیلے پیلے پیرہن والی آب و رنگ و نور کی پریوں کی مسکراہٹ پھوار کی صورت میں رم جھم رم جھم برستی، کبھی کالے کالے دیووں کے دل بادل پہاڑ کے پہاڑ اینڈتے ہوئے، گرجتے ہوئے چھا جاتے ہیں

اس کے انگریزی رخ میں کچھ اور ہی عالم دکھائی دے گا ——

تو کیا کھیل، منفائی بازی سے فی الحقیقت عالمی سطح پر نہیں چلا گیا۔ میں تو کچھ ایسا ہی سمجھتا ہوں۔ تبھی میں نے اس کی دونوں صورتوں کو برابر الگ الگ ہی رکھا ہے۔ ایک کا دوسرے سے کوئی میل نہیں۔ وہ اور یہ اور — اور انہیں رخ کہتے بھی نہیں بن پڑتی کیونکہ یہ دونوں اپنی اپنی جگہ پر ہیں۔ ایک اِدھر کا روپ، دوسرا اُدھر کا۔

اور وہ کشمکش و پیچ جس کا میں نے ذکر کیا تھا، پہلے بھی تھی، اب بھی ہے۔ اور آئندہ بھی رہے گی:

"ذرا بچ بچ کے چل!" *

صہبا اختر

کارٹون: ریحان

بچپن میں بہت سے دانایان روزگار کی کہانیاں سنتے تھے اور ان کہانیوں کے سب سے بڑے ہیرو، حضرت شیخ چلی آج بھی ذہن کی بھول بھلیوں میں اپنی لمبی سی ناک اور لمبی سی ڈاڑھی کے ساتھ لہراتے نظر آتے ہیں۔

ان کی دانائی کا ایک واقعہ آپ نے بھی سنا ہوگا کہ ایک دن وہ جنگل میں لکڑی کاٹنے کیلئے تشریف لے گئے۔ ایک درخت کو بڑی چھان بین کے بعد منتخب فرمایا۔ درخت پر بڑی مشکل سے چڑھے اور بطور خاص جس شاخ پر سب پہلے آرہ چلایا وہ حسن اتفاق سے وہی شاخ تھی جس پر خود تشریف فرما تھے۔ نتیجہ ظاہر ہے۔ شیخ صاحب کو درخت پر چڑھتے وقت جو زحمت برداشت کرنی پڑی تھی وہ اترتے وقت بالکل محسوس نہ ہو سکی! اس لئے کہ آن کی آن میں، وہ کسی تکلیف کو محسوس کئے بغیر زمین پر ڈھیر ہو چکے تھے۔ وقت اور محنت بچانے کا ایک طریقہ یہ بھی تو ہے۔ معلوم ہوتا ہے کہ حضرت شیخ چلی خود بھی بہت بڑے منطقی واقع ہوئے تھے۔ وہ شاید سبب اور مسبب کے نظریہ کو پوری طرح سمجھ چکے تھے۔ انہوں نے "حادثہ" کو سمجھنے اور سمجھانے کے لئے ایک پورے پروگرام پر عمل کیا اور اسکا خود تجربہ بھی کیا۔

شیخ چلی مرحوم جسمانی طور پر نہ سہی بچوں کی کتابوں میں آج بھی موجود ہیں۔ لیکن بعض لوگوں کا خیال ہے کہ شیخ چلی تبدیلیٔ آب و ہوا کے طور پر کاغذی دنیا سے نکل کر اب بھی انسانی برادری میں کبھی

* زندگی کی رہ میں چل لیکن ذرا بچ بچ کے چل یہ سمجھ لے کوئی مینا خانہ بار دوش ہے! ("اقبال" رح)

کبھی رونما ہوتے رہتے ہیں - ان کے سر پر ایک سلیمانی ٹوپی ہے ، اسلئے سب کو نظر نہیں آتے - مگر وہ جس کی ٹوپی چاہیں اتار لیتے ہیں یا جسکی چا ہیں پگڑی اچھال دیتے ہیں یہاں کے بائیں ہاتھ کا کرتب ہے ، ممکن ہے دائیں ہاتھ کا ہو -

نیا راکٹ !؟:

گاہ باشد کہ کودک ناداں از غلط بر ہدف زند تیرے !

یوں تو حضرت شیخ چلی کو گھریلو زندگی اب بھی بہت پسند ہے ، اور وہ ہر گھر میں کسی نہ کسی طرح موجود رہتے ہیں لیکن بہت کم اس بات کو ماننے کے لئے تیار ہونگے کہ ان کے گھر میں بیگم کے علاوہ کسی اور کی بھی حکمرانی ہے - بیگم کو تو خدانخواستہ اگر کوئی ایسا گمان ہو جائے تو سیدھی میکے میں جا کر دم لیتی ہیں -

آپ کو اس بات سے انکار ہے تو چلئے یونہی سہی - مجھے آپ کی توہین اور آپ کی گھریلو آزادی میں دخل در معقولات کا مجرم بننے کا کچھ ایسا شوق بھی نہیں مگر مجھے آپ بیتی سنانے کا تو حق حاصل ہے -

لپ اسٹک سے لال بھبھو کا ہونٹ - پاؤڈر، کریم کی آمیزش بلکہ آویزش سے آٹھ پہر سورج کی طرح چمکتا ہوا اور گلاب کی طرح مہکتا ہوا چہرہ ، سلک کی شلوار، نائلون کی قمیص اور شیفون کا دوپٹہ —" ماتھے بندیا ہاتھ میں کنگن گلے میں چندن ہار "— سر سے پیر تک ریشم ہی ریشم اور اس پر عطر اورلونڈر کی پھوار - یہ سب کچھ ٹھیک ! بیگم کے سولہ سنگھار سر آنکھوں پر -

ہمارا کیا جاتا ہے اگر بیگم—بیگم کم اور حور یا پری زیادہ نظرآتی رہیں - ان کے اس حسن اور اس "حسن اہتمام" کے والہ و شیدا چلئے ہم ہوگئے مگر یہ باورچی خانہ اس سلسلے میں انتہائی بد مذاق واقع ہوا ہے - لیکن بیگم نے ہمارے اس مشورے کو ہمیشہ اپنے حسن اور اپنے فیشن کے خلاف ایک قدامت پسندانہ نظریہ سمجھا - بیگم ہر چند کہ کبھی کبھی ہمارے دلائل اور ہمارے نصیب دشمناں قسم کے اندیشوں سے قائل بھی ہوگئیں - مگر اس کو کیا کیا جائے کہ باورچی خانہ میں بھی انہیں اس بات کا دھڑکا لگا رہتا ہے کہ نہ جانے کب کوئی پڑوسن آٹپکیں ، اور پڑوسن تو خیر پڑوسن ہیں اگر کوئی میکے یا سسرال سے ہی آگیا تو کیا ہوگا— بیگم اس قول کو اکثر دہراتی رہتی ہیں کہ موت اور مہمان کے آنے کا کوئی وقت مقرر نہیں— اور وہ موت کی نہ سہی مگر مہمان کی ضرور متوقع رہتی ہیں - اسی لئے ہروقت لیل کانٹے سے لیس رہتی ہیں -

کچھ دنوں کے بعد بیگم کو فیشن کے ساتھ ساتھ موسیقی سے بھی لگاؤ ہو گیا تھا- اس کے لئے فوراً ریڈیو خریدنے کا "بیگم شاہی" حکم صادر ہوا - خادم نے تعمیل کردی - ریڈیو پہلے تو ڈرائنگ روم کی زینت بنا رہا ، پھر ڈرائنگ روم کی میز سے اٹھ کر باورچی خانے میں رکھے ہوئے نعمت خانے پر رکھدیا گیا - وجہ پوچھی تو کہنے لگیں "ارے تو اور کیا کروں ، دوپہر کو کھانا پکاتی ہوں اور اسی وقت ریکارڈنگ ہوتی ہے- بھاگ بھاگ کے ڈرائنگ روم میں جانا پڑتا تھا - اس لئے میں نے سوچا کہ ریڈیو بھی یہیں اٹھا لاؤں- آخر آپکو وقت پر کھانا بھی تو دینا ہوا"- بیگم کی اس دلیل کے آگے ہم ہمیشہ کی طرح چپ ہو کر رہ گئے لیکن ریڈیو میں نہ جانے کیا جادو تھا کہ

جس دن سے ریڈیو کچن میں پہنچا ہمارے لئے کھانا تریاق سے زہر بنتا چلا گیا۔ ہمیں ہر لقمے پر پیاس لگنے لگی۔ اگر مرچوں کی شکایت کی تو بیگم نے کہا ''زبان دکھائیے'' اور صاف و شفاف زبان دیکھی تو کہنے لگیں۔ ''آپکے منہ میں دانے نکل آئے ہیں''! اور اگر کسی دن کھانے کو بد مزا کہدیا تو حکم دیا ''ڈاکٹر کو دکھا آئیے۔ معلوم ہوتا ہے کہ کسی آنے والی بیماری نے آپ کے ذائقے کی قوت پہلے سے سلب کر لی ہے'' اور جب جلی ہوئی روٹیوں کا منہ بولتا ثبوت پیش کیا تو روٹیوں سے زیادہ جل کر کہنے لگیں: ''مٹی کے تیل کے چولہے پر روٹیاں پک ہی نہیں سکتیں۔'' مگر وہ اس ناممکن کو معجزاتی طور پر ممکن بناتی رہیں۔ ہم نے لکڑیاں جلانے کا مشورہ دیا تو فرمانے لگیں: ''دھواں میری آنکھوں کو خراب کردے گا۔'' کوئلے کی طرف توجہ دلائی تو کہنے لگیں۔ ''کوئلے کی گیس میرے لئے ناقابل برداشت ہے اور دوسرے یہ کہ بجٹ میں اس آئیٹم کی گنجائش بھی تو نہیں ہے۔''

''جی ہاں اس فیشن کے بعد بجٹ میں کوئلے کی ایک بوری کی گنجائش کہاں باقی رہ سکتی ہے۔''

بیگم نے پوچھا ''کیا کہا؟ ذرا زور سے کہئے۔''

ہم نے جذباتی طور پر بات کہدی تھی۔ دھرانے کی ہمت کس میں تھی۔ فوراً کہدیا۔ ''جی کچھ نہیں، میں صرف یہ کہہ رہا تھا کہ آپ کا خیال درست ہے۔'' بیگم مسکرادیں اور ایک آئی ہوئی آفت ٹل گئی۔ ہم نے بھی جواباً جبڑا پھاڑتے ہوئے پوری مسکراہٹ سے جواب دیا۔

ایک دن دوپہر کو گھر پہنچے۔ بیگم سر سے پیر تک ''نائلون کی گڑیا'' بنی باورچی خانے میں موجود تھیں۔ ریڈیو سے فلمی گانے نشر ہو رہے تھے۔ بیگم بھی آواز کے ساتھ آواز ملانے کی ناکام کوشش میں مصروف تھیں۔ ہم انہیں مصروف دیکھ کر ڈرائنگ روم میں آ بیٹھے۔ ابھی کچھ دیر ہی گذری تھی کہ ایک چیخ سنی۔ ہم نے سمجھا کہ ریڈیو سے کوئی ریکارڈ۔ صوتی تاثر کے ساتھ۔ پیش ہورہا ہے، کہ دوسری چیخ سنی۔ دوڑ کر باورچی خانے میں پہنچے تو دیکھا کہ بیگم کا دوپٹہ شعلۂ جوالہ بنا ہوا ہے اور قریب تھا کہ بیگم خود ایک بقعۂ نور میں تبدیل ہو جائیں کہ ہم نے وہ دوپٹہ فوراً نوچ پھینکا اور جلدی سے دوپٹے پر گھڑا انڈیل دیا۔ بیگم جو بات بات پر آتش زیر پا رہتی تھیں آج واقعی نذرآتش ہی ہو جاتیں۔ پوچھا ''کیسے ہوا؟'' کہنے لگیں ''ارے ذرا ریڈیو کی سوئی ٹھیک کرنے کے لئے مڑی تھی کہ دوپٹے کا پلو چولھے پر جا پڑا۔'' بیگم کی جان بچنے کی خوشی میں ہم نے فوراً مٹھائی منگائی جو فی الفور پڑوسنوں میں، اس حادثے کی خبر کی طرح، تقسیم ہو گئی۔

خدا کا شکر ہے اس دن سے بیگم نے باورچی خانے میں ریشم اور نائلون کے کپڑے پہن کر جانا تو چھوڑ دیا ہے اور ریڈیو بھی حسب دستور ڈرائنگ روم میں رکھ دیا گیا ہے۔

ہم تو خیر شاعر ہیں ہی ہماری بیگم کو بھی یہ ناز ہے ان کے پرنانا مولانا حالی کے ہم رتبہ شاعر تھے۔ لہٰذا انہیں ورثہ میں دولت سخن نہ سہی مگر فکر سخن کی دولت خداداد ضرور مل گئی تھی اور وہ اپنے بھولپن کا مظاہرہ کرنے کے لئے کسی نہ کسی بھول کا مظاہرہ روز کرتی رہتی ہیں۔ ایک دن بیگم کی فرمائش پر ہم بہت سے کیلے لے کر پہنچے۔ بیگم نے یہ کیلے کچھ خود نوش فرمائے اور کچھ اپنے ''خانہ زادوں'' کو کھلائے۔ ایک دو کیلے از راہ کرم یا برائے تفنن ہماری طرف بھی بڑھا دئیے۔ اور باقی ریزرو فنڈ میں شام کے لئے رکھدئیے گئے۔ یہ ریزرو فنڈ در اصل ان مہمانوں کے لئے مخصوص تھا جو اگر آ بھی جائیں تب بھی کوئی ایسی شے ان تک نہیں پہنچ سکتی جو بیگم کو بذات خود اس قدر پسند ہو۔

ابھی ''کیلا نوشی'' یا ''کیلا خوری'' کا دور ختم بھی نہ ہونے پایا تھا کہ باہر کسی دوست نے آواز دی۔ ہم بیگم

کی وجہ سے ہوش تو ٹھکانے نہیں رہے ہوئے تھے۔ مدت کے بعد ایک ایسا آواز جو سن کر ہم دروازے سے قدم

ذلیل لڑکوں کا ہوا : نے ہاتھ بیگ پر ہے نہ پا ہے . . .

نکالتے ہی ایسے رپٹے کہ دوست کی آغوش کے بجائے چاروں خانے چت قدموں میں جا پڑے۔ ابھی ہم شرمندگی اور چوٹ سے سہد ہی طرح اٹھ کر بیٹھنے بھی نہ پائے تھے کہ ہمارے دوست نے اپنے پیروں سے کیلوں کے چھلکوں کو ایک طرف دھکیلتے ہوئے اور ہمیں ہاتھوں سے اٹھاتے ہوئے کہا" ارے یہ کس ذلیل نے اس بے پروائی سے تمہارے دروازے پر کیلے کے چھلکے پھینک دئے ہیں"۔ یہ جملہ سن کر ہماری روح ہی نکل گئی۔ فوراً دروازے کی طرف مڑ کر دیکھا۔ بچے کھلکھلا کر ہنس رہے تھے مگر بیگم کی آنکھوں سے چنگاریاں نکل رہی تھیں۔

ہم نے جھینپ مٹاتے ہوئے فوراً کہا۔ " ارے یار اس میں کیلے کے چھلکوں کا کیا قصور ہے۔ قصور تو میرا اپنا ہے" قبل اس کے کہ ہم اپنی بات پوری کریں بیگم نے مصرع ثانی کے طور پر جملہ داغ دیا۔ "آخر اللہ نے آنکھیں کس لئے دی ہیں ذرا دیکھ کے چلا کیجئے نا۔" قبل اس کے کہ ہم کوئی جواب دیں دروازہ ایک چٹاخ کے ساتھ بند ہوچکا تھا۔

بیگم کا موڈ اب اس قابل ہرگز نہیں تھا کہ ہم اپنے دوست کو اس زبان درازی کے باوصف گھر میں لے جاسکتے لہذا قریب کے ایک ہوٹل میں چائے پلا کر بالاہی بالا رخصت کر کے گھر پہنچے تو دیکھا کہ صاحبزادے آٹھ منزلہ بلڈنگ کی فلک بوس چھت کے کونے پر کھڑے پتنگ اڑانے میں مصروف ہیں۔ ہرچند کہ ہم "اقبال" کے شاہین بچے کے بہت قائل ہیں۔ اور اس مصرعے کو بار بار گنگناتے بھی رہے ہیں کہ " تو شاہیں ہے بسیرا کر پہاڑوں کی چٹانوں میں " مگر اپنے شاہین بچے کو اس بے پروائی سے اتنی بلندی پر دیکھ کر جان ہی نکل گئی۔ ایک ہی سانس میں چوٹ بھول کر سیڑھیوں پر دو دو زینے چڑھتے ہوئے ٹھیک اس وقت پہنچے جب صاحبزادے پتنگ کے پیچھے ایک بلڈنگ سے دوسری بلڈنگ میں چھلانگ لگانے کے لئے پر تول چکے تھے۔

ہونہار بروا : رہ یک گام ہے ہمت کے لئے بام بلند !

ہمیں قدرتی طور پر یہ حق حاصل نہیں تھا کہ صاحبزادے کو خود سزا دے سکیں۔ لہذا فوراً صاحبزادے کو لے کر ہانپتے کانپتے بیگم کی عدالت عالیہ میں پہنچے۔

اپنا کارنامہ سنایا اور شکایت کرتے ہوئے مناسب سزا کے اعلان کی درخواست کی۔

بیگم نے تنک کر جواب دیا "اس کی تو ہڈیاں پسلیاں میں ابھی توڑ کر رکھ دوں گی۔ وہ ہے کس کا بچہ! مگر آپ پہلے یہ بتائیے کہ جناب اپنے اس زبان دراز دوست کو لے کر کہاں چل دئیے تھے۔ اگر آپ دونوں کے ساتھ یہ 'ہوٹل بازی' کبھی ختم بھی کریں گے نہ نہیں"۔ ہم نے صفائی جرم کے طور پر فوراً اپنا پرس بیگم کے حوالے کرتے ہوئے کہا "تو لو، تمہارے دئیے ہوئے روپے میں سے صرف تین آنے دو پیالی چائے پر خرچ کئے ہیں"۔ بیگم نے گنتے ہوئے کہا۔ "جی ہاں تین آنے تو آپ کی نظر میں کن گنتیوں میں ہیں" سزا کے طور پر بیگم نے ۱۳ آنے ضبط کر لئے اور خالی پرس ہمیں لوٹا دیا۔ اب صاحبزادے کی باری تھی۔

بیگم کے ہاتھ زیادہ تیز تھے یا صاحبزادے کی چیخیں ہم اس کا اندازہ لئے بغیر باہر نکل آئے۔ کونے کے موڑ پر موزے میں چھپائے ہوئے پیسے نکال کر پرس میں ڈالے اور چہل قدمی کے لئے سڑک پر آ گئے۔ خود پر تفریح کا موڈ طاری کیا اور پکچر جانے کی ٹھان لی تھی۔ دل نے کہا کیوں گھبرا کر دل جواب دو گے۔ دل کی اس بات پر ذرا قدم بھٹکے تو دماغ سے آواز آئی۔ "میاں میرے ہوتے ہوئے کیوں گھبراتے ہو، میں کوئی بہانا گھڑ رکھوں گا تم پکچر تو دیکھ لو"۔ ابھی چہل قدمی کے ساتھ یہ سوال جواب کا سلسلہ جاری تھا کہ ہماری نظر سڑک پر لگی ہوئی "برجی باردوت" کی تصویر پر جا پڑی۔ برجی باردوت اور پیرس فرانس کی یہ دو چیزیں ہمیں ہمیشہ سے محبوب رہی ہیں۔ تصویر کو دیکھتے ہی ایسے کھوئے کہ دنیا و ما فیہا کی خبر ہی نہ رہی۔ تصویر کیا تھی ایک جادو تھا جس کے زور سے ہم خود بھی رنگوں میں تحلیل ہوتے جا رہے تھے۔ ابھی رنگ سازی کا کارخانہ ذہن میں جمنے بھی نہ پایا تھا کہ "ژوں" کی ایک آواز آئی۔ ہم سڑک سے اچھل کر فٹ پاتھ

جان جائے یا رہے : چھوڑیں گے ہم نہ اس بت کافر کو دیکھنا!

پر جا پڑے۔ مڑ کر دیکھا تو موٹر کی کھڑکی سے ایک صاحب سر نکالے ہوئے کھڑے ہوئے سنائی دئیے: "میاں کیا جان سے بیزار ہو۔ اگر اس تصویر کے ایسے ہی عاشق ہو تو یہ تصویر بورڈ سے اتار کر گھر لے جاؤ۔ خود زندہ نہیں رہنا چاہتے تو نہ سہی، ہمیں کیوں پھانسی کے تختے پر چڑھاتے ہو"۔ "ژوں" پھر ایک آواز آئی اور موٹر ایک اڑتے ہوئے پرندے کی طرح نظر سے اوجھل ہو گئی۔ موڈ خراب ہو چکا تھا۔ ہم جان کی سلامتی پر شکر کے کلمے ادا کرتے ہوئے چپ چاپ گھر واپس آ گئے۔

شعر کہے بہت دن ہو گئے تھے۔ ایک دن بیگم کی نظر بچا کر چپکے سے ڈرائنگ روم میں پناہ لی اور موضوع کی تلاش میں محو ہو گئے۔ کوئی موضوع نہ سوجھا تو سگریٹ سلگایا اور حسب دستور دھوئیں کے مرغولے بنانے لگے۔ ناگہاں مصرع یاد آیا "اس گھر کو آگ لگ گئی گھر کے چراغ سے" اس شعر کا پہلا مصرع کیا تھا۔ حافظہ پر بہت زور دیا مگر یاد نہ آنا تھا نہ آیا۔ سوچا کہ خود ہی کوئی مصرع

گھر پھونک تماشا: اس گھر کو آگ لگ گئی گھر کے چراغ سے!

موزوں کیا جائے اور اسی سوچ میں سگریٹ ہاتھ سے نہ جانے کب گر گیا اور سوچ کا یہ سلسلہ تا کہاں بیگم کی صلواتوں سے ٹوٹا۔ "ارے۔ ارے یہ کیا! سارا کمرہ دھوئیں سے بھر گیا۔ ارے غضب خدا کا۔ سارا صوفہ جل گیا اور آپ کو خبر تک نہیں" ۔ کچھ آگ کا اور کچھ بیگم کا ڈر، جلدی سے اچھل کر، آنگن میں "پانی پانی" کرتے دوڑے اور جب سلگتی ہوئی آگ بھڑکنے سے پہلے بجھ گئی تو دیکھا کہ صوفے کی سیٹ کسی عاشق کے سینے کی طرح داغ داغ ہو چکی تھی۔ وہ تو خدا کا شکر ہے کہ بیگم نے اس فکر سخن سے چونکا دیا ورنہ سارا گھر خاکستر ہو کر اس مصرع کی، جس پر ہم طبع آزمائی کرنے بیٹھے تھے، سچی تصویر بن جاتا۔

تو دیکھا آپ نے کیا ہم، کیا بیگم اور کیا صاحبزادے اور کیا آپ۔ معاف کیجئے گا، کیسے کیسے خطرناک حادثوں کو دعوت دیتے ہیں اور خود ہی ان کا شکار ہو کر —— کبھی قسمت —— کبھی حالات —— اور کبھی زمانے پر الزام دھر کر اپنے آپ کو بےقصور ثابت کرنے کے کوشاں رہتے ہیں۔

ہاں تو بتائیے —— آپ شیخ چلی کے قائل ہوئے کہ نہیں؟ کوشش کیجئے کہ آپ پر شیخ چلی حاوی نہ ہونے پائیں تاکہ یہ چھوٹے موٹے حادثے بڑے بڑے "سانحے" نہ بن جائیں!

* * * *

جلد ١٦

شمارہ ٤

مدیر: ظفر قریشی

اپریل ١٩٦٣ء

سالانہ چندہ : پانچ روپے ٥٠ پیسہ

شائع کردہ : ادارۂ مطبوعات پاکستان پوسٹ بکس نمبر ١٨٣ کراچی

فی کاپی : ٥٠ پیسہ

"یزداں گیر"

شبیر افضل جعفری

چمن میں طرزِ فغاں کو اثر دیا تو نے — سخن میں سروِ زباں کو ثمر دیا تو نے
شبِ سیاہ میں گم گشتہ آدمیت کے — جگر کے داغ کو مہتاب کر دیا تو نے

وغا میں جھوم کے آنا سکھا دیا تو نے — لہو میں تیر کے جانا سکھا دیا تو نے
عمل سے آنکھ چُراتی ہوئی توکّل کو — عدو سے جان لڑانا سکھا دیا تو نے

بغل میں لیکھ ستارے دبوچ لیتا ہے — بہت ہی دُور کی لحظے میں سوچ لیتا ہے
تری اَنا کا جو پرتو ملنگ پر جھلکے — تو عزرائیل کے شہپر بھی نوچ لیتا ہے

سمجھ رہا ہے پہاڑوں کو روئی کے گالے — مہیب سلسلوں کو عنکبوت کے جالے
تری غزل کے نشے میں فقیر نعرہ طراز — کمند کیوں نہ مہ و مہر و عرش پر ڈالے؟

فضا کو، برق و خلا کو شکار کرتا ہے — قلم کو، لوح و فضا کو شکار کرتا ہے
تری خودی کے اشاروں کی چاندنی میں دل — قلندری سے خدا کو شکار کرتا ہے

★

بزیرِ کنگرۂ کبریاش مردانند — فرشتہ صید و ملایک شکار و یزداں گیر (رومیؒ)
در دشتِ جنونِ من جبریل زبوں صیدے — یزداں بکمند آور اے ہمتِ مردانہ (اقبالؒ)

ماہِ نو، کراچی، اپریل ۱۹۶۳ء

شعلہ نفس

عبدالغنی شمس

پھر موجِ ہوا نے دستک دی، یادوں کے دریچے کھلنے لگے
شبنم کی تراوش ہونے لگی، پھولوں کے چہرے دُھلنے لگے
مشرق کی شاخِ کہنہ میں، اک پھول کھلا تھا، یاد آیا
گلشن کو بہارِ تازہ کا، پیغام ملا تھا یاد آیا
دل سوزِ یقیں سے گرمائے، تشکیک کے بندھن ٹوٹ گئے
نومیدی کے زندانوں سے، آخر سب قیدی چھوٹ گئے
کچھ ایسی بانگِ درا گونجی، پھر تازہ لگن تڑپانے لگی
بغداد و قرطبہ یاد آئے، تاریخ ورق الٹانے لگی
پیدا ہوئی اک صبح روشن، تاریکیٔ شامِ مشرق سے
بیداری کی رو دوڑ گئی مشرق میں، پیامِ مشرق سے
اسرارِ خودی نے فاش کئے، کونین کے سارے رازِ نہاں
انجامِ خرد آئینہ ہوا بجنے لگے دل کے سازِ نہاں
ذہنوں کو رموزِ بیخودی سے، سوچوں کے نئے انداز ملے
ہر ذرہ و پرویں گرد ہوئے، ذرّوں کو پرِ پرواز ملے
روحِ داؤدی جھوم اٹھی سن کر نغماتِ زبورِ عجم
تسخیرِ جہانِ نو کے لئے پیدا ہوا ایک نیا آدم
آذر کے صنم خانوں میں مچی، اک ضربِ کلیمی سے ہلچل
انجانے ڈر سے کانپ گئے تہذیب کے سارے رنگ محل
انگڑائیاں لیتا برسوں کا خوابیدہ مسلماں جاگ اٹھا
قرآں کو لگائے سینے سے پھر حاملِ قرآں جاگ اٹھا
اک شعلہ نفس کے نغموں نے بھڑکا دی آگ سی سینوں میں
پاکیزہ سجدے تڑپنے لگے الحاد آلودہ جبینوں میں
وہ جس نے قلبِ مومن کو ایماں کی صفائی بخشی ہے
چمکا کے خودی کا آئینہ گویا کہ خدائی بخشی ہے
اے پاک زمیں! اک رنگ حقیقت ہے تیرے افسانے میں
دھارا ہے اسی کے تخیّل نے تخلیق کا روپ زمانے میں
اے ارضِ وطن! ہر آفت سے ہم تجھ کو بچائے رکھیں گے
اک مردِ قلندر کا تحفہ سینے سے لگائے رکھیں گے

اقبالؔ کی آفاقیت کا مسئلہ

عزیز احمد

اقبال کے خیالات سے کوئی اتفاق کرے یا نہ کرے مگر اقبالؔ کو بڑا شاعر سبھی تسلیم کرتے ہیں۔ اعلیٰ شاعری کی کونسی خصوصیت ہے جو اقبال کے ہاں نہیں؟ فکر کی بلندی و پختگی، تخیل کی وسعت اور گہرائی، جذبات کا خلوص اور پاکیزگی، حسنِ ادا اور موسیقی۔ مگر کونسی چیز سب سے نمایاں ہے؟ میرا تاثر تو یہ ہے کہ فکر، اقبال کی شاعری کی نمایاں ترین خصوصیت ہے۔ اقبال کا کلام پڑھتے ہوئے ایسا محسوس ہوتا ہے کہ اس میں جذبات اور تخیل دونوں فکر کے تابع ہیں اور شاید یہی وجہ ہے کہ سستی جذباتیت یا سطحیت اقبال کی شاعری میں کبھی نظر نہیں آتی اور نہ بے مہار و بے اساس تخیل و موشگافی ہی نظر آتی ہے۔ یہی پختگی و بلندیٔ فکر ہے جو اقبال کو دنیا کے تمام بڑے شعراء سے ممتاز کرتی ہے اور اقبال بناتی ہے۔ بانگِ درا کو اقبال کی نمائندہ تصنیف کیوں نہیں قرار دیا جاتا؟ اس کی وجہ یہ ہے کہ گو شاعر کی حیثیت سے اقبال کی عظمت بانگِ درا میں بھی کئی مقامات پر ظاہر ہوتی ہے لیکن اس میں فکر کا وہ عنصر بہت کم ہے جو اقبال کا اصل طرۂ امتیاز ہے۔ بلاشبہ اقبال کا نمائندہ ترین مجموعہ اردو میں بالِ جبریل ہے اور فارسی میں جاوید نامہ ہے۔

فکر کی فراوانی نے اقبال کے بارے میں یہ عام خیال پیدا کر دیا ہے کہ وہ ایک باقاعدہ فلسفی ہیں جس کا ایک مستقل نظامِ فلسفہ ہے۔ بات صرف یہ ہے کہ ہر بڑے شاعر کی طرح اقبال کا بھی تصورِ حیات و کائنات تھا اور چونکہ اس تصور کو اقبال نے جزئیات کی تصریح کے ساتھ پیش کیا اس لئے انہیں اصطلاحی معنوں میں فلسفی قرار دیا جا سکتا ہے۔ ویسے کچھ اس میں اقبال کی مابعدالطبیعیات سے دلچسپی کو بھی دخل ہے۔ یہ دلچسپی ان کی شاعری میں بھی نہ چھپ سکی چنانچہ تصورِ مکان و زمان اور تصورِ خودی خالص مابعدالطبیعی نوعیت رکھتے ہیں۔ اور یہیں سے ہماری مشکلات شروع ہوتی ہیں۔

اس حیثیت سے اقبال کی آفاقیت تسلیم کہ ان کا پیغام عالمگیر اور ساری انسانیت کے لئے ہے اور ان کا تصورِ حیات وسیع ہے لیکن اس حقیقت کو مانے بغیر بھی چارہ نہیں کہ فکر و علمیت کا غلبہ اتنا زیادہ ہے کہ اسے اچھی طرح سمجھنے کے لئے بڑی کد و کاوش اور وسعتِ مطالعہ کی بھی ضرورت ہے۔ اور یہ ہر ایک کے بس کی بات نہیں۔ اس لئے اقبال کے قارئین کا دائرہ محدود ہو جاتا ہے۔ ویسے تو ہر شاعر اور ہر ادیب کا مطالعہ ایک خاص ذخیرہ معلومات کا متقاضی ہوتا ہے مثلاً زبان اور اس کے مزاج سے واقفیت اور روایات و علامات سے آگہی۔ بہرحال لازمی ہے کہ اس کے بغیر شعر و ادب سمجھ میں نہیں آ سکتا۔ لیکن بخلاف اور شعراء کے اقبال کے افکار و خیالات کو سمجھنے کے لئے اس کے علاوہ اور بہت کچھ جاننے کی بھی ضرورت ہے جیسے فلسفہ و مابعدالطبیعیات، تاریخ و سیاسیات، عمرانیات و معاشیات، حدیث و علمِ کلام وغیرہ۔ اس علم کے بغیر اقبال کا مطالعہ کرنے سے افکارِ اقبال کا محض سرسری اندازہ ہی ہو سکتا ہے جو غلط فہمی پر منتج ہو جاتا ہے۔ چنانچہ اس قسم کی غلط فہمیاں اقبال کے بارے میں بھی پائی جاتی ہیں۔ کوئی انہیں رجعت پسند کہتا ہے، کوئی ترقی پسند، کوئی اشتراکی، کوئی فسطائی، کوئی صوفی، کوئی تصوف دشمن، غرض جتنے منہ اتنی باتیں۔ یہ اختلاف کچھ اس وجہ سے نہیں ہے کہ اقبال کے اظہار میں کوئی خامی یا ابہام ہے نہیں، بلکہ اس وجہ سے ہے کہ اقبال کے

لہ "ادارہ" کا صاحبِ تحریر کے ہر خیال سے متفق ہونا ضروری نہیں۔

خیالات و افکار ایک کل کی سی حیثیت رکھتے ہیں اور کُل حیثیت سے ہی مطالعہ چاہتے ہیں۔ اور اس کے لئے خاصی علمیت کی ضرورت ہے۔ اس طرح وہی بات جو اقبال کی عظمت کی ضامن ہے یعنی بلندیٔ وسعت فکر انہیں ایک عامی کی دسترس سے دور بھی کر دیتی ہے۔ اور اگر یہ صحیح ہے کہ آفاقی شاعری وہ ہے جس سے ہر زمانے میں سمجھ بوجھ والا طبقہ لطف اندوز و متاثر ہو سکے تو اقبال کی شاعری میں آفاقیت کچھ ہے اور کچھ نہیں ہے۔ عمومی نقطۂ نظر سے اقبال کا درسِ خودی' جس سے انسان کی قوت ارادی و قوتِ عمل کے لامحدود امکانات کا تصور وابستہ ہے کسی قدر مبالغہ آمیز سہی لیکن ایک آفاقی چیز ضرور ہے اور ہر کسی کو اپیل کر سکتی ہے۔ مگر خودی کا وہ تصور جس پر اقبال کی فکر کی تمام عمارت کھڑی ہے ایک پیچیدہ اور مغلق چیز ہے جو صرف ماہرینِ فلسفہ مابعد الطبیعیات کی ہی سمجھ میں آ سکتی ہے۔ دوسروں کے بس کی نہیں۔ یہی بات تصورِ عشق پر صادق آتی ہے۔ اس کا عام مفہوم تو سمجھ میں آتا ہے لیکن جب اس کے ڈانڈے برگساں کے تخلیقی ارتقاء وجدان اور نٹشے کے میلان اقتدار سے جا ملتے ہیں تو ہم پھر منہ دیکھتے رہ جاتے ہیں کہ یہ سب کیا ہے۔ تصورِ زماں تو ان سب سے پیچیدہ چیز ہے، اس کا ذکر ہی کیا۔ اسی طرح ان کے کلام میں احادیث نبویؐ اسلامی فلسفہ و حکمت، متکلمین و حکما کے شہپارے، صوفیہ و ائمہ کے خیالات، اہلِ عرفان اور اربابِ کشف کے مقامات و احوال کی طرف جا بجا اشارے اور گذشتہ ساڑھے تیرہ سو سال میں اسلام کے آغوش میں پلنے والی مذہبی، علمی، سیاسی اور ذہنی تحریکوں کی تاریخ، اقوامِ عالم کے قدیم و جدید ہیجانات، ملل و مذاہب کا جدید ارتقاء، خلافت، سلطنت اور ملوکیت کا عروج و زوال، مغرب اور حکمائے مغرب کے نظریئے اور تصورات، غرض انسانی تہذیب و تمدن کے تمام اہم پہلوؤں پر حکیمانہ تبصرے ملتے ہیں۔ جن سے واقفیت کلامِ اقبال کے مقصود تک پہنچنے کے لئے ضروری ہے۔ یوں تو اقبال کا نام سن کر یا ان کے کلام کو پڑھ کر بہت سے لوگ سر دھنتے ہیں اور واہ واہ کرتے ہیں مگر ان میں زیادہ تر ایسے ہیں جو فیشن اور نمائش کی خاطر ایسا کرتے ہیں۔ حقیقت یہ ہے کہ اقبال کا سارا کلام پڑھنے کے بعد ایک سیدھی سادی بات جو ایک عامی کی سمجھ میں بھی آتی ہے وہ یہ ہے کہ انسان اپنی صلاحیتوں اور قوتوں کو پہچانے اور ان سے کام لے، خدا اور اس کے رسولؐ سے عشق رکھے، اسلامی تعلیمات کی حرکی روح کو سمجھے اور اس پر عمل کرے تو وہ حقیقت میں خدا کا جانشین بن سکتا ہے اور اپنی تقدیر کا آپ مالک بن سکتا ہے۔ اس کے علاوہ جو کچھ ہے وہ اقبال کے خصوصی اسکالروں کے لئے مختص ہے۔ اسی لئے فہم عامہ کا سوال نہیں اٹھانا چاہیئے۔ اقبال کی آفاقیت اسی مرکزی بات کو شاعرانہ طور پر پیش کرنے ہی میں پنہاں ہے نہ کہ فلسفیانہ نکتہ آفرینیوں کے حجابوں میں۔

اقبال کے کلام کا وہی حصہ میری رائے میں آفاقی ہے جس میں فلسفیانہ نکتہ طرازیاں نہیں ہیں۔ کیونکہ اسی کلام میں شعریت ہے۔ وہی عام فہم بھی ہے اور اسی میں عالمگیر اپیل بھی ہے۔

علمیت اور فکر سے انگریزی کے مشہور شاعر ملٹن کا کلام بھی بوجھل ہے لیکن اقبال کو ملٹن پر اس لحاظ سے ضرور فوقیت حاصل ہے کہ جہاں ملٹن کی شاعری کی بنیاد صرف تخیل پہ ہے وہاں اقبال کی شاعری میں سوز و خلوص نے ایک تڑپ پیدا کر دی ہے۔ واقعہ کچھ یوں معلوم ہوتا ہے کہ انسانیت کی پستی اور قوم کے درد نے ان کی فکر کو اکسایا لیکن جب فکر کو حرکت آئی تو ان کے سارے ذہن پر اسی کا راج ہو گیا۔ ہر بات کو سوچنا سمجھنا تولنا پرکھنا شروع ہوا اور حیات و کائنات اور اس کے مختلف مظاہر کے بارے میں خیالات معین ہونے لگے۔ ایسا معلوم ہوتا ہے کہ زندگی اور اس کے مسائل تک اقبال فکر کے ذریعے سے پہنچے، احساس و تجربہ کے ذریعے سے نہیں۔ مگر جن نتائج پر وہ پہنچے ان پر اس شدت سے انہیں یقین تھا کہ یہ یقین بجائے خود احساس کا بدل بن گیا۔ اور اسی یقین کی وجہ سے ان کی باتوں میں ایک وزن پیدا ہو گیا۔ مگر میرا خیال ہے کہ وہ اثر پیدا نہیں ہو سکا جو ایک محسوس شدہ تجربے یا تاثر کے موثر اظہار سے پیدا ہوتا ہے۔ حال اور قال میں فرق تو ہوتا ہی ہے۔ ہاں جب کبھی اقبال آنحضرت صلعم کا ذکر کرتے ہیں یا ملت اسلامیہ کی زبوں حالی و پستی کو محسوس کرتے ہیں اور اس کی ترقی کی تمنا کرتے ہیں تبھی ان کا انداز قال کا نہیں حال کا ہوتا ہے اور کلام کی تاثیر کئی گنا زیادہ ہو جاتی ہے۔ قال اور حال کے اس نکتہ کی وضاحت رومی اور اقبال کے تقابلی مطالعہ سے بھی بہ آسانی ہو سکتی ہے۔ دونوں کا تصور عشق بڑی حد تک یکساں ہے لیکن صاف محسوس ہوتا ہے کہ

رومی اپنے تجربہ و احساس کے راستے سے اس تصور تک پہنچے ہیں اور اقبال فکر کے راستے سے۔ اسی لئے اقبال کے ہاں وہ مستی و سرشاری، وہ وارفتگی، وہ سپردگی، وہ سیلابی کیفیت نہیں پائی جاتی جو رومی کے ہاں ملتی ہے۔ تجربہ و تاثر کی شاعری میں جو عالمگیر اپیل ہوتی ہے وہ خیالات و افکار کی شاعری میں نہیں ہو سکتی یہی وجہ ہے کہ جب اقبال پیچ و تاب رازی کے زیر اثر شعر کہتے ہیں تو خشک و بے مزہ فلسفہ طرازی ہوتی ہے اور جب سوز و ساز رومی کے زیر اثر، تو تیغ آبدار۔ اور یہی حصہ کلام آفاقی کہلانے کا مستحق ہے کیونکہ یہ پُراثر تاثیر ہے اور اس کی اپیل عام ہے۔ منظوم خیالات و افکار بطور ضرب المثل اور قابل حوالہ نکات QUOTABLE MAXIMS کے تو خوب ہوتے ہیں لیکن ان کا خطاب زیادہ تر پڑھنے والوں کے دماغ سے ہوتا ہے نہ کہ دل سے۔ اس بات کی وضاحت کے لئے "ساقی نامہ" پر نظر ڈالئے۔ یہ اقبال کی بہترین نظموں میں سے ایک ہے لیکن اس کا سب سے زیادہ اثر انگیز اور کامیاب حصہ وہ نہیں ہے جہاں زندگی، موت اور خودی کے مسائل چھیڑے گئے ہیں بلکہ یہ ہے:

شراب کہن پھر پلا ساقیا وہی جام گردش میں لا ساقیا
مجھے عشق کے پر لگا کر اڑا مری خاک جگنو بنا کر اڑا
خرد کو غلامی سے آزاد کر جوانوں کو پیروں کا استاد کر
ہری شاخ ملت ترے نم سے ہے نفس اس بدن میں ترے دم سے ہے
تڑپنے پھڑکنے کی توفیق دے دل مرتضیٰ سوز صدیق دے
جگر سے وہی تیر پھر پار کر تمنا کو سینوں میں بیدار کر
ترے آسمانوں کے تاروں کی خیر زمینوں کے شب زندہ داروں کی خیر
جوانوں کو سوز جگر بخش دے مرا عشق میری نظر بخش دے
مری ناؤ گرداب سے پار کر یہ ثابت ہے تو اس کو سیار کر
بتا مجھ کو اسرار مرگ و حیات کہ تیری نگاہوں میں ہے کائنات
مرے دیدۂ تر کی بے خوابیاں مرے دل کی پوشیدہ بے تابیاں
مرے نالۂ نیم شب کا نیاز مری خلوت و انجمن کا گداز
امنگیں مری آرزوئیں مری امیدیں مری جستجوئیں مری
مری فطرت آئینۂ روزگار غزالان افکار کا مرغزار
مرا دل مری رزمگاہِ حیات گمانوں کے لشکر یقیں کا ثبات
یہی کچھ ہے ساقی متاعِ فقیر اسی سے فقیری میں ہوں میں امیر
مرے قافلے میں لٹا دے اسے لٹا دے ٹھکانے لگا دے اسے

اس حصۂ نظم میں اقبال کی قلبی کیفیت اور تڑپ نے تاثیر پیدا کی ہے اور ممکن نہیں کہ کوئی اسے پڑھے اور متاثر نہ ہو۔ اب ذرا مقابلہ کے لئے ان اشعار کو بھی دیکھئے:

یہ موج نفس کیا ہے؟ تلوار ہے
خودی کیا ہے؟ تلوار کی دھار ہے
خودی کیا ہے راز درون حیات
خودی کیا ہے بیداری کائنات
خودی جلوہ بدمست و خلوت پسند
سمندر ہے اک بوند پانی میں بند
اندھیرے اجالے میں ہے تابناک
من و تو سے پیدا من و تو سے پاک
ازل اس کے پیچھے ابد سامنے
نہ حد اس کے پیچھے نہ حد سامنے

وغیرہ، وغیرہ۔ یہ پڑھتے ہوئے ہم ہر شعر پر رک کر سوچنے اور سمجھنے کی کوشش میں لگ جاتے ہیں کچھ سمجھ میں آتا ہے، کچھ نہیں آتا۔ غرض دماغ کو حرکت ہوتی ہے دل کو نہیں کیونکہ ایسے مقامات پر مفکر اقبال شاعر اقبال پر حاوی ہے۔

علمیت اور فکر کے غلبے نے اقبال کے کلام پر جو اثرات پیدا کئے ہیں ان کا سرسری سا جائزہ ہم لے چکے ہیں۔ آئیے اب اک اور نکتہ پر غور کریں۔ اقبال کی رفعت تخئیل اور بلندی فکر نے انہیں ایسے اونچے مقام پر پہنچا دیا کہ ایسا معلوم ہوتا ہے وہ ہماری اس دیکھی بھالی دنیا اور اس کی مادی و جذباتی زندگی سے قطع نظر کر کے اونچے اونچے بادلوں میں بیٹھے حکیمانہ مشورے عمومی انداز میں دے رہے ہیں اور اتر کر ہمارے آپ کے مابین نہیں آتے۔ ہمارے روزمرہ کے دکھ درد اور لطف و مسرت، ہمارے روزمرہ کے تجربات و مشاہدات میں شریک نہیں ہوتے۔ نہ ہمارے ساتھ ہنستے ہیں نہ ہمارے ساتھ روتے ہیں۔ ایسا محسوس ہوتا ہے کہ اقبال کی دنیا تصورات اور فکر و تخئیل کی لطیف دنیا ہے جہاں مادی زندگی خال خال ہے۔ وہاں فرشتے حور، ابلیس اور مختلف لوگوں کی روحیں تو بہت ہیں مگر گوشت پوست کے

بقیہ صفحہ ۹۸

قران السعدین

(غالب اور اقبال: ایک تقابلی مطالعہ)

سید قدرت نقوی

ہر نابغۂ دہر کی نگاہ ماضی پر بہت گہری ہوتی ہے۔ بادی النظر میں جو امور غیر اہم اور جو نقوش مبہم و غیر واضح ہوتے ہیں اور جن کو عوام و خواص قابل اعتنا نہیں گردانتے، عظیم ہستی انہی سے حال کی زبونی کا اندازہ اور مستقبل کی درخشانی کا سامان بہم پہنچاتی ہے گویا ماضی سے فیض پاتی اور حال و مستقبل کو فیض یاب کرتی ہے۔ اس اکتساب کو تقلید سے موسوم نہیں کیا جا سکتا۔ دیئے سے دیا جلتا ہے تو روشنی میں اضافہ ہی ہوتا ہے۔ اسی ضافہ میں قدر مشترک کا راز پنہاں ہے۔ غالب اور اقبال دونوں عظیم شاعر ہیں۔ غالب پیشرو، اقبال دور مابعد کے نمائندہ۔ اسی لئے اقبال نے غالب سے آگے قدم رکھا۔ غالب اپنے تجربے، ذوق، شوق، کاوش سے کاروان کو جس منزل پر چھوڑ گئے تھے اقبال نے اس منزل سے قافلہ کو آگے بڑھایا۔ غالب نے جو چند مبہم نقوش، ناتمام خاکے اور دھندلے تصور چھوڑے تھے وہ ایک دور آئندہ (دور ارتقا) کی طرف راہنمائی کرتے تھے۔ بات یہ تھی کہ فاش تر کہنے کا زمانہ ابھی نہیں آیا تھا۔ یہ فاش تر گوئی ازل سے اقبال کے لئے مقدر ہو چکی تھی۔ غالب نے جس ساز کو چھیڑا تھا، لوگوں کے کان اس سے ناآشنا تھے۔ مگر غالب کے اس ساز کی صدا نے اقبال کے تیز آہنگ کے لئے ایک فضا ہموار کر دی۔ اس ساز کی صدا سے عوام کی ناآشنائی کا گلہ غالب نے متعدد بار کیا اور آئندہ مقبولیت کی پیش گوئی، ان کے ذوق سلیم، شعور کامل، وجدان خاص اور خود اعتمادی نے گواہی دی:

کوکبم را در عدم اوج قبولی بودہ است
شہرت شعرم بہ گیتی بعد من خواہد شدن

اس پیش گوئی کے حق ثابت ہونے میں کسے کلام ہے، بالکل اسی طرح بتمام و کمال ان کی یہ آرزو بھی پوری ہو کر رہی:

"یارب ایں ازمن چوں من بگرد سراپائے گفتار گردید بیافزئی

تا دارسد کہ دیوار کاخ والائے سخن در چہ پایہ بلند ست و سر رشتہ کمند
خیالم در آں فراز ستاں بکدامیں ذروہ بند؛
دو قیست ہمدمی بفغاں بگزرم زرشک   خار رہت بہ پائے عزیزاں خلیدہ باد!"

اس دعا کے مستجاب ہونے کا اظہار شیخ عبدالقادر مرحوم نے اس طرح کیا:

"غالب اور اقبال میں بہت سی باتیں مشترک ہیں۔ اگر میں تناسخ کا قائل ہوتا تو ضرور کہتا کہ مرزا اسد اللہ خاں غالب کو اردو اور فارسی شاعری سے جو عشق تھا اس نے ان کی روح کو عدم میں جا کر بھی چین نہ لینے دیا اور مجبور کیا کہ وہ پھر کسی جسد خاکی میں جلوہ افروز ہو کر شاعری کے چمن کی آبیاری کرے اور اس نے پنجاب کے ایک گوشہ میں جسے سیالکوٹ کہتے ہیں دوبارہ جنم لیا اور محمد اقبال نام پایا۔"

لیکن میرے نزدیک روح غالب کو تناسخ کے چکر میں مبتلا کرنے کی ضرورت نہیں بلکہ ان کی آرزو "چوں من بگرد سراپائے گفتار گردیدہ" باب اجابت تک پہنچی مستجاب ہوئی اور محمد اقبال کا قالب اختیار کیا۔ دعجیب اتفاق ہے کہ جاوید نامہ میں بھی غالب نے اقبال کو "چوں من" ہی سے خطاب کیا ہے)، جس نے "دیوار کاخ والائے سخن" کی بلندی اور "کمند خیال غالب" کی رسائی کے متعلق کہا ہے

فکر انساں پر تری ہستی سے یہ روشن ہوا   ہے پر مرغ تخیل کی رسائی تا کجا

اقبال و غالب میں قدر مشترک، ایک حقیقت ثابتہ ہونے کے باوجود، تحقیق و جستجو کی محتاج، اور اتنی طولانی ہے کہ "سفینہ چاہیئے اس بحر بیکراں کے لئے" مگر کار جہاں دراز سے دراز تر ہے جس کی بدولت، "فرصت کاروبار شوق کہاں؟" بیان مجمل ہی پر اکتفا کرتے بن پڑی، لیکن "میرے اجمال سے کرتی ہے تراوش تفصیل" چنانچہ جس سبک کا سلسلہ فغانی سے شروع ہوا وہ غالب و اقبال پر آکر ختم ہوا۔ غالب کے خیال میں

فارسی شاعری کے یہ ادوار تھے:

"رودکی و فردوسی سے لیکر خاقانی و سنائی و انوری وغیرہم تک ایک گروہ۔ ان حضرات کا کلام تھوڑے تھوڑے تفاوت سے ایک وضع پر رہے۔ پھر حضرت سعدی طرز خاص کے موجد ہوئے۔ فغانی اور ایک شیوۂ خاص کا مبدع ہوا، خیال ہائے نازک و معانی بلند لایا۔ اس شیوہ کی تکمیل کی ظہوری و نظیری و عرفی و نوعی نے، سبحان اللہ قالب سخن میں جان پڑ گئی۔ اس روش کو بعد اسکے صاحبانِ طبع نے سلاست کا چربا دیا۔ صائب و کلیم و سلیم و قدسی و حکیم شفائی اس زمرے میں ہیں۔"

یہ آخری سبک فغانی کا ہوا جس کے اوصاف، خیال ہائے نازک، معانی بلند، سلاست بیان اور جدتِ ادا ہیں۔ جس میں بعد کو خیال بندی، مضمون آفرینی اور دقت پسندی کا اضافہ ہوا۔ مولانا شبلی نے اس اضافہ کو عرفی سے متعلق قرار دیا ہے۔ غالب و اقبال کے کلام میں یہ اوصاف بدرجہ اتم موجود ہیں۔ یہ سبک جو فغانی سے شروع ہوا وہ برصغیر پاک و ہند میں اوج کمال پر پہنچا۔ کیونکہ عہد اکبری میں جو شعراء ایران سے آئے اپنے ساتھ یہی طرز لائے، پاک و ہند کی آب و ہوا نے اس میں رنگ و بوئے دگر بھرا اور "ورائے شاعری چیزے دگر" بنا دیا۔ اسی بنا پر "سبک ہندی" ایک الگ نام قرار پایا۔ یہ سبک غالب تک پہنچتے پہنچتے بڑا گمبھیر ہو جاتا ہے اور سلجھ بھی جاتا ہے۔ غالب نے اس کے بہترین اور نمائندہ شعراء کا ذکر کر دیا ہے۔ ناصر علی اور بیدل اہم شاعر ہوتے ہوئے بھی اس گروہ سے الگ ہو جاتے ہیں کیونکہ اس طرز میں بے اعتدالی سخت مضر نتائج پیدا کرتی ہے۔ خاص طور پر بیدل بے اعتدالی کے شکار نظر آتے ہیں۔ یہ بے اعتدالی، پُرپیچ تشبیہات و استعارات اور صرف خیال بندی ہے۔ بیدل کے ہاں دلی کیفیات و واردات کا فقدان ہے اور خیال بندی کی بہتات۔ مگر غالب نے مشق سخن طرز بیدل ہی سے شروع کی اور کہہ اٹھے ؎

طرزِ بیدل میں ریختہ لکھنا اسد اللہ خاں قیامت ہے

یہ غالب کا پہلا اجتہاد تھا کہ اردو میں ایسی طرز کی بنیاد رکھی جس کو فارسی میں نباہنا کارے دارد، چہ جائیکہ اردو میں طرز بیدل میں مشق سخن کرنے سے غالب کو نقصان بھی پہنچا اور فائدہ بھی۔ نقصان یہ کہ ایک مدت تک وہ "مضمون خیالی" نظم کرتے رہے اور بقول خود "بیشتر از فراخ روی بے جادہ ناشناساں برداشتے دکتری رفتار آناں را لغزشِ مستانہ انگاشتے" اور فائدہ یہ کہ دوراز کار تشبیہات و استعارات کی جستجو میں قوت متخیلہ تیز سے تیز تر ہوتی گئی جس نے سلامت روی کے دور میں بڑا فائدہ پہنچایا۔ اقبال بیدل وغیرہ کی بے اعتدالی کے شکار نہیں ہوئے کیونکہ ان کے سامنے غالب کا ہموار کیا ہوا راستہ موجود تھا۔

غالب اور اقبال دونوں اردو اور فارسی کے شاعر ہیں۔ انداز سخن و علوئے تخیل میں یکساں، فلسفہ کے مذاق اور ژرف نگاہی میں ہم پلہ۔ اقبال نے اسلوب بیان غالب ہی کا اختیار کیا۔ وہی نادر تشبیہات و استعارات، وہی جدت ادا، وہی نزاکت خیال، وہی معانی کی بلندی، وہی دقت پسندی، غالب کا طرۂ امتیاز، قدر، توانائی لہجہ، اقبال کے ہاں دو آتشہ، سہ آتشہ، بلکہ چہار آتشہ بن گئی ہے دیکھئے ؎

ممکن نہیں کہ سب کو ملے ایک سا جواب
آؤ نہ ہم بھی سیر کریں کوہِ طور کی

یہی بات اقبال کے ہاں چہار آتشہ بن کر کچھ اور صورت اختیار کر لیتی ہے۔ غالب سوال دیدار یا امید جلوہ کے قائل ہیں مگر اقبال کہتے ہیں ؎

تا کجا طور پہ دریوزہ گری مثل کلیم
اپنی مٹی سے عیاں شعلۂ سینائی کر

نادر تشبیہات و تراکیب الفاظ و جدت ادا، استعارات بلیغ کی دونوں کے ہاں بہتات ہے۔ چند مثالیں ملاحظہ فرمائیے: غالب ؎

دام ہر موج میں ہے حلقۂ صد کام نہنگ
دیکھیں کیا گزرے ہے قطرے پہ گہر ہونے تک

پرتوِ خور سے ہے شبنم کو فنا کی تعلیم
ہم بھی ہیں ایک عنایت کی نظر ہونے تک

حسن در جلوہ گری بہانہ کش منت غیر
ہر گل از خویشتن ست آتش داماں زدہ

شادی و غم ہمہ سرگشتہ تر از یکد گراند
روز روشن بوداع شب تار آمد و رفت

اقبال کے کلام سے اردو میں "ماہ نو" اور "جگنو" سے چند شعر کافی ہیں۔ اور دو تین شعر فارسی کلام سے جستہ جستہ پیش کئے جاتے ہیں:—

ٹوٹ کر خورشید کی کشتی ہوئی غرقاب نیل
ایک ٹکڑا تیرتا پھرتا ہے روئے آب نیل

چرخ نے بالی چرالی ہے عروسِ شام کی
نیل کے پانی میں یا مچھلی ہے سیمِ خام کی

جگنو کی روشنی ہے کاشانۂ چمن میں
یا شمع جل رہی ہے پھولوں کی انجمن میں
چھوٹے سے چاند میں ہے ظلمت بھی روشنی بھی
نکلا کبھی گہن سے آیا کبھی گہن میں

ہمہ آفاق کہ گیرم بنگاہے اورا
حلقہ ہست کہ از گردش پرکار من است

یک نوائے سینہ تاب آوردہ ام
عشق را عہد شباب آوردہ ام

کرم شب تاب است شاعر در شبستان وجود
در پر و بالش فروغے گاہ ہست و گاہ نیست

... و اقبال کی غزلوں کا ہر حیثیت سے موازنہ کیا جا سکتا ہے بالخصوص
... یں قدرِ مشترک کی بہترین مثال ہیں:

غالب:—

سوخت جگر تا کجا رنج چکیدن دہیم
رنگ شو اے خون گرم تا بہ پریدن دہیم
اختری خوشتر از نیم بجہاں می بایست
خرد پیر مرا بخت جواں می بایست

اقبال:—

مثل شرر ذرہ را تن بہ تپیدن دہیم
تن بہ تپیدن دہیم بال پریدن دہیم
بار ایں عالم دیرینہ جواں می بایست
برگ و کاہش صفت کوہ گراں می بایست

... تمامتر شہرت ان کے پیام بیداری اور فلسفۂ خودی کی وجہ
... غالب کے ہاں یہ دونوں باتیں منظم و مربوط یا باقاعدہ صورت
... نہیں لیکن ان دونوں کے نشانات ضرور ملتے ہیں جن سے
... غالب کو ایک آئندہ دورِ ارتقا کا قوی احساس ضرور تھا۔ یا یہ
... زمانہ کو ایک ایسی آواز سے آشنا کرنا چاہتے تھے۔ جس کی لے

آئندہ دور میں تیز ہونے والی تھی ؎

بندگی میں بھی وہ آزادہ و خود بیں ہیں کہ ہم
اُلٹے پھر آئے درِ کعبہ اگر وا نہ ہوا

معنیٔ بیگانہ خویشم تکلف برطرف
چوں سر نو مصرعِ تاریخ ایجاد خودم

ز آفرینش عالم غرض جز آدم نیست
بگرد نقطۂ ما دورِ ہفت پرکار است

ز ما گرم ست ایں ہنگامہ بنگر شورِ ہستی را
قیامت می دمد از پردۂ خاکے کہ انساں شد

پیام بیداری کے متعلق بہت سے اشعار ہیں متعدد غزلیں ہیں چند
غزلوں کے مطلعے لکھے جاتے ہیں:

خیز و بے راہ روے را سرِ راہے دریاب
شورش افزا نگہ حوصلہ گاہے دریاب

سحر دمیدہ و گل در دمیدن است مخسپ
جہاں جہاں گل نظارہ چیدنی است مخسپ

یہاں اقبال کی نظم "از خواب گراں خیز" سے اس غزل
کا مقابلہ کیجیے۔ خیز و مخسپ کا انداز بھی دیکھیے ؎

نشاط معنویاں از شراب خانۂ تست
فسون بابلیاں فصلے از فسانۂ تست

مژدۂ صبح دریں تیرہ شبانم دادند
شمع کشتند و ز خورشید نشانم دادند

بیا بباغ و نقاب از رخ چمن برکش
دل عدو نہ اگر خوں شود در آزرکش

اے ذوق نوا سنجی بازم بخروش آور
غوغائے شبیخونے بر بنگہ ہوش آور

چوں عکس پل بسیل بذوق بلا برقص
جا را نگاہ دار و ہم از خود جدا برقص

رفتم کہ کہنگی ز تماشا برافگنم
در بزم رنگ و بو نمطے دیگر افگنم

بخت در خواب است میخواہم کہ بیدارش کنم
پائے غوغائے محشر کو کہ در کارش کنم

آہ بعشق فاتح خیبر کنیم طرح
در گنبد سپہر مگر در کنیم طرح
صبح ست خیز تا نفسے در ہم افگنم
از نالہ لرزہ در فلکِ اعظم افگنم
بیا کہ قاعدۂ آسماں بگردانیم
قضا بگردشِ رطلِ گراں بگردانیم
اگر بشرع سخن در بیاں بگردانی
ز سوئے کعبہ رخِ کارواں بگردانی

اردو کا مشہور قطعہ "اے تازہ واردانِ بساطِ ہوائے دل" بھی اسی انداز کا ہے۔

غالبؔ اور اقبالؔ دونوں تقلید سے متنفر تھے۔ دونوں نے تقلید سے گریز کیا۔ دونوں کے ہاں اس کی مخالفت بھی موجود ہے۔ غالبؔ:

قطرہ اپنا بھی حقیقت میں ہے دریا لیکن
ہم کو تقلید تنک ظرفیٔ منصور نہیں
تیشے بغیر مر نہ سکا کوہکن اسدؔ
سرگشتۂ خمارِ رسوم و قیود تھا
با من میاویز اے پدر، فرزند آزر را نگر
ہر کس کہ شد صاحب نظر دینِ بزرگاں خوش نکرد

انہی خیالات کو اقبالؔ کے ہاں دیکھیے:

تقلید کی روش سے تو بہتر ہے خودکشی
رستہ بھی ڈھونڈ خضر کا سودا بھی چھوڑ دے

چہ خوش بودے اگر مردِ نکو پے | ز بندِ پاستاں آزاد رفتے
اگر تقلید بودے شیوۂ خوب | پیمبر ہم رہِ اجداد رفتے

چاک کن پیراہنِ تقلید را | تا بیاموزی از و توحید را

چند متحد الخیال متفرق اشعار دونوں کے کلام سے پیش کیے جاتے ہیں تاکہ اقدارِ مشترک کا صحیح طور سے اندازہ کیا جا سکے:

غالبؔ:

حسن فروغِ شمعِ سخن دور ہے اسدؔ
پہلے دلِ گداختہ پیدا کرے کوئی

آغشتہ ایم ہر سرِ خارے بخونِ دل
قانونِ باغبانیٔ صحرا نوشتہ ایم
ہے کہاں تمنا کا دوسرا قدم یا رب
ہم نے دشتِ امکاں کو ایک نقشِ پا پایا
دہر جز جلوۂ یکتائیٔ معشوق نہیں
ہم کہاں ہوتے اگر حسن نہ ہوتا خودبیں
آرائشِ جمال سے فارغ نہیں ہنوز
پیشِ نظر ہے آئینہ دائم نقاب میں
مذاقِ شربِ نقرِ محمدی داری
مئے مشاہدۂ حق بنوش و دم درکش
گر تجھ کو ہے یقینِ اجابت دعا نہ مانگ
یعنی بغیر یک دلِ بے مدعا نہ مانگ
گرتے ہیں ہو خیال، وصل میں شوق کا زوال
موجِ محیطِ آب میں مارے ہے دست و پا کہ یوں
گلشت راز آنسوئے گست رفتہ تماشا
تو داری بہارے کہ عالم ندارد

اقبالؔ:

نقش ہیں سب ناتمام خونِ جگر کے بغیر
نغمہ ہے سودائے خام خونِ جگر کے بغیر
برگِ گل رنگیں ز مضمونِ من است
مصرعِ من قطرۂ خونِ من است
تہی زندگی سے نہیں یہ فضائیں
یہاں سینکڑوں کارواں اور بھی ہیں
صورت گرے کہ پیکرِ روز و شب آفرید
از نقشِ این و آں بہ تماشائے خود رسید
یہ کائنات ابھی ناتمام ہے شاید
کہ آ رہی ہے دما دم صدائے کن فیکوں
مقامِ خویش اگر خواہی دریں دیر
بحق دل بند و راہِ مصطفیٰ رو
تو نشناسی ہنوز شوق بمیرد ز وصل
چیست حیاتِ دوام، سوختنِ ناتمام
لالۂ ایں گلستاں داغِ تمنا نداشت
نرگسِ طنازِ او چشمِ تماشا نداشت

دونوں باکمال شاعروں کے کلام میں قدر مشترک کا جلوہ فراواں موجود ہے لیکن اس کی سب سے نمایاں مثال تصور جنت ہے۔ غالب و اقبال زندگی میں ہنگامہ، رستخیز، عمل پیہم، حرکت مسلسل، بہر لحظہ رنگ دگر اور جستجوئے ناتمام کے قائل ہیں۔ حیات کو شوق و ذوق و آرزو سے اضطراب مسلسل اور بسمل رقصاں دیکھنے کے خواہاں ہیں جنت میں ایک سکونی کیفیت ہوگی اور زندگانی میں حرکت و نیرنگی کا فقدان اسی لئے دونوں جنت سے بیزار ہیں۔ مگر حرکت و نیرنگی حیات کے مشاہدہ کا انداز دونوں کے ہاں جداگانہ ہے۔ غالب زندگی کی حرکت عشق کی رندی و مستی اور اقبال عشق کی متانت و سنجیدگی بتاتے ہیں۔ مگر یہ عشق دونوں کو کسی ایک مقام پر ٹھہرنے نہیں دیتا۔ غالب کے خیالات دو حصوں میں بٹے ہوئے ہیں ایک تو یہ کہ ؎

ہم کو معلوم ہے جنت کی حقیقت لیکن   دل کے خوش رکھنے کو غالب یہ خیال اچھا ہے

وہ چیز جس کے لئے ہمکو ہو بہشت عزیز   سوائے بادۂ گلفام و مشکبو کیا ہے

طاعت میں تا رہے نہ مے و انگبیں کی لاگ   دوزخ میں ڈالدو کوئی لیکر بہشت کو

خوش است کوثر و پاک است بادہ کہ در دوست

ازاں رحیق مقدس دریں خمار چہ حظ

اور دوسرا یہ خیال کہ بہشت منزل نہیں بلکہ راہِ طلب میں ستانے کا مقام ہے قیامت میں بہشت تو ایک طرف جو جان ہمیں دی جائے گی وہ بھی نثارِ دوست (اللہ) کر دوں گا ؎

راہیست زعبد تا حضور اللہ   خواہی تو دراز گیر، خواہی کوتاہ

ایں کوثر و طوبیٰ کہ نشانے دارد   سرچشمہ و سایہ الیست در نیمۂ راہ

ادراست اگر ہزار چیزم بخشند   ادراست اگر بہشت نیزم بخشند

بر دوست فدا کنم بصد گونہ نشاط   جانے کہ بروز رستخیزم بخشند

غالب نے بہشت کے متعلق اپنے خیالات جن میں عشق کی رندی و مستی کا اظہار شوخی کے ساتھ ہے ایک خط اور مثنوی ابر گہربار میں ظاہر کئے ہیں:۔

"میں جب بہشت کا تصور کرتا ہوں اور سوچتا ہوں اگر مغفرت ہو گئی اور ایک قصر ملا اور ایک حور ملی۔ اقامت جاودانی ہے اور اس نیک بخت کے ساتھ زندگانی ہے۔ اس تصور سے جی گھبراتا اور کلیجہ منہ کو آتا ہے۔ ہے ہے! وہ حور اجیرن ہو جائے گی۔ طبیعت کیوں نہ گھبرائے گی؟ وہی زمردیں کاخ وہی طوبیٰ کی ایک شاخ، چشم بددور، وہی ایک حور۔"

مثنوی "ابر گہربار" میں یہ بات بڑے لطیف پیرایہ میں بیان کی ہے۔ خدا سے شکوہ کیا جا رہا ہے کہ دنیا میں مجھے مصیبتوں کے علاوہ اور کچھ نہ ملا، زندگی درد و غم حسرت و یاس میں گزری۔ اگر مجھے بہشت ملی بھی تو میرا دل نا امیدیوں کو یاد کر کے وہاں بھی سکون نہ پا سکے گا۔ وہاں کی نعمات دنیا کی نعمات کے مقابلہ میں بے کیف ثابت ہوں گی۔ کیونکہ شورش، ہنگامۂ خروش اور نیرنگیوں سے جنت خالی ہے ؎

صبوحی خورم گر شراب طہور   کجا زہرۂ صبح و جام بلور

دم شبروی ہای مستانہ کو   بہنگامہ غوغائے مستانہ کو

دراں پاک میخانۂ بے خروش   چہ گنجائش شورش نائے و نوش

سیہ مستی ابر و باراں کجا   خزاں چوں نباشد بہاراں کجا

اگر حور در دل خیالش کہ چہ   غم ہجر و روز وصالش کہ چہ

چہ منت نہد نا شناسا نگار   چہ لذت دہد وصل بے انتظار

گریزد دم بوسہ ایش کجا   فریبد بسوگند و نیش کجا

بردحکم و نبود ریش تلخ گوئی   دہد کام و نبود ش کام جوئی

نظر بازی و ذوق دیدار کو   بفردوس روزن بدیوار کو

نہ چشم آرزومند و لالہ   نہ دل تشنۂ ماہ پرکالہ

غالب کے انہی خیالات کو برنگ دگر اقبال کے کلام میں اس طرح دیکھئے ؎

کجا ایں روزگارے شیشہ بازے   بہشت ایں گنبدِ گرداں ندارد

ندیدہ درد زنداں یوسف او   زلیخا تش دل نالاں ندارد

خلیل او حریف آتشے نیست   کلیمش یک شرر درجاں ندارد

بہ صرصر در نیفتد زورق او   خطر از لطمۂ طوفاں ندارد

کجا آں لذت عقل غلط سیر   اگر منزل رہِ پیچاں ندارد

مزی اندر جہانے کور ذوقے   کہ یزداں دارد و شیطاں ندارد

پیام مشرق میں ایک نظم بعنوان "حور و شاعر" ہے، حور شاعر سے کہتی ہے ؎

نہ بادہ میل داری، نہ بمن نظر کشائی

عجب ایں کہ تو نہ دانی رہ و رسم آشنائی

بنوائے آفریدی چہ جہانِ دل کشائے

کہ ارم بچشم آید چو طلسم سیمیائی!

شاعر جس نے پہلے حور و جنت کی طرف آنکھ اٹھا کر بھی نہیں دیکھا تھا

حور کی بات کا جواب دیتا ہے ؎

چہ کنم کہ فطرتِ من بہ مقام در نسازد
دل ناصبور دارم چو صبا بہ لالہ زارے
چوں نظر قرار گیرد بہ نگارے خوبروئے
تپد آں زماں دلِ من پئے خوب تر نگارے
ز شرر ستارہ جویم ز ستارہ آفتابے
سرِ منزلے ندارم کہ بمیرم از قرارے
چوں ز بادۂ بہارے قدحے کشیدہ خیزم
غزلے دگر سرایم بہ ہوائے نو بہارے
طلبم نہایت آں کہ نہایتے ندارد
بہ نگاہ ناشکیبے بہ دلِ امیدوارے
دلِ عاشقاں بمیرد بہ بہشت جاودانے
نہ نوائے دردمندے نہ غمے نہ غمگسارے

جاوید نامہ میں بھی یہی بات بیان ہوئی ہے جبکہ زندہ رود فردوس سے رخصت ہونے لگتا ہے تو اس کو حوریں گھیر لیتی ہیں۔ "یک دو دم با ما نشیں، با ما نشیں" کی صدائیں چاروں طرف سے بلند ہوتی ہیں۔

زندہ رود جواب دیتا ہے ؎

راہرو کو داند اسرارِ سفر ترسد از منزل ز رہزن بیشتر
عشق در ہجر و وصال آسودہ نیست بے جمالِ لایزال آسودہ نیست
ابتدا پیشِ بتاں افتادگی انتہا از دلبراں آزادگی
عشق بے پروا و ہر دم در رحیل در مکان و لامکاں ابن السبیل
کیشِ ما مانندِ موجِ تیز گام اختیارِ جادہ و ترکِ مقام

اس مقام پر غالب کی یہ رباعی بھی قابلِ لحاظ ہے :۔

قانع نیم ار بہشت نیز م بخشند از بخشش خاص تا بچیزم بخشند
امید کہ صرف رونمائے تو شود جانے کہ بروز رستخیزم بخشند

اقبال کا "شکوہ" جس نے برصغیر پاک و ہند کے مسلمانوں کو خوب گرما دیا تھا۔ اس کے آثار غالب کے کلام میں بھی ملتے ہیں مگر غالب کے ہاں یہ احساس و شکوہ ایک فرد کا ہے اور اقبال کے ہاں ملی و اجتماعی حیثیت لئے ہوئے ہے۔ غالب زیادہ تر اپنی ذات کے گرد گھومے۔ اور اقبال نے ملت اسلامیہ کی ترجمانی کی۔ شکوہ کی طرح عقل و دانش اور عشق کے موضوعات پر بھی یہاں روشنی ڈالی جا سکتی تھی مگر طوالت مانع ہے۔ بہرکیف غالب کی غزل کے شکوہ آمیز شعر ملاحظہ فرمایئے:

نہ مرا دولتِ دنیا نہ مرا اجرِ جمیل نہ چو نمرود توانا نہ شکیبا چو خلیل
با قبیاں کفِ ساقی بمئے ناب کریم با غریباں لبِ جیحوں بدمی آب بخیل

اقبال ؎ سمندر سے ملے پیاسے کو شبنم
بخیلی ہے یہ رزاقی نہیں ہے

اے بہ سمارِ قضا دوختہ چشمِ ابلیس بدمِ گرمِ رواں سوختہ بالِ جبریل
نہ کنی چارہ لبِ خشک مسلمانے را اے بترسا بچگاں کردہ مئے ناب سبیل

اقبال: قہر تو یہ ہے کہ کافر کو ملے حور و قصور
اور بیچارے مسلماں کو فقط وعدۂ حور

مثنوی ابرِ گہر بار میں یہ شکایت تیز تر ہے۔ بارگاہ احدیت میں اپنی نامرادیوں اور ناکامیوں کا شکوہ کرتے ہوئے اپنی حسرتوں کو بیان کیا ہے گویا ؎

آتا ہے داغِ حسرتِ دل کا شمار یاد مجھ سے مرے گنہ کا حساب اے خدا نہ مانگ

کی تفصیل پیش کی ہے کہ قیامت میں حساب کتاب کے وقت میرے جرم کے ساتھ میری حسرت کا مقابلہ بھی ہونا چاہیئے ؎

بروزی کہ مردم شوند انجمن شود تازہ پیوندِ جاں ہا بہ تن
درآں حلقہ من باہم دسینۂ زغم ہائے ایام تجینۂ
زبس تیرگیہائے روز سیاہ نگہ خوردہ آسیبِ دوش از نگاہ
درین خستگی پوزش از من مجوی بود بندۂ خستہ گستاخ گوی
دل از غصہ خوں شد نہفتن چہ سود چو ناگفتہ دانی نہ گفتن چہ سود
ہمانا تو دانی کہ کافر نیم پرستارِ خورشید و آذر نیم

اقبال: (شکوہ)

تجھ کو چھوڑا کہ رسولِ عربی کو چھوڑا
بت گری پیشہ کیا بت شکنی کو چھوڑا

حسابِ مے و رامش و رنگ و بو زجمشید و بہرام و پرویز جو
نہ از من کہ از تابِ مے گاہ گاہ بدریوزہ رخ کردہ باشم سیاہ
نہ بستاں سرائے نہ مے خانۂ نہ دستاں سرائے نہ جانانۂ
نہ رقصِ پری پیکراں بر بساط نہ غوغائے رامشگراں در رباط
انقہا پر از ابرِ بہمن تہی سفالینہ جامِ من از مے تہی
بہاں عمرِ ناخوش کہ من داشتم زجاں خار در پیرہن داشتم
بفرمائی کایں داوری چوں بود کہ از جرمِ من حسرت افزوں بود

غالب کی شخصیت اقبال کے لئے بڑی پُرکشش رہی ہے جس کا اظہار مختلف مواقع پر وہ کرتے رہے ہیں جو ایک طرح سے اعترافِ عظمتِ غالب اور اتحادِ معنوی کا پہلو ہے۔ علامہ کو یہ شعر بہت پسند تھا جس کو بعنوانِ غالب انہوں نے جگہ دی ہے:

تا بادہ تلخ تر شود و سینہ ریش تر
بگدازم آبگینہ و در ساغر افگنم

اقبال کے نزدیک یہ شعر غالب کی زندگی کا ماحصل تھا۔ اعترافِ عظمت و اتحادِ معنوی کا پہلو "جاوید نامہ" میں بہت نمایاں ہے۔ ارواحِ جلیلہ حلاج و طاہرہ کے ساتھ غالب کی روح بھی ہے۔ غالب کا وہی تصورِ جنت کہ اس میں ہنگامۂ حیات نہیں، ان کو جنت میں نہیں رہنے دیتا اور "سیرِ دوام" میں مبتلا رکھتا ہے۔ اقبال کا "جاوید نامہ" ان کا ادبی معراج نامہ ہے جس میں اپنے خیالات کو ایک نئے انداز سے پیش کیا ہے۔ "جاوید نامہ" کا سلسلہ معراج ناموں سے ملتا ہے۔ دانتے کی "طربیۂ خداوندی" بھی اس سلسلہ میں زیرِ بحث آسکتی ہے۔ غالب نے بھی اپنی مثنوی گہربار میں "معراج" کو نظم کیا ہے۔ دونوں میں فرق ہے غالب نے معراجِ نبوی کو بیان کیا ہے اور اقبال نے اپنی معراجِ ذہنی نظم کی ہے۔ البتہ کہیں کہیں مراحل و منازل کے بیانات میں مماثلت بھی پائی جاتی ہے۔ علامہ کی مثنویوں کے مقابلہ میں غالب کی مثنویوں کا پلہ بھاری نظر آتا ہے۔ یہ اجمال ذرا تفصیل کا محتاج ہے اس لئے کسی آئندہ صحبت میں عرض کروں گا۔

"جاوید نامہ" میں فلکِ مشتری پر ارواحِ جلیلہ، حلاج و غالب و قرۃ العین طاہرہ کو پیش کیا ہے۔ آخر میں ابلیس نمودار ہو کر زندگی کا راز، سوزِ ناتمام و فراقِ دوام بتاتا ہے۔ منصور حلاج کے افکار علامہ نے خود ایک غزل کے ذریعہ پیش کئے ہیں۔ غالب کی مشہور غزل "بیا کہ قاعدۂ آسماں بگردانیم" غالب ہی کی زبان سے ادا کرائی ہے۔ طاہرہ کی بھی ایک غزل اسی طرح پیش ہوئی ہے۔ پیرِ رومی زندہ رود سے کہتے ہیں کہ ان سے سوالات کر کے اپنے دلی شکوک دور کر لے۔ زندہ رود اپنی مشکلات بیان کرتا ہے۔ پہلے حلاج سے سوالات ہیں، وہ جواب دیتا ہے۔ طاہرہ سے کوئی سوال نہیں کیا گیا وہ حلاج کے بعد ہی اسی سوال سے متعلق اپنا بیان شروع کر دیتی ہے ؎

از گناہِ بندۂ صاحب جنوں   کائنات تازہ آید بروں

شوق بے حد پردہ ہا را بر درد   کہنگی را از تماشا می برد

یہ دونوں شعر غالب کے اس شعر کی تفسیر ہیں ؎

رفتم کہ کہنگی ز تماشا بر افگنم
در بزمِ رنگ و بو نمطے دیگر افگنم

قرۃ العین طاہرہ کا جواب ختم ہوتے ہی زندہ رود غالب سے اُردو کے اس شعر کے معنی پوچھتا ہے:-

قمری کفِ خاکستر و بلبل قفسِ رنگ
اے نالہ نشانِ جگرِ سوختہ کیا ہے؟

علامہ نے "نشانِ جگرِ سوختہ" جیسے ترجمہ میں ندرت پیدا کر دی ہے۔ اس شعر کا جو مطلب علامہ کے ذہن میں تھا۔ اس کو انہوں نے غالب کی زبانی ادا کرایا ہے۔ ماحصل اس شعر میں آگیا ہے ؎

تو ندانی ایں مقام رنگ و بوست
قسمتِ ہر دل بقدرِ ہائے و ہوست

اس کے بعد زندہ رود غالب سے مشہور مسئلہ "امتناع النظیر خاتم المرسلین" کے متعلق سوال کرتا ہے کہ اس نیلی فضا میں سیکڑوں جہان ہیں۔ کیا ہر دنیا کے لئے الگ الگ اولیا و انبیا ہوتے ہیں؟ غالب کے جواب میں ایک شعر خود لکھا ہے اور دوسرا غالب ہی کا ہے:

نیک بنگر اندریں بود و نبود   پے بپے آید جہاں ہا در وجود
ہر کجا ہنگامۂ عالم بود   رحمۃ للعالمینے ہم بود

غالب سے "فاش تر گو" کی فرمائش ہوتی ہے۔ جواب "فاش تر گفتن خطا است" ملتا ہے۔ غالب "گفتگوئے اہلِ دل بے حاصل است؟" کے جواب میں "نکتہ بر لب رسیدن مشکل است" کہہ دیتے ہیں۔ اس پر زندہ رود کہتا ہے ؎

تو سراپا آتش از سوزِ طلب   بر سخن غالب نیائی اے عجب!

اس کے جواب میں غالب تھوڑی سی وضاحت اور کرتے ہیں کہ خلق و تقدیر و ہدایت ابتدا اور رحمۃ للعالمینؐ انتہا ہے مگر زندہ رود اس سے زیادہ اسرار کی نقاب کشائی کا طالب ہوتا ہے۔ غالب جواب دیتے ہیں ؎

اے چو من بینندۂ اسرارِ شعر   ایں سخن افزوں ترست از تارِ شعر
شاعراں بزمِ سخن آراستند   ایں کلیماں بے یدِ بیضا ستند
آنچہ تو از من بخواہی کافری   کافری کو ماورائے شاعری

باقی ص۵۷ پر

اقبال کا انسانِ کامل

سحر یوسف زئی

انسانِ کامل کا تصور اقبال کے فلسفہ کا نچوڑ ہے اور یہی ان کی شاعری کی اساس۔ اقبال نے انسان کے کردار کو ابھارنے میں اپنی شاعری کے ہلکے اور تیکھے دونوں ہی رنگ استعمال کئے ہیں اور اپنے فلسفے کے تانے بانے میں بُن کر اسلام کی اصل روح" اور اس کی بلند اقدار کو ایک لڑی میں پرو دیا ہے۔ خودی، عشق، اور فقر تینوں ان کے مقاماتِ فکر ہیں مگر فلسفے کی موشگافیوں اور مسائل کو سمجھنے کے ساتھ ساتھ اُن عوامل پر بھی ایک نظر ڈالنا ضروری ہے جنہوں نے اقبال کو اتنیا بخشا۔

اقبال کو جو عہد ملا اس میں صحت مند اور غیر صحت مند دونوں ہی عناصر پوری شدت کے ساتھ ایک دوسرے کے ساتھ دست و گریباں تھے۔ قومی زوال تو آ ہی چکا تھا مگر اسے مسحور کرنے کی تدابیر بھی ہو رہی تھیں۔ سر سید نے قوم کے مرض کا حل سوچا تھا اور اس کے لئے بڑا کام کیا۔ حالی، شبلی، اور اکبر نے اس کام کو آگے بڑھایا اور ان سب اکابر نے مسلمانوں کے زوال کے اسباب پر سوچنا شروع کیا اور اپنے اپنے فکر و فن سے قوم کی اصلاح و تعمیر کی تدابیر بتائیں۔ بڑا سوال یہی تھا کہ نئے علوم اور نئی روشنی سے مسلمانوں کا گریز ختم ہو۔ حالی نے ماضی کا افسانہ چھیڑا اور نئے عہد کا ترانہ بھی سنایا۔ مقصود یہی تھا کہ قوم کو نئے برگ و بار نصیب ہوں اور وہ پھر فاتح عالم بننے کا کردار ادا کر سکے۔ اسی طرح شبلی اور اکبر کا کام تھا۔ یہ سب کوششیں احیائے ملی میں بڑی ممد ثابت ہوئیں۔ اقبال نے ان دردمندانِ قوم کی جلائی ہوئی مشعل کو اور زیادہ فروغ دیا۔

اقبال شروع ہی سے قوم کے درد سے آشنا اور دلگیر تھے اور مداوا کی تلاش میں تھے۔ ابتدائی کام میں بھی اصلاح کا پیغام اور قوم کو ابھارنے کی صدا گونجتی سنائی دیتی ہے۔ کچھ اور حساس لوگ بھی شعر کے وسیلے سے قوم کی اصلاح و ارتقا کا کام لے رہے تھے مگر ان میں بھی اقبال ممتاز نظر آتے ہیں۔ "بانگِ درا" کے مطالعہ سے یہ بات تو بخوبی سمجھ میں آتی ہے کہ اقبال کو قوم کی زبوں حالی نے بہت بے چین کر رکھا تھا مگر درد کا درماں کیا ہونا چاہئے، اس کی صحیح راہ سجھائی نہ دیتی تھی۔ تاریخ، فلسفہ اور دینیات، ان سب کو اقبال نے ٹٹولا مگر کلام میں جو گرمی اور روشنی بعد کو پیدا ہوئی اس کا سراغ ابتدا میں کم ہی نظر آتا ہے، گو صبح صادق کی کرن دکھائی دینی شروع ہو گئی تھی۔ مدعا یہ ہے کہ یہ دور تلاش و تجسس کے عالم میں گزرا:

تم بتا دو راز جو اس گنبدِ گرداں میں ہے
موت اک چبھتا ہوا کانٹا دلِ انساں میں ہے

مگر دیگر مصلحوں کے مقابلہ پر اقبال کی سوچ مختلف تھی اور خود اپنے قول کے مطابق خودی کا تصور ان کے سفرِ انگلستان سے قبل ہی ذہن میں مرتب ہونا شروع ہو گیا تھا۔ خودی کی تلقین سے انہیں قوم کی اصلاح کی راہ نظر آئی تھی۔ چنانچہ قیام یورپ کے دوران جب ڈاکٹریٹ کے لئے مقالہ تحریر کرنا شروع کیا تو اس میں بھی انہوں نے اپنے اس نقشِ اول کو شامل کر لیا تھا مگر اس خیال کو پختگی اور بلوغ بعد کو پہنچا۔ یہ کیا عناصر تھے، اس کا ذکر آئندہ سطور میں آئے گا۔

ہمیں معلوم ہے کہ اقبال نے فارسی کی ابتدائی تعلیم مولانا میر حسن سے حاصل کی۔ قیاس ہے کہ رومی کی مثنوی سے ذوق بھی اسی دور میں پیدا ہوا ہوگا، چنانچہ بعد میں تو انہوں نے رومی کو اپنا پیر و مرشد معنوی قرار دے ہی لیا تھا۔ ممکن ہے ان کے ذہنی خلجان کو رفع کرنے میں رومی نے رہنمائی کی ہو کیونکہ وہ انسانی ارتقا، مادی و روحانی دونوں کے قائل اور قوتِ عمل کے شیدا تھے۔ وہ انسان کے جمادات سے نباتات تک اور پھر حیوانات تک ارتقا کو کافی نہ سمجھتے تھے بلکہ ملائک حتیٰ کہ مسجودِ ملائک تک انسان کے عروج کو دیکھنا چاہتے تھے۔

لیکن اقبال کو سب سے بڑی تحریک خود تفہیمِ قرآن سے پیدا ہوئی کیونکہ وہی بتاتا ہے کہ انسان کی برگزیدگی کا مقام کیا ہے اور وہ نیابتِ الٰہی کا کیوں

سزاوار ہے۔ یہ سب باتیں اقبال کے فکر میں موجود تو تھیں مگر لاشعوری طور پر۔ مغرب میں پہنچ کر انہیں مادّہ کی سربلندی دکھائی دی، معاشی عروج نظر آیا مگر ساتھ ہی اخلاقی پستی بھی مشاہدہ کی۔ یہاں انہیں اصلاحی تحریکات اور سیرت سازی کے مواد پر بھی عبور حاصل ہوا۔ تیسرا عنصر جس نے فکرِ اقبال پر اثر ڈالا تھا، ابن عربی کے خیالات تھے۔ اپنے مقالہ کی تحریر کے وقت انہیں تصوّف کی تباہ کاریوں کا بھی علم ہوا۔ اور انہوں نے اسے زوالِ ملّت اسلامیہ کا ایک سبب مانا۔ مغرب کے مشرق پر تباہ کن اثرات بھی ان کی نظر میں آئے اور ان تمام باتوں پر غور و فکر کا سلسلہ جاری رہا۔ یہی چیزیں بصیرتِ اقبال کی اساس بنیں۔

اقبال نے تصوّف کو بھی مسلمانوں کی تباہی کا اصل سبب مانا ہے۔ خاص کر وحدت الوجود، جس نے مسلمانوں کو بڑا نقصان پہنچایا۔ یہ مسئلہ خالصتاً عجمی نژاد ہے۔ ایران سے ہوتا ہوا ہندوستان میں داخل ہوتا ہے۔ شعراء اور صوفیاء اس کے خاص طور پر شائق بلکہ مبلّغ تھے۔ میر دردؔ کا یہ شعر اس فلسفہ کی ایک مختصر تفسیر ہے:

جگ میں آکر اِدھر اُدھر دیکھا
تو ہی آیا نظر جدھر دیکھا

رفتہ رفتہ یہ عوام پر چھانے لگا اور وہ عمل اور جہادِ زندگی کے میدان سے دور ہٹنے لگے۔ دنیا کو کارزارِ حیات سمجھنے کے بجائے اسے ہیچ اور صرف گزشتنی شے ماننے کی دُھن ہر ایک پر سوار تھی۔ ہر ایک اسے فریب اور دامِ خیال ہی سمجھتا تھا:

ہستی کے مت فریب میں آجائیو اسدؔ
عالم تمام حلقۂ دامِ خیال ہے

اس پر اقبال نے اپنے ایک خط میں یہ احساس ظاہر کیا[4]:

"ہندی اور ایرانی صوفیہ میں سے اکثر نے مسئلہ فنا کی تفسیر فلسفۂ ویدانت اور بدھ فلسفہ کے زیرِ اثر کی ہے جس کا نتیجہ یہ ہوا ہے کہ مسلمان اس وقت عملی اعتبار سے ناکارہ ہے۔ میرے عقیدہ کی رو سے یہ تفسیر بغداد کی تباہی سے بھی زیادہ خطرناک ہے۔"

اس فلسفہ میں اپنی ہستی کو بھلا دینا اور دنیا سے دامن بچا کر نکل جانا ہی کمالِ حیات مانا گیا ہے۔ یعنی دنیا میں سے کم سے کم حصہ لینا ایک نیکی شمار ہوئی۔

نتیجہ یہ ہوا کہ عام مسلمانوں کے قوائے ملّی مضمحل ہوگئے۔ مذہبی حلقہ ہی نہیں سارا معاشرہ فراریت کا شکار ہوگیا۔ اس کے نتائج حسن بن صباح کے انقلاب تک ہی محدود نہ رہے بلکہ اس کے بعد بھی مسلمانوں کی رہی سہی قوت بھی تعطّل و مجہولیت کی نذر ہوگئی۔ مسلمان ان قدروں سے دور ہوگئے جو دنیا میں خواجگی و سربلندی کا موجب بنتی ہیں۔ معاشرہ کے اس آشوب میں معاشی تار و پود بھی بکھر گیا اور مسلمان قنوطیت کے قبضے میں چلے گئے۔ اگر قومی یاسیت کی تصویر دیکھنی ہو تو اردو شاعری پر نظر ڈال لیجئے۔ میر سے فانی تک ہر شاعر یہی زہرناک نشتر شعوری یا لاشعوری طور پر جسم ملّت میں پیوست کرتا نظر آتا ہے۔ اقبال کی تمام تحریریں اس فلسفہ اور اس سے پیدا شدہ نتائج کے خلاف ایک جہاد ہیں۔ مگر انہوں نے اس کا مداوا بھی بتایا ہے اور انسانِ کامل کا تصور ہمارے سامنے رکھا ہے جس کے لئے خودی کو بیدار کرنا پہلی منزل ہے۔

تصوّف کی ایک غلط تاویل توکّل و تقدیر بھی ہے۔ جب قوائے عمل مفلوج ہو جائیں تو مستقبل کی تاریکی حال میں بھی جھانکتی ہے۔ ہر طرف بیکراں اندھیرا پھیل کر ترقی کی راہوں کو مسدود کر دیتا ہے اور سکون یونہی ملتا ہے کہ اپنی بے عملی کے نتیجوں کو کسی اور کے سر تھوپ دیا اور عمل کی بجائے یہ کہہ کر بیٹھ رہیں:

رات دن گردش میں ہیں سات آسماں
ہو رہے گا کچھ نہ کچھ گھبرائیں کیا

اقبال نے یورپ جا کر دیکھا کہ اس قسم کے حالات عیسائیت کو بھی پیش آئے تھے۔ ان کا مقابلہ کرنے کی بجائے وہ نیکی اور فلاح کا راستہ اس ہی میں سمجھنے لگے تھے کہ "بھیڑ بن جاؤ" اگر کوئی بھیڑیا تمہاری ہڈیاں چباتا ہو تو چبانے دو، کان تک مت ہلاؤ، ورنہ بزرگی میں فرق آجائے گا۔ اس کے خلاف ڈارون کا انقلاب انگیز نظریہ "تنازع للبقا" کا سہارا لے کر نطشے نے ایک احتجاجی آواز بلند کی اور اس غلامانہ اخلاق کی بجائے شاہانہ اخلاق یعنی جرأت، تہوّر، زور، سختی، قوت اور پندار و اقتدار کو ہی زندگی کی اعلیٰ قدریں قرار دیا۔ وہ عیسائیت سے اس قدر نفور ہوگیا تھا کہ مذہب تو مذہب سرے سے خدا کے وجود سے بھی منکر ہوگیا اور تفاخر کو ہی اخلاقیات کی اساس قرار دیا۔ اس نے جذبات میں آکر صرف جلالی اخلاق پر ہی اپنے فوق البشر کی سیرت استوار کی جس میں روحانیت اور بقا کا کوئی شائبہ نہ تھا۔ اس کی بہترین مثالیں ہلاکو، چنگیز، نپولین،

اور نکھر میں نظر آتی ہیں۔

جیسا کہ ابھی عرض کیا گیا، انسانِ کامل کے بارے میں اقبال کے فکر میں کچھ مدھم خطوط یورپ جانے سے قبل ہی پیدا ہونے شروع ہو گئے تھے مگر جب خارجی تحریکات قوی ہو گئیں تو ان کی تمام تر توجہ اس مسئلہ پر مرکوز ہو گئی۔ اقبال اور دیگر مفکرین کے یہاں انسانِ کامل کے ارتقائی صفات میں کہیں کہیں مماثلت یا تطابق سا پیدا ہو گیا ہے۔ بعض ناقدوں نے اس کی غلط تاویل کی اور اقبال کے خالص اسلامی تصوّر کو مسخ کر دیا ہے۔ یہ غلطی اس لئے پیدا ہوئی کہ اسلامی اور اسلامی مفکرین کے علاوہ اقبال کے نقش اول کو قابل توجہ نہیں سمجھا گیا۔ مگر اب فہمِ اقبال کا سلسلہ دراز تر ہوتا جا رہا ہے اور امید ہے کہ ان غلط تاویلات کی صحت ہو جائے گی۔ نطشے کا الفوق البشر کی دو بنیادی صفات میں سے ہے، ڈارون مادی ارتقا کی طرف رہنمائی کرتا ہے اور برگساں زمان و مکان کا ایک تصور پیش کرتا ہے۔ یہ تینوں اقبال کے فکر سے قریب ہو گئے ہیں۔ ادھر ابن عربی کا روحانی ارتقا، رومی کا تصورِ عشق اقبال سے ہم آہنگ ہیں۔ غرض یہ سب دھارے فکرِ اقبال میں آکر ملتے ہیں مگر ان کا اصل سرچشمہ قرآن ہے۔

اقبال کا انسانِ کامل درحقیقت ایک ایسی بلند قامت شخصیت ہے جس میں مادی اور روحانی ترقی کا ارتقا مکمل ہوتا ہے اور جس میں اخلاقی اقدار کی بصیرت افروز آمیزش بھی نظر آتی ہے۔ وہ روح اور جسم کی دوئی کا قائل نہیں بلکہ ان کی تفریق کو غلط سمجھتا ہے۔ اس میں جسمانی ارتقا کے بعد شعوری اور روحانی ارتقا بتدریج ظہور میں آتا ہے۔ یعنی وہ اسلام کی بہترین اقدار کا نچوڑ ہے۔ اس کے ارتقا کے مقامات اقبال نے کمالِ فن سے متعین کئے ہیں اور اس کو زیادہ سے زیادہ سنوار کر اس مقام تک پہنچایا گیا کہ بعض کی خام خیالی اس کی لم کو نہیں پا سکی اور اسے ایک مثالی کردار کہہ کر چھوڑ دیا گیا ہے۔ بلکہ بعض نے تو یہاں تک کہا ہے کہ اس کا وجود اس دنیا میں محال ہے۔ آیئے اس پر غور کریں۔

اقبال کے کلام سے انسانِ کامل کا ارتقا اس طرح ذہن میں آتا ہے:

(۱) آدم یا انسان کی پیدائش اور انسان کی شکل میں اس کا تدریجی ارتقا۔

(۲) شعور یا خودی کے وسیلہ سے ایغو کا نمود۔

(۳) مادی اور اخلاقی رفعتوں کی تسخیر خودی کی عملی قوتوں سے

(۴) خودی کی تکمیل سے روحانی ارتقا کی رفعت کا حصول، جو مقصدِ اوّل ہے۔

ان مقامات میں سے اکثر کی تشریح علومِ جدیدہ کی روشنی میں کی جا سکتی ہے مگر بعض نکات ایسے ہیں کہ سمجھنا مشکل ہو جاتا ہے۔ اگر صرف سہارے سے کام لیا جائے تو اندیشہ ہے کہ مجموعی ہیئت کو نقصان پہنچے۔ بہرکیف خودی کے باب میں خود اقبالؒ کا ارشاد یہ ہے:-

زمانہ کے دریا میں بہتی ہوئی
ستم اس کی موجوں کا سہتی ہوئی
تجسس کی راہیں بدلتی ہوئی
دمادم نگاہیں بدلتی ہوئی
ازل سے ہے یہ کشمکش میں اسیر
ہوئی خاکِ آدم میں صورت پذیر

خاکِ آدم میں صورت پذیر ہونے اور زمانے کے دریا میں بہتے رہنے سے ایک ارتقا پذیر انسان کی شکل ذہن میں ابھرتی ہے۔ یہ شکل اس انسان کی ہے جس میں ابھی خودی کا نشیمن نہ بنا تھا۔ جس میں روح پھونکنے کے بعد سے ارتقا جاری تھا۔ قرآنِ حکیم کی رو سے انسان کے پتلے کو سڑی ہوئی کیچڑ سے بنایا گیا۔ پھر اس میں نفس، جو امرِ ربی تھا پھونکا گیا۔ پھر اس کے جسم سے حوا کا پیدا ہونا بھی ملتا ہے۔ انسان کو خدا اپنے نائب کا مقام عطا کرنا چاہتا تھا اسی لئے اسے جب دیگر انواع اور فرشتوں پر فضیلت دینی مقصود ہوئی تو علم الاسماء دیا گیا۔ یہ علم الاسماء فرشتوں کے علم سے زیادہ تھا۔ اس لئے ان پر فضیلت کا موجب بنا۔ علم الاسما کی توضیح اور تشریح طوالت طلب ہے۔ اگر اس سے بحث نہ بھی کی جائے تو بھی یہ ماننا پڑتا ہے کہ انسان کو شعورِ سادہ حاصل ہوا۔ یا اس میں خودی کی پہلی کیفیت پیدا ہوئی۔ اس کے بعد جنتِ آدم اور ابلیس کا مسئلہ بھی ہمارے سامنے آتا ہے۔ انسان نے جو پہلی حکم عدولی کی اور اپنے ارادے اور عمل کی آزادی کا اعلان کیا۔ وہ خودی کے پورے طور پر ملنے کی طرف اشارہ ہے۔ ہبوطِ آدم کے بارے میں اقبالؒ "الٰہیاتِ اسلامیہ کی تشکیلِ جدید" میں لکھتے ہیں:

"جنت میں آدم کی زندگی دراصل انسانیت کے اس ابتدائی دور سے عبارت ہے جبکہ اس میں احساسِ خودی پیدا نہ ہوا تھا۔ اور اس نے اپنے ارادے اور علم کی قوت سے ماحول سے مطابقت کرنا نہیں سیکھا تھا۔ اس کا دل آرزو اور احتیاج

غلاف کعبہ

ے کی سعادت اس سال پاکستان کے نصیب میں آئی ۔
رقی پاکستان میں لاکھوں انسانوں کے مجموعوں نے دلی
دت کے جذبات کے ساتھ اس کی زیارت کی ۔
اھرین ''زری'' اور غلاف کعبہ کی تیاری کے مختلف مراحل
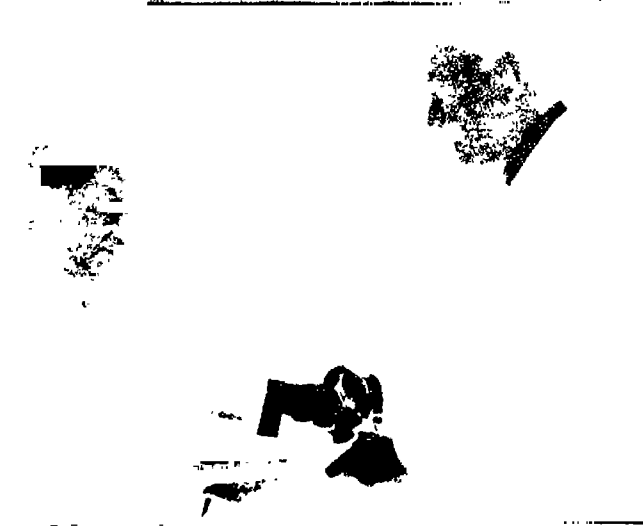
صدر پاکستان کی خدمت میں رائے دھی کمیشن کی رپورٹ

یدالفطر کے موقع پر اخوت و مساوات کا روح پرور نظارہ (راولپنڈی)

دورۂ مشرقی پاکستان کے سلسلے میں صدر پاکستان، مارشل محمد ایوب خاں کی ڈھاکہ میں آمد ۔ ہوائی اڈے پر عوام کے پرخلوص تپاک کا جواب

مشرقی پاکستان رائیفلز کے .. نو
کی طرف سے گارڈ آف آ

کی خلش سے بیگانہ تھا۔ یہ واقعہ درحقیقت اس حقیقت
کی یادگار ہے کہ کس طرح انسان نے اپنے جبلی میلانات
کے دائرے سے باہر قدم نکالا۔ اور ایک آزاد اور با اختیار
ایغو ؞؞ کا مالک بنا۔ اس میں آگہی۔ وقوف۔ شک۔
اور خلاف ورزی کی صلاحیت پیدا ہو گئی۔"

رومی بھی جمادات سے نباتات۔ حیوانات اور آخر میں انسان
تک کے ارتقا کا قائل ہے۔ بلکہ وہ روحانی رفعتوں اور بلندیوں تک انسانی
پہنچ تسلیم کرتا ہے۔

اگر علوم جدیدہ میں مادئین کے ارتقا کے تصور ہم دیکھیں تو
زارون بارش اور گرمی سے کیچڑ پیدا ہونے اور پھر اس میں عناصر میں
ترتیب سے ایک امیبیا کے پیدا ہو جانے کا قائل ہے۔ اگرچہ
اس میں ارادے کا کوئی دخل نہ تھا۔ پھر یہی امیبیا پھٹ کر نر اور مادہ
میں بٹ جاتا ہے۔ اور ارتقا کے مختلف حیوانی مدارج طے کرتا بندر
سے انسان تک جسمانی ارتقا کر کے پہنچ جاتا ہے۔ اس میں تنازع للبقا
یا قوتِ ارادہ، بہرحال اسے شعور سادہ سے شعور ذات حاصل ہوا۔
اور انسان کہلانے کا مستحق ہوا۔ اس نظریہ میں اور قرآن کے نظریہ میں
زاویہ نگاہ کے علاوہ بہت کم فرق ہے۔ وہ کسی خاص مقصد اور رفیع طاقت
تسلیم کرنے کی بجائے ابتدا سے انتہا تک قیاسی کڑیاں ملا کر غلطی کرتے ہیں
اس لئے کہ وہ خدا کے وجود کو تسلیم کرنا پسند نہیں کرتے۔ شعور بھی جسمانی
ارتقا یا بقول ہیگل "طبعی انفعال" کا نتیجہ ہے۔

قرآن اور علم جدید سے ہمیں یہ پتہ لگا کہ انسان کو خودی، شعورِ
ذات، ایغو یا "میں" عطا ہونے ہی سے انسانیت کا درجہ ملا۔ ان سب
لفظوں کے معنی میں فرق نہ ہوتے ہوئے بھی فرق ہے۔ اس لئے کہ یہ
لفظ خاص خاص زاویہ نگاہ کی تراشیدہ علامتیں ہیں۔ جن سے بعض
خاص مفہوم ہی ذہن نشین ہوتے ہیں۔ اس میں اقبال کا تصورِ خودی ان
سب کا مجموعہ بھی ہے۔ اور ان سے آگے بھی بعض معنی لئے ہوئے ہے۔
سب سے پہلے "میں"۔ انا۔ یا ایغو کو اپنے طور پر سمجھ لینا چاہئے تاکہ یہ
معلوم ہو سکے کہ آخر انسان کو کیا ملا جس سے جمادات یا جانوروں کی فہرست
سے خارج ہوا۔ یا وہ چیز ہمارے اندر کیا ہے جس کی ترقی پر اقبال اتنا
زور دیتا ہے۔

ہر شخص کے اندر ایک "میں" ہوتی ہے۔ یہ میں پیدائش سے
لے کر موت تک اس کے ساتھ رہتی ہے (اور شاید اس سے آگے بھی)۔
بچپن۔ جوانی اور بڑھاپے کے اکثر متضاد قسم کے واقعات ایک
انسان اپنے ہی سمجھتا ہے۔ باوصف اس کے کہ اس کی شکل میں کافی
تبدیلی ہی کیوں نہ آ چکی ہو۔ اگر دو سال سے لے کر ساٹھ سال کی عمر تک
کی مختلف تصویریں کسی کو دکھائی جائیں تو عمل کے تسلسل کی طرح وہ
ان کو اپنی ہی کہے گا۔ اس کا جواب یہی ہوگا کہ "یہ میرے عکس ہیں"۔
تو شکل سے زیادہ عمل کا تعلق "میں" سے ہوتا ہے۔ عمل سے "میں"
بنتی اور ارتقا کرتی رہتی ہے:

یہ موجِ نفس کیا ہے تلوار ہے
خودی کیا ہے تلوار کی دھار ہے
خودی کیا ہے راز درون حیات
خودی کیا ہے بیداریٔ کائنات

پھر زندگی کے باب میں فرماتے ہیں:

دمادم رواں ہے یم زندگی
ہر اک شے سے پیدا رمِ زندگی
اسی سے ہوئی ہے بدن کی نمود
کہ شعلہ میں پوشیدہ ہے موجِ دود
من و تو سے ہے انجمن آفریں
مگر عین محفل میں خلوت نشیں

پھر آگے ارشاد ہے:

ٹھہرتا نہیں کاروانِ وجود
کہ ہر لحظہ تازہ ہے شانِ وجود
سمجھتا ہے تو راز ہے زندگی
فقط ذوقِ پرواز ہے زندگی

جتنے مختلف تجربات اور کشمکشوں سے اسے گزارا
جائے گا اتنی ہی اس میں وسعت پیدا ہوتی جائے گی۔
انسان نے بقول ڈیکارٹ جب سوچنا شروع کیا تھا تو
اسے اپنے وجود کا ادراک ہوا۔ خودی کے اس ادراک سے
اس نے خارج کو سمجھا۔ پرکھا اور برتا۔ اس شعور ذات سے
انسان "جلب منفعت، دفع مضرت، یقینِ عمل و ذوقِ حیات
عالیہ، یا نفسیات کی رو سے، شعور کائنات کرنے لگتا ہے۔ تو شعور

کا یہ لفظ پھیل کر ذات سے نکل کر خارج پر چھا جاتا ہے۔ وہ سوچنے
سے ہی اپنے آپ کو نہیں پاتا بلکہ عمل سے اپنا وجود ثابت کرتا ہے۔"

"ہیوم شعور میں ایغو کو اس طرح مختلف ادراکات کے ذریعہ
سمجھانا چاہتا ہے "جس کو میں اپنی ذات یا خودی کہتا ہوں جب اس کے
اندر داخل ہوکر دیکھتا ہوں تو ہمیشہ سردی گرمی، روشنی تاریکی، محبت
نفرت، لذت والم کسی نہ کسی خاص ادراک پر ہی پاؤں پڑتا ہے۔ بغیر
کسی ادراک کے اپنی ذات کو کبھی نہیں پکڑ سکتا۔ نہ اس ادراک کے
سوا کسی اور شے کا مشاہدہ ہو سکتا ہے۔ خودی ادراکات کے مجموعے
کا نام ہے جو ہمیشہ بہاؤ میں رہتے ہیں"۔ (ڈاکٹر میر ولی الدین)

اقبال خودی کو "وحدت وجدانی" یا شعور کا روشن نقطہ کہتا
ہے جس سے "تمام انسانی تخیلات۔ جذبات۔ تمنیات مستنیر
ہوتے ہیں"۔ یعنی شعور ذات حاصل ہوجانے سے انسان کے اندر آرزو جستجو
اور عمل کی لگن پیدا ہوتی ہے۔ پھر یہ روشنی کی وہ کرن ہے جس سے ہر
چیز میں زندگی بھی پیدا ہوتی ہے۔ اور اس کے حصول کے لئے فکر اور
عمل کا توازن بھی قائم ہوتا ہے۔ اس سے انسان میں توانائی بھی پیدا
ہوتی ہے۔ اور حصول مقصد کی راہیں بھی ہموار ہوتی ہیں۔ پھر یہ بذات
خود "قوت خاموش" ہے۔ جو کہ انسان کی منتشر قوتوں کی شیرازہ بندی ہے۔
جب انسان تعین ذات کرکے عمل سے اپنی خودی کو وسعت بخشتا ہے
تو وہ ارتقا کرتا رہتا ہے۔ اس کے ارتقا کی بھی وہی بے مقصد یا بامقصد
شکل تھی جس سے وہ عرفان ذات تک پہنچا۔ پھر اس کے بعد وہ اپنی قوتوں
کو اس سے بھی بلند تر مقاصد کے لئے استعمال کرنے کے لئے خودی کی دھار
کو تیز کرکے آگے بڑھتا ہے۔ اور جتنی بھی اس کی خودی میں کاٹ زیادہ
ہوگی۔ اتنی ہی یہ مستحکم ہوتی جائے گی:

بڑھے جا یہ کوہ گراں توڑ کر
طلسم زمان و مکاں توڑ کر

اور پھر:

جہاں اور بھی ہیں ابھی بے نمود
کہ خالی نہیں ہے یہ غیر از وجود

انسان جب تعین ذات کرکے عمل شروع کرتا ہے تو اس
کے ادراکات میں وسعت پیدا ہوتی ہے۔ مگر اس وسعت میں
بھی ایک وحدت ہوتی ہے۔ جس کا مرکز خودی ہوتا ہے۔ یہ تمام
عوامل اور تحریکات انسان کے عمل کی وسعت کے ساتھ ساتھ خودی
میں وسعت پیدا کرتی ہیں۔ فرد مادی اور روحانی لحاظ سے بلند ہونے
لگتا ہے۔

خودی کی ترقی یا وسعت کے لئے اقبال تین باتوں کو بنیاد
بناتا ہے۔ سب سے پہلے وہ اطاعت پر زور دیتا ہے جس
کا مفہوم ہے قانون فطرت یا دین فطرت کی پابندی۔ اس کا تعلق
حیات سے ہے۔ یعنی معاشرے کا پاس کرکے خود اپنی قوت عمل
کے لئے ترقی کے مواقع فراہم کرنا۔ اس کے بعد ضبط نفس کا مقام
آتا ہے۔ اس کا مفہوم ہے خود اپنی خواہشات پر پابندی لگانا اور
ان خواہشات کو نکال باہر کرنا جن سے خودی کمزور ہوتی ہے
اور ان کی جگہ ان آرزوؤں اور تمناؤں کو فروغ دینا جن سے
خودی کی ترقی زیادہ سے زیادہ ہوسکے۔ اور جب خودی ان دونوں
عملی اور فکری قوتوں سے لیس ہوجاتی ہے اور ساتھ میں موحد بھی
ہو تو نیابت الٰہی کے مقام پر فائز ہونے کے قابل ہوجاتی ہے۔

خودی کی ترقی دو چیزوں سے ہوتی ہے، تطہیر فکر
اور عمل۔ ان سے انسان کی قوت تسخیر صلاحیت پاکر زیادہ سے
زیادہ پھیلاؤ کے ساتھ خودی کے استحکام کے لئے ذرائع فراہم کرتی
ہے۔ اپنے اوپر قابو رکھنے اور عمل کو صحیح راہ پر لگانے کے لئے
اقبال جس جذبہ پر زور دیتا ہے۔ اب ذرا اس پر بھی غور کریں:

مادئین دنیا کو دو حصوں میں تقسیم کر دیتے ہیں۔ ایک مادہ
اور دوسرا انرجی ENERGY۔ مگر اقبال اس کو خودی اور غیر خودی
میں تقسیم کرتے ہیں۔ خودی کے مقابل غیر خودی سے اس کی مراد
عالم خارجی سے ہے جس پر خودی اپنے زور عمل سے قابو پاکر مادی
اور روحانی فیوض سے اپنا دامن بھرتی ہے۔

خودی کی تسخیری قوت کے لئے وہ جس لفظ کو استعمال کرتا
ہے وہ ہے عشق۔ اس لفظ کے اندر بڑی ہی وسعت ہے۔ اقبال
کے کلام کو اگر سامنے رکھا جائے تو اس لفظ سے عشق مجازی اور
حقیقی کے علاوہ ایک نئے معنی بھی ذہن میں آتے ہیں۔ اس
مفہوم میں ایک بے کراں سمندر پنہاں ہے۔ جس طرح کہ اقبال
روح اور مادے کی دوئی کا قائل نہیں اسی طرح وہ عشق کی زد
میں تسخیر کائنات کو ہی نہیں بلکہ روحانی رفعتوں کو بھی سمیٹتا ہے۔

مقاصد سے لگن، تعمیر، اور تخلیق میں غیر معمولی انہماک اسی سے پیدا ہوتا ہے۔ یہ اگر مقاصد متعین کرتا ہے تو پھر ان کو تسخیر اور جذب کرنے کی قوت عمل بھی بخشتا ہے۔ اقبال نے عشق اور عمل میں خاص امتیاز قائم کیا ہے:

"عقل اسباب و علل کی پابند ہوتی ہے۔
کسی کو اپنے قابو میں لانے کے لئے طرح طرح
کے جال پھیلاتی ہے پھر بھی عقلی تصوّرات
کی بنیاد بیم و شک پر ہے۔ اس کے برعکس
عشق میدان عمل میں بے دھڑک کود پڑتا ہے۔
مکر و فریب کی جگہ اسے اپنی قوت پر اعتماد
ہوتا ہے اور اس کی بنیاد عزم و یقین پر
ہوتی ہے۔ نتیجہ یہ ہے کہ عقل کے تعمیری
کام بھی عمل سے دوچار ہوتے ہیں مگر عشق
کی ظاہری تباہیاں بھی انجام کار آبادی و
کامرانی سے دوچار ہوتی ہیں۔"

(ڈاکٹر محمد طاہر فاروقی: اقبال کا تصور انسان کامل)

اقبال عقل بے عمل کے خلاف ہے۔ وہ تصورات کے گھروندوں میں بسنے اور گوشہ نشینی کے بھی خلاف ہے۔ وہ اس علمیت اور عقلیت کو بیکار سمجھتا ہے جس میں ہاتھ پہ ہاتھ رکھ کر بیٹھ رہنا اور خیالی قلعے بنانا ہی سب کچھ ہو۔ وہ عقل کو عشق کے بغیر ایک بیکار شے تصوّر کرتا ہے۔

اگر عشق کو علوم جدیدہ کی روشنی میں سمجھا جائے تو یہ ماننا پڑتا ہے کہ اقبال نے اس کو بلند جذبات کے معنی میں استعمال کیا ہے۔ اور یہ ماننے کے لئے ہمارے پاس یہ دلیل ہے کہ اقبال فلسفہ اور نفسیات سے بخوبی واقف تھے اور اسی لئے انہوں نے مجرّد عقلیت پر جذبات کو فوقیت دی ہے۔ اگر نفسیات کے ماہروں اور فلسفیوں کی آراء کا اس باب میں تجزیہ کیا جائے تو اقبال کی یہ کوشش مستحسن نظر آتی ہے کہ انہوں نے عشق کو عقل پر فضیلت دی۔ جو فطری بات ہے۔ اس لئے کہ "عقل جذبات کی لونڈی ہے" عقل یا علم بذات خود کوئی عملی قوت نہیں بلکہ جذبہ کی شہ پاکر کام کرنے کی صحیح راہ سجھاتی ہے اور جس پر عمل کی قوت سے جذبہ فتح پالیتا ہے۔

ایچ۔ سی۔ وارن کہتا ہے کہ "عقل اس ذہنی عمل کا نام ہے۔ جو اپنے جذبات کو نامحسوس طریقے سے کامیابی سے آشنا کرے"۔ فرائڈ کہتا ہے کہ "عقل ان عقائد کیلئے جو ہم رکھنا چاہتے ہیں دلائل فراہم کر دیتی ہے"۔ اس بارے میں ایک اور مغربی مفکر کی رائے بھی بڑی نتیجہ خیز ہے: "عقل کبھی جذبات پر غالب نہیں آسکتی۔ ایک جذبہ کو دوسرا جذبہ ہی مغلوب کر سکتا ہے"۔ "یونیسکو رپورٹ" ۱۹۶۱ء کا یہ جملہ بھی قابل غور ہے کہ "انسان کی عقل اس کی رہنمائی ادھر ہی کریگی جو اس کے حق میں مفید ہوگا"۔

جذبات اچھے اور بُرے دونوں ہوتے ہیں۔ اور اسی لحاظ سے اس کے نتائج مرتب ہوتے ہیں۔ اقبال کا عشق اچھے اور تخلیقی جذبات کا مفہوم ادا کرتا ہے۔ اقبال کے ہاں اچھے جذبات کو ایک ہی کسوٹی میں کسا جا سکتا ہے اور وہ ہے خودی۔ اگر ایک جذبہ خودی کو طاقت۔ رفعت اور وسعت بخشش دیتا ہو تو اچھا ہے ورنہ برا۔ پھر یہ اچھائی یا برائی صرف ذات تک محدود نہیں رہتی بلکہ اقبال خودی کے ساتھ بیخودی کا بھی مبلغ ہے۔ اس لحاظ سے اچھے اور برے جذبات میں انفرادی پسند یا خیر کو ہی کسوٹی نہیں بنایا جا سکتا۔ اگر ذاتی منفعت یا استحکام کو ہی ضمیر کی آواز سمجھ لیا جائے تو اجتماعی شیرازہ منتشر ہونے کے علاوہ فرد کی اپنی خودی بھی خطرے میں آجاتی ہے۔ اس لحاظ سے رہنما کا ہونا ضروری ہے بغیر اس کے جذبات کسی وقت بہک کر غلط رخ اختیار کر کے خودی کو برباد کر سکتے ہیں۔ لہٰذا سیدھا سا نتیجہ یہ نکلا کہ قرآن جو خدا کا کلام ہے بہترین رہنما ہے۔ قرآن پر عمل ایک طرف تو خودی کو مستحکم بنیادوں پر کام کرنے کی توانائی بخشتا ہے، دوسری طرف اس کے دل سے خوف غیر اللہ کو ختم کر دیتا ہے۔ اس لئے موحد کا سر کسی اور کے آگے جھک ہی نہیں سکتا۔ اور نہ غیر اللہ سے اس کے دل میں خوف ہی پیدا ہوتا ہے۔ جس کا منصب یہ ہو کہ "وہ خدا سے راضی ہو۔ اور خدا اس سے راضی ہو"۔ تو اس کے اوپر "حزن" و "خوف"

کے پیدا ہونے کا خیال ہی پیدا نہیں ہوتا۔ اس لحاظ سے اقبال رسول کریمؐ کی تقلید پر بھی زور دیتا ہے۔ جو کہ قرآن کی عملی شکل ہیں۔ جن سے بہتر کوئی بھی اس عملی شکل کو پیش نہیں کر سکتا۔ جب خودی۔ عشق یا جذبہ والہانہ کی آگ میں تپ کر عمل اختیار کرتی ہے۔ اور اس میں وسعت اور گہرائی پیدا ہوتی ہے۔ تو اس سے انسان ارتقا کر کے مردِ فقیر کے مقام تک پہنچتا ہے۔

فقرِ اقبال "بے دولتی اور رنجوری کے مفہوم" میں نہیں لیتا۔ بلکہ یہ استغنا کے مترادف استعمال ہوا ہے۔ "مردِ فقیر جاہ منصب۔ مال۔ عزت۔ شہرت۔ اور سوال سے بلند ہوتا ہے"۔ اسلام فقر میں پیدا ہوا۔ فقر کی گود میں پلا اور فقیری نے ہی اسے شہنشاہی بخشی حضورؐ کا ارشاد ہے: "الفقر فخری"۔ مومن جب اس راز سے واقف ہو جاتا ہے تو معاشی یا مادی مسائل اس کے جذب و تسخیر کی قوت کو نہیں روک سکتے۔ بلکہ فقر پر بھی وہ فخر کرتا ہے۔ وہ اپنی خودی کو وسعت دینے اور معاشرے کی بہتری کے لئے بغیر کسی مالی لالچ کے کام کرتا ہے۔ دولت بھی اسے ملتی ہے اور حکومت بھی۔ مگر اس کا مقصد اس سے بلند تر ہوتا ہے:

اک فقر ہے شبیری اس فقر میں ہے میری
میراث مسلمانی سرمایۂ شبیری

جب خودی میں جذبۂ والہانہ اور عشق پیدا ہو جاتا ہے تو وہ آرزو و جستجو کی تلوار سے جذب و تسخیر کرتی جاتی ہے۔ جیسے جیسے خودی میں وسعت اور طاقت پیدا ہوتی ہے۔ ویسے ویسے انسان فقیری کے مقام پر فائز ہو کر مومن کہلانے لگتا ہے۔ یہی مومن ہے جو کائنات میں خالق کی حیثیت سے جلوہ گر ہو کر روحانی بلندیوں پر پہنچ جاتا ہے۔ اور حدِ آخر پر خلیفۃ اللہ کہلانے لگتا ہے اور اللہ کا ہاتھ بن جاتا ہے:

ہاتھ ہے اللہ کا بندۂ مومن کا ہاتھ
غالب و کار آفریں کارکشا کارساز
خاکی و نوری نہاد بندۂ مولا صفات
ہر دو جہاں سے غنی اس کا دلِ بے نیاز

اور خدا کا مقصد ہی ایسے مومن پیدا کر کے کائنات کو سنوارنا ہے۔ اور اس سے کائنات میں ترقی کی راہیں ہموار کرنا ہے:

عقل کی منزل ہے وہ عشق کا حاصل ہے وہ حلقۂ آفاق میں گرمیِ محفل ہے وہ

اور اس کی وجہ یہ ہے کہ وہ اپنے اعمال میں اپنے خونِ جگر کی آمیزش کرتا ہے۔ تب ہی کائنات اور زندگی میں دمک اور حسن آنکھیں کھولتا ہے:

نقش ہیں سب ناتمام خونِ جگر کے بغیر
نغمہ ہے سودائے خام خونِ جگر کے بغیر

اقبال کو اپنے اس قول کی صداقت پر یقین تھا کہ "ہر صحیح مومن فوق البشر ہے۔ اور اسلام وہ بہترین سانچہ ہے جس میں فوق البشر ڈھلتے ہیں"۔ اسی لئے انہوں نے فوق البشر کے ارتقا میں اسلامی حقائق کو بڑی خوبصورتی سے فلسفیانہ اور نیم شاعرانہ انداز سے واضح کیا ہے۔ وہ مسائل حاضرہ کے الجھے ہوئے مسائل کا بہترین حل اسی کی ذات کو سمجھتے تھے کہ یہ گتھیاں بغیر اس کے حل نہیں ہو سکتیں۔ اس لئے کہ آج نہ تو انسان کامل ہے اور نہ یہ موجودہ سانچے ہی اس قابل ہیں کہ کائنات کو بلند ترین مقامات تک لے جا سکیں۔ اس لئے کہ ان سانچوں کو خود ثبات نہیں۔ ہر لمحہ ان میں انقلابات رونما ہو رہے ہیں۔ ان کا صحیح حل اسلامی عقائد سے اٹھا ہوا انسان کامل ہی ہے۔ اقبال اس بارے میں کہتے ہیں:

"مسلم وہ خاک نہیں کہ خاک اسے جذب کر لے۔ یہ ایک قوت نورانیہ ہے جو جامع ہے۔ جوہرِ موسویت اور ابراہیمیت کی آگ اسے چھو جائے تو برد و سلام بن جائے۔ پانی اس کی ہیبت سے خشک ہو جائے۔ آسمان و زمین میں یہ سما نہیں سکتی کہ دونوں ہستیاں اس میں سمائی ہوئی ہیں۔ پانی آگ جذب کر لیتا ہے۔ عدم بود کو کھا جاتی ہے۔ پستی بلندی میں سما جاتی ہے۔ مگر جو قوت جامع اضداد ہو اور محلل تمام تناقضات کی ہو اسے کون جذب کرے۔ مسلم کو موت نہیں چھو سکتی کہ اس کی قوت حیات موت کو اپنے اندر جذب کر کے حیات و ممات کا تناقض مٹا چکی ہے مسلم حنیف جذبات متناقض یعنی قہر و محبت اپنے قلب کی گرمی سے تحلیل کرتا ہے اور اس کا دائرۂ اثر اخلاقی تناقضات تک ہی

محدود نہیں بلکہ تمام طبعی تناقضات پر حاوی ہے۔
پھر مسلم جو حامل ہے محمدیت کا اور وارث
ہے موسویت کا اور ابراہیمیت کا کیونکہ کسی شے
میں جذب ہو سکتا ہے۔ البتہ اس زمان و مکان
کی مقید دنیا میں ایک ریگستان ہے جو مسلم کو
جذب کر سکتا ہے۔ اور اس کی قوتِ جاذبہ ذوقی
اور فطری نہیں بلکہ مستعار ہے ایک کفِ پا
سے جس نے اس ریگستان کے چمکتے ذرّوں
کو کبھی پامال کیا تھا۔"

ان باتوں میں کتنی گہرائی اور وسعت ہے۔ اس پر غور ضروری ہے ورنہ انسانِ کامل کے تمام راز منکشف نہ ہوں گے۔
انسانِ کامل نہ صرف کائنات کو بہتر اور بلند مقاصد کی طرف لے جائے گا بلکہ اس کی اپنی زندگی بڑی وسیع و رفیع ہو جائے گی۔ کیونکہ اس کو خوف اور غم سے نجات ہوگی۔ اسی جہان میں ہی وہ خوش و خرم نہ رہے گا بلکہ دوسرے جہان میں بھی اس کی زندگی مسرتوں سے لبریز ہوگی۔ کائنات کے تمام فلسفے کا نچوڑ سچی مسرت ہے۔ ڈارون تنازع للبقا۔ مارکس روٹی۔ فرائڈ جنس، اور نطشے تفاخر کو ہی اصل حیات سمجھتے ہیں مگر یہ سب زندگی کی معمولی ضروریات ہیں۔ اگر ان سب کو اکٹھا کیا جائے تب بھی وہ مسرت جو کہ انسان کامل کو حاصل ہے ملنی مشکل ہے۔ اس لئے کہ مسرت کی خواہش کہیں اور سے ہی پھوٹتی ہے۔ ہم غلطی کر کے ان معمولی چیزوں کو مسرتوں کا منبع جان لیتے ہیں مگر جلد ہی یہ راب ٹوٹ جاتا ہے اور غم ہی غم چاروں طرف لپٹا ہوا نظر آتا ہے۔
انسانِ کامل اس تاریکی کے بے کراں سمندر میں روشنی کا مینار ہے جس کی اپنی خودی کا نور چھن چھن کر عالم کے تصورات اور تفکرات پر پڑے گا جس سے یہ کائنات بقعۂ نور ہو جائے گی۔
اسی کے دم سے انسانیت کے رستے ناسوروں اور غم اور خوف کی بھٹی میں جلتے ہوئے دل و دماغ کو سکونِ حقیقی اور مسرتِ لازوال نصیب ہوگی۔ اقبال کا تمام کلام انسان کامل کے ارتقائی منازل کی تفسیر اور تشریح ہی ہے:

اس کا مقام بلند اس کا خیال عظیم
اس کا سرور اس کا شوق اس کا نیاز اس کا ناز

نرم دم گفتگو گرم دم جستجو
رزم ہو یا بزم ہو پاک دل و پاکباز

نقطۂ پرکارِ حق مردِ خدا کا یقیں
اور یہ عالم تمام وہم و طلسم و مجاز

عقل کی منزل ہے وہ عشق کا حاصل ہے وہ
حلقۂ آفاق میں گرمیٔ محفل ہے وہ

★

فقر

جز بقرآں ضیغمی روباہی است
فقرِ قرآں اصلِ شاہنشاہی است
فقرِ قرآں اختلاطِ ذکر و فکر
فکر را کامل ندیدم جز بذکر
(اقبال)

"مطرب غزلے بیتے از مرشد روم آور"

(مثنوی مولانا روم کا ایک نادر مخطوطہ)

ابن علی امروہوی

مثنوی کے کئی متن اور متعدد تراجم دنیا کی ہر ترقی یافتہ زبان میں شائع ہو چکے ہیں مگر اس کے قدیم ترین نادر نسخوں اور مخطوطوں کی تلاش کا سلسلہ ہنوز جاری ہے۔ مجھے بھی ایک ایسے ہی قدیم نسخہ کے دیکھنے کا اتفاق ہوا ہے جس کا مذکور یہاں مقصود ہے۔ یہ نسخہ دکن کے مشہور محقق مولوی حکیم سید شمس الدین قادری کے گراں مایہ کتب خانہ میں موجود ہے۔ یہ نسخہ رومیؒ کی وفات کے صرف چالیس سال بعد لکھا گیا تھا۔ ترقیمہ ۷۱۲ھ اس بات پر شاہد ہے۔ یہ نامعلوم ہاتھوں سے گزرتا ہوا شہنشاہ اورنگ زیب عالمگیرؒ کے ذاتی کتب خانہ میں داخل ہوا جس کی سند میں خود عالمگیرؒ کی مہریں ثبت ہیں۔

اس نسخہ میں پورے چھ مکمل دفاتر موجود ہیں اور ۴۸۶۵ صفحات کو محیط۔ ہر صفحہ پر ۲۷ سطریں اور ہر سطر میں چار مصرعے لکھے گئے ہیں۔ پہلے تین دفتروں کا خط نسخ اور آخری تین دفتروں کا نستعلیق ہے۔ ہر عنوان کے لئے تین تین روشنائیاں برتی گئی ہیں۔ اول سنہری، دوسری لاجوردی اور آخر میں شنگرفی۔ تیسرے دفتر کے اختتام پر تاریخ نسخ اس طرح ہے:

"تم المجلد الثالث عن کتاب المثنوی
المعنوی بعون الخالق القوی فی ثانی
عشر من شهر ربیع الثانی سنه اثنی
عشر و سبع مائة"

متن کے اطراف میں جو حاشیہ ہے اس کو بعض اشعار و مقامات کی توضیح کے لئے استعمال کیا گیا ہے اور اکثر جگہ عجیب نکات پیدا ہوتے ہیں بعض جگہ نئے ابیات کا اضافہ بھی ہے مگر جن صاحب کی تحریر ہے ان کا کوئی تعارف درج نہیں البتہ کتابت کی جو تین منظوم تاریخیں پہلے تین دفاتر کے اختتام پر درج ہیں، اس بات کو ظاہر کرتی ہیں کہ یہ ۸۵۳ھ میں لکھی گئیں:

اگر تاریخ این داری توامید
زرخ احمد ۸۵۳ ببیں مانند خورشید
گر ہمی خواہی تو تاریخ کتاب
ہست رمز مثنوی ۸۵۳ اندر حساب
اگر تاریخ این مکتوب خواہی
فرو خوانی تواز ذوق الہی ۸۵۳

عالمگیرؒ کی ایک مہر دفتر اول کے خاتمہ پر ہے۔ باقی دوسرے دفتروں پر۔ اول الذکر مہریں صاف نہیں مگر دفتر ششم کے خاتمہ پر جو مہر ہے وہ کافی روشن ہے:

عالمگیر
(اورنگ زیب محمد)

اس ضمن میں اگر مثنوی کے چند دیگر نایاب مخطوطوں کا ذکر بھی یہاں کر دیا جائے تو بیجا نہ ہوگا۔ دنیا کے اہم کتب خانوں میں ان مخطوطوں کا موجود ہونا ثابت ہے:

۱۔ کتب خانہ خدیویہ۔ مصر۔ مکتوبہ ۱۴ صفر ۶۶۸ھ صرف دفتر پنجم نامکمل۔

۲۔ قونیہ، ترکی، عجائب خانہ آثار قدیمہ مکتوبہ ماہ رجب ۶۷۷ھ بخط محمد بن عبداللہ القونوی۔ کامل۔

۳۔ کتب خانہ حافظ پاشا، قسطنطنیہ، مکتوبہ ۱۵ ربیع الاول ۶۸۰ھ بخط اسمٰعیل بن سلیمان القیصری۔ نامکمل۔

۴۔ برٹش میوزیم۔ لندن۔ مکتوبہ ۷۱۰ھ بخط علی بن محمد المولوی۔ کامل

۵۔ میونخ اسٹیٹ لائبریری۔ جرمنی۔ مکتوبہ
۴ رشعبان ۷۵۶ھ بخط موسیٰ بن یحییٰ
المولوی۔ دفتر دوم نامکمل۔

اس لحاظ سے مذکورہ نسخہ کی قدامت پانچویں نمبر کے بعد اور قدیم ترین وکامل ہونے کی حیثیت سے تیسرے نمبر پر آتی ہے۔

اقبال کے مرشدِ معنوی، مولانا جلال الدین رومی رح کے علم وفضل کا عظیم ترین مظہر مثنوی ہے۔ مولانا کی علمی دستگاہ، تفسیر وحدیث پر ان کی نظر، تصوّف وعلوم کے اسرار کی عقدہ کشائی جو ان کے ہاں ملتی ہے وہ اسلامی فکر وفن کی دنیا میں بے نظیر ہے۔ شرحِ قرآن اور بیانِ ارشاداتِ نبوی میں انہیں جو بہرۂ خاص عطا ہوا تھا اس کی مثال بھی کمیاب ہے۔ دلنشیں حکایتوں، تمثیلوں ورمفید نصائح کا اہتمام، جسے جوامع الکلام کہا جائے توبجا ہے۔ ن کے ہاں بڑی خوبصورتی سے نظر آتا ہے جو دل میں گہرا اتر اتا ہے۔ مثنوی میں جو جوش، جولانی اور اندازِ گفتار ہے سے مولویٔ معنوی پر بس سمجھنا چاہئے۔ ریاونمود، خود غرضی فسانیت اور "اہلِ مدرسہ" پر ان کی گرفت خاص طور پر جالبِ نظر ہے۔ ان کے ظاہری الفاظ پر تو ٹری لے دے بھی ہوتی رہی ہے مگر ان کی نیت کے خلوص اور ولولۂ ایمانی پر کسی نے شک ظاہر ہیں کیا ہے۔ غرور اور ریا کے پتلوں، پیرانِ سالوس کی یسہ کاریوں اور ابلیسیت کے نمونوں پر مولانا کی خاص نظر

لانا نے جو کچھ کہا ہے استعارہ کے حجاب میں رہ کر کہا اور اس ایک اثر یہ ہوا ہے کہ ان کے فرمودات کی آفاقیت مسلّم ہوگئی ہے چنانچہ ہر مذہب ودین کے پیرو اپنے اصول وتعلیمات پر اسے نطبق کر لیتے ہیں اور اس طرح اسلام کی آفاقی تعلیمات عام ہوتی ہتی ہیں۔

بعض اشعار کو الحاقی کہہ کر مثنوی سے خارج سمجھا گیا ہے۔ لانکہ قدیم نسخوں میں یہ سب موجود ہیں۔ مثلاً میں نے جس مخطوطہ ذکر کیا اس میں بھی وہ مشہور شعر موجود ہے جسے مطبوعہ نسخوں خارج کر دیا گیا ہے اور جس پر بڑی بحثیں ہو چکی ہیں۔ یعنی:

من ز قرآں مغز را برداشتم
استخواں پیشِ سگاں انداختم

اس شعر پر اہلِ مدرسہ کا اعتراض ہے کہ اس سے قرآن پر حرف آتا ہے۔ مگر میری رائے ناقص میں مولانا کا یہ مقصود نہیں ہے۔ وہ کہنا یہ چاہتے ہیں کہ میں نے محرمات منصوص فی القرآن سے صرفِ نظر کر کے صرف محللات ومباحات پر نظر رکھی ہے۔ مثلاً یہ کہ قرآن نے خرید وفروخت کو حلال قرار دیا اور سود کو حرام۔ میں نے بیع کو قرآن سے لے لیا اور سود کو سود خوروں کے لئے چھوڑ دیا ہے۔ خود قرآن میں بھی ارشاد ہے کہ ناپاک چیزیں ناپاکوں کے لئے ہیں۔

منجملہ اور اشعار کے یہ شعر بھی الحاقی سمجھ لیا گیا ہے:

ہمچو سبزہ بارہا روئیدہ ام
ہفت صد ہفتاد قالب دیدہ ام

اعتراض ہے کہ اس سے تناسخ کا استدلال ہوتا ہے اور وہ غیر مسلم جو آواگون کے قائل ہیں اس شعر سے سند لیتے ہیں اور اسی لئے مثنوی کے گرویدہ ہو گئے ہیں۔ مگر مجھے یہاں بھی کوئی اشکال نظر نہیں آتا اور شعر کو تناسخ سے متصل کرنے کا کوئی قرینہ نہیں سوجھتا۔ اصل میں یہ صوفیا کے عقیدہ تجدّدِ امثال کی طرف ذہن کو رجوع کرتا ہے۔ مدعا یہ کہ انسان ہر وقت تبدیل ہوتا رہتا ہے اور اس تغیرِ احوال کو ہی برزخ کہا گیا ہے۔ یہ برزخ بھی کئی مدارج میں رہتا ہے۔ برزخ شیخ، برزخ رسول اور آخر میں برزخ خدا۔ یہ برزخ بھی بدلتا رہتا ہے صوفیوں کے اکثر اشعار میں یہ مضمون اسی طرح آتا رہتا اور ہمہ اوست تک منتہی ہوتا ہے۔ یہی وحدۃ الوجود کا تصوّر ہے۔ خلاصہ یہ کہ انسان کسی وقت بھی ایک حالت پر نہیں رہتا اور برابر قالب بدلتا رہتا ہے۔ خوشی، غمی، غضب، رحم، جرأت، بزدلی، غرض ہر لمحہ ایک نیا تجربہ اور احساس ہے جس سے یہ فانی انسان دوچار رہتا ہے۔ یہاں مولانا نے حیاتِ بعد ممات کا کہیں ذکر نہیں کیا بلکہ اسی دنیا میں انسان جن احوال وظروف سے گزرتا چلا جاتا ہے س کی طرف ہمیں متوجہ کیا ہے۔ مولانا کا یہ ارشاد نہیں ہے کہ میں نے سات سو قالب بدلے ہیں، بلکہ یہ کہ اتنے قالب دیکھے ہیں۔ گویا کبھی غافل رہا، کبھی ہشیار، کبھی صحبت صالح حاصل رہی تو کبھی صحبت طالح۔ غرض گوناگوں ماجروں سے واسطہ پڑا۔ ایک اعلیٰ

جگہ پھر اسی طرف اشارہ ہے:

من بہر جمعیتے نالاں شدم
جفت خوشحالاں و بدحالاں شدم

مولانا کے ایک اور شعر پر بھی بہت قیل و قال ہوئی ہے

کور کورانہ مرو در کربلا
تا نیفتی چوں حسینؓ اندر بلا

اس کی شرح میں بھی عجیب عجیب موشگافیاں کی گئی ہیں حلال وقال کا حلقہ کہتا ہے کہ یہ شعر منصور حلاج کی طرف راجع ہے۔ اس کا نعرہ انا الحق حدِ شرعی کا موجب بنا تھا۔ ان منصور کا پیدائشی نام حسین تھا اور باپ کا نام منصور، یعنی حسین بن منصور الحلاج مگر شہرت باپ کے نام سے ہی پائی۔ یہ بھی کہا جاتا ہے کہ شعر میں "کربلا" اصل میں "کرب لا" ہے۔ مدعا یہ ہے کہ "مصیبت" جو حسین بن منصور کو لاحق ہوئی خدائی کا دعویٰ کرنے اور اپنی بشریت کے انکار سے ہوئی ـــ مگر میرا خیال یہ ہے کہ اس توضیح پر دل ٹھکتا نہیں۔ میری دانست میں یہاں حسین سے مراد حسینؓ بن علیؓ کے علاوہ کسی کی ذات گرامی نہیں اور مخاطب سے "کور کورانہ" کہہ کر بات صاف کردی ہے یعنی "تو اندھوں کی طرح کربلا میں نہ جا" کیونکہ یہ تیرے منصب و مرتبہ سے بعید ہے، کیونکہ جب تک حسینؓ کی طرح امتحان میں پورا اترنے کی صلاحیت نہ ہو اپنے آپ کو آزمائش کے میدان میں اتارنا نہیں چاہیئے۔ "بلا" سے گزرنا تو معراج عاشقین ہے مگر جن میں صلاحیت نہیں انہیں اندھوں کی طرح اس وادیٔ پرخار میں قدم نہیں بڑھانا چاہیئے۔ یہاں "بلا" سے مراد عام مصیبت نہیں بلکہ ابتلا (امتحان) ہے جو اہلِ باطن کے لئے آیہ رحمت ہے اور جسے وہ ہر وقت لبیک کہتے ہیں۔ خود قرآن میں ارشاد ہے "جبکہ آزمایا خدا نے ابراہیمؑ کو چند کلمات سے"۔ تو اس کا یہ مفہوم لینا غلط ہوگا کہ خدا نے ابراہیمؑ کو مصیبت میں ڈال دیا کیونکہ خدا تو خود انبیا علیہ السلام کا محافظ و نگہبان ہوتا اور اس کا ہاتھ انبیا کے ہاتھ پر ہوتا ہے۔ یہاں بھی مدعا آزمائش و امتحان سے ہے، جس میں ابراہیمؑ پورے اترے۔

غرض مثنوی ایک ایسی تصنیف ہے جس کے پہلودار معانی، شعری آہنگ، جوشِ بیان اور معنویت نے اسے دنیا کی امہات الکتب میں جگہ دے دی ہے۔ قبولِ عام کا یہ حال ہے کہ شاید ہی کسی کتاب کو نصیب ہوئی ہو۔ علما، صوفیا، اہلِ ظاہر و اہلِ باطن سب ہی اس کے مضامین سے لطف اندوز ہوتے ہیں۔ اس کے پڑھنے کا ایک مخصوص آہنگ ہے اور جو لوگ اس کے غوامض پر نظر نہیں رکھتے ان پر بھی اس کا اثر ضرور ہوتا ہے اور جب بطریق سند اس کا کوئی حصہ پیش کر دیا جائے تو تحریر میں لطف و جاذبیت دوبالا ہوجاتی ہے۔ غرض مثنوی دنیا کی ایک عظیم کتاب ہے اور جیسے جیسے زمانہ گزرتا جا رہا ہے اس کے متن کی تکمیل و تشریح اور تراجم و تفسیر کی حکایت بھی دراز تر ہوتی چلی جا رہی ہے:

★

چوں شما سوئے جمادی می روید
محرمِ جانِ جماداں کے شوید
از جمادے عالمِ جاں در روید
غلغل اجزائے عالم بشنوید

(رومیؒ)

ماہِ نو کراچی، اپریل ۱۹۶۲ء

مطلعِ انوار:

حجابِ تجلّی

عرفان احسان

گھر بھی وہ جو خدا کا گھر ہے، بیت الحرام اور بیت اللہ ہے، جو اس گھر میں داخل ہوا اسے اللہ کی امان اور سلامتی کی ضمانت مل گئی۔ وہ گھر جو مسلمانوں کا قبلہ ہے۔ وہ گھر جو ہر گھر سے زیادہ برگزیدہ ہے جو دنیا کے بتکدوں میں خدا کا پہلا گھر ہے، جسے ایک لق و دق صحرا —— ایک وادیٔ غیرِ ذی زرع —— میں حضرت ابراہیم علیہ السلام نے اپنے فرزندِ جلیل حضرت اسمٰعیل علیہ السلام کے ساتھ مل کر بنا یا تھا جس کی دیواریں اٹھاتے وقت وہ اپنی نسل میں ایک ایسے فرزند کی ولادت کی دعا مانگتے جاتے تھے جو اللہ کے دین کی سربلندی اور اس کے اس گھر کی عظمت کو دو بالا کرنے والی مبارک ہستی ثابت ہو۔ اللہ کے حضور میں یہ دعائے خلیل مقبول ہوئی اور آنحضرت صلی اللہ علیہ وسلم کی ولادت باسعادت نے دنیا کے ظلمت کدہ میں نور ہی نور پھیلا دیا۔ آج یہی گھر ساری دنیا کے مومنوں کا قبلہ ہے، ان کے ایمان کا مرکز و محور ہے جس کی برکتوں سے مالا مال ہونا ہر مستطیع مسلمان پر فرض قرار دیا گیا ہے۔

یہی پاکیزہ مقام مقامِ حج ہے۔ مسلمانانِ عالم کے لئے اپنی جمعیت و مرکزیت برقرار رکھنے، اخوت کو ترقی دینے اور دین و دنیا کی برکتیں حاصل کرنے کا گہوارہ ہے۔ یہاں ہر سال دنیا کے ہر ہر گوشے سے مسلمان حج کے لئے آتے ہیں یا عمرہ کرتے ہیں۔ راستے کی تکلیفیں اور طرح طرح کی صعوبتیں بھی خندہ پیشانی سے برداشت کرتے اور رضائے الٰہی کے جویا ہوتے ہیں۔ جب دور سے یہ پاکیزہ بستی نظر آنے لگتی ہے تو خوشی سے پھولے نہیں سماتے۔ ہر ایک کی زبان پر "لبیک! لبیک" کا نعرہ ہوتا ہے۔

اس گھر کی زینت وہ غلاف ہے جو دنیا کی ہر پوشش سے زیادہ بابرکت اور ہر کپڑے سے زیادہ پاکیزہ، منزہ اور بصیرت افروز ہے۔ پاکستان آج اس بات پر جسقدر بھی فخر کرے کم ہے کہ امسال اس غلاف کے تیار کرنے کی سعادت اس کے مقدر میں لکھی گئی۔

ایک تاریخی روایت یہ بھی کہتی ہے کہ اب سے نو سو سال پہلے بھی ۱۰۷۴ء میں یہ سعادت سرزمین پاکستان کو حاصل ہو چکی ہے۔ پاکستان کے شہر کراچی اور لاہور جتنا بھی ناز کریں بجا ہے کہ اس سال وہاں غلاف کعبہ کے حصے تیار کئے گئے۔ غلاف کعبہ کی تیاری کے سلسلے میں حکومت سعودی عرب نے پچھلے سال اگست میں تین افراد پر مشتمل ایک وفد پاکستان اس غرض سے بھیجا تھا کہ وہ یہاں آکر اس کی تیاری کے امکانات کا جائزہ لے چنانچہ دس گز کپڑا بطور نمونہ تیار کر کے سعودی عرب بھیجا گیا جسے سلطان سعود کی منظوری حاصل ہوگئی۔ اس کے بعد یہ کام باقاعدہ پاکستانی ہنروروں کو سپرد کر دیا گیا۔ حکومت سعودی عرب کے سفارتی حکام نے اس کام کی نگرانی کی۔ علمائے کرام کی سرپرستی اور ہمارے ہنرمندوں کی محنت و ذہانت سے یہ کام بہت ہی کم وقت میں مکمل ہوگیا۔ جن لوگوں کو یہ کام سونپا گیا تھا وہ وہی حضرات ہیں جنہیں "بنارسی" کام کے ماہر کہا جاتا ہے اور جن کے ہنر کا اب دنیا کے ہر ہر گوشے میں تعارف ہو چکا ہے۔ اس طرح پاکستان کے ان صناعوں کو ہر جگہ قدر کی نگاہ سے دیکھا جا رہا ہے۔

غلاف کعبہ تیار کرنے کا کام دو شفٹوں میں ہوتا تھا۔ پہلی شفٹ سولہ گھنٹے مسلسل کام کرتی تھی پھر دوسری شفٹ کام سنبھال لیتی تھی۔ غرض اس طرح شبانہ روز محنت سے اسے مکمل کیا گیا۔ اس کے ریشمی کپڑے کا رنگ سیاہ ہے۔ اس سے قبل مصر سے جو غلاف آتا تھا اس کا رنگ گہرا نیلا ہوتا تھا۔ کپڑے کی بُنت میں

کلمہ طیبہ نظر آتا اور آنکھوں کو نور بخشتا ہے۔ اس کا ڈیزائن تیار کرنے والے پاکستانی ہنرمندوں نے اپنی پوری مہارت کا ثبوت دیا ہے۔ یہ غلاف حج سے تین دن قبل خانۂ کعبہ پر چڑھایا جاتا ہے۔ اس سے قبل کعبہ کو دھونے کی رسم بھی ادا کی جاتی ہے۔ اس مبارک تقریب میں خود جلالۃ الملک سلطان سعود، ممتاز اراکینِ سلطنت اور اعیانِ ملک شریک ہوتے اور برکت حاصل کرتے ہیں۔

یہ بھی اطلاع ہے کہ کعبہ کے گرد جو سنگی فرش لگا ہوا ہے اس کی جگہ اب پاکستانی مرمر کا فرش لگایا جائے گا جس کا رنگ سبز ہے۔ اس تجویز کی جانچ کی جا رہی ہے۔ قوی امید ہے کہ یہ سعادت بھی پاکستان کو ہی نصیب ہوگی جس کے لئے ہم حضورِ باری میں جس قدر بھی شکر ادا کریں کم ہوگا۔

کعبہ کو غلاف پوش کرنے کی رسم نہایت قدیم ہے۔ قبلِ اسلام بھی اس پر عمل ہوتا تھا۔ حضور صلعم کے عہد میں بھی کفار کی طرف سے چڑھایا ہوا غلاف موجود رہا مگر پھر قدرتِ حق نے یہ شرف بھی مسلمانوں کو ہی بخش دیا جس کی تفصیل آئندہ آئے گی۔

ہمیں معلوم ہے کہ بیت اللہ ایک زمانہ تک کفار کے قبضہ میں رہا۔ یہاں انہوں نے ۳۶۰ بت سجا رکھے تھے جن میں لات منات سب سے بڑے تھے۔ جب اللہ نے کفر کی طاقتوں کو شکست دی اور یہ گھر حقیقی معنوں میں خدا کا گھر بنا تو پھر غلاف چڑھانے کی رسم بھی مسلمانوں ہی کے پاس آگئی۔ اور جیسا کہ ابھی عرض کیا گیا اسلام کے ابتدائی دور تک غلاف کعبہ کفار ہی چڑھایا کرتے تھے۔ — مگر اس درمیان میں ایک عجیب واقعہ رونما ہوا۔

ایک مکی عورت کے ہاتھوں اتفاق سے غلاف کعبہ میں آگ لگ گئی ——— یہ خبر حضور مقبول صلی اللہ علیہ وسلم تک پہنچی تو حضور صلعم نے فرمایا "چلو اچھا ہوا۔ کفر کی یہ آخری نشانی بھی ختم ہوئی"۔ کفار کے چڑھائے ہوئے آخری غلاف کو اللہ کی حکمت نے اس طرح اپنے گھر سے دور کر دیا۔ حضور صلعم نے حکم دیا کہ یمن میں ہی دوسرا غلاف تیار کرایا جائے۔ چنانچہ حضرت ابوبکرؓ کے عہد تک یہ غلاف یمن سے بن کر آتا رہا۔ حضرت عمرؓ کے زمانہ میں یہ سعادت مصر کو مل گئی اور ہمارے عہد تک یہ سلسلہ جاری رہا۔ اس طویل عرصہ میں چند ہی بار مسلمان سلاطین کے بھیجے ہوئے غلاف یہاں آئے تھے۔

کعبہ کی اونچائی ۱۶½ گز ہے۔ اس پاکیزہ غلاف کے ۱۴½ گز کے مختلف حصے تیار کئے گئے ہیں جنہیں جوڑنے کے لئے پاکستان سے ہی کاریگر جائیں گے۔

پچھلی جنگِ عظیم کے دوران مصر سے غلاف کعبہ کا آنا بند ہو گیا تھا اس لئے سعودی عرب ہی میں اس کی تیاری کے انتظام کئے گئے اور اس کام کے لئے برصغیر سے "بنارسی کام" کے ماہر بلوائے گئے تھے۔ اس سال غلاف کعبہ کا ایک حصہ تیار کرنے والی فرم کے مالک کے دادا کو اس موقع پر سعودی عرب بلوایا گیا تھا اور اب یہ سعادت پھر اسی خاندان میں منتقل ہوئی ہے۔

جب سے یہ خبریں عام ہوئی تھیں کہ اس سال غلاف کعبہ پاکستان میں بن رہا ہے اور وہ بھی کراچی و لاہور کے دو بڑے شہروں میں تو لوگوں کا اشتیاق بہت بڑھ گیا تھا۔ ہر جگہ یہ اصرار کیا جا رہا تھا کہ اس متبرک شاہکارِ فن کو دکھانے کا اہتمام کیا جائے۔ چنانچہ کراچی اور لاہور میں یہ غلاف حکومت سعودی عرب کے نمائندوں کو سپرد کرنے کی بڑی مہتم بالشان تقریبات منعقد کی گئیں جن میں سفارتی نمائندے، ممتاز اراکینِ حکومت، اعیانِ شہر اور قائدینِ ملت نے خصوصیت کے ساتھ شرکت کی۔ بعض اداروں کی طرف سے بھی غلاف کی زیارت کے لئے خصوصی انتظامات کئے گئے۔ اس کے بعد زیارتِ عام کے لئے غلاف جابجا بھیجا گیا۔ علمائے کرام اور قومی کارکنوں نے اس کام میں ہاتھ بٹایا۔ ادھر پاک ویسٹرن ریلوے نے اسپیشل گاڑیوں کے ذریعے پشاور سے کراچی تک اس کی زیارت کا اہتمام کیا۔ راستے میں پڑنے والے تمام بڑے شہروں کے اسٹیشنوں پر یہ گاڑیاں ٹھہریں۔ دور و نزدیک کے قصبوں، دیہاتوں بلکہ دور افتادہ مقامات تک سے لوگ جوق در جوق اسے دیکھنے کے لئے اسٹیشنوں تک پہنچنے لگے۔ بڑے شہروں میں تو مشتاقانِ دید کی تعداد لاکھوں تک پہنچ گئی جن میں خواتین نے بڑھ چڑھ کر حصہ لیا۔ شہروں کے مرکزی مقامات، گلی کوچوں، بازاروں اور شاہراہوں سے جہاں جہاں غلاف کعبہ کا جلوس گزرا لوگوں کے ٹھٹ کے ٹھٹ لگ گئے اور ایسے اہتمام و انتظام سے جلوس نکلے کہ بہت کم دیکھنے میں آئے ہیں۔ یہ سب ہمارے دلی جذبۂ عقیدت کے مظہر تھے۔ بعض نے دور سے نظارہ کیا

بعض خوش نصیبوں کو نزدیک سے زیارت کا شرف حاصل ہوا جہاں جہاں آدمی کھڑے ہو کر نظارہ کر سکتا تھا، جہاں سے بھی اس کی زیارت کی جاسکتی تھی، وہاں لوگ گھنٹوں پہلے سے جمع ہو جاتے تھے۔ لاہور میں صنعتی ترقیاتی کارپوریشن کے شوروم میں بھی اس کے ایک حصہ کو زیارت کے لئے رکھا گیا۔ اس موقع پر پرانے مصری غلاف کے ایک جزو کی زیارت بھی کرائی گئی تھی۔ لوگ انبوہ در انبوہ آتے جاتے تھے اور اپنی آنکھوں کو نور بخشتے تھے۔

مغربی پاکستان میں زیارت غلاف کعبہ کا یہ اہتمام ہوا تو ہو یہ کیسے ممکن تھا کہ مشرقی پاکستان کے بھائی اس سعادت سے محروم رہتے چنانچہ ان کو بھی اس سعادت میں شریک کرنے کے لئے ہوائی جہاز سے غلاف مشرقی پاکستان بھی بھیجا گیا۔ ڈھاکہ، چاٹگام وغیرہ میں لاکھوں انسانوں نے عقیدت کی نگاہوں سے اسے دیکھا اور اللہ کا شکر ادا کیا کہ پاکستان کو اس غلاف کے بنانے کی سعادت نصیب ہوئی۔ یہاں بھی جن جن راہوں سے اس کا جلوس گذرا لوگوں کا بے پناہ مجمع ہو جاتا تھا۔ مشتاقان دید بہاں بھی ہر اس جگہ پر نظر آتے تھے جہاں سے وہ اس کی زیارت کر سکیں۔ وہ اس کی زیارت کے لئے ایک دوسرے پر سبقت لے جانے کی کوشش کرتے تھے۔ جہاں جہاں سے جلوس گذرا اللہ اکبر کے فلک شگاف نعروں سے فضا معمور ہو گئی۔ لاکھوں انسانوں کے اس جوش عقیدت اور ان ایمان پرور نظاروں کو دیکھ کر جی چاہتا تھا کہ بارگاہ الٰہی میں قدم قدم پر سجدۂ شکر ادا کیا جائے۔

یہ ہجوم، یہ جوش، یہ عقیدت، یہ حصول برکت کا جذبہ قدرتی بات تھی۔ مسلمانان پاکستان کے ایمان اور ان کے گہرے دینی شغف کا یہ بڑا روح پرور منظر تھا۔ ہم اس بات پر جس قدر بھی فخر کریں کم ہے کہ اللہ تعالیٰ نے پاکستان کو یہ سعادت عطا کی۔ امید ہے دنیائے اسلام میں اس خدمت کو تحسین کی نظر سے دیکھا جائے گا۔

یہ نہ صرف ہمارے اہلِ کمال کے ہنر کی داد اور قدر افزائی ہے بلکہ یہ پیغام بھی ہے کہ ہمیں اسلامی روایات کو برقرار رکھنے، عالمگیر اسلامی اخوت کو ترقی دینے اور اسلام کی پاکیزہ تعلیم پر عمل کرنے میں اور بھی کوشاں ہونا چاہئے، یہ امید رکھتے ہوئے کہ ہماری یہ خدمت مقبول بارگاہِ ایزدی ہوگی اور اس کے طفیل اللہ کی نعمتیں اور برکتیں تمام مسلمانان عالم اور اہلِ پاکستان پر ہمیشہ ہمیشہ نازل ہوتی رہیں گی۔

*

رسمِ جہاں

اظہر جاوید

ڈھل گئی دھوپ، بڑھ گئے سائے
صحنِ گلشن میں مسکراتی ہوئی
رقص کرتی ہوئی بہار آئی
ایک گل، آخری ہنسی ہنس کر
نوشگفتہ کلی سے کہنے لگا
ہم چلے، رنگ و بو کی محفل سے
(ایک ہچکی، سکوت، تنہائی)
خاک پر پتیاں نظر آئیں
اور وہ بھی کہاں نظر آئیں
ڈھل گئی دھوپ، بڑھ گئے سائے
نوشگفتہ کلی۔ بہ اذنِ حیات
لے کے انگڑائی ایک پھول بنی
پھر وہی گلستاں، وہی حالات

★

طلوعِ نو

سلطان زبیری

رات بھر بیٹھی ہوئی گوشۂ تنہائی میں
اوس روتی رہی گلزار میں آٹھ آٹھ آنسو
جھلملاتے رہے آنکھوں میں ستارے پیہم
جگمگاتے رہے پلکوں پہ گہربار دیئے
مسکراتے رہے آکاش پہ بکھرے تارے
گنگناتے رہے سرمست ہوا کے جھونکے
مثلِ بیگانہ گذرتی رہی آوارہ صبا
کھلکھلاتے رہے البیلے رسیلے غنچے
سر بہ زانو رہی، روتی رہی شب بھر شبنم
کوئی مونس، کوئی محرم، کوئی ہمدم نہ ملا!
بسترِ شب سے کسی شوخ کرن نے اٹھ کر
پھینک دی دور اندھیرے میں سلگتی چادر
حجلۂ شرق کے پُرنور دریچے کھولے
گل بداماں، شفقی پردے ہٹا کر جھانکا
اوس کو باغ میں بیٹھے ہوئے روتے دیکھا
درد انگڑائیاں لیتا ہوا دل میں جاگا
بامِ خورشید سے وہ زینہ بہ زینہ اتری
مسکراتی ہوئی، ہنستی ہوئی، چھم چھم کرتی
نرم شیفون سے آنچل سے بڑے پیار کے ساتھ
چشمِ شبنم سے ڈھلکتے ہوئے آنسو پونچھے
مسکراہٹ سی فضاؤں کے لبوں پر دوڑی
دکھ کی ماری ہوئی دنیا میں اجالے جاگے

افسانہ:

آخرِ شب کے ہم سفر

عظیم سرور

جتنی دیر میں جبّار نے رسنجد اور شینے کی سوکھی جھاڑیوں کا بڑا ڈھیر بنایا۔ عبدالصمد اور فتح گُٹے نے مل کر مارخور کی کھال اتاری۔

شام کے سائے پھیل رہے تھے۔ اور اس سے قبل کہ پہاڑ شام کی سرمئی شال اوڑھ لیتے انہیں الاؤ روشن کرنا تھا پھر مارخور کا گوشت شہتوت کی پتلی شاخوں پر چڑھا کر الاؤ کے گرد لگانا تھا کہ ان کی شب بسری کے لئے سجی تیار ہو سکے۔ گوشت کی یہ بہترین قسم لذیذ تو خیر ہوتی ہی ہے مگر جسم کو پہاڑوں کی خنکی سے محفوظ بھی رکھتی ہے۔

صمد، جبّار اور فتح آج دوپہر ہی زرغون پہاڑ پر آئے تھے۔ پہاڑ پر آنے کے بعد تھوڑی سی دیر ہی میں انہیں مارخور دکھائی دیا جبّار نے خاموشی سے اُس پر فائر کر دیا۔ ایک گولی کھا کر تو مارخور بآسانی بھاگ جاتا لیکن وہ غصے میں پلٹا اور پہاڑ کے سینے سے باہر کی طرف نکلے ہوئے ایک پتھر کے ساتھ اُس کا سر ٹکرایا اور وہ چکرا کر گر پڑا۔ اِس عرصے میں عبدالصمد اور فتح گُٹے کی رائفلوں نے بھی آگ اگلی اور مارخور تڑپنے لگا۔ پہاڑ پر آتے ہی بسم اللہ ہو گئی تھی اور اب تینوں کا یہ خیال تھا کہ اس بار خوب شکار ملے گا اسی لئے تو وہ پورے جوش کے ساتھ خوشی خوشی اپنے کام میں مشغول تھے۔

جبّار نے ایک جگہ کچھ جھاڑیاں جمائیں اور انہیں آگ دکھا دی۔ سوکھی جھاڑیوں سے ایک دم شعلے بلند ہونے لگے۔ تھوڑی سی دیر میں صمد اور فتح نے مارخور کا گوشت بھی شہتوت کی ٹہنیوں پر چڑھا لیا اور الاؤ کے گرد گاڑ دیا۔

اب محفل جم چکی تھی —— تھوڑی دیر انہوں نے پہاڑ کی خوشگوار ہوا، بلندی اور وادی کی خوبصورتی اور حسن کی باتیں کیں۔ انہی باتوں کے درمیان صمد نے لے اٹھائی اور کاکڑی غاڑے گانے لگا۔ فتح اور جبّار واہ واہ کرتے جاتے۔ پھر فتح نے کچھ بند لگائے اور جبّار نے "آس" کے ساتھ اپنی آواز ملانی شروع کر دی۔

اس ذرا سے ہنگامے میں آدھی رات بیت گئی۔ کہتے ہیں قدرت شکاریوں کی عمر میں اتنا اضافہ کر دیتی ہے جتنا وہ شکار میں صرف کرتے ہیں۔

بارہ بجے کا عمل ہو گا۔ سجی قریب قریب تیار تھی۔ اسی وقت انہیں دور کوئی سایہ سا اپنی طرف آتا نظر آیا۔ تینوں اُس طرف دیکھنے لگے اور جب وہ سایہ قریب آیا تو دیکھا کہ لمبے چوڑے جسم کا ایک خوبصورت نوجوان تھا۔ سر پر کالی پگڑی باندھ رکھی تھی قندھاری پوستین میں اُس کا جسم بہت خوبصورت دکھائی دے رہا تھا — کاندھے پر رائفل تھی۔

"السلام علیکم!"

"وعلیکم السلام!" تینوں نے گرمجوشی سے جواب دیا۔

"کہو اِس طرف کیسے آئے؟" جبّار سمجھا کچھ اور لوگ بھی شکار کو آئے ہوں گے۔ اور یہ شخص الاؤ دیکھ کر اس طرف نکل آیا ہے۔ لیکن اجنبی کا جواب بڑا غیر متوقع تھا:

"یوں ہی رات گزارنے کے لئے۔"

"بسم اللہ! بیٹھ جاؤ یہیں۔" فتح نے مسکراتے ہوئے کہا۔

جبّار نے بات کا سلسلہ آگے بڑھانے کی خاطر کہا۔ "کہاں سے آئے ہو؟"

"خارستان سے۔"

"خارستان سے!"

"اتنی دُور سے؟ مگر کب؟"

"ابھی ابھی آیا ہوں۔ اور صبح جب سورج نکل رہا ہو گا میں یہاں سے چلا جاؤں گا۔"

"خیریت تو ہے؟"

"ہاں کچھ خیریت ہے بھی اور کچھ نہیں بھی۔"

فتح گُل، صمد اور عبدالجبار کے منہ سے قہقہے نکل پڑے۔

اجنبی خاموش اُن کے چہرے تکتا رہا۔

پھر جبّار بولا۔ "صاف صاف بتاؤ یار بات کیا ہے؟"

"کونسی بات؟"

"یہی کہ کس سلسلے میں یہاں آئے ہو تم"

"میں اگر تم لوگوں کو نہ بتاؤں تو تم میرا کچھ بھی نہیں بگاڑ سکتے اور اگر بتا دوں ــــ تب بھی تم کچھ نہ کر سکو گے۔"

"پھر وہی بات ــ ہم تو یونہی پوچھ رہے ہیں۔ تم بگڑ رہے ہو۔" صمد نے ذرا دھیرے سے کہا۔

اجنبی اُسے گھورنے لگا۔ صمد گھبرا سا گیا۔

"لو فتح گُل! اپنے یار کو مارخور کی ران تو کھلاؤ۔"

"نہیں! نہیں! میں کچھ نہیں کھاؤں گا۔"

"تو اس کا مطلب ہے کہ یاروں سے ہی ناراض ہو گئے؟" جبّار نے کہا۔

"نہیں۔ میں تم لوگوں سے بھلا کیا ناراض ہوں گا۔"

تھوڑی دیر وہ یونہی بیٹھا رہا۔ پھر جیسے اپنے آپ سے باتیں کرنے لگا۔ "جب مولوی اذان دے رہا ہوگا میں لوہڑ کا رینیپار کر چکا ہوں گا۔ میرے ساتھ پری گُل ہوگی۔ اور سورج نکلنے سے پہلے پہلے میں یہ پہاڑ پار کر جاؤں گا۔ پھر مجھے کوئی نہ روک سکے گا۔ کوئی نہ روک سکے گا۔ میں پری گُل کو خارستان لے جاؤں گا۔ پھر میری پری گُل مجھے ٹپّے سنائے گی اور میں اُس کے سُریلے گلے کی تانیں سن کر وجد کرتا رہوں گا۔"

"اچھا تو اِس مہم پر آئے ہو تم اُدھر سے!"

"ہاں اور یہ مہم سر کر کے آج فرید خاں اپنے گھر واپس چلا جائے گا۔"

"اپنی پری گُل کے ساتھ؟" صمد نے لقمہ دیا۔

"ہاں! اپنی پری گُل کے ساتھ۔ پری گُل کو میں نے پہلی بار اِس کاریز پر دیکھا تھا۔ وہ مشکیزے میں پانی بھر رہی تھی۔ کالے دوپٹے میں اُس کا چہرہ یوں لگ رہا تھا جیسے برف کے درمیان میں چاند ہو۔ میں یہاں سے گزر کر خارستان جا رہا تھا۔ پری گُل کو دیکھا تو یہیں ڈیرہ کر لیا۔ پھر میں پری گُل کے باپ سردار شراب خاں کے ہاں نوکر ہو گیا۔ اور ایک دن جب سردار اکیلا تھا میں نے اُس سے کہدیا کہ پری گُل کی شادی مجھ سے کر دے۔ سردار شراب خاں پہلے مجھے گھورتا رہا۔ پھر بولا۔ "پری گُل کے جہیز کے لئے پانچ ہزار روپے دو۔ اگر اتنی رقم لا سکو تو پری گُل سے شادی ہو سکتی ہے ورنہ نہیں"۔ شراب خاں کو یہ معلوم نہیں تھا کہ میں کس باپ کی اولاد ہوں۔ میں نے رات کی تاریکی میں پری گُل سے کہا۔ "میں خراسان جا رہا ہوں۔ وہاں سے تمہارے جہیز کے لئے روپیہ لے کر آؤں گا۔ اور تمہیں بیاہ کر لے جاؤں گا۔ پری گُل رونے لگی۔ وہ کہتی تھی۔ "میرا باپ دن کی روشنی میں جہیز کے عوض مجھے تمہارے حوالے کر دے گا۔ یہ ٹھیک ہے مگر میں جہیز کی رسم کو بالکل فضول سمجھتی ہوں۔ اگر تم مجھے خوش رکھ سکتے ہو تو میں عمر بھر کا ساتھ نبھانے کو تیار اور اِس رات کی تاریکی میں تمہارے ساتھ چلنے کو آمادہ ہوں۔ مجھے اپنے وطن لے چلو۔" ــ لیکن میں نے اُسے تسلّی دی اور جلد آنے کا وعدہ کر کے اپنے گاؤں چلا گیا۔ گاؤں پہنچا تو پتہ چلا میرا باپ مر گیا ہے، میں نے اپنے بڑے بھائی سے رقم مانگی لیکن اس نے پیسے دینے سے انکار کر دیا۔ اگر مجھے اپنے بھائی کے لڑکے سے پیار نہ ہوتا تو میں اُسے اُسی وقت گولی کا نشانہ بنا دیتا۔ میرے ذہن میں یہ خیال پیدا ہوا کہ پری گُل تو میرے ساتھ ویسے بھی آنے کو تیار ہے۔ میں اُسے رات کی تاریکی میں اُس کے گاؤں سے نکال سکتا ہوں اور جب میں واپس یہاں پہنچ جاؤں گا تو کوئی ــــ بڑے سے بڑا سردار بھی مجھے اس سے جدا نہ کر سکے گا۔ میں یہی سوچ کر اپنے گھر سے نکلا ہوں۔ ابھی میں پہاڑ پر چکر لگاؤں گا۔ پھر پچھلے پہر میں پری گُل کے پاس جاؤں گا۔ وہ مجھے دیکھے گی تو کتنی خوش ہوگی یہ میں سمجھ سکتا ہوں۔ میں بھی اُس سے کہوں گا۔ "میں دن کی روشنی تو تمہارے لئے نہیں خرید سکا اب رات کی تاریکیوں کی بھیک مانگتا ہوں۔" پھر وہ میرے ساتھ چلی آئے گی اور صبح کی روشنی سے پہلے پہلے ہم یہ پہاڑ پار کر چکے ہوں گے۔ چند ہی دنوں میں ہم اس طرف آ پہنچیں گے جہاں پری گُل مجھے ٹپّے سنائے گی اور میں اُس کے سریلے گلے کی تانوں پہ وجد کروں گا۔ بس یہی زندگی ہے، یہی زندگی ہے۔"

جبّار، فتح اور صمد تینوں پر سکتہ سا طاری تھا۔

"ہاں اور سنو! میرے راستے میں جو بھی آیا۔ اُس سے میری رائفل بات کرے گی۔ اس کی آواز سے میرے علاقے کے پہاڑ

اور روادیاں خوب آشنا ہیں۔"

یہ کہہ کر وہ اٹھ کھڑا ہوا اور وادی کی طرف اترنے والے راستے کی بجائے اوپر کی طرف جانے لگا۔

"ٹھہرو، ابھی تو کھاتے جاؤ۔"

"مہربانی —— ہم اپنے علاقے میں جا کر اپنے دنبوں کی سجی کھائیں گے۔"

تھوڑی دیر بعد جب وہ نظروں سے اوجھل ہو گیا تو جبار بولا۔

"اس گاؤں میں سردار شراب خاں کون ہے، اور یہ نام بھلا کیسا ہے؟"

"معلوم نہیں۔"

"میرا خیال ہے ہمیں اسے تلاش کر کے خبر کر دینی چاہیئے۔"

"ویسے ایک بات کروں" فتح نے اٹھتے ہوئے کہا۔ "اس نوجوان نے جن دو چیزوں پر بھروسہ کیا ہے وہ دونوں ہی ناقابلِ اعتماد ہیں۔ سوچو دوستو! عورت اور بندوق پر بھی کوئی شخص بھروسہ کر سکتا ہے۔ ہمارے ہاں تو اکثر لوگوں کا عقیدہ یہ ہے کہ معلوم نہیں یہ کب بگڑ جائیں"

"لیکن فتح گٹے، یہ بھی مت بھولو اگر یہ دونوں چیزیں کسی کی ہو جائیں تو لوگوں کے لئے کتنا بڑا مسئلہ بن جاتی ہیں۔" جبار نے رائفل کاندھے پر جمائی "چلو، روانہ ہو جاؤ۔"

اور تینوں وادی کی طرف اترنے لگے۔

رباب کی آواز نے انہیں "داشت" کا پتہ دیا۔ نوجوانوں کی محفل جمی ہوئی تھی۔ یہاں سے ایک نوجوان ان کے ساتھ ہو لیا۔

سردار شراب خاں" موٹی موٹی آنکھوں اور بڑی بڑی گھنی مونچھوں والا وجیہہ شخص۔

طویل خاموشی کے بعد جبار نے کہنا شروع کیا "سردار! ہم شکار کے لئے زرغون پر آئے تھے۔ وہاں ایسی بات ہو گئی کہ ہم نے سمجھا ابھی جا کر آپ کو خبردار کر دیں —— ایک نوجوان خارستان سے آیا ہے اور وہ آپ کی لڑکی کو آج رات لے جانا چاہتا ہے۔ آپ ہوشیار رہیں۔" چراغ کی دھندلی سی روشنی میں سردار کا چہرہ ہیبتناک دکھائی دینے لگا —— پھر وہ بولا۔

"مجھے افسوس ہے کہ تم اس وقت میرے گھر پر آئے ہوئے ہو۔ اگر تم لوگوں نے یہی بات باہر مجھ سے کہی ہوتی تو میں اس مذاق کا ایسا مزا چکھاتا کہ ساری دنیا تماشہ دیکھتی۔"

"سردار مذاق نہیں، حقیقت ہے یہ۔"

"کیسی بے وقوفی کی بات کرتے ہو۔"

"سردار ہم سچ کہتے ہیں۔ سردار اس نوجوان کا نام بھی بتا سکتے ہیں۔ اس کا نام فریدخاں ہے۔"

"کیا بات کرتے ہو۔ فریدخاں کو تو آج سے پانچ سال پہلے میں نے خود مار دیا تھا۔ زرغون پہاڑ اور راسی وادی کے لوگ اس کے گواہ ہیں کہ میری رائفل کی پہلی گولی نے فریدخاں کا خاتمہ کر دیا تھا۔ اور دوسری گولی پری کے جگر کے پار ہوئی تھی۔ ان دونوں نے رات کی تاریکی کو دائمی سمجھ لیا تھا۔ انہیں یہ معلوم نہیں تھا کہ سورج کی پہلی کرن کے ساتھ ہی وہ موت کے منہ میں بھی چلے جائیں گے۔" غصہ سے شراب خاں کا سانس پھول گیا تھا۔ صمد، فتح گٹے اور جبار تینوں پر سکتہ طاری تھا۔

ان کی نظر میں ایک نوجوان کا ہیولیٰ تھا جو آگ کے سامنے کھڑا تھا اور کہہ رہا تھا:

"میں سورج نکلنے سے پہلے پہلے لوہڑکا کا ریز پار کر چکا ہوں گا، میرے ساتھ پری گل ہو گی۔ پھر تجھے —— میرا مطلب ہم دونوں کو —— کوئی بڑے سے بڑا سردار بھی نہ روک سکے گا اور میری پری گل مجھے ٹپے سنائے گی اور میں اس کے سُریلے گلے کی تانیں سن کر وجد کرتا رہوں گا۔"

گر تو می خواہی مسلماں زیستن
نیست ممکن جز بقرآں زیستن

اقبال

رپورتاژ:

حجلۂ شرق

(مشرقی پاکستان میں چند دن)

عبدالصمد درّانی

مغربی پاکستان کے لوگ مہمان نوازی میں مشہور ہیں مگر مشرقی پاکستان پہنچ کر محسوس ہوا کہ ہماری یہ قدر بھی مشترک ہے اور یہاں کے لوگ بھی مہمان نوازی میں کسی سے پیچھے نہیں۔ مجھے تو ڈھاکہ پہنچنے کے بعد یہ محسوس ہی نہیں ہوا کہ میں غیروں میں ہوں۔ وہی محبت، وہی عزت، وہی برادرانہ سلوک جو اسلامی روایات کا نتیجہ ہے۔

ڈھاکہ پہنچنے کے دو تین دن بعد میں نے غسل کرنا چاہا تو اپنے میزبان سے پوچھتے ہوئے ذرا جھجک ہوئی، اس لئے مکان سے نکل کر ایک رکشا والے سے کہا کہ ایسی جگہ لے چلو جہاں نہانے دھونے کا بندوبست ہو۔ میری مراد حمام سے تھی مگر وہ مجھے ایک تالاب کے کنارے لے آیا اور کہنے لگا: "صاحب، یہاں آرام سے نہائیے"۔ میں نے اِدھر اُدھر نظر ڈالی۔ آس پاس کے محلے کے لوگ بڑی کافی تعداد میں اس تالاب کے کنارے نہا دھو رہے تھے۔ مگر میں اس طرح نہانے کا عادی نہیں۔ سوٹ بھی پہنے ہوئے تھا۔ اس لئے جھجک تھی۔ خیر رکشا والے کو سمجھایا کہ میں حمام میں نہانا چاہتا ہوں وہاں لے چلو۔ مگر وہ میری بات بالکل نہیں سمجھا۔ اس کا نہ سمجھنا بالکل قدرتی تھا کیونکہ یہاں حمام کا رواج نہیں ہے۔ مغربی پاکستان میں چونکہ حمام ہر شہر اور قصبہ میں عام پائے جاتے ہیں اس لئے ہم ان کے عادی ہو چکے ہیں۔ مشرقی پاکستان میں حماموں کی عدم موجودگی کی بڑی وجہ یہ ہے کہ یہاں فیاض فطرت نے پانی بڑی افراط سے فراہم کر دیا ہے اور لوگ تالابوں پر نہاتے ہیں۔ مشرقی پاکستان دریاؤں ندیوں کی سرزمین ہے۔ بعض بعض جگہوں پر یہ تمیز کرنا مشکل ہو جاتا ہے کہ دریا، ندیاں، زمین پر بہتی ہیں یا پانی کے ایک وسیع سمندر میں کہیں کہیں خشکی ابھر آئی ہے۔

ڈھاکہ کی ایک مشہور بستی ہے "موتی جھیل کالونی"۔ یہاں آج کل نئے قسم کے مکانات بن رہے ہیں۔ زیادہ تر حکام اور سرکاری افسران کی رہائش ہے۔ یہاں مجھے جابجا تالاب نظر آئے جہاں عورتیں، مرد اور بچے نہاتے دھوتے اور کپڑے برتن وغیرہ صاف کرتے ہیں۔ اس کالونی میں آب رسانی کا بہت اچھا انتظام ہے۔ مویشیوں کے لئے بھی انہی تالابوں سے پانی لیا جاتا ہے۔ میں نے ایک روز اپنے میزبان سے پوچھا کہ لوگ اتنی کثرت سے پانی استعمال کرتے ہیں، سورج کی کرنیں بھی پانی کو سکھاتی ہیں مگر پھر بھی پانی کی مقدار میں کوئی کمی نہیں آتی۔ آخر اس کی وجہ کیا ہے؟ میرے میزبان نے بتایا کہ "بہت پہلے یہاں بیشمار جھیلیں تھیں اور ان میں دریا سے پانی رِس رِس کر آتا تھا۔ جب بارشیں ہوتیں تو تالاب کیا پورا میدان اور سڑکیں تک تہ آب ہو جاتیں۔ پانی اب بھی اسی طریقے سے آتا ہے۔ مگر تالابوں کو مٹی سے بھر دیا گیا ہے اور وہاں عمارتیں تعمیر ہو گئی ہیں"۔

مشرقی پاکستان کو قدرت نے بڑی زرخیز زمین عطا کی ہے۔ اس لئے یہاں مصنوعی ذرائع سے آب پاشی کا سوال ہی پیدا نہیں ہوتا۔ یہاں پانی لانے کے لئے نہریں نہیں بنائی جاتیں بلکہ زائد پانی کی نکاس کا مسئلہ ہے اور اس کے لئے نہریں بنائی جاتی ہیں — یعنی مغربی پاکستان کے برعکس معاملہ ہے۔ پھر جب یہ نہریں بن جاتی ہیں تو وہ صرف عام ضرورت کو ہی پورا نہیں کرتیں بلکہ معاشی حیثیت سے بھی بڑی مفید ہو جاتی ہیں کیونکہ یہ نہریں آبی شاہراہیں بن جاتی ہیں اور آمد و رفت کا بڑا عمدہ وسیلہ۔ جنگلوں سے بانس اور عمارتی لکڑی کاٹ کاٹ کر ان میں بہائی جاتی ہے اور چند نگرانوں کی مدد سے وہ منزل مقصود تک پہنچا دی جاتی ہے۔ دریائی سفر کے دوران کھانا بھی بانس سے ہی پکتا ہے اور وہ بڑا اچھا ایندھن ثابت ہوتا ہے۔ بانسوں کے تخت بنا کر ان پر سوتے بھی ہیں۔ یہاں تو ایسے بہت خاندان ملیں گے جو خشکی پر رہتے ہی نہیں۔ کشتیوں میں ہی

پیدا ہوتے ہیں، وہیں پروان چڑھتے ہیں اور پھر ساری عمر سینۂ بحر پر رواں دواں رہتے ہیں۔ کبھی خشکی پر آتے بھی ہیں تو صرف ضروریات زندگی لینے کے لئے جیسے مرچ، دال، تیل، چاول، چنا، وغیرہ۔ ان چیزوں کا عام طور پر مچھلی سے تبادلہ کیا جاتا ہے یا پھر اس کنارے سے اس کنارے تک پہنچانے کا معاوضہ وصول کر کے ضروری اشیاء خریدی جاتی ہیں۔ میں نے ان کی زندگی پر غور کیا تو محسوس ہوا کہ مغربی پاکستان کے خانہ بدوشوں اور ان لوگوں میں بس خشکی اور تری کا فرق ہے۔ مغربی پاکستان کے خانہ بدوش زمین پر اور یہ لوگ پانی پر ہی گھومتے پھرتے ہیں اور ان کی نہ کوئی مستقل جائے قرار ہوتی ہے نہ کوئی معین منزل۔ موجودہ دور میں مشرقی اور مغربی پاکستان کے ان فرزندوں کو بھی تعلیم و تمدن سے بہرہ مند کیا جاتا ہے اور ان کی معاشی و معاشرتی حالات کو بہتر بنایا جاتا ہے۔

مشرقی پاکستان کے لوگوں میں بھی مذہب، ثقافت اور اپنی طرز حیات کو برقرار رکھنے کا بڑا زبردست جذبہ ہے۔ یہاں کے بیشمار لوگ اعلیٰ تعلیم حاصل کر کے غیر ملکوں سے واپس آتے رہتے ہیں مگر ان کا رہن سہن سادہ ہی رہتا ہے اور وہ ظاہری مغربی اثرات قبول نہیں کرتے۔ چاول، مچھلی جو اُن کی مرغوب غذا ہے بڑے سادہ طریقے سے بیٹھ کر کھاتے ہیں اور اپنی قومی زبان کی پرورش و سرپرستی کا بھی بڑا خیال رکھتے ہیں۔ انہوں نے اپنی موسیقی کو بھی مغربی اثرات سے پاک رکھا ہے۔ عوام میں بھی اپنی موسیقی سے ہی لگاؤ ہے۔ مشرقی پاکستان کے کسی بھی ہوٹل یا رستوران میں چلے جائیے۔ کسی غیر ملکی ریڈیو سے فلمی گانے نہیں سنے جاتے بلکہ اپنے ڈھاکہ اسٹیشن کو ہی سنتے ہیں۔ علی الصبح قرآن مجید کی تلاوت کی آواز ہر گھر سے آتی ہے۔ اس کے بعد وہ بچے جنہیں موسیقی سے دلچسپی ہے کسی نہ کسی ساز پر کچھ سیکھتے اور سرگم الاپتے بھی سنے جاتے ہیں۔ کہیں دیکھو تو کوئی صاحب ستار اٹھائے کسی استاد کے گھر کی طرف دوڑتے نظر آتے ہیں۔ مجھے یہ دیکھ کر بڑا تعجب ہوا کہ میرے میزبان کا ساڑھے چار سال کا بچہ کھیل کود کے دوران قاضی نذر الاسلام کی بدلاھی رباعی بڑے ترنم سے گاتا پھرتا تھا۔ جب دیکھو "چل رے چل" کی دھن اس کے لبوں پر ہوتی تھی۔ یہ ایک جاندار قومی ثقافت کی دلیل ہے۔ مشرقی پاکستان میں بھی بولیوں کا اختلاف ہے مگر کسی کی بولی پر کوئی معترض نہیں ہوتا اور سب اپنے دیس کی بولیوں کو ترقی دینے کے لئے کوشاں رہتے ہیں۔ ہمیں چاہیئے کہ دونوں بازوؤں میں قومی شعراء کے کلام بچوں کو یاد کرائیں۔ اقبال، شاہ لطیف، رحمٰن بابا، وارث شاہ، خواجہ غلام فرید، نذر الاسلام، کوی جسیم الدین اور دوسرے شعراء کے میٹھے رسیلے بول بچوں کو ازبر کرانے چاہئیں۔ بچوں میں فلمی گانوں کا میلان روکنے کے لئے یہ ضروری ہے کہ انہیں اپنے شعری ورثہ سے آشنا کرایا جائے۔

مشرقی پاکستان کے لوگوں میں ثقافتی اقدار کی حفاظت کا بڑا جذبہ ہے جس کی ہر جگہ تقلید ہونی چاہیئے۔ انہوں نے بنگلا زبان سے غیر مسلم اثرات خاص کر سنسکرت کے الفاظ اور ان کی بیجا آمیزش کو دور کرنا شروع کر دیا ہے اور ہر جگہ اسلامی تہذیب کا رچاؤ نظر آتا ہے اور اس طرح مغربی پاکستان کے ساتھ ہم رنگی پیدا ہو رہی ہے۔ رسم الخط سے قطع نظر بنگلا میں خالص اسلامی تہذیب و روایات کی علمی و ادبی نشانیاں منتقل کرنے کا کام بہت عرصے سے ہو رہا ہے، آزادی کے بعد سے تو اس کو خاص مہمیز ملی ہے۔ بنگلا شاعری کی بعض اصناف تو خالص اسلامی اثر کا نتیجہ ہیں جیسے لوک گیتوں میں مرشدی اور معرفتی گیت۔ رابندر سنگیت کے مقابلہ پر نذرل گیتی کی مقبولیت اس طرف اشارہ کرتی ہے۔ ہر چند کہ مشرقی پاکستان اسلامی مراکز سے دور افتادہ ہے مگر اسلامی شعائر کی پابندی اور اسلام کی روایات سے وابستگی و شیفتگی وہاں بہت پائی جاتی ہے۔ ڈھاکہ شہر میں مساجد کی کثرت، دینی اشغال سے گہرا لگاؤ، روزہ داری کا اہتمام بلیغ بہت ہی نظر آیا۔

سلہٹ تو گویا اسلام کا ایک اور مضبوط قلعہ ہے۔ بہت پُر فضا اور بارونق شہر ہے۔ ایک جانب حضرت شاہ جلالؒ کے جسد خاکی کو محفوظ کئے ہوئے ہے تو دوسری طرف حضرت شاہ فرازؒ جیسی برگزیدہ ہستی کا مزار ہے۔ شہر میں دیکھو تو جا بجا بانسوں اور درختوں کے جھنڈ میں درویشوں اور اولیاء اللہ کے مقبرے نظر آئیں گے۔ انہی فقرا کی بدولت اسلام اس دور دراز علاقے تک پہنچا ورنہ کسی زمانہ میں یہ علاقہ کفر میں گھرا ہوا تھا۔ اب یہ ایمان کی دولت سے مالا مال ہے اور ہر شخص دین دار ہے۔ اُدھر جمعہ کی اذان ہوئی اور ادھر کاروبار بند ہونے شروع ہوئے۔ لوگ جمع ہو ہو کر مسجدوں کی طرف دوڑ پڑتے ہیں اور خدا کے حضور میں پہنچ کر اپنے سینوں کو روحانی پاکیزگی کے نور سے بھر لیتے ہیں۔ مذہبی شغف کے باوجود غیر مسلموں کے ساتھ ان کا سلوک بڑا اچھا اور عین تعلیمات اسلامی کے مطابق ہے۔ رمضان میں ہندوؤں کے ہوٹل

کھلے رہتے ہیں اور کوئی تعرض نہیں کیا جاتا۔ سرسوتی پوجا کا جلوس نکلتا ہے، بیشمار ہندو مرد وزن سرسوتی (علم کی دیوی) کے جیکارے لگاتے ہوئے گذرتے ہیں، مگر کوئی ناخوشگوار واقعہ پیش نہیں آتا۔ مسلمانوں کی اس رواداری کو اسلام کی سچی روح سمجھا جاتا ہے اور مسلمانوں کے اس سلوک کو اسلام کے عالمگیر پیغام اخوت و سلامتی کا مظہر سمجھا جاتا ہے۔

میں نے دیکھا کہ یہاں لوگوں میں مغربی پاکستان کے لوگوں سے گہری وابستگی ہے۔ اسلام دوستی، حب وطن اور ثقافتی یکجہتی کے مظاہر میں وہ ہر طرح ہم رنگ ہیں۔ یہی وجہ ہے کہ مغربی پاکستان کے شمالی علاقوں سے گئے ہوئے سینکڑوں لوگ وہاں جاکر مستقلاً بس گئے ہیں اور سب بھائیوں کی طرح رہتے ہیں۔ وہ اب اچھا کاروبار کررہے ہیں۔ اننا اس کے باغوں کے مالک ہیں یا چائے کے باغیچے خرید لئے ہیں۔ وہ کبھی کبھی ادھر مغربی پاکستان کی طرف بھی آتے ہیں اور کچھ دن رہ کر پھر ادھر ہی چلے جاتے ہیں اور ہر طرح مطمئن ہیں۔ ان کے بچے خوب بنگلہ سیکھ گئے ہیں، بنگلہ گانے گاتے ہیں اور رہن سہن سے بھی ایسے لگتے ہیں کہ جیسے سدا یہیں رہے ہوں۔

چاٹگام سے پچیس میل دور پہاڑیوں کے درمیان کرنافلی دریا کے کنارے پاکستان کا سب سے بڑا کارخانہ کاغذ سازی بنا ہوا ہے۔ یہاں مغربی پاکستان سے آئے ہوئے سینکڑوں نہیں ہزاروں مزدور، کاریگر، کلرک، ڈرائیور وغیرہ کام کرتے ہیں۔ اس کارخانہ کا افسر انتظامیہ سابق صوبۂ سرحد کے ایک ریٹائرڈ لفٹننٹ کرنل ہیں۔ انہوں نے مجھے ڈیڑھ دو گھنٹے تک اپنے کارخانے کے مختلف شعبے دکھلائے۔ وہ جس شعبے میں جاتے، مزدور اور کاریگر بڑے ادب اور احترام کا مظاہرہ کرتے۔ میں نے یہ بات خاص طور پر محسوس کی کہ اس میں ذاتی تعلقات کو بڑا دخل تھا، خوف یا رعب کا کوئی بھی شائبہ نہ پایا جاتا تھا۔ ادب قاعدہ کے ساتھ ایک نوع کی بے تکلفی بھی تھی جو باپ بیٹے، چھوٹے بھائی اور بڑے بھائی کے درمیان ہوتی ہے۔ وہ کبھی کسی مزدور کو شاباش کہتے، کسی کا حال پوچھتے، کسی کی پیٹھ پر پیار سے تھپکی دیتے آگے بڑھتے چلے جاتے تھے۔ یہ نظارہ دیکھ کر میری سمجھ میں نہیں آیا کہ دونوں بازوؤں کے درمیان دوری و اجنبیت کے قصے کہاں سے گھڑ لئے جاتے ہیں۔ کسی ایک آدھ مثال کو سند یا ثبوت بنانا بات کا بتنگڑ بنانا کہلاتا ہے اور مجھے دوران سفر آپس کے فرق کا ایسا کوئی واقعہ نظر نہیں آیا جس سے دشمنوں کی بات پہ یقین کیا جاسکے۔ چندر گونا کا غذ سازی کا کارخانہ بھی دیکھا۔ اس کے دروازے پر جب میں موٹر رکشا سے اترا تو سامنے مسلح باوردی پہرے دار کھڑا تھا۔ اس کے قرینہ سے میں سمجھا کہ کوئی سرحدی بھائی ہے۔ میں نے پشتو میں اسے مخاطب کیا تو قدرتی بات تھی کہ وہ بڑا خوش ہوا۔ فوراً دروازہ کھول دیا اور مجھے اور میرے ساتھی احمد الزمان صاحب کو استقبالیہ کمرے میں لے جاکر بٹھا دیا۔ پھر چائے پینے کے لئے اصرار کیا۔ میں نے اس سے کہا کہ بھائی مجھے بہت جلد واپس جانا ہے۔ مگر وہ مصر رہا۔ مجھے اس کی زبانی معلوم ہوا کہ ہماری طرف کے بہت سے لوگ اس کارخانے کے مختلف شعبوں میں کام کرتے ہیں۔ یہاں آکر یہ بھی معلوم ہوا کہ افغان پوندوں کو لوگ یہاں حقارت کی نظر سے دیکھتے ہیں کیونکہ وہ سودی کاروبار کرتے ہیں اور کابلی والا کہلاتے ہیں۔ مگر اب رفتہ رفتہ سب کو معلوم ہوگیا ہے کہ یہ لوگ پاکستانی نہیں ہیں اور سرحد پار سے آتے ہیں، اس لئے اب لوگ انہیں اچھی طرح سمجھ گئے ہیں۔

چاٹگام سے کاکس بازار کا فاصلہ چورانوے میل ہے۔ سفر تو بڑا طویل ہے مگر راستہ اس قدر حسین ہے کہ ساڑھے چار گھنٹے کی یہ مسافت طبیعت پر گراں نہیں گزرتی۔ سڑک پختہ ہے اور بس بہت آرامدہ بھی اور سستی بھی۔ ایک طرف کا کرایہ صرف سات روپے ہے۔ ہوائی جہاز سے کاروباری مسابقت چلتی رہتی ہے، اس لئے ہوائی سروس کے اتباع میں یہ بس والے دوپہر کا کھانا اور سہ پہر کی چائے بھی مسافروں کو پیش کرتے ہیں۔ اس شاہراہ پر کئی بس سروسیں چلتی ہیں۔ بسوں کے علاوہ ٹیکسیاں اور ٹورسٹ ویگنیں بھی ملتی ہیں۔ ٹورسٹ ویگنوں کا کرایہ بھی کچھ زیادہ نہیں۔ یعنی بس کے کرایہ سے دو تین روپے زائد۔ ان میں سفر کرنے سے وقت بچ جاتا ہے۔ کیونکہ یہ ۹۴ میل کے سفر میں ایک بار ہی ذرا ٹھہرتی ہیں مگر بسیں جابجا ٹھہرتی ہیں۔ راستے میں ٹھہرنے والے لوگ بسوں سے ہی آتے جاتے ہیں۔ سڑک کے دونوں جانب خوبصورت پہاڑیاں ہیں۔ بانس

باقی صفحہ ۵۶ پر

ریڈیائی تمثیل:

تہذیب دشمن

سلیم خان گمی

کردار

ڈاکٹر ہمت علی : عتیقیات کا عالم
نفیسہ : ڈاکٹر ہمت علی کی سیکریٹری
صدر : عالمی کانفرنس کا چیئرمین
جبار } برفانی مہم کے دو کارکن
امانت علی }
تین باربردار
وقت : کشمیر میں ڈوگرہ عہد

آغاز کی موسیقی

(کانفرنس روم)

ڈاکٹر : جناب صدر اور میرے محقق دوستو! مجھے از حد مسرت ہے کہ میں عہد عتیق کے ایک ایسے حیوان پر معلومات پیش کر رہا ہوں جو ساری دنیا میں صرف ایک ہے اور ایک ایسے تحقیقاتی ادارہ کے سامنے اپنی کاوشوں کو لا رہا ہوں جسے دنیا بھر کے ماہروں کا تعاون حاصل ہے۔ ایسے ماہروں کا جن میں عتیقیات کے ماہر برفستانوں کے ماہر، حشرات الارض کے ماہر، حیاتیات کے ماہر، نسلیات کے ماہر، نسبیات کے ماہر، نباتات کے ماہر، غرضیکہ جن میں زندگی کے قدرتی و غیر قدرتی سبھی شعبوں کے ماہر شامل ہیں۔ میرے محقق دوستو! جو معلومات آپ کے سامنے لانے والا ہوں وہ بہت قیمتی ہیں اور مہنگی بھی کیونکہ ان معلومات کو حاصل کرتے ہوئے ایک اندازے کے مطابق پانسو تیرہ آدمی ہلاک ہوئے۔

صدر : پانسو تیرہ آدمی!

ڈاکٹر : جی ہاں پانسو تیرہ آدمی اللہ کو پیارے ہوئے، تب کہیں جاکر عہد عتیق کے اس نادر لیکن ہلاکت خیز برفانی حیوان کا پتہ چل سکا۔ پانسو تیرہ آدمیوں نے اپنے خون سے آبیاری کی تب کہیں جاکر معلومات کا یہ نہال پروان چڑھا۔

صدر : مگر ہمارے اس عالمی تحقیقاتی ادارے نے تو برفانی انسان کو پکڑنے کے لئے مالی امداد دی تھی۔

ڈاکٹر : درست ہے جناب صدر، مگر برفانی انسان نہ پکڑا جا سکا تاہم ہماری مہم کے بہادر اور دلاور محقق اپنی جانوں پر کھیل کر اس برفانی حیوان کے بارے میں معلومات فراہم کرنے میں کامیاب ہو سکے ہیں۔ یہ کارنامہ برفانی انسان کو پکڑنے کے مقابلہ میں کہیں زیادہ اہم، مفید اور دور رس نتائج کا حامل ہے اور نہایت ضروری بات یہ ہے کہ برفانی حیوان کو پکڑنے کا مرحلہ ابھی باقی ہے۔ پانسو تیرہ انسانوں کا خون کرنے کے باوجود وہ حیوان ابھی زندہ ہے۔

صدر : آپ اجلاس کے سامنے اپنی گراں قدر معلومات پیش فرمائیں۔

ڈاکٹر : جناب صدر اور میرے محقق دوستو۔ تھوڑے دن ہوئے میں اپنے کمرے میں بیٹھا تھا کہ مجھے اپنی برفانی مہم کے لیڈر مسٹر جبار کا خط ملا۔

(ڈاکٹر کا کمرہ)

ڈاکٹر : سیکریٹری۔ سیکریٹری۔ مس نفیسہ۔

نفیسہ : (دور سے) حاضر ہوئی ڈاکٹر صاحب (قریب سے) جی ڈاکٹر صاحب!

ڈاکٹر : یہ خط ہماری برفانی مہم کے لیڈر مسٹر جبار کا ہے۔ ذرا پڑھ کر سناؤ میری عینک کے شیشے زیادہ پرانے ہو گئے ہیں۔

کھلے رہتے ہیں اور کوئی تعرض نہیں کیا جاتا۔ سرسوتی پوجا کا جلوس نکلتا ہے، بیشمار ہندو مرد و زن سرسوتی (علم کی دیوی) کے جیکارے لگاتے ہوئے گذرتے ہیں، مگر کوئی ناخوشگوار واقعہ پیش نہیں آتا۔ مسلمانوں کی اس رواداری کو اسلام کی سچی روح سمجھا جاتا ہے اور مسلمانوں کے اس سلوک کو اسلام کے عالمگیر پیغام اخوت و سلامتی کا مظہر سمجھا جاتا ہے۔

میں نے دیکھا کہ یہاں لوگوں میں مغربی پاکستان کے لوگوں سے گہری وابستگی ہے۔ اسلام دوستی، حب وطن اور ثقافتی یکجہتی کے مظاہر میں وہ ہر طرح ہم رنگ ہیں۔ یہی وجہ ہے کہ مغربی پاکستان کے شمالی علاقوں سے گئے ہوئے سینکڑوں لوگ وہاں جا کر مستقلاً بس گئے ہیں اور سب بھائیوں کی طرح رہتے ہیں۔ وہ اب اچھا کاروبار کر رہے ہیں۔ اناناس کے باغوں کے مالک ہیں یا چائے کے باغیچے خرید لئے ہیں۔ وہ کبھی کبھی ادھر مغربی پاکستان کی طرف بھی آتے ہیں اور کچھ دن رہ کر پھر ادھر ہی چلے جاتے ہیں اور ہر طرح مطمئن ہیں۔ ان کے بچے خوب بنگلہ سیکھ گئے ہیں، بنگلہ گانے گاتے ہیں اور رہن سہن سے بھی ایسے لگتے ہیں کہ جیسے سدا یہیں رہے ہوں۔

چاٹگام سے پچیس میل دور پہاڑیوں کے درمیان کرنافلی دریا کے کنارے پاکستان کا سب سے بڑا کارخانہ کاغذ سازی بنا ہوا ہے۔ یہاں مغربی پاکستان سے آئے ہوئے سینکڑوں نہیں ہزاروں مزدور، کاریگر، کلرک، ڈرائیور وغیرہ کام کرتے ہیں۔ اس کارخانہ کا افسر انتظامیہ سابق صوبۂ سرحد کے ایک ریٹائرڈ لفٹنٹ کرنل ہیں۔ انہوں نے مجھے ڈیڑھ دو گھنٹے تک اپنے کارخانے کے مختلف شعبے دکھائے۔ وہ جس شعبے میں جاتے، مزدور اور کاریگر بڑے ادب اور احترام کا مظاہرہ کرتے۔ میں نے یہ بات خاص طور پر محسوس کی کہ اس میں ذاتی تعلقات کو بڑا دخل تھا، خوف یا رعب کا کوئی بھی شائبہ نہ پایا جاتا تھا۔ ادب قاعدہ کے ساتھ ایک نوع کی بے تکلفی بھی تھی جو باپ بچے، چھوٹے بھائی اور بڑے بھائی کے درمیان ہوتی ہے۔ وہ کبھی کسی مزدور کو شاباش کہتے، کسی کا حال پوچھتے، کسی کی پیٹھ پر پیار سے تھپکی دیتے آگے بڑھتے چلے جاتے تھے۔ یہ نظارہ دیکھ کر میری سمجھ میں نہیں آیا کہ دونوں بازوؤں کے درمیان دوری و اجنبیت کے قصے کہاں سے گھڑ لئے جاتے ہیں۔ کسی ایک آدھ مثال کو سند یا ثبوت بنانا بات کا بتنگڑ بنانا کہلاتا ہے اور مجھے دوران سفر آپس کے فرق کا ایسا کوئی واقعہ نظر نہیں آیا جس سے وطن دشمنوں کی بات پہ یقین کیا جا سکے۔ چندر گونا کا غذسازی کا کارخانہ بھی دیکھا۔ اس کے دروازے پر جب میں موٹر رکشا سے اترا تو سامنے مسلح باوردی پہرے دار کھڑا تھا۔ اس کے قرینہ سے میں سمجھا کہ کوئی سرحدی بھائی ہے۔ میں نے پشتو میں اسے مخاطب کیا تو قدرتی بات تھی کہ وہ بڑا خوش ہوا۔ فوراً دروازہ کھول دیا اور مجھے اور میرے ساتھی احمد الزمان صاحب کو استقبالیہ کمرے میں لے جا کر بٹھا دیا۔ پھر چائے پینے کے لئے اصرار کیا۔ میں نے اس سے کہا کہ بھائی مجھے بہت جلد واپس جانا ہے۔ مگر وہ مُصر رہا۔ مجھے اس کی زبانی معلوم ہوا کہ ہماری طرف کے بہت سے لوگ اس کارخانے کے مختلف شعبوں میں کام کرتے ہیں۔ یہاں آ کر یہ بھی معلوم ہوا کہ افغان پوتندوں کو لوگ یہاں حقارت کی نظر سے دیکھتے ہیں کیونکہ وہ سودی کاروبار کرتے ہیں اور "کابلی والا" کہلاتے ہیں۔ مگر اب رفتہ رفتہ سب کو معلوم ہو گیا ہے کہ یہ لوگ پاکستانی نہیں ہیں اور سرحد پار سے آتے ہیں، اس لئے اب لوگ انہیں اچھی طرح سمجھ گئے ہیں۔

چاٹگام سے کاکس بازار کا فاصلہ چورانوے میل ہے۔ سفر تو بڑا طویل ہے مگر راستہ اس قدر حسین ہے کہ ساڑھے چار گھنٹے کی یہ مسافت طبیعت پہ گراں نہیں گزرتی۔ سڑک پختہ ہے اور بس بہت آرامدہ بھی اور سستی بھی۔ ایک طرف کا کرایہ صرف سات روپے ہے۔ ہوائی جہاز سے کاروباری مسابقت چلتی رہتی ہے، اس لئے ہوائی سروس کے اتباع میں یہ بس والے دوپہر کا کھانا اور سہ پہر کی چائے بھی مسافروں کو پیش کرتے ہیں۔ اس شاہراہ پر کئی بس سروسیں چلتی ہیں۔ بسوں کے علاوہ ٹیکسیاں اور ٹورسٹ ویگنیں بھی ملتی ہیں۔ ٹورسٹ ویگنوں کا کرایہ بھی کچھ زیادہ نہیں۔ یعنی بس کے کرایہ سے دو تین روپے زائد۔ ان میں سفر کرنے سے وقت بچ جاتا ہے۔ کیونکہ یہ ۹۴ میل کے سفر میں ایک بار ہی ذرا ٹھہرتی ہیں مگر بسیں جا بجا ٹھہرتی ہیں۔ راستے میں ٹھہرنے والے لوگ بسوں سے ہی آتے جاتے ہیں۔ سڑک کے دونوں جانب خوبصورت پہاڑیاں ہیں۔ بانس

باقی صفحہ ۵۶ پر

ریڈیائی تمثیل:

تہذیب دشمن

سلیم خاں گمی

کردار

ڈاکٹر ہمت علی : عتیقیات کا عالم
نفیسہ : ڈاکٹر ہمت علی کی سیکریٹری
صدر : عالمی کانفرنس کا چیئرمین
جبار / امانت علی : برفانی مہم کے دو کارکن
تین باربردار
وقت : کشمیر میں ڈوگرہ عہد

آغاز کی موسیقی

(کانفرنس روم)

ڈاکٹر : جناب صدر اور میرے محقق دوستو! مجھے ازحد مسرت ہے کہ میں عہد عتیق کے ایک ایسے حیوان پر معلومات پیش کر رہا ہوں جو ساری دنیا میں صرف ایک ہے اور ایک ایسے تحقیقاتی ادارہ کے سامنے اپنی کاوشوں کو لا رہا ہوں جسے دنیا بھر کے ماہروں کا تعاون حاصل ہے۔ ایسے ماہروں کا جن میں عتیقیات کے ماہر برفستانوں کے ماہر حشرات الارض کے ماہر حیاتیات کے ماہر، نسلیات کے ماہر، نسبیات کے ماہر، نباتات کے ماہر، غرضیکہ جن میں زندگی کے قدرتی و غیر قدرتی سبھی شعبوں کے ماہر شامل ہیں میرے محقق دوستو! یہ جو معلومات آپ کے سامنے لانے والا ہوں وہ بہت قیمتی ہیں اور مہنگی بھی کیونکہ ان معلومات کو حاصل کرتے ہوئے ایک اندازے کے مطابق پانسو تیرہ آدمی ہلاک ہوئے۔

صدر : پانسو تیرہ آدمی!

ڈاکٹر : جی ہاں پانسو تیرہ آدمی اللہ کو پیارے ہوئے، تب کہیں جاکر عہد عتیق کے اس نادر لیکن ہلاکت خیز برفانی حیوان کا پتہ چل سکا۔ پانسو تیرہ آدمیوں نے اپنے خون سے آبیاری کی تب کہیں جاکر معلومات کا یہ نہال پروان چڑھا۔

صدر : مگر ہمارے اس عالمی تحقیقاتی ادارے نے تو برفانی انسان کو پکڑنے کے لئے مالی امداد دی تھی۔

ڈاکٹر : درست ہے جناب صدر، مگر برفانی انسان نہ پکڑا جا سکا تاہم ہماری مہم کے بہادر اور دلاور محقق اپنی جانوں پر کھیل کر اس برفانی حیوان کے بارے میں معلومات فراہم کرنے میں کامیاب ہو سکے ہیں۔ یہ کارنامہ برفانی انسان کو پکڑنے کے مقابلہ میں کہیں زیادہ اہم، مفید اور دور رس نتائج کا حامل ہے اور نہایت ضروری بات یہ ہے کہ برفانی حیوان کو پکڑنے کا مرحلہ ابھی باقی ہے۔ پانسو تیرہ انسانوں کا خون کرنے کے باوجود وہ حیوان ابھی زندہ ہے۔

صدر : آپ اجلاس کے سامنے اپنی گراں قدر معلومات پیش فرمائیں۔

ڈاکٹر : جناب صدر اور میرے محقق دوستو۔ تھوڑے دن ہوئے میں اپنے کمرے میں بیٹھا تھا کہ مجھے اپنی برفانی مہم کے لیڈر مسٹر جبار کا خط ملا۔

(ڈاکٹر کا کمرہ)

ڈاکٹر : سیکریٹری۔ سیکریٹری۔ مس نفیسہ۔

نفیسہ : (دور سے) حاضر ہوئی ڈاکٹر صاحب (قریب سے) جی ڈاکٹر صاحب!

ڈاکٹر : یہ خط ہماری برفانی مہم کے لیڈر مسٹر جبار کا ہے۔ ذرا پڑھ کر سنا ؤ میری عینک کے شیشے زیادہ پرانے ہو گئے ہیں۔

پڑھو۔

نفیسہ : لکھا ہے (خط پڑھتی ہے) ــــ قبلہ ڈاکٹر صاحب۔ تسلیم! آپ یہ جان کر یقیناً افسردہ خاطر ہوں گے کہ ہم برفانی انسان کو پکڑنے میں قطعاً ناکام ہو گئے ہیں اور آپ یہ جان کر یقیناً بہت خوش ہوں گے کہ ہم برفانی حیوان کو پکڑنے میں کامیاب ہوئے ہیں۔ میں اس برفانی حیوان کے چار فوٹو ارسال کر رہا ہوں۔ آپ ان تصویروں کو دیکھ کر اندازہ لگا سکتے ہیں کہ ہم نے کیسا لاجواب اور لاثانی حیوان قابو کیا ہے۔ میں حیوانی حیاتیات کے محقق کی حیثیت سے بلا خوف تردید کہہ سکتا ہوں کہ ایسا حیوان دنیا کے کسی چڑیا گھر میں نہیں ہے اور نہ کسی عجائب خانہ ہی میں ایسے حیوان کا کوئی پنجر ہے۔ اس برفانی حیوان کی آٹھ ٹانگیں ہیں مگر وہ تصویر میں نظر نہیں آئیں گی کیونکہ وہ اپنی ٹانگوں کو اپنے پیٹ کے اندر یوں چھپا چکا ہے جیسے کچھوا اپنی گردن اپنے خول کے اندر چھپا لیتا ہے۔ اس کے تین دانت ہیں جو اس کے منہ کے اندر گم ہو چکے ہیں۔ میرا اندازہ ہے کہ دانت کی لمبائی ڈیڑھ گز سے زیادہ ہے۔ اس کی صرف ایک آنکھ ہے جس سے یہ شبہ پیدا ہوتا ہے کہ یہ برفانی حیوان سائیکلوپس ایسے وحشی انسانوں کا مورثِ اعلیٰ ہے۔"

ڈاکٹر : ہو سکتا ہے کہ برفانی حیوان ایک آنکھ والے وحشی انسانوں کا جدِ امجد ہو۔ ہاں آگے پڑھو۔

نفیسہ : "برفانی حیوان ابھی تک مردہ حالت میں ہے۔ یہ کیفیت غالباً سردی کی وجہ سے ہے۔ میرے ساتھی مسٹر امانت کا خیال ہے کہ برفانی حیوان مر چکا ہے مگر میرا خیال ہے بیہوش ہے۔ تاہم یہ امر تحقیق طلب ہے۔ ممکن ہے مر چکا ہو۔ ممکن ہے زندہ ہو مگر سردی سے بے سدھ ہو اور گرمی کھا کر زندہ ہو جائے۔ ہم نے کوشش کی بھی کہ اس کے اوپر الاؤ جلائیں مگر ہمیں ایندھن نہ ملا۔

ہمارے پاس جو کھانے پینے کی چیزیں تھیں وہ ختم ہو چکی ہیں اور نہ پاس کوئی پیسہ ہے۔ مہربانی کر کے ہمیں کچھ رقم بھجوائیے ــــ آپ کا تابعدار۔ جبار ــــ

کیمپ وادی ڈرانگ۔"

ڈاکٹر : اس خط کو فائل میں لگا دو اور برفانی حیوان کی تصویریں کو البم میں۔ یہ دو کام کر کے چیک بک لاؤ۔ میں دو ہزار روپے کے چیک پر دستخط کرتا ہوں۔ تم آج بینک میں سے رقم نکلوا کر صبح کی گاڑی سے وادی ڈرانگ روانہ ہو جاؤ۔ وادی ڈرانگ تک پہنچنے کے لئے تمہارے پاس نقشے موجود ہیں نا؟

نفیسہ : مگر ڈاکٹر صاحب میں جاؤں گی وادی ڈرانگ؟

ڈاکٹر : جی ہاں۔ آپ جائیں گی۔ میں خود جانا چاہتا تھا مگر انفلوئنزا کے سبب میرا برا حال ہے۔ وادی ڈرانگ جانے کے لئے آپ کو پانسو روپے دئے جائیں گے۔

نفیسہ : شکریہ۔

ڈاکٹر : یہ خط اور تصویریں ان کے ٹھکانوں پر رکھو اور چیک بک لاؤ۔ ہاں، چپراسی سے کہو دو کافی سیٹ لائے، بالائی والی۔

نفیسہ : جی بہت اچھا (دور سے) فضلو دو کافی سیٹ بالائی والی

(وادی)

نفیسہ : (خود کلامی) نقشے کے مطابق یہی وادی ڈرانگ ہے۔ میں پہاڑ پر چڑھ کر ڈھلوان پر آئی ہوں۔ سامنے پہاڑ ہے۔ میرے دائیں جانب پہاڑ ہے، میرے بائیں جانب پہاڑ ہے۔

(ایک آدمی کے کراہنے اور ہائے ہائے کرنے کی آواز)

نفیسہ : کراہنے کی آواز کہاں سے آ رہی ہے؟ سنوں

(تین آدمیوں کے کراہنے کی آوازیں)

نفیسہ : ایک نہیں۔ ایک سے زیادہ آدمیوں کے کراہنے کی آوازیں آ رہی ہیں۔ کیوں، کہاں سے؟

(سات آدمیوں کے کراہنے کی آوازیں)

نفیسہ : پہاڑوں میں گھری ہوئی وادی ڈرانگ ــــ برف میں اٹے ہوئے چاروں طرف پہاڑ۔ بادلوں میں چھپے ہوئے

برفانی پہاڑ۔

(برفانی ہواؤں کا شور اور سیٹیاں)

نفیسہ : وادی کو چیرتے ہوئے گزرنے والی تیز ہوائیں اور ان ہواؤں میں آہ و فغاں ذرا آگے بڑھ کر تو دیکھوں۔

(آدمیوں کے کراہنے اور ہواؤں کے چلنے کی آوازیں)

نفیسہ : جبار۔ مسٹر جبار

جبار : ہائے ہائے۔

نفیسہ : جبار۔ مسٹر جبار

جبار : ہائے مر گیا۔

نفیسہ : جبار صاحب تم! خون میں لت پت۔ کیا ہوا، جبار مجھے بتاؤ کیا ہوا۔

جبار : کون ہو تم۔ تم۔ ہائے ہائے۔

نفیسہ : جبار صاحب میں ہوں نفیسہ۔ مجھے ڈاکٹر نے بھیجا ہے۔

جبار : نفیسہ بس نفیسہ ہائے۔ تم کہاں، تم یہاں کیسے؟ ہائے مر گیا۔

نفیسہ : میں تمہارے لئے دو ہزار روپے لائی ہوں۔ تم نے خط جو لکھا تھا ڈاکٹر کو۔

جبار : چلی جاؤ یہاں سے۔ چلی جاؤ۔ ورنہ تمہیں موت آئے گی۔

نفیسہ : کون سی موت آئے گی؟

جبار : وہی جو ہماری مہم کے آدمیوں پر اور اس وادی کے لوگوں پر آئی۔ مر گیا۔

نفیسہ : میں نہیں سمجھی تمہاری بات۔ بتاؤ مجھے کیسی موت؟

جبار : جاننا چاہتی ہو؟ لو سنو کیسے آئی ہم تک موت۔

امانت : جبار صاحب۔ اس وادی میں آئے ہوئے ہمیں آج دس دن ہو گئے۔

جبار : ہاں امانت صاحب۔ آج پورے دس دن۔

امانت : آج موسم کچھ نکھرا نکھرا سا ہے۔

جبار : اس لئے کہ سورج نکل رہا ہے۔

امانت : جی ہاں سورج نکل رہا ہے۔ ہم نے تو گذشتہ سولہ دن سے سورج کی سندر کرن نہیں دیکھی۔

جبار : یہ برفانی پہاڑ اکثر بادلوں میں چھپے رہتے ہیں۔ اور پھر سردیوں میں تو سورج شاذ و نادر ہی اپنا مکھڑا دکھاتا ہے۔

امانت : میں اس وادی کے لوگوں کی ہمت پر حیران ہوں۔ صرف گوشت پر ہی گذارہ کرتے ہوں گے۔

جبار : اور کیا پتھروں کے گھروندوں میں رہتے ہیں۔ برفانی جانوروں کا شکار کرتے ہیں اور کھاتے ہیں۔ سال میں دو چار مہمیں آتی ہیں۔ ان کی مزدوری کرتے ہیں اور جو کچھ ملتا ہے اس میں سے کچھ تو خوراک پر اور کچھ کپڑے لتے پر خرچ کرتے ہیں۔

امانت : بڑے صابر لوگ ہیں یہ۔

جبار : اور فاقہ کش بھی۔

امانت : مجبوری ہے۔ بے چارے کیا کریں۔

جبار : ایک بات ہے اور وہ یہ کہ یہ وادی بجا طور پر سکون، خوشبو اور رنگوں کی وادی کہلا سکتی ہے۔ یہاں کی ہواؤں میں اتنی زندگی ہے کہ مردہ زندہ ہو جائے۔

امانت : گرمیوں میں۔ سردیوں میں تو آدمی ٹھٹھر کر مر جاتا ہے۔

جبار : انسان گرمیوں کے چھ مہینوں میں اتنی زندگی حاصل کر لیتا ہے کہ موت اس کا کچھ نہیں بگاڑ سکتی۔

ایک آواز (گھبرائی ہوئی) صاحب۔ وہ سانس لے رہا ہے۔ برفانی حیوان۔

دوسری آواز: جناب دانت نکل رہا ہے۔ وہ ..... وہ برفانی حیوان جناب۔

تیسری آواز: وہ زمین پر سے اٹھ رہا ہے۔

ایک آواز: یہ شاید اس کی آواز ہے۔

(عجیب و غریب دہشتناک آواز، جو اس سے پہلے انسان کے کان نے نہ سنی ہو۔ آہستہ سے تیز اور پھر تیز سے تیز تر)

امانت : جبار! اسے قابو کرو۔

جبار : کیسے قابو کروں، وہ سورج کی کرنوں سے جاگا ہے۔ سورج کی کرنوں کو کون قابو کرے۔

ایک آواز: جناب اب کیا ہوگا؟
امانت : خدا ہی جانتا ہے اب کیا ہوگا۔
(حیوان کی آواز۔ انسانوں کی چیخ پکار۔ بھگدڑ)
جبار : لوگو! ڈرو نہیں۔ ہتھیار لے کر اس پر حملہ کرو۔
دوسری آواز: اس نے پانچ آدمی مار دیئے۔
جبار : دوستو! نیزے بھالے اور کلہاڑیاں لے کر اس موذی پر ٹوٹ پڑو۔ گھبراؤ نہیں دوستو۔
تیسری آواز: جناب بھالے کا اس پر اثر نہیں ہوتا۔ اس کی کھال بہت موٹی اور بہت سخت ہے۔
امانت : جبار صاحب اپنی جان بچاؤ۔ جان بچاؤ۔
ایک آواز: وہ ہماری طرف آرہا ہے۔ وہ ہماری طرف آرہا ہے۔ دوڑو۔
جبار : لوگو! دوڑو نہیں۔ ہمت نہ ہارو۔ مقابلہ کرو۔ مقابلہ۔
(حیوان کی خوفناک آواز۔ چیخیں۔ بھاگ دوڑ اور انتشار)

آواز نمبر۱: یہ مصیبت آئی کہاں سے ؟
آواز نمبر۲ : بس کچھ نہ پوچھو۔
آواز نمبر۱: آخر کچھ تو بتاؤ۔ یہ بلا کہاں سے نازل ہوئی؟
آواز نمبر۲: وادی سے اس کا کوئی تعلق نہیں ہے۔ یہ پہاڑوں کے اس پار سے نازل ہوئی۔
آواز نمبر۱: پہاڑوں کے اس پار سے۔
آواز نمبر۲: ہاں برفیلے پہاڑوں سے۔
(برفانی پہاڑوں پر بادل کی گرج۔ بجلی کی کڑک)
امانت : (دور سے) جبار۔ جبار۔ جبار۔
جبار : (دور سے) گھبراؤ نہیں۔ ڈٹے رہو۔
آواز نمبر۱: صاحب برف کا طوفان آرہا ہے۔
امانت : اب کیا ہوگا ؟
آواز نمبر۱: ہمیں چاہیئے کہ کسی غار میں چھپ جائیں ورنہ ہم برف میں دب کر مر جائیں گے۔
جبار : امانت صاحب۔ ساتھیوں کو اکٹھا کرو کہاں گئے ہمارے ساتھی۔
امانت : یہ آس پاس برف پر اوندھے منہ پڑے ہیں۔
جبار : انہیں بتاؤ کہ ہم برف کے طوفان سے بچنے کے لئے ترائی میں آ نکلے ہیں۔ کسی اور سے بھی تجھے کسی برفانی غار کا پتہ ہے۔ ایسا غار جس میں ہم محفوظ رہ سکیں ؟
آواز نمبر۱ : صاحب۔ پتہ تو نہیں مگر تلاش کرتے ہیں۔
جبار : امانت آؤ۔ ہدایت۔ عرفان چلو۔ تم بھی چلو اس طرف۔ جلدی کرو ورنہ طوفان ہمیں آلے گا۔ شاباش جلدی۔
(تیز پرشور ہوا چند سیکنڈ چلتی ہے)
آواز نمبر۱: جناب یہ رہا غار۔ موج ہوگئی غار جلدی مل گیا نہیں تو معلوم نہیں کیا ہوتا۔
جبار : چلو اندر۔ چلو نا۔
آواز نمبر۱: میرے پیچھے چلے آیئے صاحب۔ یہ اس گول سے پتھر کے ساتھ ساتھ۔ ایسے جیسے میں اندر جا رہا ہوں۔ ذرا پہلو بچا کر۔
جبار : امانت تم بھی ذرا پہلو بچا کر۔
امانت : عرفان چلے آؤ میرے پیچھے پیچھے۔ باقی ساتھیوں کو بھی کہو اور قلیوں اور مزدوروں کو بھی۔
آواز نمبر۲: (دور سے) ہم آرہے ہیں صاحب۔ فکر نہ کریں۔
(تیز پرشور ہوا چند سیکنڈ چلتی ہے)
جبار : آگئے سبھی ؟
امانت : جی ہاں آگئے۔
آواز نمبر۲ : بہت اچھا ہوا صاحب ہم اس غار میں آ گئے اور بچ جائیں گے۔
جبار : آئے تھے برفانی انسان یعنی SNOW MAN کو پکڑنے، اور خود برفانی انسان بن گئے!
امانت : چھ دن سے مارے مارے پھرتے ہیں۔ پاؤں کے نشان نظر آئے مگر برفانی انسان نہ ملا۔
جبار : نقش قدم ؟ ایک شعر ہے ؎

جہاں تیرا نقشِ قدم دیکھتے ہیں
خیاباں خیاباں ارم دیکھتے ہیں

سو ہم نے نقش قدم دیکھا محبوب کو نہ دیکھا۔
امانت : نقش قدم دیکھ کر یہ کیفیت ہوگئی ہے اگر محبوب نظر آجاتا تو معلوم نہیں کیا ہوتا۔
جبار : قلی یہ سامنے پتھر پر سے تھوڑی سی برف اتار دو۔ اس کیتلی میں اسے گرم کر دو۔ پیاس لگی ہے۔ میں نے آج

غالباً خوراک کی گولیاں زیادہ کھائی ہیں۔

امانت : دو دن سے گولیوں پر گزارہ ہے۔ اگر یہ نہ ہوتیں تو خدا جانے کیا ہوتا۔

جبار : اللہ کو پیارے ہو جاتے۔

آواز نمبر ۲: (دور سے) صاحب۔ صاحب۔ یہ پتھر نہیں ہے۔ یہ تو کھال ہے۔

امانت : کھال ہے؟

جبار : کھال کیسی؟

آواز نمبر ۲: جناب آکر دیکھو۔

جبار : آئے۔

آواز نمبر ۲: یہ پتھر نہیں۔ یہ ..... یہ موٹی کھال ہے۔ یہ دیکھئے۔ یہ

جبار : ہاں۔ یہ پتھر نہیں کھال ہے۔ ہٹاؤ برف۔ اور برف ہٹاؤ۔

امانت : میں ہٹاتا ہوں۔ یہ لیجئے۔ یہ دیکھئے۔

جبار : واللہ! یہ تو کوئی جانور ہے۔ برف سے بے سدھ — بیہوش۔

امانت : بیہوش نہیں۔ مردہ۔ دیکھو سانس نہیں لے رہا۔

جبار : ساتھیوں اور قلیوں کو بلاؤ کہ برف ہٹائیں۔ رسے لاؤ۔ کدالیں لاؤ۔ کھرپے لاؤ۔ چاقو لاؤ۔

آواز نمبر ۲: صاحب۔ برف کا طوفان ذروں پر آگیا ہے۔

جبار : پروا نہیں۔ یہ حیوان بہت بڑی یافت ہے۔ بہت بڑی تاریخی یافت۔ میں نے ایسا حیوان آج تک نہیں دیکھا، نہ روئے زمین پر اور نہ صفحہ قرطاس پر۔ نہ چڑیا گھر میں اور نہ عجائب گھر میں۔

امانت : میرا کیمرہ کہاں گیا۔ میں اس کی تصویریں لوں گا۔

جبار : اسے دھکیل کر وادیٔ ڈرانگ میں لے چلو۔ وادیٔ ڈرانگ میں اس کے اردگرد رسّے باندھو۔

امانت : زور لگاؤ

آواز نمبر ۲: سب ہی زور لگاؤ۔

جبار : شاباش۔ اسے دھکیلو۔ دھکیل کر وادی میں لے جاؤ

(سبھی برفانی حیوان کو دھکیلتے ہیں اور زور لگاتے ہیں)

(ڈھول کی مدھم آواز، قریب سے قریب تر ہوتی جاتی ہے۔ اس کے آہنگ پر وادی کے لوگوں کا رقص، نعرے اور جیکارے)

امانت : (قہقہے کی آواز سن کر) بہت خوش ہو جبار؟

جبار : ہاں بہت خوش۔ میں نے انسائیکلوپیڈیا دیکھا ہے اور دوسری کتابیں بھی۔ ایسا جانور آج سے چار لاکھ سال پہلے اس کرۂ ارض پر ممکن تھا اب نہیں۔ ہمیں ہماری محنت کا پھل مل گیا۔

امانت : وادی کے لوگ بہت خوش ہیں۔ ان کا خیال ہے کہ یہ حیوان ان کے بہادر جوانوں نے پکڑا ہے۔

جبار : وہ کسی حد تک درست سوچ رہے ہیں۔ اگر وادی سے ساٹھ ستر اور جوان نہ آتے تو ہم اسے کیسے دھکیل کر یہاں لاتے۔

امانت : اب وہ حیوان کے اردگرد دائرہ بنا کر ناچ رہے ہیں۔ بے تحاشہ ناچ رہے ہیں۔

جبار : وہ بہت خوش ہیں۔ ہم بہت خوش ہیں میں بہت خوش ہوں۔

(جبار کا قہقہہ)

ڈاکٹر : (قہقہہ زن ہو کر) برفانی انسان کو تم کیسے پکڑ لوگے؟

جبار : میں نے صرف مذاق کے طور پر کہا تھا۔

ڈاکٹر : اور میں نے مذاق ہی سمجھا ہے۔ تو بات یہ ہے کہ برفانی مہم کے لیڈر کی حیثیت سے ساری مہم کی ذمہ داری تم پر آتی ہے۔ برفانی انسان کو پکڑنے کی ایک نہیں بیسیوں کوششیں ہو چکی ہیں مگر کامیابی کسی کو بھی نصیب نہیں ہوئی۔ اگر برفانی انسان پکڑا جائے تو یقین جانئے دنیائے علم میں تہلکہ مچ جائے۔ بلکہ زلزلہ آجائے۔

جبار : ہماری شہرت آسمان تک پرواز کرے۔

ڈاکٹر : یقیناً۔ کارنامے شہرتیں ہمراہ لاتے ہیں۔ برفانی

انسان کی گرفتاری یا اسیری بہت بڑا کارنامہ ہے ۔ اگر
اس موسم سرما میں وہ پکڑا جاتے تو مزہ آ جائے ،
واللہ مزہ آ جائے ۔

جبار : ہم یقیناً کامیاب ہوں گے ۔

امانت : میرا تو دل گھبرا رہا ہے ۔ ہم جن برفانی پہاڑوں کی طرف
جا رہے ہیں وہ کئی انسانوں کی جانیں لے چکے ہیں ۔

ڈاکٹر : انسان مرتے رہتے ہیں ۔ کوئی گھر میں کھاٹ پر ۔ کوئی
بازار میں کوئی راستے پر ۔ کوئی کیبن میں ۔ کوئی سولی پر ۔
کوئی پہاڑ پر کوئی سمندر میں ۔ موت کہاں نہیں ہے ۔
ہر کہیں ہے پھر موت سے گھبرانا کیا ؟ اگر آپ علم کی دنیا
کے لئے علم کی روشنی لانے کے دوران مر جائیں تو یقیناً
یہ ایک شاندار موت ہوگی ۔

جبار : جی ہاں (اونچی آواز میں) امانت صاحب ۔ نقشے وغیرہ
احتیاط سے رکھ لئے نا ۔

امانت : بالکل ۔ آپ فکر نہ کریں ۔

ڈاکٹر : تو کل صبح آپ کی مہم روانہ ہو رہی ہے ۔

جبار : جی ہاں ۔

ڈاکٹر : آج شام شہریوں کی دعوت کتنے بجے ہے ؟

جبار : رات سات بجے ۔ مگر ڈاکٹر صاحب اس تکلیف کی کیا
ضرورت تھی ؟

ڈاکٹر : بھائی یہ سوال مجھ سے نہ پوچھو ۔ اس شہر کے باسیوں
کے سامنے پیش کرو ۔ میرا خیال ہے شہر کے لوگ اس
مہم کے ارکان کو ملک و وطن کے سپوت سمجھتے ہیں ۔

امانت : مہربانی ہے ان کی ورنہ ہم نے ابھی تک کوئی کارنامہ
سرانجام نہیں دیا ۔

ڈاکٹر : ان کی توقع تو یہی ہے کہ تم کارنامے سرانجام دینے
جا رہے ہو ۔

جبار : ہم یقیناً اہل وطن کی توقع پر پورا اتریں گے ۔ ہم ان کی
امیدوں کو حقیقتوں میں بدلنے کے لئے جان نثار کر دیں گے ۔
ہماری عزت وطن کی عزت سے وابستہ ہے ۔

ڈاکٹر : یقیناً ۔ یقیناً ۔

امانت : اب اجازت چاہتے ہیں ۔ ذرا گھر جا کر شام کی دعوت کی
تیاری کریں ۔

ڈاکٹر : ضرور ۔ ضرور ۔ اب شام کی دعوت پر ملاقات ہوگی ۔

(دعوت میں آئے ہوئے لوگوں کا شور)

مقرر : جناب صدر اور میرے دوستو ۔ برفانی مہم پر جانے
والے جوان وطن کے سپوت ہیں ۔ ہم ان کے سامنے اپنا
سر خم کرتے ہیں ۔ جناب صدر ——

ڈاکٹر : اور میرے محقق دوستو ۔ پوری برفانی تحقیقاتی مہم کی
کارگزاری سے تو آپ آگاہ ہو گئے ۔ آپ کو معلوم ہوگا کہ
پوری مہم کے بہادر ارکان اور وادی گل وللہ کے
باہمت انسانوں پر کیا گذری ، لیکن وہ وحشت ناک اور
ہلاکت خیز حیوان اب بھی زندہ ہے ۔ اسے پکڑنا ضروری ہے ۔

صدر : ہاں ۔ حیوان کو پکڑنا ضروری ہے ۔ زندہ یا مردہ ۔
اسے ضرور پکڑا جائے ۔ اسے کیسے پکڑا جائے ۔ اس
غرض کے لئے ایک کمیٹی کی تشکیل ضروری ہے ۔ کمیٹی
موذی حیوان کو پکڑنے کا طریق کار طے کرے اور اپنی
اپنی حکومتوں سے مالی مدد لے ۔ اس مالی مدد سے ہم
ایک اور مہم وادی ڈرانگ میں بھیجیں گے جس کے پاس گولہ
بارود ہوگا اور ہیلی کوپٹر بھی ۔

ڈاکٹر : جی ہاں گولہ بارود اور ہیلی کوپٹروں کا ہونا از بس
ضروری ہے ۔

صدر : آپ آپس میں بیٹھ کر طے کر لیں کہ کمیٹی میں کون کون حضرات
ہوں گے ۔ ہاں ایک بات طے ہے کہ تشکیل دی جانے والی
کمیٹی کے چیرمین ڈاکٹر ہمت علی ہوں گے ۔

(اختتامیہ پر موسیقی)

★

تاثریہ:

حق بہ حق دار...

لطیف جلیلی

گوہر نے تیز دھار خنجر کو چادر کی بُکل میں چھپایا اور مرید پور کی طرف چل پڑا۔ آج مرید پور میں اس کے بڑے بھائی، کریم بخش نے ایک دعوت کا اہتمام کیا تھا۔ یہ دعوت وہ زمین کے مالکانہ حقوق ملنے کی خوشی میں دے رہا تھا۔ مگر گوہر علی اپنے بھائی کے پاس مرید پور دعوت کھانے کے بجائے کسی اور غرض کے لئے جا رہا تھا۔ وہ حلقہ پٹواری، نور دین، کو قتل کرنا چاہتا تھا کیونکہ اس نے کریم بخش کو استاد فضل دین کی سفارش پہ زمین دے دی تھی مگر گوہر علی کو نظر انداز کر دیا تھا۔

زندگی ویسے بھی بڑے کٹھن طریقے سے بیت رہی ہے۔ پٹواری کو قتل کر کے پھانسی چڑھ جاؤں گا۔ بیوی بچوں کا خدا حافظ ہے۔ اس نے سوچا اور تیز تیز قدم اٹھاتا ہوا مرید پور کی طرف چل دیا۔ جب گوہر مرید پور پہنچا تو اس نے دیکھا کہ آج استاد فضل دین کے مکتب میں طالب علموں سے زیادہ اُن مہمانوں کا ہجوم تھا جو اس کے بھائی، کریم بخش، کے گھر دعوت پر آئے ہوئے تھے۔ استاد فضل دین ناک پر عینک چڑھائے اپنی بان کی ٹوٹی ہوئی چارپائی پر مہمانوں سے کچھ اس طرح باتیں کر رہا تھا جیسے کوئی فاضل استاد اپنے کند ذہن طالب علموں سے باتیں کر رہا ہو۔ حالانکہ استاد فضل دین کوئی زیادہ پڑھا لکھا آدمی نہ تھا۔ ہاں فارسی خواں ضرور تھا۔ اس کا مکتب گاؤں کے باہر ایک پیپل کے پرانے درخت تلے تھا۔ جہاں وہ دن بھر بچوں کو پڑھاتا اور شام کے بعد ایک میلے کچیلے چراغ کی روشنی میں ہر روز گپ شپ کی محفل آراستہ کرتا۔ ایسے جیسے بڑے بڑے شہروں میں ادبی محفلیں جمتی ہیں۔ ایسی محفلیں جو قلب و نظر کو گرماتی ہیں۔ استاد ہر آنے والے کو خندہ پیشانی سے ملتا۔ استاد کے پاس اخبارات کا ایک پلندہ بھی ہر وقت موجود رہتا۔ وہ اکثر سننے والوں پر اپنی علمیت کا سکہ جمانے کے لئے اخبارات کے اقتباسات سناتا اور عینک اوپر اٹھا کر داد طلب نگاہوں سے ہر کسی کی طرف دیکھتا۔ داد دینے میں شکر دین ہمیشہ فراخدل رہا۔

زرعی اصلاحات کی بدولت کریم بخش، جو کبھی گاؤں کا مزارع تھا، اب زمین کا مالک بن گیا تھا۔ وہ ان دنوں بے حد خوش تھا۔ وہ اب گاؤں کے زمیندار کے برابر بیٹھتا تھا۔ صرف کریم بخش ہی نہیں، اس کے بیوی بچے بھی بہت خوش تھے۔ وہ سوچتے کہ وہ اب اپنی ہی زمینوں پر محنت کرتے ہیں، تو محنت کا فائدہ بھی اب ان ہی کو ملتا ہے۔ وہ اب کڑکڑاتے جاڑے اور چلچلاتی دھوپ میں کام کرتے ہوئے ایک مسرت سی محسوس کرتے۔ وہ اب کسی غیر کے محتاج نہیں تھے۔ معاشرے کے آزاد فرد، ہر اعتبار سے آزاد اور اپنی قسمت کے خالق۔ زرعی انقلاب سے پہلے کریم بخش اپنی محنت سے جو کچھ پیدا کرتا اس کا نصف سے زیادہ حصہ زمیندار کے گھر چلا جاتا۔ کچھ مالکانہ حقوق کے بدلے اور کچھ دوسرے بہانوں سے۔ سچ تو یہ ہے کہ غریب کریم بخش کے پاس جو کچھ بچ رہتا وہ اسے اور اس کے بال بچوں کو زندہ رکھنے کے لئے ناکافی ہوتا۔ کریم بخش کے بیوی اور بچے مسلسل بیماریوں کا شکار رہتے۔ ان حالات میں کریم بخش کی زندگی کے ساتھی بیل اپنی خوراک کہاں سے حاصل کرتے۔ کریم بخش کی پریشانی سے مویشیوں کی بھوک سے اور زمین پر پوری طرح کاشت نہ کر سکنے سے فصل دن بدن کم ہوتی گئی اور زمیندار کے مظالم اور بہانے بڑھتے گئے۔

اِدھر کریم بخش زمین کا مالک بنا، اُدھر اسے گاؤں کی انجمن امداد باہمی سے بھی تقاوی قرضہ مل گیا۔ نہ صرف اسے بلکہ اس کے کئی دوسرے ساتھیوں کو بھی۔ اس نے جوان بیل خریدے، تازہ بیج لئے اور خوب دل لگا کر زمین میں ہل چلایا، بیج بکھیرا، اور جب فصل کاٹی تو پہلے سے دگنی تھی۔ کریم بخش بہت خوش تھا۔ اس کے بیوی بچے بھی بہت خوش تھے۔ اور آج کریم بخش نے اس خوشی میں اپنے عزیز و اقارب کی دعوت کی تھی، اپنے پریشان حال بھائیوں کو بلایا تھا۔ برادری کے کئی دوسرے افراد کو بھی مدعو کیا تھا۔

یوں تو پہلے بھی کئی بار کریم بخش کے گھر رشتہ داروں کا ٹھٹ جمع ہوا کرتا تھا۔ پہلی بار کریم بخش کی لڑکی کی وفات پر جو غریب سات دن تک بخار میں مبتلا رہ کر چل بسی اور غریب باپ اپنی بچی کو بخار میں تڑپتا دیکھ کر بھی اس کے علاج کے لئے ایک پھوٹی کوڑی کا انتظام نہ کر سکا تھا اور برادری والے دوسری بار ننھے رمضان کی پیدائش پر آئے تھے، جب کریم بخش نے بیل بیچ کر مہمانوں کے لئے کھانے کا انتظام کیا تھا — بیل بیچ کر کھانے کا انتظام تو ہو گیا تھا مگر وہ ایک سال چھ ماہ تک دوسرا بیل نہ خرید سکا، تب اس کے پاس بس ایک بیمار سی گائے رہ گئی تھی جس کے ساتھ وہ دوسرا جانور کسی سے مانگ کر جوت دیتا۔ اس طرح بہت سی زمین کاشت کئے بغیر رہ جاتی۔

لیکن آج کریم بخش کے گھر میں چہل پہل تھی۔ گاؤں کی لڑکیاں ڈھولک پر خوشی کے گیت گا رہی تھیں۔ اس کے بیوی بچے صحت مند اور توانا تھے۔ گھر میں ہر چیز سلیقے سے رکھی تھی۔ مہمان خوش تھے مگر گوہر سخت پریشان نظر آتا تھا۔ وہ رہ رہ کر کریم بخش کے بشاش چہرے پر نظر ڈالتا، اس کے بیوی بچوں کی طرف دیکھتا اسے اپنے گھر کا خیال آ رہا تھا... اپنے بیوی بچوں کا خیال جنہیں وہ بے سروسامانی کی حالت میں چھوڑ کر چلا آیا تھا۔

کھانے سے فارغ ہو کر کریم بخش اور اس کے مہمان پیپل کے درخت کی طرف گئے جہاں استاد فضل دین کا مکتب تھا۔ استاد حسب معمول باتیں کر رہے تھے۔ گاؤں کی باتیں، افسروں کا ذکر، فصل کی فراوانی، کبڈی کے مقابلے اور دوسری باتیں سننے والے بڑی عقیدت اور انہماک سے استاد کی گفتگو سن رہے تھے۔ مگر گوہر خاموش تھا۔ اس کی نگاہیں اپنے شکار کی تلاش میں لگی ہوئی تھیں۔

گوہر نے استاد فضل دین کو ٹوک کر پوچھا "استاد جی، یہ تو بتائیں کہ جس طرح بھائی کریم بخش کو زمین کے مالکانہ حقوق مل گئے ہیں اسی طرح باقی کاشتکاروں کو بھی زمینوں کے مالکانہ حقوق ملیں گے۔ یا باقی لوگ عمر بھر مزارع کے روپ میں زمینداروں کے غلام بنے رہیں گے؟" استاد فضل دین پہلے تو چونکا، پھر نہایت اطمینان سے بولا: "بھائی، حکومت بالکل غافل نہیں۔ بات اصل میں یہ ہے کہ حکومت کو پہلے تو ایسے مزارعوں کی صحیح تعداد کا پتہ نہ تھا جنہیں مالکانہ حقوق نہیں ملے، لیکن ۱۹۶۰ء کی زراعت شماری کے دوران حکومت نے کاشتکاروں اور زمینوں کے متعلق تمام معلومات حاصل کر لی ہیں۔ اب حکومت کو صحیح اندازہ ہو گیا ہے کہ کتنے مزارع باقی ہیں جنہیں مالکانہ حقوق دیئے جائیں اور مزید کتنی زمین زیر کاشت لائی جا سکتی ہے۔"

گوہر استاد فضل دین کی باتیں کچھ اس انداز سے سن رہا تھا جیسے کہہ رہا ہو "کیوں جھوٹ بکتے ہو؟ سرکار نے میرے بھائی کو اس لئے زمین دی ہے کہ میں غریب رہوں۔ سرکار میری زندگی کا مذاق اڑانا چاہتی ہے۔ مجھے بھوکوں مارنا چاہتی ہے۔"

استاد فضل دین اپنی تازہ ترین اطلاعات ایک طرح سے نشر کر رہا تھا کہ حلقے کا پٹواری گھوڑی سرپٹ دوڑاتا مکتب میں آیا۔ فضل دین اور کریم بخش اٹھے اور پٹواری کی طرف بڑھے۔ گوہر نے چادر کی بغل میں خنجر کو مضبوطی سے پکڑا اور اٹھ کر فضل دین اور کریم بخش کے پیچھے پیچھے پٹواری کی طرف چل پڑا۔

نور دین، پٹواری، گھوڑی سے اتر چکا تھا۔ چوکیدار گھوڑی کی لگام تھام کر اسے کنوئیں کی طرف لے گیا۔ اور نور دین استاد فضل دین اور کریم بخش کے ساتھ مکتب کے کٹہرے کی طرف بڑھا۔ قریب تھا کہ گوہر ہاتھ اٹھا کر نور دین پر خنجر سے وار کرے کہ پٹواری نے اپنی اچکن کی جیب سے ایک خاکی رنگ کا کاغذ نکالا اور گوہر کی طرف بڑھا کر کہا:

"گوہر علی! یہ لو زمین کے مالکانہ حقوق۔ میں تمہارے

باقی ص۵۱ پر

فن:

شگفتِ گُل

(ڈھاکہ میں بچوں کی نمائشِ فن)

ارشد سلمان

بچے بجائے خود فطرت کا ایک ایسا عطیہ ہیں جو ہر وقت ہماری توجہ اپنی طرف کھینچتے رہتے ہیں۔ کبھی کھیل کود کی حالت میں، کبھی اپنی معصوم باتیں کرنے میں، کبھی اپنی ذہنی افتاد کے کسی اور مظاہرے سے۔ غور سے دیکھیں تو اس پرانے مقولہ کی سچائی محسوس ہوتی ہے کہ بچہ واقعی آدمی کا باپ ہوتا ہے اور وہ جوں جوں بڑھتا جاتا ہے اس کی ذہنی و جسمانی صلاحیتیں اور کردار ایک بڑھتے ہوئے درخت کے مانند طرح طرح کے برگ و بار حاصل کرتا چلا جاتا ہے۔ بڑوں کا کام یہ ہے کہ اس ننھے سے پودے کی اچھی طرح آبیاری کریں تاکہ جب وہ بڑا ہو تو جسم، ذہن اور نفسی و روحانی اعتبار سے دیگر انسانوں میں اپنے وجیہہ و وقیع قد و قامت کے باعث الگ پہچانا جاسکتا ہو۔ یہ صحیح ہے کہ ہر پودا شاہ بلوط نہیں بن جاتا اور ہر بچہ لازماً ایک عظیم شخصیت میں مبتدل نہیں ہوتا لیکن ہم کسی بھی شعبۂ حیات کا ذکر کریں تو یہی نظر آئے گا کہ ہر بڑا آدمی کبھی بچہ ہی تو تھا۔ صحیح تربیت، اچھے ماحول اور مناسب پرداخت نے ہی اس کو کسی ممتاز مقام پر پہنچایا۔ یہ ضروری نہیں ہے کہ عظیم و مثالی ماحول ہی ہر بچہ کو میسر آئے۔ بلکہ زیادہ تر یہی دیکھا گیا ہے کہ گدڑی میں لعل چھپے ہوتے ہیں اور کچھ نہیں کہا جاسکتا کہ کونسا بچہ ایک عظیم انسان بن جائے گا۔ اس لئے قدرتی بات یہ ہوئی کہ ہم ہر بچہ کو اپنی امید گاہ سمجھیں اور اسے اس توقع کے ساتھ پروان چڑھائیں کہ اس میں بھی قدرت نے بڑی صلاحیتیں رکھی ہیں۔ توچہ دانی کہ دریں گرد سوارے باشد — مناسب حالات پیدا کئے جائیں تو اکثر بچوں کی شخصیت و صلاحیت بار آور ہوسکتی ہے۔

بچوں کی صلاحیتیں یوں تو طرح طرح کے روپ اختیار کرتی رہتی ہیں مگر دیکھا گیا ہے کہ بچے جب اپنے ہاتھوں سے کوئی چیز بنائیں، گھڑیں یا اپنے ذہن و تصور کو کسی کاغذ پر منتقل کریں تو اس وقت وہ صحیح معنوں میں اپنے وجود اور اپنی خودی کو ایک نمود بخشتے ہیں۔ ایسی نمود جو ملاوٹ، بناوٹ اور تکلف سے بے آمیز ہوتی ہے۔ اس میں بچہ بحیثیت اصل بچہ کے پوری طرح جھلکتا ہے۔ ہمیں اسی صلاحیت کے ممکنات کو سنبھالنا ہے۔ اگر ہماری طرف سے غفلت یا کوتاہی ہو تو بہت سے جوہر قابل ہم سے گم ہو جاتے ہیں۔

انسان کے ابتدائی عہد کو دیکھیں تو وہ بھی انسانیت کا بچپن نظر آتا ہے مگر یہ بھی ہے کہ انسان اس وقت بھی بہتر تمدن کی طرف قدم بڑھا رہا تھا۔ آج جب ہم غاروں میں بنائی ہوئی تصویریں دیکھیں تو نظر یہ آئے گا کہ ماحول کی عکاسی اس وقت کے انسان کا مشغلہ تھا۔ نزدیک جتنے پیڑ تھے جو پہاڑ اور ندی نالے تھے، وہ جانور جن سے اس کو سابقہ پڑتا تھا اور اس کے آلات شکار کوئی نہ کوئی نقش بن کر ان غاروں کی دیواروں پر منتقل ہو جاتے تھے۔ ابتدائی انسان کے اس شغل صورت گری میں ہمیں اور کچھ نظر آئے یا نہ آئے مگر ایک بیساختگی، سچائی، اپج اور حرارتِ فکر ضرور نظر آئے گی۔ شاید یہی وہ صفات ہیں جن کی وجہ سے ہم ان پرانے نقوش کو بھی دیکھے بغیر نہیں رہ سکتے اور یہ جاننے کی کوشش کرتے ہیں کہ ان میں فنی خوبی کیا ہے۔ سب سے بڑا احساس حیرت کا ہوتا ہے۔

اس عہد کا بچہ بھی اسی طرح اپنی فطری صلاحیت کے اظہار کا کوئی نہ کوئی بہانہ ڈھونڈتا ہے اور اگر اسے شکل بنانے کا موقع مل جائے تو بے ساختگی، خلوص فکر اور جرأت اظہار ضرور موجود ہوتی ہے۔

بچوں کے بنائے ہوئے نقوش بھی اپنی ہی ایک عجیب دنیا ہوتے ہیں۔ ایک پھول باڑی، ایک پھلواری، جو گلہائے رنگا رنگ سے مزین نظر آتی ہے اور بجائے خود ایک فنی "ونڈر لینڈ" ہوتی ہے — بچے کسی چیز کو دیکھ کر کیا سمجھتے، کیا محسوس کرتے اور اسے کس طرح ہم تک منتقل کرتے ہیں بجائے خود ایک موضوعِ مطالعہ ہے۔ بچوں کے نقوش میں اگر آپ کھو جائیں تو اپنے آپ کو ایک انوکھی دنیا میں پائیں گے۔ یہاں بچہ کے لئے ہر شے حقیقی ہوتی ہے، بڑی ہی ٹھوس اور محسوس۔ یہ تو ہوگا کہ بچے کی ڈرائنگ

میں کبھی صحت و تناسب ہوگا اور کبھی نہیں۔ ہو سکتا ہے کہ اس کا نقش مسخ، مبہم یا مبالغہ آمیز ہو مگر اس نے جو کچھ بنایا ہے وہ جاذبِ نظر ضرور ہوگا لیکن آپکو اس کی سطح پر آ کر اس نقش کو دیکھنا ہوگا ورنہ آپ ایک بڑا تماشہ اور ایک بڑا نیرنگ فکر و نظر کھو دیں گے۔ بعض نقش مہیب ہوں گے، بعض مہمل بھی اور بعض اوقات بھدے۔ شاید آپ ہنسی ضبط نہ کر سکیں۔ مگر یہی لمحہ ادب ہے۔ یہی وہ نفسیاتی لمحہ ہے، جب آپ کی سنجیدگی کی آزمائش ہوتی ہے۔

بچے نے جو بھی نقش کھینچا ہے۔ آپ کے نزدیک مہمل ہو سکتا ہے مگر "نگاہ آئینہ ساز" میں شکستہ شیشہ بھی عزیز تر ہوتا ہے، اس لئے ہمدردی کی نگاہ اور سمجھنے کی سچی روح کے ساتھ اسے دیکھئے۔ یہ صاحب ہیں صرف ساڑھے تین برس کے اور ایک نقش بنا کر لائے ہیں۔ کاغذ پر دو چار خط ہیں، دو چار نقطے اور اس بات پر مصر ہیں کہ یہ میدان میں کھیلتے ہوئے بچے ہیں۔ اگر آپ نے ان کی بات نہ مانی تو وہ آپ کو یقین دلا کر رہیں گے کہ وہ جو کچھ کہہ رہے ہیں صحیح ہے۔ اگر آپ نے تصویر کی روح کو نہیں پایا تو اس میں بچے کا کیا قصور ہے؛ جیسے جیسے بچے کی عمر بڑھے گی اسے خود ہی معلوم ہو جائے گا کہ حقیقت اشیا کیا ہے، تصویریں کیا ہونا چاہیئے، خط و خال کسے کہتے ہیں اور تناسب و توازن کس چیز کا نام ہے۔ مگر ابھی اسے اپنی من مانی کرنے دیجئے۔ آج وہ مضحکہ خیز نقش بناتا ہے تو کل وہ ایک طلسم حیرت بھی بنا سکے گا۔

نقش گری بچوں کی ذہنی صلاحیتوں کو بڑی تیزی اور برتری بخشتی ہے۔ تعلیم کے ماہروں نے اس کی اہمیت کو بہت عرصہ قبل محسوس کر لیا تھا۔ آپ کو یاد ہوگا کہ اس بیسویں صدی کی ابتدا ہی سے اسکول کے بچوں کو تصویریں اور گیلی مٹی کے چرند پرند بنانے کی مشق کرائی جاتی تھی۔ اس طرح بچوں کو اپنی فنی صلاحیت کے اظہار کا موقع ملتا تھا اور تعلیمی رفتار کی ترقی بھی اس میں مضمر تھی۔

کسی دانا نے کہا ہے "بچہ اپنی جگہ خود ایک قانون ہے اور اسے اپنی تکنیک کو مرتب و مہذب بنانے کی پوری آزادی ملنی چاہیئے"۔ شاید یہی بات ہے کہ اب ہم بچے کی آزاد فطرت کو پھلنے پھولنے کا موقع دیتے ہیں اور بچوں کی نقاشی میں بھی دلچسپی لینے لگے ہیں۔ یوں بچوں کی نقاشی اتنی اہمیت اختیار کر گئی ہے کہ بین الاقوامی سطح پر ان کی نمائشیں بھی ترتیب دی جا رہی ہیں اور ہر طرح کامیاب ثابت ہوئی ہیں۔

پاکستان میں بھی اب بچوں کی نقاشی کی طرف پوری طرح توجہ دی جا رہی ہے، اور کئی فنی نمائشیں علاقائی، صوبائی اور ملک گیر سطح پر منعقد کی جا چکی ہیں۔

اسی طرح کی ایک نمائش فن پچھلے دنوں ڈھاکہ میں منعقد ہوئی تھی جس میں مشرقی و مغربی پاکستان کے بچوں نے حصہ لیا۔ یہ نمائش ڈھاکہ کی مشہور فنی درسگاہ "آرٹ انسٹی ٹیوٹ" کے ایوان میں ترتیب دی گئی تھی اور ایکسو پچاس فنکار بچوں نے اس کے لئے اپنے نقوش بھیجے تھے۔ ان نقوش کو دیکھ کر یہ احساس ہوتا تھا کہ رنگ، خط اور سوچ کی نئی نئی راہیں کھلتی چلی جا رہی ہیں۔

کسی پارۂ فن کی قدر کا فیصلہ کرنا بڑا مشکل کام ہوتا ہے اور بچے کے فن پر کوئی فیصلہ کر دینا اور بھی مشکل مسئلہ ہوتا ہے۔ اب بچوں کے اتنے سارے فنی نمونے ہمارے سامنے تھے اور کوئی بھی ایسا نہ تھا جس کی اپنی انفرادی حیثیت یا قیمت نہ ہو۔ جس تصویر کو بھی دیکھو اک جہانِ رنگ و خط تھا، اور یوں اک جہانِ معنی بھی۔ مقصود یہ عرض کرنا ہے کہ ہمارے ہاں بھی ننھی تانتی میں فن نمود پانے کے لئے مچل رہا ہے۔ اس نمائش ہی میں جن ننھے فنکاروں کے نام لئے جا سکتے ہیں ان میں علاوہ اوروں کے ان بچوں کا ذکر خصوصاً کیا جا سکتا ہے: آنسیں انصاری (۱۲ سال)، غزالہ شاہین (۱/۲ ۶ سال)، عابد حسن (۱۰ سال)، نسیم اختر (۱۰ سال)، میٹھو (۱/۲ ۴ سال)، گیتی (۵ سال)، ارونا (۷ سال)، نورالاسلام (۹ سال)، امینہ خانم (۹ سال)، فوزیہ دانی (۹ سال) اور رضا (۱۰ سال)۔

نمائش کے ان نقوش کو دیکھ کر یہ محسوس ہوتا تھا کہ ان بچوں کے سامنے دنیا ایک نئے معنی لے کر جلوہ گر ہوئی ہے۔ انہوں نے جو کچھ دیکھا اور محسوس کیا ہے اسے قلم و قرطاس کی مدد سے ظاہر کر دیا ہے۔ دیکھئے ان میں رنگ ہے، فاصلہ ہے، پھیلاؤ ہے، تناسب ہے، توازن ہے۔ آنسیں انصاری نے برش سے جو کچھ بنایا ہے خاص طور پر بڑا توانا ہے۔ مشرقی پاکستان کے جانے پہچانے ماحول کی بات۔ کشتیاں اور سست رو بیل گاڑی۔ غزالہ شاہین کی تصویروں میں حیرت اور تازگی کا عنصر نظر آتا ہے۔ یہ دو باتیں تو اکثر بچوں کے فن میں آپ ضرور پائیں گے۔ اس کی "دو بہنیں" واقعی قابل داد تھی۔ عابد حسن کے کام میں سادگی کی صفت تھی۔ ناصر نے سنہری سنہری کھیت اور نزدیکی گاؤں کا نقشہ کھینچا تھا جن کی جزئیات بہت صحیح تھیں۔ پس منظر میں گھلتا ہوا ماحول اس بچے نے خوب دکھایا تھا۔ رضا اور نسیم، دونوں دس سالہ بچے اچھی تصویریں

مٹو (معین العابدین) : ساڑھے سات سال

دنوں ڈھاکہ انسٹی ٹیوٹ میں مغربی و مشرقی پاکستان کے نونہال فنکاروں
، نمائش نقاشی ترتیب دی گئی تھی جس میں ملک کے ہر حصہ سے
نو عمر اور ہونہار نقاشوں نے حصہ لیا ۔

اس نمائش کی چند ممتاز تصاویر یہاں پیش کی جاتی ہیں ۔

نورالاسلام : ۹ سال

کے ۔ ایم ۔ جمال الدین : ۸ سا
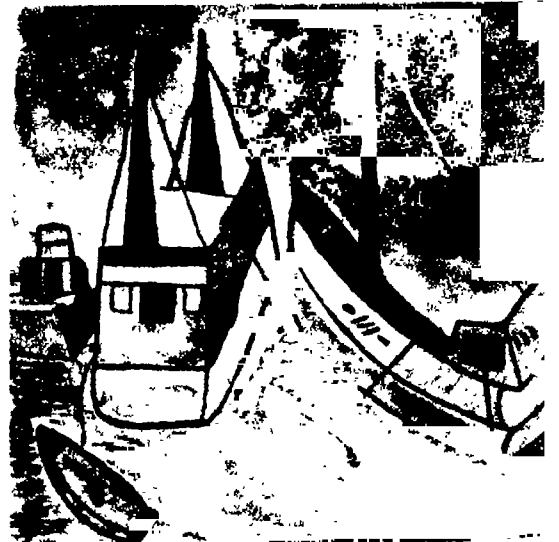
غزالہ شاہین : ساڑھے چھ سال

"یک چمن گل"

مرغزار
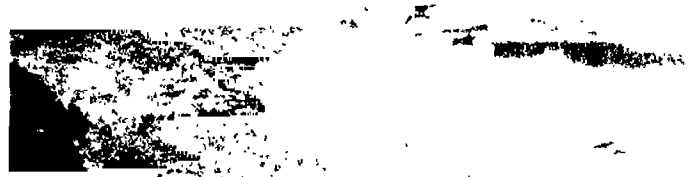
برفستان
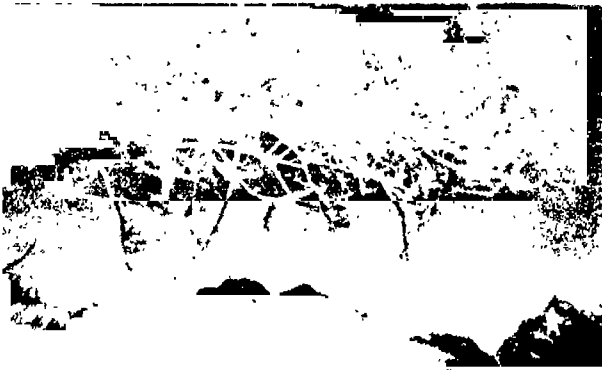
لمبوش وادی

بل کھاتے دردا

اکستان کا شمال نہ صرف اپنے پر کشش اور بلند و بالا
ہاڑوں ، اپنی برف پوش چوٹیوں ، ہوش وادیوں اور
درتی مناظر کی فراوانی کے باعث مشہور ہے، بلکہ وہ
اریخ و تہذیب کے کئی دھاروں کا سنگم بھی رہا ہے
ور عرصۂ دراز سے اپنی دفاعی حیثیت کے باعث بھی
یک اہم خطہ سمجھا جاتا ہے۔ اس خطے میں ریاست
ائے چترال ، گلگت ، ہنزہ، دیر، سوات اور باجوڑ کے
لاقے خصوصی امتیاز کے مالک ہیں - یہاں گلگت
ور نواحی علاقوں کے چند رنگین اور خوبصورت قدرتی
مناظر پیش کئے جاتے ہیں -

بنلاتے ہیں۔ نورالاسلام کی گھاٹ پرلگی کشتیاں آپ کی توجہ ہٹنے نہیں دیتی تھیں۔ میٹھو میاں تو ابھی صرف سات سال کے ہیں۔ آب رواں کی سرزمین کے نونہال۔ مگر ہیں بھی کس باپ کے بیٹے۔ پاکستان کے عالمی شہرت یافتہ نقاش، زین العابدین کے فرزند۔ اس بچے کو فن کی "بڑی" امید مانا جاسکتا ہے۔ اس نے اپنی ماں کو اون بُنتے ہوئے دکھایا تھا۔ جاڑے کا سماں ہے، شام ہو چلی ہے اور ماں بیٹھی (شاید میٹھو کے لئے ہی) کوئی اونی چیز بُن رہی ہے! ذہنی اڑان کی بڑی اچھی مثال ہے۔

سیمی قاضی، گیتی، ارونا، شین، معصومہ خانم، فوزیہ درانی، جمال الدین اور پرویز احمد وغیرہ ایسے بچے تھے جن کو "ممتاز" فہرست میں رکھا جاسکتا ہے۔ ان سب میں وہ بات ضرور تھی جس سے یہ اندازہ ہوسکتا ہے کہ پاکستان کے بچوں میں فنی اظہار کی بڑی عمدہ صلاحیت ہے اور نئی نسل سے ہمیں بہت سے اچھے فنکار ملنے کی توقع ہوسکتی ہے۔

صرف اپنے ہی ملک میں نہیں، ہمارے بعض ذہین بچوں نے تو بچوں کے بین الاقوامی مقابلوں میں بھی امتیاز حاصل کرلیا ہے جو ہم سب کے لئے موجبِ مسرت و فخر ہے۔ نئی دہلی میں مشہور فنکار شنکر نے حال ہی میں بچوں کی جو بین الاقوامی نمائش فن ترتیب دی تھی وہ مقابلہ آرائی کی بنیاد پر تھی۔ ۷۷ ملکوں سے تقریباً ایک لاکھ نقوش اس مقابلہ میں شریک ہوئے تھے۔ ان نقوش میں ہمارے دو بچوں کو بھی بین الاقوامی انعام ملا۔ ایک صاحب کا نام ہے مبارک حسین (۱۰ سال) اور دوسرے صاحب "ایٹم" کہلاتے ہیں (۵½ سال) یہ بچے مرکزی "کاچی کنچا میلہ" (مشرقی پاکستان) کے فنی ادارے کے رکن بھی ہیں۔

مختصر یہ کہ ہم بچوں کی ان تصویروں کو دو وجوہ کی بنا پر پسند کرتے ہیں، ایک تو یہی بات کہ بچے ہم سے اتنے قریب ہیں، عزیز ہیں اور یہ کہ وہ "بالغوں" کے معیار فن کی طرف بڑی تیزی و ہوشمندی سے بڑھ رہے ہیں؛ اور دوسری بات یہ ہے کہ بچے اپنی تصویریں بنا کر کس قدر خوش اور مطمئن ہوتے ہیں اور اپنی اس مسرت و احساس کو کیسی کامیابی اور خوبصورتی کے ساتھ ہم تک منتقل کر دیتے ہیں۔ ہم بڑوں پر ان کا یہ احسان ناقابلِ فراموش ہے!

★

نیا ادبی انعام

ترقیٔ اردو بورڈ، کراچی، ادارۂ مصنفین پاکستان، (پاکستان رائٹرز گلڈ) کے اشتراک اور مالی تعاون سے بچوں کے لئے دلچسپ اور مفید کتابوں کا ایک انعامی مقابلہ منعقد کر رہا ہے۔ اس سلسلے میں حسب ذیل موضوعات پر لکھی جانے والی بہترین کتابوں پر نقد انعامات کا اعلان کیا جاتا ہے:-

انعامات :
عنوانات :

(۱) کہانیوں کا مجموعہ (کل تقریباً ۵ ہزار الفاظ)
(۲) ڈرامہ (۴۵ منٹ کا کھیل)
(۳) طویل کہانی (کل تقریباً ۵ ہزار الفاظ)
(۴) سیر پاکستان (پاکستان کے دلچسپ تاریخی اور جغرافیائی مقامات کا بیان، مع تصاویر)
(۵) سائنس کے کرشمے یا دلچسپ تجربے

ہر عنوان پر مبلغ ۵۰۰ روپے کا ایک انعام پیش کیا جائے گا۔ کتاب صاحب کتاب کی ملکیت رہے گی۔

شرائط مقابلہ حسب ذیل ہیں :-

(۱) مسودات غیر مطبوعہ ہوں اور مقابلے میں شریک ہونے والے مصنف کی تحریر اور ملکیت ہوں۔
(۲) مسودات مکمل اور قابل اشاعت ہوں۔
(۳) زبان سادہ اور پیرایۂ بیان دلچسپ ہو۔
(۴) انعام پانے والی کتاب مصنف کی ملکیت رہے گی لیکن اس کی پہلی اشاعت کا حق ادارے کو حاصل ہوگا۔ اگر ادارے نے اس کی اشاعت منظور کی تو اس کی مناسب شرائط مصنف کے ساتھ علیحدہ طے کی جائیں گی۔
(۵) انعامات اور ان سے متعلق جملہ امور کی بابت ترقی اردو بورڈ کا فیصلہ قطعی اور آخری ہوگا۔
(۶) کلاسکی یا دوسری کتابوں کے خلاصے قبول نہیں کئے جائیں گے۔
(۷) مسودات ۳۰ جون ۱۹۶۳ء تک حسب ذیل پتے پر پہنچ جانے چاہئیں۔ اس کے بعد وصول ہونے والے مسودات مقابلے میں شریک نہ ہوں گے۔

شان الحق حقی ـ سکریٹری ترقی اردو بورڈ
۶۷۲ ـ اردو منزل، جمشید روڈ، کراچی ۵

آئے گی رت ساون کی

زہراء ڈار

بیت چکی رت ! — یہ عاصمہ حسین نے کہا تھا۔ لیکن کیا وہ رت — بہار کی رت — جس کا اس شاعرہ نے اس ذوق و شوق اور حسرت سے ذکر کیا ہے — واقعی بیت چکی ہے؟ یہ نظم اسی کا جواب ہے — (ادارہ)

نگر نگر میں چرچا کر دو
ساون آنے والا ہے
ڈگر ڈگر پہ چلنے والو
بادل چھانے والا ہے

جنگل میں، پربت میں، تھلوں میں
میٹھے نغمے گونجیں گے
وادی وادی صحرا صحرا
آج خوشی میں جھومیں گے

بوجھل اور مخمور گھٹائیں
جھوم جھوم کے آئیں گی
ساون کی جل پریاں آکر
گھوم گھوم کے گائیں گی

نگر نگر میں جا کر کہہ دو
پت جھڑ کب کی جا بھی چکی
نازک پات جلانے والی
لو آخر شرما بھی چکی

رم جھم کی آواز رسیلی
کانوں میں رس گھولے گی
برساتوں کی رسیا، کالی
کوئل کوکو بولے گی

اب خوشیاں ہی خوشیاں ہوں گی
غمی نہ پر پھیلائے گی
گھر گھر میں دیوالی ہوگی
آشا جوت جگائے گی

جانے کب سے دل متوالا
سینے میں تھرایا تھا
"پی پی" کا دلدوز ترانہ
کب سننے میں آیا تھا

لدی پھندی گھنائی ناریں
گلی گلی میں گھومیں گی
جل پریوں کے روپ میں آکر
لاکھوں ہیریں جھومیں گی

جھیل، سمندر، ندی نالے
اب بھرنے ہی والے ہیں
فطرت جن کو رکھنا چاہے
وہ کب مرنے والے ہیں

اب کوئی نہیں کیدو ہوگا
اور نہ کھیڑا آئے گا
رانجھا کوئی نہ جوگی ہوگا
اور نہ کان چھدائے گا

پھر بھی نہ جانے کیوں دل میرا
مرجھایا سا رہتا ہے
سب کچھ ہوتے ساتے پگلا
کملایا سا رہتا ہے

تعارف:

"ماہِ قاشقار"

(چترال)

سید غلام حسن شاہ کاظمی

وہ سرزمین جس کو آج ہم چترال کہتے ہیں صدیوں کی طویل مدت میں جانے کتنے منازل طے کرتی اور طرح طرح کے روپ بدلتی اس دور میں داخل ہوئی ہے لیکن نگاہ نکتہ شناس سے اس کی کوئی ادا پوشیدہ نہیں رہی ہے:

به هر رنگے که خواهی جامه می پوش
من انداز قدت را می شناسم

چترال کے صدہا پہلو ہیں جو دامن دل کو اپنی طرف کھینچتے ہیں مگر ان صدہا پہلوؤں کو دو چار صفحات میں بیان کرنا بھی ممکن نہیں۔ بہرکیف ان چند سطور میں چترال کا تعارف پیش کرتا ہوں اور بہت سی تفصیلی باتوں اور تحقیقی حالات کو بخوف طوالت نظر انداز کرتا ہوں۔

سب سے پہلے اس کی جغرافیائی کیفیت کا بیان کرنا ضروری ہے۔ موجودہ ریاست چترال کے شمال میں علاقہ دخان اور ثسکاشم واقع ہے۔ مغرب میں افغانستان کے علاقے زیباک، کافرستان اور باشگل ہیں۔ جنوب میں علاقہ گبرونگ، ریاست دیر اور باجوڑ کی آبادیاں ہیں۔ مشرق میں گلگت اور کوہستان سوات کے خطے ہیں۔ چترال کی سب سے اہم وادی ۲۳۵ میل لمبی ہے۔ وہ پارخون کے درہ بروغیل سے شروع ہو کر جنوب میں ارندو تک افغانستان کی سرحد پر پہنچتی ہے۔

آج چترال کا لفظ پوری ریاست کے لئے استعمال کیا جاتا ہے مگر پہلے یہ صرف اسی مقام کا نام تھا جسے شاہ کٹور اول (۱۱۷۱ھ / ۱۹۲۰ء) نے اپنے دارالحکومت کے لئے منتخب کیا تھا۔ یہ کوئی تعجب کی بات نہیں کہ پہلے یہ ایک محدود مقام کا نام تھا اور اب اس کا پوری ریاست پر اطلاق ہوتا ہے۔ کتنی آبادیاں اور ویرانے اس حقیقت کے گواہ ہیں۔ ریاست سے باہر کے لوگ تو اس کو چترال ہی کہتے ہیں مگر خود ریاست کے باشندے اس کا تلفظ چترار کرتے ہیں (قلمی تاریخ چترال از مرزا غلام مرتضیٰ خاں)۔ مولانا محمد سیر مرحوم کا شعر ہے:

مسافر گشته دیدم شهر بسیار
ندیدم هیچ جائے مثل چترار

اس لفظ کا صحیح مفہوم متعین کرنا مشکل ہے تاہم اس سے مناسبت رکھنے والی بعض تراکیب پر غور کرنے سے اندازہ ہوتا ہے کہ ان کے اجتماعی مفہوم میں دائرہ، مرکزیت، آفتاب، ماہتاب اور ان کی روشنی شامل ہے۔ اس سے مراد دارالحکومت ہی متصور کیا جا سکتا ہے۔ اگر اس لفظ کی اصلیت فارسی ہے تو ہو سکتا ہے کہ ابتدائی اصطلاح "چتر آرا" (سایہ فگن۔ سایہ آراستن) ہو۔ اس سے مراد بھی "حکمران" یا "دارالحکومت" ہی ہے۔ چترار کے آخری "ر" کا "ل" سے بدل جانا کوئی خاص بات نہیں کیونکہ فارسی میں اس کی متعدد مثالیں ملتی ہیں۔ لہٰذا چترار کا چترال ہو جانا محض تلفظ، لہجہ اور املا کے تصرفات ہیں۔ اصل لفظ چترار ہی ہے جیسا کہ مقامی باشندوں میں اب بھی مروج ہے۔ اس کے معنی ہیں "چمن زار"۔ سید احمد شہیدؒ کے مصنف مولانا غلام رسول مہر لکھتے ہیں: "چترال کی وجہ تسمیہ یہ بتاتے ہیں کہ اصل لفظ چتر تھا۔ چتر چترالی زبان میں چمن کو کہتے ہیں۔ چترار یعنی چمن زار" چونکہ وہ مغلوں، ترکوں، تاتاریوں، چغتائیوں وغیرہ کے اقدامات سے دوچار رہا لہٰذا اس کے تلفظ کے سلسلے میں ان کی زبان کی کم فرمائیوں سے بھی استغماض نہیں کیا جا سکتا۔

کم و بیش سو برس سے اس کا نام چترال ہی مروج ہے اور اس کا یہ آخری نام ہے جو ہمارے ہاں چترال کے تلفظ و املا سے متعارف ہے (مکتوب مرزا غلام مرتضیٰ خاں)۔ تقریباً

ایک صدی قبل اس کا نام قاشقار تھا۔ یہ منگولی زبان کا لفظ تھا جس کو فارسی میں کاسنگار کہتے تھے۔ میرے خیال میں اس کا ماخذ منگولی زبان ہے کیونکہ ابتدا ہی سے یہ علاقہ منگولین نسل کا مرکز توجہ اور مسکن رہا ہے۔

قاشقار کی لغوی تحقیق سے اندازہ ہوتا ہے کہ اس کا مفہوم کوہستانی ملک اور برفانی علاقہ ہے۔ محل وقوع کے اعتبار ہی سے نہیں بلکہ واقعیت کی بنا پر بھی اس کا یہ نام مروج ہوا۔ لوگ غلطی سے اس قاشقار کو کاشغر سمجھنے لگے "چونکہ راویوں نے اس کا نام (چترال) کاشغار سنا تھا۔ اس لئے بیان کرتے وقت کبھی کبھی کاشغر بھی بولتے رہے۔ عام لوگوں نے اسے معروف کاشغر سمجھ لیا جو پارقند کے پاس ہے۔" (سید احمد شہید، جلد ا صفحہ ۴۲۷) "اور پھر یہ غلط فہمی اس حد تک پہنچ گئی کہ سید احمد شہید کی چھوٹی بی بی کے اخلاف بھی اپنے مادری سلسلے کو معروف کاشغر ہی کی طرف منسوب کرتے رہے۔" (مولانا مہر) در اصل قاشقار اور کاشغر میں کوئی معنوی فرق نہیں۔ فرق صرف بعد و مسافت کا ہے اور جیسا کہ جناب مرزا غلام مرتضیٰ خاں نے مجھے ایک مکتوب میں لکھا ہے، ترکستان کے کاشغر اور اس ملک کے قاشقار میں صرف اتنا فرق ہے کہ اول الذکر کو کاشغر یا قاشقار بزرگ کہتے ہیں اور موخر الذکر کو کاشغر یا قاشقار خورد۔ دونوں کا املا اور تلفظ قاشقار بھی ہے اور کاشغر بھی لیکن دونوں کا محل وقوع مختلف ہے۔ باجور، سوات وغیرہ میں اب بھی لوگ اسے قاشقار ہی کہتے ہیں۔ بہرحال اس کا املا قاشقار، کاشغار، قاسقار یا کاسگار کچھ بھی ہو لیکن یہ چترال ہی کا قدیم نام ہے اور اس کا اطلاق کسی ایک قریہ پر نہیں بلکہ پورے ملک پر ہوتا تھا۔ چنانچہ افغانی سرحدات کے مشہور عالم دین، اخوند درویزہ ننگرہاری (۱۰۴۸ھ / ۱۶۳۹ء) نے اپنی مشہور تصنیف "تذکرۃ الابرار والاشرار" (صفحہ ۸۵ تا ۱۱۱) میں قاشقار کا لفظ پورے ملک کے لئے استعمال کیا ہے۔ یہی نہیں بلکہ وہ اسے "مملکت قاشقار" لکھتے ہیں۔

مولانا مہر نے کاشکار یا قاشقار نامی کسی بستی کے متعلق لکھا ہے کہ اب تک اس کا ذکر نقشوں میں ملتا ہے لیکن مرزا غلام مرتضیٰ صاحب اس نام کی کسی بستی کا وجود تسلیم نہیں کرتے البتہ وہ اپنے ایک مکتوب میں قاشقار کے حدود میں اور اس کے متصل ایک اور بستی کا نام باشقار بتاتے ہیں۔ وہ مولانا مہر کی بتائی ہوئی بستی پر غور و فکر کے بعد اس نتیجے پر پہنچے ہیں کہ خاص چترال سے چند میل کے فاصلہ پر "یک قریہ واقع است کہ نام آں تاشقار می باشد۔" قاشقار، تاشقار اور باشقار تینوں میں قار کا اشتراک لفظی دلچسپ ہے۔ ان الفاظ کی ساخت اور صوت سے ظاہر ہوتا ہے کہ یہ وضع قطع میں منگولین ہیں سنسکرت نہیں جیسا کہ بعض لوگوں کا خیال ہے۔

بہرحال قاشقار میں کوئی بستی فی الواقع اس نام سے نہ پہلے آباد تھی اور نہ آج چترال یا اس کے آس پاس مضافات میں قاشقار نام کی کسی بستی کا سراغ ملتا ہے۔ البتہ قاشقار کے ہم وزن اور قریب المخارج دو جگہیں ہیں جن کا ذکر جناب غلام مرتضیٰ خاں نے اپنے مکتوب میں کیا ہے۔

یہاں کاشغر یا قاشقار کے ایک خاص مفہوم کا ذکر غالباً خالی از دلچسپی نہ ہوگا۔ علامہ محسن فانی کشمیری (۱۰۸۲ھ) نے اپنی کتاب "دبستان مذاہب" میں ضمناً "ماہ کاشغر" ایک جگہ استعمال کیا ہے۔ اس کی تشریح کے سلسلہ میں یہ حاشیہ (صفحہ ۴۱۳) ایزاد ہوا ہے: "ماہ کاشغر ماہ صیام است کہ کنایہ از خوبان و ماہ وشان ترک ہم است۔" اس سے دو امکانات کا پتہ چلتا ہے۔ ایک یہ کہ مخصوص جمالیاتی اوصاف گوناگوں کی وجہ سے کاشغر یا قاشقار نام پڑ گیا ہو۔ دوسرے اپنے مخصوص اوصاف ہی کی وجہ سے لوگوں کے ذہن پر یہ نام چھا گیا ہو۔ یہ ویسا ہی کنایہ ہے جیسا کہ ہلال عید کا کنایہ کلید میکدہ ٹھہرا تھا:

ہلال عید بر اوج افق ہویدا شد
کلید میکدہ گم گشتہ بود پیدا شد

"ماہ کاشغر" کی تعبیر ایسی ہی ہے جیسے ماہ کنعان،

ماہ مصر، مہ جبیں، ماہ پارہ وغیرہ۔ شاید اسی مناسبت ہی سے ماہ سے "مہتر" کا لفظ حکمرانان قاشقار کے لئے وضع کیا گیا ہو۔ آج بھی والئی چترال کو مہتر چترال کہتے ہیں۔

مختصر یہ کہ قاشقار موجودہ ریاست چترال ہی کا قدیم نام ہے۔ یہ کسی ایک قریہ یا موضع کا نہیں بلکہ اس کا اطلاق پورے ملک پر ہوتا تھا جس کے حدود وہی تھے جو آج ریاست چترال کے ہیں۔ یاسین، مستوج، پونیال اور گلگت کی جانب رخ کریں تو قاشقار کے حدود کہاں پر ختم ہوتے ہیں اس کے جواب میں جناب مرزا غلام مرتضیٰ خاں لکھتے ہیں کہ عہد سابق میں ارندو سے لے کر مستوج اور توریکھو تک قاشقار کہا جاتا تھا۔ والئ یاسین سلیمان شاہ (۱۲۴۴ھ / ۱۸۳۲ء) کی حکومت مستوج سے گلگت تک تھی مگر گلگت کے علاقے قاشقار میں شمار نہیں کئے جاتے تھے۔ قاشقار صرف مستوج سے لے کر ارندو تک محدود تھا اور یہ آج بھی ریاست چترال میں شامل ہیں۔ بہرحال لادری سے مستوج تک کے علاقہ کو پہلے بھی قاشقار کہتے تھے اور آج بھی کہتے ہیں۔ قاشقار کا لفظ موجودہ چترال کے حدود پر پورا پورا حاوی ہے چترال سے پہلے پوری ریاست کا نام قاشقار تھا۔ یہ ایک ہی ریاست کے دو نام ہیں، ایک مقدم دوسرا مؤخر۔

قاشقار سے پہلے اس خطہ زمین کا نام بلوز تھا۔ زمانہ قدیم کے بعض مورخین اس کو اسی نام سے یاد کرتے ہیں۔ چنانچہ کرغز وغیرہ کے لوگ اب بھی اسے بلوز ہی کہتے ہیں۔ مصنف تاریخ رشیدی (سال تصنیف۔ ۹۵۱ھ) مرزا حیدر دوغلات کاشغری گورگانی (سال وفات۔ ۹۵۸ھ) نے بلور کے حدود اربعہ، اس کے باشندوں کے مذہبی عقائد، طرز جنگ اور بعض دوسرے حالات لکھے ہیں اور ان پر سیر حاصل بحث و تبصرہ کیا ہے۔ اس قلمی کتاب سے بعض ضروری باتوں کا خلاصہ یہ ہے۔

۱۔ بلورستان کی حد شرقی ولایت کاشغر و یارقند ہے۔ حد شمالی میں بدخشاں اور حد غربی میں کابل، لغمان اور نغمان ہیں۔ حد جنوبی میں سواد کشمیر ہے۔ مابین اور اس کے گرد اگرد چار ماہ کا راستہ ہے۔ تمام ملک میں پہاڑ اور درّے ہیں۔ تنگی کی یہ کیفیت ہے کہ تمام ملک میں ایک فرسخ بھی زمین ہموار نہیں۔ آبادی بہت ہے۔

۲۔ بلور ایک کافرستان ہے۔ باشندوں کا نہ کوئی مذہب ہے اور نہ وہ کسی چیز سے پرہیز کرتے ہیں۔ وہ اپنی مرضی کے مطابق جو جی چاہے کر گذرتے ہیں۔

۳۔ ہر گاؤں ایک دوسرے سے نبرد آزما رہتا ہے عورتیں گھر کے کاموں اور زراعت میں مصروف رہتی ہیں اور مرد جنگ میں۔ کھانے کے وقت عارضی طور پر صلح ہو جاتی ہے اور کھانا ختم کرنے کے بعد پھر جنگ چھڑ جاتی ہے۔ جس کا سلسلہ غروب آفتاب تک جاری رہتا ہے پھر عورتیں درمیان میں پڑ کر دوسرے دن صبح تک کیلئے صلح کرا دیتی ہیں۔ کبھی کبھی تو رات رات بھر جنگ ہوتی رہتی ہے۔

۴۔ چراگاہیں کم ہیں۔ اونٹ اور بھیڑ بکریاں بھی قلیل البتہ گائیں بکثرت ہیں جن سے دودھ مکھن بکفایت حاصل ہوتا ہے۔ ہر درہ کے لوگوں کی زبان جدا ہے جنگ و جدل کی وجہ سے وہ ایک دوسرے کی زبان سے واقف نہیں۔

۵۔ یہاں باغات اچھے ہیں جن میں ہر قسم کے میوے ہوتے ہیں۔ خاص طور پر انار کی ایک عمدہ قسم ایسی ہے جو بلور کے علاوہ کہیں نہیں دیکھی گئی ہے۔ اس کے دانے سفید و شفاف اور شیریں ہوتے ہیں۔

بلورستان کی اصطلاح سے بھی پہلے ریاست چترال کا قدیم تاریخی نام کہوستان تھا یعنی کہو قوم کی سرزمین۔ ابوریحان البیرونی نے محمود غزنوی (۴۲۱ھ) کے حملوں کے سلسلہ میں بیان کیا ہے کہ جلال آباد سے گلگت تک پہاڑوں میں ترکمان آباد ہیں (قلمی تاریخ چترال)۔ البیرونی نے کہو اقوام کو ترکمان لکھا ہے جس سے اندازہ ہوتا ہے کہ کہو قبائل جلال آباد سے گلگت تک پھیلے ہوئے تھے اور سارے علاقہ کو کہوستان کہا جاتا تھا۔ ۳۲۶ قبل مسیح میں اس ملک کا مروج نام کہوستان تھا۔ چنانچہ مصنف تاریخ چترال (قلمی) نے لکھا ہے کہ جب سکندر یونانی کی افواج نے آسمار کے مقام پر دریا عبور کیا تو اس عہد کے مورخین نے اسے کہو آپس۔

(KAHADAPSUS) لکھا ہے۔ یعنی دریائے کہو۔ اس سے معلوم ہوتا ہے کہ کہو قوم اس وقت آسمار کے علاقہ میں پہلے سے موجود تھی۔

چترال کی پرانی ملکی تقسیم میں اس کے دو شمالی اضلاع — مولیکہو (زیریں کہو) اور توریکہو (بالائی کہو) — ہیں اس سے قبائل کہو کے تصرفات و مقبوضات پر ہلکی سی روشنی پڑتی ہے۔

کوہ اور کہو قریب المخارج الفاظ ہیں جن کے املا میں بھی معمولی فرق ہے۔ اس لئے ان کے مراتب کو ملحوظ نہ رکھا جا سکا۔ انگریزی (KAHOSTAN) جب اردو میں لکھا گیا تو کہوستان کو بھی کوہستان یا کہستان لکھا۔ اور بولا جانے لگا۔ اس التباس و ادغام نے اصل صورت ہی مسخ کر دی۔ اگر چترال کو کوہستان کہا جائے تو اس لئے غلط نہیں سمجھا جائے گا کہ وہاں واقعی پہاڑ ہی پہاڑ ہیں۔ غیر چترالی مشکل سے سمجھ سکتے ہیں کہ چترال کا قدیم تر نام کہوستان ہے اور اس کے معنی قبائل کہو کا مسکن ہے۔ جہاں دونوں کے تلفظ میں فرق ہے وہاں ان کے معنوں میں بھی فرق ہے۔ قبائل کہو کی زبان کو آج بھی کہووار کہا جاتا ہے۔ یہی زبان ہے جسے ہم لوگ چترالی کہتے ہیں۔ اہل ملک کے افہام و تفہیم کا بڑا ذریعہ یہی زبان ہے جو اہل ملک کے لئے مادری زبان کا درجہ رکھتی ہے۔

*

اے کہ می خواہی نظام عالمے
جستہ او را اساس محکمے
داستان کہنہ شستی باب باب
فکر را روشن کن از امّ الکتاب
(اقبالؒ)

رقصِ شرر و برق

صادق مصوّر

یہ خطۂ گل رنگ و ضیا بار و طرب ریز
یہ مرکزِ انوارِ حسیں، ملکِ بہاراں
یہ زہرہ جبینوں کی، یہ زہراؤں کی بستی
یہ چاند ستاروں کی زمیں، شہرِ نگاراں

ہے پیشِ نظر خوابِ زلیخا کا نظارہ
سنتا ہوں کسی چاہ سے یوسف کی صدائیں
کھلتے ہیں یہاں پھول گلستانِ ازل کے
اک جنتِ گم گشتہ کی آئی ہیں ہوائیں

کھلتے ہوئے ہر سمت شعاعوں کے دریچے
ڈھلتا ہوا انوار میں ناہید کا ڈیرا
پائل سی چھنکتی ہوئی پھر رقصِ صبا میں
پھر جاگ اٹھا شہرِ نگاراں میں سویرا

یہ شوخ ہواؤں سے الجھتی ہوئی زلفیں
یہ اُودی گھٹاؤں میں رخِ ماہ مثالاں
رقصِ شرر و برق کا عالم سرِ ہستی
گلنار ہوئے عارضِ خورشید جمالاں

سبزے پہ مچلتا ہوا سوسن کا سراپا
پھولوں میں نکھرتی ہوئی نرگس کی جوانی
یاد آیا محبت کو فسونِ حسنِ جواں کا
دہرانے لگا ذہن کوئی بھولی کہانی

رومان و جنوں کا وہ بلاخیز زمانہ
شہزادگئ مملکتِ خواب کا عالم
وہ چاندنی راتیں، وہ سمندر کا کنارا
وہ چھاؤں میں تاروں کی ہے مہتاب کا عالم

اُس مرکزِ انوار سے پھر لوٹ رہا ہوں
منزل مری ہستی کی خدا جانے کہاں ہے
لیکن مرے ٹوٹے ہوئے خوابوں کا سفینہ
اِس سیلِ تجلّی کے تلاطم میں رواں ہے

غزل

بشیر فاروق

جب بھی پیغام بہاروں کا صبا لائی ہے
بے محابا نہ مجھے آپ کی یاد آئی ہے

اب تو آ آ گیا خورشید صبوحی لے کر
رات پیمانۂ مہتاب چرا لائی ہے

لالہ و گل کی جبینوں پہ شکن آئے ہیں
جب بھی تیرے لب و رخسار کی بات آئی ہے

گلشنِ درد میں زخموں کے سوا کچھ نہ ملا
عشق کے شہر میں رسوائی ہی رسوائی ہے

مسندِ غنچہ و گل پر نہ ملا حسن کو چین
عشق کو بسترِ پُر خار پہ نیند آئی ہے

کل بھی تھی مونس و غمخوار تری یادِ وفا
آج بھی یاد تری ہمدمِ تنہائی ہے

صبحِ غم، نالۂ شب، سوز و گدازِ محفل
لے کے سوغات یہ سلمائے حیات آئی ہے

آہ کرتا ہوں تو آتا ہے جنوں پر الزام
بات کرتا ہوں تو اندیشۂ رسوائی ہے

زندگی نغمۂ پُر شوق و طرب ریز نہیں
زندگی دردِ سراپا ہے شکیبائی ہے

چھپ گیا، مہرِ جہاں تاب، قمر ڈوب گیا
شمعِ جاں سوز ہی اک محرمِ تنہائی ہے

پیکرِ گل میں کہیں جانِ تمنا ہی نہ ہو
وہی شوخی، وہی مستی، وہی رعنائی ہے

کل بھی پُر داغ تھا ہر پھول کا سینہ فاروق
آج بھی زخم فشاں لالۂ صحرائی ہے

محمود صدیقی

یاد ہیں ہم کو ابھی تک وہ زمانے اپنے
جب تری زلف کے سائے تھے ٹھکانے اپنے

ہم وہی ہیں کہ جنہیں پیار کیا تھا تو نے
تجھ کو بھی یاد ہیں کچھ اگلے زمانے اپنے

جانتے ہیں کہ تغافل ہے ترا شیوہ مگر
پھر بھی آجاتے ہیں ہم جی کو جلانے اپنے

فکرِ تعبیر کی زحمت ہو گوارا کیونکر
خواب جب ہوتے ہیں اس درجہ سہانے اپنے

نگہِ شوق نے دم توڑ دیا گھبرا کر
کام آتے بھی کہاں تک یہ بہانے اپنے

مجلہ مشرق : بقیہ ص ۳۸

اور عمارتی لکڑی کے جنگل ہیں یا تالاب ہی تالاب جہاں دیکھو مرد عورتیں اور بچے نہا دھو رہے ہیں یا مچھلیاں پکڑ رہے ہیں۔ یہاں حکومت کی طرف سے مچھلی پالنے کے مثالی فارم بھی بنے ہوئے ہیں جہاں اعلیٰ قسم کی مچھلی کاشتکاروں اور ماہی پروروں کو مہیا کی جاتی ہے۔ چاٹگام کے جنگلوں میں بعض بعض درخت تو بڑے ہی پرانے ہیں۔ تین تین سو سال پرانے درخت یہاں عام ہیں۔ چاٹگام کی ایک نمائش میں مجھے ایک درخت کے کچھ حصے کو دیکھنے کا اتفاق ہوا۔ اس کا گھیر اٹھارہ فٹ تھا اور یہ سولہویں صدی کے اواخر میں بویا گیا تھا۔ اس درخت کا نام چمپا فلی بتایا گیا یعنی چمپا پھول کا درخت۔ اس کی لکڑی بڑی مضبوط ہوتی ہے اور گھر کا فرنیچر بہت عمدہ بنتا ہے۔

چاٹگام کے پہاڑی علاقوں میں کئی قبائل آباد ہیں۔ جیسے چکمہ، مونگ، موروڈنگ وغیرہ۔ یہ لامذہب ہیں۔ چکمہ اور مونگ قبیلہ کے کچھ لوگ بودھ مذہب کے ماننے والے بھی ہیں۔ عورتیں ایک چھوٹا سا لہنگا پہنتی ہیں۔ مرد گیروے رنگ کا کفنی نما لباس استعمال کرتے ہیں۔ سر منڈاتے اور کھڑاویں پہنتے ہیں۔ قریب قریب وہی لباس ووضع جو بودھ بھکشوؤں یعنی فقرا کا ہوتا ہے۔ رنگامتی میں چکمہ قبیلہ کے لوگ بانس کی دو منزلہ "باشائیں" بناتے ہیں۔ یہی ان کا مکان ہے اور یہی ان کا مویشی گھر۔ مکان کی نچلی منزل میں مویشی باندھ دیئے جاتے ہیں اور اوپر کی منزل میں خود رہتے ہیں۔ ان کا خیال ہے کہ اس طرح رہنے سے وہ سانپ اور دیگر موذی جانوروں سے محفوظ رہتے ہیں۔ یہ لوگ زیادہ تر مچھلی، سبزی اور چاول پر گزارہ کرتے ہیں۔ یہاں ایک خاص قسم کی کھجور اور طرح طرح کے کیلے بڑی کثرت سے ہوتے ہیں۔ گرما میں کنٹھال نامی ایک سبزی بھی ادھر پیدا ہوتی ہے۔ یہ لوگ دودھ پینے کے عادی نہیں اور دودھ سے طرح طرح کی مٹھائیاں بناتے ہیں خاص کر رس گلّہ۔ رنڈی کے بھی بڑے شوقین ہیں اور مہمان نوازی بھی خوب کرتے ہیں۔ مشتعل مزاج بھی ہوتے ہیں مگر زیادہ تر پُرامن رہتے ہیں۔ اور اب پاکستان کا باشندہ ہونے کے بعد تو متمدن زندگی کی طرف برابر قدم بڑھا رہے ہیں اور ان کی تعلیم و تربیت کا انتظام ہو رہا ہے۔

حق بہ حق دار ... بقیہ ص۲۶

گھر گیا تھا تمہاری گھر والی نے مجھے دودھ پلایا اور مالکانہ حقوق ملنے کی خوشی میں اڑوس پڑوس میں گڑ بھی بانٹا ہے۔"

گوہر کو اپنے کانوں پر یقین نہ آ رہا تھا۔ "تم مجھے گالیاں دیا کرتے تھے۔ اور میری عرضی پر غور نہ کرتے تھے۔

اب تو یقین آگیا نا؟" نور آلدین نے کہا: "دعوت ہوگئی جناب دعوت!" استاد فضل دین نے بھی ہنستے ہوئے کہا: "جی ہوگئی!"

گوہر علی نے خوشی سے سرشار ہو کر کہا، اور خنجر کنوئیں میں پھینکنے کے لئے گلی میں مڑ گیا ٭

قِران السعدین : بقیہ ص۱۷

اور یہ "کافری ماورائے شاعری" بہ سردار بیان کی جا سکتی ہے جو مرتبہ حلاج ہے۔ چنانچہ حلاج آکر کہتا ہے کہ جہاں کہیں بھی جہانِ رنگ و بو ہے وہ یا تو نورِ مصطفےٰ سے ہے یا تلاش مصطفےٰ میں ہے۔ اقبال کے نزدیک اس مسئلہ کا یہی حل تھا جو انہوں نے پیش کیا۔ غالب اور حلاج کی شخصیتوں کا فرق بھی واضح کردیا "جاوید نامہ" میں غالب کی شرکت جن خیالات کے تحت علامہ اقبال نے ضروری سمجھی، ان کا اظہار غالب کے ان شعروں میں موجود ہے:

در گرم روی سایہ و سرچشمہ نجوئیم
با ما سخن از طوبیٰ و کوثر نتواں گفت

آں راز کہ در سینہ نہانست نہ وعظ است
بر دار تواں گفت بہ منبر نتواں گفت

٭

ماہِ نو
میں مضامین کی اشاعت سے متعلق شرائط

۱۔ "ماہ نو" میں شائع شدہ مضامین کا معقول معاوضہ دیا جائے گا جس کے بعد وہ ادارہ کی ملکیت ہوں گے اور وہ انہیں حسب منشا ہر طور سے استعمال کرنے کا مجاز ہوگا۔
۲۔ مضامین بھیجتے وقت مضمون نگار حضرات "ماہ نو" کے معیار کا خیال رکھیں اور یہ بھی تحریر فرمائیں کہ مضمون غیر مطبوعہ ہے اور اشاعت کے لئے کسی اور رسالہ یا اخبار کو نہیں بھیجا گیا ہے۔
۳۔ ترجمہ یا تلخیص کی صورت میں اصل مصنف کا نام اور دیگر حوالہ جات دینا ضروری ہیں۔
۴۔ ضروری نہیں کہ مضمون موصول ہوتے ہی شائع ہو جائے۔
۵۔ مضمون کے ناقابل اشاعت ہونے کے بارے میں ایڈیٹر کا فیصلہ قطعی ہوگا۔
۶۔ ایڈیٹر کو مسودات میں ترمیم و تنسیخ کرنے کا مجاز ہوگا مگر اصل خیال میں کوئی تبدیلی نہ ہوگی۔
۷۔ مضامین صاف اور خوش خط کاغذ کے ایک طرف تحریر کئے جائیں۔
۸۔ پتہ بہت صاف اور مکمل درج کیجئے۔
۹۔ اپنے مضامین نظم و نثر کی نقول اپنے پاس بھی رکھئے۔ غیر طلبیدہ اور ناقابل اشاعت مضامین کی واپسی کیلئے ڈاک کے مناسب ٹکٹ روانہ کیجئے۔

(ادارہ)

اقبال کی آفاقیت کا مسئلہ: بقیہ صفحہ

انسان کم ہیں۔ وہاں چرند، پرند، پھول، پتے، چاند، تارے، سورج، دریا، سمندر، ہوا، وقت، غرض مجرد وغیر مجرد، ذی روح وغیر ذی روح سب انسان سے باتیں کرتے ہیں لیکن انسان آپس میں بات بہت کم کرتے ہیں۔ روزمرہ زندگی سے، میرے نزدیک اقبال کی یہ بے نیازی بھی ان کی آفاقیت میں ایک حد تک مانع ہے۔ آخر ہم ہر وقت فکر و تخیل کی دنیا میں ہی پرواز کرتے نہیں رہ سکتے۔ ہاں کبھی کبھی اڑان لگا لینے میں کوئی ہرج نہیں۔

ملٹن کو خطاب کر کے ورڈز ورتھ نے کہا تھا:

THY SOUL WAS LIKE A
STAR, AND DWELT APART
THOU HADST A VOICE WHOSE
SOUND WAS LIKE THE SEA
PURE AS THE NAKED HEAVENS,
MAJESTIC, FREE.

یہی بات اقبال پر صادق آتی ہے۔ کیا یہ واقعہ نہیں ہے کہ ملٹن کا کلام باوجود پر عظمت ہونے کے عام طور پر نہیں پڑھا جاتا اور انگریزی ادب کے چند عالموں کے زیر مطالعہ رہتا ہے۔ اسی طرح اقبال کے کلام کا بیشتر حصہ صرف چند عالم فاضل حضرات کے لیے ہے، سب کے لیے نہیں۔ کیونکہ متذکرہ وجوہ کی بنا پر اس کی اپیل محدود ہو گئی ہے، عام نہیں رہی۔ کونسا حصہ آفاقی نوعیت رکھتا ہے، اس طرف میں پہلے ہی اشارہ کر چکا ہوں ؛

(بہ شکریہ ریڈیو پاکستان کراچی)

اک بار پھر

رفعت جاوید

اب میں یہ گُر خوب سیکھ گیا ہوں۔ یہ کہ اگر کوئی تقریب ہو رہی ہو تو اس میں کیسے جایا جائے۔ بس انسان کو تھوڑا سا بے جھجک اور بے دھڑک ہونا چاہیئے۔ پھر سارے کام خود ہی ہو جاتے ہیں۔ جب کسی شادی بیاہ میں گہما گہمی ہو تو کون پوچھتا ہے کہ بھیا کون ہو۔ اور پھر میرے جیسے برخورداروں کو وہ تو ایسے موقعوں ہی کے لئے ہوتے ہیں اور ہر کوئی ان کی آؤ بھگت کرتا ہے۔ شادی بیاہ نہ سہی کوئی اور ہی علمی، ادبی، فنی، ثقافتی قسم کی تقریب سہی۔ وہاں تو لڑکوں بالوں کے لئے اور بھی آسانی ہے۔ یعنی کھلے عام داخلہ۔ بڑے بڑے لوگ ٹکٹ یا کارڈ دکھاتے ہوں اور یار لوگ گیٹ کیپر کی آنکھ بچا کر بڑوں کی ٹانگوں میں سے ہوتے ہوئے کدھر کے کدھر نکل جاتے ہیں — سچ پوچھیئے تو یہ کرتب ہم نونہالوں نے بارہا کیا ہے۔ اور حق یہ ہے کہ ہمارا تیر کبھی خطا نہیں گیا۔ سب کہتے ہیں بڑے ہونہار ہیں اور ان کے ابھی سے چکنے چکنے پات ہیں۔

خیر یہ تو یونہی بات بنانے کی خاطر بات ہوئی۔ ایک سیدھا سادہ عملی گر یہ ہے کہ ابا جان کو دعوتی رقعے اور کارڈ وغیرہ وغیرہ تو آتے ہی رہتے ہیں۔ اور بقول شخصے کبھی سولو یعنی اکیلے، کبھی ڈوئٹ یعنی مسٹر اور مسز اور کبھی سمفونی یعنی مع اہل و عیال، سنگت کی سنگت۔ اب ہم اس وغیرہ وغیرہ کا فائدہ نہ اٹھائیں تو ہمیں ہونہار کون کہے گا۔ اور وہ ہونہار جو مستقبل کی امید ہوں! اچھا رقعہ یا کارڈ ابا جان ہی کے نام سہی۔ پھر بھی کیا ہے۔ آج کے بچے کل کے باوا جان ہی تو ہوتے ہیں۔ اس لئے کیوں نہ یہ سوانگ آج ہی بھرا جائے۔ چنانچہ ہم بڑی بے تکلفی سے ان ہی کا رقعہ یا کارڈ مع لفافہ جیب میں ٹھونس لیتے ہیں۔ اور جس شان سے مرزا غالب کان پر رکھ کر قلم نکلتے تھے۔ اسی طرح ہم بڑی آن بان سے کارڈ کو نذر جیب کر لیتے ہیں یا بغل میں دبا کر روانہ ہو جاتے ہیں۔ بڑوں، بالخصوص بڑے بڑوں کو تو لوگ خود ہی راستہ دیئے جاتے ہیں۔ ایسے ہی چھوٹوں کو بھی خود بخود راستہ دے دیا جاتا ہے۔ یا وہ خود راستہ بنا لیتے ہیں۔

چنانچہ جب ابا جان حسب معمول اپنے ساتھ بہت سے دعوتی کارڈ لفافوں میں بند لائے تو ہم نے ان کا جائزہ لینا شروع کیا۔ ان میں سے ایک میرے من بھاتے قومی مرکز کتب کا دعوتی رقعہ بھی تھا۔ جس کی ایک نمائش کا آنکھوں دیکھا حال پہلے بھی بیان کر چکا ہوں۔ اور ایسے کہ نہ ستائش کی تمنا نہ صلہ کی پروا۔ دل سینے میں اچھل پڑا کہ لو اب پھر کوئی مفت کا تماشا سہی۔ کلفٹن پر عید کا میلہ نہ دیکھا گیا، یہی سہی۔ چنانچہ ہم نے اس کارڈ کو مال غنیمت شمار کرتے ہوئے ہتیا لیا۔ جیسے بعض ناشر دوسرے ناشروں کی کتابوں پر اپنا لیبل لگا کر اپنی بنا لیتے ہیں۔ یہ سب ہنرمندی کے کرشمے ہیں اس لئے ہم کسی سے کیوں پیچھے رہیں۔ ارادہ تو یہی تھا کہ اسی کارڈ کو لے کر اس نئی تقریب میں جا دھمکیں مگر ابا جان نے نوبت یہاں تک پہنچنے سے بچا لیا۔ خود ہی کہنے لگے وہ تم نے کتابوں کی نمائش دیکھی تھی نا۔ اب ایک ایسی ہی چیز ہونے والی ہے۔ انعام دیئے جائیں گے۔ ہم نے مکر کرتے ہوئے جیسے ہمیں کچھ پتہ ہی نہیں۔ کہا واقعی پھر تو ہمیں بھی ساتھ لے چلیئے۔ حج کا ثواب نذر کروں گا حضور کی! ابا جان کسی کے مصرعے کے اس برجستہ استعمال پر پھڑک گئے۔ اور حامی بھر لی۔ ہم نے بھی دل میں سوچا کیا خبر ہمارا نام بھی بھول چوک سے انعام یافتوں میں شامل ہو جائے۔ اور کوئی نہیں تو ہمارے ابن انشا صاحب وہ "اشک شوئی" والا انعام ہی دے ڈالیں۔ گھر سے جھوٹ موٹ ایک کتابچہ مرتب کر کے لئے چلتے ہیں۔ گو ہمارے لئے اس تل میں شاید ہی تیل ہو۔ اب بھی وقت ہے۔۔۔۔

ترا لطف ہوتے نہیں لگتی دیر!

غرض ہوتے ہوتے وہ دن آہی گیا۔ ہم پہلے ہی سے چاق چوبند ہو کر بیٹھے تھے۔ اباجان آتے ہی بولے کیوں میاں تیار ہو ہم پہلے ہی کسے بیٹھے تھے۔ دیکھ کر بولے شاباش! سو ہم نے بازار میں پہنچ کر ایک ٹیکسی لی۔ یہ تو میں نے محض رعب ڈالنے کے لئے کہا ہے کہ کسر شان نہ ہو۔ ورنہ سچ تو یہ ہے کہ ہم دونوں موٹر رکشا ہی میں بیٹھے تھے اور وہ بھی ویسا ہی جیسا کہ وہ گھوڑا جس کی تعریف میں ہمارے نامی گرامی شاعر سودا نے ورق پر ورق سیاہ کر دیئے ہیں۔ یہ اباجان سے چھپا کر لکھ رہا ہوں۔ ورنہ ڈر ہے کہ کہیں لینے کے دینے ہی نہ پڑ جائیں۔ لیجئے اب تو بقول شخصے ساجھے کا بھانڈا چوراہے میں پھوٹ ہی گیا اور بی مانو اچھل کر تھیلے سے باہر آ ہی گئی ہیں خدا ہی خیر کرے! ــــ ٹیکسی یعنی موٹر رکشا پیچ در پیچ سڑکوں سے ہوتا ہوا جن کی نہ حد ہے نہ شمار ــــ ایک راؤنڈا بوٹ کا چکر کاٹ کر پولو گراؤنڈ اور ایک تھیٹر سے ادھر رک گیا جہاں کھجور کے بہت سے جھنڈ دکھائی دیتے ہیں چھوٹی سی چار دیواری میں داخل ہوئے۔ ایک ہوٹل کی فرحت آفریں خوشبوؤں نے خیر مقدم کیا۔ آپ انہیں ہوشربا یا صبر آزما جو جی چاہے کہہ لیجئے۔ اس لئے کہ اس کا نام بھی صابرینہ ہی ہے۔ واہ وا کیا شاندار عمارت بنائی ہے۔ سراپا آرٹ یہ پاکستان آرٹ کونسل کی عمارت بالکل ویسی ہی ــــ آرٹ کی کوئی چیز ہونی چاہئے۔ نیچے ہی کشتی یا جہاز نما فرش پر کتابوں کے جشن کا اہتمام تھا۔ رنگ برنگی کرسیاں لگی تھیں۔ اور ان پر گتے کی تختیاں چسپاں۔ کسی پر مہمان کسی پر پریس اور کسی پر کچھ لکھا ہوا۔ ہم نے بہتیرا آنکھیں پھاڑ پھاڑ کر دیکھا کہ کسی پر برخوردار کی تختی بھی ہو۔ لیکن بندوبست کرنے والے شاید یہ بھول گئے تھے۔ اس لئے ہم بھی بڑوں کی صف میں جا بیٹھے۔ اور سب بڑوں سے ہاتھ ملاتے رہے۔ جیسے میزبان ہمیں ہیں۔ دیکھا تو تماشائیوں میں "صاحب لوگ" بھی تھے یعنی یورپین۔ سامنے دو بورڈ تھے۔ نظر انہی پر جم کر رہ گئی۔ پچھلی نمائش کا نقشہ نگاہوں میں پھر گیا۔ کتنے سلیقے سے اچھی اچھی کتابوں کے گرد پوش دونوں بورڈوں پر چسپاں کر دیئے گئے تھے۔ یہ رنگا رنگی دیکھ کر جی بہت خوش ہوا۔ ہمارے یہاں کتابوں کی روز بروز خوب سے خوب تر ہوتی ہوئی پیشکش کے یہ کتنے عمدہ اور کتنے فرواں نمونے تھے۔ جی چاہا یہ دونوں بورڈ ہی اٹھا کر چلتا بنوں۔ لیکن ان موجدوں کا بھلا ہو جنہوں نے اتنی بھاری بھرکم چیز اٹھا لے جانے کی ایسی آسان تدبیر کر دی ہے۔ ایک باکس کیمرا میرے پاس ہی تھا۔ جھٹ فوکس کیا۔ اور فوٹو لے ڈالے۔ ایسے کہ ایک اچھا خاصا البم تیار ہو گیا۔ اور تب سے میں ان کے پرنٹ نکلوا کر اپنے ساتھ لئے پھرتا ہوں۔ اپنے ٹیچروں اور دوستوں کو دکھا کر خوب داد حاصل کی ہے۔ بلکہ کچھ تجارت میں بھی ہاتھ رنگے ہیں۔ اس لئے کہ ہمارے صدر ہمیشہ سائنس پڑھنے اور ٹکنالوجی پر زور دیتے رہتے ہیں۔

جب سارے لوگ اپنی اپنی سیٹوں پر جم گئے تو انعامی کارروائی کی تمہید اٹھائی گئی۔ امیر مشاعرہ جناب انشا تھے۔ شاید ایسے لوگوں کو برات کا دولہا کہتے ہیں۔ انہوں نے اس پُر لطف صحبت کی غرض و غایت پر روشنی ڈالی۔ "اور سستی کتابیں۔ اچھی کتابیں۔ پیاری کتابیں" کا اچھا اور پیارا فقرہ دہرایا۔ اور کہا یونیسکو کے ساتھ مل کر قومی مرکز کتب کس طرح کتابوں کو اچھا اور اچھا بنانے کے درپے ہے۔ اور جو لوگ اس کام میں اس کا ساتھ دیں ان کو اچھے اچھے انعام بھی دیتا ہے تاکہ وہ اور بھی اچھی کتابیں نکالیں۔ اچھی سے مطلب دیکھنے میں پیش کرنے میں ہے۔ یعنی نک سے سک تک درست ہوں۔ ان کی ٹیپ ٹاپ خوب ہو۔ تاکہ ان کو دیکھنے لینے اور پڑھنے کو جی چاہے۔ کتابوں کی اشاعت کی الف ب ج تو صحیح ہے۔ ان کی بات چیت کرتے کرتے کچھ چھپی ہوئی چیز بٹنے لگی میں ڈرا کہ کہیں یہ بھی امتحانی پرچہ نہ ہو۔ مگر پھر دل کو تسلی دی کہ یہ پرچے کیسے ہو سکتے ہیں اور یہ جاتنے بڑے بڑے بزرگ بیٹھے ہیں وہ طالب علم کیسے ہو سکتے ہیں۔ اگر ہوتے تو کتنے ہی سر (SIR) ہمارے ارد گرد منڈلاتے دکھائی دیتے کہ کوئی نقل نہ کرے۔ مگر یہاں تو ہر طرف نقل ہی نقل ہو رہی تھی کیونکہ سب کے پاس ایک ہی مضمون کا پرچہ تھا۔

جناب ابن انشاء نے اپنی تقریر دلپذیر سے نمٹنے کے بعد پرچہ بانٹنے کا اعلان کیا۔ میں بڑا حیران ہوا کہ ابن انشا اور انگریزی میں بات چیت۔ خیر جو تھوڑی سی ٹوٹی پھوٹی انگریزی جانتا تھا اس سے بولنے والوں کی بات کو سمجھنے کی کوشش کی۔ پلے تو کیا پڑتا ــــ مگر چپ چاپ سنتا رہا۔ اور ایک مرد خدا سے تو رہا بھی نہ گیا۔ میری طرح ابھی اسکول ہی پڑھ رہا ہوگا یہ منچلا نوجوان بولا صاحب ہماری ایک قومی زبان اردو میں

کارروائی کیوں نہ ہوئی کہ ہمارے بھی کچھ پلے پڑتا۔ اس لئے بالکل میرے دل ہی کی بات کہی۔ خیر ان کی تسلی یوں کی گئی کہ اس برس نہیں اگلے برس سہی۔ اتنا بھی کافی ہے۔ ورنہ یار لوگ مہد سے لحد تک انگریزی ہی بولتے جائیں تو ان کو کون روک سکتا ہے۔

شیخ منظور الٰہی کا نام تو پہلے ہی سنا تھا۔ وہ ہمارے تعلیم کے سکتر ہیں جبھی ان کا نام لینے میں اتنی بے تکلفی برتی ہے۔ وہ اس جلسے کے صدر رہے۔ ڈاکٹر اختر حسین رائے پوری کا نام کون نہیں جانتا۔ مانے ہوئے ادیب اور ماہر تعلیم۔ اور اب علاقائی مرکز یونیسکو برائے جنوبی ایشیا کے کرتا دھرتا۔ پہلی بات اور پیشقدمی کا قرعہ ان کے نام پڑا اور انہوں نے اس کا حق بھی خوب ادا کیا۔ ان کا یہ کہنا سو فیصد ٹھیک ہے کہ اس دن کا اجلاس عجب نہیں کتابوں کی دنیا میں سنگِ میل ثابت ہو۔ اس لئے کہ اس میں لکھنے والے چھاپنے والے ناشر کتب فروش لائبریرین اور میرے جیسے پڑھنے والے سبھی موجود ہیں۔ یہ ایک اچھی بنیاد ہے۔ اور اس پر جلد ہی بڑی شاندار عمارت بھی تعمیر کی جائے گی۔ جیسی کہ مثال کے طور پر خود آرٹ کونسل کی وہ عمارت تھی جس میں ہم لوگ بیٹھے تھے۔ یہ میری طرف سے جملہ معترضہ سمجھئے — مدعا یہ ہے کہ پڑھنے والوں کے لئے اچھے سے اچھا مواد فراہم کیا جائے۔ اور اس کی ایسی داغ بیل ڈالی جائے کہ دلوں میں بات کہیں کی کہیں پہنچ جائے۔

اب اس بات چیت میں جسے انگریزی داں سمینار کہتے ہیں۔ میں تو اسے مینار ہی سمجھا اور وہ بھی کچھ ایسا غلط نہیں ہے۔ کیونکہ ایسی باتوں سے چاروں طرف نور ہی نور پھیلتا ہے۔ آغا ایم جعفری صاحب ٹیکنیکل ڈائریکٹر نے بات کچھ اور آگے بڑھائی۔ اور کتابیں چھاپنے کی پیشہ ور انجمنوں کا ذکر کیا۔ اور خوب کیا۔ انہوں نے اس کام کی ساری تاریخ بتائی۔ اس قسم کا پہلا سمینار ۱۹۵۹ء میں ہوا تھا۔ جس کا شرف پاکستان کے شہر مری کو حاصل ہے۔ جب وہ بول چکے تو میں نے ابا جان سے پوچھا کہ انہوں نے کیا کہا ہے۔

انہوں نے کچھ وہاں سمجھایا اور کچھ گھر پر جاکر۔ انگریزی سمجھ میں آئے نہ آئے مگر باتیں ساری بڑی کام کی تھیں۔ بہت اچھی بات ہے کہ اس کام کو ترقی دینے کے لئے ہمارے یہاں ایک انجمن موجود ہے جس نے پچھلی بار اتنی شاندار نمائش کتب کی تھی اور پھر لاہور میں بھی ایسی ہی شاندار تقریب ہوئی۔ سنا ہے پشاور اور ڈھاکہ میں بھی کچھ ایسی ہی کارروائیاں ہوئی ہیں جو کتابوں کی اچھائی کے حق میں بڑی ہی نیک فال ہے۔

میں اور غالباً دوسرے لوگ بھی یہ جاننے کے مشتاق تھے کہ جناب صدر اس باب میں کیا فرماتے ہیں۔ وہ بھی مجھے اپنے ترجمان ہی کے ذریعے معلوم ہوا۔ انہوں نے پہلے ہی کیا مزے کی بات کہی۔ یہ کہ وہ نہ تینوں میں ہیں نہ تیرھوں میں۔ یعنی وہ نہ ناشر ہیں نہ کتب فروش نہ لائبریرین یعنی حفاظ۔ جو بھانت بھانت کے لوگ یعنی گروہ یہاں موجود ہیں ان میں وہ صرف پڑھنے والوں ہی کے زمرے میں شامل ہو سکتے ہیں۔ اور چونکہ ان کا سروکار تعلیم سے ہے اس لئے وہ اس ہی کی کہیں گے جس کا دھن کھاتے ہیں۔ ہمارے ملک کا ایک بہت بڑا مسئلہ کیا ہے؟ — خواندگی۔ سچ ہے ہمیں پہلے اپنے آقاؤں کو پڑھا لکھا تو بنانا چاہیئے۔ تب کہیں جاکر ملک ترقی کر سکتا ہے۔ اور جب پڑھنے کو سامان ہی نہ ہو تو کیا کیا جائے۔ اس کے بغیر تو پڑھنا لکھنا واقعی تالا ہے بغیر چابی کے۔ اور چابی ہے بغیر تالے کے۔ دونوں باتیں برحق۔ لکھنے والوں کی دال روٹی کی فکر تو لازم ہے ہی جبھی وہ کام کی باتیں کہہ سکتے ہیں۔ یعنی کوئی سنہری انڈا دے سکتے ہیں۔ ایسے کام جھٹ پٹ یا مفت نہیں ہو سکتے۔ اور ہمارے زمانے کے تقاضے تو بڑے ہی شدید ہیں۔ پیٹ سیر ہو تو دماغ بھی کام کرتا ہے۔ خیر، جناب صدر نے لکھنے والوں، چھاپنے والوں، بیچنے والوں، اور سنبھالنے والوں کے بارے میں بڑی ہی پتے کی باتیں کہیں جو پلے میں باندھ رکھنے ہی کے لائق نہیں بلکہ ان پر عمل کرنا بھی ضروری ہے۔

یہ باتیں تو جو ہونی تھیں سو ہوئیں۔ یہ نہ ہوتیں تو تمہید کیسے بندھتی اور جلسہ کیسے ہوتا؟ دیکھنا یہ تھا کہ وہ کون سے بھاگوان ہیں جنہیں پہلی بار انعام ملا اور اکرام بھی۔ ان میں سے کچھ پرانے مردِ میداں یعنی جگادری تھے اور کچھ نئے۔ فیروز سنز، اردو اکیڈمی سندھ پرانے اور الائیڈ بک کارپوریشن نئے۔ میں نے آزمائش کے طور پر پہلے ہی گرد پوشوں کو دیکھ پرکھ اور ٹٹول لیا تھا کہ انعام کس کس کو مل سکتا ہے۔ سو ججوں کی رائے سے میری رائے بھی مل ہی گئی۔ ایک کتاب تو دیر سے میری آنکھوں میں کھب رہی تھی اور سچ پوچھئے تو کھٹک بھی رہی تھی "لال بندر"۔ اللہ تعالیٰ کی یہ دلچسپ، نٹ کھٹ مخلوق ہو اور چھپی بھی سو فیصد چوکس پر ہو تو "لال بندر" انعام پائے گا اور ضرور پائے گا۔ اور اب تو بڑے بھی انہیں کے ساتھ ہو لئے ہیں "ہنسی" کی کہانیاں بھی خوب چھپی ہے۔

ہاں تو لگے ہاتھوں ایک لطیفہ بھی سہی۔ اعلانچی۔ جناب ابن انشاء۔ ناموں اور انعام کا اعلان تو کر ہی رہے تھے۔ سندیں الگ تھیں اور چیک الگ۔ وہ پہلے انعام پانے والوں کو سندیں تو دیتے گئے مگر چیک اور ان کے لفافے شاید اپنی ہی جیب میں ڈالتے گئے! یعنی الگ رکھ چھوڑے۔ آخر حق حقدار کو پہنچانا ہی پڑا۔ اور وہ لفافے انعام پانے والوں یا ان کے کسی نمائندے کے سپرد کر دیئے گئے۔

جلسہ کو تو ختم ہونا ہی تھا۔ مگر میں گھر واپس آیا تو ایک بہت بڑی امنگ لئے ہوئے ــــ یہ کہ میں بھی آج ہی سے ایک شاندار کتاب تیار کروں اور اگلے سال انعام پاؤں۔ چنانچہ میں نے خوبصورت، چکنے کاغذ اِدھر اُدھر سے سمیٹ کر ایک بڑی خوبصورت کاپی بنالی ہے۔ اس پر خوش خط لکھے جا رہا ہوں۔ کیا؟ یہ خبر نہیں۔ اور اس کو طرح طرح کے نقش و نگار سے خوب آراستہ بھی کیا ہے۔ اگر لال بندر انعام لے سکتا ہے تو ہم نہیں لے سکتے؟ ــــ انعام بھی، اکرام بھی اور ــــ نام بھی۔ دیکھیئے اگلے سال ضرور انعام بھی لے کر رہوں گا اور ــــ سند بھی ⁕

نئی مطبوعات:

تاریخ چترال

اصل تحریر (فارسی):	مرزا محمد غفران (مرحوم)
تالیف و اضافہ:	مرزا غلام مرتضیٰ خان
اردو ترجمہ:	وزیر علی شاہ
صفحات:	۴۳۴
قیمت:	دس روپے

ملنے کے پتے:

(۱) شیخ محمد امین فاروقی، بازار دروش ریاست چترال۔

(۲) قریشی جنرل اسٹورز۔ بازار قصہ خوانی۔ پشاور

نقشہ پر نظر ڈالیں تو شمالی پاکستان میں آزاد ریاست جموں و کشمیر، مقبوضہ ریاست جموں و کشمیر اور ملحقہ علاقہ، بلتستان، گلگت، ہنزہ، دیر، سوات اور چترال نظر آتے ہیں۔ ایک عہد میں یہ خطے جغرافیہ نویسوں اور مؤرخوں کی تحریروں میں دردستان، اور کوہستان کی معنی خیز اصطلاحوں سے یاد کئے جاتے تھے اب بھی بعض مؤرخ اور محقق ان خطوں کو یہی نام دیتے ہیں۔ ان ریاستوں میں بلورستان، کافرستان اور نورستان نام کے علاقے بھی شامل ہیں۔ عتیقیات، نسبیات اور تاریخ و ثقافت کے ماہر آجکل ان خطوں کی علمی و آثاری تحقیق کے کام میں مصروف ہیں مثلاً اطالوی ماہر آثار قدیمہ، پروفیسر ٹوچی، جنہوں نے پچھلے ہی دنوں ریاست سوات میں یونانی تہذیب کے آثار پر اپنی تحقیقات مرتب کی تھیں اور ایک رپورٹ صدر پاکستان، فیلڈ مارشل محمد ایوب خان کی خدمت میں پیش کی تھی۔ ان اطالوی پروفیسر کے علاوہ دو جرمن محقق، ڈاکٹر کارل جٹمار اور جیمز بہرے بھی اس سلسلے میں کام کر رہے ہیں۔ خود پاکستان کے تاریخ داں اور علم دوست حضرات میں ڈاکٹر دانی، جناب اللہ بخش راجپوت، جناب عبدالحلیم اثر افغانی اور سید غلام حسن شاہ صاحب کاظمی (آزاد جموں و کشمیر) وغیرہم بھی شمالی پاکستان کے ان خطوں کی تاریخ و ثقافت، مذہب و تصوف اور ادب و معاشرت کی تحقیق و مطالعہ کے کام میں مصروف ہیں اور ان کی کاوشیں منظر عام پر آ رہی ہیں۔

ریاست چترال کے مشرق میں گلگت اور ریاست سوات کے کوہستانی علاقے، مغرب میں کافرستان (نورستان) شمال میں واخان و شکاشم (افغانستان) اور جنوب میں گبرونگ اور ریاست دیر و باجوڑ کے خطے ہیں۔ ریاست نہ صرف اپنے قدرتی پُر شکوہ مناظر کے باعث مشہور ہے بلکہ دفاعی اعتبار سے بھی اس کی اہمیت واضح ہے۔ ان چیزوں کے باوصف یہ دیکھ کر تعجب ہوتا ہے کہ ہمارے ملک کے ان خطوں کی بابت مرتب حالت میں معلومات بہت کم دستیاب ہیں۔ بیرونی سیاحوں نے یہاں کے خطوں کے تذکرے لکھے ہیں اور چترال کا بھی ذکر کیا ہے مگر یہ معلومات زیادہ تر سرسری، سطحی اور افسانوی سی ہیں، تحقیق و تاریخ ان کا موضوع نہیں، اس لئے ان کی معلومات پر زیادہ انحصار نہیں کیا جا سکتا۔ چترال کے دانشوروں اور ادیبوں نے بھی تاریخ و ثقافت کے ضمن میں کچھ زیادہ کاوش نہیں کی، ان کا زورِ قلم زیادہ تر رومانی اور صوفیانہ شاعری پر صرف ہوا۔ مولانا محمد سیر نے چند تاریخی واقعات کو نظم بھی کیا ہے مگر یہ کوشش بھی رزمیہ شاعری کے ایک اچھے نمونے کے طور پر ہی قابلِ داد ہے مگر تاریخ، سیاست اور آثار و تہذیب کے پہلو پھر بھی تشنہ رہتے ہیں۔

اس اعتبار سے "تاریخ چترال" ایک اہم دستاویز ہے جس کے مطالعہ سے ہم چترال کے طبعی حالات و کوائف، تہذیب و ثقافت کے علاوہ اس خطے کے مختلف قبائل، گروہوں اور مشاہیر سے بھی روشناس ہوتے ہیں۔ "تذکرۂ اقوام چترال" کے عنوان سے کتاب میں جو معلومات مہیا کی گئی ہیں وہ نسبیات کے ماہرین کے لئے بھی دلچسپی کا موضوع ہیں اور عام قارئین کے لئے بھی بہت سی نئی باتوں کی کاشف ہیں۔ کتاب میں مناظر اور ممتاز اشخاص کی ساٹھ سے زیادہ تصاویر بھی شامل ہیں جن سے کتاب کے مشمولات کو سمجھنے میں کافی مدد ملتی ہے۔ (س۔ غ۔ گ۔)

ہماری موسیقی

فنِ نغمہ کی تاریخ ــ اور اس کے فن و فلسفہ پر سیر حاصل نظر

مرتبہ: رفیق خاور

- نئے موضوعات کا اضافہ
- پاکستانی موسیقی کے موجودہ مسائل
- ساز و آہنگ کی دنیا میں مسلمانوں کا عظیم حصہ
- مسلم فنکاروں کے اعجازاتِ موسیقی، تمدن و تاریخِ انسانی میں نغمہ و آہنگ نے کیا کردار ادا کیا۔

چند موضوعات:

مشاہیرِ موسیقی: امیر خسرو، سلطان حسین شرقی، میاں تان سین، شاہ عبداللطیف بھٹائی، تان رس خاں، امیت خاں، فیروز خاں، تاریخِ موسیقی: موسیقی اور تمدنِ عالم، موسیقی میں مسلمانوں کا حصہ، پاکستانی موسیقی، ہماری موسیقی کے ساز پاکستانی موسیقی: مشرقی پاکستان کے لوک گیت، مغربی پاکستان کے لوک گیت، راگ درپن (وارث شاہ) مسائلِ موسیقی: تجدیدِ موسیقی، قومی ترانے کی موسیقی اور سرگم، ہماری موسیقی کے مسائل، سُر نویسی۔

چند ممتاز اصحابِ قلم

سید عابد علی عابد۔ جناب شاہد احمد دہلوی۔ جناب خادم محی الدین، قاضی احمد میاں اختر جوناگڑھی، ڈاکٹر نبی بخش خاں بلوچ، فیروز نظامی، سید بڑے آغا، سجاد سرور نیازی، احمد جی، چھاگلا ــ سید امجد علی، عاصمہ حسین، امین الرحمٰن، رفیق غزنوی اور سادام آذوری

کتاب میں مختلف سازوں کی آرٹ پیپر پر چھپی ہوئی

آٹھ صفحے کی نفیس تصاویر بھی شامل ہیں ــــ

کتاب: نفیس اردو ٹائپ میں

نہایت دیدہ زیب اور خوبصورت

سرورق کے ساتھ شائع کی گئی ہے

قیمت صرف پانچ روپے

ادارۂ مطبوعات پاکستان، پوسٹ بکس ۱۸۳ کراچی

"ماہ نو"

کے لئے غیر طلبیدہ مضامین

۱ — غیر طلبیدہ مضامین نظم و نثر صرف اس حالت میں واپس کئے جائیں گے جب کہ ان کے ساتھ ڈاک کے مناسب ٹکٹ روانہ کئے گئے ہوں۔

۲ — مسترد مضامین کے سلسلے میں غیر ضروری خط و کتابت کرنے سے ادارہ کو معذور سمجھا جائے۔

۳ — ایک ہفتہ تک اطلاع موصول نہ ہونے پر مرسلہ مضمون کو ناقابل اشاعت تصور کیا جائے۔

۴ — ادارہ ڈاک میں کسی مسودہ کے گم ہو جانے کا ذمہ دار نہیں۔

(ادارہ)

ہندوستان کے خریداروں کی سہولت کے لئے

ہندوستان میں جن حضرات کو "ماہ نو" اور "مطبوعات پاکستان" کراچی کی کتابیں، رسائل اور دیگر مطبوعات مطلوب ہوں وہ براہ راست حسب ذیل پتہ سے منگا سکتے ہیں - استفسارات بھی اسی پتہ پر کئے جا سکتے ہیں۔ یہ انتظام ہندوستان کے خریداروں کی سہولت کے لئے کیا گیا ہے۔

پتہ :

ادارۂ مطبوعات پاکستان

معرفت پاکستان ہائی کمیشن - شیرشاہ میس - نئی دھلی (ہندوستان)

منجانب: ادارۂ مطبوعات پاکستان، پوسٹ بکس نمبر ۱۸۳—کراچی

جلد ۱۶ | شمارہ ۵
مدیر: ظفر قریشی | مئی ۱۹۶۳ء

سالانہ چندہ: پانچ روپے ۵۰ پیسہ
شائع کردہ: ادارۂ مطبوعات پاکستان، پوسٹ بکس نمبر ۱۸۳، کراچی
فی کاپی: ۵۰ پیسہ

نذرل اور اردو فارسی

سید شبیر علی کاظمی

نذرل نے جہاں بنگلہ شاعری کو اور چیزوں سے مالا مال کیا وہاں اس کو ایک مخصوص فکری و لسانی رجحان بھی دیا جو بنگلہ کے مسلمہ و مروجہ اسلوب سے ایک بغاوت تھی، یہ بغاوت اسلامی موضوعات، تصورات اور معتقدات کے ساتھ ساتھ عربی، فارسی اور اردو کے عام فہم الفاظ کی بلیغ و بے ساختہ آمیزش کا استعمال تھا۔ یہ بات اس قدر چونکا دینے والی تھی کہ بنگلہ ادب کی دنیا میں ایک ہلچل مچ گئی۔ جو لوگ سنجیدہ طبیعت تھے وہ ادب میں اس اضافہ کا غور سے مطالعہ کرنے لگے اور کلام کی معنویت اور اسلوبِ بیان کی ندرت کا لطف اٹھانے لگے۔ نذرل چونکہ فطرتاً حریت پسند اور تقلید دشمن باغی ہے اس لئے درماندہ انسانیت کو سہارا دینے کے لئے اس نے جو بھی صور پھونکا وہ اپنے آہنگ میں گرجدار اور ہر طرح نیا تھا۔ اس مقصد کے لئے اس نے جو زبان بھی اختیار کی وہ اس کے مافی الضمیر کا ساتھ دینے والی تھی۔ پیرایۂ بیان میں نت نئی راہیں پیدا کرنے کے علاوہ اس نے زبان میں سنسکرت کے غلبہ کو روکا اور اردو فارسی کے الفاظ کے لطیف امتزاج اور اسلامی موضوعات کی درآمد سے اسے وہ حرارت، وہ برجستگی اور توانائی بخشی جو اس کے کلام کو موزوں تر اور قلب و نظر کو اور زیادہ گرمانے والی ثابت ہوئی۔ یہ اس کی وسیع المشربی اور اسلامی اقدار کے ساتھ فطری وابستگی کی بھی ایک دلیل سمجھی گئی۔ نذرل نے بنگلہ ادب میں جو نئے برگ و بار پیدا کئے وہ بعد میں ایک تحریک کی شکل اختیار کر گئے بلکہ نذرل گیتی (نغمۂ نذرل) ایک عام ادبی رجحان بن گیا جو دراصل اس جوہر قابل کے تمام ادبی تجربوں، ادبی بغاوتوں اور اسلوب و اظہار کی قدیم پابندیوں سے گریز ہی کا ایک دوسرا نام تھا۔ بنگلہ کے نوجوان لکھنے والوں کو اس سے ایک مہمیز ملی اور اس وقت پاکستان کے ممتاز بنگلہ ادیبوں میں اس رجحان کا پایا جانا دراصل اس ہی کی بیشتر نظموں کا اثر ہے اور نئے اسالیب اظہار کی پیروی کا ایک ہمہ گیر سلسلہ ہے۔

اس بحث کے لئے میں نے نذرل کی صرف دس نظموں سے ایک انتخاب الفاظ کیا ہے اور ایک یا دو نظمیں یہاں بطریق مثال پیش کی ہیں ان سے نذرل کے ادبی سفر اور اس کے تدریجی و انقلابی رجحان کی نشان دہی کی جا سکتی ہے۔ اگر اس کی پیروی کی جائے تو اردو اور بنگلہ کی اساسی اقدار اور زیادہ قریب آ سکتی ہیں۔ نذرل نے دونوں زبانوں کی خلیجوں کو پاٹنے کی بڑی کامیاب کوشش کی ہے اور یہ کوشش ہمارے لئے مشعل راہ ثابت ہو سکتی ہے اس کی بعض نظموں میں تو مصرعے کے مصرعے ایسے ملتے ہیں جن پر عام فہم اردو کا گمان کرنا بیجا نہ ہوگا۔ ایک نظم ہے۔ "کمال پاشا" اس کے الفاظ اس کی روشن مثال ہیں:-

کمال تو نے کمال کیا بھائی
ہو، ہو، کمال، تو نے کمال کیا بھائی
شاباش بھائی۔ شاباش دِی۔ شاباش تو شمشیرے
پٹھا دی۔ دشمن سب جم گھر ایک دم شیرے (بیٹھا دیے) (موت کے گھر)
بل دیکھی بھائی۔ بل ہارے۔ دنیا نے کہ ڈر کرے نا
(بولو بھائی بولو تو)
ترکی تیز تلوارے
خوب کیا بھائی۔ خوب کیا
بزدل اوئی دشمن سب بالکل صاف ہو گیا
خوب کیا بھائی۔ خوب کیا بھائی
مار دیا بھائی۔ مار دیا
دشمن سب ہار گیا۔
قلعہ فتح ہو گیا
پروا نہیں

جانے دو بھائی جو گیا
قلعہ فتح ہو گیا
کمال، تو نے کمال کیا بھائی "

اُن کی ایک اور نظم "انور پاشا" ہے - اس میں بھی یہی لے ہے :-

"اے خدا - اے علی - لاؤ میری تلوار — فریاد!"

اُن کی نظم "محرم" میں یہ سلسلہ دراز تر ہوتا نظر آتا ہے :-

علی زادہ حسینیر دیکھا ہوتا جُدی پائے
ماں فاطمہ آسمان کاندے کھوسے (اگر ملاقات ہو) کیش پاش

رن جائے قاسم وہ دو گھڑ لیر نوشاہ

اماں گو پانی داؤ پھیٹے گلو چھاتی ماں
ہانکے بیر - سر دے گا - نہیں دے گا عمامہ (دلاور بچے)
پی لوشہ تو پانی (شیر خوار بچہ) شیشو - پیئے گا کانچا خون
دادا - تیری گھر کیا بر باد پائمال

حلقوم ہانے تیغ او کر بوشے چھاتی تے
آفتاب چھپئے (بیٹھتا ہے) نلو آندھیار یا راتی مے
آسمان بھرے گلو گنو ڈھلی (شام کی ڈھول) تے دوپہرے
لال نیل خون جھرے کفر یر اوپرے

بیٹا دیر لہو رنگا پیرہن ہاتے آہ
عرشیر پایہ دھرے کاندے ماما فاطمہ
اے خدا! بدلتے بیٹا دیر رکتے (خون)
برجنا (بخشنا) کرو گناہ پاپی کم بختیر

کتو محرم ایلو - گیلو چلے بہو کال (بہت زمانہ)
بھلی نی گو آجو - شیئی شہدیر لہو لال
مسلم! تعدا آج زین العابدین
واحسینا - واحسینا - کیندے تائی جاوے دِن

پھر ایلو آج شیئی محرم مہینہ
تیاگی (قربانی) چائی - مرثیہ کرندن چائی نا
اوشیش قرآنیر ہاتے تیغ عربیر
دنیاتے (دستر) ناتو ٹائے - مسلم کارو شیر (رگ)
تو بے شنو - روئی شنو - باجے کتما دمامہ
شمشیر ہاتے تو باندھو شیر (سر) عمامہ
بیجے چھے نقارہ - ہانکے تقبیر (نفیری) تہرج
ہوشیار اسلام ڈوبے تہو شورجو (سورج)
جاگو اٹھو مسلم ہانکو حیدری (نعرۂ حیدری) ہانک
شہیدیر دن سب لال لال ہوتے جاک
نوشاہ ساجنو خون کھپا آستین (پہن لو)
میدان لٹاتے رے لاش ایئی خاص دن
حسینر متو پی بو پیالہ سے زہرے (قتل)
حسینر متو نیبو بکے چھری تہرے (سینہ)
اصغر شمو دیبو بچہ رے قربان
ظالمیر داد نیبو (دوں گا) دیبو آج گورجان
سکینہ آر شیت باش (سفید کپڑے) دیبو ماتا کنیا
قاسمیر متو دیبو ہجان رود جھی (صحرا) انیائے
محرم - کربلا - کاندے ہائے حسینا
دیکھو مورو سوربے (ریگستان کا سورج) اے خون جنو شوشے تا (نہیں سکھاتا)

اس نظم کے مطالعے سے یہ بات بخوبی واضح ہو جاتی ہے کہ نذرل نے وقت کی آواز کا ساتھ دیا اور اپنی اس نظم کی تخلیق سے ادبیاتِ عالیہ میں ایک بیش بہا اضافہ کیا تھا - روایت ہے کہ یہ نظم علامہ اقبال کو بھی سننے کا اتفاق ہوا تھا اور انہوں نے فرمایا تھا کہ نذرالاسلام کی اس نظم نے لوگوں کے دلوں میں ضرور ایک آگ لگا دی ہوگی - میرا خیال ہے کہ یہ رسمی داد نہ تھی بلکہ ایک حقیقت کا اظہار تھا -

آزادی سے قبل اُردو داں طبقہ نذرل کے کلام سے بہت زیادہ آشنا نہ تھا - گاہے گاہے ان کی نظموں کے ترجمے اُردو رسائل و اخبارات میں شائع ہوتے رہتے تھے مگر سب سے زیادہ

مقبولیت ان کی نظم "باغی" (ترجمہ) کی اشاعت سے ہوئی۔ برصغیر کے اکثر علمی و تعلیمی حلقوں میں نذرل کا ذکر سننے میں آتا تھا اور جو نوجوان اس وقت کے انقلابی رجحانات سے متاثر تھے نذرل کی شاعری پر جان دیتے تھے اور پھر اُردو میں بھی اس کے آہنگ کی گونج سنائی دینے لگی۔

میں نے نذرل کی چند چیدہ نظموں سے ایسے الفاظ کا انتخاب کیا ہے جو اُردو اور بنگلہ میں مشترک سرمایہ کی حیثیت رکھتے ہیں اور ہمیں ذہنی طور پر یکساں محسوس کرنے اور ملی یکجہتی کے شعور کو ہر وقت نظر کے سامنے رکھنے کی دعوت دیتے رہتے ہیں

۱۔۔ عرش۔ چنگیز۔ بدّو۔ اسرافیل۔ خون۔ ہمت۔ براق۔ تازی۔ ہادیہ دوزخ۔ مشعل ("باغی")

۲۔۔ تلوار۔ لال۔ فیتہ۔ طوفان۔ گل ہار۔ پھانسی۔ جوالا ("خون آلود زمین")

۳۔۔ جگت ماتا۔ ہمالیہ۔ جل۔ شانتی۔ ("اگمنی")

۴۔۔ ہتھوڑی۔ تاؤ دینا۔ کچا کلیجہ۔ شیطان۔ سیڑھی۔ ہنسی۔ کالا ناگ (دھوم کیتو" = ("دمدار ستارہ")

۵۔ خونی رنگین۔ سنگین۔ نیست و نابود۔ زیر۔ ڈکیت۔ بدنصیب۔ خراب۔ اللہ۔ کلّا۔ ہلّا۔ کل ملک۔ آزاد مردغازی۔ ملا۔ شور۔ شہید۔ قصائی۔ غصّہ۔ چمار۔ خون خرابی۔ خوبصورت۔ کربلا میدان۔ ظالم۔ سیاہ۔ مردہ۔ گرم تازہ۔ بہشت۔ جمالی۔ آج۔

ہوش۔ جوش۔ شہرت۔ گھر۔ دیب۔ حساب۔ دل۔ داغ۔ دس ہزار۔ بھائی برادر۔ آب زمزم۔ سپہ سالار۔ سلام۔ کلام۔ زخمی۔ سولا ور۔ جانور۔ افسوس۔ تخت۔ سنسان۔ زنجیر۔ خنزیر۔ زوردر۔ شیر۔ گیدڑ کنجوس دل۔ مدینہ۔ مشکل۔ ہتھیار۔ کاندھا۔ شیطان بیابان ("کمال")

۶۔۔ سارا میدان۔ نشان۔ افسوس۔ شیر نر۔ خون خونی۔ دلیر۔ شیر ببر۔ قربان۔ بندوق توپ۔ خون جوش روز۔ جامہ۔ نقیب۔ حیدر۔ خون خوشی۔ عشق۔ ("من بھیری")

۷۔۔ شہید۔ لہو۔ دلیر۔ یونانی۔ مصری۔ کنعانی۔ دجلہ عراق اعظم۔ زندہ۔ خنجر ("شط العرب")

۸۔۔ رحمان۔ خاموش۔ گردن۔ ذوالفقار۔ شیر خدا۔ دودھاری۔ آستانہ۔ مینا میدان۔ جلّاد۔ قیامت۔ ("قربانی")

۹۔۔ ذات۔ آنسو۔ ماتم۔ دنیا۔ علی زادہ۔ دُلدُل۔ یزید۔ شمر۔ دمامہ۔ شیر نر۔ اللہ دربار۔ کم ذات۔ قطرہ۔ دربار۔ قہر۔ نقارہ۔ ہوشیار۔ آستین۔ خاص دن۔ پیالہ۔ زہر۔ ظالم۔ داد۔ (محرم)۔

اس فہرست کو اور بھی طول دیا جا سکتا ہے۔ لیکن نذرل کے کلام کے مجموعے اور دیگر تحریریں اب کمیاب ہوتے جا رہے ہیں بلکہ بعض تو نایاب ہو چکے ہیں۔ اس لئے میں نے ان کے منتخب کلام سے ہی جو ڈھاکہ سے حال ہی میں شائع ہوا تھا استفادہ کیا ہے +

ضرورت ہے کہ ہم اپنی زندگی عہد حاضر کے سائنسی تقاضوں کے مطابق بنائیں۔ یہ اسی طرح ممکن ہے کہ ہم اپنی اخلاقی قدروں کی حفاظت کرتے ہوئے ان چیزوں سے بھی آزادانہ استفادہ کریں جو دوسروں سے ہمیں مل سکتی ہیں۔

فیلڈ مارشل محمد ایوب خان

ڈرامہ نگار نذرل

عابد دانا پوری

یوں تو نذرل کی شہرت ایک باغی شاعر کی حیثیت سے ہوئی مگر اس کے ڈراموں کی دھوم بھی کچھ کم نہیں ہے۔ وہ چونکہ خود راگ رنگ اور صدا و ادا کا دلدادہ و فنکار تھا اس لئے تمثیل نگاری اور ناٹک منڈلی یعنی پیشکش کے میدانوں میں بھی ایک جوہر قابل ثابت ہوا اور جب تک یہ شمع ایک شمع فروزاں رہی برابر اپنی جوت جگاتی رہی۔ اس کے گیت ہوں یا ناٹک، ان سب میں اُس کی شعلہ نوائی، اُس کا گرجدار آہنگ اور عالمگیر پیغام حریت و امن رچا بسا ملے گا۔ جس وقت تک یہ آتش جوان رہی لوگوں کے دلوں میں حب وطن اور حریت آدم کا شعلہ بھی روشن رہا۔ اس وقت قومی جذبات بپھرے ہوئے تھے۔ جنگ عظیم اول کے بعد کا زمانہ تھا اور سامراجی طاقت کے خلاف لوگوں کے احساسات چڑھی ہوئی ندی کی مانند تھے۔

یوں روایتی مضامین بھی شعروں میں بندھ رہے تھے اور حسن و عشق کی داستانیں سنانے والے بھی اپنے گیت لکھ رہے تھے مگر یہ نذرل ہی تھا جس نے اس حصہ برصغیر میں پہلی بار تیغ و سناں اول کی بھی لے چھیڑی اور لوگ ایک نئے آہنگ و مضمون سے واقف ہوئے۔ بنگلہ شاعری میں اس طرح ایک انقلاب لانے کے ساتھ ساتھ اس نے اسٹیج پر بھی کچھ تجربے کئے۔ مختلف و متضاد موضوعات کو گلے ملتے دکھایا۔ مگر رومان و انقلاب کا یہ آمیزہ کچھ زیادہ دیر تک نہ نبھایا جا سکا اور اس کی بعد کی تحریریں اپنا الگ ہی جادہ تراشتی نظر آتی ہیں۔ بہرکیف اس میں کوئی شک نہیں کہ اس کا انداز بیان، آہنگ، موضوع اور اسلوب کی ــــــ بہت سے نئے مسافران ادب کے لئے رہنما ثابت ہوئے۔ ٹیگور جیسے لوگوں نے بھی اسے خراج عقیدت پیش کیا اور "نذرل گیتی" (نذرل کے نغمے) بنگلہ شعر و ادب کی ایک مانی ہوئی تحریک بن گئی جو آہستہ آہستہ لوگوں کو اس منزل کی طرف لے گئی جس نے بالآخر ایک آزاد پاکستان کی شکل اختیار کی۔

نذرل کی ادبی و سیاسی تحریروں میں دونوں ہی عنصر کارفرما نظر آتے ہیں، رومانی بھی اور باغیانہ بھی۔

جہاں تک ڈراموں کا تعلق ہے اس نے تین مکمل اور چار ایکانکی ڈرامے ہمیں عطا کئے ہیں۔ جستہ جستہ ڈرامائی پارے بھی ہمیں ملتے ہیں مگر وہ اس قدر مختصر ہیں کہ مکمل یا باقاعدہ ناٹک کا نام نہیں نہیں دیا جا سکتا۔ دراصل یہ نوعمر بچوں کے لئے وقتاً فوقتاً مرتب کئے گئے تھے اور انہیں منظوم ڈرامائی بول ہی کہا جا سکتا ہے۔

نذرل کے ڈراموں میں رسائی بہت بلند اور اظہار بڑا جرات مندانہ ہے ٹیگور کی تخئیلی پرواز اور تصوری موضوعات سے ایک ایسا گریز جس نے بنگال کی ادبی دنیا میں ایک ہلچل مچادی۔ نذرل چونکہ خود بڑا اچھا موسیقار ہے اس لئے گیتوں میں شعریت کے ساتھ نغمگی کا اس نے خاص خیال رکھا ہے۔ لیکن نثر کے مکالموں کو بھی اس نے جدید تکنیک سے آشنا کیا اور بعد میں یہ چیز ادبی ڈراموں کی ایک عام روش ہو گئی۔ مثلاً "مدھو بالا" میں کئی تکنیکی تجربے نظر آتے ہیں۔ یہ طویل ترین منظوم ڈرامہ ہے جو اس نے چالیس سال کی عمر سے متجاوز ہونے کے بعد قلمبند کیا تھا۔ اس کا ابتدائی ڈرامہ تیس سال کی عمر کے لگ بھگ لکھا گیا تھا اور غیر منظوم تھا۔ اس کے ایک پہلے ڈرامے "پتلیر بیئے" (گڑیا کا بیاہ) میں بھی گیت اور نظمیں ہیں اور نغمہ ہی نے کاری بھی آتی رہتی ہے۔ ویسے یہ ڈرامہ نثری تخلیق ہے۔ اس کے ایک ایک ایکٹ والے ڈراموں میں جھلملی، سیتو بند، بھوتر بھویا (بھوت کا ڈر) اور عید مشہور ہیں۔ سیتو بند اور بھوتر بھویا کو چھوڑ کر نذرل کے تمام ڈراموں میں موضوع محبت اور اخوت کا جذبہ ہے جو ابھر آئے تو دنیا کی تمام برائیوں اور بے اعتدالیوں کا حل بن سکتا ہے۔

سیتو بند میں نذرل نے مشینی ایجادات کو فطرت کی تسخیر

اور عنایتوں پر ایک غاصبانہ حملہ قرار دیا ہے۔ مگر بعد میں نذرل کا تصور بدل گیا تھا اور وہ ان طاقتوں کو ناگزیر ماننے لگا۔ اس ڈرامے میں نذرل کے دل کی آواز گونجتی ہے اور حسن و الفت کے کرشمے اپنا رنگ جماتے ہیں۔

بھوتر بھوتیا میں نذرل نے اپنا تصورِ محبت اور باہمی میل ملاپ کی خوبیاں اجاگر کی ہیں۔ اس میں سامراجی طاقتوں کا ہوا دل سے نکال دینے کی تلقین بھی جابجا ملتی ہے، جو اس وقت کے پس منظر میں بڑا زبردست اور کاری حملہ تھا۔

الآیا (سراب) میں اس نے حب الوطنی، باہمی محبت اور عشق کے اصلاحی پہلو کو لیا ہے۔ اس ڈرامہ میں جو مردانہ کردار ہے اس نے تین متفرق قسم کی محبتوں میں اپنے آپ کو گھرا ہوا پایا ہے ـــــ حُسن کی کشش، قربانی کا جذبہ اور ذوقِ طلب۔ یہ ڈرامہ بھی نہایت کامیاب اور مؤثر ہے۔ اس ڈرامہ میں جو زنانہ کردار ہے وہ بھی کشمکش کا شکار ہے۔ ایک طرف محبت کی خلش ہے، آرزوئیں ہیں، مگر ناکام ـــــ ایک ذہن ہے جو پورے عروج پر ہے مگر محبت کی زہرناکی سے ناآشنا ہے۔ اس ناٹک میں جذبات مناظر کی تبدیلی کے ساتھ ساتھ نئے نئے روپ دکھاتے ہیں۔ کبھی غم و اندوہ کے طوفان پھٹ پڑتے ہیں۔ کبھی طمانیت و آسودگی کی لہر آجاتی ہے کیونکہ محبت کرنے والے کا ذہن دوسری تمام طاقتوں پر غالب آجاتا ہے۔

جھلملی میں نذرل نے محبت کے مارے ہوئے دو کرداروں کو لیا ہے۔ ایک مرد اور ایک خاتون۔ ان کی آرزوئیں اور تمنائیں قدامت پسند عناصر کے ہاتھوں مجروح ہوتی ہیں، مگر نذرل نے اپنی ہمدردیاں زندگی کے نئے تقاضوں کے ساتھ رکھی ہیں اور وہ یہ کہہ کر پردہ گرا دیتا ہے کہ سچی محبت خود ایک ناقابلِ تسخیر قوت ہے اور جس محبت میں خلوص اور پاکیزگی موجود ہو وہ تمام رکاوٹوں کو منہدم کر دیتی ہے۔

مدھومالا اصل میں لوک کہانیوں کی گونج ہے۔ اس ڈرامے کے ہیرو اور ہیروئن کسی دور دیس کے رہنے والے ہیں۔ اور شہزادہ، شہزادی کے روپ میں آتے ہیں۔ دونوں میں پہلی ملاقات ہوتی ہے اور پہلی ہی نظر کارگر ہوتی ہے۔ خواب و خیال کی پریاں اپنا جادو چلا دیتی ہیں اور دونوں ایک دوسرے کے گرویدہ ہو جاتے ہیں مگر چند ہی لمحوں بعد پریاں ان دونوں کو الگ الگ کر دیتی ہیں۔ لیکن یہ فراق ہی ان کی دائمی الفت میں تبدیل ہو جاتا ہے اور وہ محبت کی راہ میں آنے والی تمام رکاوٹوں کو دور کر دیتے ہیں۔ اس ڈرامہ میں بھی دونوں کردار، خاص کر شہزادہ، سچائی اور خلوص کی قوتوں سے منزل کی تمام دشواریوں کو دور کر دیتے ہیں۔ راہ کی ناہمواریاں، زمانہ کی نیرنگیاں اور حائلات ایک ایک کر کے سامنے سے ہٹ جاتے ہیں۔

"پُتیلر بیے" (گڑیا کی شادی) میں انسانی اخوت اور عالمگیر برادری کا پرچار ہے۔ ذات، فرقہ، مقام اور رنگ و نسل کا امتیاز مٹانے کی تلقین ہے۔ یہاں وہ کہتا ہے کہ نفرت کے جذبہ کو مٹاؤ اور انسانیت کو داغدار نہ کرو۔ مگر سوال یہ پیدا ہوتا ہے کہ رسوم و قیود کے بندھنوں میں جکڑا ہوا انسان ان آلودگیوں سے کس طرح بچ سکتا ہے۔ نذرل نے اپنے ناٹک، سیتلی میں اس کا بھی جواب دیا ہے۔ اس میں وہ بتاتا ہے کہ صرف محبت اور احساسِ محبت سے کچھ حاصل نہیں ہوتا۔ محبت کی کامیابی کے لئے عملی صداقت بھی موجود ہونی چاہئے ورنہ محبت بے مقصد اور ناکام رہتی ہے۔ اس مقصد کے حاصل کرنے کے لئے وہ کہتا ہے کہ انسانوں کے تفکرات، ان کے دُکھ سُکھ خوشحالی و بدحالی کا اصلی سبب معلوم کرو۔ محبت کرنے والوں سے وہ کہتا ہے کہ اگر دوسروں کے رنج و ملال کا تمہیں علم یا احساس نہیں ہے تو محبت بیرایہ نازک، انمول دل ایک ادنیٰ سی چیز بن کر رہ جائے گا لہٰذا حقیقت کی طرف آؤ اور زندگی کے سانچے کو عمل کی آنچ سے پختہ کرو۔

حقیقت یہ ہے کہ نذرل نے یہ باتیں کہہ کر صرف لفاظی نہیں کی ہے بلکہ خود اس نے اپنی زندگی سے محبت و خلوص اور اخوت و احساس کی عملی تفسیر بھی پیش کی ہے۔ بلکہ اگر یہ کہا جائے تو شاید بیجا نہ ہوگا کہ اس کی نگارشات میں اس کی اپنی آپ بیتی بھی ہلکی ہلکی جھلکتی رہتی ہے اس لئے خلوص و واقعیت نے انہیں ایک ایسا عنصر عطا کر دیا ہے جو اس عظیم شاعر اور ناٹک نویس کو دنیائے ادب میں ہمیشہ ایک منفرد مقام پر فائز رکھے گا۔

"شب کی تنہائی کے ہمدم....."

از نذر الاسلام
ترجمہ یونس احمر

جاگتے رہنا دریچے کے قریں تا صبحدم میرے لئے
الوداع اے میرے ہمدم الوداع !
لے شبِ دیجور میں پھیلی اُجالے کی کرن
یہ دریچہ اب نہ ہوگا وا کبھی
اب نہ تنہائی میں ہوگی گفتگو
(اب نہ مہکے گا گل صد رنگ سے میرا چمن)

آسماں کی گود میں با چشم تر
کہہ رہا ہے چاند، لو آئی سحر
رات کی آنکھوں میں دم باقی نہیں
(جام ہیں خالی پڑے. ساقی نہیں)
اے مسافر اُٹھ کہ اب آ ہی چلی دن کی برات !
ڈھل چکا ہے خواب کا سحر حسیں
اب نہیں یاں رات کی رانی نہیں
دیکھتی ہے مڑ کے تاریکی کی چشمِ دل نشیں !

چونک کر اٹھا مجھے محسوس کچھ ایسا ہوا
گرم پیشانی پہ کس کی سانس کا لمسِ حسیں
اک سکونِ مستقل دینے لگا ؟
آج کی شب ہے سرِ بالیں یہ کون ؟
نیند جب ٹوٹی تو کیا دیکھا دریچے کے قریں
شب کی تنہائی کے ہمدم چھالیہ کے پیڑ ہیں
اور کچھ نہیں !

آنکھوں آنکھوں میں ہوئی تھی رات بھر جو مجھ سے بات
میرے ہمدم آ گئی گم گشتہ یادوں کی برات!
سوزشِ چشمِ دروں سے شب کی خاموشی میں جب
قطرہ ہائے اشک گر پڑتے تو یہ پتے ترے
یوں مجھے محسوس ہوتے جیسے ہو پیتم کا میرے سرد ہات!
جب بھی سن لیتا تری شاخوں کی دھیمی سی صدا
دل تڑپ اٹھتا کہیں اُس کی صدائے غم نہ ہو!
میں نے ان پتوں میں تحریرِ نگاہِ نیم باز
اُس کی دیکھی ہے بہ صد شوقِ تمام
اُس کے جسمِ مرمریں میں ہے ترے ہی جسم کا دلکش تناؤ!
سرسراہٹ دمبدم تیری کہ جیسے ہوں اُسی کی سسکیاں
یہ جھکی شاخیں تری ہیں اصل میں آنچل مری محبوب کا
اور یہ ٹھنڈی ہوا تیری
کہ جیسے اس کی انگشت حنائی کا ہو لمس جانفزا!

ان خیالاتِ حسیں کی گود میں پھر آ گیا خوابِ حسیں
میں نے پھر دیکھا سرِ بالیں تجھے
چپکے چپکے گرم پیشانی کو بوسہ دے گیا!

غالباً انجان پن میں پا کے تیرے ہاتھ کا لمسِ حسیں
ہاتھ میرے بھی بڑھے تھے
ہائے لیکن لاج کے مارے دریچے سے نہ آگے بڑھ سکے!
یہ دریچہ اب نہ شاید کھل سکے
رہگذر آواز دیتی ہے کہ ۔
"اب وقتِ وداع آ ہی گیا!"

اس سے پہلے کہ خدا حافظ کہوں
دل یہ کہتا ہے تری باتیں سنوں
کچھ سناؤں تجھ کو اپنے من کی بات!

ماہِ نو، کراچی، مئی ۱۹۶۳ء

آہ لیکن جانتا ہوں تیرے من کا درد پا سکتا نہیں
تیرے من کی بات سن سکتا نہیں
جانتا ہوں ہم نہ ہوں گے آشنا
درد کے گیتوں سے دل دونوں کے تڑپیں گے سدا!

قلب کو تسکین گر ملتی ہے تیری دید سے
کیوں گراں گذرے دلِ محبوب پر؟
چشم گوہر بار سے میری اگر تیرا جمال
مثلِ "تاجِ زرفشاں" چمکے تو کیا میری خطا؟
تجھ کو پا کر گھر بسا ؤنگا نہیں
میں بنا ؤنگا نیا امبر، حسیں!

تیری شاخوں پر کبھی شاید نہ بیٹھا ہے کوئی
تیرے پتوں کے جھروکوں سے
نہ چہکا ہے کوئی طائر کبھی
تو اکیلا ہی رہا چپ چاپ آنکھیں وا کئے
سب دریچے بند تھے!
ہائے لیکن میں تری خاطر رہا ہوں رات بھر
مثلِ بسمل منتظر!
ہیں فدا تجھ پر مرے قلب و نظر!
میں نے ہی لکھی ہے تحریرِ محبت تیرے برگِ سبز پر
بس یہی ہے باعثِ تسکین و وجہِ زندگی،
تجھ کو پھر دیکھوں نہ دیکھوں غم نہیں.....!

اے مرے محبوب تجھ کو دیکھ کر
پھر نہ جاگوں گا کبھی
رونقِ محفل کی خاطر پھر نہ آؤں گا کبھی
خامشی کی اک نئی دنیا مری ہوگی
اکیلا! دھوپ تاپوں گا خیالِ یار میں کھویا ہوا!

اس سے پہلے کہ خدا حافظ کہوں
چاہتا ہوں تجھ سے پوچھوں اک سوال
چشم بلوریں سے کیا تو نے بھی دیکھا ہے مجھے
جس طرح دیکھا تھا میں نے یہ دریچہ کھول کر؟
شدتِ جذبات سے تپ کبھی لہرائے کیا ؟
چاندنی چھلکے گی جب رنگین آنچل سے ترے
اور دوڑے گا رگوں میں تیری جب خونِ نشاط
تیرے دل میں عارضی مہماں کی باتیں اُس گھڑی
آئیں گی یاد ؟
کیا تری سانسوں سے اس گھر میں بھی اُٹھے گا دھواں
چاندنی سے کیا تری آنکھوں میں آئے گا خمار؟
کیا خیالِ یار میں تو بھی رہے گا گم سدا ؟

تیرے پاؤں دفن ہیں مٹی میں اور اڑتی ہے خاک
سر پہ تیرے اک فضائے بیکراں
دھوپ میں تپتا ہے دن کو
شب کو شبنم میں ٹھٹھرتا ہے یہ جسم نازنیں
آہ لیکن تاب گریہ بھی نہیں
تاب اتنی بھی کہ چلائے کبھی
موت کی افیون کھا کر کھو چکا ہے زندگی !
دل ترا روتا نہیں جب اپنے دکھ کی ضرب سے
درد کیوں اٹھے گا تیرے دل میں میرے کرب سے

بھول جانا گر کبھی آ جاؤں بھولے پن سے یاد
کھل اگر جائے دریچہ بند کر دینا ندیم
پا سکا جس کو نہ مٹی میں بھلا
آسماں پر کس طرح آئے گا ہات ؟
(ڈھونڈنا اس کو عبث ہے، یہ ہے انہونی سی بات)

★

اظہاریت

(مغرب میں ادب کی ایک اہم تحریک)

امین الرحمٰن

تاثریت کے بعد مغربی ادب و فن کی غالباً سب سے ہمہ گیر تحریک وہ ہے جو "اظہاریت" کے عنوان سے معروف ہے۔ اس تحریک کو ہمہ گیر اس لئے کہا جاتا ہے کہ اس تحریک نے نہ صرف مغربی مصوری کے جدید رجحانات کا رخ موضوع اور ہیئت کے اعتبار سے بدل دیا بلکہ اس تحریک سے جدید مغربی ادب کی ہیئت اور اسلوب پر بھی ایک بہت گہرا اثر پڑا۔ یوں تو اظہاریت کی تحریک کے آغاز سے پہلے مغربی ادب انیسویں صدی کے اواخر اور بیسویں صدی کے اوائل میں تاثریت، نو کلاسیکیت، اور رومانیت جیسی جدید ترین تحریکوں سے متاثر ہو چکا تھا اور اس عرصے میں نہ صرف مغربی ادیبوں کا انداز فکر اور انداز اظہار اپنے پیشروؤں سے بہت حد تک بدل چکا تھا بلکہ مغربی مصوری کے انداز اور اسلوب پر بھی ان جدید تحریکوں کا نمایاں اثر پڑ چکا تھا۔

دراصل واقعہ یہ ہے کہ فکر و خیال کی وہ بڑی رو جس کا سوتا انیسویں صدی کی رومانیت اور فطرت پسندی سے پھوٹا تھا، انیسویں صدی کے آخری سالوں میں کئی اور چھوٹی چھوٹی شاخوں میں بٹ چکی تھی۔ اگرچہ فکر و خیال کی ان چھوٹی چھوٹی شاخوں کا ایک مرکز پر سمٹ آنا مشکل تھا تاہم ان کی وجہ سے ادب یا فن میں کسی بڑی تحریک کے سرچشمے کا پھوٹ پڑنا کچھ ناممکن بھی نہ تھا۔ کیونکہ ہمعصر فلسفے کی بدولت مغربی ادب اور فن میں نئی نئی تحریکیں پیدا ہو رہی تھیں۔ انیسویں صدی کے اواخر میں اگر ایک طرف جرمنی میں نطشے کے فلسفے کا بہت زور تھا تو دوسری طرف فرانس میں (بیسویں صدی کے اوائل) برگساں کا فلسفۂ وجدان بھی کچھ کم مقبول نہ سمجھا جاتا تھا۔ ادھر اسی زمانے میں جرمن مفکر، ہارٹمن لاشعور کی مدد سے تعقلیت اور لاتعقلیت کے باہمی تعلق کی غایت دریافت کرنے کی کوشش کر رہا تھا۔

اسی دور میں ایک اور مشہور جرمن فلسفی، ایڈمنڈ ہسرل مظاہر کے تصور کو ایک نئی مابعدالطبیعیاتی شکل مستعار دے کر مظاہرات کو فلسفے کا ایک ہمہ گیر شعبہ بنانے میں مصروف تھا۔ اسی طرح جرمن مفکر تھیوڈور لپس نے بھی فریب نظر کے موضوع پر غور و فکر کرتے ہوئے جمالیات میں ایک نیا ہی نظریہ پیش کیا تھا جس کی رو سے بے جان اشیاء میں بھی جذبات کا عمل دخل ہو سکتا ہے۔ یہی وہ زمانہ تھا جبکہ ماہر نفسیات، فرائڈ اپنے نو دریافت نفسیاتی تجزیئے کی مدد سے لاشعور اور خوابوں کا سراغ لگانے کی کوشش کر رہا تھا۔ ان تمام فلسفیانہ سرگرمیوں کا یورپ کے ہمعصر ادب اور فن پر اثر پڑنا ناگزیر تھا۔ چنانچہ اظہاریت کی تحریک کے پیدا ہونے سے کچھ ہی عرصہ پہلے یورپ میں ادب اور فن کی دنیا میں فکر و خیال کی ایک نئی حقیقت کے اظہار کا راستہ ہموار ہو چکا تھا۔

اس نئی حقیقت کے اظہار میں صرف فلسفیانہ سرگرمیاں ہی کارفرما نہ تھیں بلکہ اس کے پس پردہ کچھ عمرانی و اقتصادی وجوہ بھی کارفرما تھے۔ انیسویں صدی کے وسط سے انگلستان اور یورپ میں صنعتی انقلاب رونما ہو رہا تھا، اور اس کی وجہ سے مغربی زندگی بعض نئی اقتصادی اور تہذیبی قدروں سے متعارف ہو رہی تھی۔ اس سے مذہب، سیاست، ادب اور فن کے ادارے بھی ان کے دور رس اثر سے محفوظ نہیں رہ سکتے تھے۔ چنانچہ انہی قدروں کی وجہ سے مغرب کے لوگ زندگی اور اس کے متعلقات پر مادی نقطۂ نگاہ سے غور و فکر کرنے پر مجبور ہو گئے تھے۔ روح اور جسم کا جو تعلق ایک ثنویت کی صورت میں آفرینش سے چلا آ رہا تھا، اب اس تعلق کے ایک جزو پر تو زیادہ زور دیا جانے لگا مگر دوسرے کی

اہمیت کو بالکل ہی نظر انداز کر دیا گیا تھا۔ روح کی اہمیت ختم
ہونے کا مطلب یہ تھا کہ مغرب کا انسان اپنی اس نئی میکانی تہذیب
میں خود ایک مشینی پرزہ بن کر رہ گیا تھا۔ اس نئی میکانی تہذیب میں
مذہب کی حیثیت بڑی سطحی اور ثانوی سی رہ گئی تھی۔ انیسویں صدی
میں ڈارون اور ہکسلے وغیرہ نے حیاتیات میں جو بنیادی تحقیقی
کام کیا تھا اس سے انگلستان اور یورپ کے مذہب بیزار حلقوں
کو بڑی تقویت پہنچی۔ اور انگلستان جیسے نسبتاً قدامت پسند
ملک میں بھی تعقلیت کی ایک اچھی خاصی تحریک چل نکلی۔ اس کے
علمبرداروں نے جدید سائنس کے انکشافات کی رو سے جن میں
نظریۂ ارتقا کو خصوصیت سے بہت بڑا دخل تھا انجیل اور
انبیاء کے معجزوں کو اپنی عالمانہ اور منطقیانہ تنقید کا ہدف بنایا۔
اس سے عیسوی کلیسا کی رہی سہی اہمیت بھی ختم ہو گئی۔ جن باتوں کو
لوگ پہلے مذہبی اعتبار سے روحانیت اور تصوف پر محمول کرتے
تھے اب انہیں کھلم کھلا جہالت اور توہم قرار دیا جانے لگا۔
ماہرین نفسیات نے اعصاب کے افعال کا بغور مشاہدہ کر کے
یہ ثابت کیا کہ جن ذہنی واردات کو ہم روحانی تجربہ کہتے ہیں
وہ دراصل اعصاب کے بعض خاص قسم کے افعال کا ہی نتیجہ
ہوتا ہے۔ اور اس کی حقیقت علت و معلول کے اصول میں
مضمر ہے نہ کہ کسی روحانی عمل میں۔ اس کا مطلب یہ تھا کہ
روحانی تجربے کی بنا پر مذہب اور تصوف نے جن واجب التعظیم
روحانی قدروں کی ترویج کی ہے وہ دراصل ایسے نفسیاتی
اصولوں پر مبنی ہیں جن کی علمی توجیہ ممکن ہے۔ اسی طرح طبیعیات
میں ذرے کی حقیقت معلوم کرنے کی جو کوششیں ہو رہی تھیں
ان کی وجہ سے مادہ اور توانائی میں ایک قابل تشریح تعلق دریافت
ہونے کی امید بھی بندھ گئی تھی جس کا قدم مادہ یا حدوث مادہ
جیسے مذہبی اور مابعد الطبیعیاتی مسئلوں پر اثر پڑنا ناگزیر تھا۔
اس دور میں سیاسیات میں بھی بہت سے نظریئے دریافت ہوئے۔
ہیگل کے فلسفۂ جدلیات کو مارکس نے ایک خاص عمرانی مفہوم
عطا کیا۔ اور اس کے ذریعے سے تاریخ اور اقتصادیات کی ایک
نئی توجیہہ بھی پیش کی گئی۔ اشتراکیت نے بہت سے لوگوں کو جن میں
خواص اور عوام سبھی شامل تھے، بہت متاثر کیا۔ مارکس کے
حامیوں نے تو اشتراکیت ہی کو انسانی زندگی کی خیر اعلیٰ سمجھا اور
ایک ایسے عمرانی نظام کو دنیا میں رائج کرنے کی کوشش کی جس کا
منشا و منتہا محض انسان کی مادی فلاح و بہبود تھا۔

کچھ اس قسم کے فلسفیانہ اور عمرانی پس منظر میں اظہاریت
کی تحریک کے پنپنے کے مواقع پیدا ہو رہے تھے جو اپنی تمام
ہمہ گیری کے باوجود یورپ کے ایک محدود حصے میں شروع
ہوئی۔ اب قریب قریب تمام نقاد اس بات پر متفق ہیں کہ
اظہاریت اپنی ابتدا اور انتہا میں ایک خالص جرمن تحریک
تھی۔ جو وسطی یورپ کے ان حصوں میں شروع ہوئی جہاں
جرمن زبان بولی جاتی تھی۔ یہی وجہ ہے کہ تحریک اظہاریت کی
ابتدا کا سراغ لگانے کے لئے اس تحریک کے نقاد عام طور پر
پہلی جنگ عظیم سے پہلے کے جرمنی کی اس عام روحانی بے چینی کا
جائزہ لیتے ہیں جو ۱۸۷۰ء کی جنگ جرمنی و فرانس سے پیدا ہوئی
تھی۔ ۱۸۷۰ء کی اس جنگ میں اگرچہ فتح جرمنی ہی کو نصیب ہوئی
تھی لیکن اس جنگ کے بعد جرمنی کے اندرونی حالات کچھ اس قسم کے
ہو گئے تھے جس سے وہاں نہ تو معاشری قدریں برقرار رہیں اور نہ
روحانی۔ یہ وہ زمانہ تھا جب جرمنی بڑی تیزی سے جدید مشینی
صنعت کے میدان میں ترقی کر رہا تھا۔ ملک میں سرمائے کا پھیلاؤ
زیادہ سے زیادہ ہوتا جا رہا تھا۔ اور وہ بڑی تیزی سے سیاسی
طاقت حاصل کر رہا تھا۔ لیکن اس اقتصادی اور سیاسی
طاقت کے ساتھ ساتھ جرمنی میں سیاسی بحران بھی پیدا ہونے لگے
تھے۔ جن سے جرمنی کی سیاسی بنیادیں غیر مستحکم اور غیر محفوظ ہو گئی
تھیں۔ معاشرے پر ان سیاسی بحرانوں کا اثر پڑنا ناگزیر تھا۔ نتیجہ
یہ ہوا کہ جرمن معاشرے میں عام فرد کی حیثیت بالکل ڈانواڈول
ہونے لگی۔ عام فرد کی شخصیت کو نہ تو جرمن زمیندار "یُنک"
جیسی جاگیردارانہ فراغت ہی ارزانی ہوئی تھی اور نہ اسے جدید
صنعتی سرمایہ دار جیسا مالی استحکام ہی حاصل تھا۔ عام فرد کی
اس ڈانواڈول معاشری حیثیت سے ہمعصر جرمن ادیب اور فنکار
بے خبر نہ تھے۔ چنانچہ اس زمانے میں ادیبوں کی ایک ایسی پود کا
پیدا ہونا ضروری ہو گیا جو عام فرد کی اس معاشری حیثیت
سے انتہائی غیر مطمئن تھے۔ یہ جرمن ادیب اپنے ملک کے

سیاسی مطمح نظر سے بھی کچھ مطمئن نہ تھے جو اس زمانے میں دراصل ایک سیاسی عبوری دور سے گذر رہا تھا۔ جرمنی کا یہ عبوری دور بھی عجیب دور تھا۔ اس دور میں جرمنی کا دانشور طبقہ تین گروہوں پر مشتمل تھا۔ ایک گروہ ماضی سے تنگ آچکا تھا۔ دوسرا گروہ حال سے مطمئن نہ تھا اور تیسرا گروہ جو ابھی پیدا ہو رہا تھا بے دست و پا تھا۔ نتیجہ یہ ہوا کہ جرمنی کی عام فضا بددلی، بے چینی اور بے اطمینانی کا ایک کھلا ہوا اظہار تھی جو پہلی جنگ عظیم کے شروع ہونے تک موجود رہی۔

پہلی جنگ عظیم کے شروع ہونے سے چار سال قبل یعنی ۱۹۱۰ء میں ہم جرمن عوام کی زندگی، فن اور ادب کو تیزی سے بدلتی ہوئی قدروں میں گھرا ہوا پاتے ہیں۔ جرمنی کے نئے صنعتی معاشرے میں جرمن تہذیب کی پرانی قدروں اور پرانے معیاروں کو جو زمانے کے جدید تقاضوں کی نفی کرتے تھے، مٹایا جا رہا تھا۔ اور اس معاملے میں کسی قسم کا شخصی احترام ملحوظ نہ رکھا جاتا تھا۔ یہ حالات ایک نئے قسم کے جرمن ادب کو جنم دینے کے لئے بہت سازگار تھے۔ جرمن ادب ابھی تک گذشتہ صدی کی دو تحریکوں یعنی ماقبلیت اور نو رومانیت سے متاثر تھا اور جواں سال جرمن ادیب ان تحریکوں کو جدید تقاضوں کی کسوٹی پر پرکھ رہے تھے۔ نو رومانیت کے پیرو ابھی تک یہ کوشش کر رہے تھے کہ ادب میں زندگی کے اس حسن اور تخییل کو برقرار رکھا جائے جو ہر زمانے کے انسان کو اپنے لمحاتِ حسرت و غم میں درکار ہوتا ہے اور جس کے بغیر زندگی انہی تمام خارجی حقیقتوں کے باوجود نامکمل رہتی ہے لیکن اس قسم کی نو رومانیت کا عہد اپنے تمام خوبصورت اور دلآویز مقاصد اور عزائم کے باوجود ختم ہو چکا تھا۔ بیسویں صدی کے پہلے دس برسوں کی زندگی مشینی دور کی کڑی حقیقتوں اور شدید آلام کشوں سے دوچار تھی۔ ادھر جنگ اور جنگ کی افواہوں نے اس نو رومانی ادب کی طمانیت آمیز فضا کو مضطرب کر رکھا تھا۔ چنانچہ جب ۱۹۱۴ء میں پہلی جنگ عظیم کا آغاز ہوا تو جرمن ادیبوں کے ہاتھ میں اظہاریت کی صورت میں پہلے ہی سے ایک بہت موثر ہتھیار موجود تھا۔

اظہاریت کو دراصل نوجوانوں کی تحریک کہنا چاہیئے کیونکہ یہ تحریک جواں سال جرمن پود کی خواہشوں حسرتوں اور بے اطمینانیوں کا ایک والہانہ اور پرجوش اظہار تھی اور اسی لئے اس تحریک نے جرمنی کے ان جواں سال ادیبوں کے لئے اپنے ملک کے معاشرتی اور سیاسی حالات پر غور کرنے کا موقع بہم پہنچایا تھا جو بیسویں صدی کی پہلی دہائی میں جرمن ادب میں اپنا نام پیدا کر چکے تھے۔ چنانچہ تحریک اظہاریت کے تمام نقاد اب اس بات پر متفق ہیں کہ ۱۹۱۰ء کے لگ بھگ جواں سال جرمن ادیبوں نے شعوری طور پر جرمن ادب میں ایسے عناصر شامل کرنے شروع کر دئے تھے جنہیں بعد میں اظہاریت کا نام دیا گیا۔ اور جو ۱۹۲۰ء کے قریب باقاعدہ طور پر جرمن ادب کا جزوِ لاینفک بن چکے تھے۔

اظہاریت کی ادبی تحریک کے مقاصد کیا تھے اور انہیں پورا کرنے کے لئے کیا انداز اختیار کیا گیا تھا۔ ایک بہت ہی پیچیدہ مسئلہ ہے۔ کیونکہ اظہاریت ادب اور فن کی کئی اور مغربی تحریکوں کے مانند کوئی ترشی ترشائی واضح اور باقاعدہ تحریک نہیں ہے۔ بلکہ اسے ۱۹۱۰ء سے لے کر ۱۹۲۴ء تک کے بہت سے جرمن ادیبوں کے فکر و خیال کا ایک ہیولی کہنا چاہیئے۔ اظہاریت کی تحریک کے آغاز کا مطالعہ کرنے کے لئے یہ دیکھنا ضروری ہے کہ اظہاریت کی اصطلاح پہلے پہل کب وضع ہوئی۔ چونکہ اظہاریت کی تحریک کا پہلے پہل مصوری میں آغاز ہوا اس لئے بہت سے نقادوں کا خیال ہے کہ سب سے پہلے اظہاریت کی اصطلاح کا مصوری ہی پر اطلاق کیا گیا ہوگا۔ ایک جرمن نقاد کوہن کا کہنا ہے کہ تحریک اظہاریت نے واضح طور پر ۱۹۱۰ء میں جنم لیا تھا۔ چنانچہ ہمیں اظہاریت کے آغاز سے متعلق معلومات حاصل کرنے کے لئے اس سال سے آگے نہیں جانا چاہیئے۔ اور نہ ہمیں اس اصطلاح کے ادبی یا اصطلاحی استعمال کو اس سے پہلے تلاش ہی کرنا چاہیئے۔ کوہن نے پکاسو اور کانڈنسکی کے فن پر اظہاریت کی اصطلاح کا اطلاق کیا ہے جو ۱۹۱۰ء کے قریب جدید طرز کی تصویریں بنا رہے تھے۔ کچھ نقاد یہ بھی کہتے ہیں کہ خود کانڈنسکی نے ۱۹۱۰ء کے قریب اظہاریت کی اصطلاح مصوری کے جدید رجحانات کو موسوم کرنے کے لئے وضع کی تھی۔ لیکن ایک اور جرمن نقاد ہیڈنگ کی رائے میں اظہاریت

کی اصطلاح ۱۹۱۵ء سے پہلے تحریر و تقریر میں استعمال ہی نہیں ہوئی۔ اس کا کہنا ہے کہ کتابوں، رسالوں، اخباروں اور پمفلٹوں وغیرہ کے مطالعے سے یہ بات ثابت ہوتی ہے کہ ۱۹۱۳ء سے پہلے اظہاریت کی اصطلاح شاید ہی کسی ایسے مضمون کے عنوان کے طور پر استعمال کی گئی ہو گی جس میں مصوری یا ادب کے ان رجحانات کا ذکر ہو جو ۱۹۱۶ء سے پہلے شروع ہو چکے تھے۔ لیکن ایک اور جرمن نقاد فرتس کناپ نے لکھا ہے کہ اظہاریت کی اصطلاح فرانس میں ماتیس کی تصویروں کی ایک نمائش کے موقع پر ۱۹۰۱ء میں وضع کی گئی تھی۔ چنانچہ اب بہت سے نقادوں کا خیال ہے کہ مصوری میں اظہاریت کی اصطلاح کم از کم ۱۹۰۱ء سے تو ضرور استعمال ہو رہی ہے۔ جہاں تک اظہاریت کی اصطلاح کو ادبی مفہوم مستعار دینے کا تعلق ہے۔ ایک جرمن نقاد اوتو زرلینڈ کا نام لیا جاتا ہے۔ اس نقاد نے ۱۹۱۱ء میں ایک اور جرمن نقاد ہولتس کے ایک نظریے سے جو شاعری میں آہنگ اور بحر سے متعلق تھا اختلاف کرتے ہوئے اپنے ایک مضمون میں اظہاریت کا لفظ پہلے پہل ایک ادبی اصطلاح کے طور پر استعمال کیا۔ جرمن نقاد سوکیگرل کی رائے ہے کہ جرمن ادیبوں میں ۱۹۱۰ء سے پہلے (اور اس نے اس مدت کا تعین تقریباً بیس سال کیا ہے) ایسے میلانات کا سراغ ملتا ہے جنہیں بڑی آسانی سے اظہاریت کے دائرے میں لایا جا سکتا ہے۔ لیکن سب سے پہلے اظہاریت کی اصطلاح کو ایک نہایت ڈھیلے ڈھالے مفہوم میں ان نوجوان جرمن ادیبوں کی تحریروں پر چسپاں کیا گیا جو ۱۹۱۰ء سے لے کر ۱۹۲۰ء تک جرمنی کے معاشرتی مسائل پر نظم، ناول یا ڈرامے کی صورت میں کچھ نہ کچھ لکھتے رہے تھے۔

بعض نقادوں کی رائے ہے کہ اظہاریت کی اصطلاح فرانس میں جرمنی کے مقابلے میں بہت پہلے رائج ہو چکی تھی۔ وہاں کے نقاد دوکسال نے فرانسیسی زبان میں اس اصطلاح کے رائج کرنے میں نمایاں کام کیا ہے۔ لیکن یہ بات دلچسپ ہے کہ جرمنی میں یہ اصطلاح ۱۹۱۱ء کے بعد یعنی ۱۹۱۶ء اور ۱۹۱۷ء میں مکمل طور پر رائج ہو چکی تھی یعنی ایک ایسی بے نام تحریک کو جو پہلے ہی سے اپنے عنفوان میں تھی اظہاریت کے نام سے موسوم کیا گیا۔

اور یہ کسی بہت ہی طباع نقاد کا کام دکھائی دیتا ہے۔ اظہاریت کی اصطلاح سے کیا مراد لی جاتی ہے؟ یہ سوال خاصا ٹیڑھا ہے کیونکہ بعض نقادوں کی رائے میں اظہاریت کی اصطلاح بھی "رومانیت" کے مانند بڑے ڈھیلے ڈھالے مفہوم میں استعمال کی جاتی ہے۔ اور جو ابہام رومانیت کی اصطلاح سے وابستہ ہے کچھ اسی قسم کا ابہام اظہاریت کی اصطلاح میں بھی نظر آتا ہے کیونکہ ان نقادوں کی رائے میں فنون لطیفہ کے مختلف اصناف پر جن میں ڈرامہ، شاعری، مصوری اور موسیقی وغیرہ کے بیشمار نمونے شامل ہیں بغیر سوچے سمجھے اظہاریت کی اصطلاح کا اطلاق کیا گیا ہے۔ اس سے ایک طرف تو اظہاریت کی اصطلاح میں خواہ مخواہ غیر ضروری معنوی گنجائش پیدا کی گئی اور دوسری طرف اظہاری نمونوں کی کثرت سے فائدہ اٹھا کر اس تحریک کو فنی اور ادبی لحاظ سے ہمہ گیر ثابت کرنے کی کوشش کی گئی ہے چنانچہ نقادوں کا ایک ایسا گروہ پیدا ہو گیا جس نے اظہاریت کے دائرے میں ہر شے کو شامل کرنا شروع کیا تاکہ اس تحریک کو ہمہ گیر ثابت کیا جا سکے۔ مثلاً اس تحریک کا معنوی تعلق قدیم یونان اور روم کے کلاسیکی فکر سے جوڑنے کی کوشش کی گئی۔ قرون وسطیٰ کے یورپ کے طور طریقوں اور فکر و خیال کے بارے میں جو تحریک گاتھیت کے نام سے بعد کے زمانوں میں چلی اسے بھی اظہاریت کے ساتھ وابستہ کرنے کی کوشش کی گئی۔ اٹھارہویں صدی میں جرمن ادب میں جو تحریک "طوفان و فشار" کے نام سے شروع ہوئی تھی اسے بھی اس تحریک کے متوازی سمجھا گیا اور رومانیت کی تحریک کا تو خیر اظہاریت کے ساتھ کئی باتوں میں اکثر مقابلہ کیا جاتا ہے۔

اظہاریت پسندوں کے ایک طبقے کی رائے ہے کہ یورپ کی ان تمام ماضی کی تحریکوں اور اظہاریت کے درمیان کئی باتوں میں مشابہت موجود ہے، لیکن اظہاریت کو ایک ہمہ گیر تحریک ثابت کرنے کی کوششوں نے اس تحریک کو نہ صرف ڈھیلا ڈھالا کر دیا۔ بلکہ اس میں ایک ایسا تضاد بھی پیدا کر دیا جس سے اس تحریک کے منشاء و عمل میں بہت حد تک تفاوت پیدا ہو گیا۔ چنانچہ جرمن نقاد ڈیبولڈ نے بالکل صحیح کہا ہے کہ

کوئی بھی ایسی کوشش جس کا مقصد اظہاریت پسندوں کے محض نظریے یا اس نظریے کے عملی اطلاق کی مدد سے اظہاریت کی کوئی تعریف وضع کرنا ہے بیکار ہوگی کیونکہ اس سے اس تحریک کے بارے میں مکمل طور پر وہ شواہد پیش نہیں کیے جا سکتے جن کی اس ضمن میں ضرورت پڑتی ہے۔

بہت سے نقاد اظہاریت کی ادبی تحریک اور مصوری کی تحریک میں کوئی خاص فرق قائم نہیں کرتے۔ اور اس تحریک پر کسی خاص فن کے حوالے کے بغیر ہی بحث کرتے ہیں لیکن یہ ایک مسلمہ امر ہے کہ مصوری کی تحریکِ اظہاریت نے بعد کی ادبی تحریک پر اثر ڈالا۔ مصوری میں اظہاریت کا پہلے ہی سے ایک باقاعدہ نظریہ موجود تھا جسے اظہاریت کی ادبی تحریک کے علمبرداروں نے اپنے مقاصد کے لئے استعمال کیا۔ ادبی اظہاریت کا نظریہ مصوری کی تحریک اظہاریت کے اس قدر قریب ہے کہ ان دونوں کی مماثلت کو کسی اتفاق کا نتیجہ کہنا غیر منطقی ہے۔ حقیقت یہ ہے کہ مصوری کی تحریکِ اظہاریت کو سمجھنے کے بعد ہی ادبی اظہاریت کی تحریک کا باقاعدہ مطالعہ کیا جا سکتا ہے۔

اظہاریت سے پہلے مصوری کی سب سے بڑی تحریک تاثریت تھی۔ تاثریت دراصل مظاہر قدرت یا دوسرے لفظوں میں خارجی دنیا کے حقائق کو ایک خاص زاویۂ نگاہ سے کینوس پر پیش کرنے کا ایک طریق کار تھا۔ تاثریت سے پہلے فطرت پسند مصور کینواس پر خارجی دنیا کے صرف ان حقائق کا ہو بہو خاکہ کھینچ دیتے تھے جو اُن کے ذاتی مشاہدے میں آتے تھے۔ ان کا طریق کار عکاسی کا طریق کار تھا۔ تاثریت پسند مصوروں نے اس طریق کار میں چند بنیادی تبدیلیاں بھی پیدا کر دیں اور خارجی دنیا سے اپنا تعلق بھی نہ توڑا لیکن اس کے برخلاف اظہاریت پسند مصوروں نے مشاہدے میں آنے والی حقیقت سے جان بوجھ کر گریز کیا۔ اور خارجی دنیا کی جگہ ایک داخلی دنیا تخلیق کی۔ جیسا کہ جرمن نقاد مرزلسکی نے لکھا ہے کہ "اظہاریت وہ پہلا فن ہے جس نے فی الحقیقت مشاہدے میں آنے والی حقیقت سے گریز کیا ہے۔ اور فن نے مشاہدہ کی جانے والی حقیقت کی نقالی کرنا چھوڑ دیا۔ اور اس حقیقت سے کوئی سروکار نہیں رکھا جس کا ہماری آنکھ طبعی طور پر مشاہدہ کرتی ہے۔ ظاہر ہے کہ اس اصول کی وجہ سے اظہاریت پسند مصوروں کی بنائی ہوئی تصویروں میں اک ایسا ابہام پیدا ہو جانا ناگزیر تھا جس سے ان کا مفہوم سمجھنے میں دشواری پیش آتی ہے کیونکہ کینوس پر جو کچھ ظاہر کیا جاتا ہے اس کی مماثلت مظاہر سے نہیں دکھائی جا سکتی۔ چنانچہ اس جدید فن کی رو سے نقادوں پر ایسے نئے معیار اور قوانین بنانے کی ذمہ داری عاید ہوتی ہے جن کے حوالے سے ہم اس جدید فن کی جدید جمالیاتی قدروں پر غور و خوض کر سکیں۔ اس لئے یہ لازمی ہے کہ سب سے پہلے ہم اس جدید فن کے فلسفیانہ پہلو پر غور کریں تاکہ ہمیں اس فن کا طریق کار سمجھنے میں سہولت ہو۔

اظہاریت کا فلسفیانہ پہلو بڑا پیچیدہ اور بہت حد تک مبہم بھی ہے کیونکہ ہر اظہاریت پسند ادیب اور نقاد نے اس ضمن میں فلسفیانہ موشگافیاں کی ہیں۔ لیکن اگر ہم ان نقادوں کی تحریک اظہاریت پر لکھی ہوئی بیشمار تحریروں میں سے حشو و زوائد نکال کر ان کا ایک خلاصہ یا انتخاب کر لیں تو ہمیں اظہاریت کے ادبی منشا کو سمجھنے میں بہت مدد ملے گی۔ اظہاریت کی معنوی ہیئت ترکیبی جن اجزاء پر مشتمل ہے ان میں سے چند یہ ہیں:

۱: اناکا "کشف و فروغ": دنیا ہر فردِ واحد یا ذات کی خود تخلیق کی ہوئی ہوتی ہے۔ داخلی واردات کو اس طرح پیش کرنا کہ وہ خارجی حقائق سے مماثل ہو جائیں — (اضداد کی کشمکش)

۲: لاشعور: "ہم احساسی" یعنی بے جان اشیاء کا انسانی جذبات سے یا ذہنی کیفیات مستعار لینا۔ وجدان، ناسخ یعنی خارجی حقائق کو مسخ شدہ صورت میں پیش کرنا۔ (حقائق کی دو پائی نوعیت)

۳: روح اور نفس، احتساس (فنی تخلیق کے وقت سرور) کی کیفیت۔

۴: مذہب، خدا کی تلاش، قضا و قدر سے جنگ۔ (ماورائے فطرت یا خرقِ عادۃ)

۵: انسان کی عظمت، انسان کی قدر و قیمت، ایک روحانی

اخوت (انسانی قدروں کی از سرِ نو تشکیل)۔

ظاہر ہے یہ کسی بہت ہی جامع تحریک کا لائحہ عمل ہی ہو سکتا ہے جو ویسے تو صرف دس برس تک جاری رہی مگر اس کی نمود و نمو میں کم از کم ربع صدی تو ضرور صرف ہوئی ہوگی جب ۱۹۲۴ء کے قریب تحریکِ اظہاریت ختم ہوئی تو اس زمانے کے نقادوں نے اس تحریک کی ہیئت اولی "کا سراغ ماضی کے جرمن ادب اور زندگی میں لگانے کی کوشش کی۔ خود اس تحریک کی زندگی میں جو تنقیدی ادب شائع ہوا اس میں اس تحریک کا رشتہ ماضی سے خاص طور پر ثابت کرنے کی کوششیں کی گئیں۔ جرمن ادیب ہرمان ماہر نے جب ۱۹۱۶ء میں اظہاریت پر اپنی کتاب شائع کی تو اس میں اس نے اس تحریک کے ضمن میں گوئٹے کا بار بار اس انداز میں ذکر کیا گویا وہ اس تحریک کا روحانی جدِ اعلیٰ ہو۔ لیکن بعد کے زمانے کے کثر نقادوں نے گوئٹے کے نام کو اس تحریک سے بالواسطہ یا بلاواسطہ وابستہ کرنے کی مخالفت کی۔ بہرکیف، اس میں کوئی شک نہیں کہ گوئٹے کے علاوہ جرمن فکر کے جدید دور میں چند ایسی شخصیتیں ضرور موجود ہیں جنہوں نے فی الواقع اظہاریت کی تحریک کے فروغ کے لئے ایک نہایت ہی بسیط علمی پس منظر تخلیق کیا۔ اظہاریت کے اس علمی پس منظر کو سمجھنے کے لئے میکس ویبر، وِل فلن، میکس شیلر، ہتمل، وورِنگر اور ہرزل جیسے جرمن مفکروں کی تحریروں کا مطالعہ ناگزیر ہے کیونکہ یہی لوگ جدید ترین ادب اور فکر کے بانیوں میں سے ہیں۔ اور اظہاریت کی تحریک جدید جرمن ادب اور فکر ہی کی ایک اہم شاخ ہے ؏

★

سزا

صہبا اختر

کس تقدیر نے

غم کی دوہری زنجیروں سے

مجھ کو مجبوری کی چٹان سے باندھ رکھا ہے

روز عقاب اندھیروں کے میرا بھی کلیجہ کھاتے ہیں

میں بھی پرومتھیس کا سینہ رکھتا ہوں

لیکن مجھ پر آگ چرانے کا بھی الزام نہیں

پھر یہ کیا ہے

کون سی نیکی کی یہ سزا ہے

فلاح وطن ، قومی یکجہتی اور تعم
ترقی کی راہیں :

مغربی اور مشرقی پاکستان کے عوا
سے براہ راست خطاب اور حل مسائ
کی تدبیریں

(لائل پور میں ایک مہتم بالشان
عوامی جلسہ سے خطاب)

دبیا'' ساتھ لائے : الحاج سید امین الحسینی، مفتی اعظم فلسطین
کی طرف سے ایک نادر نسخۂ قرآن پاک کی پیشکش

خوراک — اور — خوراک : گنگا کوباڈک (مشرقی پاکست
کا منصوبۂ ترقی — گندم کی ترقی یافتہ فصل کا معا

ی پاکستان کی متوازن ترقی : ڈھاکہ میں نئے جنرل پوسٹ آفس کی نو تعمیر عمارت کا افتتاح

دنیا کے سب سے کم عمر جنرل، محمد بن قاسم کی سرکردگی میں عربوں کی فوجی مہم نے سب سے پہلے دیبل، موجودہ بھنبور، (نزد کراچی) سرزمین پر قدم رکھے — یہاں ایک مسجد اور اسلامی بستی کے آثار برآمد ہو چکے ہیں ۔

اُترا ترے کنارے جب کارواں ہمارا

بر صغیر میں سب سے پہلا کارواں ملت سرزمین سندھ پر ہی اترا تھا ۔ کراچی کے بالکل نزدیک دیبل کے مقام پر، جو اب بھنبور کہلاتا ہے ۔ یہی وجہ ہے کہ قدیم سے کراچی کو "باب الاسلام" بھی کہا جاتا ہے ۔

مسلمانوں نے ہی دریائے سندھ کو "مہران" کے پیارے اور با معنی نام سے یاد کیا ۔ اسلام نے ہی یہاں لوگوں کو وحدت الٰہی کی صحیح تعلیم دی اور اس کے مطابق نئے آداب حیات سکھائے ۔

ماضی میں وادیٔ سندھ کی تہذیب دوردست علاقوں تک محیط تھی اس لئے ہماری ثقافت کے آثار جابجا ملتے ہیں ۔ اس دور میں بھی سندھ کی ترقی و عظمت میں اضافہ کرنے کے لئے ہرطرح کے وسائل سے کام لیا جا رہا ہے ۔
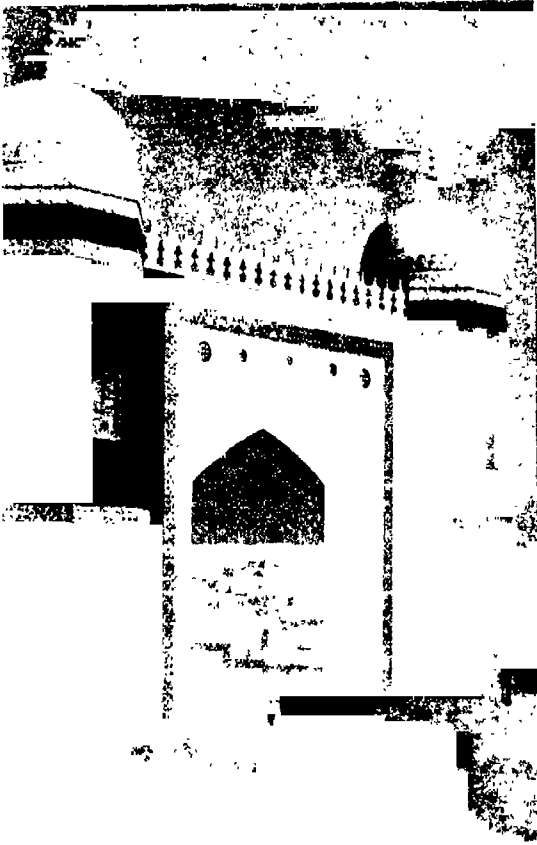
جدید : دریائے سندھ پر ایک جدید آہنی پل ۔ (روہڑی)

قدیم : عظمت رفتہ کی ایک علامت — (قدیم قلعہ [illegible]

ماہ نو، کراچی، مئی ۱۹۶۳ء

"تخلیق کی آگ"

ضمیر علی بدایونی

زمین کے گردوپیش میں روشن اجسام کا رقص وخرام کیا دلکش نہیں۔ یا آسمان کی ردائے نیلگوں میں شفق کا گلابی حاشیہ دلپذیر نہیں۔ یا وہ روشن دائرہ دلکش نہیں جس کی فیاض اور گرم شعاعوں نے زمین کو زندگی کا تحفہ دیا۔ یا زمین کی آغوش میں بسنے والے قطار اندر قطار لالۂ وگل اور سرو وسمن انسانی آنکھ سے محویت کا کوئی مطالبہ نہیں کرتے۔ یا سمندر کی بےکل روح کا وہ نغمۂ لازوال ہوش ربا نہیں جو موج کے مضراب سے پیدا ہوتا ہے۔ ان میں کوئی چیز غیر دلکش، غیر دلپذیر اور بدصورت نہیں۔ انسان نے فطرت کے حسن کو ہمیشہ شدت سے محسوس کیا ہے۔ جہاں ایک طرف وہ فطرت کے بےرحم اور ہولناک قوانین سے خائف اور ترساں رہا وہاں دوسری طرف اس کے نظر افروز حسن وجمال کا بھی قتیل رہا لیکن سوال یہ پیدا ہوتا ہے کہ فطرت کو حسین اور دلکش تسلیم کرنے کے باوجود وہ اس کے ان نغمہ ہائے بوقلموں سے اس قدر جلد کیوں اکتا گیا کہ اسے زیادہ دلکش اور زیادہ ہوش ربا نظاروں کی ضرورت پیش آئی۔ اور فن کی تخلیق کرنی پڑی۔ وہ فطرت کے عطا کردہ حسن اور مسرت پر کیوں نہ قانع رہ سکا۔ اور اس سر کو جو قرنہا قرن سے فطرت کے آستانۂ جمال پر سجدہ ریز تھا اسے اٹھانا پڑا اور اپنے ہی آستانہ پر سربسجود ہو گیا۔

جمیل تر ہیں گل و لالہ فیض سے جس کے
نگاہِ شاعرِ رنگیں نوا میں ہے جادو

اس کی وجہ شاید یہ ہو کہ فطرت کا حسن اس کا اپنا حسن نہ تھا۔ وہ اس سے اپنی تخلیق کی مانند پیار نہیں کر سکتا تھا۔ فطرت کا حسن اس کے تابع نہ تھا۔ وہ اس کی پذیرائی کے برگ وساز سے فارغ بھی نہیں ہونے پاتا تھا کہ وہ اپنا رختِ سفر باندھ لیتا۔ اور سرد مہری سے روانہ ہو جاتا اور وہ زیرِ لب نالہ کش ہو جاتا۔

آہ پایندہ نہیں
لذت وکیف کا یہ ہنگام جلیل

وہ فطرت کے اس گریز پا حسن کا زیادہ دیر تعاقب نہ کر سکا۔ اور فطرت کو ایک نئے اصولِ پیدائش سے آشنا کرنے کا خواب دیکھنے لگا۔ فن کی پیدائش اسی خواب کی مثبت تعبیر تھی۔ یہ تعبیر فطرت کے لئے بہت ہولناک تھی۔ اس کا چہرۂ صبیح داغدار نظر آنے لگا۔ اور اس کا انتشار انسان پر منکشف ہو گیا۔ اس کا مطلق وتنہا وجود اضافی حیثیت میں نمودار ہوا۔ وہ محض ایک ذریعہ ثابت ہوئی، ایک طاق جس میں انسان نے اپنی عظمت کا چراغ روشن کیا۔ اسی لئے فرانز کافکا نے فن کو ایک ایسی آگ کے نام سے پکارا جس میں اشیاء جل کر دوبارہ پیدا ہو جاتی ہیں۔ یعنی اس دنیا کو جس میں خدا کی زمین اور اس کا نیلا آسمان موجود ہے۔ اسے جلا کر ایک نئی دنیا پیدا کی جائے جس پر اس کی اپنی تخلیق کی مہر ثبت ہو۔ فن کی ماہیت کے متعلق کافکا کا یہ بیان کافی غور وخوض کی دعوت دیتا ہے۔ اور کئی کتابوں پر بھاری ہے تخلیقی عمل کی اندرونی ماہیت ان مختصر لفظوں میں موجود ہے۔ کافکا کی عظمت کے ثبوت کے لئے اس کا یہ قول کافی ہے۔ سیزان نے کہا تھا فطرت خطوط سے عاری ہے اور سیزان کے اس قول کو فنی ماہیت کے متعلق اس کے بعض مداحوں نے جامع ترین بیان قرار دیا لیکن کافکا کا یہ بیان سیزان کے قول پر یقیناً ایک اضافہ ہے۔ کیونکہ فطرت گو خطوط سے عاری ہے لیکن اشیاء سے عاری نہیں۔ سیزان اپنی تعریف میں قلب ماہیت کے اسرار زا عمل کو نہ سمیٹ سکا۔ "خط" بیشک فطرت میں اجنبی اضافہ کی علامت کے طور پر استعمال ہوا ہے۔ لیکن فطرت کے بغیر فطرت میں اجنبی اضافہ اسی طرح ممکن نہیں جس طرح عدم کے بغیر عنقا کا وجود محال ہے۔ فنی تخلیق اس معجز رساں

کی حیثیت رکھتی ہے جو بحرِ بیکراں کے بطن سے نمودار ہوتی ہے گو اس کا وجود منفرد ہے لیکن قائم بالذات نہیں، سمندر کی سطح سے اس کی وابستگی ناگزیر ہے کیونکہ: ؎

موج ہے دریا میں اور بیرونِ دریا کچھ نہیں

میر تقی میر نے گلچیں کو خبردار کرتے ہوئے کہا تھا:

گلچیں سمجھ کے چنیو کہ گلشن میں میر کے
لختِ جگر پڑے ہیں نہیں برگہائے گل

اس شعر میں میر نے گلشن اور گلشنِ فن کا فرق ظاہر کیا ہے۔ گلستانِ فطرت بھی حسن و خوبی کا ایک مظہر ہے۔ لیکن انسان سے اس کا رشتہ خارجی ہے۔ برخلاف اس کے فن کا باغ ایک داخلی رشتہ کا حامل ہے۔ اس میں فنکار کی اپنی روح کا عکس موجود ہے۔ اس شعر سے یہ بھی ظاہر ہے کہ فنکار ایک حد تک فطرت کے نقش قدم پر چلنے سے مجبور ہے۔ لیکن حقیقت کی سرحد پھلانگ لینے کے بعد وہ تخلیق کی پراسرار فضاؤں میں گم ہو جاتا ہے۔ اور فطرت کی یکسانیت اس کے سراغ میں ناکام ہوتی ہے۔ گلچیں کو سمجھ کر چننے کا مشورہ اسی لئے دیا گیا ہے کہ یہ باغ جو فنکار نے اپنے خون سے سینچ کر تیار کیا ہے، فطرت کے حقیقی باغ سے کسی قدر مشابہ ہے۔ اسی لئے بودلیر نے فطرت کو لغت کے نام سے پکارا۔ فطرت فن کی لغت ہے جس طرح زبان محض لغت نہیں ہوتی لیکن لغت کے بغیر بھی اس کا وجود ناممکن ہے۔ کافکا کے قول میں فنی تخلیق کے متعلق دو بنیادی نکات موجود ہیں۔ ایک یہ کہ فن فطرت کی عکاسی نہیں، یہ اشیاء کو بجنسہ پیش نہیں کرتا بلکہ فنکار پہلے اشیاء کو تباہ کر دیتا ہے اور دوسری بات یہ کہ اشیاء کو تباہ کر دینے کے بعد وہ انہیں کی خاکستر سے ایک نیا جہاں پیدا کر دیتا ہے اس لئے یہ تباہ کاری اور بازآفرینی کا مشترکہ عمل ہے۔ اسی لئے کافکا نے اس کو آگ سے تشبیہہ دی۔ آگ جہاں ایک طرف تباہی و بربادی کا نشان ہے وہاں دوسری طرف آفرینش اور حیات کی بھی مظہر ہے۔ یہ آگ بخشش کا آزاد عمل ہے۔ اشیاء کی ساری بدصورتی، بے آہنگی اور ان کا انتشار موزونیت و نغمہ کی ردا اوڑھ لیتا ہے۔ اس طرح ان کا وجود تو باقی رہتا ہے لیکن ایک انقلاب سے دوچار ہوتا ہے۔ یہ انقلاب اسی آتش سوزاں کا اعجاز ہے جسے کافکا نے فن کہکر پکارا ہے۔ فطرت کی ساری بدصورتی اسی آگ میں جل جاتی ہے آگ کے اس پہلے عمل کو مارٹن ہیڈیگر فطرت کی تباہی و زوال کے نام سے پکارتا ہے۔ یہ عمل فطرت کو تباہ کرتا ہے۔ جلاتا ہے اور زوال کی طرف لے جاتا ہے۔ اور دوسرا عمل جو تعمیری اثرات کا حامل ہے وہ فطرت کو پیدائش، افزائش اور زیبائش سے روشناس کرتا ہے۔ اسی لئے ایک صاحبِ نظر نے آرٹ کو فطرت کی تخلیق کے نام سے پکارا۔ فطرت کی تخلیق کے معنی ہرگز یہ نہیں ہوتے کہ فطرتِ موجود کے پہلو بہ پہلو ایک نئی فطرت کی تخلیق کی جائے۔ بلکہ اس سے مراد فطرت کا علامتی اظہار ہے۔ جس میں انسان کی اپنی فکر اور اپنے معنی شامل ہوتے ہیں۔ یہ معنی اور فکر فطرت سے آزاد ہوتے ہیں۔ انسان چونکہ فطرت سے بے نیاز ہو کر اپنی آزادی کا اظہار کر سکتا ہے، اس لئے آرٹ وجود میں آیا۔ اس سلسلہ میں مارٹن ہیڈیگر نے انسانی عظمت کے اس تابناک پہلو پر وافر روشنی ڈالی ہے۔ اس کے نزدیک کائنات میں انسان ہی ایک ہستی ہے جو آگہی کوش ہے۔ وہ کائنات اور اس کے بے معنی انتشار میں موجود ہے۔ یہ انتشار اس کی ذات میں بھی کارفرما ہے۔ لیکن ساتھ ہی ساتھ اس میں نظم و ترتیب کی بھی روح موجود ہے۔ جو چیزوں کو انتشار کا شکار ہونے سے بچا لیتی ہے۔ اسے ہیڈیگر "قربت" کے نام سے پکارتا ہے۔ انسان کو چیزوں سے قربت کا اقرار کرنا پڑتا ہے۔ اور اس قربت سے وابستگی کا اقرار۔ ایک دنیا کی تخلیق اور اس کے عروج سے اور اسی طرح ایک دنیا کو تباہ کرنے اور اس کے زوال سے ہوتا ہے۔ قربت کا لفظ یقیناً وضاحت طلب ہے، دراصل یہ لفظ جرمن شاعر فریڈرک ہوئلڈرلن نے استعمال کیا۔ اس سے غالباً اس کی مراد یہ ہے کہ حقیقت اور اس کے لوازمات و متعلقات کو تسلیم کیا جائے۔ حقیقی دنیا میں ہر وہ چیز موجود ہے جو مرتفع ہو کر فضا میں نمودار ہوتی ہے۔

اگر فنکار اشیاء اور مشمولاتِ فطرت کی پذیرائی کیلئے آمادہ نہیں تو وہ لذتِ تخلیق سے بھی بے بہرہ ہے۔ کیونکہ فن موجودات میں اضافہ کا نام ہے۔ لیکن اگر یہاں کچھ موجود ہی نہ ہو تو پھر اضافہ کا لفظ بے معنی ہو جاتا ہے۔ اور فنی تخلیقات خود کو ممتاز کرنے میں ناکام رہیں گی۔ اس لئے چیزوں کی موجودگی کا اقرار کرنا ضروری ہو جاتا ہے اور فنی موجودات، حقیقی موجودات کے دوش بدوش چلتی ہیں۔ اور ان سے قربت و یگانگت کا اقرار کرتی ہیں اور اس قربت کا اقرار کرنے کے بعد فنکار کی آزادی کا سرچشمہ پھوٹ پڑتا ہے

اور فطرت کا طویل و بے معنی سکوت خلل پذیر ہونے لگتا ہے۔ سارتر نے کیا خوب کہا ہے کہ فطرت خموش اور فن محوِ گفتگو ہے۔ فنی تخلیق کا لمحہ آزادی کا طویل ترین لمحہ ہے۔ یہاں انسان آزاد، خلاق اور نغمہ بار ہوتا ہے۔ اس طرح اس کا وجود اساس پاتا ہے۔ ہولڈرلن اس اساس کو گفتگوئے محض کے نام سے پکارتا ہے۔ اور ادب و شاعری کے بغیر زبان کا وجود ناممکن ہے۔ زبان انسانی آزادی کا مکمل ترین اظہار ہے۔ اس آزادی کا جس کی بیکراں آغوش میں انسان فطرت کی دوسری موجودات سے الگ پرواز کر رہا ہے۔ حقیقی زندگی میں حقیقت اور فطرت کے اصولوں کو تسلیم کرنے کے سوا اور کوئی چارہ نہیں لیکن فنی تخلیق کے لمحہ میں انسان فطرت سے کھیل سکتا ہے۔ اس کی قلب ماہیت کر سکتا ہے۔ اور اپنی دنیا کو فطرت کے اٹل اور ناقابلِ تغیر قوانین سے آزاد کر سکتا ہے۔ غالب کہتا ہے:

ہیں زوال آمادہ اجزاء آفرینش کے تمام
مہرِ گردوں ہے چراغِ رہگزارِ بادیاں

مہرِ گردوں کو چراغِ رہگزارِ باد کہنے سے فطرت کے حقیقی تعینات بکھر جاتے ہیں حقیقی زندگی چراغ بھی رکھتی ہے چراغ رہگزار بھی۔ لیکن یہ چیزیں تخیل کی آنچ سے جل اٹھتی ہیں۔ دھواں صاف ہونے کے بعد اب ہمیں کچھ اور ہی نظر آتا ہے۔ اب نہ وہ سورج وہ سورج ہے نہ چراغ وہ چراغ ہے۔ بلکہ وہ کائنات کے زوال پذیر میلان کی علامتیں ہیں۔ اسی لئے پال کلے نے فطرت کو فنکار کا POINT OF DEPARTURE کہا ہے۔ سارتر اور بلانشو نے اس کو اس طرح کہا ہے کہ ادب کچھ نہ کہنے کی کوشش ہے۔ اس کی مثال دیتے ہوئے سارتر نے لکھا ہے۔ حقیقی دنیا میں دو چیزیں موجود ہیں۔ مکھن اور گھوڑا لیکن ادب کہتا ہے مکھن کا گھوڑا حالانکہ مکھن کا گھوڑا حقیقت میں موجود نہیں ہے۔ مکھن اور گھوڑا دو لفظ موجود تھے جب یہ دو لفظ جلے تو مکھن کا گھوڑا پیدا ہوا اس لئے ادب کو لفظوں کے جلنے کا عمل کہا جا سکتا ہے۔ لفظ چونکہ شے کی منقلب شکل ہے۔ اس لئے اسے بالواسطہ اشیاء کے جلنے کا عمل کہا جا سکتا ہے۔ اس لحاظ سے دیکھا جائے تو سارتر اور بلانشو بھی کافکا کے چلائے ہوئے نقشے چلا رہے ہیں۔ کافکا کی تعریف اسقدر جامع اور پُر از معنی ہے کہ اس سے بہتر طور پر فن اور فطرت کے باہمی رشتہ کو سمجھا نہیں جا سکتا اور فن کی اس سے بہتر تفہیم بھی نہیں ہو سکتی۔ یہ تعریف فنی تخلیق کے تمام مراحل اور اعمال کا احاطہ کرتی ہے۔ مکھن کا گھوڑا فطرت میں کوئی خارجی اور حقیقی اضافہ نہیں ہے۔ اس لئے فی الحقیقت تو کوئی چیز معرض وجود میں نہیں آتی۔ لیکن کافکا یہ نہیں کہتا کہ فنی تخلیق فطرت کو کسی حقیقی اضافہ سے دوچار کرتی ہے۔ دنیا کی عظیم ترین فنی تخلیقات بھی ایک حقیقی پھول اور پتھر کو پیدا نہیں کر سکتیں اور نہ ہی ان کی حقیقی موجودگی میں کسی قسم کا خلل پیدا کر سکتی ہیں یہاں ازلی و ابدی مادہ ہے جس میں کسی قسم کا کوئی اضافہ ممکن نہیں۔ کافکا تو حقیقی کائنات کے اس غیر اضافہ پذیر رویہ کو تسلیم کرتا ہے۔ بلکہ اس کی مراد یہ ہے کہ فن میں محض خارجی کائنات کی عکاسی نہیں ہوتی۔ یہ حقیقی اشیاء کی کوئی مربوط اور دلچسپ فہرست نہیں بلکہ یہ اشیاء کو فطرت کے ابدی بہاؤ سے نکال کر شعور کے دھارے میں کھینچ لاتا ہے۔ یہ سچ ہے کہ اگر یہاں فطرت نہ ہوتی تو فن بھی موجود نہ ہوتا۔ اس لحاظ سے یہاں کوئی چیز فطرت سے زیادہ اہم نہیں لیکن فطرت کے اعمال ہمیشہ یکساں اور ہموار ہوتے ہیں۔ یہاں جو کچھ بھی موجود ہے وہ فطرت اسی میلان کا مظہر ہے۔ اگر انسان سمندر کی شوریدہ سر موجوں میں کوئی معنی ڈھونڈھتا ہے تو اس سے فطرت کی بے حسی اور سنگینی میں کوئی فرق نہیں پڑتا۔ وہ اسی شان بے نیازی سے سرگرم عمل رہتی ہے۔ وہ فنکار جس نے سمندر کی موجوں کے بے معنی شور کو حسن و معنی کا حامل بنایا کیا وہ سمندر میں ڈوبنے سے اپنے آپ کو بچا سکتا ہے۔ کیا وہ سرکش موج کے اس بے رحم عزم کو مخاطب ہو کر کہہ سکتا ہے کہ:

"میں نے تجھے حسن کی تابندگی اور حیات ابدی کا
تحفہ دیا کیا تو مجھے سرد اور بدصورت ہونے سے
نہیں بچا سکتی۔"

ظاہر ہے موج کا بے رحم خرام اسے کیا جواب دے سکتا ہے۔ یہی کہ اس کا جواب اپنے فن میں ڈھونڈھ۔ جو فن مجھے زندہ رکھے گا وہ تجھے بھی زندہ رکھے گا۔ میری پشت پر فطرت کے ماضی اور اس کے گراں قوانین کا زبردست دباؤ ہے اور میرے لئے ممکن نہیں کہ تجھے ڈوبنے سے بچا سکوں۔ اس سے ہمیں اس بات کا اندازہ ہوتا ہے کہ ہماری

فنی کاوشوں سے حقیقت اور اس کے قوانین کسی قسم کا کوئی اثر قبول نہیں کرتے۔ اگر ہم یہ کہتے ہیں کہ آسمان دلکش اور شفق حسین ہے تو کیا آسمان کی دلکشی یا شفق کا چہرۂ گلگوں ہمارے اس فعل سے کسی قسم کا کوئی اثر لیتا ہے اگر ہم یہ نہ بھی کہتے تو بھی اس کی موجودگی میں کوئی فرق نہ پڑتا۔ فطرت کی تزئین و آرائش انسان کے لئے نہیں وہ خود مکتفی ہے وہ بے نیاز اور سنگدل ہے۔ وہ انسان سے کسی قسم کے ستائشی یا تعریفی کلمات نہیں مانگتی وہ تو بس موجود ہے اور اس کے سوا کچھ نہیں جانتی۔ وہ یہ بھی نہیں جانتی کہ وہ موجود ہے۔ ایک پہیہ ہے جو مسلسل گھوم رہا ہے ایک گولہ ہے جو مسلسل لڑھک رہا ہے۔ انسان کی بدقسمتی یا خوش قسمتی یہ ہے کہ اسے یہ معلوم ہے کہ وہ موجود ہے اور یہیں سے اس کے اور فطرت کے درمیان ایک خطِ امتیاز کھنچ جاتا ہے۔ اسی شعور نے اسے فن، سائنس اور جملہ ذہنی و فکری ثمرات سے مالا مال کیا۔ زبان کی پیدائش بھی اسی شعور کا نتیجہ ہے، شعور کے تقاضوں سے مجبور ہو کر اس نے مظاہر فطرت کو نام دیئے اور اسی شعور ہی کے مطالبات نے اسے فطرت کی فنی تخلیق پر مجبور کیا۔ کافکا کی تعریف میں شعور کی صراحت بھی موجود ہے۔ جب فن ایک ایسی آگ ہے جس میں اشیاء جل کر دوبارہ پیدا ہو جاتی ہیں۔ تو ظاہر ہے کہ یہ آگ فطرت سے زیادہ طاقتور اور آزاد ہے۔ کسی چیز کو تباہ کرنے کیلئے یہ ضروری ہے کہ ہم اس چیز سے زیادہ طاقتور ہوں۔ یہ تخلیق ہی کی آگ ہے جو فطرت کو جلاتی ہے اور پھر پیدا کرتی ہے۔ اس لئے یہاں فن سے زیادہ طاقتور اور آزاد کوئی چیز نہیں جو تخلیق کی آگ روشن کرتا ہے۔ اور فطرت کو ایک نئے اصولِ پیدائش سے روشناس کرتا ہے ؎

* * *

ایسا روٹھا ہوا بھی کیا ہوگا — کچھ اُسے بھی خیال سا ہوگا

خون دل ہو کہ شیوۂ تسلیم — ہم پہ جو قرض ہے ادا ہوگا

رات کے اس سکوت کے پیچھے — کوئی تو دل دھڑک رہا ہوگا

دن ڈھلا اس کا کچھ حساب کرو — آج کس کس کا دل دُکھا ہوگا

شوقؔ سو جاؤ رات بھیگ چلی

کون ایسے میں جاگتا ہوگا

رضی اختر شوقؔ

پاکستان :

(دوش ، امروز ، فردا)

قیام پاکستان کے بعد سے ہی ہم جمہوریت کا نام بھی سن رہے ہیں اور اس کے نمونے بھی علم و تجربے میں آتے رہے ہیں۔ ہمارے سابق حکمران ہمیں جس طرزِ جمہوریت سے آشنا کر گئے تھے وہ اپنی جگہ کوئی بری چیز تو نہ تھی مگر اس میں ایک عیب یہ تھا کہ وہ ہمارے ملک کی ذہنی افتاد، ہمارے حالات و ظروف اور ہماری مخصوص ضرورتوں کا ساتھ نہیں دے سکتا تھا مغربی طرزِ جمہوریت ان ملکوں کو ہی زیادہ راس آتی ہے جہاں معاشرہ بالخصوص متوسط طبقہ، مستحکم و باخبر ہو۔ مراداً یوں سمجھئے کہ پارلیمانی طرزِ حکومت اور صدارتی نظامِ مملکت کے درمیان انتخاب کا سوال تھا۔ پارلیمانی طرزِ حکومت کو ہم کافی آزما چکے تھے اور یہ بھی دیکھ چکے تھے کہ نااہل سیاستدانوں اور معاشرہ دشمن عناصر کے ہاتھوں جمہوریت کس طرح بازیچۂ اطفال بن چکی تھی اور حالات نے ایسی منزل کو چھو لیا تھا کہ اس وقت صرف نشترِ فصاد ہی کام دے سکتا تھا تاکہ جسمِ سیاست سے فاسد مادہ خارج کر کے نیا خون پہنچایا جا سکے۔ یہ ضرورت اکتوبر کے انقلاب نے پوری کی اور اصلاحِ احوال کے جو جو وسیلے ہم اپنے حالات کے مطابق اختیار کر سکتے تھے، انہیں بروئے کار لایا گیا۔ مگر ظاہر تھا کہ مارشل لا کی موجودگی یا جمہوریت کی عدم موجودگی کوئی مستقل حل نہ تھا اور نہ اس انقلاب کے ہوشمند مفکر کو ہی یہ بات پسند تھی کہ ملک کو ہمیشہ ہنگامی حالات سے دوچار رکھا جائے۔ اس لئے اُس نے شامِ انقلاب کو ملک سے جو وعدہ کیا تھا کہ جمہوریت جلد بحال کر دی جائے گی، اس کا لفظاً اور معناً ایفاء کیا۔

۱۹۴۷ء کے بعد کے حالات پر نظر ڈالئے تو ہمیں جمہوریت کے تمام لوازم موجود نظر آتے ہیں اور یہ الزام نہیں رکھا جا سکتا کہ یہاں جمہوریت کے فروغ و نشوونما کو کوئی موقع ہی نہیں دیا گیا۔ ملک میں کیا نہ تھا؟ قومی پارلیمنٹ تھی، صوبائی اسمبلیاں تھیں، مرکزی و صوبائی کابینہ تھے، سیاسی جماعتیں بھی موجود تھیں۔ یہ مانا کہ براہِ راست عام انتخابات عمل میں نہ آ سکے تھے اور وہ کن عناصر کی بدولت نہ آ سکے تھے یہ بھی ہمیں معلوم ہے۔ اور یہ بھی صحیح ہے کہ قومی اسمبلی کو ایک گورنر جنرل کے فرمان نے ہی توڑ دیا تھا، مگر ان باتوں کے باوجود ملک میں سیاسی آزادی ـــــ بلکہ یوں کہنا چاہئے کہ ضرورت سے زیادہ ہی آزادی ـــــ موجود تھی۔ ملک میں بے شمار سیاسی پارٹیاں تھیں، لیڈر تھے اور ہر جگہ جلسے، جلوس، نعرے، تھے۔ مگر ملک کا کاروانِ ترقی جہاں تھا وہیں رکا کھڑا تھا۔ کیونکہ یہ سب ظاہری باتیں تھیں۔ قومی استحکام کا جسم اندر سے کھوکھلا ہو چکا تھا۔ اس پورے ڈرامے میں بڑے بڑے صاحبان اقتدار۔ صاحبانِ حیثیت اور نام نہاد "بڑے بڑے" سیاستداں اپنا اپنا کردار ادا کر رہے تھے۔ مگر عام آدمی بالکل بے دست و پا بالکل بے بس، تماشائی بنا ہوا تھا۔ بلکہ اس ساری جنگِ اقتدار اور اس ساری جنگِ زرگری کا نخچیر بنا ہوا تھا۔ کیونکہ صرف سیاسی زندگی ہی نہیں ملک کی ساری سرگرمیاں، تجارت، کاروبار، صنعت، تعلیم، زراعت، و معیشت ہر چیز ہی بری طرح متأثر ہو چکی تھی۔

جیسا کہ ابھی عرض کیا گیا: جسمِ سیاست کے ان مفاسد کو دور کرنے کے لئے ۱۹۵۸ء کا انقلاب کارگر حربہ ثابت ہوا اور افراتفری کے اس ڈرامہ پہ پردہ گرا دیا گیا۔

چند سال تک ایک فعال اور آشنائے حال حکومت ملک کا نظم و نسق چلاتی رہی۔ اُدھر عوام نے بھی اطمینان کا سانس لیا۔ مختلف اصلاحات نے ہمیں بتایا کہ جمہوریت اگر صحیح طریقے پہ چلائی جاتی تو اسے کیا کرنا اور کیا نہیں کرنا چاہئے۔ "جمہوریت" کا یہ نعم البدل لوگوں کو بہت بھایا۔ مگر مفکرِ انقلاب خود اس بات کے حق میں نہ تھا کہ مارشل لا کو مستقل علاج سمجھا جائے۔ ملک میں احساس ذمہ داری

پیدا کرنے اور کاروانِ ترقی کو آگے بڑھانے کے لئے اس نے اپنے وعدہ کا ایفا کیا بلکہ رضاکارانہ طریق پر اپنے تمام اختیاراتِ حکمرانی عوام کی طرف پھر منتقل کر دیئے — جو شاید انقلاباتِ عالم کی تاریخ میں پہلی بار ہوا ہے!

مگر ساتھ ہی صدر ایوب کا اپنا ایک تصورِ مملکت بھی تھا، اور وہ یہ کہ جو بھی طرزِ حکومت طے کیا جائے عوام کے مزاج و افتاد کے مطابق ہو اور جو جمہوری نظام بھی رائج کیا جائے اسے لوگ سمجھ بھی سکیں۔ نیز سمجھ کر چلا سکیں۔ یہ طرز ایسا ہو کہ ہمارے وطن کی جو مخصوص کیفیات ہیں ان کے تقاضے بھی پورے ہو سکیں۔ وہ محض مغربی طرزِ حکمرانی کی نقالی نہ ہو۔ بہر نوع اس کا فیصلہ بھی جمہوری طریق پر کیا گیا اور ایک کمیشن نے یکم جنوری ۱۹۶۲ء کو اپنی رپورٹ پیش کر کے ملک میں نئے آئین کے لئے راہ ہموار کر دی۔ لوگوں سے کہا گیا کہ اس آئین کو دیکھیں اس کی پشت پر رفاہی مملکت کا جو عملی تصور کارفرما ہے اسے جانچیں اور اس کو تسلیم کر کے اپنا سیاسی سفر پھر شروع کر دیں۔

آئین کو ہر طرح جمہوری اور حقیقی طور پر قابلِ عمل بنانے کی سعی کی گئی ہے۔

ملک کے دونوں صوبوں میں اسمبلیاں قائم کی گئیں اور پورے ملک میں ایک مرکزی مقننہ کام کر رہا ہے۔ مقامی کونسلوں نے اپنے ووٹ سے اسمبلیوں کے لئے خود اپنے جانے پہچانے آدمی منتخب کئے۔ مقامی کونسلوں کے نمائندے خود عوام نے بنیادی جمہوریتوں کے نظام سے چنے تھے اور ان کا انتخاب عام حق رائے دہندگی بالغان کے اصول پر ہوا تھا۔ بنیادی جمہوریتوں کا نظام بھی اس دور کی ایک ایسی دین تھی جسے جمہوریت کے اصل اساس کے طور پر بہترین طریق کار تسلیم کر لیا گیا ہے، نہ صرف اپنے ملک بلکہ بعض دوسرے ملکوں میں بھی، جہاں اس طرز حکمرانی کو اچھا سمجھ کر اپنایا جا رہا ہے۔ نئے آئین نے صدر کو اپنے کابینہ کے ارکین کا انتخاب کرنے کا مجاز قرار دیا ہے اور اس طرح جو کابینہ بنی ہے وہ آئے دن کی سیاسی قلابازیوں اور وزارتی شکست و ریخت کا مکمل سدباب بھی کر دیتی ہے۔

اس صدارتی طرزِ حکومت کے دو فائدے تو بالکل واضح ہیں۔ ایک تو یہ کہ ملک کو آئینی اور جمہوری نظامِ مملکت بھی مل گیا اور سابقہ حالات کے عود کرنے کا بھی دروازہ بند کر دیا گیا کیونکہ جب تک معاشرہ اچھی طرح اور کافی وسیع پیمانہ پر تعلیم یافتہ اور ترقی آشنا نہ ہو اور اس کے سیاسی رہنما زیادہ بالغ نظر نہ ہوں اس وقت تک اونچی سطحوں پر لامحدود سیاسی آزادیاں دینا مفادِ وطن کے لئے مضر ثابت ہونے کے سوا اور کچھ نہیں ہو سکتیں۔ مگر لوگوں کو سیاسی کاموں سے عملاً وابستہ ہونے کی ضرورت ہے اس لئے نظم و نسقِ مملکت چلانے کی آرزو کو پورا کرنے کے لئے عوام کے نمائندوں کو اپنی بنیادی مجالس کے ذریعہ، پوری طرح آزادیٔ عمل دی گئی ہے۔ چنانچہ ان بنیادی جمہوریتوں نے ہی ملک کے لئے ایک مستحکم سیاسی اساس مہیا کی ہے۔

یہ تو مرض کا ایک علاج ہوا، اور بفضل تعالیٰ بہت شافی بھی رہا۔ مگر علاج کے ساتھ پرہیز کی بھی ضرورت ہوتی ہے تاکہ ازالۂ مرض میں مدد ملے۔ اس غرض سے ملک میں نااہل سیاستدانوں کو چھ سال کے لئے سیاسی زندگی سے علٰحدہ رکھنے کا آرڈیننس بنا دیا گیا۔ اور سیاسی پارٹیاں بھی ممنوع قرار دے دی گئی تھیں۔ غرض اسی پس منظر میں ۸؍جون ۱۹۶۲ء کو ملک کے نئے آئین کے تحت مرکزی مقننہ کا اجلاس راولپنڈی میں منعقد ہوا۔ اراکین نے سرد و گرم ہر طرح کا رویہ اختیار کیا اور وہ شے جسے آزادیٔ اظہار کہتے ہیں اور جسے جمہوریت کا بنیادی اصول مانا گیا ہے، اس موقع پر بھی موجود رہا۔ حکومت خود اس بات کی خواہاں ہے کہ تعمیری نکتہ چینی کو روا رکھے تاکہ رائے عامہ سے قریب تر رہے اور اصلاح و تکمیل کے مراحل میں نمائندگانِ ملک کی آرا سے واقفیت حاصل کی جائے۔ سیاسی جماعتوں کی بحالی بھی اسی وجہ سے کی گئی ہے کہ ملک میں سیاسی خلا موجود نہ رہے، کیونکہ سیاسی خلا عوام میں افواہوں کے پھیلنے، زبانِ طعن دراز کرنے، اور کاناپھوسی کی مہمیں چلانے کا موجب بن جاتا ہے جو کسی بھی ترقی پسند ملک کی ہیئت اجتماعیہ کے لئے مفید ثابت نہیں ہو سکتا۔

مرکزی اور صوبائی مجالس قانون ساز میں جو کچھ لیل و نہار ہیں وہ اخبار بیں طبقوں سے پوشیدہ نہیں۔ مگر ان مجالس کے باہر سیاسی مطلع بھی گہرا ابر آلود ہے اور کچھ نہیں کہا جا سکتا کہ یہ غبار کب تک چھٹے گا۔ سیاسی جماعتوں کی بحالی کے بعد ملک میں کئی جماعتیں جو ماضی میں اپنا اپنا کردار ادا کر رہی تھیں، پھر برسرِ عمل آ گئی ہیں۔ مگر حالات کی رفتار ابھی تک سیال حالت میں ہے۔ خود حکومت

کو بھی اس بات کا احساس تھا کہ عوام سے قریب تر آنے اور اصلاحی
ترقی کے منصوبوں کو پوری طرح مکمل و کامیاب بنانے کے لئے
جہاں اور باتوں کی ضرورت ہے وہاں عوام کا اعتماد و تعاون جیتنا
بھی ضروری ہے۔ اس لئے حکمراں کابینہ کو بھی کسی فعّال اور
بااثر جماعت کی تائید حاصل ہونی چاہئے تاکہ ملکی فلاح کے پروگراموں
کو آگے بڑھایا جاسکے۔ صاحب رائے حضرات نے خلوص نیت سے
یہ چاہا تھا کہ ملک میں صدر پاکستان، فیلڈ مارشل محمد ایوب خان
ہی کی ایک ایسی وقیع و قدآور ہستی ہیں جنہیں سارے ملک کا اعتماد حاصل
ہے اس لئے اگر وہ اپنی ایک سیاسی جماعت کی تشکیل پر رضامند
ہوجائیں تو بہت سی سیاسی پیچیدگیوں کا از خود ازالہ ہوجائے گا
مگر اس تجویز کو صدر پاکستان نے خود ہی پسند نہیں فرمایا۔ اس لئے
کافی غور و فکر کے بعد یہ طے کیا گیا کہ ملک کی سب سے بڑی جماعت
مسلم لیگ کو بحال کیا اور فعال بنایا جائے کیونکہ یہی وہ جماعت
تھی جس نے پاکستان بنانے میں مدد دی تھی اور لوگوں میں بھی اس
کو وقعت کی نگاہ سے دیکھا جاتا تھا۔ خود بہت سے وزرائے
کابینہ کی شخصی تائید بھی اسی جماعت کے حق میں تھی کیوں کہ ان
میں سے بیشتر ایسے حضرات ہیں جو سیاست کے میدان میں جانی پہچانی
ہستیاں ہیں اور یہ جماعت بھی وہ جماعت ہے جس کے ساتھ خود بانیٔ
پاکستان قائد اعظم اور معمار پاکستان قائد ملت مرحوم کی یادیں
وابستہ ہیں۔

مگر ہوا یہ کہ مسلم لیگ کی تشکیل نو بھی گوناگوں مشکلات
کا شکار ہوگئی کیونکہ بہت سے پرانے لیڈر ایبڈو کی زد میں تھے اور
جو باقی رہے تھے وہ شاید اتنے بااثر نہ تھے کہ ایک نئی اور عظیم وطنی
تحریک کو چلا سکیں۔ ان میں بعض لیڈر تو حکومت کے کھلم کھلا
مخالف تھے۔ اس لئے مشکلات اور بھی بڑھ گئیں مگر رہ نوردانِ
شوق کو منزل پر پہنچنے کی جستجو ہو تو راہ کی دشواریاں ہمت کو اور
مہمیز دیتی ہیں۔ چنانچہ فیصلہ ہوا کہ مسلم لیگوں کا ایک کنونشن منعقد
کرکے آئندہ لائحۂ عمل طے کیا جائے۔ یہ کنونشن بھی اختلاف کا
مورد بن گیا اور بعض لیگی لیڈروں نے اپنی ایک کونسل مرتب
کرنے کا اہتمام کیا۔ یہ کونسل وہی تھی جو اکتوبر ۱۹۵۸ء کا انقلاب
آنے سے قبل بنی ہوئی تھی۔ اس وقت مسلم لیگ کی یہ دونوں ہی
جماعتیں اپنی رکن سازی کی مہم چلا رہی ہیں۔

مغربی پاکستان میں دوسری سیاسی پارٹیاں بھی موجود
ہیں مگر ان کے مؤیدین کی تعداد کچھ زیادہ بڑی، یا مؤثر نہیں۔
مثلاً نیشنل عوامی پارٹی، ریپبلیکن پارٹی، عوامی لیگ وغیرہ۔
ملک میں ایک "متحدہ قومی محاذ" بنانے کی بھی سعی کی گئی جس میں
ہر پارٹی کے نمائندے موجود ہوں گے۔ مگر ہر گروپ نے اس
محاذ میں شریک ہونے کے لئے اپنی جدا جدا شرائط پیش کی
ہیں کوئی پورے آئین کو ہی بدلنا چاہتا ہے، کوئی اس کی
اصلاح و ترمیم چاہتا ہے، کوئی کچھ، کوئی کچھ! لیکن ان جماعتوں
کے رہنما وقتاً فوقتاً جو بیانات دیتے رہتے ہیں ان سے تو یہ
معلوم ہوتا ہے کہ اس محاذ کو بھی پوری یکجہتی حاصل نہیں ہے۔

غرض اس وقت ملک کا سیاسی خواب تعبیروں کی
کثرت سے پریشان ہے اور کچھ نہیں کہا جاسکتا کہ مطلع سیاست
پر کون کون سے ستارے طلوع ہوں گے، اور کیا کیا روشنیاں
بکھیر کر افق کے کس پار پہنچ جائیں گے۔

البتہ یہ سوال ضرور سامنے آتا ہے کہ ملک کی اس سیاسی
بے یقینی کے ضمن میں حکومت کس طرح سوچتی اور عمل کرتی ہے۔
اس سوال کا جواب تلاش کرنا کچھ ایسا مشکل نہیں۔ کیونکہ صاف
دکھائی دے رہا ہے کہ بلند آہنگ تقاضوں کے پیش نظر
حکومت ملک کے آئین کو اور زیادہ جمہوری بنانے کے سلسلے
میں قدم اٹھا چکی ہے۔ بنیادی حقوق کا بل ڈھاکے کے موجودہ
اجلاس میں پیش کیا گیا ہے اور اس کی منظوری
کے لئے جملہ مساعی بروئے کار لائی جا رہی ہیں۔ عام
مطالبہ یہ تھا کہ ملک کا نام آئینی طور پر "اسلامی جمہوریہ
پاکستان" رکھا جائے۔ اسے بھی تسلیم کر لیا گیا ہے۔ رائے
دہی کمیشن مقرر کیا گیا تھا، جس نے اپنی رپورٹ صدر پاکستان
کی خدمت میں پیش کردی ہے اور بالراست انتخابات
کا اصول منظور ہونے کی توقع کی جارہی ہے۔ بجٹ کو بھی
مقننہ کے کنٹرول میں دینے کا امکان ہے۔ اسی طرح ماہرین
قانون کی آرا کے مطابق ہائی کورٹوں کو اپیل سننے اور نظرثانی
کے اختیارات بھی مل جائیں گے اور اب ایبڈو زدہ لوگوں

کو درخواست دینے پر بعض حالتوں میں صدر پاکستان معافی بھی دے سکتے ہیں۔ غرض اس قسم کے بہت سے مطالبات تسلیم کئے جا چکے ہیں جو خود اس بات کی دلیل ہے کہ حکومت حزب اختلاف کے ساتھ زیادہ سے زیادہ تعاون پر آمادہ ہے رائے عامہ کی نبض پر اس کا ہاتھ ہے اور جب تک کوئی بات صراحتاً وطن دشمن یا عقائد اسلام و پاکستان کے خلاف معلوم نہ ہو اس کے قبول کرنے میں فراخ دلی کا ثبوت دیا جاتا رہے گا۔

مگر حزب اختلاف سے عارضی سمجھوتہ کر لینا نہ کوئی بڑا کارنامہ ہے اور نہ مسائل کا مستقل حل۔ لیکن یہ بھی نکتہ ارباب اختیار کی نظر سے اوجھل نہیں کہ آزاد اظہار رائے اور محض نکتہ چینی و مخالفت، دو الگ الگ چیزیں ہیں۔ اس لئے بعض ناگزیر پابندیوں کا باقی رکھنا بھی لابدی ہو جاتا ہے۔

زبان طعن کے لئے آمریت کا الزام لگا دینا یوں تو بہت آسان ہے مگر آئینی آداب و روایات کا خیال کیا جائے تو حقیقت کچھ اور ہی معلوم ہوتی ہے۔ اب مثلاً صدارتی طرز حکومت میں یہ ضروری نہیں ہوتا کہ حزب اختلاف کی مخالف رائے پر وزرا مستعفی ہو جائیں۔ وہ اپنی مقررہ مدت سے قبل نہیں ہٹائے جا سکتے خواہ فرش ایوان پر انہیں شکست ہی کیوں نہ ہو جائے۔ لیکن ایک ہوشمند محب وطن کابینہ کا پھر بھی یہ روایتی فرض رہتا ہے کہ قوم کی نبض پر ہاتھ رہے اور سیاسی موسم کے تغیر کو نگاہ سے اوجھل نہ رہنے دیا جائے۔ اسی لئے حزب اختلاف کو حتی الامکان جیتنے کی ہی کوشش کی جاتی ہے۔ ویسے ہمارے قومی مقننہ میں حکومت کو اکثریت حاصل بھی ہے۔ ۱۵۶ نشستوں میں سے دو اس وقت خالی ہیں۔ ۱۴ ممبر کسی پارٹی سے منسلک نہیں، ۶۰ اراکین حزب اختلاف کی نشستوں پر بیٹھے ہیں پھر بھی ۸۰ اراکین مقننہ حکومت کے موید ہیں۔ مغربی پاکستان کی اسمبلی میں ۱۰۰ اور مشرقی پاکستان کی اسمبلی میں ۱۲۰ اراکین حکومت کی تائید میں ہیں۔

مگر کیفیت یہ ہے کہ لوگوں کے گروپ یا حمایت کی تشکیل کسی اصول و سیاسی عقیدہ و پروگرام پر مبنی یا منحصر نہیں ہوتی۔ بلکہ اس میں فرد پرستی کو زیادہ دخل ہوتا ہے۔ اُدھر سیاسی لوگوں کی بصیرت ابھی اُس وسعت و ہمہ گیری کی محتاج نظر آتی ہے جو ملک کو صحیح

(باقی صفحہ ۸۲ پر)

غزل

تابش دہلوی

خاک اُڑاتے ترے وحشی کو سدا دیکھتے ہیں
کوئی صحرا ہو بگولا سا اُٹھا دیکھتے ہیں

ہم سے پہلے سرِ منزل کوئی پہنچا ہے ضرور
دُھندلے دُھندلے سے نشانِ کفِ پا دیکھتے ہیں

رُخ ہی ہو جائیگا موسم کی ہوا کا معلوم
ہمیں خاکسترِ دل اپنی اڑا دیکھتے ہیں

آڑ میں ہے نگہِ شوق کی تو پوشیدہ
آج یہ پردۂ حائل بھی اٹھا دیکھتے ہیں

تیری رنگیں بدنی کا انہیں اندازہ ہے
جو ہمیشہ تجھے رنگین قبا دیکھتے ہیں

نکہت و رنگ کی یہ موج کہاں سے آئی
پھول کھلتا ہے تو ہم سوئے صبا دیکھتے ہیں

مژدۂ گوش ہوا جلوۂ چشمِ مشتاق
آتا سنکر اُسے ہم آتا ہوا دیکھتے ہیں

لے یہ پے پڑتی ہیں ساقی کی نگاہیں تابش
حاصلِ میکدہ ہر لغزشِ پا دیکھتے ہیں

سوات میں اجنبی

طاہر احمر

(پل کے اِس پار)

کتنا رنگین ہے خاموش ہے یہ شہرِ خزاں
زرد پتّوں پہ سلگتے ہوئے پھولوں کا دھواں
گرد کی گود میں سوئے ہوئے گاؤں کا سراغ
راہ کے پھول پہ ٹھہرا ہوا کوئی ارماں
برف زاروں کے حسیں بن میں اُمڈتے بادل
اور وادی میں گرجتے ہوئے دریا کا سماں
مرغزاروں میں چناروں کے دہکتے پتّے
دیو داروں کے گھنے سائے میں سبزہ لرزاں
کتنے گلپوش کناروں سے گزرتی ندی
موج در موج ہے رنگینیٔ گل سے تاباں
گنگناتی ہے حسیں شام شفق کی لو پر
جیسے خورشید کی کرنیں ہوں کہ رقصاں رقصاں
اپنی تنہائی میں افسردہ و گمنام سا چاند
اونچے کہسار پہ ٹھہرا ہوا حیراں حیراں
اک حسینہ ہے سرِ راہ کسی یاد میں گم
اور وادی میں وہ سوئے ہوئے خاموش مکاں

ایک مدّت ہوئی چھوڑے ہوئے وادیٔ سوات
دل کے ویرانے میں ہیں گیت ابھی تک لرزاں

(پل کے اُس پار)

دم بدم سرد خزاں پھول اڑاتی گزرے
گیت کی آگ سرِ شام بجھاتی گزرے
سرد یخ بستہ ہواؤں میں بپھرتا ہوا جوش
نیچے وادی میں گزرتے ہوئے دریا کا خروش
دیو داروں کے گھنے گھور اندھیرے جنگل
دیوتاؤں کی سی نخوت سے اُمڈتے بادل
برف کے گاؤں کو جاتی ہوئی اک راہ گزر
جس کے جنگل میں جواں برف اڑائے شہپر
نرم چہروں پہ سرِ شام شفق کی کلیاں
اور مرے گاؤں کی پُرکیف سہانی گلیاں
برف کی دُھند میں لپٹے ہوئے بلور پہاڑ
کتنے تاریک بیابانوں میں آندھی کی فغاں
آج تنہائی میں اے غمِ دلِ بے تاب بھی ہے
ڈھلتے سائے جو لرزتے ہیں تو مہتاب بھی ہے

انقلاب سے آئین تک

انور حسین

اگر یہ کہا جائے کہ پاکستان میں انقلاب درحقیقت محض انقلاب نہ تھا بلکہ تعمیر و ترقی کا پیش خیمہ تھا اور اس کی بدولت اس کی رفتار ترقی اور بھی تیز ہو گئی تو شاید اس میں تضاد کا شائبہ نظر آئے۔ بادی النظر میں ممکن ہے ایسا ہی معلوم ہو لیکن غور سے دیکھا جائے تو یہ عین حقیقت ہے۔ اور سچ پوچھئے تو بانیانِ انقلاب کا حقیقی منشا بھی یہی تھا۔ وہ اس کو ارتقائے مسلسل کا ذریعہ بنانا چاہتے تھے اور یہی وہ چیز ہے جو اس کی بدولت بروئے کار بھی آ رہی ہے۔

جہاں تک تضاد کا تعلق ہے یہ بھی فی نفسہٖ کچھ ایسی چیز نہیں جس کی طرف پُرمعنی نظروں سے دیکھتے ہوئے کہا جائے کہ این چہ بوالعجبی است؟ کیونکہ یہ عام مشاہدہ کی بات ہے کہ بعض اوقات متضاد باتوں میں بھی ہم آہنگی پائی جاتی ہے اور انتہاؤں کے سرے بھی آپس میں مل جاتے ہیں۔ اسی طرح یہ بھی صحیح ہے کہ جو چیزیں بظاہر آپس میں ملتی جلتی ہوں وہ بسا اوقات انمل بے جوڑ ہوتی ہیں۔ یہ ساری باتیں اظہر من الشمس ہیں اور وہی لوگ ان کو محسوس نہیں کرتے جو صغریٰ کبریٰ پر غور و خوض کئے بغیر جھٹ کوئی نتیجہ اخذ کر لیتے ہیں۔ یہ بھی کہا جاتا ہے کہ بعض لوگ صحیح صورت حال کو بھانپ تو لیتے ہیں لیکن چونکہ انہیں محض ذاتی اغراض سے سروکار ہوتا ہے اس لئے وہ اس سے اغماض کرتے ہوئے حقائق کو اس طرح توڑتے مروڑتے ہیں کہ دوسرے لوگ گمراہ ہوں اور ان کا مطلب پورا ہو جائے۔

اس سلسلہ میں زیادہ اندیشہ اس بات کا ہے کہ حقائق کو کسی بری نیت سے مسخ نہ کیا جائے بلکہ اس کا سبب پُرصبر کد و کاوش نیز اس سیاسی بیدار مغزی اور فہم رسا کا فقدان ہو جو انسان کو کسی پیچیدہ معاملہ کے خلاف یا حق میں رائے قائم کرنے کے لئے اس کے موافق و مخالف پہلوؤں پر غور کرنے کی صلاحیت عطا کرتے ہیں۔

عام طور پر جو شکایت کی جاتی ہے اور بالعموم سوچے سمجھے بغیر کی جاتی ہے وہ یہ ہے کہ پاکستان آئینی نشوونما یا حقیقی جمہوریت کے قیام میں دوسرے ملکوں سے بہت پیچھے ہے۔ ایسی تنقید کرنے والے اس بناء پر کہ انقلاب بہرحال انقلاب ہے خواہ وہ بے کشت و خون ہی کیوں نہ ہو۔ اس کے ذریعہ اہل پاکستان کے مزاج و افتاد کے مطابق جمہوری حکومت کے نشو و ارتقا کے تصور کو مضحکہ خیز خیال کرتے ہیں۔ وہ مغربی جمہوریت یا اس امر کا تذکرہ کرتے ہوئے کہ کس طرح دنیا کے اکثر آزاد ممالک اس کی پیروی کر رہے ہیں افسوس کرتے ہیں کہ پاکستان ایسا کیوں نہیں کرتا۔ اور اس سے قاصر کیوں ہے۔

بنابریں یہ بیان کرنے کی ضرورت نہیں کہ مغربی وضع کی جمہوریت کے دیگر ممالک میں نشوونما، ارتقا اور کامیابی یا ناکامی سے متعلق کوائف اور پاکستان کی مخصوص افتاد اور مسائل کی صحیح خیافہمی سے تمام مغالطوں اور ذاتی اغراض پر مبنی غلط بیانیوں کی معنوی کہر چھٹ جائے گی۔

جہاں تک باقاعدہ تاریخ کا تعلق ہے یہ سوال کیا جا سکتا ہے کہ ہیروڈوٹس کے زمانۂ قدیم سے لے کر اب تک کئی قوموں نے کئی ممالک میں جمہوریت کا تجربہ کیا ہے۔ لیکن اس کا نتیجہ کیا رہا ہے؟ اس کا جواب دیتے وقت یہ تسلیم کرنا پڑے گا کہ قیصر اعظم اور جلیل القدر نپولین سے لے کر البانیہ جیسے چھوٹے ملک کے احمد زوغ تک ان سب باجبروت افراد نے خود کو اپنے ملک کے دستور سے زیادہ طاقتور بنا کر آخرکار اس کاغذ کے پرزے کو ہڑپ کر لیا تھا۔ اور یوں جمہوریت کو بالآخر اپنی موت یا شکست کے ساتھ ہی دفن کر کے اپنی قوم کو تباہی و بربادی میں مستغرق کر دیا تھا۔

انگلستان ہی کو لے لیجئے۔ اسے موجودہ غیر مرقوم دستور کو

بروئے کار لانے کے لئے آشوب حوادث سے معمور کتنی ہی صدیوں سے گزرنا پڑا، ایسی صدیاں جن کا دامن بادشاہوں کے ساتھ نوابین کی جنگوں، بادشاہوں کے سر قلم کرنے، محافظِ قوم کے ایک سالہ بچے کو بر سرِ عام دار پر لٹکانے وغیرہ وغیرہ سے پُر ہے۔ جب انگلستان کی نو آبادیوں نے جارج سوم کی حکومت سے سرتابی کر کے موجودہ ریاست ہائے متحدہ امریکہ کی بنیاد رکھی تو کیا انہوں نے اپنے سابقہ وطن کی حکومت یا آئین کو نمونہ بنایا؟ قدرتی طور پر وہ ایسا کرنے سے معذور رہے۔ انہیں اپنا آئین خود وضع کرنا پڑا تاکہ وہ اسے اپنے لوگوں کے مزاج و افتاد کے مطابق بنائیں۔ اور اسے بھی اپنی موجودہ وضع اختیار کرنے کے لئے کتنی ہی کد و کاوش اور محنت و مشقت سے کام لینا پڑا۔ اور کتنی ہی کشمکش اور خون خرابے سے گزرنا پڑا۔

پھر وہ مغربی ملک جس نے دنیا کو "آزادی، مساوات اور اخوت" کا غیر فانی نعرہ دیا ہے، جمہوریت کے ساتھ ۱۷۸۹ء سے برابر کھیلتا ہی رہا ہے، جیسا کہ اس کے تاریخی حالات سے صاف پتہ چلتا ہے۔ چنانچہ وہ ہنوز اپنی منزل کی تلاش میں سرگرداں ہے۔ ایسی ناکامیوں کی اور مثالیں پیش کرنے کی ضرورت نہیں کیونکہ جو لوگ واقعات سے ناواقف ہیں وہ بخوبی جانتے ہیں کہ مغربی وضع کی جمہوریت ناکام ثابت ہوئی ہے۔ اور جن ملکوں نے بعینہٖ اس کی نقل اتارنے کی کوشش کی ہے، وہاں اس کا بہت برا حشر ہوا ہے۔

اس لئے اگر پاکستان ان تجربوں سے سبق لینا چاہتا ہے تو وہ بے جا نہیں۔ اس کے لئے نہ تو یہ مناسب ہے کہ وہ پٹے ہوئے راستے پر گامزن ہو اور نہ یہ کہ دوسرے ملکوں کی اندھا دھند پیروی کرے۔ ایک طرف قائدین کے خضرِ راہ بن کر صحیح راہ دکھانے اور دوسری طرف ان کی ہدایات پر عمل کرنے والے مقتدیوں کی سعی و کوشش اور جد و جہد نے ہمیشہ قوموں کو اپنا راستہ آپ تراشنے اور اپنے ہی طور پر منزلِ مقصود تک پہنچنے کی توفیق عطا کی ہے۔ جب کبھی انہوں نے اپنی راہ پیدا کرنے کی کوشش کی ہے ان کے دشمن ان کا مضحکہ اڑاتے رہے ہیں اور دوسرے ان کی مساعی کے ناکام ہونے کے بارے میں پیشگوئیاں کرتے رہے ہیں۔

لیکن تاریخ نے بار بار اس امر کا ثبوت بہم پہنچایا ہے کہ انہوں نے اپنے لئے جو نصب العین مقرر کیا تھا اس کو حاصل کر کے اپنی فہم و فراست اور فطری صلاحیت کا ثبوت دیا ہے۔

مثال کے طور پر یہی دیکھ لیجئے کہ دورِ آزادی سے پہلے ہماری کیفیت کیا تھی۔ ہماری ہمسایہ قوم کی ہٹ دھرمی اور حکمراں قوم کی چالبازی کے باعث ہندوستان کے مسلمانوں کا کوئی مستقبل بھی نہیں دکھائی دیتا تھا کہ وہ آزاد ہوں گے بھی یا نہیں۔ اور آزاد ہو کر بھی ان کی کیا حالت ہوگی۔ اس وقت ہمارے فلسفی شاعر، علامہ اقبالؒ کے ذہن رسا نے پاکستان کا تصور کیا۔ اور قائد اعظمؒ نے اس کو حاصل کرنے کا مصمم ارادہ، فرزندانِ ملت اپنے قائد کے گرد جمع ہو گئے اور قرارداد لاہور منظور ہوئی۔ مخالفین پاکستان نے اس کا تمسخر اڑایا۔ قہقہے لگائے۔ اور دنیا نے اسے محض ایک ڈھونگ یا زیادہ سے زیادہ مذاق تصور کیا۔

لیکن "عوام کے بے پناہ ارادہ" کی مناسب تنظیم، اس کی صحیح نہج پر کارفرمائی اور پُر اتحاد استعمال، پاکستان کو "دھوم دھام کے ساتھ" معرضِ وجود میں لا کر ہی رہا۔ اب ہم پر خندہ زن ہونے کی بجائے دنیا پر خندہ زن ہونے کی باری ہے جس میں تقسیم کا وہ اصول جس کی بنیاد قیامِ پاکستان سے پڑی، ایسے تمام عوارض کا مجرب علاج بن گیا ہے۔ چنانچہ کوریا اور ویت نام کے پیچیدہ معاملے اس کی نمایاں مثالیں ہیں۔ اور تو اور ہندوستان نے بھی جو پاکستان کا بدترین نقاد ہے، اس سلسلہ میں حد کر دی ہے۔ ملکی وحدت پیدا کرنے کی کوشش میں ناکام رہ کر (جس میں پاکستان کو کامیاب ہوئے مدت گزر چکی ہے) حکمرانانِ دہلی ان ریاستوں (صوبجات) کو جو ویسے تو چھوٹی ہیں لیکن ہیں بلا کی تکلیف دہ، چھوٹی چھوٹی ریاستوں میں تقسیم کر دیا ہے۔

ادھر یومِ آزادی ۱۴ اگست ۱۹۴۷ء سے لے کر دستور ۱۹۵۶ء تک کے زمانے میں پاکستان پے در پے کئی حادثوں سے دوچار ہوا۔ یعنی حملۂ کشمیر، جونا گڑھ اور مانا ودر پر ہندوستان کا زبردستی قبضہ، مسلمانوں کے خون کی جابجا ارزانی، لاکھوں پناہ گزینوں کی دھڑا دھڑ آمد، بابائے ملتؒ کی مرگ ناگہاں، ۱۹۵۰ء میں فرقہ وارانہ ظلم و ستم کی از سرِ نو فتنہ آرائی، ۱۹۵۱ء میں قائدِ ملت کی شہادت، خوفناک آفاتِ سماوی وغیرہ وغیرہ نے قوم اور اس کے قائدین کو ایک طویل

مخمصے میں مبتلا رکھا۔

جو لوگ ایسے پُرآشوب حالات سے فائدہ اٹھانے کی فکر میں رہتے ہیں۔ انہوں نے اس نازک زمانے کو اپنی نامبارک کارستانیوں کے لئے بہت ہی موزوں خیال کیا۔ چنانچہ انہوں نے جو زہر یلے بیج بوئے تھے وہ کسی اژدہے کے دانتوں کی طرح موثر ثابت ہوئے۔ اور یہ تمام انہی کا نتیجہ تھا کہ پاکستان تقریباً تباہی کے کنارے آن لگا اور اہل پاکستان کو قیامت کی گھڑی بالکل سامنے دکھائی دینے لگی۔ دنیا چپ چاپ یہ تمام منظر دیکھ رہی تھی اور منتظر تھی کہ یہ گھڑی کب آتی ہے۔

لیکن اگر ایک شاعر کے ذہن رسا نے پاکستان کا تصور کیا، اس کا خواب دیکھا، اگر ایک قائد نے اس کے لئے جدوجہد کی اور اس جنگ میں کامیاب ثابت ہوا تو خدا کے فضل سے صدر پاکستان محمد ایوب خان کی شکل میں ایک نجات دہندہ بھی نمودار ہو گیا جس نے ۱۹۵۸ء میں عین وقت پر میدان میں قدم رکھا اور اس ابتری کے بڑھتے ہوئے سیلاب کو روک لیا۔ تب سے ہمارا کارواں برابر آگے ہی آگے بڑھتا چلا جا رہا ہے۔ اُس منزل کی طرف جو اس جوصلہ مند قائد نے اس کا منتہا قرار دیا ہے۔ یہ کہنے کی ضرورت نہیں کہ اس منزل مقصود، اس مقام عافیت کی طرف بڑھنے کی کوشش میں ہمارا کارواں جو بالکل نئے راستے پر چل رہا ہے، اور بھی زیادہ شدید صعوبتوں اور آزمائشوں، مشکلات و خطرات میں مبتلا رہا ہے۔ اور یہ ایسے مصائب ہیں جن میں کوئی کارواں بھی جو ان جانے جنگلوں اور صحراؤں میں گرم سفر ہو۔ مبتلا ہوئے بغیر نہیں رہ سکتا مگر ان میں کوئی راستہ نظر آتا ہے نہ نشان راہ۔

۲۷ر اکتوبر ۱۹۵۸ء کے تاریخی دن کے بعد جو واقعات رونما ہوئے اور کل چار سال کے بہت ہی مختصر عرصے میں جو شاندار کارناموں کا ہجوم نظر آتا ہے، وہ اس قدر معروف ہیں کہ ان کا تذکرہ تحصیل حاصل ہے۔ لیکن جہاں تک آئینی ارتقا کا تعلق ہے اس کے بارے میں چند سطور بے محل نہ ہوں گی۔

ملکی حالات کا بڑا ہی حقیقت پسندانہ جائزہ لیتے ہوئے ٹھوس کوائف کو ملحوظ رکھتے ہوئے اور جذباتی و شوریدہ سرانہ شور وغل کی ذرا بھی پروا نہ کرتے ہوئے صدر پاکستان، محمد ایوب خان، بیباکانہ آگے بڑھے چلے جا رہے ہیں۔ انہوں نے بنیادی جمہوریتوں کی شکل میں ایک غیر معمولی انتظامی اختراع کی ہے۔ اس درجہ کامیاب کہ دوسرے ہمسایہ ملکوں نے بھی جو جمہوریت کے تجربے کر رہے ہیں اس سلسلہ میں پاکستان ہی کی پیروی کی ہے اور اس کے نقش قدم پر چل رہے ہیں۔ صدر ایوب ہی کے زیر ہدایت ان کے ماہرین دستور نے ایک ایسا جمہوری آئین وضع کیا ہے جو جمہور کے مزاج کے مطابق ہے۔ اس سے بھی بڑھ کر یہ کہ صدر ایوب خان ایک بڑی قوم کے سچے قائد۔ ایک بے باک، کھرے اور روشن دماغ صاحب فہم انسان کی حیثیت سے جو کچھ کرتے ہیں لوگوں کا اعتماد حاصل کر کے ہی کرتے ہیں اور جو چیز انہوں نے بنائی ہے اس میں ترمیم و تصرف کے خلاف نہیں ہیں۔ اگر لوگ واقعی یہ چاہتے ہیں کہ اس میں تغیر و تبدل کیا جائے حالات ان کا تقاضا کریں اور کوائف و مصالح ان کو جائز قرار دیں۔

ترقی کے جو مدارج اب تک طے ہو چکے ہیں، ان سے ایک دیانت دار مبصر کے دل میں کوئی شک باقی نہیں رہتا کہ وہ دن دور نہیں جب پاکستان دنیا کے تمام جمہوریت پسندوں کے لئے ایک مثالی مقام بن جائے گا اور جب ہمارے صدر دنیا کے نامور دستور سازوں اور مقننوں میں شمار ہوں گے۔

یکبابی تمثیلچہ:

جھلمِلی

قاضی نذرالاسلام

مترجمہ: افسر ماہ پوری

کردار:

مرزا: گاؤں کا رئیس
حلیمہ بیگم: مرزا صاحب کی بیوی
فیروزہ: مرزا صاحب کی سولہ سالہ لڑکی
حبیب: ایک حسین و شکیل نوجوان
مرزا صاحب کا پڑوسی

ڈاکٹر

پہلا منظر

(مرزا صاحب کی دو منزلہ کوٹھی۔ بالائی منزل پر ایک کمرہ۔ مرزا صاحب کی سولہ سالہ لڑکی بستر علالت پر بے سدھ پڑی ہے۔ تمام کھڑکیاں بند ہیں، البتہ پچھم کی طرف کا دروازہ کھلا ہے۔ باہر بارش ہو رہی ہے۔ مرزا صاحب کی بیوی حلیمہ بیگم پلنگ سے لگی بیٹھی ہے اور فیروزہ پنکھا جھل رہی ہے۔ دن ختم ہو چلا ہے مطلع ابر آلود ہونے کی وجہ سے کمرے کا اندھیرا لمحہ بہ لمحہ گہرا ہوتا جاتا ہے۔ حلیمہ بیگم اٹھتی ہے اور لالٹین جلا دیتی ہے)

فیروزہ: امی!

حلیمہ بیگم: (دوڑ کر پلٹتی ہے اور پیار سے اپنے چہرہ کو فیروزہ کے چہرے سے ملا کر بولتی ہے) میری بیٹی، میری زندگی!

فیروزہ: بتی بجھا دو۔

حلیمہ بیگم: کیوں بیٹی؟ کتنا اندھیرا ہو گیا ہے، ڈر نہیں لگے گا تجھے؟

فیروزہ: اوں، ہوں، نہیں۔ تم مجھے گود میں لے کر بیٹھو ذرا اماں سے لپٹ جاتی ہے) بتی بہت بری لگتی ہے، امی!

حلیمہ بیگم: وہ تو گیگی، لاڈو، (ٹھنڈی سانس لیتی ہے) اچھا میں کاغذ سے آڑ کئے دیتی ہوں، کیوں، ٹھیک ہے نا؟

فیروزہ: نہیں امی، بجھا ہی دو (نحیف آواز سے چیخ اٹھتی ہے) بجھا دو فوراً!

حلیمہ بیگم: خدا کے لئے روؤ نہیں۔ لے ابھی بجھائے دیتی ہوں (بتی بجھانے جاتی ہے کہ بہت سے برساتی پتنگے آ کر بتی کے گرد ناچنے لگتے ہیں۔ فیروزہ انہیں گھور گھور کر دیکھنے لگتی ہے)

فیروزہ: نہ بجھاؤ امی، پروانے کتنے اچھے لگتے ہیں ذرا مجھے دیکھنے دو۔

حلیمہ بیگم: (مسکراتی ہوئی لوٹتی ہے) پگلی ہو گئی ہے تو، اچھا نہیں بجھاؤں گی لیکن بیٹی، پتنگے بدن پر، چہرے پر گر جائیں گے۔ ذرا بتی ہٹا کر رکھ دوں۔

فیروزہ: (چیخنے لگتی ہے) میں کہہ چکی ہوں کہ پتنگوں کو دیکھوں گی!

حلیمہ بیگم: (بچی کو چوم لیتی ہے) میری بنو، اس قدر چیخ چیخ کر نہ بولو، اس سے مرض اور بڑھ جائے گا۔ میں بتی نہیں ہٹاتی۔

فیروزہ: (ٹکٹکی باندھے پتنگوں کو دیکھتی رہتی ہے) امی، ایک پتنگا پکڑ کر مجھے دو تو —!

حلیمہ بیگم: چھی! بیٹی، پتنگے نہیں چھوتے۔ تجھے آج کیا ہو گیا ہے فیروزہ؟

فیروزہ: (روہانسی ہو کر) لاؤ، نہیں تو میں چیخ چیخ کر آسمان سر پر اٹھا لوں گی۔

حلیمہ بیگم: نہیں بیٹی نہیں، چیخنے کی ضرورت نہیں (ایک پتنگا پکڑ کر فیروزہ کے ہاتھ میں دے دیتی ہے۔ وہ پتنگے کو الٹ پلٹ کر غور سے دیکھتی ہے)

فیروزہ: یہ لو، اس کا تو ایک پر ٹوٹ ہی گیا.... آہ، ہا....

اچھا امی، پتنگے کو تو بہت دکھ ہوا ہوگا؟

حلیمہ بیگم :۔ کیوں نہیں۔

فیروزہ :۔ تب تو امی اسے چھوڑے دیتی ہوں۔ امی، تم اسے نیچے رکھ دو (حلیمہ بیگم پتنگے کو نیچے رکھ دیتی ہے) امی، باہر بہت پانی برس رہا ہے نا؟

حلیمہ بیگم : ہاں بیٹی بہت زور سے برس رہا ہے۔ جھم جھم سنائی نہیں دیتی؟

فیروزہ : مجھے تو جھم جھم کی آواز بڑی بھلی لگتی ہے، امی،...... ابا کہاں ہیں؟

حلیمہ بیگم : دہلیز میں ہیں شاید

فیروزہ : اچھا، اگر خوب چیخ چیخ کر روؤں تو وہ سن پائیں گے؟

حلیمہ بیگم : چپ بیٹی پھر رونے کی رٹ، انہیں بلا دوں!

فیروزہ :۔ نہیں، نہیں امی، میری امی کتنی اچھی ہیں۔ اچھا امی، اگر تم ابھی گاؤ تو ابا سن لیں گے؟

حلیمہ بیگم : بڑی پاجی ہے تو۔ تیرا مطلب میں سمجھ گئی۔ یہ گانے کا وقت ہے! ترے ابا سنیں گے تو ضرور خفا ہونگے۔

فیروزہ : اتنی بارش میں وہ سن پائیں گے، امی، میری اچھی امی ذرا آہستہ آہستہ گا دو، وہی برسات کا نغمہ۔

حلیمہ بیگم : اچھا گا دیتی ہوں دھیرے دھیرے، اب کیا گانا آتا ہے۔ بچپن میں وہ گیت گاتی تھی۔ پھر یہاں آئی تو اسے بھلانے ہی کی کوشش کرنی پڑی۔ جانتی ہو، گانے سے تمہارے ابا کتنا چڑتے ہیں۔

فیروزہ :۔ گانا سنکر کوئی چڑ بھی سکتا ہے؟ ابا بھی عجب آدمی ہیں......

حلیمہ بیگم : پہلے تو ناراض نہ ہوتے تھے، خیر اب تو میں گانا بھول چکی ہوں۔ ایک آدھ گیت تیری وجہ سے یاد رہ گیا ہے۔

فیروزہ : پہلے ابا گانے سے ناراض نہ ہوتے تھے؟

حلیمہ بیگم : نہیں، لو، اب گائے دیتی ہوں۔

کہرا، مہیب سا دن جھم جھم برس رہا ہے
آنگن میں ہوں اکیلی، دل کیوں امنڈ رہا ہے
یہ تیرگی سی کیسی پیڑوں پہ چھا رہی ہے
موجِ ہوا یہ کیسی شاخوں میں گا رہی ہے

اس تیرگی میں آخر پھرتی ہوں کیوں پریشاں
ہوں کس کی جستجو میں، کس چیز کی ہوں خواہاں
بیدوں کی جھاڑیوں میں تھک کر وہ موڈھیا
یہ کون بھولا راہی نیچے قدم کے ٹھہرا
یہ مالتی سے گیسوں کے جھٹک گئے ہیں
یہ کس کی انکھڑیوں کے آہو بھٹک گئے ہیں

فیروزہ : امی کھڑکی کھول دو ذرا بادل دیکھوں گی۔

حلیمہ بیگم : نہیں بیٹی کھڑکی نہ کھلیگی۔ سردی لگ جائے گی۔ ایک گیت اور گاتی ہوں، سنو!

فیروزہ : نہیں امی اور گیت نہ سنوں گی۔ کھول دو کھڑکی امی، (حلیمہ بیگم جنوبی رخ کی کھڑکی کھولنے کے لئے جاتی ہے) وہ کھڑکی نہیں امی، پورب والی کھڑکی۔ پورب کی ہوا سے قدم کے پھول کھلتے ہیں نا امی؟

حلیمہ بیگم : وہ کھڑکی کھلی تو تمہارے ابا مجھے جیتا نہ چھوڑیں گے۔ جنوب کی کھڑکی کھول دیتی ہوں۔ (جنوب کی کھڑکی کھول دیتی ہے۔ دور تک جنگل پھیلا ہوا ہے، مگر مینہ کی وجہ سے دھندلکا طاری ہے)

فیروزہ : (ایک لمبی سانس کھینچ کر دوسری کروٹ لے لیتی ہے۔ پھر کچھ دیر کے بعد اسی کروٹ ہی لیٹ جاتی ہے اور یونہی لیٹی لیٹی کھڑکی کی طرف تکتی، اور شاید روتی بھی جاتی ہے) ۔ امی!

حلیمہ بیگم : روتی ہے بیٹی!

فیروزہ : اچھی امی، ابا تم کو بہت مانتے ہیں؟

حلیمہ بیگم : معلوم نہیں (آنکھیں پونچھتی ہیں)

فیروزہ : پہلے بہت مانتے تھے؟

حلیمہ بیگم : بتی ہٹا کر رکھ دوں، تمہاری آنکھیں نہیں دکھتیں؟

فیروزہ : ہٹا دو امی مگر بتاؤ بھی!

حلیمہ بیگم : (بتی ہٹا دیتی ہے) خدا کے لئے ذرا چپ ہو کر سو جاؤ بک بک کرنے سے بیماری اور بڑھے گی۔

فیروزہ : اچھا بتاؤ نا امی، میں سب سمجھتی ہوں۔ ابا نے کبھی کسی کو چاہا ہی نہیں، ورنہ کوئی آدمی بھی اتنا شکس

ؔ ایک پھولدار پیڑ کا نام

اور خشک ہوتا ہے؟

حلیمہ بیگم: تو چپ نہ رہے گی فیروزہ، ... میری لاڈو، میری جان ہلکان کیوں کرتی ہے؟ ڈاکٹر نے خاموش رہنے کے لئے کہا ہے نا۔

فیروزہ: اچھا امی، کل وہ پورب والی کھڑکی کھولیں گی نا؟ تب تو ابا خفا نہ ہوں گے؟

حلیمہ بیگم: (کانپ جاتی ہے) کیا کہتی ہے فیروزہ! (آنسوؤں کے امنڈنے سے آواز بیٹھ جاتی ہے)

فیروزہ: کل وہ کھڑکی کھولنے کے لئے نہ کہوں گی امی! (تکیہ میں اپنا چہرہ چھپا لیتی ہے)

حلیمہ بیگم: (بت سی بن جاتی ہے۔ پھر روہانسی ہو جاتی ہے) سمجھی ابھاگن، تیری بات سمجھی۔ تو ہمیں جلا بھنا کر جائے گی۔ لو میں ابھی پورب کی کھڑکی کھول دیتی ہوں (پورب کی کھڑکی کھلتی ہے تو سامنے والے گھر کی کھڑکی دھندلکے میں جھلکنے لگتی ہے اندر کھڑکی کے سامنے کوئی بے تابی سے ٹہلتا نظر آتا ہے۔ دوری کی وجہ سے وہ سایہ سا دکھائی دیتا ہے۔ پھر وہ سایہ کھڑکی میں خاموشی سے کھڑا ہو جاتا ہے۔ ایسا لگتا ہے جیسے فیروزہ کی کھڑکی کی طرف گھور رہا ہے حلیمہ بیگم آڑ کر کے ساری کے پلو سے اپنی آنکھیں صاف کرنے لگتی ہے)

فیروزہ: (بے تابانہ اس کھڑکی کی طرف دیکھتی ہے) امی، بانسری نہیں بجتی؟ .... کوئی رو رہا ہے شاید، (تڑپ کر) باہر کوئی رو رہا ہے امی .... امی، سنو امی!

حلیمہ بیگم: کوئی نہیں روتا بیٹی، کوئی نہیں ... مینہ کا شور ہے ...... اوں ہوں، نہیں .... شاید حبیب گا رہا ہے سر دیپ بجا کر ....

فیروزہ: آہ .... بارش تھم جاتی تو کچھ سن ہی لیتی۔ بارش تھم گئی ہے نا، امی!

حلیمہ بیگم: ہاں بیٹی، اب تھم چلی ہے۔

فیروزہ: امی، ... امی، گیت سنو گیت؟ ..... آہ .... ذرا بھی شور نہ ہو۔ امی چپ چاپ سنو!

(کھڑکی میں سے گیت کی مدھر لہریں داخل ہونے لگتی ہیں)

دل کے سمجھانے سے آنکھیں اور بھی ہوتی ہیں تر
دور جاؤں کس طرح، رکھتے ہیں مجھ کو باندھ کر
خواب برہم ہو گیا، شام جدائی آ گئی
پاؤں میں کس کی لٹوں کی دفعتہً بیڑی پڑی
کس کا چہرہ دیکھ کر مہتاب کا آیا خیال
اشک سے بھیگی زمیں پر، پاؤں رکھنا ہے محال
موت کی جانب اگر جاؤں تو ہل جاتا ہے وہ
ظلمت شب میں مجھے رہ رہ کے تڑپاتا ہے وہ
دل کے سمجھانے سے ....

(گیت کے ختم ہونے پر سامنے والی کھڑکی میں روشنی چمک اٹھتی ہے اور اس روشنی میں ایک خوبصورت نوجوان نظر آتا ہے۔ وہ ٹکٹکی باندھے فیروزہ کی کھڑکی کی طرف دیکھ رہا ہے)

فیروزہ: امی ذرا بتی اور تیز کر دو تاکہ اس کھڑکی سے میں اچھی طرح دیکھی جا سکوں (باہر کسی کے پاؤں کی آہٹ سنائی دیتی ہے)

حلیمہ بیگم: ارے فیروزہ بند کر دے پورب کی کھڑکی کو، بند کر .... تیرے ابا آ رہے ہیں (مرزا صاحب کے کمرے میں داخل ہوتے ہی ہوا کے ایک تیز جھونکے سے بتی گل ہو جاتی ہے اور حلیمہ بیگم اسے دوبارہ جلاتی ہے)

مرزا: کھڑکی بند کرنے کی اب کوئی ضرورت نہیں۔ میں بہت دیر سے تم لوگوں کی کارستانیاں دیکھ رہا ہوں۔ صاف صاف سن لو، تمہارا جو جی چاہے کرو، مگر میری آنکھوں میں دھول جھونکنے کی کوشش ہرگز نہ کرنا (حلیمہ بیگم پر سکتہ طاری ہے) اور اس مردود لڑکے سے میں کیا کہوں ــــ جی چاہتا ہے کہ کچے بید کی قمچیوں سے پاؤں سے لیکر سر تک .... (غصہ سے دانت پیستا ہے) دن رات گانا، دن رات گیت، دن رات بانسری، دن رات سر دیپ .... شور غل

قرآن تلاوت کرنا اور نماز پڑھنا تک دوبھر ہو گیا ہے۔
.... بدمعاش، پاجی کہیں کا..... ہوں! یہ نکما
بی۔اے پاس کرنے کا خواب دیکھتا ہے۔ وہ تو فیل
ہے ہی۔ پھر میں اس اکرم خاں نے اپنی بیٹی کی شادی
کردوں، ..... یہ منہ اور مسور کی دال!

حلیمہ بیگم: دیکھو، میں تمہارے ہاتھ جوڑتی ہوں، ذرا آہستہ بولو،
آج نہ جانے وہ کیا کیا باتیں کئے جا رہی ہے۔

مرزا: (پوربی کھڑکی بند کرتے ہوئے) ہوں! یوں کھڑکی
کھول کر کوئی بھی لڑکی گھورتی رہے گی تو وہ بیمار
نہ ہو گی تو کیا اچھی رہے گی؟ دیکھو، فیروزہ کی ماں
تمہیں نے اس کا دماغ خراب کر رکھا ہے.....
اس بڑھاپے میں بھی تمہارے گانے کی لت نہ گئی
..... خدا جانے وہ کونسی منحوس گھڑی تھی کہ میں نے
ایک اسکول کی پڑھی لکھی لڑکی سے بیاہ کیا اور اس
عذاب میں مبتلا ہو گیا۔ ... کتنی بڑی بھول ہوئی میری!

حلیمہ بیگم: ... یہ بھول نہ ہوتی تو ہم دونوں اچھے ہی رہتے۔
مجھے بھی یقین نہیں آتا کہ ایک گریجویٹ کٹر پن سے
ہار منوا سکتا ہے۔

مرزا: جو چیزیں منع ہیں، ان سے پرہیز کرنا تمہارے نزدیک
کٹر پن ہے۔ یہ طعنہ تو میں بہت دفعہ سن چکا ہوں
حلیمہ! کوئی نئی بات ہے تو کہو۔

حلیمہ بیگم: ہے تو ضرور، مگر چکنے گھڑے پر کہیں بوند ٹھہرتی
ہے۔ تم برابر گیت گانے کا طعنہ دیتے ہو، مگر شاید
تم کو یاد نہ رہا کہ میرے گانے ہی کی وجہ سے تم
مجھ سے بیاہ کرنے پر ادھار کھائے بیٹھے تھے۔

مرزا: بھولا نہیں ہوں، لیکن اس وقت مجھے معلوم
نہ تھا کہ تمہارا گانا صرف آنکھوں کا آنسو اور
دل کا درد ہی بن سکتا ہے۔ گانا برا ہے، اس کی
حقیقت مجھ سے زیادہ شاید ہی کوئی اور سمجھے۔
گانا یونہی منع نہیں ہے۔

حلیمہ بیگم: خیر، بحث، مباحثہ کا یہ موقع نہیں۔ خدا کے لئے
اسے تو سکون سے مرنے دو!

مرزا: خیر یہ تو ٹھیک ہے کہ میری ذات سے تمہیں سکون
نصیب نہ ہوا۔ میری خشک و بے کیف زندگی تم
لوگوں کے لئے ہنسی خوشی کے پھول نہ کھلا سکی
صرف کانٹے اگاتی رہی ہے، لیکن مرنے پر بھی میری
وجہ سے سکون نہ ہو گا۔ اتنی بڑی گالی دینے کی
چنداں ضرورت بھی نہ تھی (حلیمہ بیگم حیرت زدہ سی
ہو جاتی ہے۔ فیروزہ کروٹ بدل کر آنسو پونچھتی
ہے اور پھر باپ کی طرف غور سے دیکھنے لگتی ہے
مرزا بے چینی سے ادھر اُدھر ٹہلتے ہیں)

فیروزہ: ابا، ذرا میرے پاس آکر بیٹھئے...

مرزا: (چونک اٹھتا ہے) حلیمہ، ذرا فیروزہ کو سنبھالو، میں ڈاکٹر کو
بلا لاتا ہوں۔

فیروزہ: اُہ... ہا... دیکھتے نہیں، کیسی طوفانی بارش ہو رہی ہے
آپ نہ جایئے — میں دوا نہیں کھاؤں گی..... میرے
پاس آکر بیٹھئے.... اپنی بیٹی کے پاس۔

مرزا: (جز بز ہو کر) مگر میرے رہنے سے تو تمہارا مرض اور
بڑھ جائے گا۔

فیروزہ: آج اور نہ بڑھے گا۔ آیئے، ابا آیئے۔ (مرزا سرہانے
بیٹھ کر فیروزہ کی پیشانی پر آہستہ آہستہ ہاتھ پھیرنے
لگتا ہے) ابا — میں خوب چلا چلا کر باتیں کروں تو
آپ ناراض تو نہ ہوں گے؟

مرزا: بولو، بیٹی بولو، ضرور بولو!

فیروزہ: آپ پورب کی کھڑکی کھولنے کیوں نہیں دیتے؟

مرزا: (دفعتہً بھڑک اٹھتا ہے) وہ مردود — پاجی، بدمعاش
بندر! — لیکن بیٹی، تو اچھی تو ہو۔ اگر وہ اس بار
بی۔ اے۔ پاس کرلے تو موتیوں کا یہ ہار اس کے
گلے میں ضرور ڈال دوں گا، یہ میں پہلے بھی کہہ چکا
ہوں۔

فیروزہ: لیکن ابا، میں اچھی ہونے سے رہی۔

مرزا: (کانپ جاتا ہے) نہیں بیٹی، میری بنو ضرور اچھی

ہو جائے گی۔ ابھی ڈاکٹر کو لے آتا ہوں۔

فیروزہ: اوں ہوں، — کبھی اچھی نہ ہو سکوں گی — اچھا ابا، اسے اس گھر میں آنے کیوں نہیں دیتے؟

(دفعتہً مرزا بستر سے اٹھ بیٹھتا ہے اور چلّاتا ہے) میں اس کا خون کر ڈالوں گا — شیطان نے میری بچی کو مار ڈالا ہے۔

[اسی اثنا میں باہر دروازہ پر دستک ہوتی ہے]

حبیب: میں آ گیا — میرا خون کر ڈالئے — امی، دروازہ کھولو، دروازہ.....

مرزا: خبردار جو کسی نے دروازہ کھولا — بھاگ یہاں سے مردود، پاجی!

حبیب: امتحان کے نتیجے شائع ہو گئے ہیں!

مرزا: تو نے پاس کیا ہے؟

حبیب: معلوم نہیں — تار بھیجا ہے۔ خبر آ ہی رہی ہوگی۔

مرزا: جھوٹا مکّار! پہلے خبر آ جائے تو پھر آنا۔ ابھی دور رہو یہاں سے۔ فیروزہ کی بیماری اور خطرناک ہو جائے گی۔

حبیب: جی، آپ میرا خون کریں گے نا — مجھے قتل کر دیجئے، مگر دروازہ کھولئے۔

حلیمہ بیگم: آنے بھی دو — تم پر تو ہر وقت جلال چڑھا رہتا ہے۔

مرزا: تم چپ رہو — اس کی شرارت تم کیا سمجھو۔ ہو نہ ہو پولیس ساتھ لے کر آیا ہوگا۔ مجھ سے کہلوانا چاہتا ہے کہ، میں اس کا خون کرنا چاہتا ہوں — سن لے کان کھول کر! میں نے تیرے خون کرنے کی دھمکی کبھی نہیں دی۔ تو بھلا مانس ہے تو چپ چاپ اپنے گھر لوٹ جا...

فیروزہ: اپنی رسوائی کے کیوں درپے ہو! تم جاؤ — جاؤ خدا کے لئے — مجھے تم مل گئے ہو۔

حبیب: میں تمہیں مل گیا ہوں!

فیروزہ: ہاں میں نے تمہیں پا لیا ہے۔

حبیب: لیکن میں نے تو کچھ نہیں پایا۔

فیروزہ: کل پا جاؤ گے — میں آج تمہاری ہی راہ سے ہو کر گزروں گی — پورب کی کھڑکی کی طرف سے — تم اپنی کھڑکی کی جھلملی کھلی رکھنا!

حبیب: لیکن تمہارے گھر کی کھڑکی تو بند ہے

فیروزہ: میں جاؤں گی تو وہ خود بخود کھل جائے گی۔

حبیب: تو پھر میں چلا...

فیروزہ: جاؤ — مگر میرے گھر کی کھڑکی پہ جو جھلملی ہے اس کے نیچے وہی الوداعی گیت ایک بار پھر سناتے جاؤ...

حبیب: (گاتا ہے۔ آہستہ آہستہ اس کی آواز فضا میں ڈوب جاتی ہے۔)

ہوئی میری الفت کی مالا فسردہ
چلی جا رہی ہوں کہاں آبدیدہ
کسے ڈھونڈتی ندی کے کنارے
بتاؤ، کہاں نقش پا ہیں تمہارے
خدا جانے، مجھ کو یہ کیا ہو گیا ہے
میرا درد مالا میں گوندھا ہوا ہے
درختوں سے جو پتیاں ٹوٹتی ہیں
"نہیں ہے یہاں اب کوئی" بولتی ہیں
جو برھا کی اگنی ہے تاروں میں روشن
اسی آگ سے میں بھی ہو جاؤں کندن
پکاروں میں اِس پار سے تم کو پیہم
صدا دو تم اُس پار سے "آ گئے ہم"

فیروزہ: امی، امی، میرا دل بیٹھا جاتا ہے۔ ذرا مجھے سنبھال کر بٹھایئے — ابا آپ جایئے، خدا کے لئے جایئے... امی اتنی ساری بتیاں کہاں سے جل اٹھیں! —

(غش آ جاتا ہے)

حلیمہ بیگم: کچھ سنتے ہیں آپ! — جلدی کیجئے ذرا ڈاکٹر کو بلا لایئے۔ میں آپ کے قدم چھوتی ہوں — میری بیٹی، میری گڑیا، میری فیروزہ!

مرزا: فیروزہ بیٹی لوٹ آ بیٹی، ہوش میں آ جا — میں طبیب کو بلانے جاتا ہوں۔ (جلدی سے باہر نکل جاتا ہے)

(دوسرا منظر)

[عالم خواب۔ ساتویں تاریخ کی کشتیٔ ہلال پر حبیب اور فیروزہ آس پاس بیٹھے نظر آتے ہیں۔ کشتیٔ ہلال سے ابر سفید کا پردہ بندھا ہوا ہے۔ ایک سرخاب کشتی ہلال کو فضائے ملکوتی میں ہولے ہولے کھینچ رہا ہے۔ چکور اور چکوریوں کے پرے منڈلا رہے ہیں۔ سارے آسمان پر چنبیلی کے سفید سفید پھول کھل اٹھے ہیں۔ دور سے حبیب کے چہرے پر مور پنکھی روشنی ناچ رہی ہے۔]

فیروزہ: ہم کہاں ہیں حبیب؟

حبیب: (ہنستے ہوئے) لاحول ولا! — یہاں کسی کو نام لے کر نہیں پکارتے۔ یہاں جو آتا ہے، وہ اپنا نام نشان چھوڑ کر آتا ہے۔ سمت و جہت سے بے نیاز ہو کر آتا ہے۔ یہاں نہ تو کوئی حبیب آسکتا ہے نہ کوئی فیروزہ۔

فیروزہ: یہاں ہم جو آئے ہیں۔

حبیب: ذرا اس چاندنی کی آرسی میں اپنا چہرہ غور سے دیکھو!

فیروزہ: (ہکا بکا ہو کر) یہ کیا ہوا؟ میرا چہرہ تو پہچانا نہیں جاتا ہیں کون ہوں؟

حبیب: (ہنستا ہے) تم کیا نظر آتی ہو؟

فیروزہ: میرے چہرے میں بہت ساری صورتیں دکھائی دیتی ہیں، جیسے شکنتلا، مالویکا کی صورت، مہاشتا' جیسے لیلیٰ کی صورت — جیسے شیریں کی صورت۔

حبیب: بالکل ٹھیک ہے، تمہارے چہرے میں آج دنیا کی تمام برہا کی ماری عورتیں جمع ہو گئی ہیں — یہاں جو آتا ہے، وہ حبیب ہو کر آتا ہے یا "محبوب" بن کر۔ اس دنیا میں مرد یا عورت نام کی کوئی چیز نہیں ہوتی، کوئی پہچان نہیں۔ یہاں کی پہچان "حبیب" ہے یا "محبوب"۔ یہاں ہر شخص یوں ہی پکارا جاتا ہے۔ (فیروزہ شرم سے مہک اٹھتی ہے۔ چاند کے چاروں طرف دھنک کے ساتوں آسمان پر دفعتہً پھیل جاتے ہیں)

فیروزہ: چپ، چکور، چکوریاں نہ سن لیں۔

حبیب: سننے دو۔ اس دنیا میں ہم نے محبت کی جو باتیں سرگوشیوں میں کی تھیں، وہ یہاں پہنچ کر تہلکہ بن گئی ہیں۔ دیکھتی نہیں ہو، اس بساطِ نیلگوں پر یہ جو ان گنت تارے نمودار ہیں، یہ جو چکور، چکوریاں تاوے کاٹ رہی ہیں، انہی سرگوشیوں کو سننے کے لئے تو بے تاب ہیں۔

فیروزہ: یہ کون سا دیس ہے، محبوب، (چاند ڈولنے لگتا ہے)

حبیب: دیکھا، چاند کیسے جھکولے کھا رہا ہے۔ تمہارے محبوب کہنے سے۔ اس لفظ سے اس پر رعشہ سا طاری ہو گیا ہے۔ یہ عالم خواب ہے۔

فیروزہ: یہ عالم خواب ہے! خواب تو ٹوٹ جائے گا۔ پھر میں تم سے بچھڑ جاؤں گی؟

حبیب: بچھڑ بھی سکتی ہو اور نہیں بھی۔ میں ٹھیک ٹھیک کچھ نہیں بتا سکتا۔ البتہ یہ عالمِ خواب عارضی ہے۔ اسی لئے یہ اس قدر دلکش ہے، نہیں نہیں یہ عالم خواب لازوال ہے، یہ ارمانوں کی حسین و جمیل دنیا ہے، اسے موت کا سایہ چھو بھی نہیں سکتا۔ اس کی کوئی انتہا نہیں۔ نہ حد اس کے پیچھے نہ حد سامنے۔

فیروزہ: تو دل میں وسوسہ سا کیوں پیدا ہوتا ہے؟ یہ خواب ابھی پریشان ہو جائے گا، اسی لئے تو؟

حبیب: یہ ختم ہو جانے کا ڈر، یہ گم ہو جانے کا اندیشہ، اسی لئے یہ دنیا اتنی من موہنی اور مدھر ہے، اسی لئے تو ہم ایک دوسرے کو مضبوطی سے پکڑے ہوئے ہیں۔ پلک جھپکتے ہی یہ خواب درہم برہم ہو جائے گا، اسی لئے تو ہم پلک جھپکائے بغیر ایک دوسرے کو تکتے ہیں۔ گم ہونے کے خوف ہی سے تو یہ ستارے، سیارے، چاند اور سورج باہم مربوط ہو کر رقص کرتے ہیں۔ وہ اپنی آنکھیں بند نہیں کرتے۔

فیروزہ: تو کیا یہ بہشت ہے؟

حبیب: ہاں، یہی بہشت ہے

فیروزہ: تو پھر دوسرے بہشتی لوگ کہاں ہیں؟ — شیریں، لیلیٰ، زلیخا — فرہاد، مجنوں —

حبیب: ذرا میرے چہرے کی طرف غور سے دیکھو۔

فیروزہ: (ڈر کر حبیب سے لپٹ جاتی ہے) ارے یہ کیا! تمہارا چہرہ تو پہچانا بھی نہیں جاتا۔ اس میں وہ تمام مرد نظر آرہے ہیں جو ازل سے گریہ کناں ہیں۔

حبیب: (ہنس کر اور فیروزہ کی پیشانی کو انگلی سے چھوتے ہوئے) ڈرنے کی کوئی بات نہیں جانم! ایک مرتبہ پھر میرے چہرے کو دیکھو۔ تم جس کو دیکھنا چاہو گی وہی نظر آئے گا۔

فیروزہ: (غور سے دیکھتی اور اطمینان کا سانس لیتی ہے) اچھا، مگر بہشت کے حور و غلمان کہاں ہیں؟

حبیب: وہ بھی سب یہیں ہیں۔ تم دل میں خیال کرو گی تو فوراً سامنے آجائیں گے۔ یہاں ہر کام نیت سے ہوتا ہے۔

فیروزہ: وہ سب ہمارے ہی اندر ہیں؟

حبیب: ہاں نہیں — اسی بہشت میں — صرف دو۔ مرد، اور عورت — ہم اور تم — ازل سے آمنے سامنے بیٹھے ہیں۔ بغیر پلکیں جھپکائے ہوئے — پلک جھپکنے ہی سے یہ دنیا اوجھل ہو جاتی ہے۔ اگر آنکھ جھپکی تو حسن و سحر کا یہ عالم تباہ ہو جائے گا، گم ہو جائے گا — اور ہم تم —

فیروزہ: (حبیب سے لپٹ جاتی ہے) میرے محبوب!

[چاند ڈوبنے لگتا ہے۔ چکور، چکوریاں تیزی سے محو پرواز ہیں۔ حبیب اور فیروزہ دھیرے دھیرے چاند کے ساتھ ہچکولے کھاتے ہوئے فضائے بسیط میں معدوم ہوتے چلے جاتے ہیں]

تیسرا منظر

[مرزا کی کوٹھی۔ فیروزہ پلنگ پر بے ہوش پڑی ہے۔ کمرے میں ڈاکٹر، حلیمہ بیگم اور مرزا نظر آتے ہیں۔ صبح کے آثار نمودار ہو چکے ہیں۔ آسمان اب تک ابر آلود ہے۔ کسی پرندے کی آواز فضا کا سینہ چاک کرتی ہوئی دور تک چلی جاتی ہے — لالٹین کی روشنی کجلا چلی ہے۔ حلیمہ بیگم بار بار پلو سے اپنی آنکھیں پونچھتی ہے اور فیروزہ کے چہرے کی طرف غمگین نظروں سے دیکھتی ہے۔ مرزا بے قراری میں کبھی ٹہلتا اور کبھی ٹھٹکتا ہے۔ دفعتہً پورب کی کھڑکی پورے طور پر کھول دیتا ہے۔ حبیب کا گھر قبر کی خاموشی میں لپٹا ہوا نظر آتا ہے۔ حبیب کے کمرے کی کھڑکی بند ہے۔ البتہ اس کی جھلملی کھلی ہوئی ہے جھلملی میں سے بجھتے ہوئے چراغ کی زرد، اداس روشنی خشک آنسوؤں کی طرح چمکتی ہے۔ اندر اور کچھ نظر نہیں آتا۔ ڈاکٹر بار بار فیروزہ کی نبض ٹٹولتا ہے۔ آخر میں ڈاکٹر اس کے ہاتھ میں ایک سوئی لگاتا ہے اور خاموشی سے آنکھیں پونچھتا باہر چلا جاتا ہے]

(حلیمہ دفعتہً پچھاڑ کھا کر فیروزہ پر گرتی ہے)

حلیمہ بیگم: بیٹی، میری فیروزہ، واپس آجا، تو واپس آگئی — میری جان، میری روح۔

مرزا: فیروزہ بیٹی، میں اسے ڈھونڈنے جا رہا ہوں — خدایا، اس بار تو مجھے معاف کر دے! میں تیرا منشا سمجھ گیا ہوں۔ حلیمہ، میری بیٹی کو سنبھالے رکھنا۔ میں حبیب کو تلاش کر کے لاتا ہوں۔ (طوفان کی تیزی سے باہر چلا جاتا ہے)

فیروزہ: امی، بہت روشنی ہوتا! وہ کیا! پورب کی کھڑکی کس نے کھولی؟

(حلیمہ بیگم بیٹی کی پیشانی چومتی ہے)

حلیمہ بیگم: تمہارے ابا نے کھولی ہے۔

فیروزہ: ابا کو ذرا بلا دو۔

حلیمہ بیگم: وہ تو حبیب کو لانے گئے ہیں۔ آج تم دونوں کی شادی ہے نا (اداس ہنسی ہنستی ہے)

فیروزہ: (چمکیلی مسکراہٹ کے ساتھ) امی، تم ابا کو بہت چاہتی ہو نا!

حلیمہ بیگم: (ہنستی ہوئی) آج پہلی بار! (منہ پھیر لیتی ہے)

(فیروزہ ماں کا ہاتھ چومتی ہے)

فیروزہ: بدمعاش کہیں کی۔ تب تو سمجھو آپ کی شادی بھی آج ہی ہوئی ہے! تو میں تمہاری کیا ہوئی؟

حلیمہ بیگم: تو ہماری بیٹی ہے، لاڈو ہے، اور کیا!

فیروزہ: (اچانک اٹھ بیٹھتی ہے اور حبیب کی جھلملی کی طرف گھورنے لگتی ہے) امی، — امی، وہ کھڑکی کیوں بند ہے!

حلیمہ بیگم: روٹھا ہوا تھا۔ نہ جانے رات کو کہاں چلا گیا ہے — جائے گا کہاں؟ آتا ہی ہوگا۔ تمہارے ابا اس کے بغیر واپس نہیں آئیں گے۔

فیروزہ: (مرغ بسمل کی طرح بستر پر لوٹنے لگتی ہے) امی، — اب وہ نہ لوٹے گا — میرا خواب سچا ہے۔ اس کے آنسو ڈوبتے ہوئے چاند کی آنکھوں میں تیر رہے ہیں — امی — امی — یہ کیا ہے .... یہ کون گا رہا ہے....

[دور فضا میں حبیب کے گانے کی غم انگیز آواز آتی ہے]

اے میرے محبوب! تو میرے حافظہ کی دوسری طرف جلوہ گر ہے۔
میں تجھے شاید پہچانتی ہوں۔
میں تیرے چاند سے آشنا ہوں، تو میرے ستارے کو جانتا ہے۔
اس جان پہچان کی وجہ سے میں تارہ بن کر جاگتی ہوں اور بار بار چمک کر فضا میں کھو جاتی ہوں۔ میں پلکوں پر نئے چراغ جلائے تیری راہ دیکھ رہی ہوں۔

اے میرے محبوب، اپنی کھڑکی کی جھلملی ہٹا دے۔ جو چراغ بجھتا ہے اسے بجھا دینا ہی اچھا ہے۔
نئے تاروں کے ساتھی پکار رہے ہیں، اے میرے محبوب، میرے دن، میری راتیں وداعی گیت سن کر کیوں روتی ہیں؟

فیروزہ: امی — امی — چاند کے اس پار یہ گیت سنائی دیتا ہے — یہ گیت عالم خواب کا گیت ہے — وداع کا گیت ہے — امی — امی — امی!

حلیمہ بیگم: حبیب، حبیب، — میرے بیٹے، دوڑ کر آجا — تیری فیروزہ کی رخصتی کی گھڑی آچکی ہے — بیٹی، میری بیٹی (تڑپتی اور لوٹتی ہے)

(زوروں سے دروازہ پر دستک ہوتی ہے)

حبیب: مرزا صاحب، دروازہ کھولئے — تار آگیا ہے۔ میں پاس ہوگیا ہوں! — دروازہ کھولئے — (دروازہ پر اتنے زور سے ٹھوکر مارتا ہے کہ وہ ٹوٹ جاتا ہے) — امی، امی، فیروزہ کہاں ہے میں پاس ہوگیا ہوں دیکھو یہ تار، امتیاز کے ساتھ پاس ہوا ہوں۔

حلیمہ بیگم: حبیب، حبیب، دیر ہوگئی بیٹے، فیروزہ کی رخصتی تو ہو بھی چکی!

حبیب: (گلوگیر آواز میں) رخصتی! — ہو چکی!

حلیمہ بیگم: ہو چکی بیٹے، اس پورب کی کھڑکی کی طرف سے — لو اب میں کھڑکی کی جھلملی کھولے دیتی ہوں۔

حبیب: امی — امی، — میں اسے ڈھونڈنے جاتا ہوں۔ اس ڈوبتے ہوئے چاند کی آنکھوں میں اس کا اشارہ صاف لرز رہا ہے — فیروزہ! — فیروزہ!

(جھکڑ کی تیزی سے دوڑ کر نکل جاتا ہے) +

ہماری موسیقی

فنِ نغمہ کی تاریخ۔ اور اس کے فلسفہ پر سیر حاصل نظر

مرتبہ: رفیق خاور

نئے موضوعات کا اضافہ

پاکستانی موسیقی کے موجودہ مسائل

ساز و آہنگ کی دنیا میں مسلمانوں کا عظیم حصہ

مسلمان فنکاروں کے اعجازاتِ موسیقی، تمدن و تاریخ انسانی میں نغمہ و آہنگ نے کیا کردار ادا کیا

چند موضوعات

مشاہیر موسیقی : امیر خسرو، سلطان حسین شرقی، میاں تان سین، شاہ عبداللطیف بھٹائی، تان رس خاں، ہسیت خاں، فیروز خاں

تاریخ موسیقی : موسیقی اور تمدن عالم، موسیقی میں مسلمانوں کا حصہ، پاکستانی موسیقی، ہماری موسیقی کے ساز

پاکستانی موسیقی : مشرقی پاکستان کے لوک گیت، راگ درپن (وارث شاہ)

مسائل موسیقی : تجدید موسیقی، قومی ترانے کی موسیقی اور سرگم، ہماری موسیقی کے مسائل، سُر نویسی۔

چند ممتاز اصحاب قلم

سید عابد علی عابد، جناب شاہد احمد دہلوی، جناب خادم محی الدین، قاضی احمد میاں اختر جوناگڑھی، ڈاکٹر نبی بخش خاں بلوچ، فیروز نظامی، سید بڑے آغا، سجاد سرور نیازی، احمد جی، چھاگلا۔ سید امجد علی، عاصمہ حسین، امین الرحمٰن، رفیق غزنوی اور دام آذوری۔

کتاب میں مختلف سازوں کی آرٹ پیپر پر چھپی ہوئی آٹھ صفحے کی نفیس تصاویر بھی شامل ہیں — کتاب نفیس اردو ٹائپ میں نہایت دیدہ زیب اور خوبصورت سرورق کے ساتھ شائع کی گئی ہے۔

قیمت صرف پانچ روپے

ادارہ مطبوعات پاکستان پوسٹ بکس نمبر ۱۸۳ کراچی

علاقائی ادبیات:

"تن کے سونے شہر میں باہو...!"

سلطان باہوؒ

ترجمہ: سرور مجاز

کیا بغداد کی باتیں باہو کانٹے جس کے کلیاں ہو
میرے تن پر کپڑے جیسے درزی کاٹے لیراں ہو
اِن لیروں کی کفنی پہنوں جاؤں سنگ فقیراں ہو
پھر بغداد کے شہر میں مانگوں بولوں میراں میراں ہو

پڑھ پڑھ علم دکھائے سب کو کیا تیری دانائی ہو
دودھ اگر پھٹ جائے باہو کیا آئے بالائی ہو
سونا ہاتھ میں لیکر باہو ہاتھ نہ بدلے رائی ہو
ٹوٹے دِل جو راضی کرے اس نے منزل پائی ہو

ملّا حافظ کریں تکبّر لوگ بچارے سیدھے ہو
بغلوں میں یہ داب کتابیں چھانیں گلیاں کوچے ہو
دعوت دیکھیں جہاں مرغن وہیں لگائیں ڈیرے ہو
بیچ کمائی کھائیں باہو دو جگ کے ٹھکرائے ہو

پڑھ پڑھ علم کتابوں والا عالم ہو گئے سارے ہو
عشق کا لفظ نہ جانیں باہو لوگ بڑے بے چارے ہو
ایک نگاہ سے عاشق دیکھے لاکھ کروڑ ستارے ہو
لاکھ نگاہ سے دنیا دیکھے دنیا پھر بھی ہارے ہو

علم ہدایت سے خالی ہوں ایسے ہادی جھوٹے ہو
مرد یکرِ حق حاصل ہو تو پھر کیا موت کے کھٹکے ہو
پیر ملے پَر پیڑ نہ جائے ایسے پیر نکمّے ہو
وہ مرشد بھی کیا باہو جو ارشاد نہ بخشے ہو

ب ت پڑھنے والا باہو فاضل ہو گا کیسے ہو
جس نے لفظ حقیقت پایا بخت اسی کے اونچے ہو
نیت افلاک کریں جگ روشن پھر بھی ظلمت ناچے ہو
ہو حق کی قندیل نہیں تو سارے علم ہیں قصّے ہو

تن کے سونے شہر میں باہو دِل ہے ایک محلہ ہو
ہُو نے دل میں بس کر میری کی ہے خوب تسلّی ہو
سب کچھ میں سنتا ہوں باہو ایک سوائے اللہ ہو
بے دردوں کی دنیا باہو بھیڑ دل کا ہے گلہ ہو

جیتے جی مر رہنا ہو تو سنگ فقیراں رہیئے ہو
گر کوئی گالی طعنہ دے تو اس کو جی جی کہیئے ہو
کوڑا کرکٹ پھینکے کوئی کوڑا بن کر رہیئے ہو
یار کی خاطر اس دنیا میں سب کچھ باہو سہیئے ہو

★

سکافی :

سانول

خواجہ غلام فریدؒ بہاولپوری
مترجمہ : حشمت فضلی

او سانوریا جلدی آجا منوا تجھے بلائے
چاردِنا کی چاندنی جوبن یونہی بیت نہ جائے

رم جھم رم جھم کرتے بادل تیری یاد دلائیں
دن برہا کے کیسے کاٹوں نیناں جل برسائیں
یہ رم جھم کا موسم ساجن تجھ بن مجھے نہ بھائے
او سانوریا جلدی آجا منوا تجھے بلائے

مل جل کاٹیں جیون آجا پریت نبھائیں سانول
ایسا نہ ہو مر جاؤں تجھ بن جیسے مر گئی مومل
جیون جوت بجھے پھر رانجھا آئے تو کیا آئے
او سانوریا جلدی آجا منوا تجھے بلائے

چھوڑ کے اجڑے "تھل" کو آجا "ماڑ" کریں آباد
من کو چاہ ملن کی تیرے، کر دے اس کو شاد
ساون، ساوَن، سوَمل، راج کو تیاگوں تو جو مجھے مل جائے
او سانوریا جلدی آجا منوا تجھے بلائے

تیری کارن پلک پلک پر میں نے دیپ جلائے
چنچل چال سے درشن کو میں ترس رہی ہوں ہائے
ساجن تیری راہیں تکتی ہوں میں نین بچھائے
او سانوریا جلدی آجا منوا تجھے بلائے

جادوگر ہیں تیرے چنچل شوخ، کٹیلے نین
گھنگھر والے بال ہیں ظالم من کو کریں بے چین
مکھڑا ایسا سندر جس کو دیکھ کے من للچائے
او سانوریا جلدی آجا منوا تجھے بلائے

او کوئلیا کوک نہ اتنی تڑپے مورا منوا
میں جل جل کر راکھ بھئی ہوں یاد آئے ساجنوا
ہے پردیس میں مورا پریتم کیوں مجھ کو تڑپائے
او سانوریا جلدی آجا منوا تجھے بلائے

تجھ سے پریت لگا کر پائی اشکوں کی سوغات
پریم بہت مشکل تھا لیکن پھر بھی نبھایا سات
پریم کی گتھی ہم سے نہ سلجھی ہم نے کشٹ اٹھائے
او سانوریا جلدی آجا منوا تجھے بلائے

چلتے چلتے ہار گئی ہوں ٹوٹے ہاتھ اور پاؤں
راہ کٹھن ہے، دور ہے منزل کیسے تجھ تک آؤں
تیرا پریم ہی سب کچھ میرا، کپڑے، زیور، چھلّے
او سانوریا جلدی آجا منوا تجھے بلائے

اچھی بری جیسی بھی ہوں میں پر ہوں ساجن تیری
مرنا جینا تیرے لئے ہے سُدھ بدھ لے اب میری
کون فرید کو تیرے بن اب آ کر گلے لگائے
او سانوریا جلدی آجا منوا تجھے بلائے

او سانوریا جلدی آجا منوا تجھے بلائے
چار دنا کی چاندنی جوبن یونہی بیت نہ جائے

اُترا ترے کنارے ...

(وادیٔ سندھ میں عربوں کی آمد)*

عبدالرشید خان

اسلام کی فتوحات کے ساتھ مسلمانوں میں ذوقِ سفر کو بھی ترقی ہوئی اور اُن کی مُہم جُو طبیعت نے بھی ان کا بڑا ساتھ دیا۔ ماضی میں بہت سی قومیں پانی سے ڈرتی تھیں، بہتوں کے نزدیک سمندر پار جانا پاپ تھا، مگر مسلمانوں نے بحرِ ظلمات تک میں اپنے گھوڑے دوڑا دیئے تھے اور جس سرزمین پر پہنچ جاتے تھے اپنے پیچھے کشتیاں جلا ڈالتے تھے۔ اس کی وجہ ان کی ہمت عالی تو تھی ہی مگر ایک فرمان خداوندی بھی تھا — سیروا فی الارض۔ مسلمانوں نے لفظاً و معناً اس پر عمل کیا اور دنیا کو دیکھنے، جاننے اور دریافت نو کے مرحلے سر کرنے میں وہ حیرت انگیز مدارج تک پہنچ گئے حالانکہ سفر کی صعوبتیں اور دشواریاں، جو ان کو پیش آتی تھیں وہ اس قدر ہمت شکن تھیں کہ دنیا میں قوم قوم اس طرح کی جرأت کرنے میں ناکام رہی تھی۔ مسلمانوں نے تجارت و سیاست، حکومت و سَروری کے ڈانڈے علم و حکمت سے ملا رکھے تھے اور ان دونوں میدانوں میں ان کا ترقی پسند قدم آگے ہی بڑھتا جاتا تھا۔ آج ان کے سفری کارناموں کی داستان سنو اور تاریخ و جغرافیہ کے میدانوں میں ان کی علمی و تحقیقی کاموں کی کہانی کو دہراؤ تو عقل دنگ رہ جاتی ہے، جوں جوں حکومت کی حدیں آگے بڑھیں، دور و نزدیک کے ہمسایوں سے پہچان بھی بڑھی۔ پڑوسی ممالک کے حالات جاننے کے لئے لوگ پھیلتے ہی چلے گئے۔ کسی کو علمی جستجو تھی، کسی کو نوادر کا شوق، کسی کو عقائد و لباس و اطوارِ زیست جاننے کی دُھن تھی تو کسی کو نباتات جمع کرنے کا ذوق۔ حج نے مسلمانوں کو ہر سال ایک مرکزی مقام پر جمع ہونے کا حکم دیا تھا، اس کی عملی حکمت اب روشن ہو رہی تھی۔ فرمانِ نبویؐ یہ تھا کہ علم کی تلاش میں جاؤ اگرچہ وہ دُور چین ہی میں کیوں نہ ہو۔ مسلمانوں نے ان باتوں کو گرہ میں باندھا اور عمل کے ذریعے دین و دنیا کی دولتوں کے دروازے اپنے اوپر کھول دیئے۔ مسلمان سیاحوں کو لوازمات سفر کی بھی چنداں ضرورت نہ پیش آتی تھی۔ ان کے ٹھہرنے کے لئے مساجد موجود تھیں اور حکمرانوں نے جابجا سرائیں بھی بنا دی تھیں۔

مسلمانوں کی حکومت کا پرچم اگر ایک طرف اطلانتک کے ساحلوں سے الگ تھلگ چین تک لہرا رہا تھا تو دوسری طرف بحیرۂ کیسپین سے سندھ تک مسلمان پہنچ چکے تھے۔ ساتویں صدی سے چودھویں صدی تک مسلمان تجارت، حکومت اور سیاحت کے میدانوں میں آگے ہی بڑھتے چلے گئے۔ علم و حکمت اور تحقیق و ثقافت کی حدود بھی ان کی جولانگاہیں تھیں۔ تاریخ و جغرافیہ، ہیئت و نقشہ سازی، مصنوعات و نوادر — غرض علم اشیا کی جہانبانی میں مسلمان اُس وقت کی تمام اقوام عالم سے بڑھ چکے تھے کیونکہ علم و دانش کے پرانے سوتے اس وقت ہر جگہ سوکھ چکے تھے۔ "سلسلۃ التواریخ"، ابوزید کے حواشی، "کتاب المسالیک"، "کتاب البلدان"، "مروج الذہب" اور یعقوبی، قزوینی، ابوالفدا کی تالیفات کی اہمیت سے آج کون علم دوست منکر ہو سکتا ہے۔

اگر ہم اس برصغیر کی تاریخ پر ہی غور کریں تو کئی اہم باتیں معلومات میں اضافہ کرتی ہیں۔ ابن بطوطہ کا احاطہ، العمری کی "مسالک الابصار" اور قلقشندی کی تحریریں جس قدر مکمل، واضح اور محکم حالات و کوائف کی پردہ کشائی کرتی ہیں ان کا ذکر کئے بغیر نہیں رہا جا سکتا۔

بہرکیف، میں یہاں سندھ پر عرب تسلط کی کہانی مختصراً بیان کرتا ہوں۔ یہاں عرب کوئی دو سو سال تک حکمراں رہے اور اپنی تہذیب کے انمٹ نشان چھوڑ گئے۔ اس کے بعد ایک وقت ایسا آیا کہ یہاں ہندو حکمرانوں کا پھر تسلط ہو گیا۔

مسلمانوں کے شہر اور قلعے اُن کے ہاتھ سے نکل گئے اور قلب سندھ میں بہت سی خود مختار ریاستیں قائم ہوگئیں۔ اسی دور میں فاطمی داعیوں کے گروہ ادھر آنے شروع ہوئے اور مسلمانوں کے عروج کی داستان پھر سنائی دی۔ ۹۷۷ء میں انہوں نے ملتان پر قبضہ کرلیا۔ اور عربوں کا شہر منصورہ جو ہمارے ہاتھ سے نکل گیا تھا ۹۸۵ میں اسماعیلیوں کے قبضہ میں آگیا۔

اس تمام دور میں سندھ کا تعلق باہر کی اسلامی دنیا سے بھی برقرار رہا۔ ایک طرف ہندوستان سے باہر کے اسلامی ممالک کے ساتھ اور دوسری طرف خود اس برصغیر کے ساتھ۔ یہ دور علمی و ثقافتی روشنی کا بھی دور تھا اور سندھ کے علماء، شعراء اور صوفیا کا شہرہ دمشق و بغداد تک پہنچا تھا۔ عرب مؤرخوں اور جغرافیہ نویسوں نے آج سے ۸۰۰ سال پہلے کے سندھ کا جو حال اپنی تحریروں میں بیان کیا ہے وہ داستان ایک سنہری دستاویز ہے۔ ہر چند کہ عربوں کی بہت سی مادی نشانیاں مرورِ ایام اور حوادثِ فطرت ــــ بالخصوص دریائے سندھ کی طوفان خیز لہروں ــــ نے ختم کردی ہیں مگر جریدۂ عالم پر عربوں کی تہذیب و تمدن کے جو نشان ہیں وہ انمٹ اور جاودانی ہیں۔

جس وقت عربوں نے سندھ کی سرزمین پر قدم رکھا یہاں کا سب سے بڑا شہر برہمن آباد (البیرونی کے مطابق "برہمن وا") تھا، مگر سیاسی و فوجی مصالح کی بنا پر عربوں نے اپنے بھی کئی شہر بسائے جیسے منصورہ اور محفوظہ۔ محفوظہ دریائے سندھ کے اُس پار تھا اور منصورہ ساحل سمندر کے قریب برہمن آباد سے کوئی ۲۰ فرسخ کے فاصلہ پر۔ عربوں نے ہی دریائے سندھ کو مہران کا بامعنی نام دیا۔ اسی کی ایک شاخ منصورہ کے گرداگرد بہتی تھی۔ ابن حوقل کے بیان کے مطابق جہاں دریا بحیرۂ عرب میں آکر گرتا ہے منصورہ اس کے پاس تھا۔ ابوالفضل اسے پرانے بکھر سے تعبیر کرتا ہے۔ بعد میں یہ منصورہ ہی عربوں کے قریشی حکمرانوں کا صدر مقام بنا اور "دارالامیرہ" کے نام سے موسوم ہوا ــــ یہ شہر تقریباً ایک مربع میل کو محیط تھا۔ آب و ہوا آج کی طرح اُس وقت بھی گرم تھی۔ حالات لکھنے والوں نے بتایا ہے کہ یہاں کھجور اور نیشکر بڑی کثرت سے موجود ہیں۔ عرب سیاح کہتے ہیں کہ ہم نے یہاں صرف ایک ہی پھل پیدا ہوتے دیکھا جسے لوگ لیموں کہتے ہیں۔ یہ سیب کی برابر ہوتا ہے، بڑا کھٹا اور ایک پھل ہوتا ہے، خوش ذائقہ، جسے امباج (آنبہ) کہتے ہیں۔ یہ پھل کثیر اور سستے تھے۔ بعض عرب سیاح کہتے ہیں منصورہ خلفائے عباسیہ کے چشم و چراغ المنصور کے زمانہ میں بنا تھا۔ مگر تاریخی حقیقت یہ ہے کہ یہ شہر عباسیوں سے بہت پہلے امویوں کے عہد میں تعمیر ہوچکا تھا۔ ابن حوقل نے بھی اس کی پیمائش ایک میل لمبی اور ایک میل چوڑی بتائی ہے۔ بشری کے نزدیک منصورہ مرکزی شہر ہے، سندھ کا دارالحکومت ہے اور دمشق کی مثال ہے۔ مکانات لکڑی اور مٹی کے بنے ہوئے ہیں۔ جامع مسجد اینٹوں اور پتھروں کی ہے اور کافی وسیع ہے۔ شہر کے چار بڑے دروازے ہیں۔ عمارات ٹانکوں، پتھر اور مٹی کی ہیں۔ ان پر پلستر بھی ہے۔ بہت بارونق شہر ہے۔ فرحت و سیر کی جگہ ہے۔ کوچہ و بازار لوگوں سے بھرے رہتے ہیں۔ اور ہر طرح کا مال سامان فروخت کے لئے موجود رہتا ہے۔ کم رتبہ لوگ ایرانی لباس پہنتے ہیں مگر امرا بھاری مرصع عبائیں استعمال کرتے ہیں۔ نیز شلواریں اور کرتے بھی۔ بال لمبے رکھتے ہیں۔ سونے اور تانبے کے سکے چلتے ہیں۔ تاتاری سکہ بھی رواں ہے۔ درہم (دینار) کا وزن عام درہم سے پانچ گنا زیادہ ہے مچھلی بہتات سے ہے۔ گوشت ارزاں ہے، بیرونی اور مقامی پھلوں کی کثرت ہے۔ مسعودی کا بیان ہے کہ منصورہ کی حکمرانی میں تین ہزار دیہات اور گاؤں ہیں۔ حاکم کے پاس ۴۰ ہزار فوج اور آٹھ ہاتھی بھی ہیں۔ بشری نے لکھا ہے کہ یہاں کے لوگ عام طور پر خوش خلق ہیں۔ علم کا بازار گرم ہے اور بہت سے جید عالم یہاں موجود ہیں لوگ خوش باش چاق و چوبند اور ہنرور ہیں۔ اوصاف حمیدہ سے متصف۔

ایک اور شہر جو آج بھی ہمارا بڑا شہر ہے ملتان تھا۔ خورداد بہ کا کہنا ہے کہ یہ شہر سجستان کے صدر مقام زرنج سے کوئی دو ماہ کی مسافت پر واقع ہے۔ یہ بھی منصورہ کی برابر بڑا ہے اور اسے "مدینۃ الذہب" (سونے کا گھر) بھی کہا جاتا ہے۔ یہ نام بھی عربوں نے دیا تھا کیونکہ جب عربوں نے ملتان فتح کیا تو یہاں انہیں چالیس "بہار" (؟) کی برابر

سونا دستیاب ہوا تھا۔ ایک "بھر(؟)" کا وزن ۲۲۲ پونڈ (انگریزی) ہوتا تھا۔ ملتان میں سونے کا ایک بہت بڑا بت بھی رکھا ہوا تھا جس کے استھان پر بڑا قیمتی چڑھاوا چڑھتا رہتا تھا۔ اس بت کو ایک قسم کی سرخ کھال سے ڈھک رکھا تھا اور صرف آنکھیں چمکتی رہتی تھیں۔ یہ آنکھیں قیمتی پتھروں کی تھیں۔ سر پر سنہری مکٹ دھرا رہتا تھا۔ یہ بت مربع شکل کا تھا، اس کے چار ہاتھ تھے جو کہنی سے نیچے بنے ہوئے تھے۔ مندر پر سنہری کلس تھا اور بڑے بڑے مضبوط دروازے تھے۔ ستون بلند اور دیواریں رنگین تھیں۔ پوجنے والوں کے نزدیک ہند و سندھ میں اس کے مقابلہ کا کوئی قابل تکریم صنم نہ تھا۔ آس پاس کے رجواڑے جب آپس میں جنگ و جدال کرتے تو اس مندر کے پجاری مل کر محاربین کو دھمکاتے کہ اگر انہوں نے ملتان کے آس پاس خونریزی کی تو مندر کے بت کو جلال آجائے گا اور تمہیں توڑ پھوڑ کر برباد کر دے گا۔ اکثر یہ دھمکی کارگر ثابت ہوتی تھی اور لڑنے والے باز آجاتے تھے۔ اس وجہ سے لوگوں کے دلوں میں بت کی ہیبت بھی تھی اور عزت بھی کیونکہ وہ اس طرح عوام کو تباہیوں سے بچالیا کرتا تھا۔

ابن خوردابہ کا کہنا ہے کہ ملتان ایک بہت بڑا شہر ہے۔ چاروں طرف ایک فصیل ہے جس کے چار بڑے پھاٹک ہیں۔ کھانے پینے کی چیزیں افراط سے ملتی ہیں اور لوگ مطمئن زندگی بسر کرتے ہیں۔ منصورہ کی طرح یہاں بھی لوگ شلوار پہنتے اور فارسی و سندھی بولتے ہیں۔ اطراف شہر میں ایک نہر بہتی ہے جو آخرکار مہران میں جاگرتی ہے۔ شہر سے نصف فرسنگ کے فاصلہ پر ایک قلعہ ہے جہاں حاکم رہتا ہے۔ وہ کبھی ملتان نہیں آتا سوائے نمازِ جمعہ کے لئے۔ اس وقت وہ ہاتھی پر سوار ہوتا ہے اور اس سے اتر کر نمازیوں میں آن ملتا ہے۔ یہاں کا عامل (گورنر) قریش ہے مگر منصورہ کے حاکم کا باجگذار نہیں ہے بلکہ خلیفہ کے نام کا خطبہ پڑھتا ہے۔

عرب مؤرخوں نے ایک اور سندھی شہر کا نام لیا ہے۔ اس کا نام سندور تھا جو ملتان کے جنوب میں تین دن کی مسافت پر واقع تھا۔ یہ تجارت کا مرکز تھا اور بڑی دولت و حشمت کا مالک تھا۔ لوگوں کے دسترخوان پر انواع و اقسام کے کھانے چنے جاتے تھے، یہ ہند کا حصہ مانا جاتا تھا اور ایک دریا کے کنارے بنا ہوا تھا جو سمند کے مقام پر مہران سے آکر مل جاتا تھا۔ ملتان سے منصورہ تک کے علاقے میں ایک قوم آباد تھی جو ناوہ کہلاتی تھی۔ اس میں بھی کئی قبیلے تھے جو تباران سے مکران اور منصورہ سے ملتان تک پھیلے ہوئے تھے۔ یہ لوگ بربری خانہ بدوشوں کی مانند تھے اور عجب طرح کے گھر بناتے تھے۔ اکثر مہران کے اردگرد دلدلوں میں پناہ لیتے تھے۔ ان کے اونٹ بڑے عمدہ ہوتے تھے۔ اس میں ایک قسم "کرہ" کہلاتی تھی جس کے دو کوہان ہوتے تھے اور خراسان کے علاقے میں ان کی بڑی مانگ تھی۔ یہ اونٹ خوش خو ہوتے تھے۔ ان کے علاقے میں اناج، کشمش، پھل، اونٹ، بیل اور بھیڑ بکثرت موجود تھے۔ اس علاقے کو "علی" کہا جاتا تھا اور وجہ اس کی یہ تھی کہ ایک شخص علی نامی نے اسے فتح کیا تھا اور اسے اپنی ملکیت بنا لیا تھا۔

اب عربوں کے مشہور شہر دیبل کا ذکر کرنا مناسب ہوگا۔ یہ "ہفت اقلیم" کے دوسرے قطع میں واقع تھا۔ "تقویم البلدان" کا مصنف کہتا ہے کہ یہ سندھ کے ساحل پر واقع تھا مگر بڑا گرم شہر تھا۔ اس لئے اس کی آبادی کم ہی تھی۔ یہ مہران کے جانب شرق بنا ہوا تھا اور سامنے سندھ کی کھاڑی تھی۔ یہ سندھ کی سب سے بڑی اور مشہور بندرگاہ بھی تھی۔ اس لئے کاروبار بہت ترقی پر تھا۔ یہاں سرسوں بہت تھی، کھجور بصرہ سے منگائی جاتی تھی۔ منصورہ اور دیبل کے درمیان چھ روز کا سفر تھا۔ "تقویم البلدان" کا مصنف ہی ہمیں یہ بھی بتاتا ہے کہ ایک اور بڑا شہر سدوسان یا سیہوان ہے۔ یہ مہران کے مغرب میں ہے۔ یہ اس مقام پر ہے جہاں ہفت اقلیم میں سے تیسری اقلیم کا خط گزرتا ہے۔ ابنِ حوقل لکھتا ہے کہ "یہ بڑی زرخیز جگہ ہے۔ دولت کی افراط ہے۔ بازار بڑے بڑے ہیں اور چاروں طرف بہت سی بڑی بستیاں اور منڈیاں بنی ہوئی ہیں۔"

ابن بطوطہ اپنا سفر کرتا ہوا یکم محرم ۷۳۴ھ (۱۲ ستمبر ۱۳۳۳ء) کو وادیٔ سندھ میں پہنچتا ہے۔ وہ کہتا ہے کہ یہ دنیا کا وسیع ترین دامنِ دریا ہے۔ گرمیوں میں دریا کناروں سے بہہ نکلتا ہے طغیانی فرو ہونے کے بعد لوگ اپنی فصل بوتے ہیں، یہی حال مصر کا ہے۔ جس وقت وہ ملتان پہنچا تو مخبروں نے اس کے آنے کی اطلاع امیرِ شہر کو دی۔ یہاں اس نے گھوڑے، اونٹ، غلام اور دوسری چیزیں خریدیں تاکہ دہلی تک لے جاسکے اور دربارِ سلطان میں پیش کر سکے۔ یہاں دورانِ سفر اسے ایک گینڈے کے دیکھنے کا بھی اتفاق ہوا جو دلدلوں کے نرکلوں میں سے نکل آیا تھا، سیاہ، عظیم و مہیب۔ یہاں سے گذر کر ابن بطوطہ جنانی کے مقام پر پہنچتا ہے جو اُچ اور سکھر کے مابین واقع تھا، مگر اب معدوم ہے۔

یہ شہر بھی کافی بڑا اور خوشحال تھا۔ بازار کشادہ اور با رونق تھے۔ یہاں ایک قبیلہ آباد تھا جسے سمرہ کہتے تھے۔ یہ لوگ یہاں حجاج بن یوسف کے زمانے میں آکر آباد ہوئے تھے۔ یہ لوگ کسی کے ساتھ بیٹھ کر کھانا نہیں کھاتے۔ نہ کسی نے انہیں کھاتے دیکھا ہے۔ یہاں سے ابن بطوطہ سوستان اور سیہوان کی جانب بڑھتا ہے۔ سیہوان کے گرد کوئی نباتات نہیں تھی اور بڑا ویرانہ تھا۔ مگر شہر کافی بڑا تھا۔ یہاں اسے صرف ایک ہی پیڑ نظر آیا کیکر ــــ دریا کے نزدیک صرف تربوز بویا جاتا ہے۔ لوگ جوار اور ایک دانہ "موشنک" کھاتے ہیں۔ اسی کی روٹی بنتی ہے مچھلی اور بھینس کا دودھ یہاں بڑی کثرت سے مل جاتا ہے یہاں لوگ ریت میں سے ایک جانور (سقنقور) نکالتے ہیں، جو گرگٹ سے مشابہ ہوتا ہے؛ اور اسے کھا جاتے ہیں۔ گرگٹ کی طرح اس کی دم نہیں ہوتی۔ ابن بطوطہ نے ان لوگوں کو زمین کھود کر اسے نکالتے دیکھا تھا۔ "یہ اس کا پیٹ چاک کر دیتے اور آنتیں نکال کر پھینک دیتے ہیں ــــ پھر ایک قسم کی لکڑی جسے "زرد چوب" کہتے ہیں اس کے پیٹ میں بھر دیتے ہیں بجائے زعفران کے ......"

سوستان میں ابن بطوطہ کی ملاقات اس شہر کے خطیب سے بھی ہوئی۔ معلوم ہوا کہ حضرت عمر بن عبدالعزیز (۷۱۷ء۔ ۷۱۹ء) کے زمانے سے یہ منصب انہی کے خاندان میں چلا آتا ہے۔ یہاں بغداد کے ایک بزرگ شیخ محمد سے بھی ملاقات ہوئی جن کی عمر اس وقت ۱۴۰ سال تھی مگر صحت بالکل ٹھیک تھی۔ اس زمانہ میں دریائی سفر کس طرح ہوتا تھا! اس کا حال ابن بطوطہ کی زبانی سنئے اور اس وقت کے جہازوں کا حال بھی معلوم کیجئے۔ لکھتا ہے:

"فقیہہ، علاء الملک کے پاس ایک جہاز ہے جسے الاحورہ کہتے ہیں۔ یہ ایک قسم کی طریدہ کشتی ہے مگر زیادہ بڑا اور چوڑا۔ نصف حصہ چوبی کیبن پر مشتمل ہے جس تک زینہ کے ذریعے پہنچتے ہیں۔ اوپر ایک خاص بلند نشست خود امیر کے بیٹھنے کے لئے بنائی گئی ہے۔ اس نشست کے سامنے اس کے مصاحبین اور خدام بارگاہ بیٹھتے ہیں۔ دائیں اور بائیں غلاموں کی صف ہوتی ہے۔ کوئی چالیس ملاح اس جہاز کو کھینچتے ہیں۔ اس جہاز کے دونوں جانب چار چھوٹی چھوٹی کشتیاں الگ تھیں۔ دو کشتیوں میں امیر کا نشان ــ "مراتب" ہوتا ہے یعنی ڈھول، نفیریں۔ بگل اور طرح طرح کی منہ سے بجانے والی توریاں دوسری دو کشتیوں میں موسیقاروں کا مجمع ہوتا تھا۔ باری باری توریاں پھونکی جاتی تھیں، نفیریاں بجتی تھیں اور گانے کی آواز سے فضا گونجنے لگتی تھی۔ یہ نوبت نقارہ دوپہر تک بجتا رہتا تھا۔ اس کے بعد دونوں کشتیوں کو آپس میں ملا دیا جاتا تھا۔ ان کے بیچ میں زینہ لگا دیتے ہیں اور گانے والے پھر امیر کے جہاز پر آجاتے ہیں۔ وہ اس وقت تک نغمہ سرائی کرتے رہے جب تک امیر نے اپنا کھانا ختم نہیں کر لیا۔ اس کے بعد انہوں نے اپنا کھانا کھایا۔ اس کے بعد وہ پھر اپنی کشتیوں میں واپس چلے گئے اور مقررہ طریق پر ان کا سفر شام ہونے تک جاری رہا۔ سفر ختم ہونے کے بعد امیر ساحل پر اتر آیا اور وہاں ڈیرے لگا دئے گئے۔ یہاں ایک کھانا ہوا جسے سَمَط کہتے ہیں۔ ہمراہیوں میں سے اکثر اس طعام میں شریک تھے۔ عشاء کی نماز کے بعد پہرہ داروں نے باری باری پہرہ دینا شروع کیا جو ساری رات جاری رہا۔ جب پہرہ بدلتا تو پہرہ داروں میں سے کوئی باوازِ بلند اعلان کرتا "خوند ملک، رات کا اتنا بجا ہے!"

ابن بطوطہ نے علاء الملک کی اس دلچسپ صحبت میں کوئی پانچ دن گذارے۔ اس کے بعد وہ لہاری کے مقام پر پہنچا جو اس کی نظر میں بڑا خوشنما شہر تھا اور لبِ بحر واقع تھا۔ یہ مقام وہ تھا جہاں سندھ سمندر میں آکر اپنا سارا آبی خزانہ اگل دیتا ہے۔ کہتا ہے کہ یہاں دو سمندر آکر ملتے ہیں اور لہاری ایک بڑا بندرگاہ بن چکا ہے۔ یمن، فارس۔ اور دوسرے ممالک سے لوگ آتے جاتے

ہیں اور حاکم کو بڑی آمدنی ہے۔

علاء الملک کی ہمراہی میں وہ ایک میدانی جگہ پہنچتا ہے جو ترنہ کہلاتی ہے اور شہر سے سات میل کے فاصلہ پر ہے۔ یہاں اسے پتھر کی بیشمار مورتیاں اور جانور نظر آئے۔ کہتے ہیں کہ یہ جون بدل گئے ہیں۔ کسی کا صرف سر ہے کسی کا صرف پاؤں۔ وقس علیٰ ہذا۔ بعض پتھروں کی شکل دانوں کی سی تھی۔ گیہوں سے بھی معلوم ہوتے تھے اور دال جیسی چیز بھی نظر آئی۔ مکانوں کی نمود اور شہر پناہ بھی دکھائی دیتی تھی۔ پھر ہمیں ایک مکان کے آثار دکھائی دئے جس میں تراشیدہ چٹان کی ایک کوٹھڑی بھی تھی۔ بس ایسا لگتا تھا کہ ایک پوری چٹان اندر سے کھدی ہوئی رکھی ہے۔ اس پر ایک مجسمہ دھرا تھا جو انسان جیسا معلوم ہوتا تھا۔ فرق صرف یہ تھا کہ سر بہت بڑا تھا، اور اس کا دہن چہرہ کے ایک رخ پر پھیرا ہوا تھا اور دونوں ہاتھ جانب پشت تھے جیسے وہ کوئی قیدی ہو۔ ادھر ادھر بڑی بدبودار جھیلیں سی تھیں۔ بعض دیواروں پر ہندی حروف کندہ نظر آئے۔" علاء الملک نے ابن بطوطہ کو بتایا کہ بعض مورخین کے نزدیک یہ ایک بہت بڑا نگر تھا مگر یہاں کے لوگوں کو پتھر کا بنا دیا گیا اور یہ مجسمہ ان کے سردار کا تھا جس پر عتاب نازل ہوا تھا۔ اس مکان پر اب بھی "راجہ کا گھر" کے الفاظ نظر آتے ہیں۔ واللہ عالم بالصواب!

ابن بطوطہ کی معلومات کے مطابق بکھر بھی ایک شہر تھا، عالم میں انتخاب۔ اس کے وسط ہی سے دریائے سندھ کی ایک نہر بہتی تھی۔ نہر کے بیچ میں ایک جگہ تھی جہاں مسافروں کو کھانا کھلایا جاتا تھا۔ اسے کشلو خاں نے بنایا تھا جس وقت وہ سندھ کا گورنر تھا۔ یہاں ابن بطوطہ کی ملاقات شہر کے فقیہہ سے بھی ہوئی جن کا نام تھا صدر الدین الحنفی۔ شہر کے قاضی ابو حنیفہ سے بھی ملاقات ہوئی۔ شیخ شمس الدین محمد الشیرازی، ایک خدا رسیدہ نیک سیرت بزرگ سے بھی ابن بطوطہ ملا اور انہیں ۱۲۰ سال کی عمر کا پایا۔ ان کی صحت بھی بہت اچھی تھی۔ بھکر کے شہر سے وہ "اچ" (اچہ) کی طرف گیا۔ یہ بھی دریائے سندھ کے کنارے پر بسا ہوا تھا اور بڑا بارونق شہر تھا۔

اب وہ سندھ کے دارالحکومت ملتان تک پہنچتا ہے۔ یہیں امیر الامرا کا قیام ہے۔ یہاں سے کوئی دس میل کے فاصلہ پر سڑک کے کنارے خسرو آباد ایک بستی اسے ملی جہاں دریا بھی بہتا تھا اور اچھا شہر تھا۔ اس دریا کو وہ ایسا دریا بتاتا ہے جسے بغیر کشتیوں کے عبور نہیں کیا جا سکتا۔ ملتان کی سڑک یہیں سے گذرتی ہے۔ یہاں مسافر کو ٹھہرنا پڑتا ہے اور بڑی سخت تلاشی لی جاتی ہے۔ ابن بطوطہ کا تجربہ یہ ہے کہ جب ہم یہاں پہنچے تو رواج یہ تھا کہ سوداگر جو بھی سامان لائیں اس کا چوتھائی حصہ حاکم ملتان کے حوالہ کر دیا جاتا تھا یعنی سرکاری مال خانہ میں جمع ہو جاتا تھا۔ ہر گھوڑے پر سات دینا ٹیکس ادا کرنا پڑتا تھا۔ جب ابن بطوطہ دو سال بعد ہندوستان سے لوٹا تو سلطان کے حکم سے یہ ٹیکس معاف کر دیا گیا تھا۔ اس کا حکم تھا کہ سوداگروں سے سوائے زکوٰۃ اور عشر (دسواں حصہ) کے کچھ وصول نہ کیا جائے اور اسے عباسی خلیفہ، ابو العباس کے نام کی قسم کھانی پڑتی تھی۔

"میرے سامان کی تلاشی شروع ہوئی تو سخت پریشانی ہوئی۔ کوئی مال دولت تو نہ تھا مگر بقچے بڑے بڑے دکھائی دیتے تھے! مگر خدا کا کرم کہ قطب الملک، گورنر ملتان، کا ایک بڑا فوجی افسر ادھر سے گذرا اور اس نے حکم دیا کہ میرے سامان کی تلاشی نہ لی جائے اور ایسا ہی ہوا۔"

"ہم نے خدا کا شکر ادا کیا اور رات لب دریا بسر کی۔ دوسرے روز صبح "ملک البرید" (سپرنٹنڈنٹ ڈاک) ہمارے پاس آیا۔ یہ اصل میں سمرقند کا رہنے والا تھا۔ یہی وہ شخص تھا جو شہر اور جملہ علاقے کا روزنامچہ لکھتا اور خبرنامہ تیار کر کے بادشاہ کو پرچہ بھیجتا۔ اس خبرنامہ سے ہر آنے جانے والے کی بابت اطلاع اور دوسرے احوال و حوادث کی خبر بادشاہ کو ملتی رہتی تھی۔ میں اس کی ہمراہی میں عامل ملتان کے پاس پہنچا۔ اس سرکاری افسر نے ہی عامل سے اس کا تعارف کرایا جو بہت خندہ پیشانی سے ملا اور مصافحہ کر کے اسے اپنے پہلو میں بٹھا لیا۔" یہاں ابن بطوطہ نے عامل کی خدمت میں ایک غلام، ایک گھوڑا، کچھ کشمش اور بادام بطریق نذر گذارنے۔ ہند کے امراء کی خدمت میں یہ چیزیں بطور تحفہ یوں پیش کی جاتی تھیں کہ یہاں کمیاب تھیں اور زیادہ تر خراسان سے منگائی جاتی تھیں۔ اس امیر کا احوال ابن بطوطہ سے ہی سنئے:

"یہ امیر ایک بڑے تخت پر بیٹھا تھا جو قالینوں سے مزین تھا۔ نزدیک قاضی صاحب تشریف فرما تھے جن کا نام سالار تھا۔ نزدیک ہی خطیب تھے، جن کا نام میں نہیں جانتا۔ دائیں اور بائیں جانب فوجی

حکام سرد قد کھڑے تھے۔ جنگی سپاہی امیر کے پیچھے ایستادہ تھے۔ بہت سی کمانیں بھی رکھی رہتیں۔ جب کوئی تیر انداز فوجی ملازمت کے لئے پیش ہوتا تو اس سے ان میں کی ایک کمان زہ کرنے کے لئے کہا جاتا۔ ہر کمان کی سختی جدا جدا تھی اور جو تیر انداز جتنی قوت بازو دکھا سکتا تھا اس کے مطابق ہی تنخواہ مقرر ہوتی تھی۔ اگر سپاہی اسپ سواروں میں بھرتی ہونا چاہتا تو اس کے سامنے ایک بڑا ڈھول رکھ دیا جاتا تھا۔ اس کا کام یہ تھا کہ نیزے کی مدد سے اس نقارہ کو ضرب لگائے۔ دیوار کے ساتھ ایک حلقہ بھی لٹکا ہوا تھا۔ سوار گھوڑے کو اتنا سرپٹ دوڑاتا کہ وہ اس حلقہ سے پیوست ہو جاتا۔ اگر اس نے چابکدستی سے اس حلقہ کو اپنے نیزہ میں پرو لیا تو اسے اعلیٰ شہسوار مانا جاتا تھا۔ اگر کوئی اسپ سوار نیزہ باز بھرتی ہونا چاہتا تو اس کے لئے زمین پر ایک گیند رکھ دی جاتی۔ امیدوار سرپٹ گھوڑا دوڑاتا ادھر آتا اور گیند پر تیر چلاتا۔ اس کی تنخواہ کا تناسب گیند پر وار کرنے کی مہارت پر منحصر ہوتا تھا۔"

شاہی ضیافت کا حال بھی کچھ کم دلچسپ نہیں ہے:

"سب سے پہلے چپاتیاں لائی جاتی ہیں۔ بڑی پتلی۔ پھر بھیڑ آتی ہے جسے چار چھ ٹکڑوں میں تقسیم کیا جاتا ہے۔ ہر ٹکڑا ایک کھانے والے کے سامنے رکھ دیا جاتا ہے۔ پھر گھی میں ڈوبی ہوئی گول گول روٹیاں آتی ہیں ان روٹیوں کے بیچ میں ایک شیرنی بھری جاتی ہے جسے 'صابونیہ' کہتے ہیں۔ ہر پارۂ نان پر ایک چھوٹی سی میٹھی ٹکیہ رکھی ہوتی ہے جسے اپنی شکل کے باعث "خشتی" کہتے ہیں۔ یہ میدے، شکر اور گھی کا آمیزہ ہوتا ہے۔ اس کے بعد گھی میں پکا ہوا سالن حاضر کیا جاتا ہے۔ اس میں پیاز، دھنیہ، ادرک وغیرہ بھی ہوتا ہے۔ یہ سالن چینی کی بنی ہوئی نفیس رکابیوں میں پیش ہوتا ہے۔ اس کے بعد ایک شے سامنے رکھی جاتی ہے جسے یہ لوگ 'سموسہ' کہتے ہیں۔ اس میں قیمہ ہوتا ہے جس میں بادام، اخروٹ، پستہ، پیاز اور مسالے ملے ہوئے ہوتے ہیں اوپر باریک ورق جیسی، گھی میں پکی ہوئی روٹی کا خول ہوتا ہے۔ ہر آدمی کے سامنے ایسے چار پانچ سموسے رکھے جاتے ہیں۔ اس کے بعد گھی میں پکے ہوئے چاولوں کی ایک ایک قاب آتی ہے جس پر ایک بھنا ہوا مرغ ہوتا ہے۔ پھر ایک غذا آتی ہے جسے 'لقمۃ القاضی' کا نام دیا گیا ہے۔ اس کے بعد 'القاہریہ' کی باری آتی ہے۔ جب کھانا شروع ہوتا تو داروغہ تقریبات لب فرش آکر سلطان کی طرف منہ کر کے جھک کر "خدمات" بجا لاتا ہے۔ پھر باقی حاضرین کے سامنے سر تسلیم خم کرتا ہے۔ یہ جھکنا اس قدر ہوتا ہے جیسے نماز میں رکوع ہو۔ اس تقریب کے بعد کھانا شروع ہوتا ہے مگر اس سے قبل سونے چاندی کے پیالوں میں عرق گلاب میں بنا ہوا شربت پیش ہوتا ہے۔ شربت کے بعد داروغہ تقریبات بآواز بلند 'بسم اللہ' کہتا ہے جس کا مطلب ہے کہ کھانا شروع کر دیا جائے۔ کھانے کے بعد جو کا عرق پیش ہوتا ہے۔ جسے 'فقّہ' کہتے ہیں اور جب یہ بھی ختم ہو جائے تو پان سپاری پیش ہوتے ہیں، جن کا پہلے ذکر کر چکا ہوں پان سپاری منہ میں رکھنے کے بعد حاضرین ضیافت پھر ایک بار 'بسم اللہ' کے منتظر رہتے ہیں۔ اس موقع پر ہر شخص اٹھ کر جھک کر آداب بجا لاتا اور رخصت ہوتا جاتا ہے۔" ؛

★

غزل

شیدا گجراتی

رلائے خوں کے آنسو زندگی نے
نہ آئے پھر بھی جینے کے قرینے

لٹائے چشمِ حسرت نے خزینے
تراشے ہیں محبت نے نگینے

ہوائے شوق جاناں لے اُڑی ہے
خدا جانے کہاں ٹھہریں سفینے

متاعِ بادہ سے خالی ہیں شیشے
خلوصِ درد سے عاری ہیں سینے

کسی کا نام آتے ہی زباں پر
چھلک جاتے ہیں دل کے آبگینے

ستارے ڈوب کر اُبھرے فلک پر
نہ اُبھرے ڈوب کر دل کے سفینے

بہ عنوانِ مآلِ یک تبسم
کہاں تک چاک ہوں پھولوں کے سینے

مگر وہ ایک لمحہ مختصر سا
گذرنے کو گذر کے ہیں مہینے

گلستاں تا بہ صحرا تیرے نغمے
سنائے ہیں مری آشفتگی نے

ہے کسی یوسف نفس کی آمد آمد
رواں ہیں نکہتِ گل کے سفینے

شریکِ دردِ پنہاں کون ہوتا
بہ مجبوری پڑے ہیں اشک پینے

یہ کس شیریں دہن نے تجھ کو شیدا
غزل کہنے کے بخشے ہیں قرینے

عارف حجازی

دیکھ کر آئینۂ دل میں ترا عکسِ جمال
جاگ اٹھے ہیں نگاہوں میں غزالانِ خیال

اُف وہ مہتاب سی صورت وہ خمیدہ ابرو
کسی فنکار کا موضوع ہیں نازک خد و خال

وادیٔ زلف میں بھٹکی ہوئی بے تاب نظر
سنبلستاں میں ہو جیسے کوئی آوارہ غزال

وہی وحشت، وہی دامن، وہی شوریدہ سری
رنگ لایا ہے تری شوخ نگاہی کا سوال

کوئی تصویر نہیں، کوئی تمنا بھی نہیں
کتنی افسردہ و بے نور ہے دنیائے خیال

وضعِ غم بننے لگا تھا مرے کردار کا رنگ
تری رفتار نے بدلی مرے افکار کی چال

دل پہ چھایا ہے وہی غم کا اندھیرا عارف
اب نہ امیدِ بہاراں ہے نہ ارمانِ وصال

دیارِ گُل

(مظفر آباد - آزاد کشمیر)

مظفر احمد ظفر

مظفر آباد ـــ آزاد کشمیر کا صدر مقام ـــ سطحِ سمندر سے تقریباً ڈھائی ہزار فٹ کی بلندی پر واقع ہے۔ یہ کافی قدیم اور تاریخی اہمیت کا شہر ہے اور دریائے کشن گنگا پر بسا ہوا ہے۔ اب اس دریا کا نام نیلم ہے جو اس کے قدرتی ماحول اور موجودہ فضا کے اعتبار سے موزوں ترین نام ہے۔ مظفر آباد خاندانِ بمبہ کے ایک نامور سردار، مظفر خان نے آباد کیا تھا لیکن اس کی تاریخِ بِنا کا صحیح علم نہیں ہو سکا۔ بعض پرانے کاغذات میں اسے چکڑی کے نام سے بھی موسوم کیا گیا ہے، جو یہاں کی مقامی بولی میں 'دلدل' کے معنی رکھتا ہے۔ ہر چند کہ شہنشاہ جہانگیر کشمیر جاتے ہوئے اس مقام سے دو مرتبہ گذرا مگر اس نے بھی اپنی تزک میں اس جگہ کا کوئی ذکر نہیں کیا۔ صرف اتنا حال ضرور ملتا ہے کہ "کھم ترنگ" (موجودہ گوجرہ) کے سامنے ایک اونچی سی جگہ ہے، بڑی ہموار اور نہایت پُر فضا۔ یہاں شہنشاہ جہانگیر نے نمازِ ظہر کے بعد کا وقت سیر و تفریح میں گذارا تھا اور فضا کی دلفریبی نے شہنشاہ کو بہت محظوظ کیا تھا۔ گوجرہ کے مقام پر اس عظیم بادشاہ کا بنایا ہوا قلعہ اب بھی موجود ہے اور خاصی اچھی حالت میں ہے۔ جہانگیر نے اس جگہ کو سرائے لکھا ہے، جو جلال آباد کے قلعہ کے سامنے واقع ہے۔ یہ جگہ مظفر خان کے چھوٹے بھائی، جلال خان نے بسائی تھی۔ آج کل آزاد حکومت جموں و کشمیر کے مرکزی دفاتر اسی جگہ ہیں۔

مظفر آباد کے شمال مغرب میں اکبرِ اعظم کا بنایا ہوا ایک قلعہ بھی موجود ہے، مگر اب خستہ حالت میں ہے۔ یہ قلعہ چونکہ ڈب گلی یعنی ایک درہ کے سامنے ہے اس لئے ڈوگروں کے دور میں یہاں ایک حفاظتی چوکی بھی بنی ہوئی تھی۔ مگر جیسے جیسے زمانہ گزرتا گیا ٹوٹ پھوٹ بھی ہوتی رہی، خاص کر دریائے نیلم کی شوریدہ سر لہروں نے اسے کافی نقصان پہنچایا اور کوئی دیکھ بھال بھی نہیں ہوئی اس لئے قلعہ بالکل برباد ہو گیا۔

مظفر آباد کی تاریخ پر نظر ڈالیں تو حکمران خاندان، بمبہ کا ذکر آنا ضروری ہے۔ یہ خاندان ماضی میں ادھر آیا اور کشمیر پہ حکمران ہو گیا۔ تاریخی اطلاعات یہ ہیں کہ ہلاکو خان کا ایک جرنیل تھا، ذوالقدر خان، اس نے ۱۳۲۳ء میں کشمیر کے نواح پر زبردست حملہ کیا۔ اس حملے کے باعث کشمیر پہ ہر طرح کی تباہی آئی اور نظامِ معیشت تو بالکل ہی تباہ ہو گیا مگر اس حملے کا ایک نتیجہ یہ ضرور نکلا کہ فدائیانِ اسلام کو ادھر آنے اور دینی تبلیغ کی ضرورت محسوس ہوئی تاکہ درماندہ انسانیت کو سہارا مل سکے۔ اس سے قبل پکھلی، (ضلع ہزارہ) میں اسلام کی روشنی پھیل چکی تھی اور اس کا پیغام دور دور تک پہنچنے کے لئے دروازے کھلتے جا رہے تھے۔ ہلاکو خان کے اس کمانڈر کے پاس مختلف صلاحیتوں کے لوگ تھے، جو کچھ تو واپس چلے گئے اور کچھ وہیں رہ پڑے۔ اس کی مثال ایسی ہی ہے جیسے بنی اُمیّہ کے بہت سے عربی النسل لوگ جب فتوحات کے جلو میں بدخشاں تک پہنچے تو پھر وہیں بس گئے۔ خاندانِ اُموی کی مہم میں ایک نامور شخص کاشف خان بھی تھا جس نے دھتوڑ (نزد ایبٹ آباد) میں مستقل قیام اختیار کیا۔ اسی کا پوتا صفدر خان تھا جو سلطان محمد خان والیٔ پکھلی کا سپہ سالار بنا۔ یہ لوگ کافی عرصہ تک یہاں حکمران رہے اور اسی تاریخی خانوادہ کے لوگوں نے اپنی موروثی جاگیر اور ملحقہ علاقوں پر ایک خود مختار حکومت کی بنیاد رکھدی تھی۔ آگے چل کر یہی خاندان بمبہ کے نام سے مشہور ہوا اور اس نے مظفر آباد کو ہی اپنا دار الحکومت بنایا۔ اس طرح پوری وادیٔ نیلم پر ان سرداران وقت کا قبضہ ہو گیا۔

مظفر آباد جنگوں کا میدان بھی بنا رہا ہے۔ کبھی یوسف شاہ چک کی فوجیں ادھر آئیں۔ کبھی اکبرِ اعظم نے ادھر فوجیں بھیجیں۔

کبھی یہ جگہ سکھوں کی رزم گاہ رہی اور حضرت سید احمد شہیدؒ کی تحریک جہاد کا مرکز و محور بھی یہی مقامات رہے۔ حضرت سید احمد شہیدؒ کے زمانہ میں یہاں جو سردار حکمراں تھے ان میں آپس کی نا اتفاقی بہت تھی۔ اس لئے سازشیں بھی ہوتی رہتی تھیں اور اسلام کے دشمن اس سے فائدہ اٹھاتے تھے۔ چنانچہ فروری ۱۸۳۱ء میں مظفرآباد اور اس کے ملحقہ دیہات میں جب مجاہدین پہنچے تو ان کی جمعیت بکھر چکی تھی اور وہ دشمنوں سے لڑتے بھڑتے شہید ہو گئے۔

حضرت سید احمد شہیدؒ کی تحریک ختم ہو گئی تو اس کے پندرہ سال بعد ۱۸۴۶ء میں انگریزوں نے وہ مشہور معاہدہ (امرتسر) کیا جس کی رو سے جموں و کشمیر کا خطہ گلاب سنگھ کے حوالہ کر دیا۔ اس معاہدہ کو دنیا کی تاریخ میں بدترین معاہدہ کہا جاتا ہے کیونکہ چوراسی ہزار مربع میل کا علاقہ پچھتر لاکھ "نانک شاہی" سکوں کے عوض بیچ ڈالا گیا ——— "نانک شاہی" روپیہ صرف دس آنہ کا تھا ——— "بہ ارزاں فروختند"! صحیح ہی کہا گیا ہے۔

اس رسوائے عالم معاہدہ کے بعد جو ردعمل عوام میں ہوا وہ قدرتی تھا۔ ریاست کے کونہ کونہ میں نفرت کا زہر پھیل گیا۔ عوام نے احتجاج کیا جسے ناعاقبت اندیش حکمرانوں نے "بغاوت" کا خطاب دیا۔ مسلمان آبادیوں پر بے پناہ ظلم توڑے گئے ہزاروں مسلمان شہید کئے گئے۔ مظفرآباد، پونچھ، میرپور اور راجوری کے علاقے خاص طور پر ظلم و تعدی کا نشانہ بنائے گئے۔ مگر غیور مسلمانوں نے ظلم کے آگے گردنیں نہیں جھکائیں۔ جب عرصۂ حیات تنگ ہو گیا تو سینکڑوں مسلمان خاندانوں نے اس نواح سے ہجرت کی، اور پورے برصغیر میں پھیل گئے اور اپنی خداداد صلاحیتوں سے انہوں نے ہر شعبۂ زندگی میں اپنے لئے ایک ممتاز مقام پیدا کیا۔

ہر چند کہ ابتدائی احتجاج کو ظلم کی قوتوں نے وقتی طور پر دبا دیا تھا مگر ظلم و ناانصافی کے خلاف لوگوں کے دلوں میں جو لاوا سلگ رہا تھا وہ ایک دن پھوٹ بہنے کے لئے بیقرار تھا۔ چنانچہ ہم دیکھتے ہیں کہ ۱۳ر جولائی، ۱۹۳۱ء کو مسلمانانِ جموں و کشمیر نے پوری قوت کے ساتھ للکارا۔ یہ تحریک آزادی تھی، جو برابر بڑھتی رہی اور وہ دبائی نہ جا سکی۔ گرفتاریاں اور گولی مارنے کا سلسلہ دراز سے دراز تر ہوتا چلا گیا۔ خود مظفرآباد میں سو سے زیادہ مقتدر اصحاب کو گرفتار کیا گیا۔ اس کے بعد تحریک میں مزید جوش پیدا ہوا اور ۱۹۴۷ء میں مظفرآباد ہی جنگ آزادی کا مرکز بنا۔ یہی جہد آزادی کا مرکز ہے اور آج بھی آزاد جموں و کشمیر کی حکومت کا صدر مقام ہے جو تمام آزاد کشمیر کے نظم و نسق، تعلیم و ترقی اور فلاح و بہبود کا سماجی وسیاسی محور ہے اور امید ہے کہ جس طرح ماضی میں مظفرآباد اپنا تاریخی کردار ادا کرتا رہا ہے، مستقبل میں بھی یہ اپنی ممتاز حیثیت برقرار رکھے گا ❖

پاکستان: دوش، امروز، فردا: بقیہ صـ ۲۸

رہنمائی کی دولت سے مالامال کر سکے۔ ویسے حزب اختلاف کی خرابیاں بھی اکثر مشکوک رہتی ہیں کیونکہ دیکھا گیا ہے کہ ہر سیشن کے ساتھ اراکین کی نشستیں بدلتی رہتی ہیں اور یہ کیفیت اسی وقت ہی استحکام پا سکتی ہے جب معاشی و سیاسی اصولوں پر مبنی پروگرام رکھنے والی جماعتیں ہمارے ملک میں ابھریں۔ لیکن اگر اس وقت یہ مطلع اتنا صاف نہیں ہے تو یہ نہ کوئی حیرت کی بات ہے نہ بیزاری و مایوسی کی۔ آخر ہماری مملکت نوزائیدہ ہے اور ہم نے پرانے طرز حکومت کی جگہ ایک نیا اسلوب سیاست اختیار کیا ہے۔ اس لئے ابتداءً مشکلات کا پیدا ہونا کچھ حیرت انگیز نہیں ——— اصل میں جس چیز کی ضرورت ہے، وسیع النظری اور وسیع القلبی ہے جس کی بنیاد صرف وطن، اور حب وطن ہو، یعنی تعمیر و فلاح مملکت کا جذبہ۔ جس کی موجودگی کی طرف سے ہمیں مایوس ہونے کی کوئی ضرورت نہیں ❖

دریائے جہلم اور دریائے نیلم (آزاد کشمیر) کے سنگم پر شہنشاہ جہانگیر کا قلعہ

دیار گل
(مظفر آباد)

اس وقت کشمیر پر ساری دنیا کی نظریں لگی ہوئی ہیں۔ کشمیر کے ساتھ ہمارا تاریخی، قومی اور ثقافتی رشتہ قدر مستحکم اور ناقابل شکست ہے کہ اسے کوئی بھی [illegible] ہم سے جدا نہیں کر سکتی۔

آزاد جموں و کشمیر کی حکومت کا صدر مقام، مظفر آباد، ایک قدیم تاریخی شہر ہے جس کے اطراف کی سرزمین سے ہماری تاریخ کے کئی روشن ابواب کی یادیں وابستہ ہیں۔

آثار قلعہ [illegible]

[illegible] آباد [illegible]

دور نو میں ہرجہتی ترقی کے ساتھ ساتھ قومی ادب و فن کی سرپرستی کا سلسلہ بھی جاری ہے اور اس وقت علمی ، ادبی اور فنی سرگرمیوں کے لئے جو سازگار فضا پائی جاتی ہے ، وہ اس سے قبل نہ تھی۔

دیگر فنون جمیلہ کے ساتھ فنکاروں کی توجہ موقبہ تمثیل‌کاری کی طرف بھی ہوئی ہے اور حال ہی میں ملک کے دونوں بازوؤں میں کئی کامیاب ادبی تمثیلات اسٹیج کی گئیں۔

بنگلہ ڈرامہ ''کالا بیلا'' کا ایک منظر

کامیاب ڈرامے سادہ و پرکار لباس اور سازوسامان کے ساتھ بھی پیش کئے جاسکتے ہیں۔

''کنچن مالا'' (ایک منظر)

"ہوتا ہے شب و روز..."

(پاکستان میں شوقیہ تھیٹر)

اشرف ذکائی

یہ سچ ہے کہ متحرک و گویا تصاویر کے رواج نے ہمارے ہاں بالخصوص، تھیٹر کا چراغ گل کر دیا ہے اور عام طور پر یہ محسوس کیا جاتا ہے کہ برصغیر میں تھیٹر کی جو بھی بُری بھلی روایت قائم ہو چکی تھی وہ بھی کسی بن کھلے پھول کی طرح مرجھا گئی۔ گزشتہ صدی کی ابتدا سے ۲۲-۱۹۲۱ء تک تھیٹر کچھ نہ کچھ سانس لیتا رہا مگر متحرک تصاویر نے اس کو ختم کر دیا۔ بعض شہروں میں پیشہ ورانہ طور پر کچھ کام ہوتا رہا اور چھ سات سال تک یہ سلسلہ چلتا رہا مگر گویا تصاویر کی آمد نے تو اس کا بازار بالکل ہی سرد کر دیا۔ لگے سرمایہ، اس دنیا میں کام کرنے والے جتھوں، پرانے اداکاروں اور تھیٹر سے ذوق رکھنے والے ہدایت کاروں، ناٹک نگاروں اور دوسرے کارکنوں کو کسمپرسی کھا گئی یا عوامی شوق کی ادلتی بدلتی رتوں نے ہضم کر لیا۔ ریڈیو کی ترویج نے اداکاروں کو پیشکش کے اس نئے آلہ سے روشناس کرایا مگر اس میں بھی صرف وہی پنپ سکے جو اداکار سے زیادہ صداکار تھے۔ تھیٹر کی ادبی روایات پہلے بھی کچھ زیادہ بلندیوں کو نہ چھو سکی تھیں مگر پھر بھی ناٹک لکھنے والے کچھ نہ کچھ لکھتے ہی رہے اور جن لوگوں کو فن تیاتر سے دلی لگاؤ تھا بہت اچھے ڈرامے اسٹیج پر لاتے بھی رہے اور لکھتے بھی رہے۔

یوں آزادی کے بعد سے تھیٹر کی روایات کو حیات نو بخشنے کی برابر کوششیں ہو رہی ہیں اور اگر ملک کے سب سے بڑے ادارۂ فنون لطیفہ آرٹس کونسل آف پاکستان کی کوششوں، نیز یونیورسٹیوں اور عوامی آرٹ تھیٹروں کی مساعی کی طرف ایک نظر ڈالی جائے تو یہ مایوسی نہیں ہوتی کہ تھیٹر کے لئے ہمارے ہاں اب کوئی امکانات باقی نہیں ہیں۔ ریڈیو پاکستان کے جشن تمثیل، اور کراچی، لاہور، ڈھاکہ اور پشاور میں شوقیہ ہنرمندانِ تیاتر کی سرگرمیوں کو اگر ہم دیکھیں تو بہت سی باتوں کا جواب از خود مل جاتا ہے۔

پہلی بات تو یہی ہے کہ ڈرامہ کو لوگ شوق سے دیکھنے آتے ہیں اور ہمارے ہاں اچھے کھیل لکھنے والوں کی ایسی کمی بھی نہیں ہے، پیشکش اور ہدایت کاری کے جوہر بھی دستیاب ہیں۔ بیشک منڈووں کی کسر ہے مگر اکثر بڑے شہروں میں کافی ہال مل سکتے ہیں جنہیں تھیٹر کی پیشکش کے لئے ٹھیک ٹھاک کیا جا سکتا ہے۔ بلکہ بعض یونیورسٹیوں کے پاس تو باقاعدہ انتظامات بھی ہیں جہاں ہمارا نوجوان تعلیم یافتہ طبقہ اسٹیج پر آکر داد تحسین حاصل کرتا رہتا ہے۔ البتہ بدلتے ہوئے ذوق کی پذیرائی میں ہمیں کئی باتوں کا اہتمام ضرور کرنا پڑتا ہے۔ ایک تو یہ کہ پیشکش وقت طلب نہ ہو اور دقت طلب بھی نہ ہو، یعنی کم سے کم وقت میں، کم سے کم مالی و انتظامی سربراہی کے ساتھ کھیل پیش کیا جا سکے۔ ساز و سامان سادہ ہو، سیٹ اور لباس لازماً "زرق برق" نہ ہوں اور دور از کار مناظر سے پرہیز کیا جائے تاکہ معمولی بساط پر بھی اداکاری اور صداکاری کے جوہر دکھلائے جا سکیں۔ قصہ کی خوبی، مکالموں کی چستی اور پیشکش کی دوسری نوک پلک سے ہم کسی بھی شامِ تیاتر کو ایسا دلچسپ، متنوع اور پُر لطف بنا سکتے ہیں کہ دیکھنے والے جب گھر واپس جائیں تو "ایک بار دیکھا ہے، ہزار بار دیکھنے کی ہوس ہے" کا احساس لئے ہوئے جائیں — اور ایسا کرنا چنداں دشوار نہیں۔ کیونکہ میں نے دیکھا ہے کہ لوگ بے جان تصاویر، بے روح عکوس اور فلم کی مہمل نغمہ سرائی سے گھبرا چکے ہیں اور اگر خوش ذوقی کا مظاہرہ کیا جائے تو وہ لوگ بھی جنہیں ہم درجہ چہارم کے تماشائی کہتے ہیں، ایسی چیزوں کو پسند کرنے لگتے ہیں بلکہ

آہستہ آہستہ مذاق سدھرتے چلے جاتے ہیں۔ چنانچہ ابتدائی فلموں کی بد ذوقی کے مقابلہ پر اب کی فلم سازی کو دیکھیں تو اصلاح کا رجحان معدوم نظر نہیں آئے گا۔ گو جمالیاتی پستی اور بلندی کے درمیان ابھی بہت سی خلیجوں کو ہمیں پاٹنا ہے، مگر مایوسی کی بھی کوئی وجہ نہیں ہے۔

اب اگر میں حال کی شوقیہ پیشکشوں کا ہی ذکر کروں تو آپ میرے ہمخیال ہوں گے کہ تھیٹر کی طرف سے مایوسی کا واقعی کوئی جواز نہیں ہے۔ سب سے پہلے میں کراچی کا ہی ذکر چھیڑتا ہوں۔

یہاں "آرٹس کونسل آف پاکستان" کسی نہ کسی عنوان ہمارے ثقافتی ورثہ کی ترویج اور تحفظ کا ایک نہ ایک اہتمام کرتی ہی رہتی ہے۔ فنون جمیلہ میں نقاشی کی پرورش و تہذیب کے ساتھ ساتھ فن اداکاری کی طرف بھی اس کی توجہ ہے اور با خوش ذوق تھیٹر کے پرانے رسیا ہیں مل بیٹھ کر یہ سوچتے رہتے ہیں کہ کوئی شام تیاتر کس طرح منائی جائے جو دلدادگان فن اور عام تماشائیوں سب کو ہی رجھائے۔ چنانچہ ایسے ہی چند فن پرور حضرات نے پچھلے دنوں تین طربیہ کھیل بیک وقت اسٹیج پر پیش کئے اور ایک ایسی سہانی شام کا انتظام کر دیا جو ہمیں "ھل من مزید" کا نعرہ بلند کرنے کی دعوت دیتی ہے۔

یہ تینوں ایکانکی ڈرامے تھے۔ ایک ہی شام میں تینوں کھیل لانے کی تجویز یوں رکھی گئی تھی کہ تینوں کھیلوں میں تین ہی اداکار تھے اور تینوں میں وہی کام کرتے تھے۔ یعنی ہر اداکار کو تین مختلف روپ دھارنے تھے۔ ان تینوں کھیلوں کی ہدایتکاری بھی ایک ہی صاحب نے کی۔ ابراہیم نفیس صاحب۔ جن کی ادا و صدا کے جوہر دیکھنے اور سننے کا لوگوں کو پہلے بھی اتفاق ہو چکا ہے۔ ان کے ساتھ طلعت صدیقی تھیں اور محمد علی تھے۔

پہلا کھیل "تکڑم" تھا جسے مورٹن کے کھیل "کاکس اینڈ باکس" سے اردو اسٹیج کے لئے مختار کیا گیا تھا کھیل میں ایک زلیخا بائی ہیں اور روایتی لینڈ لیڈی کی تمام صفات سے لیس۔ وہ اپنے گھر کا ایک کمرہ بیک وقت دو کرایہ داروں کو کرایہ پر اٹھا دیتی ہیں۔ پہلا کرایہ دار کسی پریس میں کام کرتا ہے اور ہمیشہ رات کی شفٹ میں کام کرتا ہے۔ دوسرا کرایہ دار کسی ٹوپی بنانے والے کے ہاں کام کرتا ہے، صبح سویرے اٹھ کر چلا جاتا ہے اور رات گئے آتا ہے۔

دونوں کو ایک ہی کمرہ ملا ہوا ہے مگر دونوں یہ سمجھتے ہیں کہ دوسرے صاحب کسی اور کمرہ میں رہتے ہیں مگر ایک دفعہ زلیخا بائی کی شامت آجاتی ہے کیونکہ دونوں کرایہ دار کسی گڑبڑ کی وجہ سے بیک وقت "اپنے" کمرہ میں اپنے آپ کو ایک دوسرے کے مقابل پاتے ہیں! کافی طوفان اٹھتے ہیں۔ بڑی گڑبڑ مچتی ہے مگر آخر کار معاملہ صلح صفائی کے ساتھ طے پا جاتا ہے۔ حاضرین کے حظ و لطف کا احساس ان کے چہروں سے نمایاں تھا، مگر دوسرا کھیل "گذارش ہے" جب پیش ہوا تو لوگوں کو اور بھی زیادہ لطف آیا۔ یہ پنجاب کے کسی گاؤں میں چودھری صاحب کی بیٹھک کا قصہ تھا۔ ایک توانا مگر دل کا مریض دیہاتی چودھری صاحب کے پاس آتا اور ان کی اکلوتی لڑکی کے لئے پیغام شادی دیتا ہے۔ پہلے سین کے بعد کئی سین بڑی افراتفری بلکہ "[illegible] سے لبریز" آتے جاتے ہیں مگر آخر کار چودھری صاحب خود اس قضیہ کا فیصلہ بڑے رکھ رکھاؤ کے ساتھ کر دیتے ہیں اور لوگ اصغر بٹ کے لکھے ہوئے تیسرے ڈرامہ کو دیکھنے کے لئے اپنی بڑھتی ہوئی ہنسی کو روک کر بیٹھ جاتے ہیں۔

اس کھیل میں نتھو دھوبی آتا ہے، اس کی بیوی خیری آتی ہے جو کسی لوہار کی بیٹی ہے۔ ان کی ابھی شادی ہوئی ہے۔ عین شادی کی رات کو ڈاکو آ جاتے ہیں جو ان دونوں کو پکڑ کر کوٹھڑی میں مقفل کر دیتے ہیں اور خود شراب پینے چلے جاتے ہیں۔ دھوبی بڑا باتونی ہے مگر دھان پان ہے اور ڈرا سہما ہوا ہے لیکن خیری بلا کا چلتا پرزہ ہے اور بڑی ہوشیاری اور حاضر دماغی سے کام لے کر اپنے آپ کو اور اپنے میاں کو اس قید سے آزاد کراتی ہے۔

تینوں کھیلوں میں منجھے ہوئے اداکار محمود علی کا کام بڑا عمدہ رہا۔ اسٹیج کی اداکاری، اظہار جذبات، چہرہ کا اتار چڑھاؤ اور مکالموں پر قدرت واقعی قابل داد تھی۔ "تکڑم" میں ابراہیم نفیس کا کام بھی معیاری تھا۔ نتھو خیری میں طلعت صدیقی نے شروع سے آخر تک اپنا رول خوب نبھایا۔

سامان کے لئے کچھ زیادہ تگ و دو نہیں کرنی پڑی تھی۔ معمولی سیاہ پس منظری پردے نے ہر موقع پر خاصا کام دیا۔ اسٹیج کی روشنیاں اور میک اپ بھی ٹھیک رہے اور کچھ گڑبڑ نہیں ہوئی، جو بجائے خود ایک کارنامہ ہے ورنہ شوقیہ تھیٹروں میں

مصنوعی چہرہ سازی کے سلسلے میں عجیب عجیب بدحواسیاں سرزد ہوا کرتی ہیں۔

اب میں آپ کو ذرا سی دیر کے لئے پشاور یونیورسٹی کی طرف لے چلتا ہوں۔ یہاں بھی شوقیہ تیاتر نوازوں کا اچھا خاصا مجمع اپنے ذوق کی پذیرائی کے لئے بیتاب رہتا ہے۔ بلکہ ایک ڈرامہ یونٹ بنا ہوا ہے جو یونیورسٹی میں ایک مستقل تھیٹر کی تعمیر کا خواب ہی نہیں دیکھ رہا ہے بلکہ اس کی تکمیل کے لئے پوری طرح کوشاں بھی ہے۔ اگر یہ تھیٹر بن گیا تو اس جامعہ کے مختلف شعبوں کے شیدایان تیاتر اپنی اپنی صلاحیتوں کا بڑا اچھا مظاہرہ کر سکیں گے۔ ماضی میں "رومیو جولیٹ" اور "ہیملٹ" جیسے ڈرامے پیش ہو چکے ہیں۔ ہم سب جانتے ہیں کہ ڈرامہ ایک مشکل اور پیچیدہ فن ہے اور خصوصی صلاحیت کے ساتھ خصوصی مشق و مزاولت بھی چاہتا ہے۔ اب یہ جگہ طلبہ کی درسگاہ تھی اس لئے قدرتی بات تھی کہ ان کی توجہ اپنی تعلیمی ضروریات اور پڑھے ہوئے اسباق کے دہرانے پر زیادہ مرکوز تھی اس لئے شیکسپیر کے ساتھ ان کا فکری لگاؤ انہیں اسٹیج پر بھی لے آیا تاکہ ڈرامہ کی نظری باتوں کے سمجھنے کے ساتھ ساتھ عملی باتوں سے بھی آگاہی ہوتی رہے۔ تشخص انگاری انسانی احساسات و تجربات کا بہترین وسیلۂ اظہار ہے۔ یہ ایک طرح خود انسان کو اپنی خودی کی نمائش کرنے اور دوسروں کی خودی کو اپنے اوپر طاری کر کے پیش کرنے کا نام ہے۔ چھپے ہوئے صفحے پر جو کچھ لکھا ہے اسے بصری و سماعی ڈھانچے میں لانا ایک واقعہ، احساس، یا کیفیت یہم ورجا کو "دوبارہ زندہ" کرنے کے مترادف ہے ـــ اور ظاہر ہے کہ یہ بڑا مشکل کام ہے، مگر جب مکمل ہو جائے تو ذہنی طمانیت، روحانی کشاکش اور تسکین احساس کا نمایاں نمونہ بن جاتا ہے۔ پھر اونچی قسم کی موسیقی اور نفیس ترین شاہکار نقاشی اس کا مقابلہ کر سکتی ہے ورنہ کوئی چیز نہیں۔

پشاور کے طلبۂ جامعہ نے بہت سی باتوں کو سوچ کر ایڈورڈ کالج کے ہال کو ہی پسند کیا۔ "ہیملٹ" کو پیش کرنا ویسے بھی مشکل تھا اور کام کرنے والے ناتجربہ کار بھی تھے۔ مگر اداکاروں نے کافی محنت سے کام کیا اور معمولی ساز و سامان سے اچھی پیشکش کی داد حاصل کی۔ ان ڈراموں کے علاوہ اور بھی ڈرامے یہاں پیش ہوتے رہتے ہیں۔

راولپنڈی میں کھلے تھیٹر کی ابتدا ہو چکی ہے۔ اور گھوڑا گلی کے لارنس کالج میں بھی تھیٹر کا چرچا ہو رہا ہے۔

اب میں چاہتا ہوں کہ مشرقی پاکستان کی طرف بھی آپ کچھ نظر ڈالیں کیونکہ یہ راگ رنگ کا دیس ہے۔ رقص و نغمہ کی سرزمین ہے اور فن تیاتر کی یہاں جگہ جگہ پرورش ہوتی رہتی ہے۔

"ڈھاکہ آرٹ سینٹر" کا تعارف اب ضروری نہیں رہا ہے۔ اس نے کئی شوقیہ ڈرامے اسٹیج کر کے یہاں دھوم مچا رکھی ہے۔ "ڈھاکہ انسٹی ٹیوٹ آف انجینئرز" میں اس نے "کنچن مالا" چار راتوں تک مسلسل پیش کیا۔ یہ ایک روایتی بیہہ تھا۔ شمس الدین ابو الکلام نے اس پر مبنی ایک ناول بھی حال ہی میں لکھا ہے۔ واقعہ یہ ہے کہ ڈھاکو نے جو پیشکش اسٹیج کی تھی وہ ناول اور بیہہ دونوں ہی کا مرہون منت تھا۔

"کنچن مالا" ایک خوبصورت لڑکی ہے جو سپیروں کے گھر میں پیدا ہوئی ہے۔ یہ لوگ کشتیوں میں رہتے ہیں۔ مغربی پاکستان کے بری خانہ بدوشوں کی طرح ان بحری خانہ بدوشوں کا بھی کوئی گھر نہیں ہوتا اور جہاں تہاں اپنی کشتی میں سفر کرتے رہتے ہیں۔ مالا (ممتاز کریم) ان "بیدیوں" یعنی سپیروں کی لڑکی ہے۔ وہ آموں کے ایک جھنڈ میں اپنا راستہ بھول جاتی ہے اور یہ نہیں جانتی کہ اپنے قبیلہ میں کس طرح واپس جائے۔ یہاں اس کی ملاقات کنچن (گوہر جمیل) سے ہو جاتی ہے۔ محبت ہو جاتی ہے۔ سپیروں کا ایک نوجوان لڑکا ہے مدن (دلیو کمار)، اسے ان کی محبت کا علم ہو جاتا ہے اور وہ چونکہ خود مالا کا شیدائی ہے اس لئے جلن کی وجہ سے درپے آزار ہو جاتا ہے۔ مالا کنچن کو قبیلہ میں لے آتی ہے اور اسے سپیروں میں شامل کرنے کے لئے کہتی ہے مگر اس کی بات نہیں مانی جاتی۔ ادھر مدن مالا سے اپنی شادی رچانے کا اہتمام کر لیتا ہے۔ اس کی باتیں ایک اور لڑکی چمپا سن لیتی ہے۔ چمپا مدن پر فدا ہے اور مدن اس سے فائدہ اٹھا کر اسے زہریلا پھل کھانے کو دیتا ہے تاکہ وہ مر جائے اور اس کی ٹوہ نہ لے۔ مالا اور کنچن سپیروں کے جنگل سے نکل بھاگتے ہیں مگر مدن ان کے پیچھے پڑا ہوا ہے اور وہ ان دونوں کو زہریلا سانپ چھوڑ دیتا ہے لیکن قسمت انہیں بچا لیتی ہے اور

سپیروں کا سردار عین اس موقع پر آ جاتا ہے۔ سانپ پلٹ کر مدن ہی کو کاٹ لیتا ہے اور حبیب و محبوب ہمیشہ کے لئے سپیروں کا ساتھ چھوڑ کر اس وسیع دنیا میں نکل جاتے ہیں۔

یہ رقص و اداکاری کا ڈرامہ ہے جو اظہار کی شاید سب سے پیچیدہ شکل ہے، بالخصوص اس وجہ سے کہ یہ "چپ سوانگ" بھی ہوتا ہے، یعنی الفاظ بولے نہیں جاتے بلکہ صرف حرکات و سکنات سے پورا ڈرامہ پیش کیا جاتا ہے۔ "کنچن مالا" کے دیکھنے سے یہ بات واضح ہو جاتی تھی کہ بغیر مکالموں کے بھی ڈرامہ پوری قوت و توانائی اور صفات اداکاری کے ساتھ پیش کیا جا سکتا ہے۔ ٹیکنیک کے اعتبار سے بھی یہ کھیل بڑا کامیاب رہا۔

بہر نوع ان چند جزوی باتوں کے تعارف سے اس بات کا ہمیں ضرور علم ہو جاتا ہے کہ ملک میں تھیٹر کی روایات کو زندہ رکھنے کے لئے جملہ لوازمات موجود ہیں، اور اس بات کی بڑی ضرورت ہے کہ اس فن کی آبیاری کے لئے ہر صلاحیت کے لوگ اپنی اپنی جگہ کچھ نہ کچھ کام کرتے رہیں اور اپنے علاقوں کی روایاتی کہانیوں کی جھلکیاں اور جدید تجربات انسانی کو اگر لمبے کھیلوں کی صورت میں نہیں تو ایکانکی ناٹکوں کی شکل میں ہی پیش کرتے رہیں۔ اسی طرح فن تیاتر کو زندہ رکھا جا سکتا ہے جس کے ذریعے ہم اپنی تاریخ ثقافت اور زندگی کے ماضی، حال اور مستقبل کی داستان کو محفوظ کر سکتے ہیں؛

★

تبصرہ:

"نگار" رامپور

"نگار" کا سفرِ حیات بھی خاصا طویل رہا ہے اور یہ اردو کے ادبی رسائل میں شاید سب سے طویل العمر مجلّہ ہے۔ بھوپال میں جنم لینے کے بعد یہ لکھنؤ آ گیا۔ شباب سے شیب تک کئی منزلیں یہاں طے کیں۔ مگر یکایک اس کی ایک کرن کراچی کے مطلع سے بھی نمودار ہونے لگی اور لکھنؤ سے بھی جلوہ دکھاتی رہی۔ مگر آثار یہی تھے کہ اب تک جو ثابت تھا سیارہ ہوا چاہتا ہے اور اب تو "نگار" ہند "نگار پاکستان" کی مستقل شکل اختیار کر ہی چکا ہے۔ فطرت میں چونکہ خلا محال ہے اس لئے یہ کیسے ممکن تھا کہ ہند میں محفل ادب سے یہ نگار آتشیں رخ یوں اچانک پردہ کر جائے، اسلئے رامپور والوں نے اس طائر کے پر باندھ کر اپنے شہر سے بھی تاؤ دینے شروع کر دئے ہیں۔

اس وقت تک اس کے تین شمارے موصول ہو چکے ہیں اور یہ دیکھ کر طمانیت ہوتی ہے کہ گو اس طائر خوش پرواز کی شاخِ آشیاں بدل چکی ہے مگر طرزِ نوا گری میں کوئی خاص فرق نہیں آیا۔

ہمیں معاصر کی اس رائے سے بھی اتفاق ہے کہ غالب پر لکھنے والے حضرات اپنی قلمی کاوشوں کو اِدھر اُدھر چھپوانے کی بجائے برصغیر کے صرف تین مجلّوں سے مختص کر لیں یعنی ہندوستان میں "نگار" (رامپور) اور "آجکل" (دہلی) اور پاکستان میں "ماہِ نو" (کراچی)، اس میں شک نہیں کہ اس طرح غالب پر جو کام برصغیر میں ہو رہا ہے وہ پراگندگی، گمنامی اور گمشدگی کے سانحہ سے بچ جائے گا۔ اس سلسلہ میں لکھنے والوں کا ایک معین "فورم" بننے سے تحریریں بھی محفوظ ہو جائیں گی اور قارئین بھی غالب پر پڑھنے کے لئے اِدھر اُدھر ٹامک ٹوئیے مارتے نہیں پھریں گے۔ جہاں تک ادارہ ماہِ نو کا تعلق ہے اس نے اس روایت کو، جو وہ آزادی سے قبل "آجکل" میں قائم کر چکا تھا، پاکستان میں بھی برابر قائم رکھا ہے اور ان پندرہ سولہ سال میں غالب پر اتنا کچھ تحریری و تصویری مواد شائع کر دیا ہے جو بجائے خود غالبیات پر ایک اہم کام متصور ہوگا۔

"نگار" (رامپور) میں غالبیہ کے تحت جو دستاویزی مندرجات شائع کئے جا رہے ہیں ایک اچھی تجویز ہے اور اس پر عمل بھی خوش ذوقی کے ساتھ کیا جا رہا ہے۔

امید ہے کہ ان فرد فرد غالب پاروں کو اوراقِ گل کی طرح منتشر نہیں ہونے دیا جائے گا بلکہ کتابی صورت میں لا کر انہیں ایک دستنبو کی شکل دے دی جائے گی۔ (ظ۔ ق)

ماہ نو، کراچی مئی ۱۹۶۳ء

صور اسرافیل

قاضی نذر الاسلام کی منتخب شاعری کے اردو تراجم مع مقدمہ

قاضی نذر الاسلام مسلم بنگال کی نشاۃ الثانیہ کا پہلا نقیب اور داعی ہے جس کے گرجدار آہنگ نے صور اسرافیل کی طرح قوم کے تنِ مردہ میں پھر حیاتِ نو پھونک دی تھی۔ اب یہ لاوا ایک آتش خاموش کی مانند ہے مگر اس مغنی آتش نوا نے ہمارے دلوں میں حبِ وطن، حبِ ملت اور حب زندگی کی جو قندیل روشن کر دی ہے وہ سدا جلتی رہے گی۔

نذر الاسلام کی زندگی بخش شاعری اور روح پرور گیتوں کا

یہ چیدہ انتخاب پندرہ اہل فن کی کاوشوں کا نتیجہ ہے۔

کتاب خوبصورت اردو ٹائپ میں چھاپی گئی ہے۔ کتاب کا ہر حصہ دیدہ زیب آرٹ کی جدولوں سے

مرصع جسے مشرقی پاکستان کے نامور نقاش

زین العابدین نے خاص اس مجموعہ کیلئے تیار کیا ہے

قیمت ایک روپیہ ۵۰ پیسہ

ادارہ مطبوعات پاکستان۔ پوسٹ بکس نمبر ۱۸۳ کراچی

آشوب دہر

(قلت خوراک کے خلاف عالمی جنگ)

بھوک کی آگ صرف جسم ہی نہیں روح اور تخیل کی کونپلوں تک کو جھلسا دیتی ہے بلکہ اس کا پہلا حملہ تو احساسات لطیف اور احساس مروت پر ہوتا ہے۔ اور پھر بھوک آداب کے سانچوں میں نہیں ڈھل سکتی۔ آج بنی نوع انسان کے سامنے جو بڑے بڑے معاشرتی اور سماجی مسائل ہیں ان میں بھوک سب سے اہم ہے۔ بھوک کا سیاہ اور منحوس عفریت اب بھی انسانی تہذیب اور خوشیوں پر اپنا پنجہ پھیلائے ہوئے ہے۔ آج بھی اس کا سایہ بھری پری انسانی بستیوں کو اجاڑ دیتا ہے اور ان میں ماتما۔ پیار۔ تہذیب اور محبت کی جوت بجھ جاتی ہے۔ آج کی مہذب دنیا میں جب کہ انسان علم و ادب سے عظیم لائبریری بھر چکا ہے۔ اس کی آرٹ گیلریوں میں بہترین فن کے مجسمے ہیں۔ اس کے تخیل میں عظیم منصوبے جنم لے رہے ہیں۔ اس کی انگلیاں برق و باد پر حکمرانی کر رہی ہیں اور آدم خاکی زمین سے بلند ہو کر خلا کی پہنائیوں کو چیرتا ہوا چاند پر کمندیں پھینک رہا ہے آدم کے بیٹے اور بیٹیاں بھوک سے بارہا تلملاتی ہیں۔ آج بھوک صرف ایک جغرافیائی یا قدرتی المیہ نہیں ہے۔ اس لئے کہ سائنس کی عظیم قوتوں نے انسان کو وہ اختیار دے دیا ہے کہ وہ ہر قسم کی غذا نہ صرف زمین سے زیادہ سے زیادہ مقداروں میں اگائے بلکہ اب تو وہ مصنوعی غذائیں بنا رہا ہے۔ یہی نہیں بلکہ اب سائنس کی ترقی سے غذائیں مدتوں تک محفوظ رکھی جا سکتی ہیں۔ آج بھوک قدرتی المیہ سے زیادہ ایک معاشرتی اور سماجی مسئلہ بن گیا ہے۔ پہلے زمانے میں قحط قدرت یا موسموں کا عتاب تھا لیکن آج بھوک عموماً انسان کی غلطیوں کا نتیجہ ہے۔ نوع انسانی اس قسم کی بھوک کے خلاف جنگ کرنا چاہتی ہے۔ اگرچہ اس میں ایک حد تک دخل کثرت آبادی، زمین کی فصلوں پر زیادہ انسانوں کا پیٹ پالنے کا بوجھ اور شرح آبادی میں اضافہ بھی ہے۔ لیکن ہم دیکھتے ہیں کہ جدید مواصلات اور تیز رفتار ذرائع نے انسان کو قدرت دی ہے کہ وہ غذاؤں کی حمل و نقل جلد کر سکتا ہے۔ یہ عذر کچھ معقول نہیں رہتا۔ اور پھر یہ امر سامنے ہے کہ لازمی طور پر وہ ملک یا سماج بھوکے نہیں جن کی آبادی زیادہ سے زیادہ ہے آج اقوام متحدہ کا عالمی ادارہ اسی جنگ کا ہراول دستہ ہے۔ اور اس کے تعاون سے سائنس داں اور ماہرین معاشیات مل کر نوع انسانی کی صدیوں پرانی بھوک کو مٹانے کے لئے میدان میں آتے ہیں۔

گزشتہ دنوں ساری دنیا اور پاکستان میں ۲۱ سے ۲۸ مارچ تک اقوام متحدہ کے زیر اہتمام بھوک سے آزادی کا ہفتہ منایا گیا تھا۔ ہمارے ملک میں بھی بڑے گہرے فکر اور خلوص سے بھوک کے حلقوم پر زندگی نے ہاتھ رکھ دیا ہے۔ اس سلسلہ میں پورے ملک میں مذاکرے ہوئے، مجالس ہوئیں۔ سائنس والوں اور دانشوروں نے لیکچر دیئے اور بھوک کے خلاف عمل کیا گیا کیونکہ یہ ایک حقیقت ہے کہ آئندہ کی دنیا کے لئے سب سے بڑا مسئلہ بڑھتی ہوئی نسل کو صحیح اور مناسب غذا دینا ہے۔ آبادی تیزی سے بڑھ چکی ہے اور بڑھ رہی ہے لیکن ذرائع پیداوار میں یہ اضافہ جلد ممکن نہیں۔

اقوام متحدہ کے پاکستانی صدر چودھری محمد ظفر اللہ خاں کے خیالات اس اہم اور تشویش ناک مسئلہ کی طرف صحیح رہنمائی کرتے ہیں۔ انہوں نے کہا۔ "آج نوع انسانی کو کئی مسائل درپیش ہیں۔ ان میں سب سے زیادہ اہم اور سنگین معاملہ بھوک اور افلاس کا ہے۔ کئی مسائل مثلاً ایٹمی تجربات پر پابندی، تخفیفِ اسلحہ اور ایٹم کا پُرامن استعمال اور خلائی سفر کے معاملات ایسے ہیں جن پر مذاکرات اور قوموں کے باہمی معاہدوں سے حل ممکن ہے لیکن ایک مسئلہ اس سے بھی زیادہ نازک ہے اور یہ

فوری طور سے کوئی معاہدہ نہیں ہو سکتا۔ عالمی بھوک کا مسئلہ صرف
دستخط کر کے تو ہم نہیں حل کر سکتیں۔ اس کو مٹانے کے لئے لگاتار
ایک عرصہ تک انسانی ذہانت اور مادی ذرائع کا صحیح استعمال کرنا
ہوگا۔ اس سلسلہ میں اقوام متحدہ کے شعبۂ خوراک وزراعت کی
بھوک کے خلاف مہم بڑی مقدس اور اہم جنگ ہے۔ اس سے
معلوم ہوا ہے اس مسئلہ کو حل کیا جا سکتا ہے۔ بھوک ایک ایسا داغ
ہے جس کو انسان کی پیشانی سے مٹانا ہوگا۔ آج اس کا مٹانا ناممکن
نہیں۔ اس سلسلہ میں اقوام متحدہ کے غذا اور زراعت کے شعبے
نے بتایا ہے کہ آج ہر ۳ ہزار انسانوں میں سے کم از کم آدھے یا تو
بھوکے ہیں یا انہیں کو مناسب غذا نہیں ملتی۔ دنیا کے غذائی ذرائع
کو نہ صرف اتنا بڑھنا چاہئے کہ وہ ان سب کو مکمل اور پوری غذا بہم
پہنچائے بلکہ اس بڑھتی ہوئی آبادی کو بھی جو ہر سال ۵ کروڑ کی رفتار
سے پھیل رہی ہے پیٹ بھرنے کے لئے سامان دے۔

انسانی بھوک کی ہمیشہ سے کئی قسمیں رہی ہیں:-

۱۔ قدرتی اور جغرافیائی بھوک۔ موسموں اور بارشوں کی کمی سے
سے ہوتی ہے۔

۲۔ معاشرتی اور سماجی حالات کے تحت پیدا شدہ قحط۔

۳۔ غذا کا نہ ملنا یا کم ملنا۔

۴۔ غلط اور حیاتین سے خالی غذا یا مناسب غذائیت کا نہ ہونا۔

دنیا کو آخر الذکر دو بھوکوں سے بھی لڑنا ہے۔ بتایا گیا ہے
کہ غذائیت میں صحیح توازن نہ ہونے سے بھی انسان بھوکا رہتا ہے۔
اندازہ ہے کہ دنیا کے تقریباً سو کروڑ باشندے نامناسب غذائیں
کھاتے ہیں۔

اب اپنے ملک کی طرف آیئے۔ ہمارے وزیر خوراک نے
اقوام متحدہ کے زیر اہتمام "بھوک سے آزادی" کی مہم پر ایک پیغام میں
کہا ہے کہ دنیا سے اور پاکستان سے بھوک مٹانے کے لئے حکومت
اور نجی اداروں کا تعاون بڑا ضروری ہے۔ اس کے علاوہ سائنسدان،
دانشور اور ماہرین تعلیم مل کر باہمی ایکے سے بھوک کے خلاف مقدس جنگ
لڑیں تاکہ نوع انسانی کی اس وسیع بیماری کو مٹایا جا سکے۔ آپ نے
کہا کہ بھوک ایک بیماری ہے جس کا علاج ضروری ہے۔

واقعی یہ حقیقت بھی ہے کہ افریقہ اور ایشیا کی عظیم آبادیاں
بری طرح اس بھوک سے متاثر ہیں۔ اور اس کی مختلف شکلیں گھناؤنے
انداز میں سامنے آکر سماج کو ڈراتا ہلاتی ہیں۔ اندازہ ہے کہ صرف ایشیا
اور افریقہ میں ہر روز ۲ یا ۳ ہزار آدمی صرف بھوک سے ایڑیاں رگڑ رگڑ
کر مر جاتے ہیں۔ اس کے برعکس دنیا کی آبادی کا کافی حصہ زیادہ خوراک
اور غذا کی زیادتی سے مرتا ہے۔ معاملہ دراصل متناسب غذائیت کا
ہے۔ اور یہ بات تعلیم، پروپیگنڈا اور نشر و اشاعت سے لوگوں کو سمجھائی
جا سکتی ہے۔ بھوک بعض اوقات سماجی حالات کا نتیجہ ہوتی ہے۔
مثلاً غذاؤں کا منافع کی غرض سے اندوختہ کرنا یا نفع کی خاطر بیچ
دینا۔ منڈیوں کی تلاش ــــ تجارتی اتار چڑھاؤ۔ مصنوعی قحط اور
جنگیں۔ ان حالات کو روکنا اور بھوک کو ختم کرنا لازم و ملزوم ہے۔

اس سلسلہ میں یہ امر واضح ہے کہ حکومت ملک میں غذائی
پیداوار کے لئے کئی اہم منصوبوں پر عمل کر رہی ہے۔ پہلے پانچسالہ
منصوبے کے بعد اب دوسرے پانچ سالہ منصوبے میں غذائی پیداوار
میں اضافے کے لئے اہم کام ہو رہا ہے۔ قیام پاکستان کے بعد سے
دریاؤں پر نئے نئے بند باندھے گئے ہیں۔ حالیہ انقلابی حکومت نے ملک
سے بھوک اور افلاس کو مٹانے کے لئے غذائی اضافہ پر خاص زور
دیا ہے۔ اس سلسلہ میں حکومت نے زمینی پیداوار میں اضافہ کے لئے
زیادہ سے زیادہ زمینوں کو سرسبز اور لہلہاتے کھیتوں میں بدلنے کی
کوشش کی ہے۔ جامع منصوبوں سے مشرقی اور مغربی پاکستان میں
فصلوں کو بہتر بنانے اور کیڑوں سے بچانے کے لئے ملکی اور غیر ملکی
ماہرین کے ساتھ تعاون سے کیا جا رہا ہے۔ نیز:-

۱۔ جنگل اگانے پر زور دیا جا رہا ہے۔

۲۔ سیم اور تھور کے خلاف مہم جاری ہے جو بڑا خطرہ ہے اور
جس سے ہر سال لاکھوں ایکڑ زمین ناقابل کاشت
ہو رہی ہے۔

۳۔ نہروں کے کنارے بند باندھ کر سیلابوں کی روک تھام

۴۔ نئے پشتوں اور بندوں کی تعمیر۔

۵۔ بہتر بیجوں کی تقسیم۔

حال میں ہمارے ہاں زراعت اور آبپاشی کے کئی بڑے منصوبے
تکمیل کو پہنچے ہیں۔ کوٹری بیراج۔ دریائے سندھ پر گدو بیراج
کی تکمیل۔ وارسک بند۔ راول بند اور مالاکنڈ منصوبے کی تکمیل

(باقی صفحہ ۶۲ پر)

آشوب دہر : بقیہ ص۵۹

مشرقی پاکستان میں کرنافلی پروجیکٹ اور کپتائی بند کی تکمیل وہ عظیم کارنامے ہیں۔ جو حکومت نے بنجر زمینوں سے غذا حاصل کرنے کے لئے انجام دیئے ہیں۔ اب مسئلہ صحیح اور متوازن غذا، اس کی صحیح تقسیم اور معاشرتی احساس کا ہے۔ تو اس سلسلہ میں سائنس داں۔ ماہرین معاشیات اور غذا و زراعت کے ماہرین کو چاہئے کہ وہ عام آبادی کے مسائل کو جلد سے جلد حل کرنے میں مدد دیں۔ تعلیم اور ہدایت سے لوگوں میں ایک دوسرے کی مدد کا جذبہ اگر بیدار ہو جائے تو بھوک کے خلاف جنگ میں فتح ہوگی اور اہل وطن بھوک کی غلامی سے چھٹکارا پائیں گے، کیونکہ تہذیب اور شائستگی کے تمام دعوے اس وقت تک باطل ہیں جب تک آبادی کے افراد بھوک سے تلملا رہے ہیں شاید اسی لئے تمام پیغمبروں اور ہادیوں نے سب سے پہلے بھوک کے خلاف جنگ کی ہے۔ اور اسے تمام مصیبتوں اور برائیوں کی جڑ بتایا ہے ◆

"ماہِ نو" میں مضامین کی اشاعت سے متعلق شرائط

۱۔ "ماہ نو" میں شائع شدہ مضامین کا معقول معاوضہ دیا جائے گا جس کے بعد وہ ادارہ کی ملکیت ہوں گے اور وہ انہیں حسب منشا ہر طور سے استعمال کرنے کا مجاز ہوگا۔

۲۔ مضامین بھیجتے وقت مضمون نگار حضرات "ماہ نو" کے معیار کا خیال رکھیں اور یہ بھی تحریر فرمائیں کہ مضمون غیر مطبوعہ ہے اور اشاعت کے لئے کسی اور رسالہ یا اخبار کو نہیں بھیجا گیا ہے۔

۳۔ ترجمہ یا تلخیص کی صورت میں اصل مصنف کا نام اور دیگر حوالہ جات دینا ضروری ہیں۔

۴۔ ضروری نہیں کہ مضمون موصول ہوتے ہی شائع ہو جائے۔

۵۔ مضمون کے ناقابل اشاعت ہونے کے بارے میں ایڈیٹر کا فیصلہ قطعی ہوگا۔

۶۔ ایڈیٹر کو مسودات میں ترمیم و تنسیخ کرنے کا مجاز ہوگا مگر اصل خیال میں کوئی تبدیلی نہ ہوگی۔

۷۔ مضامین صاف اور خوش خط کاغذ کے ایک طرف تحریر کئے جائیں۔

۸۔ پتہ بہت صاف اور مکمل درج کیجئے۔

۹۔ اپنے مضامین نظم و نثر کی نقول اپنے پاس بھی رکھئے۔ غیر طلبیدہ اور ناقابل اشاعت مضامین کی واپسی کے لئے ڈاک کے مناسب ٹکٹ روانہ کیجئے۔

(ادارہ)

صحت اور دانت

صحت کا دار و مدار دانتوں پر ہے۔ دانتوں کو مضبوط اور مسوڑھوں کو صحت مند رکھنے کے لئے ضروری ہے کہ انھیں کیڑا لگنے سے محفوظ رکھا جائے کیونکہ اس سے بڑی بڑی بیماریاں پیدا ہوسکتی ہیں۔ ہمدرد منجن' جسے بے شمار تجربوں اور تحقیقات کے بعد مکمل کیا گیا ہے دانتوں کے لئے بے حد فائدہ مند ہے۔ مندرجہ ذیل اسباب کی بنا پر آپ کو اسی کا انتخاب کرنا چاہیے۔

صفائی اور مالش:- ہمدرد منجن اندر تک پہنچ کر دانتوں کو اچھی طرح صاف کرتا ہے۔ انگلی کی مدد سے مسوڑھوں کی بھی مالش اور ورزش ہو جاتی ہے جو دانتوں کے لئے بے حد ضروری ہے۔

ہمدرد منجن کے باقاعدہ استعمال سے نکوٹین وغیرہ کے دھبے دور ہو جاتے ہیں اور دانتوں میں قدرتی چمک پیدا ہو جاتی ہے۔

خوش ذائقہ:- ہمدرد منجن خوش ذائقہ ہے اور اس کے ٹھنڈے اثرات بچے اور بڑے سب پسند کرتے ہیں۔

خوش گوار:- ہمدرد منجن کی دیرپا خوشبو منہ کی بدبو کو دور کر دیتی ہے۔

ہمدرد منجن

مسکراہٹ میں کشش اور دانتوں میں سچے موتیوں کی چمک پیدا کرتا ہے

ہمدرد دواخانہ (وقف) پاکستان

کراچی ڈھاکہ لاہور

چین سے دو خط
انڈین ایجنسی جنرل
چنگ کنگ چین
۲۲-جولائی ۱۹۴۲ء
...... مجھے کچھ عرصہ سے گردن پر ایک قسم کی تکلیف ہے
دانے سے ہیں جن کی وجہ سے خارش بہت ہوتی ہے
نشانات تو رنگ ورم سے ملتے جلتے ہیں مگر باوجود
انگریزی علاج کے آفاقہ نہیں ہوا "الفضل" میں آپ
کی دوائی "دل روز" کا اشتہار دیکھ کر خیال ہوا کہ اسے بھی
استعمال کر دیکھوں ممکن ہے کہ اللہ تعالیٰ شفا دے کیا آپ
مہربانی فرما کر ایک شیشی "دل روز" مندرجہ بالا پتہ پر
بذریعہ پارسل روانہ کر سکتے ہیں ......
ن-ا-ن میجر
انڈین ایجنسی جنرل
چنگ کنگ چین
۲۵ اگست ۱۹۴۲ء
...... گذشتہ ہفتہ کی ڈاک میں آپ کی ارسال کردہ
"دل روز" کی شیشی ملی شکریہ! مجھے دس سال کے عرصے سے
یہ تکلیف تھی - ہر قسم کی دیسی و انگریزی ادویات استعمال
کیں مگر کچھ بھی افاقہ نہ ہوا۔ "دل روز" کو صرف
چھ دن لگانے کے بعد تمام شکایت جاتی رہی۔
کاش! مجھے پہلے ایسے تیر بہدف علاج کا علم ہوتا ......
ن-ا-خ
میجر
رجسٹرڈ
دل روز تمام لاعلاج جلدی امراض
ہر قسم کے پھوڑے پھنسی لاہوری پھوڑے
معلائی پھوڑے ناسور بھگندر - بال توڑ داد چنبل - خارش
گنج خنازیر - پھپھولے - کھجلی - رسولی - ناسور - چنبل - مہاسے
درد - جلن - سوجن - چوٹ - نئے اور پرانے زخم اور زہریلے جانوروں
کے کاٹے اور ڈسے کا بیضرر اور تیر بہدف علاج ہے -
چیر پھاڑ اور مرہم پٹی سے نجات دلاتی ہے
قیمت فی شیشی
دو روپیہ ---- ایک روپیہ ----
۱۹۰۴ء سے استعمال میں ہے
ہر مشہور دوا فروش سے طلب کریں
حکیم طاہر الدین اینڈ سنز "دل روز" والے فیروز پور روڈ لاہور پنجاب

«ماہ نو»

کے لئے غیر طلبیدہ مضامین

۱ — غیر طلبیدہ مضامین نظم و نثر صرف اس حالت میں واپس کئے جائیں گے جب کہ ان کے ساتھ ڈاک کے مناسب ٹکٹ روانہ کئے گئے ہوں۔

۲ — مسترد مضامین کے سلسلے میں غیر ضروری خط و کتابت کرنے سے ادارہ کو معذور سمجھا جائے۔

۳ — ایک ہفتہ تک اطلاع موصول نہ ہونے پر مرسلہ مضمون کو ناقابل اشاعت تصور کیا جائے۔

۴ — ادارہ ڈاک میں کسی مسودہ کے گم ہو جانے کا ذمہ دار نہیں۔

(ادارہ)

جلد ۱۶ — شمارہ ۶

ماہِ نو

مدیر: ظفر قریشی — جون ۱۹۶۳ء

سالانہ چندہ پانچ روپے ۵۰ پیسہ	شائع کردہ: ادارۂ مطبوعاتِ پاکستان، پوسٹ بکس ۱۸۳، کراچی	فی کاپی ۵۰ پیسہ

رعب دیتا تھا انہیں لشکر جرار کا کام
کہ زمانے میں بندھی اپنی ہوا رکھتے تھے
فتح اک خادمہ تھی ان کی اور اقبال غلام
مختصر یہ ہے کہ پلے پہ خدا رکھتے تھے

نذیر احمد کے نزدیک مسلمانوں کی پستی کا سب سے بڑا سبب جہالت تھا اس لئے انہوں نے جا بجا جہالت کو ختم کرنے پر زور دیا ہے۔ اور تعلیم کی افادیت و اہمیت کو واضح کیا ہے علم ان کے نزدیک سب سے بڑی دولت ہے، مگر وہ علم نہیں جو "ذہنی عیاشی" کی حیثیت رکھتا ہے، بلکہ وہ علم جس سے زندگی کو بنایا اور سنوارا جا سکے۔ نذیر احمد اس علم کو "علم نافع" کہتے ہیں اور اسی کو عام کرنے کی تمنا انہیں بے تاب رکھتی ہے۔ وہ اس حقیقت پر پورا پورا یقین رکھتے ہیں کہ سلطنت کے چھن جانے کے غم کی تلافی علم ہی سے کی جا سکتی ہے۔ وہ قلم کی حکومت کو دوامی سمجھتے ہیں، کیوں کہ اس کے مقابلے میں باقی سب حکومتیں ہیچ ہیں:

حکومت ہے سچی حکومت قلم کی
نہ بندوق و سیف و سنان و علم کی
خدائی خزانوں کی کنجی قلم ہے
کہ جو حرف لکھتا ہے وہ اک رقم ہے
قلم کا قلم ہے قدامت سے جاری
اسی کی حکومت کو ہے پائداری
اگر اس حکومت سے ہم کام لیتے
تو شاہنشہی مفت بے دام لیتے
گئی سلطنت اس کے جانے کا غم کیا
نہیں پاس کاغذ دوات اور قلم کیا
مگر علم کی ہم نے طاقت نہ جانی
نہ جانی لیاقت، لیاقت نہ جانی
گو استاد منثور و منظوم ہیں ہم
ولے علم نافع سے محروم ہیں ہم

اہلِ یورپ کی تقلید بھی وہ صرف اسی حد تک چاہتے ہیں کہ ان سے علم ——— "علم نافع" حاصل کیا جائے۔ ان کے نزدیک اس کی دو وجوہ ہیں۔ اوّل تو یہ علم اہلِ یورپ نے خود مسلمانوں سے حاصل کیا تھا، لہٰذا مسلمانوں کو حق حاصل ہے کہ وہ اہلِ یورپ سے اپنی اس امانت کو واپس لیں۔ دوسری وجہ یہ ہے کہ اہلِ یورپ کی ساری ترقیاں علم ہی کی بدولت ہیں، انہوں نے بحر و بر کا سینہ چیر کر جا بجا اپنی فتوحات کے جو جھنڈے گاڑے وہ علم ہی کی بدولت ہیں، اس لئے مسلمانوں کو اگر اپنی فلاح مقصود ہے اور انہیں اہلِ یورپ کی طرح اقوامِ عالم کی نگاہوں میں ممتاز ہونا ہے تو انہیں علم حاصل کرنا چاہئے۔ نذیر احمد انگریزوں سے شیر و شکر ہونے کے لئے بے تاب نظر آتے ہیں، مگر محض اس لئے کہ ان سے علم و ہنر حاصل کر سکیں۔ انہیں یہ کسی طرح پسند نہیں ہے کہ مسلمان انگریزوں کو غیر سمجھیں اور ان سے گریزاں رہیں:

مگر کیا ظلم ہے ہم بدگماں ہیں اس قدر اُن سے
کہ ہر اک بات میں رکھتے ہیں پرہیز و حذر اُن سے
الٰہی کب وہ دن ہوگا کہ ہوں شیر و شکر اُن سے
تو پھر جی کھول کر حاصل کریں علم و ہنر اُن سے
بطوع و خوش دلی ایک ایک کی عادت کو سہ جائے
یونہی کچھ تفرقہ مذہب کا رہ جائے تو رہ جائے

لیکن اس سلسلے میں وہ خاصے محتاط نظر آتے ہیں۔ انگریزوں کی تقلید میں وہ "ابن الوقت" کا سا انداز پیدا کرنے کے خلاف ہیں۔ وہ یہ نہیں چاہتے کہ مسلمان اپنی معاشرت کو بھی اہلِ یورپ کی نقالی کا آئینہ بنا کر رکھ دیں، اور اپنی وطنی و قومی خصوصیات کو بھول جائیں، انگریزوں سے "شیر و شکر" ہونے کا مطلب صرف ایک ہے کہ اس طرح "علم نافع" حاصل کیا جائے۔ وہ صرف یورپ کے علم کے مداح ہیں، وہاں کے تمدن کے نہیں۔ یورپ کے تمدن کو تو وہ "سکۂ ملتبس" (کھوٹا سکہ) تک کہہ جاتے ہیں اور اس امر پر اظہار افسوس کرتے ہیں کہ وضعِ یورپ کو پسند کیا جا رہا ہے:

تمدن میں داخل ہوئی وضعِ یورپ — چلن ہو چلا سکۂ ملتبس کا

وہ تقلید وضعِ یورپ کو ہر اعتبار سے اپنی قوم کے لئے "نقصان دہ" سمجھتے ہیں، اور انہیں یہ خطرہ لاحق ہوتا ہے کہ کہیں "کوا چلا ہنس کی چال..." والا حال نہ ہو:

کیا پیش لائے دیکھیں تقاضہ وضعِ یورپ
کوّے ہیں چال ساری ہم ہنس کی چلے ہیں

گویا اس طرح وہ سرسید تحریک کے ایک بہت بڑے... مبلغ

ہونے کے باوجود اکبر الٰہ آبادی کے ہم نوا بن جاتے ہیں۔

۱۸۵۷ء کے بعد مسلمانوں کی پس ماندگی کو ختم کرنے کا جو سب سے بڑا علاج تجویز کیا گیا تھا وہ یہ تھا کہ مسلمان زیادہ سے زیادہ سرکاری ملازمتیں حاصل کریں۔ سرکاری ملازمتوں میں ہندو پیش پیش تھے، اس طرح مسلمان انگریزوں کے ساتھ ساتھ ہندوؤں کے غلام بھی بن گئے۔ اس دوہری غلامی کو تمام قومی رہنماؤں نے محسوس کیا اور اس کو ختم کرنے کی طرف توجہ کی۔ نذیر احمد بھی اس سلسلے میں خاموش نہ رہے اور وہ مسلمانوں کو مشورہ دیتے رہے کہ وہ سرکاری ملازمتیں حاصل کرنے میں دوسروں سے پیچھے نہ رہیں، ایک نظم میں سرسید کا ذکر کرتے ہوئے کہتے ہیں:

سنے ہیں بہت عاشقوں کے فسانے — جو عاشق ہو وہ عشق کی قدر جانے
جب سر سید احمد کو دیکھا — تو سمجھے کہ ہاں عشق ہوتا ہے ایسا
[illegible] — ذرا پوچھیے ذات قوم ان کی کیا ہے؟
مناسب طبیعت کے ہوتے ہیں غنچے — کہ جس طرح کی روح ویسے فرشتے
مقدر طلب گر خدا اس کو زر دے — گورمنٹ کو یہ مسلمان کر دے
مسلماں کلکٹر، مسلماں کمشنر — مسلمان ہر ایک صیغے میں افسر
بنیں جسٹس بھی سول جج ہوں — تو کس دھوم سے چل کے کعبے میں حج ہو

سرسید کا ذکر آگیا ہے تو یہ کہنا نامناسب نہ ہوگا کہ سرسید کو نذیر احمد سے بڑا ہمدرد کوئی نہیں مل سکا۔ حالی اور دوسرے مشاہیر کی رفاقت تسلیم۔ لیکن نذیر احمد نے جس طرح سرسید کو ان کے مقاصد میں کامیاب دیکھنے کے لئے کوششیں کی ہیں، ان کی کوئی دوسری مثال موجود نہیں۔ نذیر احمد دامے درمے سخنے ہر طرح سے مدرسۃ العلوم علی گڑھ کی مدد کرتے رہے۔ وہ اپنی جیب خاص سے ہی نہیں مدد کرتے تھے بلکہ دوسروں کی جیبیں بھی خالی کروا لیتے تھے۔ سرسید کی ذات اور ان کے مقاصد سے انہیں پوری پوری ہمدردی تھی، انہیں بعض مذہبی معاملات میں سرسید سے اختلاف تھا اور اس کا انہوں نے برملا اظہار بھی کیا، لیکن اس اختلاف کی وجہ سے وہ سرسید کی خوش صفاتی کے منکر نہ ہوسکے۔ انہوں نے اپنی تحریروں میں جابجا سرسید کی تعریف کی ہے اور منظومات میں تو شاید ہی کوئی نظم سرسید کے ذکر سے خالی ہو۔ نذیر احمد نے ہر موقع پر سرسید کی قومی ہمدردی کو سراہا ہے اور انہیں بہت بڑا رہبر قوم قرار دیا ہے۔ سرسید پر کفر کا فتویٰ لگا۔ نذیر احمد کہتے ہیں وہ کافر سہی، لیکن دنیوی فائدے کے لئے ان کی باتیں ماننی ہی چاہیں:

پھنسا کیا ہو سید کے مذہب کے پیچھے — سنو جی یہ کافر سہی بلکہ اکفر
وہ دے گر کچھ دنیوی فائدے کی — تو کیا ضد سے کرلو گے نقصاں سراسر؟

ایک دوسری نظم میں کہتے ہیں:

خدا نے کیا ہم میں اک شخص پیدا
مسلمانوں کی قوم کا دل سے شیدا
ہو اسلام کا بول بالا کسی ڈھب
یہی اس کا دیں ہے یہی اس کا مذہب
ہو حب قومی میں ہر وقت شاغل
وہ بے چارہ کیا جانے فرض و نوافل
یہ بے دیں ہے یا کہ دیں دار ہے یہ
تمہارے ہی کارن دل افگار ہے یہ
مہ و مہر پوجے ہیں، پتھر کسی نے
مگر کی ہے قومی پرستش اسی نے
سخن قوم کا قوم ہی سے سخن ہے
اسے جاگتے سوتے بس ایک دھن ہے

ایجوکیشنل کانفرنس کے اجلاس منعقدہ لاہور (۱۸۹۸ء) میں نذیر احمد نے سرسید کا جو مرثیہ پڑھا تھا، وہ نذیر احمد ہی کی شاعری میں نہیں بلکہ اردو کے شخصی مرثیوں میں بھی خاص اہمیت رکھتا ہے۔ حالی کے مرثیۂ غالب کے بعد شاید ہی کوئی شخصی مرثیہ اتنا بلند پایہ ہو۔ اس میں نذیر احمد نے ایک فرد کو پوری قوم کی علامت قرار دے کر ایک فرد کا نہیں پوری قوم کا ماتم کیا ہے۔

اگر کوئی یہ پوچھے کہ نذیر احمد کی بہترین نظم کون سی ہے تو بلاخوف تردید اس مسدس کی طرف اشارہ کیا جا سکتا ہے جو "فسانہ مبتلا" کے آخر میں بطور ضمیمہ درج ہے۔ یہ نظم جیسا کہ پہلے عرض کیا جا چکا ہے، کثرت ازدواج کے رد میں ہے۔ لیکن نذیر احمد نے اس نظم میں مسلمانوں کے تمام مسائل کا تجزیہ کیا ہے۔ یہ نذیر احمد کی پہلی نظم ہے، لیکن اس میں وہ سب کچھ موجود ہے جو ان کی بعد کی نظموں میں ملتا ہے، ایسا محسوس ہوتا ہے کہ

جیسے نذیر احمد کی تمام نظمیں اسی مسدس کی وضاحت میں لکھی گئی ہوں۔ ہماری قومی شاعری کا ذکر کرتے ہوتے ہوئے شاید ہی کسی نقاد نے اس مسدس کے بارے میں کچھ کہا ہو۔ میرے نزدیک ہماری جدید شاعری کی بنیاد جن دو چار نظموں پر ہے۔ ان میں یہ مسدس بھی شامل ہے۔ یہ نظم اسّی سے زائد بندوں پر مشتمل ہے بے ثباتی دنیا کے ذکر سے اس کی ابتدا ہوئی ہے۔ اور اس میں مسلمانوں کے عروج و زوال اور ان کے ماضی و حال کی تصویر کشی دلچسپ پیرائے میں کی گئی ہے۔ اس کے بعض بندوں پر تو ایسا گمان گزرتا ہے جیسے اقبال کو اسی مسدس نے "شکوہ" لکھنے پر آمادہ کیا ہو:

ہم نے بنایا اہلِ جہاں کو خدا پرست
ہم نے دلایا یاد انہیں وعدہٗ الست
ہم نے کیا بتوں کے تئیں سرنگون و پست
ہم نے اتارہ نشۂ صہبائیاں مست
شائستگی کی بیل ترقی کے ساتھ تھی
پودا اس کی ہے لگائی ہوئی اپنے ہاتھ کی

نذیر احمد نے غزل کی طرف کبھی توجہ نہیں کی اور اسی وجہ سے ان کے زمانہ میں انہیں "شاعر کی بجائے " ناظم" کہا جاتا تھا۔ نذیر احمد کے علاوہ اردو میں شاید ہی کوئی اور شاعر ہو جس نے غزل کا ایک آدھ شعر نہ کہا ہو، ورنہ یہاں تو یہ عالم ہے کہ زندگی بھر غزل کی مخالفت کرنے والے بھی غزلیں کہے بغیر نہ رہ سکے۔ نذیر احمد کی شاعری ایک خاص مقصد کی حامل تھی، اس مقصد کو حاصل کرنے کے لئے غزل مفید مطلب نہ تھی۔ اسی لئے انہوں نے غزل کی طرف توجہ نہ کی۔ اس کے باوجود ان کی نظموں کے بعض اشعار تغزل کے حامل ہیں۔ ایسے چند شعر سنیئے، جن پر غزل کے شعروں کا گمان ہوتا ہے:۔

تو چاہتا ہے سیر مجھے دردِ جام سے
اور یاں سبو بھی قطرہ ہے گرتا گلو نہ ہو
مجھ کو دیا گیا ہے وہ مایوس دل جسے
احساس شادمانیٔ لاتقنطو نہ ہو
جو آرزو ہے اس کا نتیجہ ہے انفعال
اب آرزو یہ ہے کہ کوئی آرزو نہ ہو

مدتوں ہم ان کو چپکے چپکے سمجھایا کئے
اب جو کچھ کہنے کو ہیں سو برملا کہنے کو ہیں
کوئی لے بھی جائے ہم سے دل کہ قصہ پاک ہو
یہ حسینانِ جہاں بھی دل ربا کہنے کو ہیں

اوّل سے ہوتے آئے ہیں دنیا میں انقلاب
اک طرح پر کسی کا زمانہ رہا نہیں
جو واقعہ ہے اس کا سبب ہے کوئی ضرور
ٹوٹا کسی مقام سے یہ سلسلہ نہیں
کیا رویئے کہ غور سے دیکھا تو واقعی
اپنا ہی ہے قصور کسی کی خطا نہیں
ہم آپ جمنے دیتے نہیں نقشِ مدعا
ورنہ ہمارے ہاتھ میں سب کچھ ہے کیا نہیں

صبر رخصت ہوا سنتے ہی ترا عزمِ سفر
تم تو کل جاؤ گے یہ ہم سے ابھی چھوٹ گیا
نہ سہی پر۔ تجھے دکھلاؤں گا اپنی پرواز
گر قفس سے ترے صیاد کبھی چھوٹ گیا

ہمیں جو صیدِ زبوں سب نے دیکھ پایا ہے
ہر ایک بے سبب آمادہ ہے جفا کے لئے

رحمت اے دستِ جنوں زحمت سے فارغ کر دیا
جیب و داماں دونوں غائب ہیں سلوائیں گے کیا

نذیر احمد کی شاعری ان کی قادر الکلامی کی آئینہ دار ہے انہوں نے مشکل زمینوں میں طویل نظمیں لکھی ہیں اور کہیں آورد کا احساس نہیں ہوتا، سپاٹ اور "غیر شاعرانہ" شاعری ان کے ہاں ہے ضرور، لیکن بہت کم۔ اکثر جگہ شاعری کے خوبصورت نمونے ملتے ہیں، اس کی ایک مثال ملاحظہ ہو، ایک نظم میں اسلام کو باغ سے تشبیہ دی ہے، اور پھر اس باغ کا نقشہ

(باقی صـ۶۳ـ پر)

ابرِ دریا بار

جمیل نقوی

نمودِ دردِ دل شب رہے، ابرِ دریا بار — اور ڈپٹی نذیر احمد "ابرِ دریا بار" ہی تو تھے۔ "سید والا گہر" کی بزم کے ایک رکن رکین جن کی سالگرہ اس سال انجمن مصنفین پاکستان (کراچی) نے بڑے اہتمام سے منائی۔ یہ بہاریں نظم اسی تقریب کی یادگار اور اسی چشم و چراغ محفل کی آب و تاب کا لطیف پرتو ہے۔

(ادارہ)

بقدرِ ظرف تصور تھی کائنات ادب — ہر ایک صنفِ سخن تھی فسانہ و افسوں
ہر ایک کہنہ حکایت تھی نثر میں واسوخت — سمجھتے تھے ادب و فن کو بادۂ گلگوں
ہر ایک بات میں ایہام و صنعت تعلیل — ہر ایک لفظ کے ساغر میں نشۂ افیوں
"زہے کرشمہ کہ یوں دے رکھا تھا دل کو فریب" — ادب کی جان تھے شرح و بیان سوزِ دروں
ادب تھا عشق کی غارت گری سے شرمندہ — جنوں کا نام خرد تھا خرد کا نام جنوں
وصال و ہجر تھیں دو کروٹیں فسانوں کی — یہی طلسم تھا مرغوبِ خاطرِ محزوں
حیائے شرم سے تحت الشعور عاری تھا — بس اک "بہشت شمائل" تھا اور دلِ مفتوں
خیالِ جلوۂ گل سے خراب تھے میکش — جنابِ شیخ کی سادہ دلی تھی وجہِ سکوں
شراب خانہ و خمار و شیشۂ مے ناب — رقیب و حسرتِ دیدار و دیدۂ میگوں
جگر کا درد، نگاہوں کے تیر، خنجرِ ناز — جفا و جور و ستم کی حکایتِ پُرخوں
"وفا مقابل و دعوائے عشق بے بنیاد" — ادب کی جان تھے ایسے ہی بیشتر مضموں

مزاجِ نکتہ وراں خود پرست و عرش نشیں
جھکی ہوئی درِ محبوب پر ادب کی جبیں

از بزم سید والا گہر چراغے خاست — کہ برفروختہ چو خورشید روئے اردو را
ز درد دل شب روئے ابر دریا بار — فزود آب دگہر آبجوئے اردو را
نذیر، بانیٔ اسلوب نو نذیر احمد — فشاند در ہمہ اطراف بوئے اردو را

جنوں بھی عقل کی کوتاہیوں کا محرم ہے — فقیہہ شہر خرد کو یہ راز سمجھائے
وہ علم و فضل کی دولت بھی کوئی دولت ہے — نہ دوسروں کو نوازے نہ اپنے کام آئے

عروسِ فکر کے زانو پہ رکھ کے آئینہ — رخِ حیات کے نقش و نگار چمکائے
مئے نشاط سے بدمست اہلِ غفلت کے — عیوب انہیں کی زباں سے کچھ ایسے گنوائے
الٹ کے تلخ حقائق کے رخ سے تیرہ نقاب — ضمیرِ عصر کے چہرہ کے داغ دکھلائے
کبھی "حکایت صبر گریز پا" کہہ کر — دل و نظر پہ مطاعن کے تیر برسائے
مشامِ عقل کو خوشبو سے روشناس کیا — اگر کبھی چمنِ دل میں پھول برسائے
بنا کے شکوۂ "راحت جراحت پیکاں" — بناتِ نعش کو آدابِ شرم سکھلائے
کبھی حقوق و فرائض کا تجزیہ کر کے — مقلدوں کو شریعت کے راز سمجھائے
کبھی نصوح کے پردہ میں چند پند دئے — کبھی روایت زہرا سے قلب گرمائے
کبھی تراش کے رویائے صادقہ کا طلسم — نئے مبادی حکمت کے تار سلجھائے
سنا کے مردہ دلوں کو کبھی فسانۂ غدر — بڑھا دئے نگہ سوگوار کے نالے
صلے میں راست بیانی کے کافری پائی — رہِ سلوک میں ایسے مقام بھی آئے

ہمیشہ دستِ بکارِ گرہ کشائی زد
چوں با خدا بتوا ند دم از خدائی زد

○

''مر کے ''جوہر'' آپ کے جوہر کھلے''

رئیس الاحرار مولانا محمد علی ''جوہر''
۱۸۷۸ء — ۱۹۳۱ء

خاک جینا ہے اگر موت سے ڈرنا ہے یہی
ہوسِ زیست ہو اس درجہ تو مرنا ہے یہی

قلزم عشق میں ہیں نفع و سلامت دونوں
اس میں ڈوبے بھی تو کیا پار اترنا ہے یہی

اور کس وضع کی جویا ہیں عروسانِ بہشت
ہیں کفن سرخ ، شہیدوں کا سنورنا ہے یہی

حد ہے پستی کی کہ پستی کو بلندی جانا
اب بھی احساس ہو اس کا تو ابھرنا ہے یہی

ہو نہ مایوس کہ ہے فتح کی تقریب شکست
قلب مومن کا مری جان نکھرنا ہے یہی

نقد جاں نذر کرو سوچتے کیا ہو ''جوہر''
کام کرنے کا یہی ہے ، تمہیں کرنا ہے یہی

لوح کی نقاب کشائی

دنیا کے ترقی یافتہ ممالک کی صف میں ممتاز مقام حاصل
کرنے کے لئے ہمیں جدید فنون کی تحصیل پر اور زیادہ
زور دینے کی ضرورت ہے - پچھلے دنوں ملک میں ایک
اور فنی درسگاہ کا قیام عمل میں آیا -

(گورنمنٹ پولی ٹکنیک انسٹی ٹیوٹ) : (افتتاح : صدر پاکستان

اس درسگاہ میں برقی قوت کا شعبہ

ملک ک
یونیور
کے
وائس چ
ایوان ص
(راولپ
میں
ملک ک
اہم تع
مسائل
غور و

جائزہ:

شعلۂ پُرپیچ و تاب

(رئیس الاحرار مولانا محمد علی جوہر)

انور سعید گیلانی

ایک ایسی ہستی جو یادگار زمانہ بھی ہے اور افسانہ بھی۔ وہ خود زندہ تھی، اس لئے اس نے ایک ایسی روایت کو جنم دیا ہے جو آج بھی زندہ ہے۔ اور جب بھی ہم اپنے اس ماضی کی طرف رجوع ہوتے ہیں۔ جو کچھ ایسا دور بھی نہیں ہے ——— کیونکہ ہم میں اور اس میں کل ۳۲ سال ہی کا تو فرق ہے۔ رئیس الاحرار مولانا محمد علی جوہر کی وفات ۵ جنوری ۱۹۳۱ء کو ترپن برس کی عمر میں واقع ہوئی تھی ——— تو ہم اس مجاہدوں کے مجاہد، جنگِ آزادی کے سرخیل سے دوچار ہوتے ہیں جس نے زندگی کی افسردہ رگوں میں تازہ خون دوڑا دیا تھا اور سینوں کے اندر دل کی دھڑکنیں تیز کر دی تھیں،

مولانا محمد علی نے ایک نہایت نازک اور بڑے پُرآشوب زمانے میں جب آزادی کا نام تک لینا جرم تھا اور جس کی سزا دار و رسن سے ادھر کچھ نہ تھی، انتہائی بے باکی کے ساتھ میدانِ جہاد میں قدم رکھا اور اپنی تمام زندگی اس کے لئے وقف کر دی۔ وہ حقیقی معنوں میں شمعِ آزادی کے پروانے تھے اور اس پر جلنے کا انجام بھی وہی ہوا جس کا تصور کیا جا سکتا ہے:

پھر نہ دیکھا ہم نے جز یک شعلۂ پُرپیچ و تاب
شمع تک ہم نے بھی دیکھا تھا کہ پروانہ گیا

یعنی انہوں نے اپنی ساری حیات آزادی ہی کی جد و جہد میں ختم کر دی۔

قوم نے آزادی کے اس مجاہد کو یونہی "رئیس الاحرار" کے خطاب سے یاد نہیں کیا۔ یہ اس یگانۂ روزگار شخصیت کی قدر و منزلت کا اقل تقاضا تھا۔ اگر اس سے بھی بڑھ کر کوئی جلیل القدر خطاب ممکن ہوتا تو وہ اس کے بھی پوری طرح مستحق تھے کیونکہ اُن کے نزدیک محبت میں نہیں ہے فرق جینے اور مرنے کا، کوئی شاعرانہ بات نہ تھی بلکہ تمام تر حقیقت تھی۔ چنانچہ انہوں نے صاف صاف کہہ دیا تھا کہ:

لاکھ جینا ہے اگر موت سے ڈرنا ہے یہی
ہوسِ زیست ہو اس درجہ تو مرنا ہے یہی

اور انہوں نے اپنے شاندار نصب العین کو ہمیشہ ہوسِ زیست سے بلند تر رکھا اور اس مقصدِ جمیل کو اس پر ترجیح دی۔

ابو الاثر حفیظ کے اس خراجِ تحسین کو یاد کیجئے جو انہوں نے اس بطلِ حریت کو ادا کیا ہے۔ ان کا والہانہ سرفروشانہ ذوقِ جہاد ایسے ہی خراجِ تحسین کا مستحق ہے۔ وہ اس کا بہ شدتِ تمام متقاضی ہے۔

آزادی کے اس بے باک پرستار نے دیکھا کہ ایک قوم کی قوم پا بہ زنجیر ہے۔ وہ بے بس ہے، بے دست و پا ہے، موردِ تعزیر ہے۔ وہ ایک ایسے دامِ سخت میں گرفتار ہو چکی ہے جس سے رہائی کی امید موہوم نظر آتی ہے۔ اور اس کو نجات دلانے کے لئے طوفانِ حوادث کے خلاف انتہائی بے باکی سے سینہ سپر ہونے کی ضرورت ہے۔ ان حالات میں مخالف عناصر سے ٹکر لینے کا ارادہ ہی ناقابلِ تصور تھا۔ چہ جائیکہ کوئی شخص حقیقتہً پیکارِ حیات میں کودنے پر کمربستہ ہو جاتا اور ھل من مبارز کا نعرہ بلند کرتے ہوئے دادِ شجاعت دیتا۔

مولانا محمد علی ان حوصلہ مند انسانوں میں سے تھے جنہوں نے اس زبردست چیلنج کو بے محابا قبول کیا اور شدید سے شدید آفات و مصائب کے سامنے سینہ تان کر کھڑے ہو گئے۔ ان کی للکار کی آواز آج بھی وقت کے پردوں کو چیرتی ہوئی سنائی دیتی ہے۔ اور ان کی

"دیوانِ جوہر"
(مجلد مع گرد پوش)
مرتبہ
نور الرحمٰن
ناشر:
شیخ غلام علی اینڈ سنز
لاہور۔ کراچی
صفحات: ۱۷۰
قیمت ۱۰ روپے

بانگِ رحیل اس شدت سے گوش زد ہوتی ہوئی روحوں کو تڑپاتی اور دلوں کو گرماتی ہے۔

○ دورِ غلامی بیشک تھا وہ لوگ جنہوں نے دورِ آزادی میں آنکھیں کھولی ہیں وہ اُن دنوں کا تصور بھی نہیں کر سکتے جب افکار پہ قید اور جذبات پر زنجیریں تھیں اور ساتھ ہی انسان کی بات چیت اور عمل پر بھی زنجیریں چڑھا دی گئی تھیں۔ کس کی مجال تھی کہ اپنا سر بھی اٹھا کر چل سکے یا حکمِ حاکم کے سامنے ہوں بھی کر سکے اور مسلمانوں کے لئے تو لطف و کرم اور بھی سوا تھا۔ اجنبی طاقتوں کا بے نام گرانبار ستم ہی نہیں بلکہ ابنائے وطن کی رقابت، ریشہ دوانی اور رجا رحانہ طرزِ روش کا جور و ستم بھی، جو کچھ کم سنگین اور گراں بار نہ تھا۔

یہ فضا تھی جس میں محمد علی، شوکت علی سامنے آئے اور ان کی بے باک آوازیں بلند ہوئیں۔ تحریکِ خلافت کا غلغلہ بلند ہوا۔ دونوں بھائی اس تحریک کی روح و رواں اور معرکہ آرا علامت تھے۔ جیسی تحریک مہتم بالشان تھی اسی طرح ان کی شخصیتیں بھی مہتم بالشان تھیں۔ جہادِ آزادی کے نعروں سے بھرپور فضا میں جینا حقیقی معنوں میں جینا تھا۔ اس میں ایک بے پناہ ولولہ آفرینی تھی۔ ایک بے پناہ جوش و خروش۔ طول و عرض ملک میں تحریک خلافت گونج رہی تھی اور اس کے ساتھ دونوں مجاہد بھائیوں کی للکار بھی۔ آج یہ آواز اِس شہر میں بلند ہوتی تو کل دوسرے شہر میں۔ لمبے لمبے شاندار جلوس ہر ہر دل میں ولولہ ہی ولولہ پیدا کرتے ہوئے، اور میلوں لمبے جلوسوں کے سامنے یہ دونوں کوہ پیکر ہستیاں۔ رعب انگیز وجاہت اور شجاعت کی تصویر۔ اُن کی مخصوص ٹوپیاں، چاند ستاروں سے مزین، دور ہی سے اپنے پُر عظمت پُر شکوہ اور باوقار پہننے والوں کے دبدبہ میں اضافہ کرتی ہوئی اور پھر اُن کی برسرِ عام شعلہ فشانی —— یہ وہ منظر ہے جسے کبھی فراموش نہیں کیا جا سکتا۔ ایک وقت تھا جب ہندوستان کے گوشے گوشے سے افغانستان تک 'خلافت'، 'خلافت' ہی کے نعرے گونجتے تھے۔ اور بچے بچے کی زبان پر یہ ناقابلِ فراموش بول تھے؛

"بولی اماں محمد علی کی
جان بیٹا خلافت پہ دے دو"

ہجرت کی تحریک کا یہ سماں دیکھنے کے لائق تھا کہ کس طرح کنبے کے کنبے اپنا گھر بار چھوڑ کر قلیل ترین زادِ راہ لے کر آزادی کے گیت گاتے ہوئے انتہائی والہانہ پن کے ساتھ افغانستان کی طرف ہجرت کے لئے چلے جاتے تھے۔ یہ سب علی برادران کے بے اندازہ اثر اور مقبولیت کا ہی کرشمہ تھا۔

مولانا محمد علی جوہر جو "کامریڈ" اور "ہمدرد" جیسے بلند پایہ اخبارات کے مدیر کی حیثیت سے بھی جدید صحافت کے بانی مبانی اور انگریزی اردو دونوں میں نئے فکر و انشا کے پہلے انقلابی داعی اور معمار تھے حقیقتہً ہماری ملی نشاۃ الثانیہ کے بھی اوّلیں نقیب تھے۔ ان کے نزدیک صحافت تمام تر زندگی کے انقلاب اور آزادی کی آئینہ دار تھی۔ جہاں وہ بذاتِ خود سراپا پیکرِ حریت تھے وہاں ان کی صحافت بھی آزادی و انقلاب کا نعرۂ مستانہ تھی۔ چنانچہ وہ آخری دم تک انہی کے حلیف رہے یہاں تک کہ انہوں نے غلام آباد ہند میں مرنا بھی گوارا نہ کیا۔ ان کو زندگی ہی نہیں موت میں بھی ایک غلام سرزمین سے وابستہ ہونا گوارا نہ تھا۔ یہ ان کے لئے باعثِ ننگ تھا۔

یہی وجہ ہے کہ مولانا محمد علی آج بھی زندہ ہیں۔ وہ ہماری نظروں میں آج بھی "رئیس الاحرار" ہیں اور کشمکش حیات میں ہمارے لئے ایک بے نظیر مثال، ایک دلیل راہ، اور ایک زبردست محرک ہیں۔ ان کی شخصیت ایک ایسا شعلۂ جوالہ ہے جس کے قریب آتے ہی ہم خود بھی پیکرِ التہاب بن جاتے ہیں اور خواہ ہمارے حالات کچھ بھی ہوں، ہم بعینہٖ وہی روش اختیار کرتے ہیں جو انہوں نے اپنے عہد کے مطالبات کے رو در رو اختیار کی تھی۔ بیشک غلامی کے تقاضے اور مسئلے نہایت دشوار ہوتے ہیں لیکن آزادی کے تقاضے اور مسئلے بھی کچھ کم دشوار نہیں ہوتے بلکہ وہ تو ان سے بھی زیادہ دشوار ہوتے ہیں اور ان سے نبٹنے کے لئے اور بھی زیادہ بے باکانہ جذبہ و جوش کی ضرورت ہوتی ہے۔ رئیس الاحرار کی انقلاب آفریں شخصیت ہمیں برابر رہبری کرتے، ہمارے سینوں میں آزادی کی برقی حرارت بھرنے، ذوقِ جہاد کو اشتعال دینے، کٹھن سے کٹھن حالات کا پامردی سے مقابلہ کرنے، مردہ دلوں میں اپنے آتشیں نفس سے روحِ حیات پھونکنے اور سرفروشی کے تقاضوں پر لبیک کہنے کی تحریک دلانے کے لئے ہر دم موجود ہے۔

آج رئیس الاحرار ہم میں اپنے اس پیکرِ مادّی کے ساتھ موجود

نہیں ہیں جس کو دیکھتے ہی وجاہت اور حریت کی زندہ علامت ہماری نظروں میں پھر جاتی تھی، لیکن ان کا کلام، جو اُن کی آتشیں شخصیت کا عکاس ہے آج بھی ہمارے پاس ایک عزیز ورثہ کی طرح موجود و محفوظ ہے۔

زندہ دار د مرد را آثارِ مرد

اور ہم اس خاکستر سے اس آتشِ گرم کا سراغ لگا سکتے ہیں جس نے نہیں اور ان کے ماحول کو تمام تر شعلہ و شرار بنا دیا تھا اور وہ تمنا جو ہم سب کے دل میں ہے کہ ہم ان آتش پاروں کو ان کی شایانِ شان اور خوش آئند شکل میں بھی دیکھیں، "دیوانِ جوہر" میں پوری کر دی گئی ہے۔

"دیوانِ جوہر" کو جناب نور الرحمان نے بڑے اہتمام سے مرتب کیا ہے۔ یہ اہتمام یوں ہے کہ دورانِ اسیری میں مولانا نے اپنے ہاتھ سے جو کلام قلمبند کیا تھا اور جسے اب ہماری قومی میوزیم میں محفوظ کر دیا گیا ہے، اس کا عکس حاصل کر کے اس کے بالمقابل نستعلیق خط میں بھی اسے پیش کر دیا گیا ہے۔ اس وجہ سے "دیوانِ جوہر" کی تاریخی حیثیت اور پیشکش کی دلچسپی بہت بڑھ گئی ہے۔ ابتدا میں مرتب نے "پیش لفظ" میں اس عہد کی ایک زندہ و گویا تصویر بھی پیش کی ہے جو ہماری نظروں سے اوجھل ہونے لگے۔ باوجود غیر معمولی دلچسپی کا حامل ہے اور جس سے ان کی ملی و سیاسی سرگرمیوں کے ساتھ صحافت اور شاعری کی چنگاریاں بھی ابھر رہیں۔ مرتب نے جو کچھ خود دیکھا ہے اسے دوسروں کو بھی دکھانے کی کوشش کی ہے۔ اس لئے اس کے بیان میں وہ تمام باتیں ہیں جو ذاتی مشاہدہ و تجربہ کے رچاؤ سے پیدا ہوتی ہیں۔ اس سے رئیس الاحرار کی شخصیت بڑی خوبی سے اجاگر ہوتی ہے اور ہم یا تو ان کے سوانح سے لطف اندوز ہوتے معلوم ہوتے ہیں یا کسی معاصر کی ڈائری کے اوراق کا مطالعہ کرتے ہوئے محسوس کرتے ہیں۔ سیرت اور شاعری کے تعارف کا حق بھی ایک اور ناظر جناب ڈاکٹر محمد طاہر فاروقی، صدر شعبۂ اردو، پشاور یونیورسٹی نے ادا کیا ہے، جس سے تصویر اور بھی واضح، بلکہ شوخ رنگ ہو جاتی ہے۔ اور ہم رئیس الاحرار میں دولت خداداد پاکستان ہی کے طاشرِ پیش رس کا عکس پاتے ہیں۔ سلسلہ کی آخری کڑی جوہر کے حالاتِ زندگی کی سن وار ترتیب ہے۔

تعارف میں بعض فرو گذاشتیں بھی ہیں۔ مثلاً گرد پوش پر اپنی قلم سے تو سرورق پر "اپنے قلم"۔ چند جملے بھی ملاحظہ ہوں:

۱: شکر گذار اور ممنون ہیں کہ... کہ ہم متذکرہ بالا۔
۲: ایسے برمحل شعر پڑھتے تھے... کہ معلوم ہوتا تھا کہ
۳: ایسے وقت اختیار کیا کہ ان کی علالت... کہ۔
۴: دونوں کی شاعری کا جولاں گاہ بھی جدا ہے۔

علاوہ اور دوسری فروگذاشتوں پر بھی ایک نظر:۔

(۱) اٹھ کھڑے ہوئے، مسجد و ممبر، روزنِ زنداں، کھٹکھٹا۔ اینا خراباتِ مغان است در یں رندان اند ("است" اور "دریں" کے درمیان "و" غائب!)

(۲) شبِ فرقت کی جو گھڑیاں کا گذرنا ہے یہی،

مخطوطہ اور اس کے عکس کا ہم وضع ہونا تو خیر ناگزیر تھا لیکن ان دونوں اور نستعلیق میں عکس در عکس کا التزام کہ یعنی خصوصاً جب نقل میں "خمارِ چشمِ ساقی" بھی شامل ہو جائے۔ مثلاً:

— اس آستانِ پاک پہ گہنا ہے چل کے سر
— مگر قریب ہے یوم الحساب دیکھو تو
— اگلی سی اب وہ زخم کی طغیانیاں کہاں۔

جب ہماری ادبی تحریک کا آغاز ہوا تھا، اس وقت جدید شاعری کا سلسلہ بالکل نیا تھا۔ اور جو طرز و روش بھی اختیار کی گئی تھی اس کی حیثیت ابتدائی نمونوں کی تھی۔ یوں بھی شعر و فن کا تصور کچھ اتنا آگے نہیں بڑھا تھا اور مذاقِ شعری بھی ابتدا ہی کا آئینہ دار تھا۔ اس لئے اگر آج، اور اُس دور کے اندازِ تصور میں فرق پیدا ہو چکا ہو تو کچھ عجب نہیں۔ ممکن ہے آج کے نقاد جو کلاسیکی شاعری اور قدیم اصولِ انتقاد سے بہت پرے ہٹ چکے ہیں اور مغرب کے تنقیدی نظریوں اور مسلکوں سے بخوبی آشنا ہیں، وہ اس ابتدائی دور کے شعری و ادبی مظاہر کو کچھ اور نظر سے دیکھیں۔ لہٰذا جوہر ہی نہیں اُن سے پہلے اور بعد کے اکثر شعرا کا اس تبدیلیٔ نظر سے متاثر ہونا لازم ہے اور زندگی کی طرح ادب و فن میں بھی ارتقا کا تقاضا یہی ہے کہ تازہ بہ تازہ نو بہ نو کو ملحوظ رکھتے ہوئے سابقہ فن پاروں کو از سرِ نو پرکھا جائے اور اُن کی قدر و قیمت متعین کی جائے۔

ظاہر ہے کہ جہاں تک شاعر کا کلام اپنے دور کی حدِ تقصود کی قبولیت ہوتا ہے اور اس کی واماندگیوں میں شریک، اس حد تک وہ دورِ رفتہ کی یادگار ہو کر رہ جاتا ہے اور جو حصّہ نیرنگیٔ زمانہ سے متاثر نہیں ہوتا، وہ بدستور قابلِ اعتنا رہتا ہے۔ بنابریں ناقد یا مرتب کا یہ فرض بھی قرار پاتا ہے کہ وہ اس نقطۂ نگاہ سے زیرِ نظر کلام کا جائزہ لے۔

"دیوانِ جوہر" کی موجودہ ترتیب اس "بارِ امانت" کے احساس سے بیگانہ ہے۔ اس لئے جدید قاری اس میں عہدِ رفتہ ہی کی صدائے بازگشت سنتا ہے۔ جیسے ناقدین بھی تمام تر شاعری کے ہم آواز ہوں۔ جوہر ہوں یا ان کا ہم وضع دوسرا شاعر مثلاً حسرتؔ ان کے بارے میں بنیادی سوال انقلاب اور تغزل کی بنیادی غیریت ہے۔ انقلاب کی روح بغاوت کی روح ہے۔ روایت سے یکسر گریز اور تجدید کی طرف بیش از بیش اقدام۔ تغزل عاشقانہ لب و لہجہ اور عادی میلان کا آئینہ دار ہے جس میں کاوش کسی فکری یا جذباتی انگیخت کے تحت ابھر کر اپج کے درجے تک نہیں پہنچ سکتی۔ لہٰذا یہ انقلاب کی بے چین، غیر مطمئن، آتش زیر پا روح کسی طرح غزل کی ہم مزاج نہیں۔ یہ دونوں دست و گریباں ہیں اور جو شاعر انقلاب کا حق غزل کے ذریعہ سے ادا کرنا چاہتا ہے وہ انقلاب کی حقیقی روح تک رسائی نہیں پیدا کر سکتا۔ جوہر کے سلسلے میں یہ مطالعہ دلچسپی کا باعث ہے کہ کہاں غزل کی — پھر جی میں ہے کہ در پہ کسی کے پڑے رہیں — سے پرے ہٹ کر ہم ایسے ہو جاتے ہیں کہ کسی در پہ پڑے نہ رہیں، یعنی ایک ہی جگہ پر جم کر نہ رہ جائیں۔

ظاہر ہے کہ جوہر کے کلام کا کامیاب حصّہ وہی ہے جس میں انقلاب فی الحقیقت انقلاب ہی کے رنگ میں ہے۔ وہ تمام تر انقلاب ہے اور اس میں اسی کی روح رچی بسی ہوئی ہے۔ ان کے کلام کا یہ حصّہ زندۂ جاوید ہے۔ ضرورت یہ ہے کہ اس حصّہ کو خصوصیت سے الگ کر کے اس پر نظر ڈالی جائے۔

شعر و ادب میں یہ امر بھی قابلِ لحاظ ہے کہ صاحبِ فن کی آواز اس کی اپنی آواز ہو۔ دوسروں کی آواز کا محشرستان نہیں، کیونکہ انسان کی اپنی آواز میں ایک خاص انفرادیت، ایک خاص اٹھان ہوتی ہے۔ وہ شنیدہ آوازوں کا ہنگامہ زار نہیں ہوتی۔ مولانا محمد علی طبعاً جلوت کے آدمی تھے۔ ایسے انسان جن کو جماعت کے ساتھ انس ہو۔ اسی نے انہیں ایک ہر دلعزیز سربراہ بنا لیا تھا۔ دوسروں سے گھل مل جانے والا انسان۔ اسی لئے وہ اپنے آپ اور دوسروں میں کوئی بیگانگی محسوس نہیں کرتے۔ ہم ان کے ہیں ہمارا پوچھنا کیا۔ اور یہ ملنساری، یہ ہم آمیزی اس حد تک پہنچ گئی ہے کہ وہ ان کے ساتھ ان کی بات چیت، ان کے الفاظ، ان کے خیالات ان کے احساسات کو بھی اپنا ہی سمجھتے ہیں اور انہیں ایسی بے تکلفی سے کام میں لاتے ہیں گویا وہ انہی کے ہوں۔ شعر و سخن کا سارا دفتر سارا مال و منال مشترکہ ہے اور وہ شعری ہمہ اوست کے قائل ہیں۔ وہ دوسروں کے ساتھ مل کر چلتے ہیں۔ اور ظاہر ہے کہ دوسروں کے قدموں کے ساتھ ان کا اپنا قدم بھی ہے۔ یہ ہم قدمی ان کے یہاں جا بجا نمایاں ہے۔ چنانچہ جس طرح لوگ نثر کے حوالے دیتے ہیں اسی طرح وہ شاعری میں دوسروں کے حوالے دیتے ہیں۔ اس طرح "دیوانِ جوہر" میں کتنے ہی دیوان جمع ہو گئے ہیں، بالخصوص دیوانِ غالبؔ، جس کی آواز ان کے ہاں ہر کہیں گونجتی نظر آتی ہے۔

سب سے بڑی خصوصیت جو قاری کو متاثر کئے بغیر نہیں رہ سکتی مولانا کا بے اندازہ خلوص ہے۔ وہ فطرتاً سیاستداں اور سربراہ تھے۔ شاعری ان کے لئے محض مشغلہ تھی۔ اس لئے ان کو شعر و سخن کے سخت گیر معیار سے جانچنا بھی بجا نہیں۔ تاہم یہ کہہ دینا ضروری ہے کہ احساسات کی شدّت نے ایک ذہین صاحبِ ذوق شخص کو، جو بنیادی طور پر مدبّر و سیاست داں تھا، شاعر بنا دیا۔ اس لئے اس کی شاعری کی روح طلوعِ شعر و سیاست کا ایک دلچسپ امتزاج ہے۔ اور جہاں وہ ایسے انقلابی شاعر نہیں ہیں، وہ غزل کی پرانی روایت سے نباہ کرتے ہیں اور یہ بھی ان کی طبع وفا سرشت ہی کا خاصہ ہے۔ وہ اپنی فطرت کے اخلاص سے بے نیاز نہیں رہ سکتے:

لوگوں کو یاد آئیں گی باتیں ہماریاں!

"اک طرفہ تماشا تھی..."

محمود صدیقی

برصغیر کی تاریخ آزادی کا تذکرہ ہو یا ادب کی بات چلے، حسرت کا یاد آنا ناگزیر ہے۔ ادب اور سیاست کو آمیز کرنے میں ان کا بڑا ہاتھ رہا، بلکہ اگر یہ کہا جائے تو مبالغہ نہ ہوگا کہ ان کے سیاسی معتقدات شعری پیکر میں بھی ڈھلتے رہے اور انہوں نے اپنی آتشیں طبیعت کے اظہار کے لئے شعر کو بڑی خوبی کے ساتھ وسیلہ بنایا۔ اُن کا یہ کہنا کہ چکّی کی مشقت کے ساتھ مشقِ سخن بھی جاری رہتی تھی، کوئی شاعرانہ بات نہیں ہے بلکہ بیانِ واقعہ ہے۔ اس میں کوئی شک نہیں کہ حسرت کی زندگی کا ہر ہر لمحہ برصغیر کی کامل آزادی کے لئے جدوجہد کرتے گذرا اور انہوں نے بیباکی اور حق گوئی کا جو معیار و نمونہ پیش کیا اس پر اُس عہد کے بہت کم سیاسی آدمی پورے اترتے ہیں۔

ادب سے اُن کا لگاؤ زمانۂ طالبعلمی سے ہی شروع ہو چکا تھا۔ ۱۹۰۴ء میں "اُردوئے معلّٰی" کا اجرا نہ صرف ان کے ادبی ذوق کی تکمیل کا وسیلہ بنا بلکہ سیاسی معتقدات کے ابلاغ اور سامراج کے خلاف جنگ کا ایک ہتھیار بھی ثابت ہوا۔ برصغیر میں ان کے ادبی مضامین اور سیاسی و مذہبی مقالات شائع ہونے شروع ہوئے تو سارے ملک میں ایک آگ سی لگ گئی۔ ہر چند کہ مولانا کے مالی وسائل بہت ہی محدود تھے مگر وہ "اُردوئے معلّٰی" شائع کرتے رہے اور معمولی طباعت و پیشکش کے باوجود وہ شوق سے پڑھا جاتا تھا۔

سیاسی میدان میں بھی ان کی انفرادیت اور شدتِ مزاج کا عنصر برابر موجود رہا۔ ۱۹۰۴ء کا ذکر ہے کہ انڈین نیشنل کانگریس کا بمبئی میں اجلاس ہوا اور مولانا بھی بطور مندوب اس میں شریک ہوئے۔ یہاں انہوں نے بڑی دھواں دھار تقریر کی اور نرم رو سیاست دانوں کو بتایا کہ سامراج سے جنگ کرنے کے لئے کس دل گردے کی ضرورت درکار ہے۔ ۱۹۰۵ء میں کل ہند صنعتی کانفرنس ہوئی تو وہاں بھی ان کی شعلہ بیانی لوگوں کی توجہ کا مرکز بن گئی۔ ان کانفرنسوں کی روداد یں "اُردوئے معلّٰی" میں برابر شائع ہوتی رہیں، جنہیں لوگ بڑے شوق سے پڑھتے، اور ان پر اظہارِ خیال کرتے رہتے تھے۔ سودیشی کی تحریک چلی تو مولانا کو اس سے دلی لگاؤ پیدا ہو گیا کیونکہ وہ سامراج کے خلاف اس ہتھیار کو بڑا ہی مؤثر سمجھتے تھے۔ کھدّر پہننے کے ساتھ ساتھ انہوں نے کھدّر فروخت کرنے کا کاروبار خود بھی کیا۔ انہوں نے بدیشی مال کا بائیکاٹ صرف زبانی طور پر نہیں کیا بلکہ خود عمل سے اس کا طریقہ بھی بتایا۔ سیاست میں وہ موتی لال، گوکھلے اور کانگریس کے دیگر رہنماؤں کے خیالات سے متفق نہ تھے بلکہ تلک کی حکمتِ عملی کو زیادہ پسند کرتے تھے اور نرم رو لیڈروں پر بہت بُری طرح برستے تھے۔

سامراج کے خلاف عمل اور قلم کا یہ جہاد بڑھتا ہی چلا گیا اور ۱۹۰۸ء میں ان کی بعض تحریریں حکومتِ وقت کے عتاب میں آ گئیں جس کی وجہ سے اُن پر مقدمہ چلایا گیا۔ "پاداش" میں قیدِ با مشقت تجویز ہوئی۔ اس وقت کے جیل خانوں میں اخلاقی قیدیوں کے ساتھ سیاسی قیدی بھی رکھے جاتے تھے اور ان کے ساتھ بدترین اخلاقی مجرموں کا سا سلوک کیا جاتا تھا۔ ایسی قیدِ فرنگ بھگتنے میں شاید حسرت نے ہی پہل کی تھی۔ اس وقت "اے" کلاس اور "بی" کلاس کی پُرتکلف جیلیں نہ ہوتی تھیں اس لئے حسرت کو بھی اخلاقی قیدیوں کے لباس میں ان ہی کے ساتھ رکھا گیا اور وہاں انہوں نے تکلیفیں، مشقتیں اور بے عزتی کے سلوک ہنسی خوشی برداشت کئے۔ اگست ۱۹۰۸ء کے شمارہ (اُردوئے معلّٰی) سے معلوم ہوتا ہے کہ جب مولانا جیل میں داخل ہوئے تو اُن کو ایک لنگوٹ۔ جانگیہ، کرتہ، ٹوپی پہننے کو ملا اور اوڑھنے بچھانے کے لئے ایک کمبل اور ٹاٹ کا ٹکڑا عنایت کیا گیا تھا۔۔۔! جرمانہ الگ ہوا تھا، مگر سامراج نے اپنا پونڈ بھر گوشت اس طرح وصول کیا کہ ان کا کتب خانہ ہی بیچ ڈالا۔ اس کتب خانہ میں بہت سی نادر کتابیں

قلمی نسخے اور دیگر نوادر جمع تھے اور خود مولانا کا بیان ہے کہ وہ چار ہزار سے کم کے نہ ہوں گے مگر حکومت وقت نے انہیں صرف ساٹھ روپے میں فروخت کر دیا۔

غرض یہ تھے وہ لیل و نہار جن میں حسرت زندگی بسر کر رہے تھے مگر ان کے پائے استقامت میں کبھی لغزش نہیں آئی اور وہ سرکش سامراج سے برابر لڑتے رہے۔

انڈین نیشنل کانگریس کے سیاسی مؤقف کبھی ایک جیسے نہیں رہے بلکہ نرم وفادارانہ پالیسی کا ہی رجحان رہا۔ ۱۹۲۱ء میں کانگریس کا اجلاس احمد آباد میں ہوا تو مولانا نے کامل آزادی کی قرارداد پیش کر دی اور اپنی تقریر سے ایسی آگ لگائی کہ سیاست کا رخ ہی بدل گیا مگر یہ بوالعجبی بھی خوب تھی کہ اس تحریک کی پہلی مخالفت خود گاندھی جی نے کی۔ اس کی وجہ یہ تھی کہ کانگریس حکومت کے ساتھ وفاداری کا ریزولیوشن پاس کر چکی تھی اور مولانا کامل آزادی سے کمتر کسی چیز پر راضی ہونے کو تیار نہ تھے۔ کانگریس کے حالات سے بیزار ہو کر مولانا نے مسلم لیگ کے پلیٹ فارم کو اپنے سیاسی کاموں کے لئے استعمال کرنا شروع کیا۔ ۱۹۲۴ء میں وہ کل ہند مسلم لیگ کے صدر بھی منتخب ہوئے۔ مگر اسی سال انہیں نظر بند بھی کر دیا گیا۔ مولانا ۱۹۳۶ء سے قیام پاکستان تک مسلم لیگ سے وابستہ رہے اور اپنے خیالات پیش کرتے رہے۔

عقیدہ کی پختگی اور عمل پیہم کے وصف نے انہیں بےخوف، مستقل مزاج اور بیباک و حق گو بنا دیا تھا اور وہ جس چیز کو اپنے نزدیک صحیح سمجھتے تھے اس کو پوری قوت و جوش کے ساتھ پیش کرتے تھے۔ سادگی ایک علیحدہ وصف تھا جو ان کی زندگی میں ہمیشہ برقرار رہا اور یہ بھی ایک اصول پر مبنی تھی۔ اصول یہ تھا کہ قومی روپے کو ذاتی عزووقار اور آرام کے لئے صرف نہ کیا جائے بلکہ جو گھریلو اور عام طریقۂ زیست ہے اسے برقرار رکھا جائے اور قومی دولت اس پر ہرگز خرچ نہ کی جائے کیونکہ قوم کا پیسہ قوم کی امانت ہے۔ اس سلسلہ میں ان کے کردار پر روشنی ڈالنے والا ایک واقعہ سنیئے۔ دلی میں اسمبلی کا اجلاس ہونے والا تھا۔ مولانا رکن تھے اور اس میں شریک ہونے کے لئے آرہے تھے۔ دلی پہنچنے کی تفصیلی اطلاع وہ پہلے ہی دے چکے تھے۔ لوگوں کا ایک ہجوم اسٹیشن پر جمع ہو گیا مگر کوشش کے باوجود مولانا کہیں نظر نہ آئے اور لوگ مایوس ہو کر لوٹ گئے۔ عام خیال یہ تھا کہ مولانا نے اسمبلی کے اجلاس میں شرکت منسوخ کر دی ہے۔ مگر دوسرے دن صبح کو جب اسمبلی کا اجلاس شروع ہوا تو اراکین اسمبلی یہ دیکھ کر بڑے متعجب ہوئے کہ مولانا تو بنفسِ نفیس ایوان میں موجود ہیں۔ اراکین اسمبلی نے مولانا سے پوچھا کہ یہ کیا ماجرا ہے تو فرمانے لگے کہ میں نے جس گاڑی سے آنے کی اطلاع دی تھی اسی سے آیا تھا مگر لوگ مجھے جہاں تلاش کر رہے تھے میں وہاں مل ہی نہیں سکتا تھا۔ لوگ مجھے فرسٹ کلاس یا سیکنڈ کلاس کے ڈبوں میں ڈھونڈھتے ہوں گے اور میں تھرڈ میں ہی سفر کرتا ہوں۔ پھر لوگوں نے پوچھا کہ قیام کہاں رہا؟ تو انہوں نے بتایا کہ ایک موچی میرا واقف ہے، اسی کے پاس ٹھہرا ہوں۔ اراکین اسمبلی نے کہا کہ آپ کے لئے تو فلاں ہوٹل میں قیام کا بندوبست کیا جا چکا تھا۔ اس پر مولانا مسکرائے اور کہنے لگے کہ میں یہاں ایک فرض ادا کرنے آتا ہوں فرسٹ سیکنڈ کا کرایہ وصول کرنے یا پرتکلف ہوٹلوں میں ٹھہرنے کے لئے نہیں آتا۔ قومی دولت کو اس طرح خرچ کرنا اسراف ہے اور وہ میں برداشت نہیں کر سکتا۔

تصنع سے مبرّا اور بے لوث خدمت وطن ان کی زندگی کا جوہر تھا اور انہوں نے اسے ساری عمر نبھایا۔ مولانا کا یہ عالم کس نے نہیں دیکھا کہ ایک معمولی سا کھدر کا پاجامہ، پیوند لگی شیروانی پہنے، سر پر بغیر پھندنے کی ترکی ٹوپی اوڑھے چلے آرہے ہیں۔ بعض اوقات تو دونوں پاؤں میں دو وضع کی جوتیاں نظر آتی تھیں!

ان کی 'حبسیات' ـــــ یعنی جیل کی شاعری ـــــ میں اُن کا اصل جوش و جذبہ نمایاں ہوا ہے۔ جیل میں کاغذ، قلم دوات ملنے کا تو کوئی سوال ہی نہ تھا۔ مگر حافظہ بلا کا پایا تھا۔ جو کچھ کہتے ایک دیوان کی برابر ہوتا اور ہر بار جب جیل سے طلوع ہوتے تو کلام کا ایک بڑا ذخیرہ اردو ادب کے لئے بطور ارمغان لے کر آتے۔ ذہن کی برّاقی، اور آمد سخن ایک چڑھتا دریا ہوتا اور قید فرنگ کی صعوبتیں ان کی طبیعت کے لئے ایک نعمت ہی ثابت ہوتیں۔

عشق میں خوفِ جاں سے درگذرے
ہم نے ٹھانی جو دل میں، کر گذرے
شامِ فرقت کٹے نہ ہجر کی رات
صبح گذرے نہ دوپہر گذرے

روح کو محوِ جمالِ رخِ جاناں کرلیں
ہم اگر چاہیں تو زنداں کو گلستاں کرلیں

باقی صـ۴۳ پر

مکاتیب:

ہمنفسانِ رفتہ

رئیس مینائی

ادبیات میں مشاہیر کے خطوط کا مطالعہ بجائے خود ایک اہم موضوع ہے اور یہ کوشش مستحسن ہے کہ اردو میں بھی مکاتیب کی دریافت و اشاعت کا سلسلہ اب دراز تر ہوتا جا رہا ہے۔ ان خطوط کے مطالعے سے ہمیں مکتوب نگار کے ذاتی حالات و کوائف سے ہی آگاہی نہیں ہوتی بلکہ اس کے ادبی کام کا پس منظر بھی معلوم ہوتا ہے اور لکھنے والا جن نفسی کیفیتوں سے دوچار ہوا، اس کے تجرباتِ حیات کیا تھے اور کسی خاص تحریر کی شانِ نزول کیا تھی، یہ باتیں بھی اکثر ہمیں ان نجی خطوط ہی میں ملتی ہیں، کبھی خفی کبھی جلی۔ ایک مغربی ادیب تو اس باب میں کافی مبالغے سے کام لیتا ہے اور کہتا ہے کہ "اب شاعری کی بجائے ادب پر نثر کی حکومت ہوگی۔ اس قلمرو میں جہاں انشائیہ، نقد اور تاریخ کا دور دورہ ہوگا وہاں خطوط کی بھی اہمیت بڑھتی چلی جائے گی۔" خیر، شعر کی تاجوری کو گزند پہنچے یا نہ پہنچے، اتنا ضرور ہے کہ مکاتیب کی اپنی ایک اہمیت ضرور ہے اور ہمیں اس سرمایہ سے اپنی تاریخِ ادب کے لئے بہت سے جواہر پارے مل سکتے ہیں۔ یہ خیال بجا ہے کہ خطوں کے بنیادی مباحث یا احساسات اگر ایک ہوں بھی تو ان کا اپنا جدا لہجہ اور لکھنے والے کی شخصیت کا فرق موجود ہوتا ہے۔ چنانچہ اس قسم کے خطوط اب منظرِ عام پر آ رہے ہیں جو بجائے خود تبرکات میں شامل کئے جا سکتے ہیں۔ ان میں سے اکثر ایسے ہیں جو تاریخِ ادب کے مطالعے میں بھی بڑی مدد دے سکتے ہیں۔

جناب نفیس[1] بنگلوری (مرحوم) کو بھی اردو ادب سے گہری دلچسپی تھی اور بنگلور جیسے دور افتادہ مقام پر رہتے ہوئے بھی ان کا اردو شعر و ادب سے لگاؤ تمام عمر قائم رہا اور اس سلسلے میں اپنے عہد کے مشاہیر شعراء و ادباء سے بھی ان کی مراسلت و مکاتبت جاری رہی۔ جناب نفیس (مرحوم) کے نام جو خطوط آتے رہتے تھے ان میں سے اکثر ایسے ہیں جنہیں شائع ہونا چاہئے۔ چنانچہ میں مرحوم کے چند چنیدہ خطوط پچھلے دنوں شائع بھی کر چکا ہوں۔ اب اس تحریر کے ساتھ بعض اور غیر مطبوعہ خطوط پیش کرتا ہوں۔ یہ خطوط جہاں اور باتوں پر روشنی ڈالتے ہیں وہاں بعض ادبی مسائل کو بھی مَس کرتے ہیں۔ مثلاً ایک موقع پر عروض کی کوئی بات چلی اور جناب نفیس (مرحوم) اور حضرت آثر لکھنوی کے درمیان رائے کا اختلاف ہوا۔ استاد جلیل مانک پوری (مرحوم) کو دونوں صاحبوں نے اپنا حَکَم مقرر کیا۔ ان کا فیصلہ نفیس (مرحوم) کے حق میں ہوا۔ چنانچہ ۲۹ اپریل ۱۹۴۰ء کے ایک خط میں حضرت آثر نے لکھا: "میں آپ کا بے حد شکر گزار ہوں کہ آپ نے باوجود اس مصرع کو خارج از بحر قرار دینے کے، میری مزید استدعا پر خود اس کے جواز کی سند ڈھونڈ نکالی۔ (کوچۂ زلف کے ایرے پھیرے —) مناسب ہو تو حضرت جلیل کو اطلاع دے دیجئے کہ مجھے اپنی تقطیع کے غلط ہونے کا اعتراف ہے۔"

جناب صفدر مرزاپوری (تلمیذ حضرت جلیل مانک پوری) نے اساتذہ کی اصلاحیں شائع کی تھیں، لیکن دورِ دوم میں سودا کی کوئی اصلاح انہیں دستیاب نہ ہو سکی مگر وہ ان کی تلاش میں تھے، جناب نفیس (مرحوم) نے "مرقع" لکھنؤ (فروری ۲۲ء) میں سودا کی ان اصلاحات کا ایک سلسلہ شروع کیا۔ سب سے پہلے سودا کی وہ اصلاح شائع کی جو قائم چاندپوری کی مثنوی "درویش و عروس" پر انہوں نے دی تھی۔ جناب صفدر مرزاپوری نے اپنی تالیف، "مشاطۂ سخن" کا جب دوسرا ایڈیشن شائع کیا تو یہ اصلاح بھی بہ تشکر درج کی۔

بہرکیف، موصوف کی زندگی کا بڑا حصہ اردو شعر و ادب

---

[1] : جناب رئیس مینائی صاحب کے والد (ادارہ)

کی تحقیق اور اس کی خدمت میں گذرا۔ اس سلسلہ میں مشاہیر ادب سے خط و کتابت بھی ہوتی رہتی تھی اور ایسے بہت سے خطوط کا ایک ذخیرہ ان کے پاس جمع ہو گیا تھا جو ہمارے ادبا و شعرا کی زندگی کا ہی عکس نہ تھے بلکہ علمی، ادبی اور شعری نکات و مسائل پر بھی ان میں بہت کچھ اشارے تھے۔

میں یہاں نفیس بنگلوری (مرحوم) کے نام چند مشاہیر کے لکھے ہوئے خطوط پیش کرتا ہوں، جو غیر مطبوعہ ہیں۔ سب سے پہلے جو خط درج کیا ہے وہ حضرت ریاضؔ خیرآبادی کا ہے اور ان کی زندگی کے ایک ایسے دور سے تعلق رکھتا ہے جب وہ انتہائی عسرت اور خانگی پریشانیوں کی آماجگاہ بنے ہوئے تھے اور اپنی بھی زندگی کا یہ واقعہ انہوں نے نفیس مرحوم کو بے کم و کاست پوری صداقت کے ساتھ لکھ دیا تھا۔ مگر پاسِ خود داری کے باعث اس بات کی تاکید لکھی تھی کہ اس خط کے مشمولات کی کسی کو بھنک بھی نہ پڑے۔ مگر اب جبکہ کاتب اور مکتوب الیہ دونوں ہی اللہ کو پیارے ہو گئے اس اخفا کی چنداں ضرورت نہیں اور ریاضؔ کے خط کو یہاں اس نیت سے پیش کیا جاتا ہے کہ ہمیں علم ہو سکے کہ ہمارے مشاہیر ادب کیسی کیسی ذہنی دوزخوں میں سے گذرا کرتے تھے اور اہلِ علم کی ناقدری کا عالم کیا ہوتا تھا۔ ان کے اس خط سے لنکن سپیٹر کا یہ قول یاد آتا ہے کہ خطوط کو اہم بنانے میں لکھنے والے کے خلوص، براہ راست اظہارِ مطلب اور صداقتِ واقعہ کو بڑا دخل ہوتا ہے۔ یہ باتیں ریاضؔ کے خط میں ازبس موجود ہیں۔ دیگر خطوط میں بھی بعض ادبی معاملات کی طرف اشارہ ہے یا لکھنے والے مشاہیر کے ادبی مشاغل اور نجی کیفیات کا پرتو جن سے کئی اہم باتیں قاری کے علم میں آتی ہیں۔ اس لئے امید ہے کہ یہ خطوط دلچسپی کی نظر سے دیکھے جائیں گے:

ریاضؔ خیرآبادی[1]:

خیرآباد: (یو۔پی) ۴ مئی ۳۷ء:

عزیزی! محبت نامہ ملا۔ آپ کی جگہ میرے دل میں پہلے سے ہے۔ میں دو تین مہینے سے ازبس پریشان تھا۔ اب بھی ہوں۔ مگر کم۔ میں کیا کسی کا کلام دیکھوں میں استاد کے بعد تمام دنیا کا شاگرد بن گیا، یہی وجہ ہے کہ میرا کوئی شاگرد نہیں ہیں واقعی اس قابل نہیں ہوں: خود اپنے لئے کبھی کچھ کہہ لیتا تھا اب ضعف پیری و آلام و حوادث سے یہ سلسلہ بھی نہیں۔ مفلسی ضعیفی پیری میں ماشاءاللہ کثرت اولاد، وظیفہ صرف چالیس روپے جسے میں ہزار کے برابر سمجھتا تھا مگر کب جب میاں بی بی صرف دو آدمی کھانے والے تھے پچپن سال کی عمر میں چوتھا عقد مجبور کیا، خدا نے اولاد دی، اس کا لاکھ لاکھ شکر، دماغ کا یہ حال ہے بجائے خط کے میں نے اپنی سوانح عمری کا سلسلہ شروع کر دیا۔ ابھی ابھی افلاس میں ماہ مبارک کی آمد غنیمت معلوم ہوئی تھی (لیجئے بہک کر کچھ اور کہنے لگا آپ کی محبت اور دیانت پر بھروسا ہے میرے خط کا ایک حرف بھی کسی کی آنکھ کان تک نہ پہنچے) ماہ مبارک کے آغاز ہی میں مجھے یہ مطلع کہنا پڑا ؎

جن کے یہاں ایک رند روزہ دار آنے کو ہے
شام ہونے کو ہے میرے گھر ادھار آنے کو ہے

ماہ مبارک گذر گیا تو عید کے دن یہ مقطع کہنا پڑا ؎

میکدے میں عید مجھ مفلس کی ہو جائے ریاضؔ
دے کے اک چلو کوئی لے تیس روزوں کا ثواب

اس ماحول کو دیکھئے اور آنے والے وقت کو۔ میں باہر بیٹھا ۲۰ شوال کو کچھ لکھ رہا تھا اندر سے پیام آیا ہسپتال سے دائی کو بلوا۔ آدمی گیا دائی کے عوض لیڈی ڈاکٹر آئی چارہ کار کیا تھا اندر گئی۔ ایک گھنٹے کے بعد یہ کہتی نکلی مبارک ہو فیس کے پچیس اور پچیس کے ڈبل پچاس، اس لئے کہ ایک نہ شد دو شد۔ جھوٹے وعدے کے ساتھ تانگہ کا کرایہ دے کر رخصت کیا معلوم ہوا کہ توام بھائی بہن دو بچے پیدا ہوئے۔ بی بی کی مشکل تو آسان ہوئی میاں کی مشکل کیوں کر آسان ہو اب ہم ہیں اور میرؔ کا یہ مصرع:

گرمی سبزہ رنگوں سے اور گھر میں بھونی بھانگ نہیں

گھر کا یہ حال نہ دودھ پلائی نہ کھلائی نہ کھانا پکانے والی ایک زچہ دو بچے میاں بقول خود اس عمر میں ؎

اس شیخ کہن سال کی اللہ رے بزرگی
جنت میں بھی یہ جا کے جواں ہو نہیں سکتا!

چھٹی کے چوتھے روز زچہ کی نبضیں ساقط نہ اشارہ کام دیتا ہے نہ زبان امید زیست دور از حال منقطع حکیم صاحب ہیں اور قوت بڑھانے کے نسخے حسب جواہر مہرہ معجون مروارید اور قیمتی جواہر شیں اللہ نے فضل کیا

---

[1] ریاضؔ نے ابتدا میں اسیرؔ سے فیض حاصل کیا اس کے بعد امیرؔ مینائی کے شاگرد ہوئے۔

دس دن گذرے تھے بشدید تخمے نے دورا زعلاج پھر ناامید کر دیا، پھر اللہ نے فضل کیا بیچارے بچوں پر کیا گذری اور بچوں سے زیادہ مجھ بوڑھے پر کیا گذری کچھ نہ پوچھئے۔ ایک ہفتے سے میں آشوب چشم میں مبتلا تھا اب اتنا بہتر ہوں کہ آپ کی غزلیں دیکھیں اور یہ خط لکھا۔ قدیم اور جدید غزل کے سب شعر اچھے نظر ثانی کی ضرورت ہے نہ اصلاح کی میں نے کبھی کبھی چھپا ہوا کلام بھی دیکھا آپ استاد سے مسلسل فیض اٹھا رہے ہیں، محروم ہوں تو ان کے فیض سے ہیں۔

مطبوعہ تالیفات میں تین ناول تھے، دو کا پتہ نہیں چلتا ایک کی کچھ جلدیں بروقت فراہم ہوئیں اس کا نام "حرم سرا" ہے۔ رینالڈز کے ناول "لو رآف دی حرم" کا ترجمہ ہے مگر میری زبان میں بغایت دلچسپ ہونے سے مکمل حرم سرا یعنی حصہ اول و دوم قیمتی تین آنہ پانچ آنے دی، پی، آپ کے نام مع محصول ڈاک وغیرہ روانہ کرتا ہوں کاغذ لکھائی چھپائی خراب ہے بایں ہمہ بہ اعتبار دلچسپی یہ کہنے میں تکلف نہیں: ع نرخ بالا کن کہ ارزانی ہنوز۔

دیکھنے کے بعد ناپسند ہو یا گراں گذرے تو احباب کو دکھا دیجئے گا۔ اس ذریعہ سے کچھ درخواستیں اور آجائیں گی، ناپسند ہو تو واپس کر دیجئے گا میں قیمت واپس بھیج دوں گا۔ غیر مطبوعہ تالیف دیوان ہے کوشش کر رہا ہوں خدا کرے جلد چھپ جائے۔

اتفاقیہ جلیل[۲] صاحب یاد آگئے ہیں اس لئے انہیں بھی اس خط کے لطیف حصوں کی نقل بھیجتا ہوں۔ یہ لکھنے کی ضرورت نہیں کہ آپ نے غزلیں بھیجیں اور میں نے کیا جواب دیا۔ خط و کتابت کا سلسلہ جاری رہے تو اچھا۔

راقم:

رات آخر وقت نازک ہے ریاض[۱]
لو لگی ہے شمع کی اللہ سے!

*

[۱] ریاض کا کلام ان کی وفات کے بعد "ریاض رضواں" کے نام سے چھپا اور بڑی آب و تاب کے ساتھ۔

[۲] جلیل مانک پوری (فصاحت جنگ بہادر جلیل، مانک پوری استاد میر عثمان علی خان، دکن)

(نواب سراج الدین احمد خان) سائل دہلوی:

۱۹ جولائی ۱۹۴۰ء:

عزیز من! سلامت: آپ کا خط ملا۔ قطعات تاریخ آپ نے مثنوی[۱] کے فرمائے ہیں بہت خوب ہیں۔ شکریہ۔ مثنوی کی اشاعت ملتوی کر دی گئی ہے کیونکہ میری صحت اب پہلے سے بہت زیادہ خراب ہو گئی ہے۔ دس منٹ کے لئے بھی اٹھ کر نہیں بیٹھ سکتا۔ آنکھوں کی بینائی جاتی رہی۔ اختلاج کے دورے پڑتے ہیں۔ ایسی حالت میں آپ کے استفسارات کا جواب دینے سے معذور ہوں۔ دماغ پر زور ڈالنے سے دورے پڑ جانے کا احتمال ہے۔

خدا رکھے فصاحت جنگ بہادر (جلیل) کا اور ہمارا معاملہ خیر نہیں ہے۔ آپ ان سے دریافت کر لیجئے۔

والسلام (سائل دہلوی)

زاہد سہارنپوری[۲]:

سہارنپور، محلہ شاہ ولایت: ۹، مئی ۲۹ء:

عزیز مصر اتحاد یوسف کنعان وداد!

سلمکم اللہ العباد۔

کل آپ کا نامہ وداد ملا۔ آج جواب لکھ رہا ہوں۔ میری حالت گرمی کے موسم میں اس قدر ابتر ہو جاتی ہے کہ مر مر کر بسر کرتا ہوں پڑھنے لکھنے کی اٹھوار دن نوبت نہیں آتی احباب کا کلام پڑا ہے۔ کون دیکھے۔ آپ کی خاطر بہر حال عزیز ہے اس لئے جس طرح بھی بن پڑا کچھ بنا بگاڑ کر بھیجتا ہوں۔

آپ نے یہ نہ لکھا کہ بنگلور میں مشہور مصنوعات اور عمدہ پھل کیا کیا ہوتے ہیں۔ میں پھلوں کا دلدادہ اور حریص ہوں مرحوم

[۱] شہنشاہ نورالدین جہانگیر اور ملکہ نورجہاں کے حالات زندگی اور ان کے واقعۂ عشق پر سائل مرحوم ایک بڑی طول طویل مثنوی لکھ رہے تھے عنوان تھا "نور" علی نور"۔

(ادارہ)

[۲] رو رسالے سہارنپور میں شمار تھا۔ امیر مینائی کے شاگرد تھے اور ہر چند کہ اچھے نامے خوش گو شاعر تھے گمنامی اور بے اعتنائی کا شکار رہے۔

محمد عسکری[1] کی رحلت آپ کے قطعۂ تاریخ سے معلوم کر کے بہت رنج ہوا۔ اللّٰہم اغفر وارحم۔ بقول میر: حق اسے بخشے بجا ہو ہم سے بھی تھا آشنا۔ علاوہ بریں حضرت استاذی امیر کے گلشن کا گلچیں تھا۔ آپ کے اصرار مکرر و سہ کرر پر لڑکوں سے اپنا فوٹو مانگا۔ ایک دو فوٹو انہوں نے آئینوں اور چوکھٹوں میں لگا رکھے تھے بمشکل ان سے ایک فوٹو ملا، جو برسوں پہلے کا ہے۔ حال میں کوئی نہیں لیا گیا۔ اس لئے وہی پہلا فوٹو بڑے پیپر بورڈ سے اکھاڑ کر بھیجتا ہوں۔ احباب کی صدہا فرمائشیں فوٹو کی طلب میں دور دور سے آتی ہیں۔ اس لئے کہاں تک تعمیل کی جائے۔ الا آپ کی تحریر مکرر نے مجبور کیا اور بغیر تعمیل کچھ نہ بن پڑا۔ والسلام

(خاکسار: زاہد)

حضرت آرزو لکھنوی:

دیدیا مینشن۔ چھکتا واڑی، تار دیو بمبئی ۷:

۲۴۔ نومبر ۱۹۴۱ء:

صاحب طبع نشیں: سلام مسنون پہونچے۔ آپ کے پرانے ادبی استفسارات میں اس قدر اجمال تھا کہ اگر خود میں ان کی تفصیل کا ارادہ بھی کرتا تو جوابات کے ساتھ وہ اک کتاب ہو جاتی۔

اتنا وقت مرے پاس نہ تھا۔ اور یہ عذر آپ کو لکھ بھی رکھا تھا شاید یاد نہ رہا ہو۔ ایسا ہی ایک سوال ان استفسارات میں بھی ہے جسے مع مثال آپ کو دوبارہ لکھ کر بھیجا ہو گا۔ "نشانِ آرزو" کے اغلاط کی کوئی حد نہیں ہے۔ اکثر غزلیں، جیساکہ آپ نے محسوس کیا وہ بھی شامل کر دی گئیں جو درحقیقت سینما کے لئے کہی گئی تھیں۔ آئندہ وہ الگ کر کے گیتوں میں شامل کر دی جائیں گی اور ترتیب بھی حروف تہجی کے لحاظ سے ہو گی اور چند نعتیہ غزلیں۔ تاریخیں وغیرہ شامل کر دی جائیں گی۔ میں خود ایک جلد آپ کو بھیج دوں گا۔

علاوہ بحر وافر کے ایک غزل بالکل نئی بحر میں ہے جس کا وزن فعلن، فعولن، فعلن فعولن یعنی فاعلن مخبون اور فعولن سالم کو ملا کر بنائی گئی ہے۔ مطلع یہ ہے ؎

غمِ دل کو کیونکر نہ فنا نہ جانے
وہ جفا کا خوگر کہ وفا نہ جانے

غزلیں دیکھیں اور ترمیم کے ساتھ ضروری نوٹ بھی شامل کر دئے ہیں۔

"دردِ انہ[2]" بھی کتابت کے اغلاط سے مملو ہے۔ کل ہی ایک شعر پر نظر پڑی اور عقل حیران رہ گئی۔ بڑی دیر کے بعد اصل صورت یاد آئی:

بوجھ آدھا بٹا دیا میں نے
ایک موتی تو لا دیا میں نے

چھپا یوں ہے!

بھی بوجھ آدھا کر دیا میں نے

پہلے ہی شعر میں "قصبۂ دلپذیر" کی جگہ "قصۂ دلپذیر" چھپا ہوا ہے۔

آپ اپنے شبہات بے تکلف لکھئے۔ میں بھی انسان ہوں۔ ممکن ہے کوئی فروگذاشت بھی نکل آئے جس سے مجھے آپ کو دونوں کو فائدہ پہنچے۔

اس طرف لڑکی کی شادی کی وجہ سے بہت کم فرصت رہی۔ علاوہ اس کے ہاتھ میں رعشہ آ گیا ہے جس کی وجہ سے لکھنے میں بہت دقت ہوتی ہے۔ فقط۔ (خیر طلب: آرزو)

رسالہ "میزان الحروف" چھپ رہا ہے۔ امید ہے کہ وہ دسمبر کے اوائل میں بھیج سکوں گا۔ وہ دیکھنے کی چیز ہے۔

نواب عزیز یار جنگ:

لالہ زار حیدرآباد: ۴ مارچ ۱۹۴۳ء:

محبی! یاد آوری کا شکریہ!

نہیں کھیل اے داغ یاروں سے کہہ دو
کہ آتی ہے اردو زباں آتے آتے

"امیر و داغ" کا ایک نسخہ تحفۃً مرسل ہے چند روز سے میں اپنے باغ میں ہوں اگر آپ خط لکھیں تو پتہ ذیل پر لکھئے۔ ٹپہ جامعہ عثمانیہ۔ تار کا ناکہ "لالہ زار"۔

(۱) مطلع: نہیں کہ مجھ کو قیامت کا اعتقاد نہیں :— یہاں

---

[1] سید محمد عسکری وسیم خیرآبادی، تلمیذ امیر مینائی۔

[2] آرزو لکھنوی مرحوم کی ایک مثنوی جس میں ۲۳۸ شعر ہیں۔

[3] قصۂ دلپذیر روپ نگر عشق کی سیر گاہ حسن کا گھر

انکار اثبات دونوں پہلو ہیں شاعر کا مقصد دوسرے مصرع سے واضح ہوگا۔

(۲) مصرع: "کون گنتا ہے مری قبر پہ گریاں ہو کر" "گریاں" صحیح، ہوکر غلط، "گریاں ہو کر مری قبر پہ گذرا" یہ ترکیب صحیح نہیں ہے۔ مصرع مہمل ہے۔

(۳) مصرع: "خون کی چادر جو پھیلے گی کفن ہو جائے گا" اس مصرع میں "ہو جائے گا" صحیح ہے۔

(۴) مصرع: آج بوسہ تجھے دیتے ہی بنے گا اے جاں
کچھ ترا وعدہ نہیں ہوں کہ میں ٹل جاؤں گا

"دیتے ہی بنے گی" صحیح مگر "اے جاں" نہایت مہمل، دوسرے مصرع میں "کچھ" بول چال کے خلاف ہے۔

(۵) مصرع: چمک دنداں میں افزوں مہر و مہ سے
یہ ثابت ہے جناب عائشہؓ سے

قافیہ تو ہو سکتا ہے عائشہ میں "ہ" نہیں ہے بلکہ "ت" ہے مگر میں احتیاط کرتا ہوں "مہ" "رہ" قافیہ ہو سکتا ہے۔

(۶) مصرع: نذر کرنے کو جگر پارے لئے جاتا تو ہوں
ناوکِ نازِ نگاہِ یار دیکھیں کیا کرے

سُقم کہیں نہیں ہے شاید آپ کو "جاتا تو ہوں" اور "دیکھیں" کی وجہ سے شبہ پیدا ہوا مگر بول چال کے لحاظ سے دونوں مصرعے درست ہیں "دیکھوں" بھی بجائے "دیکھیں" ہو سکتا ہے۔

(۷) "یہ فسانہ تو مرے نوکِ زباں رہتا ہے" یہ مصرع مہمل ہے "نوکِ زباں" کے معنے اور مفہوم کو سمجھنے کے لئے حضرت داغ کے اس مصرع پر غور کیجئے: "یہ یا نہ کبھی نوکِ زباں ہو نہیں سکتا"

امید کہ مزاج گرامی بخیر ہوگا۔ زیادہ والسلام:

(عزیز یار جنگ)

حضرت جلیل مانکپوری:

دلنواز! سلام مسنون۔

آپ کا نوازش نامہ پہنچا۔ ما فیہا سے آگہی ہوئی، آپ نے اردو کے عروض پر[1] شبہات جو کئے ہیں وہ قابل لحاظ ہیں عنقریب نظرِ ثانی کروں گا اور آپ کی تحریر کو پیش نظر رکھوں گا، فرصت کا انتظار کر رہا ہوں، میرے ہاتھ کی تحریر آپ لے کر کیا کریں گے اول تو میرا خط ایسا نہیں کہ اس کا شمار اچھے خطوں میں ہو، دوسرے آج کل ہاتھ میں کسی قدر رعشہ بھی ہے جس سے خط اور بھی خراب ہو گیا لہذا معافی چاہتا ہوں، آپ کا تخلص نفیس بہت مناسب ہے اور مشہور بھی ہو چکا ہے اس کو ہرگز بدلنا نہ چاہئے۔ رشک نہ اچھا لفظ ہے نہ اچھی چیز ہے علاوہ ناسخ کے ایک بڑے مشہور شاگرد اور صاحبِ تصانیف و صاحبِ تلامذہ کا تخلص ہے۔ لہذا آپ تخلص بدلنے کا خیال ترک کر دیجئے، نفیس بہت عمدہ لفظ ہے اور معناً بھی بہت پاکیزہ ہے۔ وہ شخص جس کا تخلص نفیس ہے وہ خود قابلِ رشک ہے۔

والسلام: سماحت جنگ جلیل کان اللہ لہ

حضرت نوح ناروی:

از نارہ ضلع الہ آباد: ۳۰ راگست ۱۹۳۵ء

ہفتہ عشرہ سے میری طبیعت اچھی نہیں "طوفانِ نوح" کے کاتب، حافظ محمد علیم صاحب ناروی جلال صاحب لکھنوی کے شاگرد ہیں حکایت کے جس مصرع میں کچھ اختلاف انہیں ہوا انہوں نے بغیر میری اطلاع کے تصرف کر دیا۔ بعد چھپنے کے مجھے خبر ہوئی میں بہت ان پہ ناخوش ہوا۔ لیکن جب دیوان شائع ہو چکا تو کیا کرتا بہت سے مقامات پر ان کا تصرف تم پاؤ گے۔ وہ مصرع یوں ہے:

غور کی رندوں نے لیکن حل نہ عقدہ ہو سکا

کہنے لگے کہ غور مذکر ہے۔ میں نے کہا آپ کے لکھنؤ میں ہوگا۔ دلی میں تو تانیث ہے۔ اور کیا لکھوں دلی جانے کے لئے آمادہ ہوں!

(نوح)

---

[1] حضرت جلیل کے "رسالۂ عروض" پر جناب نفیس بنگلوری نے اپنے کچھ شبہات ظاہر کر کے حواشی لکھے تھے خط میں اسی کی جانب اشارہ ہے۔

*

عالم یک شہر جستجو

سیّد قدرت نقوی

یہ کائنات اور اس کے جلوہ ہائے رنگا رنگ، مظاہرِ فطرت کی بوقلمونی، مخلوقات اور ان کی کشمکشِ حیات، بحر و بر کی آویزش، اہتزازِ نسیم، درفشانِ شبنم، ابتسامِ غنچہ، انتشارِ شمیم، بوئے گل، نوائے بلبل، رقصِ شرر، تلاطمِ امواج، طوفانِ باد و باراں، ہر شے اور ہر کیفیت محتاجِ اظہار، اظہار انداز و اسلوبِ بیان سے پرتاثیر، تاثیر انتخابِ الفاظ پر موقوف، الفاظ قبولیتِ عامہ کی سند کے محتاج، جن میں صدیوں کے انقلابات کی داستانیں مضمر، ان داستانوں کا سراغ لگانا "لانا ہے جوئے شیر کا"۔

کائنات میں ہر شے تغیر کی دستبرد کا شکار ہوتی ہے۔ اشیاء کی بقا، تغیرات کا مقابلہ کرنے میں پوشیدہ، انسان اس کائنات پر تصرف کے حق سے مشرف، اس لئے نوامیس فطرت میں حسب منشا تغیر و تبدل کرنے کا اسے مجاز، مگر انسان کے اس عمل میں زیادہ تر بہتری و بہبودی کا رجحان کارفرما، اس بہتری و بہبودی کے دو روپ، ایک منفعت، دوسرا زینت۔ بالطبع حسن پسند انسان منفعت میں بھی زینت کو نظرانداز نہیں کرتا۔ اس تصرف کی نمایاں مثالیں باغبانی میں نظر آتی ہیں۔ رنگا رنگ پھول، انواع و اقسام کے پھل، پیوندکاری اور عمل تقلیم کے نتائج ہیں۔ فطرت میں تصرف، منفعت و زینت، جلوۂ آشکار سہی، مگر اس جلوۂ ظاہر میں کتنی طویل داستان پنہاں "سفینہ چاہئے اس بحرِ بیکراں کے لئے"۔ ابتدائی روپ، آبا و اجداد کے تجربات، ان کے اثرات، راہِ ارتقا میں موانع، مشکلات، تدریجی پیشرفت، اب کون بتلائے؟ یہی حال اس کائنات میں آباد نوعِ بشر کے ذریعہ اظہار، زبان اور اس کے ذخیرۂ الفاظ کا ہے۔ مفرد، مرکب، بظاہر مفرد بباطن مرکب، مفرد کا ابتدائی روپ، اس میں عمل ترمیم و تنسیخ، مرکب کی پہلی شکل، تجربات کی خراد پر چڑھ کر سڈول ہونے کے مراحل، سب معماتِ تحقیق

تحقیق کی منزلِ آخر تک پہنچنے کے راستے تیرہ و تار، کہیں کہیں کچھ روشنی نظر آتی ہے مگر ساتھ ہی گہرے غار بھی ہیں، ذرا سی لغزش کا نتیجہ کوشش بے سود ثابت ہوتا ہے۔ اس لئے ہر نشیب و فراز پر نظر رکھتے ہوئے آگے بڑھا جائے۔ مگر منزل تک رسائی "ہر قدم دوریٔ منزل ہے نمایاں مجھ سے" کی سی کیفیت ہے۔

ہم ماضی سے بہت کچھ حاصل کرتے ہیں۔ حال سے بھی ہمیں کچھ نہ کچھ مل ہی جاتا ہے۔ ان کے طفیل ہم مستقبل کی طرف قدم بڑھاتے ہیں۔ ماضی اور حال سے حاصل شدہ سرمایہ میں سے کھوٹے کھرے کو پرکھے بغیر اپنانا اور تصرف میں لانا دانشمندی کی دلیل نہیں بلکہ شعور انتقاد سے کام لے کر برتنا چاہئے۔ کیونکہ اکثر ایسا ہوتا ہے کہ ماضی و حال کی لغزش ہی مستقبل کے لئے راست روی کی راہ سجھاتی ہے۔ کچھ ایسی ہی کیفیت کی حامل چند لفظوں کی داستانیں حقائق کی نقاب کشائی کرتی نظر آتی ہیں۔

کسی مفہوم کو ادا کرنے کی غرض سے الفاظ بنائے جاتے ہیں۔ یہ الفاظ صدیوں سے پیش آنے والی ضروریات، حالات و واقعات، بزرگوں کے تجربات و مشاہدات کی بدولت وجود میں آتے ہیں۔ جب کوئی لفظ وجود میں آتا ہے تو اس کا حقیقی مفہوم وہی تسلیم کیا جائے گا جو وقت تخلیق مقصود ہوگا۔ الفاظ تغیر لسانی کا شکار ہوتے رہتے ہیں۔ اس تغیر کی دو نوعیتیں ہیں۔ ایک حرفی (املائی و لہجائی)، دوسرے معنوی۔ مثلاً "افراتفری" اصل میں افراط و تفریط یا افراط تفریط تھا جس کے معنی حد اعتدال بڑھنا یا گھٹنا، غیر معتدل، غیر متوازن تھے۔ اردو میں آیا تو تغیر لسانی کا شکار ہوا "ط" کو لہجہ برداشت نہ کر سکا اور یہ ساقط ہو کر "افراتفری" بن گیا۔ املا اور لہجے کے علاوہ معنی میں بھی تصرف ہوا، اور رِل چل، گڑبڑ، بھگدڑ، گھبراہٹ، پریشانی کے معنی لئے جانے لگے۔ تغیر کی مثالیں بکثرت ہیں، بالخصوص

غیر زبانوں سے درآمدہ الفاظ میں یہ عمل زیادہ ہوا ہے۔ نیز مرکبات میں بھی اس کے کافی آثار ملتے ہیں مثلاً "الف ننگا" جس کے معنی ہیں بالکل ننگا، جس کے بدن پر کوئی کپڑا نہ ہو۔ محاورے میں بے شرم اور دریدہ دہن کے معنی لئے گئے۔ یہ لفظ "الف ننگا" تغیر لسانی کا شکار ہوا اور "منڈنگا" بن گیا۔ الف اور نون سے جو ثقالت پیدا ہوتی تھی ختم ہو گئی۔ آوارہ، لُچا، شہدا، بدقماش اور بدمعاش معنی لئے گئے اسی طرح "دھڑنگ" "دھڑنگا" ہے جو "ننگ، ننگا" کے ساتھ بطور تابع آتا ہے یعنی "ننگ دھڑنگ" اور "ننگا دھڑنگا" اصل میں دھڑ + ننگ اور دھڑ + ننگا تھا۔ دھڑ کے ہم معنی "انگ" سے بھی اس کا رشتہ قائم کیا جا سکتا ہے۔ دھڑ + انگ اور دھڑ + انگا لیکن یہ ترکیب اس لئے قرین قیاس نہیں کہ "انگ" کے معنی عضو، جسم کا کوئی حصہ بھی ہیں اور "ننگا" لباس کی ایک قسم گویا انگرکھا بھی ہے۔ ننگ اور ننگا کے ساتھ اس مرکب کا استعمال معنوی طور پر قباحت پیدا کرے گا۔ اس لئے صحیح اور مناسب اجزائے ترکیبی دھڑ + ننگ اور دھڑ + ننگا ہی ہیں۔ ایک نون تلفظ میں گر گیا اور رواں لفظ دھڑنگ اور دھڑنگا بن گیا۔

تغیر معنوی کی مثالیں بہت ہیں۔ "اردو" ہی کو لیجئے، لشکر، لشکرگاہ، لشکری بازار کے لئے استعمال ہوا، لیکن اب یہ تینوں معنی ختم ہو چکے ہیں اور صرف زبان کے لئے استعمال ہو رہا ہے مگر ان مجازی معنی میں بھی ابتدائی معنی کا تصور موجود ہے کہ اس زبان کی تخلیق میں لشکریوں کا بہت زیادہ ہاتھ ہے اور انہی کی نسبت سے اس زبان کو اردو کہا جانے لگا۔

اگرچہ ہر لفظ کا مرکب یا تغیر لسانی کا شکار ہونا ضروری نہیں، لیکن اکثر الفاظ تغیر ہی کی زد میں آ کر سڈول بنے ہیں۔ بعض کی داستان کافی طویل اور دلچسپ ہے۔ "اِکّل کُھرا" ہماری زبان میں خود غرض، الگ تھلگ رہنے والا، بے مروت، اپنے ہی فائدہ کی فکر میں رہنے والا، دوسروں سے مل جل کر نہ رہنے والا، بدمزاج آدمی کو اکل کھرا کہتے ہیں۔ یہ معنی مجازی ہیں جو اس لفظ کی تحقیق کے بعد نتائج سے اخذ کئے گئے ہیں یہ لفظ مفرد نہیں بلکہ مرکب ہے۔ اس کے اجزائے ترکیبی، وجہ تخلیق، مقام تخلیق اور ابتدائی معنی سطور ذیل میں ملاحظہ فرمایئے؛

اِکّل کُھرا: یہ لفظ درحقیقت کسانوں کے ذریعہ رائج ہوا۔ اس کے اجزائے ترکیبی کی حسب ذیل صورتیں ہو سکتی ہیں؛

(۱) اِکّل، اِکّلّ بمعنی تنہا، اکیلا۔ ایک سے ماخوذ یعنی ایک + ل = ایکل، اکل جیسے بوجھل، توندل وغیرہ۔ عموماً بچے زمین پر لکیریں کھینچ کر خانے بناتے اور ایک ٹانگ اوپر اٹھا کر دوسری سے اچھلتے اور ان خانوں میں سے گول ٹھیکرا یا گِٹّا (گٹا) ٹھوکر مار کر باہر نکالتے ہیں، شمالی ہند میں اس کھیل کو اِکّل دُکّل اور اِکّلی دُکّلی کہتے ہیں، پنجاب میں یہل دُوج کہتے ہیں۔ یہ اِکّل پراکرت (एक्कल) اور اِکّل سنسکرت (एकल) سے اردو میں آیا۔ کھیل کا نام اس کے وجود اور استعمال کی بین مثال ہے۔ بعض اس کو بالف مفتوح (اَکل) کہتے ہیں مگر اکثریت کا رجحان بالف مکسور (اِکل) ہی ہے۔

(۲) کُھرا: اس لفظ کی پانچ صورتیں ہو سکتی ہیں؛

(ا) کھرا = آخور (جانوروں کے چارہ کھانے کی جگہ) + ا (فاعلی) = آخورا: کسان جو عموماً جاہل ہوتے ہیں خ کا تلفظ ادا نہیں کر سکتے ان کے لہجے میں خ اپنے قریب المخرج کھ سے بدل گئی۔ آکھورا تغیر لسانی سے کھرا بن گیا۔ اکل کھرا = اکیلی آخور والا۔

(ب) کھرا = خور (امر از خوردن) + ا (فاعلی) = خورا، یہی مندرجہ بالا تغیر لسانی سے کھرا بنا۔ اکل کھرا = تنہا کھانے والا۔

(ج) کھرا بمعنی بدمزاج، سخت، کھردرا۔ تغیر لسانی سے ر کی تشدید دور ہو گئی۔ اکل کھرا = اکیلا بدمزاج، الگ تھلگ۔

(د) کُھر بمعنی چارہ کھانے کی جگہ، یہ بھی آخور کی بگڑی ہوئی شکل ہے جو "لی" لاحقہ کے ساتھ کھرلی بن کر مستعمل ہے + ا (فاعلی) اکل کھرا = تنہا جگہ پر کھانے والا۔

(ہ) کھرا = کھر بمعنی سم + ا (فاعلی) اکل کھرا = ایک یا اکیلے سم والا۔

اس مرکب لفظ کی یہ پانچ قرین قیاس صورتیں ہو سکتی ہیں مگر میرے نزدیک "آخور" سے ماخوذ ہونا زیادہ بہتر ہے۔ یعنی "اکل آخورا" تغیر کے بعد "اکل کھرا" بنا، کیونکہ یہ لفظ خاص کسانوں کے طبقہ کی پیداوار ہے۔ کسانوں کے ہاں بیلوں کی جوڑیاں ہوتی ہیں۔ ہل، رتھ اور گاڑی وغیرہ میں دو بیل جوتے جاتے ہیں۔ جب ان کو تھان پر لا کر باندھا جاتا ہے تو ہر جوڑی کی آخور مشترکہ ہوتی ہے جو عموماً مستطیل شکل کی بنائی جاتی ہے۔ یہ دونوں بیل جو ہل وغیرہ میں ساتھ جتتے ہیں چارہ بھی ساتھ ہی کھاتے ہیں۔ ان میں اگر

کوئی بیل مرکھنا ہوتا ہے تو اس کو الگ آخور پر باندھتے اور چارہ دیتے
ہیں، ایسے بیل کو "اکل آخورا" (مغیرہ صورت اکل کھرا) کہتے ہیں، پس یہ
مرکب آخور سے زیادہ قرین قیاس ہے۔ جس کی تائید کھرا (کھرلی) سے بھی ہوتی
ہے۔ بگھی میں بھی دو گھوڑے ساتھ جوتے جاتے ہیں لیکن اول تو ان کا استعمال
ہی بہت کم ہے، دوسرے یہ گھوڑے صرف بگھی میں جتتے وقت ساتھ
ساتھ ہوتے ہیں ورنہ الگ الگ رہتے ہیں۔ نیز گھوڑوں کو دانہ توبڑے
یا بالٹی میں کھلایا جاتا ہے، جہاں شرکت کا تصور ہی نہیں ہو سکتا اور
گھاس بھی الگ الگ ہی ڈالی جاتی ہے اس لئے اصطبل سے اس کا
تعلق نہیں۔

اس مرکب کا دوسرا جزو "کھرا" بمعنی بدمزاج بھی ہو سکتا
ہے لیکن مرکب معنوی اعتبار سے مہمل ہو جاتا ہے کیونکہ اکل اور کھرا میں
تسلسل معنوی کے لئے عطف ضروری ہے۔ کھرا کو تابع بھی قرار نہیں دے
سکتے۔ اسی طرح مرکب کا دوسرا جزو "کھر" بمعنی سم بھی ہو سکتا ہے لیکن یہ بھی
معنوی اعتبار سے غلط ہے، کیونکہ کسی جانور کا اکیلا سم نہیں ہوتا۔ اکیلے سم والا
خلاف حقیقت ہوگا۔ اگر سم سے لڑنے کا تصور دیا جائے تو بھی یہ خلاف
واقعہ ہے کیونکہ اس قسم کے جانور سم سے نہیں بلکہ سینگوں سے لڑا کرتے
ہیں پس یہ دونوں اجزائے ترکیبی خلاف حقیقت اور معنی سے دور ہیں۔

"خور" سے مرکب قرار دینے میں معنوی قرینہ ضرور موجود ہے لیکن
حقیقت واقعہ سے مناسبت نہیں، کیونکہ اکل + خورا (کھرا) = اکیلا
کھانے والا۔ تنہا چارہ کھانے والے تو اکثر جانور رہتے ہیں جیسے گائے
بھینس وغیرہ، ان کی آخور بھی الگ ہوتی ہے اور ہر ایک اپنے چارہ میں
غیر کی شرکت کو گوارا بھی نہیں کرتے، مگر ان میں سے کسی کو بھی "اکل کھرا"
نہیں کہا جاتا کیونکہ ان کے ساتھ کسی کی شرکت کا تصور ہی نہیں ہے؛
البتہ بیلوں کی جوڑی میں شرکت و اتحاد کا تصور موجود، عدم شرکت و
اتحاد، خلاف رسم و عادت، اور اسی خلاف رسم و عادت عمل سے یہ
مرکب وجود میں آیا۔ کیونکہ جب تک یہ دونوں بیل ایک ہی آخور پر
لڑ جھگڑ کر کھاتے رہتے ہیں تب تک ان میں سے لڑنے والے بیل کو اکل کھرا
نہیں کہتے، بلکہ جب ان میں سے مرکھنے بیل کو الگ آخور پر باندھتے ہیں
تو کہتے ہیں کہ "اکل کھرا" ہے، اپنے ساتھی کو مارتا ہے۔ اسی لئے میں نے "آخور"
سے ترکیب پانے کو ترجیح دی ہے۔ اکل آخورا (اکل کھرا) ابتداً میں
ایسے بیل کے لئے استعمال کیا گیا جو اپنے ساتھی کو ایک آخور پر چارہ
کھانے نہیں دیتا تھا، اس سے لڑتا تھا پس اس کو الگ آخور پر باندھا
گیا تو اکل آخورا کہا۔ یہ اکل آخورا تغیر لسانی سے اکل کھرا بنا۔ اور اس
اکل کھرے بیل کی فطرت کو ملحوظ رکھتے ہوئے اکل کھرا مجازی معنی میں
استعمال کیا جانے لگا۔

بہار: ہر سال موسم بہار آتا ہے مگر اس حقیقت کا کسے
علم کہ یہ بہار اور نو بہار قدیم ایرانیوں میں بتکدوں کے نام تھے۔ غالباً یہ
بتوں کے نام ہوں گے انہی کے نام سے یہ بتکدے موسوم کئے گئے ہوں گے۔
بہار خانہ آج بھی بت خانہ کے ہم معنی ہے۔ موسم کے معنی میں بھی مجازاً
اس بت ہی کی نسبت سے رائج ہوا۔ اس بت کے حیطۂ اقتدار میں بہتری،
بہبودی، رونق، سرسبزی و شادابی وغیرہ کو خیال کرتے ہوں گے۔ اور
کوئی تعجب نہیں کہ انہی کے پیش نظر اس کے اجزائے ترکیبی یہ ہوں، یہ
(بہتری و بہبودی) + آر (امر از آوردن) = بہ آر = بہتری لانے والا موسم
بہار ہوتا ہی ہے بہتری، بہبودی اور منفعت بخش موسم، پودے پھولوں
سے اور درخت پھلوں سے لد جاتے ہیں۔ ہر طرف مسرت و شادمانی ہوتی
ہے گویا موسم بہار، بہ آرین کر آتا ہے۔

"خدا": میں نے لفظ خدا کے متعلق اپنے مضمون "خدا۔
مفرد یا مرکب" مطبوعہ ماہ نو اکتوبر ۱۹۶۱ء میں مفصل بحث کی تھی اور اس کو
مفرد ثابت کیا تھا۔ عام لغات میں مندرج ترکیب: خود + آ (امر از آمدن) =
خود آنے والا اور مؤلف "فرہنگ نظام" کے خیال یعنی خدا کا مادہ ختو
بمعنی واجب الوجود کو غلط ثابت کیا تھا۔ لیکن اب ایک اور خیال کی
ترکیب ظاہر ہوئی ہے یعنی خدا دو لفظی مرکب نہیں بلکہ سہ لفظی ہے
جس کے اجزائے ترکیبی قدیم فارسی اور انہی کے متبادل سنسکرت میں
اس طرح ہیں:

سنسکرت: سو (آپ، روح) + تس یا تہ (لاحقہ)
سوتہ (اپنے آپ سے، بخودی خود) + دھات (باقی، پائندہ) = سوتہ
دھات = اپنے آپ سے باقی، خود بخود پائندہ۔

فارسی: خو (فطرت، عادت) + ت (لاحقہ) = خوت یا
خود (اپنے آپ، خود بخود) + دات (لاحقہ) = خوت دات = اپنے آپ
سے باقی خود بخود پائندہ (واجب الوجود)

ان اجزائے ترکیبی کی تشریح اس طرح ہے کہ خو + ت = خوت
خود اور خدا میں خو مشترک ہے قدیم ترین فارسی میں خذا، خود ہی ہے،

درمیانی عہد میں خوتای، ت کا تبادل د سے مسلم، اس لئے خوتای سے خدا ہو سکتا ہے، مگر دھ کا تبادل ت سے نہیں اس لئے سہل بات یہ ہے کہ خدا کو خودھای سے ماخوذ مانا جائے، اور دھ میں تخفیف ہو کر د بنا قبول کیا جائے۔ یا خدا = خوت دات اولاً خوتاد (بحذف دو تبدل ت باد) ہوا، اس کے بعد خوتای (بحذف د) ہوا، یا خوتودات = خودای (بحذف ت) ہوا پھر خدای = خدا ہو گیا۔ خوتای بمعنی مالک، حاکم، قادر (بادشاہ) مستعمل تھا، ساسانی عہد میں خالق و مالک کل اوہرمزدا کے لئے استعمال ہوا، قدیم فارسی میں بمعنی اللہ بھی استعمال ہوا ہے جیسے اہرمزد اخدا۔

مذکورہ اجزائے ترکیبی اور تشریح پر غور کیجئے! "خو" بمعنی فطرت و عادت قدیم فارسی میں خو نہیں تھا بلکہ "خیم" تھا۔ خیم میں سے م ساقط ہو گئی اور ی واؤ معروف سے بدل گئی، خو بنا۔ خیم کی مثالیں یہ ہیں "اپرخیم و خرد فرخ مرت" (درخوی و خرد مرد فرخ) اور "البور پنج خیم ہوسروان" (بر پنج خوی خسروان)۔ نیز "دژخیم" بمعنی بدخو، بدفطرت تاحال باقی ہے۔ پس خود اور خدا میں مشترک "خو" معنوی اور املائی حیثیت سے نہیں ہو سکتا۔ نیز خو میں واؤ معروف ہے اور خود، خدا کی ابتدائی شکل خوتای میں واؤ معدولہ ہے۔ "خو" خ مع واؤ معدولہ اوستا اور پہلوی میں ایک مفرد حرف (ح) ہے اس کی ہجائی مطابقت بھی نہیں ہو سکتی۔ فارسی میں خودھای کی دھ کا سراغ نہیں ملتا۔ البتہ دات ہے جس کے معنی عطیہ ہیں اس مفروضہ، خو + دات کے معنی عطیۂ فطرت ہو سکتے ہیں، نہ کہ بخودی خود۔ فارسی قدیم میں خوتای بمعنی اللہ نہیں ہے، بلکہ بمعنی بادشاہ یا مالک ہے یا زیادہ سے زیادہ فرشتہ مراد لے سکتے ہیں۔ لیکن اس مرادی معنی کے ساتھ ساتھ، مالک، صاحب، اور بادشاہ کے معنی بھی لئے جا سکتے ہیں۔ مثلاً "اوہرمزد خوتای" میں آقا یا بادشاہ بھی معنی ہو سکتے ہیں کیونکہ اہرمزد کے معنی اللہ کے ہیں اگر خوتای کے معنی بھی اللہ کے لیں تو دونوں کے اجماع کا جواز کیسے ہوگا؟ دراصل "خوتای" صفتِ اوہرمزد ہے یعنی اوہرمزد بادشاہ۔

لسانیات کا ایک عام اصول ہے کہ لفظ وقت تخلیق و اختراع اپنے اصلی مفہوم پر دلالت کرتا ہے۔ یہ مفہوم تنزل و ارتقا کا شکار بعد میں ہوتا ہے۔ پس یہ کہنا کہ خوتای بمعنی مالک، آقا اور قادر (بادشاہ) مستعمل تھا۔ ساسانی عہد میں خالق و مالک کل "اوہرمزدا" کے لئے استعمال ہوا، اجزائے ترکیبی کی خود تغلیط کر رہا ہے کیونکہ یہ لفظ جیسا کہ اجزائے ترکیبی کے معنی سے ظاہر کیا گیا ہے اگر واجب الوجود کے معنی کے لئے اختراع ہوتا تو ابتدا میں اسی معنی میں استعمال کیا جاتا اور دوسرے معنی میں تغیر لسانی کے مراحل طے کرنے کے بعد رائج ہوتا لیکن ظاہر ہے کہ ابتدا میں بمعنی اللہ مستعمل نہیں ہوا بلکہ بعد میں استعمال کیا گیا ہے۔ لہٰذا جب ابتدائی استعمال میں یہ معنی موجود نہیں تو اجزائے ترکیبی کی تطبیق کیونکر ممکن ہو سکتی ہے اور ان کو کیسے ثابت کیا جا سکتا ہے؟ اب ملاحظہ فرمائیے کہ قدیم فارسی میں ذات الٰہی کے لئے کون کون سے الفاظ مستعمل تھے۔ لفظ خدا قدیم فارسی میں کب سے مستعمل ہے اور کن کن معنی میں، اس کی املائی اشکال کیا کیا تھیں؟

قدیم فارسی میں ذات الٰہی کے لئے، بَغ، مَزْدَ، اَہُورَامَزْدَہْ، یَزْتان، یزدان اور یَزْدْ مستعمل تھے۔ بَغ عہد ہخامنشی اور اس کے بعد بھی اللہ تعالیٰ کے لئے استعمال ہوتا رہا ہے۔ یہ لفظ سب سے پہلے پادشاہ آثور (۷۰۵-۷۲۱ ق م) کے کتیبہ سارگون میں "بغ داتی" کی شکل میں ملتا ہے۔ اس کے بعد "بغ یدیش" ایک مہینہ کا نام یعنی ماہ ستائش خدا، کتیبۂ داریوش میں ہے، دوسرے کتبوں اور اوستا میں بغ بمعنی خدائے عالم آیا ہے۔ "بغ دات" یعنی خداداد اور "بغ کرت" یعنی خدا کرد، دو بادشاہوں کے نام ہیں۔ ایک آتش کدہ کا نام بھی "آتور خورنہ بَغْ" یعنی آتش جلالت یزدان ہے شہنشاہان ساسانی کی سکوں میں بھی "بغ" بمعنی خدا پایا جاتا ہے۔ اس کے بعد اس لفظ کے معنی میں فرق آیا ہے اور پھر بجز چند مرکبات زبان فارسی سے بالکل نابود ہو گیا ہے۔ ساسانی سکوں پر یہ عبارت کندہ ہے جس میں بغ، یزد، یزدان، اور یزتان بمعنی اللہ استعمال ہوئے ہیں:

"مَزْدَیَسْنِی بَغِی اَرْتَخْشَتَرْ ملکان ملکا ایران مَنوشتر من یزدان"

یعنی خدا پرست و خدائگان اردشیر شہنشاہ ایران جس کا خاندان خدا سے تعلق رکھتا ہے۔ اسی طرح "مزدیسنی بغی شہپوہری ملکان ملکا ایران منوشتر من یزدان" سکہ شاہ پور پر کندہ ہے۔ نیز کتیبۂ شاہ پور سکان شاہ میں "مزدیسن بغی شہپوہری شہان شہی ایران و انیران کی چیتر تچ یزدان" ہے یعنی، خدا پرست و خدائگان شاہ پور شہنشاہ ایران و غیر ایران جس کا خاندان خدا سے پیوستہ ہے۔ خط میخی مادی میں بھی اہرمزدا (خدا) اور بغا (خدا۔ بزرگ) موجود ہے۔ بغ کے متعلق ملک الشعرا بہار نے لکھا ہے "در عہد ہخامنشی و تا چند قرن بعد بغ نام پروردگار عالم بودہ است" اہورا مزدہ کے متعلق لکھتے ہیں "اورمزد، دراصل اہور

مزدہ یعنی خداوند بزرگ بودہ است" یہ لفظ اللہ تعالیٰ لفظ کی مانند ہے۔ اہورا بمعنی سرور اور مزدہ بمعنی بزرگ ہے، مطلق لفظ "مزد" بھی بمعنی خدا استعمال ہوتا ہے۔ مزدیسن = مزد (مخفف مزدا بمعنی اللہ) + یسن (عبادت) = مزدیسن یعنی خدا کی عبادت کرنے والا، خدا پرست۔ گردش و تغیر لسانی سے "اہورمزدہ" اور "ہرمزد"، ہرمزد بن گیا آخری دور میں بادشاہ کے لئے بھی استعمال ہونے لگا چنانچہ "ہرمزد" بادشاہ کا نام پایا جاتا ہے۔ یزتان بمعنی خدا کتیبۂ اردشیر پاکپان میں بھی آیا ہے، "ارتخشتر ملکان ملکا اریان منوشیہر من یزتان" یعنی اردشیر شہنشاہ ایران دارندۂ نژاد از خدا۔ اسی طرح یزد بہت عام ہے۔ مثلاً یزدگرت = یزدگرد یعنی کردۂ خدا ہے۔ بغ اہورامزدہ، مزد، یزتان، یزدان، اور یزد کی قدیم ترین مثالیں پیش کی گئیں جن میں ان کے معنی اللہ ہیں۔ اب خدا کو دیکھئے! خدا دراصل خوتای تھا یہ لفظ پہلوی زبان کے آثار میں ملتا ہے۔ اس کے معنی بادشاہ، سردار، فرمانروا، مالک اور آقا تھے چنانچہ پہلوی کے آثار باقیہ میں اس کا استعمال انہی معنی میں ہوا ہے اس کا املا خوتای (ـــ) تھا تغیرات کی اشکال یہ ہیں۔ خوتای، خودای، خودای، خذا، خدا۔ چند پہلوی امثلہ ملاحظہ فرمائیے:

"پس ہچ مرگ الکساندری ارومیک ایران شتر ۲۴۰ کتک خوتای بوذ" یعنی سکندر رومی کی موت کے بعد ایران میں ۲۴۰ کدخدا (فرمانروا) تھے۔ (کارنامۂ اردشیر پاکپان از متون پہلوی طبع بمبئی)۔ فریو نیہ این کہ اوہرمزد یت ہستیہ بہاک بوذ یہ وانوشک خوتائیہ" یعنی راست اعتقادی یہ ہے کہ اوہرمزد (اللہ) کی ہستی دایم وقایم اور بادشاہی جاویداور (اس کی ذات) بے انتہا ابتدا و لا شریک ہے۔ اس مثال میں اوہرمزد بمعنی اللہ اور خوتای بمعنی بادشاہ استعمال ہوا ہے (چیذک مہندریچ فرخوذ کیشان متون پہلوی طبع بمبئی)۔ " اینک گجستک سکندر سوہت واندراو دریاپ فکند دنیکرتی ہپت خذایان" یعنی پس سکندر ملعون نے "دنیکرت ہفت خدایان" (کتاب کا نام) جلاکر دریا میں ڈال دیا (شتر وہای ایران طبع بمبئی) ہفت خدایان کتب سنت پہلوی کی اصطلاح میں سات بادشاہوں کے لئے استعمال کیا گیا ہے۔ اور سہ خذائیہ = سہ خدائی سے مراد بادشاہی اردشیر، بہمن اور اسفندیار ہے۔ اشکانیوں کو کتک خوتای = کدخدا کہا ہے نہ کہ خوتای = خدا بمعنی بادشاہ بزرگ "نماز زرتشت سپیتمان ...... اہیرک بگوہر ہنرینتک اندریزدان، اوزکان

اندر خذایان" یعنی پاک روح زرتشت کے لئے بزرگی ہے..... خاص کر اس کا قبیلہ وخاندان خدا کے نزدیک مقبول اور بادشاہوں کے نزدیک صاحب عزت ہے۔ (آئین نامہ نویسی متون پہلوی طبع بمبئی) اس مثال میں یزدان = خدا اور خدا = بادشاہ استعمال ہوا ہے۔ پہلوی میں "خوتای نامک" = شاہنامہ، اور "پتان کتک خدای" = بر بیان کدخدای، کتابوں کے نام ہیں۔ خوتای نامک = شاہنامہ کا ذکر جاحظ نے اپنی کتاب البیان والتبیین میں بھی کیا ہے۔ ملک الشعرا بہار کا کہنا ہے: "خوتای بواو معدولہ یعنی خدا جو قدیم زمانہ میں بمعنی بادشاہ، صاحب تھا اور جس نے اسلام کے بعد تغیر پاکر اہورمزدا کے معنی حاصل کر لئے، خوتای نامک = خدا ئنامہ وہی ہے جو شاہنامہ ہوگیا"

لفظ خواجہ و خداوند کے متعلق بھی ان کا قول ہے کہ یہ دونوں لفظ اسلام کے بعد پہلوی لفظ خوتای سے فارسی دری میں بنائے ہیں۔ خوتای = خدا کے معنی صاحب، آقا اور مدبر تھے کبھی کبھی فرشتوں کے لقب کا بھی جز رہا ہے جیسے ماہ خدای، دینہ خدای وغیرہ۔ کیونکہ خدا کو عربی الفاظ اللہ اور رب کی جگہ استعمال کرنے لگے اس لئے بادشاہ، صاحب اور آقا کے لئے خداوند لفظ خدا کے بعد "وند" لاحقہ تشبیہ و نسبت لگا کر بنایا، مادہ تو ایک ہی ہے مگر اصل سے ممیز ہوگیا۔

ایک مقام پر اور لکھا ہے کہ خدا جو بادشاہ کا نام تھا اسلام کے بعد ذات باری تعالیٰ کے لئے مخصوص ہوا حالانکہ اس سے مشتق و مرکب الفاظ جیسے کتخدای، دہخدای، کشور خدای اب تک اپنی حالت پر باقی اور اصلی معنی (مالک) کے حامل ہیں۔ تلفظ کی تشریح اس طرح فرماتے ہیں کہ خدا جس کو آج شملہ کے وزن پر پڑھتے ہیں۔ فردوسی کے زمانہ خوذای واو معدولہ اور خ ساکن کے ساتھ بولتے تھے، کرد "خودا" بختیاریاں "خدا" طبرستانیان "خدا" اور دیگر اقوام "خدا" بولتی ہیں۔ خوتای، خوذای، خدای، خدا تغیری اشکال ہیں۔

امور مذکورہ سے یہ بات ظاہر ہوگئی کہ قدیم فارسی میں ذات الٰہی کے لئے، بغ، اہورمزدا، مزد، یزدان، میزتان، یزد استعمال کرتے تھے۔ خدا قدیم فارسی میں، مالک، صاحب، آقا، بادشاہ کے معنی میں استعمال ہوا ہے۔ خوتای، خوذای، خذای، خودای، خدای خدا تغیری اشکال ہیں۔ عروج اسلام اور رواج تصوف کی وجہ سے لفظ خدا کو بمعنی اللہ استعمال کرنے لگے۔ کدخدا، دہخدا، ناخدا وغیرہ

میں قدیم معنی (مالک، فرمانروا وغیرہ) موجود ہیں پس اجزائے ترکیبی سے جو معنی (واجب الوجود) معین کئے گئے ہیں جبکہ ان معنی میں استعمال ہی نہیں ملتا تو اجزائے ترکیبی کی جستجو قیاسی موشگافی سے زیادہ حیثیت نہیں رکھتی۔ کیونکہ اصول لسانیات کے ذریعہ یہ امر کلیتہً غلط ہے کہ لفظ کے اجزائے ترکیبی سے جو معنی مرتب ہوں وہ معنی ابتدا میں نہ لئے جائیں بلکہ صدیاں گزر جانے کے بعد ان معنی کی طرف رجوع کیا جائے۔ عقل سلیم اس کو قبول نہیں کر سکتی۔ پس معنی کی عدم موجودگی سے اجزائے ترکیبی غلط اور مرکب کہنا بھی نادرست ہے۔

"کنوارا": یہ لفظ پاک و ہند کی قدیم تہذیب کا نمائندہ ہے۔ کیونکہ سرزمین پاک و ہند میں زراعت کو اولیت حاصل ہے۔ بالخصوص قدیم زمانہ میں کاشتکاروں کی کثرت تھی اور قریب قریب بیشتر آبادی کا یہی پیشہ تھا۔ موجودہ زمانہ کی طرح ذرائع آبپاشی میں آسانیاں نہ تھیں۔ آج کی طرح نہروں کا جال بھی پھیلا ہوا نہ تھا، بلکہ بارش کے علاوہ آبپاشی کا دارومدار زیادہ تر کنوؤں پر تھا۔ چرس یا چڑس (چمڑے کا بڑا ڈول) کو بیل کھینچتے تھے۔ اس کام کے لئے کم از کم تین آدمی درکار ہوتے تھے۔ ایک چرس کو سہارنے والا۔ ایک بیلوں کو ہانکنے والا۔ ایک کھیت کی کیاریوں میں پانی پھیرنے والا۔ پہلے مشکل کام کو انجام دینے کے لئے بھرپور طاقت کی ضرورت ہوتی تھی اس لئے چرس سہارنے اور سنبھالنے کی خدمت نوجوانوں بالخصوص غیر شادی شدہ جوانوں کے سپرد ہوتی تھی اسی خدمت کی مناسبت سے غیر شادی شدہ نوجوان کو "کنوارا" کنواں + را (علامت اضافت) یعنی کنویں سے نسبت رکھنے والا، کنویں کے کام کو انجام دینے سے تعلق رکھنے والا، کہا گیا اور آج تک اسی نام سے یاد کیا جاتا ہے۔ اسی طرح گھریلو ضروریات کے لئے نوجوان لڑکیاں کنوؤں سے پانی بھر کر لایا کرتی تھیں یہ خدمت بھی عموماً غیر شادی شدہ لڑکیوں کے سپرد ہوتی تھی انہیں کنواری کہا گیا، پنگھٹ کی رنگینی اور رونق انہی کے دم سے تھی، کنواں + ری (علامت اضافت) = کنواری اسی کی نشاندہی کرتی ہے۔

"میزبان": وہ شخص جس کے گھر کوئی مہمان آیا ہو، جس نے کسی کی دعوت کی ہو، صاحب خانہ، میزبان کہلاتا ہے۔ میزبان مرکب ہے، میز + بان سے۔ بان فارسی لاحقۂ فاعلیت ہے۔ اس کے جزو اوّل "میز" کے متعلق غور کرنا ہے کہ یہ کس زبان کا لفظ ہے؟

اردو میں "میز" عام لفظ ہے یعنی ایک خاص انداز کا تختہ یا چوکی جو سامان رکھنے کے لئے مخصوص ہے۔ جیسے لکھنے پڑھنے کی میز، کھانے کی میز، سنگھار میز وغیرہ انگریزی میں اس کو ٹیبل (Table) کہتے ہیں ظاہر ہے کہ اس میز کا میزبان سے تعلق نہیں ہو سکتا کیونکہ میز پر کھانا کھانا اور کھلانا پاک و ہند میں عام نہیں، چند گھرانوں کا میز پر کھانا کھانا کل کی بات ہے۔ "میزبان" نہ صرف اردو میں بلکہ پاک و ہند کی بیشتر زبانوں اور بولیوں میں رائج ہے۔ ان اقوام اور علاقوں میں بھی جہاں میز کو کسی حیثیت سے بھی استعمال نہیں کرتے، صاحب خانہ، مہماندار کو میزبان ہی کہتے ہیں۔ بیجاپور کے مشہور شاعر شوقی نے سلطان عادل شاہ والی بیجاپور کی تقریب شادی کے متعلق ایک مثنوی "میزبان نامہ" لکھی ہے۔ اس قدیم شہادت سے ثابت ہے کہ میزبان کا لفظ اردو اور دوسری زبانوں میں فارسی سے آیا۔ فارسی میں یہ لفظ قدیم زمانہ سے مستعمل ہے۔ اس لئے اس کو فارسی میں تلاش کرتے ہیں۔

"میزبان" ہم کو قدیم فارسی میں بشکل "میزدپان" ملتا ہے۔ قدیم ایرانیوں میں مذہبی دعوت کو "میزد" کہتے تھے جیسے مسلمانوں میں دعوت نذر، نیاز، عقیقہ، ختنہ، ولیمہ وغیرہ ہیں چنانچہ اوستا سے جو کتابیں پہلوی میں ترجمہ ہوئی ہیں ان میں ایک کتاب "آفرین میزد" ہے، جس میں اس قسم کی مذہبی دعوتوں کی تعریف بیان کی گئی ہے۔ محفل خوشی یا جشن کی تعریف میں بھی ایک کتاب "اوستائی تاریہ سور آفرین" ہے۔ اس میں "میزدپان" اور "میزد" کے الفاظ مذکور ہیں،

"گوش داریت شماخ دیہان (کہ) ایذ متستید، تاک اور ستائینی تاریہ این سور آفرین از یزتان و سپاستاریہ این میزدپان رای سخن گوئیم" یعنی توجہ فرمائیے آپ نیک حضرات جو یہاں تشریف لائے ہیں تاکہ اس جشن مسرت بجانب خدا کی ستائش اور اس صاحب ولیمہ (دعوت) کے شکریہ کے لئے ہم کچھ کہیں "ہماک زد ہر مس دو یہ کہ یزتان پذ این میزد ارزانیک کرت" (تمام طاقت و قوت اس بزرگ کے لئے جسے خدا نے اس بزم ولیمہ و مسرت کی توفیق ارزانی فرمائی) "سپاس این میزبان کی آن روچکار انداخت و ساخت کرت" (اس صاحب ولیمہ (دعوت) کا شکریہ جس نے اس دن کو قائم کیا اور انتظام کیا) ساسانی عہد میں میزد اور میزدبان کی خدمت کرنے والے ایرانی طبقاتی تقسیم کے لحاظ سے طبقہ چہارم میں داخل تھے جس سے قیاس کیا جا سکتا ہے کہ اس قسم کی دعوتوں کے

انتظام کے لئے ایک خاص گروہ تھا جس کے ذمہ کھانا پکانا اور کھلانا تھا یہ ایک طرح کا پیشہ بن گیا تھا۔ "میزد" کے متعلق ملک الشعرا بہار نے لکھا ہے کہ "میزد ایک طرح کا دینی ولیمہ تھا، جس نے اب مطلقاً خوشی اور مہمانی کے معنی حاصل کر لئے ہیں۔ مگر لکھا ہے میزد، نذر یا مذہبی جشن کی دعوت کو کہتے تھے۔ جو مالدار لوگ دیتے اور راہلِ قریہ کو کھانا کھلاتے تھے یہ لفظ بھی تبدیلی مذہب کی وجہ سے زبان میں باقی نہیں رہا اور اس کی جگہ ولیمہ نے لے لی۔ فارسی دری میں بھی بہت کم استعمال ہوا ہے اور اس کے معنی بھی بدل گئے ہیں۔ مہمانی کے معنی میں استعمال ہوتا ہے؛ فرخی ؎

اسے بہ نبرد اندرون تہمتن

وی بہ میزد اندروں ہزار فریدوں

فرخی کے شعر میں میزد کا تلفظ میزد بروزن نبرد استعمال ہوا ہے اس شعر میں میزد کے معنی بزم سرور و دعوت کے ہیں۔ امور مذکورہ سے واضح ہوتا ہے کہ میزبان اصل میں میزدبان تھا درمیان سے د ثقالت کے باعث گر گئی میزبان باقی رہ گیا صاحب خانہ و مہماندار کے معنی میں استعمال ہونے لگا۔ مگر ابتدائی معنی کا تصور اب بھی موجود ہے یعنی دعوت کرنے والا، اپنے گھر آئے ہوئے کو کھانا کھلانے والا، قدیم صرف دینی دعوتوں کے مخصوص تھا اور اب عام ہے۔ اسی طرح کسی کے گھر جانے والے کو مہمان کہتے ہیں جو مرکب ہے مہ (بزرگ) + مان (لاحقہ تشبیہ) = مہمان بزرگ کی مانند، گھر آنے والے کی عزت کی جاتی ہے۔ بزرگ خیال کیا جاتا ہے اس لئے یہ لفظ مہمان وجود میں آیا۔

اردو میں مستعمل "میز" یعنی ٹیبل، پرتگالی لفظ ہے اس کا میزبان سے کوئی تعلق نہیں۔ اردو میں پرتگالیوں کے زمانہ سے آیا۔ فارسی میں کبھی روسی وارنشی سے داخل ہوا ہے فارسی سے اردو میں آنا اس لئے قرین قیاس نہیں کہ غیر ملکی زبانوں کے اثر و نفوذ کے زمانہ میں پاک و ہند و ایران میں لسانی روابط باقی نہ تھے۔

"خزاں" (پت جھڑ کا موسم) اس لفظ کے متعلق لکھا گیا ہے کہ خز (گرم کپڑے کا نام) + ان (لاحقہ نسبتی) یعنی وہ موسم جس کا تعلق خز (گرم کپڑا) سے ہو۔ ایران میں جاڑوں کا موسم خزاں کا زمانہ ہوتا ہے۔ اس لئے یہ نام ہوا۔ دوسرا قیاس یہ ہے کہ خز (امر از خزیدن بمعنی گھسنا) + ان (لاحقہ حالیہ) خزاں یعنی گھستا ہوا کیونکہ ایران میں جاڑوں کے موسم میں برف باری ہوتی ہے لوگ گھروں میں گھس جاتے ہیں اس لئے اس کو خزاں کہا گیا۔ میرے نزدیک اس کی ایک اور صورت ہے یعنی خیز (امر از خاستن بمعنی اٹھنا) + ان (لاحقہ حالیہ) = خیزاں یعنی اٹھتا ہوا تغیر لسانی سے ی حذف ہو گئی۔ خزاں رہ گیا یعنی وہ موسم جس میں بہار اٹھتی ہوئی نظر آئے، سرسبزی و شادابی، رونق ختم ہو جائے یہ قیاس بہار کے پیش نظر ہے، بہار میں یہ باتیں موجود ہوتی ہیں خزاں میں اٹھ جاتی ہیں۔

"کنیز، کنیا": یہ دونوں فارسی و ہندی لفظ ہم معنی ہیں اگرچہ اب "کنیز" لونڈی کے معنی میں مستعمل ہے مگر قدیم فارسی میں مطلق لڑکی، عورت کے معنی میں مستعمل تھا۔ "کنیکان" بمعنی دختران، درستائش درخت نور (طورفان از آثار مانویاں) میں آیا ہے اور "کنیزکاں" بمعنی دوشیزگان رسالہ ریدک خسرو کواتان (پہلوی) میں موجود ہے۔ قدیم فارسی میں یزک بعدہٗ یزہ علامت تانیث تھی کنیزک بمعنی لڑکی تغیرات زمانہ کی بدولت بمعنی لونڈی استعمال ہو کنیزک، کنیزہ، کنیز تغیراتی اشکال ہیں۔ ہندی میں کنیا بمعنی لڑکی مستعمل ہے، اس کے معنی میں تبدیلی واقع نہیں ہوئی۔ کن + یا (علامت تانیث) کنیا ہے۔ کنیز و کنیا دونوں کا مادّہ کن ہے جو قدیم فارسی و سنسکرت کی یگانگت و یکسانیت کی دلیل ہے۔

"دختر، دوہتر، ڈاٹر (DAUGHTER)"، دوشیزہ" پہلے تین لفظ فارسی، ہندی اور انگریزی میں لڑکی اور بیٹی کے استعمال کئے جاتے ہیں۔ یہ تینوں ہم معنی الفاظ ہند یورپی لسانی شجرہ کی بنیادی وحدت کا ثبوت ہیں۔ قدیم انسانی تمدن میں، زراعت اور گلہ بانی کو بڑی اہمیت حاصل تھی۔ چنانچہ قبائل کے ایک علاقہ سے دوسرے علاقہ کی طرف ہجرت کے اسباب میں زرخیز زمین اور عمدہ چراگاہوں کی جستجو کو اولیت قرار دیا گیا ہے۔ وسط ایشیا سے آریائی قبائل کا اطراف جوانب میں انتشار کا سبب چراگاہوں کی تلاش ہی بتایا جاتا ہے۔ اس گلہ بانی کے دور میں بھی تقسیم کار کا طریقہ رائج تھا، چنانچہ مویشیوں کا دودھ دوہنے کی خدمت لڑکیوں کے سپرد ہوا کرتی تھی۔ فارسی دختر ہندی میں دوہنا سے دختر اور دوہتر بنا ہے۔ دوختہ + آر = دختر ہے خ اور ہ کا تبادل ہوتا ہے جیسے ہورشید، خورشید، دختر اور دوہتر ایک ہی ہیں، جن کی اصل دوخ ہے اور خ اور غ آپس میں بدل جاتی ہیں

(باقی صفحہ ۴۲ پر)

غزل

شان الحق حقی

دنیا ہی کی راہ پہ آخر رفتہ رفتہ آنا ہوگا
درد بھی دے گا ساتھ کہاں تک بے دل ہی بن جانا ہوگا

حیرت کیا ہے ہم سے بڑھ کر کون بھلا بیگانہ ہوگا
خود اپنے کو بھول چکے ہیں تم نے کیا پہچانا ہوگا

دل کا ٹھکانا ڈھونڈ لیا ہے اور کہاں اب جانا ہوگا
ہم ہوں گے اور وحشت ہوگی اور یہی ویرانہ ہوگا

بیت گیا جو یاد میں تیری اک اک لمحہ دھیان میں ہے
الفت میں جی ہارنا کیسا جو کھویا سب پانا ہوگا

اور تو سب دکھ بٹ جاتے ہیں دل کے درد کون بٹائے
دنیا کے غم برحق لیکن اپنا بھی غم کھانا ہوگا

دل میں ہجومِ درد ہے لیکن آہ کے بھی اوسان نہیں
اس بدلی کو یونہی آخر برسے بن چھٹ جانا ہوگا

اس بستی کا کون مسیحا اس بستی کا کون خدا
خود ہی حشر اٹھانے ہوں گے مرنا اور جی جانا ہوگا

رپورتاژ :

"کرن* پھول" کے دیس میں

صہبا لکھنوی

ملک کے دونوں بازوؤں کے درمیان رشتۂ اخوت و یکجہتی کو مضبوط سے مضبوط تر کرنے کے لئے جہاں او ر طبقات کا باہمی میل جول اور افہام و تفہیم ضروری ہے وہاں ملک کے دانشوروں، فنکاروں اور اہل قلم کا اِس حصۂ ملک سے اُس حصۂ ملک میں جانا اور علمی و ثقافتی روابط کو استوار کرنا بھی ایک بڑا مؤثر وسیلہ ہے۔ کچھ عرصہ ہوا مغربی پاکستان کے پانچ ممتاز ادیب و صحافی ——— (مولانا رازق الخیری مدیر "عصمت"، جناب صہبا لکھنوی مدیر "افکار"، جناب شریف المجاہد صدر شعبۂ صحافت کراچی یونیورسٹی، جناب قیوم ملک مدیر ایسٹرن پرائز اور جناب ذاکر علی نمائندہ "تعمیر" راولپنڈی ——— آپ رواں کی سرزمین "کرن پھول" کے اس دیس کی سیاحت کے لئے گئے تھے۔ اس وفد کے ایک رکن جناب صہبا لکھنوی نے دھان، پان اور مانجھیوں کی اس ہری بھری فردوس بداماں سرزمین کا آنکھوں دیکھا حال ایک رپورتاژ کی شکل میں مرتب کیا ہے جس کا کچھ حصہ یہاں پیش کیا جاتا ہے۔

(ادارہ)

سنیچر، اتوار، پیر (۲۴، ۲۵، ۲۶ جون ۱۹۶۱ء) :

ریلوے اسٹیشن پر کافی بھیڑ تھی ——— چٹا گانگ کے افسر تعلقات عامہ اسٹیشن پر موجود تھے۔ اور ٹیکسیاں بھی تیار تھیں ——— سامان لے کر ۵ منٹ میں ریسٹ ہاؤس پہنچ گئے۔ ریسٹ ہاؤس اسٹیشن سے نزدیک ہی اسٹیشن روڈ پر واقع تھا۔ ہمارے قیام کے لئے چونکہ کمرے محفوظ تھے اس لئے کوئی دِقت نہ ہوئی۔ مولانا خیری، قیوم ملک اور شریف المجاہد اپنے احباب سے ملنے چلے گئے۔ ذاکر صاحب اور میں، نہا دھو کر بازار کی سیر کو نکلے ——— اسٹیشن روڈ پر ہر قسم کی دکانیں تھیں۔ کتابوں کی بھی کپڑے کی بھی، پھلوں اور فرنیچر کی بھی ——— پھلوں کی ایک دکان پر کٹھل اور انناس دیکھ کر ذاکر صاحب رک گئے اور بھاؤ پوچھا۔ پھل والے نے ایک روپیہ کٹھل کا اور تین روپیہ انناس کے بتائے۔ ذاکر صاحب نے سادگی سے پوچھا۔ تین روپے کے چار انناس! دکاندار نے کہا۔ نہیں صاحب، تین روپے کا ایک۔

ذاکر صاحب حیران رہ گئے۔ دکاندار سے کہنے لگے۔ بھائی ہم نے مہنگے سے مہنگا انناس بھی سات آنے کا خریدا ہے۔ یہ تو بہت مہنگا ہے۔

پھل والے نے معصومیت سے جواب دیا : صاحب، یہ چاٹگام ہے، سستا انناس صرف سلہٹ میں ملتا ہے۔ اس سوال جواب کے دوران میں شہر شہر کے فرق اور مشرقی پاکستان میں پھلوں کی قلت و کثرت کا تجزیہ کرتا رہا۔ بالآخر ذاکر صاحب نے آم خرید ہی لئے۔ آم لے کر ہم نے کچھ دیر بازاروں کے چکر لگائے۔ اچالا بُک ڈپو اور ریڈرس چیمبرس کی دکانوں پر گئے۔ وہاں سے ریسٹ ہاؤس لوٹ آئے۔

ریسٹ ہاؤس کے سامنے ہی چاٹگام کا مشہور مسکا ہوٹل ہے ہم جب ریسٹ ہاؤس پہنچے تو مولانا خیری، شریف المجاہد اور قیوم ملک واپس آچکے تھے۔ افضل صاحب ہمیں مسکا ہوٹل میں کھانے کے لئے لے گئے۔ کھانا بہت اچھا تھا۔ چنانچہ اس اعلیٰ انتظام کے لئے افضل صاحب کو آج مولانا ملانے "آٹھ" نمبر دے کر دریادلی کا ثبوت دیا۔ ۱۰ بجے کے قریب ہم ریسٹ ہاؤس لوٹ آئے۔

کراچی کے بعد چاٹگام ہی پاکستان کا سب سے بڑا بندرگاہ ہے اور قیام پاکستان کے بعد اس شہر کی آبادی چار لاکھ سے بھی زائد ہو چکی ہے۔ تاریخ کے ورق الٹئے تو پتہ چلتا ہے کہ اس شہر کی ابتدا قدیم ریاست تریپورہ کے مچھیروں کے ایک گاؤں کی حیثیت سے ہوئی تھی۔

* کرنا فلی (بنگلہ) = کرن پھول (اردو)۔

ساتویں صدی عیسوی میں مشہور سیاح، ہوئن سانگ بھی یہاں سے گزرا تھا اور اس نے اس حسین بستی کو دیکھ کر بے اختیار کہا تھا "پانی کی خیالی سیج پر حسنِ خوابیدہ"۔ پھر آٹھویں صدی میں یہاں مسلمان حکمرانوں نے انتظام سلطنت اپنے ہاتھ میں لے لیا۔ لیکن دسویں صدی عیسوی میں اراکان کے بودھ حکمراں نے حملہ کرکے یہ اقتدار ان سے واپس لے لیا اور یہاں ایک بہت بڑا مینار تعمیر کرایا جس کا نام اس نے "ست سے گانگ" (جنگ نہیں کرنی چاہیئے) رکھا۔ کہتے ہیں یہی "ست سے گانگ" کثرت استعمال سے چٹاگانگ یا چاٹگام بن گیا۔ بہر کیف، ۱۲۰۲ء سے لے کر ۱۳۳۹ء تک دلّی کے ستائیس گورنروں نے یہاں حکمرانی کی۔ اور ۱۳۳۹ء سے ۱۵۷۳ء تک بتیس مسلم سلاطین خود مختار فرمانروا کی حیثیت سے اقلیم بنگالہ پر حکومت کرتے رہے۔ لیکن سولہویں صدی میں پھر اراکان کے حکمرانوں نے پرتگالی قزاقوں کی مدد سے اپنے بحری بیڑے کو آراستہ کیا اور مسلم حکمرانوں پر فتح حاصل کرلی۔ بالآخر شائستہ خان نے ۱۶۶۵ء میں انہیں شکست فاش دے کر ہمیشہ ہمیشہ کے لئے ان کی طاقت کو ختم کردیا اور تقریباً ایک صدی تک یہاں مسلمانوں کی حکومت برقرار رہی۔ شائستہ خان کے بیٹے، اسلام خان، نے چاٹگام کا نام اسلام آباد بھی رکھا تھا۔ یہ مقام مسرت ہے کہ اب اسی نام سے پاکستان کا نیا دارالحکومت بھی زیر تعمیر ہے۔

۱۷۶۶ء میں چاٹگام پہ برطانیہ نے اقتدار حاصل کر لیا اور اس اقتدار کا سورج بالآخر ۱۹۴۷ء میں ڈوب گیا۔

چاٹگام کو بارہ اولیا کا شہر بھی کہتے ہیں۔ شہر سے کوئی چار پانچ میل دور نصیر آباد کے ٹیلے پر حضرت سلطان بایزید بسطامیؒ کا مقبرہ بنا ہوا ہے جس کی زیارت کے لئے دور دور سے عقیدت مند آتے رہتے ہیں۔ دوسرے بزرگان دین کے مزارات بھی مرجع خلائق ہیں۔ یہاں کی تاریخی مسجدیں ـــــ خصوصیت کے ساتھ جامع مسجد ـــــ جو ایک بلند پہاڑی پر بنی ہوئی ہے نواب شائستہ خان کی یادگار ہے۔ یہاں عدالت کی وسیع اور پرشکوہ عمارت بھی ایک پہاڑی پر واقع ہے اور شہر کے ہر علاقے سے نظر آتی ہے۔ شہر کی سڑکیں بلند پست ہیں اور زیادہ چوڑی نہیں۔ ٹین کی چھتوں کے مکانات کی کثرت ہے کیونکہ یہاں بارش بہت زیادہ ہوتی ہے۔ آزادی کے بعد چاٹگام ایک مصروف ترین بندرگاہ بن چکا ہے۔ یہاں جہازوں کی ہر وقت آمد و رفت رہتی ہے۔ ایک اندازہ کے مطابق اس بندرگاہ سے سالانہ ۳۰ لاکھ ٹن سے زائد سامان کی باربرداری ہوتی ہے۔ بندرگاہ کی وسعت اور نقل و حمل کی مزید سہولتوں کے لئے حکومت سرگرم کار ہے۔

مشہور سیاح ابن بطوطہ نے اس شہر کو دیکھ کر "سبز شہر" کا نام دیا تھا۔ قائد اعظمؒ نے اسے "مشرق کی رانی" کا خطاب دیا تھا۔ حقیقت یہ ہے کہ یہ شہر ان دونوں خصوصیات کا حامل ہے۔ کراچی کی طرح یہ شہر بھی مشترکہ تہذیب کی آماجگاہ بنتا جا رہا ہے۔ چاٹگام میں بنگالی، اردو، اور انگریزی عام طور پر بولی اور سمجھی جاتی ہے۔ مگر یہاں کی بنگلہ اور ڈھاکہ کی بنگلہ میں نمایاں فرق ہے۔ چاٹگام کی بنگلہ میں عربی الفاظ کی کثرت ہے۔ کہا جاتا ہے کہ اس کا سبب وہ عرب جہاز راں ہیں جو یہاں بسلسلہ تجارت آتے جاتے رہے ہیں چنانچہ عربی ثقافت کے اثرات نمایاں ہیں۔

ریسٹ ہاؤس پہنچ کر سونے کی تیاری کر رہے تھے کہ تھوڑی ہی دیر میں بادل گھر کر آگئے اور بارش ہونے لگی۔ چاٹگام میں بارش کثرت سے ہوتی ہے۔ بارش کے سبب موسم نہایت خوشگوار ہوگیا تھا۔ نیند جلد ہی آگئی۔ صبح جب بیدار ہوئے تب بھی بارش ہو رہی تھی۔ لیکن سڑکوں پر کہیں بھی بارش کا پانی جمع نہیں تھا۔ ناشتے کے فوراً بعد پانی میں بھیگتے ہوئے ۸ بجے صدر گھاٹ پہنچے۔ صدر گھاٹ یہاں کا سب سے بڑا اور مشہور گھاٹ ہے جو دریائے کرنافلی[1]

[1] کرنافلی (یعنی کرن پھول) اور سنکھا (یعنی سنکھ) ضلع چاٹگام کے دو بڑے دریا ہیں۔ کرنافلی پہاڑی علاقہ کے شمال مشرق سے جنوب اور جنوب مغرب کی سمت ۱۸۰ میل کی مسافت طے کرنے کے بعد خلیج بنگال سے جا ملتا ہے۔ چاٹگام کا شہر اور بندرگاہ اس کے دہانے سے تقریباً ۱۲ میل دور ہے۔ سنکھا، اراکان اور چاٹگام کی پہاڑی سلسلے کو منقسم کرنے والی ایک پہاڑی کے شمال مشرق سے نکلتا ہے اور [illegible] پہنچتا ہے۔ [illegible] کی سمت ۱۲۰ میل کا فاصلہ طے کرکے دریائے کرنافلی سے ۲۰ میل دور جنوب میں خلیج بنگال میں جا گرتا ہے۔ کرنافلی اور سنکھا سے کئی مشہور ندیاں نکلتی ہیں۔ ان دو بڑے دریاؤں اور مزید کئی [illegible] پہاڑی علاقوں [illegible] اور [illegible] وسیلے بنا گئے ہیں بلکہ اس تمام ضلع کی ترقی اور خوشحالی میں بھی ان کا حصہ ہے۔ کرنافلی اور سنکھا سال کے بارہ مہینے میں آمد و رفت اور پیداوار کو ایک جگہ سے دوسری جگہ لے جانے کا سب سے بڑا ذریعہ ہیں۔ کرنافلی میں [illegible] سمندر میں چلنے والے بڑے جہاز اور سٹیمر آ جا سکتے ہیں لیکن سنکھا میں [illegible] کشتیاں ۸۰ میل تک جا سکتی ہیں۔ کرنافلی اور سنکھا کے [illegible] پہاڑی اور میدانی علاقوں کی پیداوار، بانس، قیمتی لکڑی، روئی، [illegible] مٹی کے برتن وغیرہ کشتیوں میں لائے جاتے ہیں۔ [illegible] دریاؤں کی بدولت اور بہترین کاشت بھی ہوتی ہے۔

پر واقع ہے۔ اسٹیمر دریا کے وسط میں کھڑا تھا۔ ہم لوگ چھوٹی کشتیوں میں سوار ہو کر اسٹیمر پر پہنچے۔ اسٹیمر کی دوسری منزل پر ہماری نشستیں مخصوص تھیں۔ اب دریائے کرنافلی تھا اور اسٹیمر کا ایک اور سفر۔ ہماری منزل چندر گونا تھی، جہاں کرنافلی پیپر مل ہے، وہاں سے کپتائی جانا تھا۔ ٹھیک ساڑھے آٹھ بجے اسٹیمر روانہ ہوا۔ ہمارے اسٹیمر کے علاوہ دریا کے چوڑے سینے پر ان گنت چھوٹی بڑی کشتیاں اور اسٹیمروں کی آمد و رفت بھی جاری تھی۔ کرنافلی، چاٹگام ہی نہیں بلکہ پورے مشرقی پاکستان کا مشہور ترین اور اہم ترین دریا ہے۔ پہاڑی علاقے میں اس کے دونوں طرف نہ صرف بانس کے گھنے جنگل ہیں بلکہ ناریل، چھالیہ، اور کھجور وغیرہ کے درختوں کا بھی ایک وسیع سلسلہ ہے۔ اسی دریا میں ہم نے عرب جہازرانوں کے طرز کی کشتیاں بھی پہلی بار دیکھیں۔ ان کشتیوں کو شمپان کہتے ہیں۔ پتہ چلا کہ شمپان کے چلانے والے ملاح بڑے جیالے اور اپنے فن کے ماہر ہوتے ہیں اور ان جہاز نما کشتیوں کو لے کر کبھی کبھی وہ برما تک پہنچ جاتے ہیں۔

چندر گونا میں جہاں کرنافلی کاغذ کا کارخانہ ہے چاٹگام سے تقریباً ۴۲ میل دور ہے اور کپتائی، جہاں پن بجلی کا نہایت اہم منصوبہ زیر تکمیل ہے، تقریباً ۳۵ میل کے فاصلہ پر۔ افضل صاحب نے بتایا کہ ہمارے قیام و طعام کا انتظام کپتائی میں ہے لیکن جب ہم لوگ تقریباً ساڑھے بارہ بجے چندر گونا پہنچے تو وہاں ہمیں رہبری کے لئے کوئی صاحب موجود نہ ملے۔ افضل صاحب نے پہلے کی طرح اس موقع پر بھی بڑی مستعدی سے کام لیا۔ لپک کر تھانہ گھاٹ پر پہنچے اور کرنافلی مل کے ایڈمنسٹریٹو آفیسر، کرنل سکندر خاں صاحب کو صورت حال سے آگاہ کیا۔ تھوڑی ہی دیر بعد ہم نے دیکھا کہ وہ افضل صاحب کے ہمراہ گھاٹ پر تشریف لے آئے اور ہمیں کپتائی کے بجائے وہیں اُتار لیا۔ گھاٹ پر خاصی بھیڑ تھی۔ کمر کمر پانی میں نوعمر لڑکے لکڑی کے ڈبوں میں بسکٹ، مٹھائی کی گولیاں اور مُرمُرے آواز لگا کر بیچ رہے تھے۔ بعض لڑکے تختوں کو کشتی بنا کر تیر بھی رہے تھے۔ ہم لوگ اسٹیمر سے اتر کر گھاٹ پر آ گئے۔ کرنل صاحب بڑے تپاک سے ملے اور فرمایا کہ ابھی سب انتظام ہو جائے گا۔ آپ حضرات میرے ساتھ آئیں۔

تھوڑی دیر میں ایک اسٹیشن ویگن آ گئی اور ہم سامان لے کر ڈائرکٹرس بنگلہ پہنچے۔ یہ بنگلہ ایک اونچی پہاڑی پر واقع ہے اور راستہ کافی پُر پیچ۔ پہاڑی پر چڑھتے ہوئے ہمیں دور دور تک شاداب پہاڑی سلسلے نظر آئے۔ راستے کے دونوں طرف گھنی جھاڑیوں، خودرو پودوں اور رنگارنگ پھولوں کا نہایت دلفریب نظارہ تھا۔

چاٹگام کے پہاڑی علاقوں کے حسن اور ان کی دلکشی کے چرچے ہم نے ضرور سنے تھے لیکن آج اپنی آنکھوں سے اس حسین علاقے کو دیکھ بھی لیا۔ ہمارے پہنچنے کے فوراً بعد کرنل صاحب بھی دوسری جیپ میں آ گئے۔ بنگلے کے کمرے کھلوائے اور ہمارا سامان رکھوایا۔ جب ہم کمروں میں گئے تو معلوم ہوا کہ ایئر کنڈیشنڈ ہیں! منہ ہاتھ دھو کر بنگلے کے وسیع ہال میں آن بیٹھے۔ افضل صاحب نے اس دوران میں کپتائی فون کیا تو کسی صاحب نے کہا، آ جائیے، کھانا تیار ہے۔ کرنل صاحب نے اسٹیشن ویگن ہمارے لئے روک رکھی تھی چنانچہ ہم اس میں کپتائی کے لئے روانہ ہو گئے۔ چلتے وقت کرنل صاحب نے کہا کہ پانچ بجے تک کپتائی سے واپس آ جائیں تاکہ کرنافلی پیپر مل بھی دیکھ لیں۔

اس وقت ڈیڑھ بج رہا تھا اور اب ہم اسٹیشن ویگن میں بلند پہاڑی کے پیچ در پیچ راستوں سے نیچے اتر رہے تھے۔ دھوپ نکلی ہوئی تھی اور دھوپ میں پہاڑیوں کا سبزہ یوں لگ رہا تھا جیسے قدرت نے سبز مخمل کا فرش بچھا دیا ہے۔ پہاڑیوں کے درمیان دریائے کرنافلی ایک بل کھاتی ہوئی پگڈنڈی کی طرح بہہ رہا تھا۔ بلندی سے اتر کر جب میدانی علاقوں میں آئے تو مناظر کا حسن کچھ اور بھی نکھر گیا۔ اب اونچے نیچے پہاڑ اور خوبصورت جنگل حد نظر تک پھیلے ہوئے تھے۔ سڑک اچھی تھی اور اسٹیشن ویگن نہایت آرام دہ۔ ۸-۹ میل کا راستہ معلوم بھی نہ ہوا۔

کپتائی میں: یہاں پہنچ کر کئی جگہ معلومات حاصل کرنے کی کوشش کی لیکن صحیح رہبری نہ ہو سکی کہ کھانا کہاں ہے۔ ہر ایک نے یہی بتایا کہ فلاں جگہ، چلے جائیے۔ دو چار مقامات کے چکر لگانے کے بعد ہم ایک صاحب کے بنگلہ پر پہنچے۔ انہوں نے دروازہ کھول کر افضل صاحب کو گیسٹ ہاؤس کا پتہ بتا دیا اور اندر چلے گئے! خیر — گیسٹ ہاؤس پہنچے۔ کھانا کھایا اور کچھ دیر آرام کیا۔ اس تمام عرصے میں ہم اس بات کے منتظر رہے کہ کوئی ذمہ دار شخص آئے گا اور ہمیں کپتائی

جیسے اہم مقام کے بارے میں ضروری معلومات فراہم کرے گا لیکن ایسا نہ ہوا۔ اس تمام دورے میں یہ پہلا مقام تھا جہاں کسی شخص نے ہماری آمد سے دلچسپی نہیں لی۔

تین بجے کے قریب ہم واپس ہوئے اور واپسی میں ہم نے کپتائی کا وہ عظیم منصوبہ بھی دیکھا جو کرنافلی کثیر المقاصد منصوبۂ ترقی کے نام سے موسوم ہے۔ یہ منصوبہ واقعی بڑے اہم مقاصد کا حامل ہے۔ سب سے بڑا مقصد تو یہ ہے کہ کرنافلی میں جو آئے دن سیلاب آتا ہے اس کا سدباب کیا جائے دوسرے اس دریا پر بند باندھنے سے جو پانی محفوظ ہوگا وہ کھیتی باڑی کے کام میں لایا جائے تیسرا اور سب سے اہم مقصد یہ ہے کہ اس بند سے بجلی پیدا کی جائے۔ یہ منصوبہ ۱۹۵۲ء میں شروع کیا گیا تھا اور جس رفتار سے ہم نے کام ہوتے دیکھا اس سے اندازہ ہوا کہ سال چھ مہینے میں یہ منصوبہ مکمل ہوجائے گا۔ اور تکمیل کے بعد پن بجلی سے ایک لاکھ بیس ہزار کلوواٹ بجلی پیدا ہوسکے گی، جس سے اضلاعِ ڈھاکہ، میمن سنگھ، سلہٹ، تریپورہ، نواکھالی اور چاٹگام کے ہر گاؤں میں بجلی کی روشنی پہنچ جائے گی اور توقعات کے مطابق مشرقی پاکستان کے ڈیڑھ کروڑ سے زائد افراد اس سے فیضیاب ہوسکیں گے۔

یہ منصوبہ ۱۹۶۱ء کے آخر میں مکمل ہوچکا ہے۔

انسانی فکر اور مشینی طاقت نے یہاں بڑے بڑے پہاڑوں کو جس طرح کاٹا ہے اور دریاؤں کا رُخ پھیر کر کپتائی کا عظیم و پرشکوہ بند[1] جس طرح تعمیر کیا ہے اسے دیکھ کر آدمی دنگ رہ جاتا ہے۔ کپتائی کا بند دیکھ کر ہم اس نوزائیدہ شہر سے گزرے، جہاں ہر طرف تعمیری کام ہو رہا تھا۔ اونچی نیچی پہاڑیوں پر اَن گنت خوبصورت مکانات اور بنگلے یا تو تعمیر ہو چکے تھے یا تکمیل کے مرحلے میں تھے۔ پہاڑیوں سے نیچے میدانوں میں اس منصوبے کے دفاتر دور تک پھیلے ہوئے تھے۔ دیکھتے ہی دیکھتے کپتائی ایک نیا اور خوبصورت شہر بن چکا ہے۔ کپتائی بند اور شہر کی تعمیر میں ہزاروں پاکستانیوں کا خون پسینہ شامل ہے، جنہوں نے آرام و راحت کا تصور کئے بغیر اپنے ملک اور قوم کی خوشحالی کے لئے شبانہ روز محنت سے کام کیا۔ اس نئے شہر میں اسکول، اسپتال، کھیل کے میدان، وسیع شاہراہیں، بازار، اور دور دور تک پھیلی ہوئی آبادی اس بات کی غماز تھی کہ یہاں کے رہنے والوں کو تمام سہولتیں مہیا کی گئی ہیں۔

چکما قبیلہ: کپتائی اور چندر گونا کے راستہ میں ایک مقام آیا جہاں سے رانگا ماٹی کو راستہ جاتا تھا۔ راستے کے دوسری طرف دریائے کرنافلی تھا۔ رانگا ماٹی، چکما (جسے "چاکما" بھی کہتے ہیں) قبیلہ کا صدر مقام ہے۔ یہیں سے چاٹگام کے وہ پہاڑی سلسلے بھی شروع ہوتے ہیں جن کا رقبہ پانچ ہزار مربع میل ہے اور جہاں گھنے جنگلوں میں ہاتھی، شیر، چیتے، جیسے خوفناک جانوروں کے درمیان بارہ قبیلے بسے ہیں جن میں چکما، مورنگ، موگ، ٹپنکھوس، اور ماگھ زیادہ مشہور ہیں۔ ان قبیلوں میں چکما اور ماگھ دو سب سے بڑے قبیلے ہیں۔ پہاڑی چاٹگام کے ۲۹۶ گاؤوں میں سے ۹۴ میں چکما ہی بسے ہوئے ہیں۔ تمام قبیلوں میں یہ قبیلہ زیادہ مشہور اور نسبتاً زیادہ مہذب بھی ہے اور اپنے سردار کا، جسے یہ راجہ کہتے ہیں بے حد وفادار ہے۔ موجودہ راجہ کافی روشن خیال اور اعلیٰ تعلیم یافتہ ہے۔ یہی سبب ہے کہ قبیلے کے بچے علم و تعلیم بھی حاصل کر رہے ہیں یہ قبیلہ منگول اور آریائی نسل سے تعلق رکھتا ہے اور صدیوں سے ان پہاڑیوں پر آباد ہے۔ اس قبیلے کے لوگ بدھ مذہب کے پیرو ہیں۔ یہ چکما زبان بولتے ہیں جسے بنگالی کی ایک بولی کہا جاسکتا ہے۔ کھیتی باڑی ان کا خاص پیشہ ہے۔ جسے "جھوم" کہتے ہیں۔ پہاڑی ڈھلانوں پر یہ لوگ دھان، روئی، سبزی، وغیرہ کی کاشت کرتے ہیں۔ درانتی اور کلہاڑی کے طرز کا ایک خاص اوزار جسے "داؤ" کہا جاتا ہے، فصل اور لکڑی کاٹنے کے لئے استعمال کیا جاتا ہے۔ یہ لوگ نئی اور ترقی یافتہ دنیا کی تقریباً تمام ضرورتوں سے بے نیاز ہیں۔ روئی پیدا کر کے قبیلے کی عورتیں اپنے لئے خود ہی کپڑا بن لیتی ہیں۔ مرد جنگل سے بانس کاٹ کر اپنا گھر اور فرنیچر تیار کر لیتے ہیں۔

---

[1] یہ بند انجینئری کے کمالات اور انسانی عزم و تعاون کا بڑا عظیم کارنامہ ہے۔ اس پر نصف کروڑ سے زائد خرچ آیا ہے۔ ۸۰۰ فٹ کی مستحکم بنیادوں پر یہ بند سمندر سے ۱۲۰ فٹ اونچا ہے اور دریائے کرنافلی پر ۲۲ سو فٹ تک پھیلا ہوا ہے۔ پانی کے بہاؤ کو روکنے اور نکالنے کے لئے ۱۲ آہنی دروازے بنائے گئے ہیں جو خود کار مشینوں سے کھولے اور بند کئے جاسکتے ہیں۔ خشکی کے زمانے میں جمع شدہ پانی کو پمپوں کے ذریعے کھیتوں تک پہنچایا جاسکتا ہے۔ ایک اندازہ کے مطابق اس پانی سے ایک لاکھ ایکڑ سے زائد زمین سیراب ہوسکے گی۔ اس بند کی تعمیر سے جو افراد متاثر ہوئے ہیں انہیں نئی جگہوں پر آباد کردیا گیا ہے۔

چکما عورتیں بڑی ہنرمند ہوتی ہیں۔ بُننا، کاتنا، رنگنا، گھروں کو سنبھالنا، کھیتوں پر مردوں کا ہاتھ بٹانا ان کے محبوب مشغلے ہیں۔ جاڑوں میں یہ لوگ کھیتی باڑی کرتے ہیں اور گرمیوں میں جنگل کی قیمتی لکڑی اور بانس کاٹتے ہیں۔ سادہ لباس، سادہ زندگی اور سادہ غذا اس قبیلے کی خصوصیات ہیں۔ مرد ٹخنوں تک لنگوٹی سی باندھتے ہیں۔ عورتیں اسکرٹ اور بلاؤز کی طرز کا ایک لباس پہنتی ہیں۔ آج کل ساڑی کا رواج بھی عام ہو رہا ہے یہ تمام کپڑے گھروں میں ہی تیار ہوتے ہیں۔ چاول ان کی خاص غذا ہے۔ جانوروں کا گوشت بھی استعمال کرتے ہیں اور تمباکو بہت زیادہ پیتے ہیں۔ سال کے سال چیت کے موسم میں چودھویں رات کو یہ لوگ ایک بڑا جشن مناتے ہیں جسے "مھتن مانا" کہتے ہیں۔ تہوار کے موقعوں پر چاول کی شراب پی جاتی ہے۔ اچھے اچھے کھانے پکتے ہیں۔ بدھ مذہب پر عقیدہ رکھنے کے باوجود ان کی عبادت کے طریقے ہندوؤں کی پوجا پاٹ سے کافی مماثلت رکھتے ہیں۔

قبیلے میں شادی بیاہ کی عجیب وغریب رسمیں رائج ہیں۔ اسی طرح پیدائش اور موت پر بھی یہ اپنی دیرینہ روایات پر ہی عمل پیرا ہیں۔ شادی کے موقع پر دولہا کے بائیں جانب دلہن بیٹھتی ہے۔ رشتے داروں میں سے ایک مرد ایک عورت دولہا دلہن کو کمر سے باندھ دیتے ہیں۔ گرہ لگانے سے پہلے شادی میں شرکت کرنے والے حاضرین سے اجازت حاصل کی جاتی ہے۔ گرہ کے بعد دونوں اپنے خاندان کے بزرگوں کے پاس جاتے ہیں اور وہ چاول، روئی، گھاس، وغیرہ ان کی جھولی میں ڈال دیتے ہیں اور دعا دیتے ہیں۔ گاؤں کا پجاری شادی کی یہ تمام رسمیں انجام دیتا ہے۔ لڑکے کی پیدائش کے وقت دو مرتبہ بندوق چلائی جاتی ہے اور لڑکی کی پیدائش پر ایک بار۔ قدرتی موت پر چکما عام طور پر لاش کو جلاتے ہیں لیکن وبائی امراض میں مرنے والوں کو دفن کر دیا جاتا ہے اور سات دن تک مرنے والے کا سوگ رہتا ہے۔ اس دوران میں گوشت، انڈے، اور مچھلی کے استعمال سے پرہیز کرتے ہیں۔ لڑکے سر کے بال منڈوا دیتے ہیں۔ اور کئی مذہبی رسومات ادا کی جاتی ہیں تاکہ مرنے والے کی روح کو اطمینان نصیب ہو۔

قبیلے کے مرد اور عورتیں ذوقِ لطیف سے بھی عاری نہیں۔ بانسری ان کی مقبول عام موسیقی ہے اور بانسری بجانے میں مرد اور عورتیں یکساں مہارت رکھتے ہیں۔ گویئے گاؤں گاؤں گھومتے اور رزم وبزم کے گیت گاتے پھرتے ہیں۔ عورتوں کو پھولوں سے بھی عشق ہے اور گہنے پاتوں سے بھی، جو عموماً چاندی کے ہوتے ہیں۔ مرد اور عورتیں کافی صحت مند اور جفاکش ہیں۔ چکمے کشتی، تیراکی اور رسہ کشی کے کھیلوں سے خاص دلچسپی لیتے ہیں۔

پہاڑی علاقے کے گھنے جنگلوں میں بانس اور قیمتی لکڑی کے علاوہ ہاتھی، شیر، چیتے وغیرہ بھی کثرت سے پائے جاتے ہیں۔ یہ جنگل کاکس بازار تک پھیلے ہوئے ہیں۔ انہی جنگلوں سے ہاتھی خاص طریقوں سے پکڑے جاتے ہیں جسے "کھیدا" کہتے ہیں۔

ہمارے آنے سے چند روز قبل چاٹگام کے پہاڑی علاقوں میں کثرت سے بارش ہو چکی تھی جس کے سبب رانگاماٹی جانے کا راستہ بند ہو گیا تھا۔ دریائی سفر سے تقریباً ۱۲ گھنٹے صرف ہوتے مگر ہمارے دورے کا پروگرام بڑا محدود تھا اس لئے خواہش کے باوجود ہم رانگاماٹی تک نہ جا سکے۔ راستہ میں ایک خوبصورت مقام پر دریائے کرنافلی اور سرسبز پہاڑوں کے پس منظر میں سعید صاحب نے گروپ فوٹو لے کر سفر کے ان لمحوں کو یادگار بنا دیا۔ یادوں کے نقش تو کبھی کبھی دھندلا بھی جاتے ہیں لیکن تصویروں کے نقش یادوں کے چراغ کی مانند ہمیشہ جلتے ہی رہتے ہیں —— وقت اور زمانے کی گرفت سے آزاد۔

پہاڑی راستوں سے گزر کر ہم ایک اور دوراہے پر آئے جہاں سے کاکس بازار کو راستہ جاتا تھا اور جو اس وقت بارش کے سبب ناقابل گزر تھا۔

کاکس بازار: چاٹگام کی پہاڑیوں کا سلسلہ برما کی سرحد کے ساتھ ساتھ میلوں جنوب تک چلا گیا ہے، جہاں ساحل پر مشہور تفریحی مقام کاکس بازار واقع ہے۔ کاکس بازار کا ساحل ۷ میل لمبا ہے۔ اور یہ دنیا کا سب سے لمبا ساحل مانا گیا ہے۔ کہا جاتا ہے کہ اٹھارویں صدی میں ایک انگریز مہم جو، مسٹر کاکس نے یہاں آنے کے بعد ایک موگھ گاؤں کے چار طرف لکڑی کے جنگلے کھڑے کر دیئے تھے۔ دوسری جنگ عظیم کے دوران یہ ایک اہم چھاؤنی بھی بن گیا تھا۔ اور جاپانیوں نے اس پر ۴۶ مرتبہ بم برسائے۔ چاٹگام سے یہاں اسٹیمر کے ذریعہ بھی آ سکتے ہیں اور ہوائی جہاز سے بھی۔ کھیائی اور چندر گونا کے درمیان ہمیں

(باقی صفحہ ۴۳ پر)

سُریلی کہانیاں

ظفر حسین

راگ راگنیاں کانوں میں رس گھولتی ہیں۔ اسی طرح وہ سریلی کہانیاں بھی جو سُر تال کے رسیا گانے والوں سے تعلق رکھتی ہیں، اور چھوٹوں بڑوں سب کے لئے دلچسپی کا باعث ہیں۔ اس لئے مضمون نگار نے انہیں لکھا بھی ایسے ہے کہ چھوٹے بڑے سب اس سے لطف اندوز ہو سکیں۔ (ادارہ)

یہ تو سب ہی جانتے ہیں کہ گانے کی آواز عام بول چال کی آواز سے مختلف ہوتی ہے، اسی لئے گانے کی آوازوں کو سریلی آوازیں کہتے ہیں۔ یہ آوازیں تعداد میں کل سات ہوتی ہیں، جنہیں ہم سُر کہتے ہیں۔ ہم آئے دن بے شمار آوازیں سُنتے رہتے ہیں۔ مثلاً انجن کی سیٹی کی آواز۔ موٹر کے ہارن کی آواز۔ ہوائی جہاز کے اڑنے کی آواز۔ بندوق کی آواز۔ جانوروں اور پرندوں کی آوازیں، اور ہماری آپس کی بول چال کی آوازیں وغیرہ۔ لیکن یہ سب آوازیں سُریلی آوازیں نہیں۔ سریلی آوازیں وہی ہیں جو ہم گانا گاتے وقت اپنے گلے سے نکالتے ہیں یا وہ آوازیں جو کسی موسیقی کے ساز سے نکلتی ہیں۔ موسیقی کی آوازیں انسان نے کس طرح دریافت کیں، اس کے بارے میں ہر ملک اور ہر قوم میں مختلف کہانیاں سننے میں آتی ہیں۔ مثلاً ہندوؤں کا عقیدہ ہے کہ مہادیو جی ان کے سب سے بڑے دیوتا تھے، کے دربار میں کچھ دیو تھے اور کچھ پریاں۔ پریوں کی آوازیں باریک تھیں اور دیوؤں کی آوازیں بھاری تھیں۔ مہادیو نے انہیں آوازوں سے مختلف سُروں کو چن لیا اور بعد میں یہ سُر انسانوں کو سکھا دیئے لیکن ان سُروں کے بارے میں سب سے مزیدار حکایت یونانیوں میں پائی جاتی ہے۔

"موسیقار":

وہ حکایت یہ ہے کہ "موسیقار" نامی ایک پرندہ ہوتا ہے۔ اس پرندے کی چونچ میں سات سوراخ ہوتے ہیں۔ یہ پرندہ ایک خاص موسم میں گھاس پھوس کا گھونسلا بنا کر اس میں بیٹھ جاتا ہے۔ اس وقت پرندے کی چونچ کے سوراخوں میں سے ہوا ہو کر گذرتی ہے تو سات سُر پیدا ہوتے ہیں۔ ہم جانتے ہیں کہ جب ہوا کسی سوراخ میں سے ہو کر گذرتی ہے تو اس سے آواز ضرور پیدا ہوتی ہے۔ مثلاً بانسری کے سوراخوں سے جب ہوا گذرتی ہے تو آواز پیدا ہوتی ہے۔ جب پرندے کی چونچ سے اسی طرح سات سُر پیدا ہوتے ہیں تو ان سُروں کے پیدا ہوتے ہی اُس پرندے کے گھونسلے میں آگ لگ جاتی ہے جس میں وہ پرندہ جل بھن کر خاک ہو جاتا ہے۔ پرندے کی اس خاک سے کچھ عرصے بعد خود بخود ایک انڈا پیدا ہوتا ہے جس میں سے پھر ایک موسیقار پیدا ہوتا ہے۔ یہ پرندہ بڑا ہو کر اسی طرح گھاس پھوس کا گھونسلا بناتا ہے اور پھر جل کر خاک ہو جاتا ہے۔ غرض اس طرح یہ سلسلہ ہمیشہ جاری رہتا ہے۔

انسان نے اس پرندے کی چونچ سے نکلی ہوئی آوازوں ہی سے سات سُروں کا خیال لیا اور انہیں سُروں کے مجموعے سے دنیا بھر کی موسیقی بنی ہے۔ "موسیقی" کا لفظ، ذرا ذرا سی تبدیلی کے ساتھ دنیا کی اکثر زبانوں میں ملتا ہے اور یہ لفظ اسی پرندے کے نام سے بنایا گیا ہے۔ ہماری اپنی زبان میں بھی گانے بجانے کے علم کو علم "موسیقی" ہی کہتے ہیں۔

موسیقی نے کس طرح جنم لیا اور کس طرح یہ نام پایا یہ تو آپ کو معلوم ہو گیا۔ اب میں دور پرے کی باتیں چھوڑ کر اپنوں کی ہی کہانیاں سناتا ہوں۔ ہمارے ہاں بڑے بڑے موسیقار پیدا ہوئے ہیں اور انہوں نے اس فن میں جو نام پیدا کیا اس کی داستان بھی سننے والی ہے۔ سب سے پہلے میں خلیفہ ہارون رشید کے درباری گویّے کا قصہ آپ کو سناتا ہوں،

ابراہیم موصلی:

تم نے خلیفہ ہارون رشید کا نام تو سنا ہی ہوگا۔ یہ خلیفہ اپنے زمانے میں بہت سے علوم اور فنون کی سرپرستی کرتا تھا۔ چنانچہ اس کے دربار میں جہاں بڑے بڑے ادیب اور شاعر جمع ہوتے تھے وہاں موسیقی کی محفلیں بھی بڑی شان شوکت کے ساتھ ہوا کرتی تھیں۔ اس زمانے کا سب سے

چکما عورتیں بڑی ہنرمند ہوتی ہیں۔ بُننا، کاتنا، رنگنا، گھروں کو سنبھالنا کھیتوں پر مردوں کا ہاتھ بٹانا ان کے محبوب مشغلے ہیں۔ جاڑوں میں یہ لوگ کھیتی باڑی کرتے ہیں اور گرمیوں میں جنگل کی قیمتی لکڑی اور بانس کاٹتے ہیں۔ سادہ لباس، سادہ زندگی اور سادہ غذا اس قبیلے کی خصوصیات ہیں۔ مرد ٹخنوں تک لنگوٹی سی باندھتے ہیں۔ عورتیں اسکرٹ اور بلاؤز کی طرز کا ایک لباس پہنتی ہیں۔ آج کل ساڑی کا رواج بھی عام ہو رہا ہے یہ تمام کپڑے گھروں میں ہی تیار ہوتے ہیں۔ چاول ان کی خاص غذا ہے۔ جانوروں کا گوشت بھی استعمال کرتے ہیں اور تمباکو بہت زیادہ پیتے ہیں۔ سال کے سال چیت کے موسم میں چودھویں رات کو یہ لوگ ایک بڑا جشن مناتے ہیں جسے "مقن مانا" کہتے ہیں۔ تہوار کے موقعوں پر چاول کی شراب پی جاتی ہے۔ اچھے اچھے کھانے پکتے ہیں۔ بدھ مذہب پر عقیدہ رکھنے کے باوجود ان کی عبادت کے طریقے ہندوؤں کی پوجا پاٹ سے کافی مماثلت رکھتے ہیں۔

قبیلے میں شادی بیاہ کی عجیب وغریب رسمیں رائج ہیں۔ اسی طرح پیدائش اور موت پر بھی یہ اپنی دیرینہ روایات پر ہی عمل پیرا ہیں۔ شادی کے موقع پر دولہا کے بائیں جانب دلہن بیٹھتی ہے۔ رشتے داروں میں سے ایک مرد ایک عورت دولہا دلہن کو کمر سے باندھ دیتے ہیں۔ گرہ لگانے سے پہلے شادی میں شرکت کرنے والے حاضرین سے اجازت حاصل کی جاتی ہے۔ گرہ کے بعد دونوں اپنے خاندان کے بزرگوں کے پاس جاتے ہیں اور وہ چاول، روئی، گھاس، وغیرہ ان کی جھولی میں ڈال دیتے ہیں اور دعا دیتے ہیں۔ گاؤں کا پجاری شادی کی یہ تمام رسمیں انجام دیتا ہے۔ لڑکے کی پیدائش کے وقت دو مرتبہ بندوق چلائی جاتی ہے اور لڑکی کی پیدائش پر ایک بار۔ قدرتی موت پر چکما عام طور پر لاش کو جلاتے ہیں لیکن وبائی امراض میں مرنے والوں کو دفن کر دیا جاتا ہے اور سات دن تک مرنے والے کا سوگ رہتا ہے۔ اس دوران میں گوشت، انڈے، اور مچھلی کے استعمال سے پرہیز کرتے ہیں۔ لڑکے سر کے بال منڈوا دیتے ہیں۔ اور کئی مذہبی رسومات ادا کی جاتی ہیں تاکہ مرنے والے کی روح کو اطمینان نصیب ہو۔

قبیلے کے مرد اور عورتیں ذوقِ لطیف سے بھی عاری نہیں۔ بانسری ان کی مقبول عام موسیقی ہے اور بانسری بجانے میں مرد اور عورتیں یکساں مہارت رکھتے ہیں۔ گوئیے گاؤں گاؤں گھومتے اور رزم وبزم کے گیت گاتے پھرتے ہیں۔ عورتوں کو پھولوں سے بھی عشق ہے اور گہنے پاتوں سے بھی، جو عموماً چاندی کے ہوتے ہیں۔ مرد اور عورتیں کافی صحت مند اور جفاکش ہیں۔ چکمے کشتی، تیراکی اور رسہ کشی کے کھیلوں سے خاص دلچسپی لیتے ہیں۔

پہاڑی علاقے کے گھنے جنگلوں میں بانس اور قیمتی لکڑی کے علاوہ ہاتھی، شیر، چیتے وغیرہ بھی کثرت سے پائے جاتے ہیں۔ یہ جنگل کاکس بازار تک پھیلے ہوئے ہیں۔ انہی جنگلوں سے ہاتھی خاص طریقوں سے پکڑے جاتے ہیں جسے "کھیدا" کہتے ہیں۔

ہمارے آنے سے چند روز قبل چاٹگام کے پہاڑی علاقوں میں کثرت سے بارش ہو چکی تھی جس کے سبب رانگاماٹی جانے کا راستہ بند ہو گیا تھا۔ دریائی سفر سے تقریباً ۱۲ گھنٹے صرف ہوتے مگر ہمارے دورے کا پروگرام بڑا محدود تھا اس لئے خواہش کے باوجود ہم رانگاماٹی تک نہ جا سکے۔ راستہ میں ایک خوبصورت مقام پر دریلئے کرنافلی اور سرسبز پہاڑوں کے پس منظر میں سعید صاحب نے گروپ فوٹو لے کر سفر کے ان لمحوں کو یادگار بنا دیا۔ یادوں کے نقش تو کبھی کبھی دھندلا بھی جاتے ہیں لیکن تصویروں کے نقش یادوں کے چراغ کی مانند ہمیشہ جلتے ہی رہتے ہیں —— وقت اور زمانے کی گرفت سے آزاد۔

پہاڑی راستوں سے گزر کر ہم ایک اور دوراہے پر آئے جہاں سے کاکس بازار کو راستہ جاتا تھا اور جو اس وقت بارش کے سبب ناقابل گزر تھا۔

کاکس بازار: چاٹگام کی پہاڑیوں کا سلسلہ برما کی سرحد کے ساتھ ساتھ میلوں جنوب تک چلا گیا ہے، جہاں ساحل پر مشہور تفریحی مقام کاکس بازار واقع ہے۔ کاکس بازار کا ساحل ۷۰ میل لمبا ہے۔ اور یہ دنیا کا سب سے لمبا ساحل مانا گیا ہے۔ کہا جاتا ہے کہ اٹھارویں صدی میں ایک انگریز مہم جو، مسٹر کاکس نے یہاں آنے کے بعد ایک موگھ گاؤں کے چہار طرف لکڑی کے جنگلے کھڑے کر دیئے تھے۔ دوسری جنگ عظیم کے دوران یہ ایک اہم چھاؤنی بھی بن گیا تھا۔ اور جاپانیوں نے اس پر ۴۶ مرتبہ بم برسائے۔ چاٹگام سے یہاں اسٹیمر کے ذریعہ بھی آسکتے ہیں اور ہوائی جہاز سے بھی۔ کھٹائی اور چندر گونا کے درمیان ہمیں

(باقی صـ۳۳ پر)

سُریلی کہانیاں

ظفر حسین

راگ راگنیاں کانوں میں رس گھولتی ہیں۔ اسی طرح وہ سریلی کہانیاں بھی جو سر تال کے رسیا گانے والوں سے تعلق رکھتی ہیں۔ اور چھوٹوں بڑوں سب کے لئے دلچسپی کا باعث ہیں۔ اس لئے مضمون نگار نے انہیں لکھا بھی ایسے ہے کہ چھوٹے بڑے سب اس سے لطف اندوز ہو سکیں۔ (ادارہ)

یہ تو سب ہی جانتے ہیں کہ گانے کی آواز عام بول چال کی آواز سے مختلف ہوتی ہے، اسی لئے گانے کی آوازوں کو سریلی آوازیں کہتے ہیں۔ یہ آوازیں تعداد میں کل سات ہوتی ہیں، جنہیں ہم "سُر" کہتے ہیں۔ ہم آئے دن بے شمار آوازیں سنتے رہتے ہیں۔ مثلاً انجن کی سیٹی کی آواز۔ موٹر کے ہارن کی آواز۔ ہوائی جہاز کے اڑنے کی آواز۔ بندوق کی آواز۔ جانوروں اور پرندوں کی آوازیں، اور ہماری آپس کی بول چال کی آوازیں وغیرہ۔ لیکن یہ سب آوازیں سُریلی آوازیں نہیں۔ سریلی آوازیں وہی ہیں جو ہم گانا گاتے وقت اپنے گلے سے نکالتے ہیں یا وہ آوازیں جو کسی موسیقی کے ساز سے نکلتی ہیں۔ موسیقی کی آوازیں انسان نے کس طرح دریافت کیں، اس کے بارے میں ہر ملک اور ہر قوم میں مختلف کہانیاں سننے میں آتی ہیں۔ مثلاً ہندوؤں کا عقیدہ ہے کہ مہادیو، جو اُن کے سب سے بڑے دیوتا تھے، کے دربار میں کچھ دیو تھے اور کچھ پریاں۔ پریوں کی آوازیں باریک تھیں اور دیوؤں کی آوازیں بھاری تھیں۔ مہادیو نے انہیں آوازوں سے مختلف سروں کو چن لیا اور بعد میں یہ سُر انسانوں کو سکھا دیئے۔ لیکن ان سروں کے بارے میں سب سے مزیدار حکایت یونانیوں میں پائی جاتی ہے۔

موسیقار:

وہ حکایت یہ ہے کہ "موسیقار" نامی ایک پرندہ ہوتا ہے۔ اس پرندے کی چونچ میں سات سوراخ ہوتے ہیں۔ یہ پرندہ ایک خاص موسم میں گھاس پھوس کا گھونسلا بنا کر اس میں بیٹھ جاتا ہے۔ اس وقت پرندے کی چونچ کے سوراخوں میں سے ہوا ہو کر گذرتی ہے تو سات سُر پیدا ہوتے ہیں۔ ہم جانتے ہیں کہ جب ہوا کسی سوراخ میں سے ہو کر گذرتی ہے تو اس سے آواز ضرور پیدا ہوتی ہے۔ مثلاً بانسری کے سوراخوں سے جب ہوا گذرتی ہے تو آواز پیدا ہوتی ہے۔ جب پرندے کی چونچ سے اسی طرح سات سر پیدا ہوتے ہیں تو ان سروں کے پیدا ہوتے ہی اُس پرندے کے گھونسلے میں آگ لگ جاتی ہے جس میں وہ پرندہ جل بھُن کر خاک ہو جاتا ہے۔ پرندے کی اس خاک سے کچھ عرصے بعد خود بخود ایک انڈا پیدا ہوتا ہے جس میں سے پھر ایک موسیقار پیدا ہوتا ہے۔ یہ پرندہ بڑا ہو کر اسی طرح گھاس پھوس کا گھونسلا بناتا ہے اور پھر جل کر خاک ہو جاتا ہے۔ غرض اس طرح یہ سلسلہ ہمیشہ جاری رہتا ہے۔

انسان نے اس پرندے کی چونچ سے نکلی ہوئی آوازوں ہی سے سات سروں کا خیال لیا اور انہیں سروں کے مجموعے سے دنیا بھر کی موسیقی بنی ہے۔ "موسیقی" کا لفظ، ذرا ذرا سی تبدیلی کے ساتھ دنیا کی اکثر زبانوں میں ملتا ہے اور یہ لفظ اسی پرندے کے نام سے بنایا گیا ہے۔ ہماری اپنی زبان میں بھی گانے بجانے کے علم کو علم "موسیقی" ہی کہتے ہیں۔

موسیقی نے کس طرح جنم لیا اور کس طرح یہ نام پایا یہ تو آپ کو معلوم ہو گیا۔ اب میں دور پرے کی باتیں چھوڑ کر اپنوں کی ہی کہانیاں سناتا ہوں۔ ہمارے ہاں بڑے بڑے موسیقار پیدا ہوئے ہیں اور انہوں نے اس فن میں جو نام پیدا کیا اس کی داستان بھی سننے والی ہے۔ سب سے پہلے میں خلیفہ ہارون رشید کے درباری گویّے کا قصّہ آپ کو سناتا ہوں،

ابراہیم موصلی:

تم نے خلیفہ ہارون رشید کا نام تو سنا ہی ہوگا۔ یہ خلیفہ اپنے زمانے میں بہت سے علوم اور فنون کی سرپرستی کرتا تھا۔ چنانچہ اس کے دربار میں جہاں بڑے بڑے ادیب اور شاعر جمع ہوتے تھے وہاں موسیقی کی محفلیں بھی بڑی شان شوکت کے ساتھ ہوا کرتی تھیں۔ اس زمانے کا سب سے

بڑا گویا ابراہیم موصلی تھا۔ شروع شروع میں ابراہیم موصلی ایک بہت بڑا ادیب بھی تھا۔ لیکن ایک روز اُس نے خواب میں ایک بزرگ کو دیکھا کہ اس بزرگ نے موصلی سے کہا: "ابراہیم، اگر تم شعر کی جگہ موسیقی کو اپنانے کی کوشش کرو تو تم دُنیا کے بہت بڑے آدمی بن سکتے ہو اور تمہارا نام ہمیشہ کے لئے زندہ رہ سکتا ہے۔" اس بات کو سنتے ہی ابراہیم موصلی نے موسیقی سیکھنا شروع کر دی۔ کچھ عرصہ بعد اس فن میں اس نے اتنی مہارت حاصل کر لی کہ واقعی اس زمانے کے گانے والوں میں وہ سب سے بڑا استاد مان لیا گیا۔ ابراہیم کی کیفیت یہ ہوگئی کہ وہ ہر وقت موسیقی کی تاثیر میں ڈوبا رہتا تھا اور جب کبھی گاتا تو لوگوں پر بھی گہری کیفیت طاری ہو جاتی تھی۔ کچھ مدت بعد ابراہیم کو اپنے فن پر اس قدر ناز ہوگیا کہ اس نے اپنے زمانے کے دوسرے فنکاروں سے ملنا جلنا تک بند کر دیا بلکہ بعض اوقات وہ خلیفہ کا حکم بھی ٹال جاتا۔ ہارون رشید کو یہ بات ناگوار ہوئی اور اس نے ابراہیم کو نیچا دکھلانے کی ایک ترکیب سوچی۔ اس نے اپنے ایک اور ممتاز گویّے کو، جس کا نام ابن جامع تھا، حکم دیا کہ وہ ابراہیم سے مقابلے کی کوشش کرے۔ ابن جامع جانتا تھا کہ ابراہیم کے مقابلے کی اُس میں تاب نہیں ہے۔ لیکن خلیفہ کے حکم کو نہیں ٹال سکتا تھا۔ اس لئے اس نے اپنے ایک دوست کے ذریعے سے جو ابراہیم کی محفلوں میں آیا جایا کرتا تھا چند ایسے راگ یاد کر لئے جن پر ابراہیم کو بڑا ناز تھا اور جو ابراہیم ہی کے بنائے ہوئے تھے۔ اس کے بعد اس نے ہارون رشید کی خدمت میں عرض کی کہ مقابلے کی محفل منعقد کر دی جائے۔ چنانچہ ایک جلسہ ہوا جس میں سب درباری جمع ہوئے۔ اور ہارون رشید نے ابن جامع سے کہا کہ کچھ نئے نغمے پیش کرو۔ ابن جامع نے ابراہیم کے بنائے ہوئے نغمے گا دئے اور کہا کہ میں نے یہ حال ہی میں اختراع کئے ہیں۔ اس کے بعد ہارون رشید نے ابراہیم سے کہا کہ ان کے مقابلے پر آپ بھی کچھ نئے نغمے سنا دیجئے۔ ابن جامع سے ان نغموں کو سن کر ابراہیم خود بڑا حیران تھا مگر اس نے ہارون رشید سے التجا کی کہ آج کی بجائے کل اسے اپنا ہنر پیش کرنے کی اجازت دی جائے۔ ہارون رشید نے یہ بات مان لی۔ ابراہیم نے گھر جا کر اپنی ایک نئی دھن ایجاد کی اور جب دوسرے دن ابراہیم نے یہ دُھن دربار میں پیش کی تو اہلِ محفل اور خود خلیفہ ہارون رشید پر اس قدر گہرا اثر ہوا کہ سب کی آنکھوں سے آنسو نکل پڑے۔ نغمہ ختم کرنے کے بعد ابراہیم نے ابن جامع کی طرف دیکھ کر کہا کہ اب آپ بھی ایسی ہی کوئی دُھن سنائیں۔ مگر وہ مقابلہ نہیں کر سکتا تھا اس لئے بہت شرمندہ ہوا۔ ہارون رشید کو یہ بات ماننی پڑی کہ اس وقت ابراہیم موصلی سے بڑھ کر کوئی دوسرا فنکار موجود نہیں ہے۔ اس کے بعد خلیفہ نے اس کا رتبہ بھی بڑھا دیا اور ہر طرح ابراہیم موصلی کے فن کی قدر دانی کی!

شاہی قالین:

خلیفہ ہارون رشید کا دورِ حکومت بہت اچھا تھا اور اسی وجہ سے لوگ عام طور پر بہت خوش حال اور دولت مند بھی تھے۔ امیروں اور رئیسوں کے عالی شان مکان تھے اور ہر طرف شعر و شاعری اور موسیقی کے چرچے تھے۔ خود خلیفہ ہارون رشید کے دربار میں بہت سے اچھے اچھے گویّے ملازم تھے۔ ان گویّوں میں ابراہیم موصلی اور ابن جامع کی چشمک کا واقعہ تم پچھلی کہانی میں پڑھ چکے ہو اب یہ کہانی سنو:

ہارون رشید نے اپنے درباریوں کو تین گروہوں میں تقسیم کر رکھا تھا پہلے گروہ میں وزیر، شہزادے اور بڑے بڑے فوجی حاکم ہوتے تھے جو بادشاہ کے قریب بیٹھتے تھے دوسرے گروہ میں وہ لوگ ہوتے ہوتے تھے جو شاہی ندیم ہوتے تھے یعنی بادشاہ کے خاص دوست۔ ان کے علاوہ ادیب، شاعر، گانے والے اور دوسرے فن کار ہوتے تھے تیسرے گروہ میں ساز بجانے والے، بذلہ گو یعنی لطیفے سنانے والے اور داستان سرا یعنی قصے سنانے والے اور اسی طرح کے فنکار ہوتے تھے۔ ایک مرتبہ ایک ساز بجانے والے نے جس کا نام برصوم تھا ساز بجا کر ہارون رشید کو بہت خوش کیا۔ ہارون رشید نے اُس سے پوچھا کہ وہ کیا انعام چاہتا ہے۔ برصوم نے فوراً درخواست کی اُسے دوسرے درجے کے گروہ میں شامل کیا جائے۔ ہارون رشید نے کہا کہ اگر وہ ابن جامع کی طرح نغمہ بجا کر سنا دے تو اُسے یہ اعزاز بخشا جا سکتا ہے۔ برصوم نے فوراً ساز اُٹھایا اور ابن جامع کی مخصوص دھنوں کو اس انداز سے بجایا کہ خود ابن جامع بھی واہ واہ کہہ اُٹھا۔ ہارون رشید نے خوش ہو کر اُسے اسی گروہ کے ساتھ بیٹھنے کا حکم دیا جس میں ابن جامع شامل تھا اور ساتھ ہی اُسے ایک بڑا قیمتی قالین بھی انعام میں دیا۔ برصوم یہ قالین لے کر خوش خوش اپنے گھر گیا۔ ساتھ ہی ساتھ یہ خبر بھی سارے شہر میں پھیل گئی کہ اس کا رتبہ بلند کر دیا گیا ہے۔

اس خبر کو سن کر بہت سی عورتیں برصوم کی ماں کو مبارکباد دینے کے لئے آئیں۔ ماں نے خوشی میں اس قالین کو ٹکڑے ٹکڑے کر ڈالا اور ہر آنے والی کو ایک ٹکڑا دے دیا۔ جب برصوم گھر آیا تو یہ دیکھ کر بڑا پریشان ہوا کہ بادشاہ کے عطا کئے ہوئے قالین کے ٹکڑے ٹکڑے کر دئے گئے ہیں۔ اس کے پاؤں تلے کی زمین نکل گئی۔ کیونکہ بادشاہ کے دئے ہوئے انعام کو اس طرح چیرنا پھاڑنا ایک طرح بادشاہ کی توہین کرنا تھی۔ برصوم اسی فکر میں رہنے لگا کہ بادشاہ کی ناراضی سے کس طرح بچے۔ ایک روز اس نے ایک خاص نغمہ تیار کیا اور دربار میں بجایا۔ بادشاہ نے خوش ہو کر ایک بار پھر اس سے پوچھا کہ اسے کیا انعام دیا جائے اس پر برصوم نے کہا کہ "جان کی امان!"۔ بادشاہ اس کا مطلب نہ سمجھ سکا اور حکم دیا کہ وہ اپنا مطلب صاف صاف بیان کرے۔ اس پر برصوم نے قالین کے ٹکڑے ٹکڑے کر دینے کا سارا ماجرا بیان کر دیا۔ ہارون رشید یہ واقعہ سن کر بہت ہنسا۔ اور برصوم کو ایک اور قالین عطا کر دیا اور اس کی ماں کی خطا بھی معاف کر دی۔

زریاب :

ہارون رشید کے دربار کا ایک نامی گویا اسحاق بھی تھا۔ دراصل یہ ابراہیم موصلی کا بیٹا تھا اور اس نے فن موسیقی اپنے باپ سے سیکھا تھا۔ ابراہیم موصلی کے بعد ہارون رشید نے اسحاق کو اپنا درباری گویا مقرر کر دیا تھا۔ اسحاق کا ایک شاگرد تھا جس کا نام زریاب تھا اسحاق اپنے اس شاگرد کو بہت محنت سے تعلیم دیتا تھا اور بہت خوش ہوتا تھا کہ زریاب رفتہ رفتہ فن موسیقی میں بڑی ترقی کر رہا ہے۔ زریاب کو اس فن سے اس قدر لگاؤ تھا کہ استاد کی بتائی ہوئی چیزوں پہ بے حد محنت کرتا تھا یہاں تک کہ وہ بعض نغموں کے گانے میں تو استاد سے بھی بازی لے گیا تھا۔ لیکن اس نے اپنے کمال کو کبھی استاد پر ظاہر نہیں ہونے دیا اس لئے کہ وہ جانتا تھا کہ جہاں اس کا استاد اس پر بے حد مہربان ہے وہاں وہ حد درجہ حاسد آدمی بھی ہے یعنی دوسرے فنکاروں سے جلتا بھی ہے اور یہ کبھی برداشت نہیں کر سکتا کہ اس کا شاگرد اس سے بڑھ جائے یا اس کے مقابلے کا ہو جائے۔ ایک زمانے تک زریاب اپنے استاد، اسحاق سے تعلیم لیتا اور مشق کرتا رہا۔ اتفاق سے ہارون رشید کے دربار کا ایک گویا مر گیا اور ہارون رشید نے یہ خواہش ظاہر کی کہ اس کی جگہ کوئی دوسرا گویا مقرر کیا جائے۔ اسحاق نے موقع دیکھ کر بادشاہ سے زریاب کی سفارش کی جس پر بادشاہ نے حکم دیا کہ زریاب کو دربار میں حاضر کیا جائے۔ اسحاق خوش خوش زریاب کو لینے کے لئے آیا لیکن زریاب نے دربار میں جانے سے انکار کر دیا اور کہا کہ میں اس قابل نہیں ہوں کہ اس دربار میں اپنے استاد کے ساتھ بیٹھ سکوں۔ بہت سمجھانے بجھانے پر زریاب نے کہا کہ وہ اس شرط پر جانے کے لئے تیار ہے کہ اس سے کسی خاص نغمے کی فرمائش نہ کی جائے بلکہ اپنی پسند کا نغمہ گانے کی اجازت دی جائے۔ دوسری شرط یہ تھی کہ وہ اپنا ہی عود بجائے گا۔ دوسرے کسی عود کو بجانے کی شرط نہ لگائی جائے۔ کیونکہ دوسرا عود خود اس کے استاد کا تھا۔ اسحاق نے اس پر کہا کہ یہ کوئی بڑی بات نہیں ہے اور میں بادشاہ سے تجھے اپنا ہی نغمہ گانے اور اپنا ہی عود بجانے کی اجازت دلوا دوں گا۔ زریاب ہارون رشید کے دربار میں حاضر ہوا اور بادشاہ کی اجازت کے بعد اس نے نغمہ الاپنا شروع کیا۔ اس کے گانے کا ایسا سماں بندھا کہ سارے درباری تو ایک طرف خود اسحاق بھی مبہوت ہو کر رہ گیا۔ کیونکہ اسے اندازہ نہ تھا کہ اس کا شاگرد اس قدر ترقی کر گیا ہے کہ اس کے سامنے اب اس کا چراغ بھی جلنا مشکل ہے۔

خلیفہ ہارون رشید نے زریاب کے گانے سے خوش ہو کر اسے بہت کچھ انعام دیا اور اسی وقت اسے درباری گویوں کی صف میں شامل کر لیا۔ ساتھ ہی ساتھ اسحاق کو ہدایت کی کہ وہ زریاب کو تعلیم دینے میں اور زیادہ محنت کرے۔ اسحاق بظاہر تو دربار سے خوش ہو کر آیا لیکن اس کے دل میں حسد کی آگ بھڑک رہی تھی۔ اسی وجہ سے وہ زریاب سے اکھڑی اکھڑی باتیں کرنے لگا۔

زریاب استاد کے دل کی بات سمجھ گیا اور ایک روز موقع پا کر بغداد سے نکل کھڑا ہوا اور قرطبہ میں جا کر آباد ہو گیا۔

قرطبہ کے خلیفہ نے زریاب کی بڑی عزت کی اور اس کا وظیفہ مقرر کر دیا۔ کہتے ہیں آجکل اسپین کی موسیقی پر جو عربی موسیقی کا اثر نظر آتا ہے وہ سب زریاب ہی کے نغموں کا اثر ہے۔

حکیم بوعلی سینا :

حکیم بوعلی سینا کا نام کس نے نہیں سنا ہے۔ ان کا اصل نام

تو بہت لمبا چوڑا ہے۔ مگر عام بول چال میں "حکیم بوعلی سینا" کے نام سے ہی مشہور ہیں۔ ان کا لمبا نام ہونے کی وجہ یہ ہے کہ اس زمانے میں ایسے ہی بڑے بڑے نام رکھے جاتے تھے تاکہ لوگوں کے حسب نسب کا پتہ چل جائے۔ ان کا نام تھا "ابوعلی الحسین ابن عبداللہ ابن حسن ابن علی ابن سینا"۔ مغربی ملکوں کے لوگوں نے اپنی بولی میں انہیں "اوی سینا" کہنا شروع کر دیا۔ ان کی علمی کتابوں سے یورپ والے عرصۂ دراز سے فائدہ اٹھاتے ہیں۔ اس میں شک نہیں کہ حکیم بوعلی سینا اپنے زمانے کے سب سے بڑے عالم، فاضل اور بڑے سائنسدان تھے۔ اس زمانے کے علموں میں کوئی ایسا علم نہیں تھا جس پر انہیں پوری پوری قدرت حاصل نہ ہو۔ چنانچہ وہ فلسفہ، منطق، تاریخ، مختلف زبانیں، طب، علم نجوم، مذہبیات اور علم موسیقی سب ہی کے زبردست عالم تھے۔ ان کی زندگی بھی عجیب و غریب تھی۔ کبھی کبھی انہیں غریبی اور افلاس کا منہ دیکھنا پڑا، تو کبھی کبھی وہ وزارت کے عہدے تک پہنچ گئے۔ علم طب پر جو تحقیق حکیم بوعلی سینا نے کی ہے وہ آج بھی بڑی وقعت کی نگاہ سے دیکھی جاتی ہے۔ حکیم بوعلی سینا وہ پہلے شخص ہیں جنہوں نے انسانی جسم کو چیر پھاڑ کر اس کے اندرونی اعضا کا معائنہ کیا۔ اس طرح وہ علم جراحی کے بھی باوا آدم مانے جاتے ہیں۔ ان کی طب اور جراحی کی قابلیت کے بارے میں بے شمار داستانیں مشہور ہیں۔ سنتے ہیں کہ ایک مرتبہ کوئی عورت چلتے چلتے گر کر مر گئی۔ لوگوں نے حکیم بوعلی سینا کو اس بات کی اطلاع دی تو وہ فوراً دوڑتے ہوئے اس جگہ پر پہنچے جہاں وہ عورت پڑی ہوئی تھی۔ وہاں پہنچ کر انہوں نے ایک سوئی منگائی اور اسے اس عورت کے جسم میں گھونپ دیا اور وہ عورت پھر سے زندہ ہو گئی! ممکن ہے کہ یہ بات افسانہ ہی ہو۔ کم از کم اس بات کی وجہ جو حکیم بوعلی کی زبانی نقل کی گئی ہے وہ یقیناً ایک افسانہ ہے مگر سنا ہے کہ آج کل کے سرجن بھی بعض اوقات دل کی حرکت یکایک بند ہو جانے پر دل میں سوئی چبھوتے ہیں، جس سے اکثر مرے ہوئے انسانوں میں جان آ جاتی ہے۔

بہر حال قصہ یہ ہے کہ حکیم بوعلی سینا نے مختلف علموں پر قدرت حاصل کر لی تھی لیکن انہیں "حکیم" کا خطاب عطا نہ ہوا تھا۔ اس لئے کہ وہ لوگ جو ان کے مخالف تھے وہ ہر موقع پر ان میں کسی نہ کسی علم کی کمی بتا دیا کرتے تھے اور بے چارے بوعلی سینا کو وہ علم حاصل کرنا پڑتا تھا۔ ایک موقع پر ان کے ایک دشمن نے بادشاہ وقت سے کہا کہ بوعلی سینا زبان عربی سے واقف نہیں۔ ان کی علمیت اس زبان میں ایسی نہیں کہ انہیں حکیم کا لقب دیا جا سکے۔ حکیم بوعلی سینا اس اعتراض پر اتنے شرمندہ ہوئے کہ انہوں نے تین سال کی محنت میں اس زبان پر ایسی قدرت حاصل کر لی کہ ایک کتاب لکھی جس کا نام "لسان العرب" ہے یعنی عربوں کی زبان۔ حکیم بوعلی سینا نے چند ایک ایسی ہی اور کتابیں بھی عربی زبان میں تصنیف کیں اور ان کتابوں کی جلدیں بنوا کر ان پر خاک مٹی لگا دی تاکہ وہ بہت پرانی معلوم ہوں۔ اس کے بعد یہ کتابیں بادشاہ کو دیں کہ وہ انہیں ان صاحب کو دکھائیں جنہوں نے ان کی زبان پر اعتراض کیا تھا، اور کہیں کہ یہ کتابیں کہیں جنگل میں سے مل گئی ہیں اور کسی پرانے عالم کی تصنیف معلوم ہوتی ہیں۔ ان صاحب نے ان کتابوں کو کئی روز تک غور سے پڑھا اور اس کے بعد بادشاہ سے کہا کہ یہ کسی ایسے آدمی کی تصنیف ہیں جو عربی زبان کا مستند عالم ہے۔ اس کے بعد یہ بات ظاہر کر دی گئی کہ یہ کتابیں حکیم بوعلی سینا کی تصنیف کی ہوئی ہیں۔ اسی طرح ایک بار ان پر اعتراض کیا گیا کہ وہ علم موسیقی کے ماہر نہیں ہیں اور ایسے شخص کو جو اس علم کا ماہر نہ ہو اور اس کا مظاہرہ نہ کر سکے "حکیم" کا خطاب نہیں دیا جا سکتا۔ حکیم بوعلی کو علم موسیقی سے بڑا لگاؤ تھا لیکن وہ بدگلو ہونے کی وجہ سے گا نہیں سکتے تھے۔ چنانچہ اس اعتراض سے بچنے کے لئے حکیم بوعلی نے ایک ساز ایجاد کیا اور اس کے بجانے کی مشق شروع کی۔ کچھ عرصہ بعد اس ساز کے بجانے میں انہوں نے خوب کمال حاصل کر لیا۔ ایک روز دربار میں موسیقی کی محفل ہوئی تو اس وقت کے باکمال لوگوں نے اپنا اپنا ہنر پیش کیا۔ رئیس وقت حکیم بوعلی سے ہر ایک کے بارے میں دریافت کرتے تھے اور بوعلی ہر ایک کے فن میں کوئی نہ کوئی عیب نکال دیا کرتے تھے۔ اس پر ایک صاحب نے چڑ کر کہا کہ باکمال لوگوں کی عیب جوئی وہ کرے جو خود صاحبِ کمال ہو۔ بوعلی سینا کو یہ بات زیب نہیں دیتی۔ حکیم بوعلی اس موقع کے منتظر ہی تھے۔ چنانچہ انہوں نے اپنا کمال پیش کرنے کی اجازت چاہی۔ اجازت ملنے پر بوعلی نے "سینائی" پر وہ نغمے بجانے شروع کئے جو اس سے پہلے دوسرے لوگ نہیں سنا سکتے تھے۔ اور ان نغموں کو کچھ اس طرح بجایا کہ سننے والے مبہوت ہو کر رہ گئے۔ حکیم بوعلی سینا کی اس ایجاد کا نام "سینائی" رکھا گیا جو اب "شہنائی" کے نام سے مشہور ہے۔

ڈرامہ:

نظارے

سید احمد رفعت

کردار:

زرین: بڑی بہن۔ عمر تقریباً ۱۸ سال
نسرین: چھوٹی بہن عمر تقریباً ۱۶ سال
حامد: ان کا بھائی عمر تقریباً ۲۲ سال
شاکرہ: ایک لڑکی عمر تقریباً ۱۲ سال
ظفر: اس کا چھوٹا بھائی عمر تقریباً دس سال
خالہ: شاکرہ اور ظفر کی ماں: نوکرانی۔

★

(جس وقت پردہ اٹھتا ہے تو ایک کوٹھی کا ڈرائنگ روم نظر آتا ہے جو واجبی سامان سے آراستہ ہے۔ اس کے عقب میں اور دائیں جانب ملحقہ کمروں کے دروازے نظر آ رہے ہیں۔ بائیں جانب باہر سے آنے کا راستہ ہے.......

شاکرہ معمولی لباس پہنے جس سے اس کی غربت نمایاں ہے۔ ایک الھڑسی معمولی شکل صورت کی لڑکی باہر کے دروازے پر بھاگتی ہوئی نظر آتی ہے اور اسی کے پیچھے اس کا بھائی ظفر میلے کچیلے کپڑے پہنے۔ شاکرہ کے پیچھے دوڑ کر آتا ہے۔ اور شاکرہ کا ہاتھ پکڑ لیتا ہے اور کہتا ہے۔)

ظفر: دیکھ آپا کی بچی۔ تیری ناک پہ ایسا گھونسہ ماروں گا کہ یہ لمبی لمبی سی ناک سب پچک کر رہ جائے گی۔

شاکرہ: (خود کو چھڑاتے ہوئے اور اپنے دوسرے ہاتھ کی مٹھی کو الگ کرتے ہوئے) میں تیرا منہ توڑ دوں گی۔ بڑا آیا گھونسہ مارنے والا چھوڑ مجھے۔

ظفر: سیدھی طرح مونگ پھلیاں دے دو۔

شاکرہ: نہیں دوں گی نہیں دوں گی۔ دیکھوں میرا کیا کرتا ہے۔

ظفر: نہیں دو گی؟ ابھی جا کر اماں سے کہتا ہوں .... اماں ....

شاکرہ: جا... کہہ دے۔ ایک دفعہ نہیں ہزار دفعہ کہہ دے۔ بدتمیز۔ کل خود بیٹھا ہوا ٹھونس رہا تھا۔ ہم نے مانگیں، بھیا دو چار ہمیں بھی دیدے تو منہ بنا لیا۔ اب ندیدہ بن کر آ گیا ہے۔ ... (منہ بنا کر) آ! مونگ پھلیاں ہمیں بھی دو....... جا نہیں دیتی۔

ظفر: (زبردستی کرتے ہوئے) اچھا نہیں دو گی...... دیکھو دے دو..... (زچ سا ہو کر) یہ تم.....

شاکرہ: اف اللہ۔ ظفر کے بچے، دیکھ میری کلائی ٹوٹ جائے گی۔ اف اللہ۔ دیکھ میں تیرے ہاتھ پر کاٹ کھاؤں گی۔ (اس عرصے میں ظفر شاکرہ سے زبردستی کچھ مونگ پھلیاں چھین لیتا ہے)

ظفر: ہوں!! .... دیکھا آپا جان صاحبہ کیسے مزے سے یہ مونگ پھلیاں لے لیں تم سے۔

شاکرہ: اف۔ ظفر۔ دیکھ میں رونے لگوں گی..... میری ساری کلائی.... بدتمیز کہیں کا.....

ظفر: (مونگ پھلیاں چھیل کر کھاتے ہوئے) کیسی مزے دار ہیں..... آہا.... واہ! یہ دیکھو آپا کیسی بھنی ہوئی ہیں۔

شاکرہ: دیکھ ظفر مجھے واپس کر ساری مونگ پھلیاں ورنہ.... (ظفر کی طرف جھپٹنا چاہتی ہے)

ظفر: دیکھو آپا۔ میری طرف مت آنا۔ ورنہ ابھی تو تمہاری ایک ہی چوڑی ٹوٹی ہے۔ کہیں یہ سب ہی شہید نہ ہو جائیں۔

شاکرہ: اوہ! خون بھی تو نکل آیا۔ یہ دیکھو!

ظفر: اب دیکھ لیا تم نے کتنا بہادر ہے تمہارا بھائی!! .... ہا ہا ہا .... بڑی مزے دار ہیں آپا .... (مونگ پھلیاں کھاتے ہوئے) یہ مونگ پھلیاں .....

شاکرہ: (جھپٹ کر ظفر کی طرف بڑھتی ہے۔) دیکھ دے دے ..... ظفر ....

(ظفر صوفے کے پیچھے بھاگ جاتا ہے۔ شاکرہ اسے پکڑنے کے لئے دوڑتی ہے۔ اور اس طرح ظفر اور شاکرہ ڈرائنگ روم میں ایک دوسرے کو پکڑنے کی کوشش کر رہے ہیں۔ کہ اندر کے دروازہ سے ان کی ماں داخل ہوتی ہے۔)

خالہ: ارے .... ارے یہ کیا ہو رہا ہے۔

شاکرہ: دیکھو اماں۔ اس ظفر کے بچے نے میری مونگ پھلیاں چھین لیں۔

خالہ: مونگ پھلیاں۔ تو مونگ پھلیاں کھا رہی ہے۔ میں تو تجھ سے تنگ آ چکی ہوں۔ اب مونگ پھلیاں کھا رہی ہے۔ اور رات ہوئی۔ تو رات بھر ٹھوس ٹھوس کر کے کھانا۔

شاکرہ: اماں۔ دو تین بھی تو نہیں کھائیں۔ (ظفر آہستہ آہستہ باہر کے دروازے کی طرف بڑھ رہا ہے)

خالہ: ظفر .... ادھر آ .... ارے یہاں آنا .... میں تجھے بتاؤں۔

(اس عرصے میں ظفر وہاں سے اچھلتا ہوا کمرہ سے باہر چلا جاتا ہے خالہ شاکرہ کے قریب آتی ہے۔ اور اس کے کان پکڑ کر بال کھینچتی ہے)

شاکرہ: تنگ آ گئی ہوں تجھ سے۔ بارہ سال کی لوتھا .... تجھے موت آ جائے تو اچھا ہے ....

(اتنے میں اندر کے کمرہ سے زرین ایک دم آ جاتی ہے۔)

زرین: ارے خالہ۔ خالہ .... اف خالہ تو بس ہے۔ (شاکرہ کو اس کی ماں سے چھڑاتی ہے ....)

خالہ: (شانت ہیں کی) اس سے تو بہتر ہے کہ یہ مر جائے۔

زرین: ارے خالہ .... خدا کے لئے اس طرح تو نہ کوسو۔ آخر کیا کیا اس نے؟

خالہ: بس بیٹی۔ میں تو اس لڑکی سے تنگ آ گئی ہوں گلا خراب ہو رہا ہے۔ ڈاکٹر کہتا ہے کہ آپریشن ہوگا۔ اور یہ مونگ پھلیاں کھاتی پھر رہی ہے۔ اب میں یہاں تمہارے ہاں نوکری کروں یا اس موئی کو ہسپتال لے کر پھر دوں۔

زرین: ہسپتال لے کر میں چلی جاؤں گی۔ یہ کونسی بات ہے۔ (ایک دم موڈ بدل کر) کیوں شاکرہ۔ میں نے کہا تھا۔ کہ تم میرے کمرہ سے باہر نہ نکلنا۔ پھر تم کیوں آئیں یہاں بیٹی۔ چلو جاکر پڑھو۔

خالہ: اے بیٹی! بس پڑھ لیا اس نے اب۔ یہ کیا پڑھے گی۔ ماما کی لڑکی تو ماما ہی بنے گی۔

زرین: اوہ خالہ! تم دیکھو تو کچھ دن۔ آخر میں نے تم سے وعدہ کیا ہے شاکرہ کو وہ لڑکی بنا دوں گی کہ ہر شخص اس کی مثالیں دیا کرے گا (شاکرہ سے) جاؤ۔ چلو۔ جاکر پڑھو ....

(شاکرہ دبے پاؤں اندر کے کمرہ کی طرف جانے لگتی ہے)

خالہ: بارہ سال کی لوتھا۔ اور آٹا تک گوندھنا نہیں آتا۔ جب کسی کام کو کہو، فوراً تڑاخ سے جواب دے دے گی۔

زرین: (شاکرہ سے) سنو شاکرہ! (شاکرہ دروازے کے قریب رک جاتی ہے) اب میں تمہاری اماں سے تمہاری کوئی شکایت نہ سنوں۔ کیا سمجھیں! بس جاؤ جاکر فوراً سبق پڑھو!

(شاکرہ کسی قدر اٹھلاتی مسکراتی ہوئی کمرہ کے اندر چلی جاتی ہے)

خالہ: بیٹی زرین! تم میرے بچوں کا جتنا خیال کرتی ہو۔ میں کس زبان سے تمہارا شکریہ ادا کروں۔

زرین: واہ خالہ! تم بھی تو ہمارے گھر میں اتنا کام کرتی ہو۔

ہمیں پکاکر کھلاتی ہو اور دوسرے کام کاج کرتی ہو
آخر ہمارا بھی کوئی فرض ہے یا نہیں۔

خالہ: بیٹی میں تو نوکر ہوں۔ جو کچھ کرتی ہوں اس کی تنخواہ مجھے مل جاتی ہے۔ پھر میرا تم پر کیا احسان۔

زریں: خالہ! شاکرہ تو مجھے نسرین سے بھی زیادہ عزیز ہے۔ سچ کہتی ہوں۔ کہ میرا جی چاہتا ہے کہ شاکرہ اور کچھ نہیں تو بی۔ اے تو کر ہی لے..... مگر ذرا اس کا ذہن خراب ہے۔ ورنہ اب تک تو میں میٹرک کا امتحان دلوا دیتی...

(کمرہ کے دوسرے دروازہ سے حامد اپنے ہاتھ میں ایک پن لئے داخل ہوتا ہے)

حامد: خالہ! یہ دیکھئے (پن خالہ کے ہاتھ میں دے دیتا ہے۔ خالہ اسے دیکھتی ہے۔)

خالہ: یہ کس نے توڑا؟ یہ ظفر کے بچے کا ہی کام ہوگا۔

حامد: جی ہاں! خالہ مجھے تو تمہارے بڑھاپے پر ترس آجاتا ہے۔ ورنہ ظفر کی تو وہ مرمت کروں کہ اسے آدمی بنا کر رکھ دوں۔

خالہ: تو حامد میاں، تمہیں منع کس نے کیا ہے۔

زریں: حامد بھائی کیا ہوا۔ دوسری نب ڈلوا لینا۔ خالہ کو کیوں دکھا رہے ہو۔

حامد: ارے خالہ! تم خواہ مخواہ اداس ہو رہی ہو۔ منہ زری میں تو خالہ کو یہ بتانے آیا تھا۔ کہ یہ حضرت ظفر میری چیزوں سے کیا کیا مشق فرمایا کرتے ہیں۔

خالہ: حامد میاں تم نے اس بدبخت کو اپنے سر پر بھی تو اتنا چڑھا رکھا ہے۔

حامد: تو ظفر ہے بھی تو ایسا ہی۔ واللہ مجھے تو اس کی ذہانت اور ہوشیاری دیکھ کر رشک ہونے لگتا ہے کیسی بلا کا دماغ پایا ہے۔

(زریں اپنے کمرہ کی طرف جانے لگتی ہے۔)

حامد: زریں ذرا مجھے اپنا پن دے دینا... بڑا ضروری وہ.. ... وہ نوٹس لکھنے ہیں....

(زریں بڑی عجیب نگاہوں سے دیکھتی، منہ بناتی اپنے کمرہ میں چلی جاتی ہے)

حامد: خالہ، یہ حامد پڑا کس پر ہے۔ بڑا سنہرا دماغ پایا ہے اس نے۔

خالہ: ظفر کے ابا تو بڑے ہی سیدھے سادے تھے۔ اپنی بے وقوفی ہی کی وجہ سے تو وہ اللہ کو پیارے ہوئے۔

حامد: مگر صاحب ظفر، کیا بات ہے اس کی۔ اب تمہیں سناؤں ایک دفعہ کیا ہوا۔ نسرین کی کاپی پر اس کی لکچرار دستخط کرتی ہے بڑے ٹیڑھے میڑھے سے۔ تو ظفر صاحب نے ان کے دستخطوں میں گول دائرہ ملا دیا اور دو پوائنٹ ڈال کر بالکل الو کی سی صورت بنا دی۔ نسرین سے پوچھنا اس کی لکچرار سٹری سی ہے۔

خالہ: میاں، ظفر کا ہے کون دیکھ بھال کرنے والا۔ اب تو خاصا بڑا ہوگیا ہے اسے کسی سکول میں داخل کرا دونا۔

حامد: ظفر تو بہترین آرٹسٹ بن سکتا ہے۔ بس یہ جو کبھی کبھی شرارت کرتا ہے، اور ایسی شرارت جس سے نقصان ہو جائے اس سے غصہ بہت آتا ہے۔ خیر تم فکر نہ کرو۔ ذرا میرے امتحان ختم ہو جانے دو۔ اسے کسی انگریزی اسکول میں داخل کراؤں گا...... ارے زری... زری... بھئی مجھے اپنا پن دے دینا۔

(یہ کہہ کر وہ زریں کے کمرہ کی طرف چل دیتا ہے۔ خالہ جس کی آنکھوں میں ایک مسرت اور خوشی ہے، آہستہ آہستہ باہر کے دروازے کی طرف بڑھتی ہے۔ اور جب وہ دروازہ کے پاس پہنچتی ہے تو حامد زریں کے کمرہ سے بھاگتا ہوا نکلتا ہے۔ اور زریں اس کے پیچھے پیچھے بھائی جان..... حامد ـــــ بھائی جان بھائی جان کہتی ہوئی، آتی ہے اور حامد کو پکڑنے کی کوشش کرتی ہے۔ مگر حامد جلدی سے دوسرے کمرہ میں چلا جاتا ہے۔ اور فوراً دروازہ بند کر لیتا ہے۔ زریں دانت پیستی ہوئی آکر صوفے پر بیٹھ جاتی ہے۔ اس عرصے میں خالہ باہر جا چکی ہے۔ تھوڑی دیر بعد اس کی چھوٹی بہن نسرین

باہر کے دروازے سے ڈرائنگ روم میں
داخل ہوتی ہے۔ اور زرین کو حیرت سے
دیکھتی ہے۔)

نسرین: کیا بات ہے باجی۔ منہ لٹکائے کیسے بیٹھی ہو۔ (زرین
کوئی جواب نہیں دیتی) بتاؤ نا۔

زرین: جاؤ ۔۔ نسرین اپنا کام کرو۔

نسرین: آخر کوئی بات بھی ہے بتاؤ نا۔

زرین: مجھے یہ بتا نسّو آخر میں تجھے کب تک شیلڈ کرتی رہوں۔

نسرین: ہوا کیا؟

زرین: یہ دیکھ! ۔۔۔۔ (اسے پن دکھاتی ہے)۔۔۔۔ معلوم ہے
حامد بھائی کس قدر بگڑ رہے تھے۔ اس کا نوز ذرا سا
مذاق ہوگیا۔ اور اتنا قیمتی پن ۔۔۔۔

نسرین: بھائی جان بہت بگڑ رہے تھے! تو کہہ دیا ہوتا کہ ظفر
نے توڑا ہے۔

زرین: ظفر بے گناہ کو خواہ مخواہ مجرم ٹھہراؤں۔ بھائی جان
کہتے ہیں کہ قاسم کے علاوہ یہ کسی اور کا کام نہیں ہے
نہ تو قاسم کو اتنی لفٹ دے اور نہ ایسی باتیں سننی پڑیں

نسرین: تو میں کونسا لفٹ دیتی ہوں اسے۔

زرین: اس دن وہ تیری کاپی پر وہ تیری لکچرار، کیا نام ہے
اس کا۔ اس کے دستخطوں کو الّو کی شکل میں نہیں
تبدیل کر گیا تھا۔

نسرین: تو اس میں کیا ہو گیا ۔۔۔۔

زرین: تو تو خود الّو ہو گئی ہے ۔۔ نہ وہ ممی کو اچھا لگتا ہے،
نہ ڈیڈی کو۔ اور بھائی جان تو اب اس سے بہت ہی
بھنّانے لگے ہیں نسّو! اب تو جانے اور تیرا کام ۔۔
میں آخر کب تک تجھے شیلڈ کرتی رہوں گی۔

نسرین: تو کوئی بات بھی ہو۔ قاسم خود ہر بہانے سے چلے
آتے ہیں۔ میں تو بات بھی نہیں کرتی۔

زرین: تو غالب کے شعروں کا مطلب کیوں پوچھا تھا تو نے۔

نسرین: باجی تم ہی نے تو کہا تھا کہ قاسم سے پوچھ لو ۔۔ یہ بھی
شاعری میں غالب سے کم نہیں ہیں۔

زرین: او وہ نسّو! تو بالکل ہی بے وقوف ہے ۔۔ میں نے تو
ٹانٹ کیا تھا ۔۔ آپ سنجیدگی سے غالب کے اشعار اس کے
سامنے لے کر بیٹھ گئیں۔ ارے وہ تو اکنومکس کا اسٹوڈنٹ
ہے وہ شاعری کیا جانے۔

نسرین: تو مجھے اس سے کیا دلچسپی ہے۔ غالب کے شعر تو میں
کسی سے بھی پڑھ سکتی ہوں۔

زرین: تو پھر منع کیوں نہیں کر دیتی۔ صاف منع کر دو۔ کہ مجھ سے
بات کرنے کی کوئی ضرورت نہیں۔ آپ کو ایسا ہی
پڑھانے کا شوق ہے تو باجی کو اکنومکس پڑھائیے جا کر۔

نسرین: تو بھائی جان کو اس پر کوئی اعتراض نہیں ہوگا۔

زرین: او وہ کتنی بھولی ہے تو بھی نسّو۔ تو سمجھتی ہے جیسے میں
قاسم کو گھاس ہی تو ڈالوں گی۔ ارے ایسے بدتمیز قسم کے
آدمی کو تو وہ الّو بناؤں کہ وہ بھی یاد رکھے ۔۔ مگر تو
تو بے وقوف ہے نا۔ تجھے وہ اور بھی بے وقوف بنا کر
رکھ دے گا۔

نسرین: قاسم اتنے برے تو ہیں نہیں باجی۔ خواہ مخواہ تم انہیں
ایسا سمجھتی ہو۔

زرین: (نسرین کا ہاتھ پکڑ کر اندر کے کمرہ کی طرف جاتے ہوئے
کہتی ہے) تیرے بھولپن پر مجھے پیار بھی آتا ہے۔ لیکن
نسّو آخر میں تیری بہن ہوں دشمن تو نہیں ہوں۔ اب
قاسم تجھ سے بات کرے تو صاف پھٹکار دیجیو ۔۔

(یہ باتیں کرتی دونوں لڑکیاں کمرے کے اندر
چلی جاتی ہیں۔ اور باہر سے ظفر مونگ پھلیاں
کھاتا ہوا ڈرائنگ روم میں داخل ہوتا ہے۔
اور پھر بڑے انداز سے پھیل کر صوفے پر بیٹھ
جاتا ہے۔ اور گردن ہلا ہلا کر مزے لے لے کر
مونگ پھلیاں کھانے لگتا ہے۔ حامد کمرہ کا دروازہ
کھولتا ہے۔ اور جب ظفر کو بیٹھا ہوا دیکھتا ہے
تو دبے پاؤں آکر پیچھے سے ظفر کی گدی پکڑ
لیتا ہے۔)

حامد: کیوں بیٹا، کیسے پکڑے گئے! بولو۔ اب اپنے پن کے

توڑنے کی کیا سزا دوں؟

ظفر: بھائی جان!.....اف.... میری گردن تو چھوڑیئے۔

(حامد اس کی گردن چھوڑ دیتا ہے)

ظفر: بھائی جان۔ قسم خدا کی وہ پن قاسم صاحب نے توڑا ہے۔

حامد: چپ رہو۔ یہ سب تمہاری کارستانی تھی ۔ میرا پن تم نے توڑا ہے۔

ظفر: بھائی جان، میں سچ کہتا ہوں۔ وہ قاسم بھائی، نسرین باجی سے پن چھین رہے تھے اور.....

حامد: چپ رہو۔ اگر ایسی کوئی بات منہ سے نکالی تو منہ توڑ دوں گا۔

ظفر: (روہانسا ہو کر) بھائی جان میری کوئی خطا بھی ہو...

حامد: اچھا یہاں بیٹھ اور مجھے یہ بتا کہ میں تجھے آخر کتنا چاہتا ہوں اور تو ہر وقت شرارت کر کر کے میری ساری چیزیں خراب کرتا ہے۔

ظفر: بھائی جان میں ایمان سے کہتا ہوں۔ میں تو آپ کے کمرہ میں جاتا بھی نہیں۔ جب سے اماں نے منع کیا ہے۔

حامد: ارے تیری اماں نے میرے کمرہ میں آنے سے منع کر دیا ہے تجھے۔ (ظفر اثبات میں سر ہلاتا ہے) پگلا کہیں کا۔ ابے! تو تو واقعی پاگل ہی ہے۔ کیا ہے جیب میں تیرے، دکھا (اس کی جیب میں سے مونگ پھلیاں نکالتا ہے) اوہ تو لاٹ صاحب یہ مونگ پھلیاں کھا رہے ہیں۔ لاؤ مجھے بھی دو۔ (حامد ایک مونگ پھلی چھیل کر کھانے لگتا ہے) ابے یار یہ تو بڑے مزے کی ہیں۔ (اپنی جیب سے دو آنے نکال کر) چلو دو آنے کی مونگ پھلیاں مجھے بھی لا کر دو۔ (ظفر دو آنے لے کر چلنے لگتا ہے) سنو، ظفر!

ظفر: جی بھائی جان۔

حامد: کدھر ہے مونگ پھلی والے کی دکان

ظفر: وہ سامنے جو ہوٹل ہے نا بھائی جان۔

حامد: ارے ہاں ہاں! صفیہ کی کوٹھی کے پاس۔

ظفر: نہیں نہیں بھائی جان۔ وہ تو ادھر ہے اور دکان ادھر۔

حامد: ارے پاگل صفیہ کی کوٹھی کے پاس بھی ایک دکان ہے۔ کیا سمجھے۔ وہ بڑی اچھی مونگ پھلیاں بیچتا ہے۔ وہاں سے لاؤ، اور سنو۔ صفیہ کو یہ لفافہ اور یہ ڈبہ دیتے آنا ...

(حامد اپنی پتلون کی جیب سے لفافہ اور ایک چھوٹا سا مخملی ڈبہ نکال کر ظفر کو دیتا ہے، جو ظفر لینے میں پس و پیش کرتا ہے)

حامد: کیا بات ہے۔

ظفر: بھائی جان، اماں کہتی ہیں صفیہ باجی کے ہاں نہ جایا کرو۔

حامد: کیوں؟ اوہ تم وہاں شرارت کرتے ہوگے نا۔ صفیہ کہہ رہی تھی۔ تم نے اس کے باغ میں سے گلاب کے پھول توڑے تھے۔

ظفر: بھائی جان! میں نے تو..... وہ..... اماں .... نے وہ خط..... جو تم نے بھیجا تھا نا..... وہ دیکھ کر کہا تھا.....

حامد: وہ خط تم نے اپنی اماں کو دکھایا تھا۔ اس بار یہ خط بالکل جیب میں چھپا کر لے جانا کسی کو معلوم نہ ہو۔ جاؤ۔ اور لو یہ دو آنے۔ لو.... پکڑو۔

ظفر: (ظفر دو آنے لے لیتا ہے اور حامد خط اور ڈبیا اس کی نیکر کی جیب میں ٹھونس دیتا ہے)

ظفر: بھائی جان۔ یہ دیتے ہی بھاگ آؤں گا۔

حامد: نہیں اس کا جواب لے کر آنا۔ کیا سمجھے۔ جاؤ۔ اور دیکھو ظفر، کسی کو پتہ نہ لگے، جاؤ.... بڑا اچھا.... ہاں... آں....

(ظفر مسکراتا ہوا کمرہ سے باہر کے دروازے سے نکل جاتا ہے۔ حامد اپنے کمرہ کی طرف رخ کرتا ہے۔ اور پھر اپنے کمرہ کا دروازہ بند کر لیتا ہے۔ اس کے بعد زریں بنی سنوری اپنے کمرے سے باہر آتی ہے اور ڈرائنگ روم کے قد آدم آئینہ میں کھڑے ہو کر اپنا جائزہ لیتی ہے۔

اور اپنے بالوں کو ٹھیک کرتی ہے کہ اس عرصے
میں شاکرہ وہاں آجاتی ہے۔ اس کے ہاتھ میں
اردو کا قاعدہ ہے۔)

شاکرہ: باجی آپ تو جا رہی ہیں؟ (زریں اثبات میں سر ہلاتی ہے)
مجھے سبق نہیں دیں گی، میں نے سب یاد کرلیا۔ سناؤں۔
الف سے آم.... ب سے بلی۔ پ سے پنکھا ....

زریں: ہاں ہاں۔ اب آکر تجھے سبق دوں گی اور آج تجھے
یہ سارا قاعدہ ختم کرا دوں گی شاکرہ کیا سمجھی۔ دیکھو،
جب تک میں واپس نہ آجاؤں تو میرے کمرہ میں بیٹھی
رہنا۔ بالکل باہر نہ جانا۔ (کھڑکی کے باہر دیکھتی ہے۔
جیسے وہ کسی کے آنے کا انتظار کر رہی ہے)

شاکرہ: اچھا آپا باجی۔

زریں: اور دیکھو! وہ جو میرے پڑھنے کی کرسی ہے۔ اس پر
تم خوب بیٹھ کر پڑھو۔

شاکرہ: باجی۔ تمہاری کرسی پر!

زریں: ہاں۔ وہ بڑے کمال کی کرسی ہے۔ اس کرسی پر بیٹھ کر
بہت پڑھا جاتا ہے۔

شاکرہ: مگر باجی تم جا کہاں رہی ہو؟

زریں: ارے پگلی۔ صفیہ کے ہاں۔ کل میرا ٹسٹ ہے۔ (کھڑکی
کے پاس جاکر دیکھتی ہے)

شاکرہ: وہ کیا باجی۔

زریں: ارے کل میرا امتحان ہے نا۔ اور مجھے صفیہ کے
ساتھ بیٹھ کر پڑھنا ہے۔

شاکرہ: باجی، وہ کرسی جو اتنے کمال کی ہے۔ اس پر ہی بیٹھ کر
کیوں نہیں پڑھتیں۔ صفیہ باجی تو باتیں زیادہ کریں گی۔

زریں: پگلی کہیں کی۔ اور دیکھو اول تو میرے کمرہ میں کوئی
آئے گا ہی نہیں۔ جب تم میری کرسی پر بیٹھی رہو گی تو
سب ہی سمجھیں گے کہ میں اپنے کمرہ میں ہوں۔
ٹھیک ہے نا....

(زریں پھر آئینہ میں اپنا جائزہ لیتی ہے۔ اور پھر اپنا
پرس کھول کر دو آنے نکالتی ہے کھڑکی کے پاس جاتی ہے۔
اور باہر اپنے آنے کا کسی کو اشارہ کرتی ہے)

زریں: (شاکرہ سے) لو یہ دو آنے ان کی مونگ پھلیاں منگا کر
کھا لینا۔ جاؤ۔ جلدی کرو۔ ظفر سے منگا لینا۔ میں اسے
بھیجتی ہوں۔

(یہ کہہ کر زریں.. باہر کے دروازے
سے چلی جاتی ہے۔)

(شاکرہ قدِ آدم آئینہ کے سامنے کھڑے ہو کر اسی
انداز سے زریں کی طرح اپنا جائزہ لیتی ہے اور پھر
زریں کی نقل کر کے اپنے الجھے ہوئے بالوں
کو ٹھیک کرتی ہے۔ اور دوانی کو اپنے بالوں میں
گویا پھول کی طرح لگانے لگتی ہے کہ اس عرصے
میں ظفر باہر سے اچھلتا ہوا آتا ہے)

ظفر: آپا .... آپا، لو۔ مری جا رہی تھیں دو چار مونگ پھلیوں
کے لئے۔ (اپنی جیب سے مٹھیاں بھر کر مونگ پھلیاں نکالتا)

شاکرہ: ارے یہ اتنی ساری مونگ پھلیاں کہاں سے لے آیا۔

ظفر: چار آنے حامد بھائی جان نے دئے تھے۔

شاکرہ: کیوں۔

ظفر: اوہ۔ آپا۔ کھاؤ نا، بھائی جان نے ایک لفافہ اور ایک
ڈبیا صفیہ باجی کو بھیجی تھی۔

شاکرہ: کیسی ڈبیا؟

ظفر: ارے آپا۔ بڑے خوبصورت ٹاپس تھے اس ڈبیا میں۔
تم دیکھتیں تو تمہاری رال ٹپک پڑتی۔ کھاؤ نا۔ یہ مونگ پھلیاں!

شاکرہ: حامد بھائی جان نے صفیہ باجی کو ٹاپس بھیجے تھے!

ظفر: ہاں اور صفیہ ٹاپس پہن کر آئینہ کے سامنے کھڑے ہو کر
خوب منہ بنا بنا کر گانے لگیں۔

(آئینہ کے سامنے گویا صفیہ کی نقل اتارتا جا رہا ہے) لو یہ
کھاؤ مونگ پھلیاں! ....

شاکرہ: اور جب زریں باجی وہاں پہنچی ہوں گی تب تو....

ظفر: زریں باجی کہاں پہنچی ہوں گی؟

شاکرہ: صفیہ کے ہاں گئی ہیں نا۔

ظفر: (ہنستا ہے) ارے آپا۔ زریں باجی تو قاسم صاحب کے

ساتھ وہاں لان پر بیٹھی ہوئی ہیں۔ چلو میں دکھاؤں!
(شاکرہ کا ہاتھ پکڑ کر کھڑکی کی طرف جاتا ہے۔) وہ دیکھو، اس گلاب کے پودے کے پاس، ہیں نا۔ مجھے قاسم صاحب نے دیکھا تو جناب مجھے یہ چلغوزے دئے۔ یہ اتنے سارے۔

شاکرہ: ہوں جب ہی تو مجھے مونگ پھلیاں دے رہا ہے (منہ بنا کر) لو آپا۔ مونگ پھلیاں کھاؤ۔ چلغوزے خود رکھ لئے، بلاؤ۔

ظفر: نہیں آپا۔ چلغوزے بہت مزے کے ہوتے ہیں۔ اور مہنگے بھی ہوتے ہیں!

شاکرہ: ہونہہ! چھلکے بھی تو کتنی مصیبت سے ہیں۔ مونگ پھلی کو تو یوں دبایا اور لو.... کھالیا۔ چلغوزے چھیلنے میں تو ناخن تک دکھ جاتے ہیں۔

ظفر: جب چلغوزے کھا کر دیکھو گی تب پتہ چلے گا۔

شاکرہ: اچھالا، دو چار دے تو سہی۔

ظفر: اوں ہونہہ ــــ (شاکرہ گہرے خیالات میں گم ہے) کیا سوچنے لگیں آپا؟

شاکرہ: سوچ رہی ہوں ـ آپا نسرین کو جاکر یہ بتاؤں کہ قاسم صاحب اور زرین باجی وہاں لان پر بیٹھے ہیں۔ اور چلغوزے کھا رہے ہیں۔

ظفر: تو تجھے کیا، چلغوزے مل جائیں گے۔

شاکرہ: نسرین باجی مجھے چار آنے دیں گی جناب ۔ انہوں نے مجھ سے وعدہ کیا تھا، اگر میں قاسم صاحب اور زرین باجی کو لان پر بیٹھا دیکھوں اور انہیں بتا دوں تو وہ مجھے چار آنے دیں گی۔ ظفر چار آنے کے کتنے چلغوزے آئیں گے؟

ظفر: ایک چھٹانک تو آ ہی جائیں گے۔

شاکرہ: چلو چار آنے نہیں ـــ دو آنے تو دے ہی دیں گی۔ دو آنے آپا زرین نے دے ہی دئے ہیں۔

ظفر: یہ بات ہے۔ تو میں بھی ابھی حامد بھائی جان سے چار آنے لاتا ہوں۔

شاکرہ: ہونہہ! جیسے وہ تجھے چار آنے تو دے ہی دیں گے۔

ظفر: یہ دیکھو (ایک لفافہ نکال کر دکھاتا ہے) ـ یہ ہے صفیہ باجی کا خط جب حامد بھائی جان اسے دیکھیں گے تو کیا پتہ آٹھ آنے دے دیں۔ (جانے لگتا ہے)

شاکرہ: ظفر، سن تو..... ارے .... یہ لفافہ مجھے تو دکھا۔

ظفر: تم اسے دیکھ کر کیا کرو گی۔ لو دیکھو۔

(شاکرہ لفافے کو لے کر اس میں سے خط نکالتی ہے۔ اور الٹ پلٹ کر دیکھتی ہے۔ ظفر بڑے طنز سے کہتا ہے۔)

ظفر: ہونہہ! جیسے پڑھ ہی تو لیں گی اس میں کیا لکھا ہے۔ لاؤ۔

شاکرہ: ارے ٹھیر تو سہی۔ یہ ہے الف .... الف سے آم۔ ارے یہ ہے، ب .... ہاں ... یہ بھی ب ہے... ب سے بلی ..... اور یہ ہے .... پ ... پ سے پنکھا ....

ظفر: (شاکرہ سے خط چھین کر) لاؤ .... پڑھنا تو آتا نہیں۔ آپا پڑھنا تو سیکھ لو پہلے۔

(ظفر یہ کہتا ہوا ۔ حامد کے کمرہ کی طرف جاتا ہے۔ شاکرہ معاً .... قد آدم آئینہ کے سامنے آتی ہے۔ اور بالوں کو زرین کی نقل کرکے، درست کرنے لگتی ہے۔ اور اس میں پھول کی جگہ دوالی لگانے لگتی ہے۔ وہ دوالی پھسل کر زمین پر گر پڑتی ہے۔ شاکرہ خواہ مخواہ ہنسنے لگتی ہے۔ اور پردہ آہستہ آہستہ گرتا ہے)●

گاہے گاہے بازخواں...

(عید است و نشاط و طرب و زمزمہ عام است)

سید جگر کاظمی

عید بہر حال عید ہے خواہ وہ عید الفطر ہو یا عید الضحیٰ۔ لہٰذا ارباب ذوق عید کو عیدین تصور کرتے ہوئے دونوں سے نشاط اندوز ہوں کہ ہم خرما بھی ہے اور ہم ثواب بھی۔ (ادارہ)

پشاور شہر۔ قدیم سے خوش پوش، خوش خوراک اور مشہور خطہ ہے۔ نیز اسلامی روایات اور رسومات میں پیش پیش نظر آتا ہے۔ یہاں عیدین کا بڑا اہتمام کیا جاتا۔ چاند نظر نہ آتا تو سیٹھ صاحبان روپیہ خرچ کرکے دور دور سے چاند کی مصدقہ خبریں منگواتے، اس کے علاوہ یہ شہر پیشہ ور اور دستکار شہر ہے۔ لوگ رات رات بھر بیدار رہ کے جان توڑ محنت کرتے، تاکہ ضروریات پوری ہوں۔ مائیں بچوں کے کپڑے سیتیں، مشینیں تو تھیں نہیں، لہٰذا ہاتھ سے سلائی کی جاتی۔ سازو نغمے جا رہے ہیں اور کام ہوتا جا رہا ہے۔ کوئی عورت مٹی کا گھڑا اوندھا کئے سویاں تیار کر رہی ہے، بال برابر باریک۔ خویش و اقارب سب کے ہاں بھیجنا سب سے مقدم ٹھہرا۔ اس خوشی میں محنت دوبھر نہیں معلوم ہوتی۔ کوئی بچہ رو رہا کہ کوئی درزی کے سر پر سوار، کوئی موچی کے پاس بیٹھا ہے۔ کوئی اپنے کپڑے سرہانے رکھ کر سو گیا۔ آنکھ کھلی تو کپڑے اٹھا کر دیکھ لئے۔ دستکار کہتے ہیں اللہ کرے کل چاند نہ نکلے۔ کام بہت رہ گیا ہے۔ الغرض امیر و غریب عید کا تہیہ کئے ہوئے ہیں۔ ماشاء اللہ کرکے صبح ہوئی۔ بندوقیں، قرابینیں داغیں۔ دھماکوں نے عید کا اعلان کیا۔ ڈھولکوں، نفیریوں اور سرناؤں کی آوازیں آنے لگیں۔ گھر کی مستورات اٹھیں، نماز سے فارغ ہو کر پانی گرم کرنے کے لئے چولھے پر رکھا۔ بچوں اور مردوں نے نئے کپڑے پہنے۔ نمازِ عید کی تیاری ہے۔ سبحان اللہ بچے بھی کیا زرق برق لباس، کناری، گوٹہ، طلے کا کام ایسا کہ آنکھیں چندھیا جائیں۔

ادھر شہر کے بڑے بازار — بھانہ ماڑی، رام داس بازار، ڈبگری بازار، نمک منڈی کا چوک، قصہ خوانی بازار، بازار بزازاں، جہانگیر پورہ، کوتوالی، کٹرہ ریشم گراں، بازار چڑوے کو یاں، بازار کلاں، کریم پورہ بازار وغیرہ کی دکانیں سجیں۔ کھانے پینے کی چیزیں نیز طرح طرح کے کھلونے بک رہے ہیں۔ لوگ سویاں کھا کر نماز عید پڑھنے بچوں کے لئے عیدگاہ روانہ ہوئے۔ نماز سے فارغ ہو کر لوگ دوستوں عزیزوں سے مصافحہ معانقہ، علیک سلیک کرتے، چھوٹوں کا بزرگوں سے تعارف کراتے، رومال میں انڈے، مٹھائی، بڑے، پکوڑے لئے بچوں کے واسطے طرح طرح کے کھلونے خریدتے گھر واپس آئے۔

ادھر گھروں میں، پینگیں پڑ گئیں۔ بہو بیٹیاں جھول رہی ہیں۔ آپس میں ہنسی مذاق اور چہلیں ہو رہی ہیں۔ ہر چند روپیہ پیسہ اتنا وافر نہیں، مگر صبر و قناعت بے حد ہے۔ ارزانی نے حقیقی خوشی سے دوچار کیا ہوا ہے۔ اور اشیاء خورد و نوش کے خالص و بے آمیز ہونے نے قوت حیات و افزا بخشی ہوئی تھی۔ بڑی باللحاظ اور مؤدب دنیا تھی۔ کیا مجال بہو بیٹی کے سر سے دوپٹہ سرک جائے۔ ہاں سچی ہنسی، کھیل میں ایک دوسرے کو چھیڑا جا رہا ہے۔ مگر مہذب طریقہ سے۔

خیر، پہلا دن عید کا شہر ہی میں گزرا۔ دوسرا دن چڑھا۔ یہ میلہ جہاں اب نئی آبادی ہے یعنی مکرمی بازار، وہاں لگتا تھا۔ شتنگری دروازہ سے نہر تک سڑک کے دوطرفہ بازار لگتا اور خورد و نوش کی دکانیں سجائی جاتیں۔ ایک روپے چار آنے سیر مٹھائی،

بازار قصه خوانی

پشـــاور
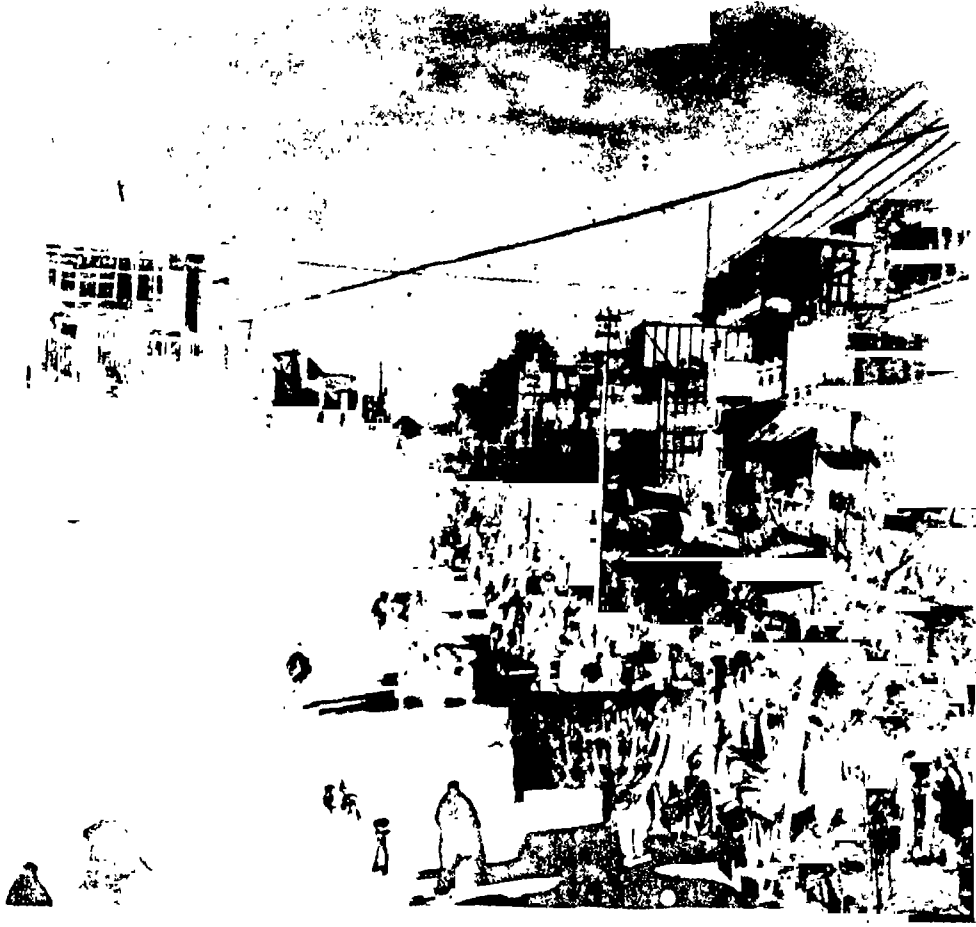
ھمارے عظیم اور قدیم شہروں کے کوچه و بازار سنگ و خشت کے تودے نہیں ھیں بلکه وہ مقامات ھیں جہاں زندگی ھر وقت تیز تیز سانس لیتی ھے ۔ وہ ھمارے قدیم فنون کے امانت‌دار بھی ھیں اور حیات و ثقافت کے آئینه‌دار بھی ۔ جن میں ماضی کی جھلکیاں اور روشن مستقبل کی دمک قدم قدم پر نظر آتی ھے ۔

چوک یادگار

"گون پھول" کے دیس

چاٹگام

سندربن (کوهستانی علاقۂ چاٹگام) میں دریائے سنگو کا طلسمی نظ

غان کی فردوس بداماں وادی ہو یا ہرے بھرے
اٹگام کے سدا بہار گھنے جنگل، تندرو دریا اور
دگی کی ہماہمی سے گونجنے والے صنعتی علاقے،
، سب ہمیں دعوت نظارہ دیتے اور اس مشترکہ
رثہ کی یاد دلاتے ہیں جو ہماری قومی یکجہتی
، سب سے بڑی اساس ہے۔

سندربن اور چاٹگام کے پہاڑی علاقوں میں
الخصوص فطرت اپنے پورے جلال و جمال کے
ساتھ نظر آتی ہے۔

چاٹگام کا پہاڑی قبیلہ، چکما

گوشت دنبہ ۴ آنے سیر، پیسے کے ایک اور دو انڈے، چھ پیسہ سیر دودھ، دو پیسہ یا آنہ سیر گنڈیریاں، ایک پیسہ کے چار کباب، پیسہ کی ایک روٹی جو آج ۲ آنے کی ہے، ۲ آنے سیر گوشت موٹا۔ ایک پیسہ میں پکوڑی یا کُلچی۔

گاؤں کے لوگ شہر میں آتے۔ اپنے عزیز اقارب کے لئے مرغیاں۔ گنے۔ گڑ کا شیرہ۔ آٹا۔ اور گڑ بنا ہوا لاتے۔ کیونکہ ان کو رات گزارنی پڑتی تھی۔ کتنے فراخ دل لوگ تھے۔ عید پر خاص کر آٹھ آٹھ دس دس روز مہمانداریاں ہوا کرتیں۔ شرفا کا لباس تھا لٹھے کا کرتہ اور شرعی پاجامہ، واسکٹ اور گلے میں رومی چغہ یا موسم کے لحاظ سے لٹھے کا بخیہ کیا ہوا فرغل، سر پر شال یا ململ کا صافہ یا پشاوری لنگی، شانہ پر سرخ بخارائی رومال، بعض کے پاس ہاتھ میں نسوار کی ڈبیہ، ہاتھ میں عصا، کسی کے شانہ پر کابلی پٹو، پیر میں پشاوری نازک جوتا۔ سڑک کے کنارے گائیں، بھینسیں ذبح ہوتیں اور دیہات کے لوگ دو دو چار چار سیر گوشت خرید کر لے جاتے۔ ایک طرف گتکا بازی ہو رہی ہے، تو دوسری طرف پہلوانوں کی کشتیاں لڑی جا رہی ہیں، کہیں خانزادے نیزہ بازی کر رہے ہیں، کسی جگہ بیٹر بازی ہو رہی ہے، مکڑی بازار کے تھانہ کے دوسری طرف ٹیلوں پر مستورات، نچلے طبقہ کی برقع اوڑھے بیٹھی سیر کر رہی ہیں۔ عزیز و اقارب کھانے پینے کی اشیاء لا لا کر دے رہے ہیں۔ حق تو یہ ہے کہ شرارت کا کسی کو خیال نہ تھا۔ آج کل کا زمیندار تو پاکستان کی برکت سے، دولت سے کھیل رہا ہے ـــ پہلے کا دیہاتی اگر لنگی نئی ہے تو جوتا پرانا۔ کرتا لٹھے کا ہے تو پاجامہ پرانا ہے۔ بچے کے سر پر صرف زری کی ٹوپی ہے تو عید ہو گئی، جوتا نیا ہے تو باقی کپڑے دھلے ہوئے۔ اور یہ پشاور کی عید صرف پشاور کی عید تھوڑی ہے۔ اب تو پشاور سے لے کر لاہور، اور لاہور سے لے کر ڈھاکہ، چاٹگام، سلہٹ تک ایک ہی مضمون ہے۔ کیونکہ اب تو جہاں دیکھئے پاکستان ہی پاکستان نظر آتا ہے۔ نہ کوئی جدا جدا، الگ تھلگ علاقے رہے نہ سرحدیں۔ بلکہ ساری حدیں ٹوٹ کر ایک ہی ملک بن گیا ہے اس لئے جو رنگ ایک جگہ ہے وہی ہر جگہ ہے۔ پشاور میں عید کے میلہ کی جو چہل پہل ہے بعینہٖ ویسی ہی لاہور، کراچی کوئٹہ، حیدرآباد اور ڈھاکہ وغیرہ کے میلوں میں ہے، عید وہی، قربانی کا جذبہ وہی، اس کا فلسفہ وہی، بنیاد وہی ـــ یعنی مذہب جو سب کا مذہب ہے اور معاشرہ، تہذیب سب ایک ہی ہیں۔ سب کے سب ایک ہی رنگ میں رنگے ہوئے۔ یہی بات ہی تو سب کو ایک بنا دیتی ہے۔ نہ کوئی پختون نہ پنجابی نہ بلوچ نہ سندھی نہ بنگالی۔ بلکہ سب کے سب پاکستانی ہی پاکستانی ـــ اپنی قومی وحدت پر فخر کناں۔ سارے کے سارے اسلام ہی کے عظیم روحانی رشتہ میں منسلک ہیں۔ اگر ہمیں اتحاد و یگانگت کا روح پرور منظر دیکھنا ہو تو اس کے لئے غالباً عیدین سے بہتر کوئی موقع نہیں۔ ایک طرف طرح طرح کی دلچسپیاں ہمارے بہت سے بھائیوں کو مشرقی پاکستان سے یہاں لے آئی ہیں اور دوسری طرف آب رواں کی باغ و بہار سرزمین، مشرقی پاکستان کی کشش بھی مغربی پاکستان کے لوگوں کو وہاں لے گئی ہے۔ اور مذہب نے انہیں ایک ہی مقام پر یکجا کر دیا ہے جو ہر کہیں عیدگاہ کی شکل میں نظر آتا ہے۔ عید کے بعد ایک دوسرے سے گلے ملنا، محبت، خلوص، یکجہتی، کا کتنا روح پرور منظر ہے۔ خدا کرے یہ اتحاد و یگانگت روز افزوں ہو اور ہمارے وطن عزیز کو بیش از بیش مضبوطی و استحکام عطا کرے ٭ (بشکریہ ریڈیو پاکستان، پشاور)

غیر طلبیدہ مضامین

کی

واپسی کے لئے

مناسب ٹکٹ روانہ کیجئے،

اور اپنا پتہ

صاف اور خوشخط لکھئے۔

(ادارہ)

"سبدِ گُل"

(ہزارہ، پھُلاں دا کھارا!)

سید غلام حسن شاہ کاظمی

ابھی تک کوئی فیصلہ کن رائے قائم نہیں کی جاسکی ہے کہ ہزارہ کا نام کیونکر پڑا۔ اسی طرح سرزمین ہزارہ کی حدود کا تعین بھی مشکل رہا۔ یہاں انگریزی تسلط ۱۸۴۹ء میں قائم ہوا تھا۔ جو آزادی ملنے تک جاری رہا۔ انگریزی عہد میں ہزارہ کی جو حدود مقرر ہوئیں، اس سے قبل کچھ مختلف تھیں۔ صرف لفظ "ہزارہ" کی بابت کئی رائیں ظاہر کی گئی ہیں۔ اسے ہزارا اور ہزارہ دونوں طرح لکھا جاتا ہے۔ کوئی اس کو یک ہزار ــــ پرند ــــ سے نسبت دیتا ہے جو ایک ہزار آوازیں مختلف سُروں میں نکال سکتا تھا۔ گو اس کا وجود محض قیاسی ہے۔ ہزارہ کو "ہزار داستاں" (بلبل) سے بھی نسبت دی گئی ہے۔ سنسکرت میں اسے سہسرا بتایا گیا ہے اور "سہاسرا" (ایک ہزار ــــ سنسکرت) کے عنوان سے بھی یاد کیا گیا ہے۔ ژند میں یہی لفظ سہاؤرا MASAWRA بمعنی یک ہزار آیا ہے۔ ضیا بخشی بدایونی نے ۱۱۷۵ھ میں اس لفظ کو بطور قافیہ برتا ہے:

عطارد را بود اوراق پارہ
دفِ زہرہ بماند از ہزارہ

ضلع کے "گزیٹیئر" میں بھی اس نام کی تحقیق پر روشنی ڈالی گئی ہے:
"پہلے ہزارہ ایک خاص علاقہ کا نام تھا مگر اب سارے ضلع کے لئے مستعمل ہے۔ اسے ارشا (ارشہ، اراشا) URASHA سے مشتق سمجھا جاتا ہے۔ اس کا نام اوراش (ORASH) ورش (RASH) بھی معلوم ہوا ہے یہ اس نام سے ملتا جلتا ہے جسے مہابھارت میں اُرآ کا کہا گیا ہے۔ بطلیموس (۱۵۰-۳۲۶ ق-م) نے اپنے جغرافیہ میں اس ضلع کے لئے OUP ؟ یا APDA لکھا ہے (ص ؟) اور اسے دریائے سندھ و جہلم کے مابین قرار دیا ہے"۔
(گزیٹیئر ضلع ہزارہ، مطبوعہ ۱۸۸۳-۸۴ء)

علامہ البیرونی نے "کتاب الہند" میں دریائے سندھ کا ذکر کرتے ہوئے اسے دریائے "ویہند" کا نام دیا ہے اور بتایا ہے کہ یہ اننگ کے پہاڑوں سے نکلتا ہے جو ترکوں کی حدود میں واقع ہیں۔ اس دریا کو اندس۔ اٹک اور اباسین کے ناموں سے بھی یاد کیا جاتا ہے۔ البیرونی کے سفر میں جو قنوج سے کشمیر تک کے حالات ملتے ہیں اس میں شرشارا، تھانیسر، جالندھر اور ہبرہان کے نام آتے ہیں جس کے بعد ادشستان (سری نگر) پہنچ جاتے ہیں۔ قیاس چاہتا ہے کہ شرشارا یا ہزارہ ہی ہے۔ البیرونی کے عہد میں مسافر ہبرہان کے قدیم راستہ سے ضرور گذرتے تھے۔ یہ ایک اہم پڑاؤ تھا اور کشمیر جانے کے لئے ادھر سے گذرنا پڑتا تھا۔ جب اکبر اعظم نے ادھر اٹک پر مشہور قلعہ بنوایا اور آبادی بڑھی تو اس ساری سرزمین کی اہمیت بڑھ گئی۔ آج کل یہ مقام معمولی جگہ ہے۔

اس تمام تفصیل سے مراد یہ ہے کہ ہزارہ کا علمی اور ادبی حوالوں سے بھی تعارف کرا دیا جائے۔ لغوی تحقیق سے بھی یہی معلوم ہوتا ہے کہ اس کو ژند کے ابتدائی تلفظ ــــ سہاؤرا ــــ (ہزارہ) سے جدا نہیں کیا جاسکتا۔ تغیرِ لہجہ کے باعث یہ ہزارا مشہور ہوا۔ بالائی ہزارہ کے بعض علاقوں میں دو ضرب الامثال بولی جاتی ہیں "ہزارا پھُلاں دا کھارا" (ہزارہ پھولوں کا ٹوکرا ہے)، دوسری مثل ہے "خدا دے گمائے پکھلی چھوڑ ہزارے آئے"۔ (خدا سے پھر جانے والے پکھلی چھوڑ کر ہزارہ آجاتے ہیں!)۔ اس بات سے یہ ظاہر ہے کہ ہزارہ سرسبز و شاداب اور معاشی خوشحالی کا مقام ہے اور لوگ ادھر آبستے ہیں۔

تاریخ یہ بھی بتاتی ہے کہ ٹیکسلا سے آگے جو حکومت قائم تھی اس کا نام اُرشا ضرور تھا جس میں مانگلی اور پکھلی شامل تھے۔

اسی طرح اگرور کا مقام ہے جہاں آثار قدیمہ کی موجودگی آج بھی ظاہر ہے۔ اُدھر ایبٹ آباد کے جنوب مشرق میں سربن نامی پہاڑ اور راجہ رسالو کے زمانہ کے غار بھی پائے جاتے ہیں۔ گڑھی حبیب اللہ کے اوپر کوٹ بھلہ اور بانہ بلوڑ کے مقامات ہیں جو دریائے کنہار کے دونوں کناروں پر واقع ہیں اور کسی وقت میں قلعہ بند شہر تھے اور ان کے آثار آج بھی دیکھے جا سکتے ہیں۔ مجھے ایک سفر کے دوران کوٹ بھلہ کے مقام پر ایک پتھر بھی دستیاب ہوا تھا جس پر چینی یا سنسکرت رسم الخط نظر آتا تھا، مگر میں اس تحریر کو حل نہ کر سکا۔ غرض ان تمام اطراف میں ہمارے علاقہ کی قدیم تہذیب کے آثار اور صنادید کی موجودگی ایک دلچسپ و اہم بات ہے جو محققین کی نظر سے پوشیدہ نہیں ہوں گی۔

جیسا کہ عرض کر چکا ہوں ہزارہ کے کئی نام مشہور رہے جن میں یہ زیادہ مشہور ہیں: پکھہ ہزارہ، گوجر ہزارہ، تخت ہزارہ، پنج کٹھ ہزارہ، میدان ہزارہ، ہری پور ہزارہ۔ عام طور پر خیال کیا جاتا ہے کہ پکھہ دراصل پچھ ہی ہے۔ اس کا چینی تلفظ یوچی ہے سابق پنجاب کے اضلاع، گجرات، شاہپور اور جہلم میں پچھ قبیلہ کے افراد بکثرت آباد ہیں۔ معلوم ہوتا ہے کہ یہ لوگ کسی وقت میں یہاں حکمراں رہے تھے۔ اس کے بعد ہجرت کر کے دور دور پہنچ گئے۔ تخت ہزارہ اور میدان ہزارہ ناموں سے اس کے ارتفاع کی صفت کا اظہار ہے۔ ہری پور ہزارہ کا نام گورنر سردار ہری سنگھ نلوہ کے نام پر پڑا۔

لفظ ہزارہ کی تحقیق کے سلسلہ میں یہاں یہ بات بھی ظاہر کر دینی مناسب ہے کہ یہ نام بہت جگہ ملتا ہے مثلاً افغانستان میں اس نام کی ایک قوم آباد ہے اور جہاں یہ لوگ رہتے ہیں اسے "ہزارہ جات" کہتے ہیں۔ گجرات کی تحصیل میں ایک گاؤں بھی ہزارہ نام کا موجود ہے۔ تخت ہزارہ نام کا بھی ایک اور گاؤں سرگودھا کے ضلع میں واقع ہے۔ رواج یہ تھا کہ ہزارہ نام کے قبائل جہاں بستے تھے اپنی بستی کو ملتا جلتا نام دیتے تھے۔ اگر تفصیل میں جاؤں تو سابق پنجاب کے اکثر اضلاع میں یہ قبیلہ آباد ملے گا۔

اس سرزمین کی قدیم سلطنت ارشا کے نام سے معروف ہے اور یہ بالائی ہزارہ (وغیرہ) کے علاقوں کو محیط تھی یہیں ایبٹ آباد ہے جو وسعت میں کہیں بڑھ چکا ہے۔ غرض یہ پورا علاقہ تاریخ و تہذیب کا گہوارہ رہا ہے اور اس عہد میں بھی اس سرزمین سے بہت سے ابطالِ تاریخ گر پیدا ہو چکے ہیں جن کے وطن پر ور کارنامے آج بھی ہمارے سامنے موجود ہیں۔

تاریخی و ثقافتی پس منظر پیش کرنے کے بعد ہزارہ اور ادبیات کے موضوع کو بھی چھیڑنا دلچسپی کا باعث ہوگا اس لئے جستہ جستہ اس پر بھی چند سطور یہاں پیش ہیں۔ ہزارہ کا ذکر فارسی، پنجابی اور اردو میں برابر ملتا ہے۔

ہیر و رانجھا کا قصہ فارسی میں لکھا گیا تو اسے "افسانۂ دلپذیر" کا عنوان دیا گیا۔ یہ سعید سعیدی کا لکھا ہوا ہے (عہد شاہجہان ۱۰۳۷ھ/۱۶۲۸ء تا ۱۰۶۸ھ/۱۶۵۸ء)۔ رانجھا کا تعارف کراتے ہوئے ہزارہ کا ذکر اس طرح زبان پر آیا ہے:

مشہور زمانہ رانجھ نام است
در دہر خانہ رانجھ نام است
دیدم پدرش مقدم دہر
مشہور جہاں معلم دہر
نامش موجو میانِ مردم
منظور قبیلہ جانِ مردم
اصل و نسبش بہ بیں ہزارا
کردم منِ خستہ آشکارا

"پنجابی قصے فارسی زبان میں" کے مصنف کی رائے ہے کہ موجو کو اجی بھی کہتے ہیں اور یہ کہ تخت ہزارہ ضلع سرگودھا میں واقع ہے۔

ہیر و رانجھا کا قصہ بطرز مثنوی محمد مراد لائق نے بھی لکھا ہے (۱۰۹۶ھ)۔ اس سے معلوم ہوتا ہے کہ ہیر علاقہ جھنگ سیال کی رہنے والی تھی اور اس کے باپ کا نام چوچک سیال تھا۔ یہ لڑکی جب جوان ہوئی تو عشق کا قصہ شروع ہوا۔ اس زمانہ ہی میں تخت ہزارہ میں ایک رئیس حکمران تھا جس کے آٹھ بیٹے تھے، مگر وہ سب سے چھوٹے بیٹے کو زیادہ چاہتا تھا۔ قبیلہ کے نام پر اس کا نام بھی رانجھا مشہور ہو گیا۔ اسے ماہی اور ڈھیدو کے ناموں سے بھی پکارا جانے لگا۔

حکیم چناہی نے ۱۱۱۰ھ میں قصہ "ہیر و ماہی" تالیف کیا۔

انہوں نے بھی ماہی رانجھا کو اپنے وطن ہزارہ میں دکھایا ہے جہاں وہ ہیر سے رخصت ہونے کے بعد پہنچا، اور بخار میں مبتلا ہو کر مر گیا۔ ان کے قصے میں جب رانجھا سے دریافت حال کیا جاتا ہے تو وہاں بھی ہزارہ کا تعارف موجود ہے:

گفتا کہ مرا وطن ہزارا ست
ایں بلبل در چمن ہزارا ست
رانجھا نسب است و ماہیم نام
نزدیک چناب جائے آرام

فقیر اللہ آفریں نے بھی قصہ ہیر و رانجھا لکھا ہے (۱۱۵۴ھ)۔ اور اس میں بھی ہزارہ کا ذکر موجود ہے:

کنوں گل زمین ہزارہ لقب
کہ آنجا کند شبنمے فیض رب
زرانجھن بود مرقدے یادگار
زیارتگہ خاص و عام دیار
چنیں ہیر را قصۂ جھنگ نام
گرامی مزار یست با احترام

منشی سندر داس آرام نے بھی قصہ ہیر و رانجھا بزبانِ فارسی تحریر کیا (۱۱۷۱ھ)۔ یہ سید وارث شاہ کے ہمعصر تھے۔ انہوں نے بھی بتایا ہے کہ رانجھا تخت ہزارہ کے ایک بارونق شہر ہزارہ میں پیدا ہوا۔ اس کے باپ کا نام معز الدین تھا جو ہزارہ کا رئیس تھا۔ اس لڑکے کے علاوہ اس کے تین اور بھی بیٹے تھے۔ ہیر جھنگ سیال کے مُسلم نامی ایک سردار کے ہاں متولد ہوئی۔

ان ادبی حوالوں سے یہ تو معلوم ہوتا ہے کہ ہزارہ اور تخت ہزارہ مشہور مقامات تھے مگر خاص ضلع ہزارہ کی توضیح حتمی طور پر نہیں ہوتی گو بعض مقامات پر ضلع تخت ہزارہ اور شہر ہزارہ کا نام آنے سے کچھ رہنمائی ضرور ملتی ہے۔

بعض تاریخی حوالوں میں بھی اس مقام کی صراحت ملتی ہے۔ مرزا اعظم بیگ اکسٹرا اسسٹنٹ کمشنر، بندوبست، ہزارہ نے جو تاریخ ہزارہ ۱۸۷۴ء میں لکھی تھی اس کا ایک جزو یہاں ملخصاً پیش کیا جاتا ہے۔" ہزارہ، لاہور سے ۲۳۲ میل دور بجانب شمال دوآبہ سندھ ساگر (مابین دریائے سندھ و جہلم) میں واقع ہے۔

اس ضلع کا بڑا شہر ہری پور ہے۔ اسے سردار ہری سنگھ نلوہ نے میدان ہزارہ میں آباد کرایا تھا۔ یہی ضلع کا دار الحکومت تھا۔ انگریزی عہد کے ابتدائی دور میں بھی یہی صدر مقام تھا۔ اس لئے ہی یہ مقام ہزارہ معروف ہوا۔ ۱۸۵۷ء (۱۲۷۳ھ) میں دھمتوڑ کو چھاؤنی کے لئے انتخاب کیا گیا کیونکہ یہ ضلع کے وسط میں واقع ہے۔ اس جگہ کو میجر جیمس ایبٹ نے یوں بھی پسند کیا تھا کہ یہاں کی آب و ہوا سرد اور معتدل ہے۔ انہی کے نام پر ایبٹ آباد کی بنیاد رکھی گئی۔ ضلع کی عدالتیں یہیں ہیں، ہری پور شمال مشرق میں ۲۳ میل کے فاصلہ پر ہے، مگر ضلع کا نام بدستور ہزارہ ہی رہا۔

معتبر روایات سے اس ضلع کی وجہ تسمیہ یہ بھی معلوم ہوئی کہ ۱۳۹۸ء (۸۰۱ھ) میں امیر تیمور یہاں پہنچا اور ترکوں کا ایک قبیلہ قارلغ ہری پور کے گرد و نواح میں بس گیا اور ہزارہ پر قابض ہو گیا۔ ان کے نام پر یہ مقام "میدان ہزارہ قارلغ" بھی مشہور ہے۔ بلکہ ۱۸۶۸ء تک کے کاغذات بندوبست میں یہی نام درج ہوتا رہا۔ مراد وہ میدان جہاں ترکوں کا یہ قبیلہ آباد تھا۔ ترکوں کے بقیہ قبیلے پکھلی میں آباد تھے۔ شہنشاہ جہانگیر کے وقت تک یہ قبائل یہاں پائے جاتے تھے۔ اب بھی ان کی اولاد موضع گمیر وال (گیروآل) میں آباد ہے۔ ایک دفعہ جہانگیر کشمیر جاتے ہوئے یہاں سے گزرا تو اس قبیلے کے سردار بھی پیش ہوئے تھے اور انہوں نے اپنے قبیلہ کا نام قارلغ بتایا تھا۔

یہ علاقہ ۱۲۰ میل لمبا اور ۴۰ میل چوڑا ہے۔ شمال و مشرق میں کشمیر، جنوب میں راولپنڈی اور کسی قدر شمال و مغرب میں پشاور ہے۔ بقیہ حصہ علاقۂ غیر میں بجانب غرب و شمال واقع ہے۔ اس کی تین تحصیلیں ہیں مانسہرہ، ایبٹ آباد اور ہری پور۔

ضلع ہزارہ کی تاریخ اور جغرافیہ پر نظر ڈالتے ہوئے مولانا سید عبد الجبار شاہ صاحب ستھانوی (مرحوم) اپنی تصنیف بنی اسرائیل میں ایک جگہ لکھتے ہیں "پھر افغانستان سے یکے بعد دیگرے قومیں دوسری افغان قوموں پر حملہ آور ہو کر، ان کو ملک بدر کر کے، قابض ہوتی رہیں۔ اکثر قوموں کا بقیہ ضلع ہزارہ میں اب تک پایا جاتا ہے کہ وہاں ترین ہیں۔ دلازاک ہیں، سلیمانی ہیں ... یوسف زئی ہیں، کاکڑ ہیں۔ جدون ہیں۔ صواتی ہیں۔ ترک ہیں۔ جیسا جیسا پیچھے آنے والی قومیں آ کر ملک پہلوں سے لے کر ان کو ہندوستان میں دھکیلتی رہیں۔

اُن سب کا بقیہ نمونہ ضلع ہزآرہ میں رہ گیا ہے۔ وجہ تسمیہ ضلع ہزآرہ کی ہزارہا اقوام کا مجموعہ ہونا بتلایا جاتا ہے"۔

مولانا نے لفظ ہزآرہ کی بابت جس عوامی شہرت کا ذکر کیا ہے وہ درست نہیں معلوم ہوتی کیونکہ صرف ۲۳ قبائل کو "ہزارہا اقوام سے" تعبیر نہیں کیا جا سکتا اور یہ قبائل بھی جدا جدا اقوام نہیں بلکہ چار بڑی قوموں کے ہی برگ و بار ہیں۔

غرض تاریخ اور ادب میں ہزآرہ کی طرف اشارہ جگہ جگہ ملتا ہے اور ہم اس بات کا بخوبی اندازہ لگا سکتے ہیں کہ یہ مقام نہ صرف اپنے قدرتی مناظر کی دلکشی، آب و ہوا کی طرفگی اور صحت افزا ماحول کے اعتبار سے نہایت نفیس جگہ ہے بلکہ تاریخ کا گہوارہ ہونے اور ثقافتی دھاروں کا سنگم ہونے کے اعتبار سے بھی یہ جگہ ایک ممتاز اہمیت کی مالک رہی ہے اور اب جبکہ اس نواح میں ہمارا نیا دارالحکومت — اسلام آباد — بن رہا ہے اس کی تاریخی اہمیت میں مزید اضافہ ہوگیا ہے۔ تاریخ اپنا تسلسل منقطع نہیں ہونے دیتی — اگر کچھ کڑیاں کسی وقت محو و معدوم بھی ہو جائیں تو آنے والا دور انہیں پھر مربوط و منسلک کر دیتا ہے اور اس طرح انسان کی تاریخ کا مطالعہ مرتب و مکمل ہوتا چلا جاتا ہے۔ اس لئے ہمیں یقین کامل ہے کہ اب جبکہ ہمارے نئے دارالحکومت — اسلام آباد — کی تعمیر یہاں شروع ہو چکی ہے مستقبل میں بھی یہ سرزمین اپنی قدیم عظمتُ سربلندی کی روایات کو برقرار رکھے گی۔

"کرن پھول" کے دیس میں۔ بقیہ صفحہ ۳۶

کاکس بازار جانے والی سڑک بھی ملی جو بارش کے سبب ناقابل گزر تھی۔ کاکس بازار ساحل سمندر پر ایک خوبصورت سا شہر ہے۔ لکڑی کے مکانات، ناریل کے درختوں کے جھرمٹ پگوڈا، مندر، پہاڑیوں پر اسٹوپ — ترقی یافتہ شہروں سے الگ تھلگ — ایک خاموش اور پُرسکون بستی جہاں نہ شہروں کی گہما گہمی ہے اور نہ تصنع اور بناوٹ سے ملوث زندگی۔ شہروں اور ہنگاموں سے بیزار انسان اکثر راحت اور آسودگی حاصل کرنے یہاں آتے ہیں اور رات کے سناٹے میں سمندر، آسمان اور ساحل میں امتیاز مشکل ہو جاتا ہے۔ طوفانی لہروں کے مدھر راگ سن کر دنیا و ما فیہا کے غموں سے لاتعلق ہو کر اس کے سارے دکھوں اور غموں کو بھول جاتے ہیں۔ اس خوابناک بستی میں آفاقی سناٹا بھی ہے اور متلاطم اور پُرشور سمندر کا قدرتی حصار بھی۔ سمندر کی بیکراں وسعتوں کو دیکھ کر انسان اکثر یوں محسوس کرتا ہے جیسے خود وہ معدوم ہو کر رہ گیا ہو۔

میں ابھی کاکس بازار کی پہنائیوں میں گم تھا کہ ایک خوبصورت پہاڑی کے دامن میں پہنچ کر ہماری سٹیشن ویگن یکلخت رک گئی۔ ذاکر صاحب کہہ رہے تھے: کتنی حسین جگہ ہے یہ! یہاں فوٹو ہو جائے۔ "واہ وا! سبحان اللہ!"۔ یہ آواز مولانا خیری کی تھی۔ اور پھر ہم سب ایک ایک کر کے ویگن سے نیچے اتر آئے۔ پُرسکوت ماحول، ہر سمت ہریالی۔ ایک طرف دریا، دوسری طرف اونچی نیچی پہاڑیاں اور پہاڑیوں پر بلند قامت درختوں کا پھیلاؤ۔ ساری فضا سحر زدہ سی لگ رہی تھی۔ سعید صاحب نے تصویری نقطۂ نظر سے ایک موزوں جگہ ہمیں کھڑا کیا اور ایک "کلک" کے ساتھ پہلے کی طرح اس مقام کو بھی جاوداں بنا دیا۔

کچھ ہی دیر بعد ہم چندر گونا کے ڈائرکٹرس بنگلے پر پہنچ گئے جہاں کرنل صاحب ہمارے منتظر ہی تھے۔ کرنل صاحب نے چائے سے ہماری تواضع کی۔ چائے پی کر ہم ان کے ہمراہ کرنا فلی پیپر مل دیکھنے کے لئے روانہ ہو گئے۔ وہاں ہم نے اپنے ملک کی تیز رفتار ترقی کا پہیہ جس طرح چلتے ہوئے دیکھا، اس کا حال میں اگلی صحبت میں بیان کروں گا۔

★

★

بکھری ہوئی شبیہیں

سحر انصاری

یہ گل فشاں بہاریں
یہ سروِ کے درختوں کی دل ربا قطاریں
یہ جوئے آبِ رنگیں
یہ احمریں دریچے، یہ آفتابِ رنگیں
رنگوں کی آبشاریں
مخمل، حریر و دیبا جن کے بدن نکھاریں
گوہر فشاں ستارے
مستی میں رقص کرتے مدہوش ماہ پارے
یہ رم گزیدہ آہو
یہ دشتِ آرزو کے بے اعتبار دلجو
یہ فکر و فن کے پیکر
یہ ذہن و روح و دل کے سطوت پناہ زیور
نازش ہیں کفر و دیں کی
بکھری ہوئی شبیہیں اک حسنِ دل نشیں کی
اس دورِ نارسی میں
اے دل! یہ چاہتا ہوں اک بار زندگی میں
اک بُت نیا بنا لوں
اس حسنِ منتشر کو وجدان میں سجا لوں

ابرِ رواں

عرفانہ عزیز

وہ سراپائے جمالِ پُر وقار
صانعِ فطرت کا یکتا شاہکار
آج بھی جس کا ہے تجھ کو انتظار

حاصلِ نقش و نگارِ کائنات
آبروئے جلوہ ہائے شش جہات
مُطربِ سازِ ازل سوزِ حیات

ایک جلوہ شاہدِ مستور کا
اِک شگوفہ شاخسارِ طور کا
ایک ساغر بادۂ پُر نور کا

عفتِ قلب و نظر کا پاسباں
بخش کر مجھ کو شعورِ دو جہاں
چل دیا جیسے کوئی ابرِ رواں

زندگی میری ابھی معصوم ہے
غنچۂ خاموش کا مفہوم ہے
آرزو جس کی ترا مقسوم ہے

چھیڑ کر میری اُمنگوں کے رباب
چُھپ گیا جانے کہاں وہ ماہتاب
دل ہوا جس سے سراپا اضطراب

اک طلسمِ شوخیٔ تحریر ہے
میرے خوابِ شوق کی تعبیر ہے
اک مصوّر کی سجل تصویر ہے

ماورائے حسنِ صبح و شام ہے
یاد جس کی ساغرِ الہام ہے
میرے افسانے میں جس کا نام ہے

اے حریمِ دل بتا وہ کون ہے؟

غزل

رضی ترمذی

کیا ہوا فسانۂ شوقِ ناکام
کوئی آغاز، نہ کوئی انجام

ایک لمحہ سا کہیں چمکا تھا
جس کا حاصل ہے یہ اندوہِ دوام

خاک ہے دل مگر اس پر اب تک
تیرا نقشِ کفِ پا ہے الزام

آرزو روزِ ازل سے رسوا
دل ہمیشہ سے بچارا بدنام

تم ہمیشہ سے چمن کے مالک
ہم ازل سے وہی مرغِ تہِ دام

گل ہوئے جاتے ہیں آنکھوں کے چراغ
اب سجاتے رہو اپنے در و بام

برگِ آوارہ سے پھرتے رہیے
مثلِ شبنم کہیں کیجے نہ قیام

اس سے زنجیر و سلاسل اچھے
اک قدم اور ہزاروں احکام

رفتگاں یاد بہت آتے ہیں
اب ٹھہر جا کہیں دورِ ایام

غمِ دوراں ہی غنیمت جانو
دلِ مرحوم چلو غم تو ہے نام

دل نے کیا راز چھپا رکھا ہے
سارے عالم میں بپا ہے کہرام

تمہید الاسلام سید

منزلِ شام و سحر دیکھتے ہیں
ہم تری راہگذر دیکھتے ہیں

یہ کڑی دھوپ یہ تپتے صحرا
آگ تا حدِ نظر دیکھتے ہیں

صحنِ زنداں کے دریچے کے قریب
چند بکھرے ہوئے پر دیکھتے ہیں

بھیگتی رات یہ تاروں کا غبار
چاند کا رختِ سفر دیکھتے ہیں

زرد مٹی میں کھل اٹھے ہیں گلاب
شاخ در شاخ شرر دیکھتے ہیں

زخم کھلتے ہیں تو شیدائے بہار
اک نیا بابِ ہنر دیکھتے ہیں

ٹوٹتے پتے سلگتے ہوئے پیڑ
شعلے اڑتے ہیں جدھر دیکھتے ہیں

چین اور اسلام

رشید نیاز

چین ایشیا کی ایک عظیم اور نہایت قدیم سلطنت ہے جو اور باتوں کے علاوہ اپنی تاریخی ایجادات — کاغذ اور بارود — کے لیے بھی مشہور ہے۔ اس میں کوئی شک نہیں کہ اہلِ چین اپنی دستکاری، ہنرمندی اور ایجاد پسندی کے باعث ہمیشہ سے ہی مشہور رہے ہیں۔ خود ہماری زبان میں "نگارخانۂ چین" اور "ارژنگِ چین" کے الفاظ ان کی نقش گری اور نفاست کاری کی طرف ہمارا ذہن منتقل کرتے ہیں۔ چین یوں بھی ہمارے ذہن میں رہتا ہے کہ خود حضور انورؐ کی زبانِ مبارک پر اس کا نام آیا تھا جب انہوں نے امت کو یہ ہدایت کی تھی کہ علم طلب کرو اگرچہ وہ چین ہی میں کیوں نہ ہو۔ چنانچہ ارشادِ نبویؐ کی تعمیل میں مسلمان یہاں آنے شروع ہوئے اور سب سے پہلے حضرت ابو وقاصؓ اپنے قافلہ کے ساتھ یہاں پہنچے تھے۔ اس واقعہ کی تفصیل آگے پیش کی جائے گی۔

قدیم مخطوطات اور دستاویزوں سے یہ علم بھی ہوتا ہے کہ یہاں نسلِ انسانی کا آغاز حضرت نوحؑ اور ان کے صاحبزادے حضرت یافث سے ہوا، جن کی اولاد یہاں کثرت سے پھیلی۔ حضرت نوحؑ کے ایک پوتے کا نام ہی چین تھا اور اس وجہ سے یہ سرزمین ان کے نام پر مشہور ہو گئی۔ مشہور مؤرخ محمد قاسم استرآبادی کا بیان ہے:

"فرزندانِ یافث بموجب حکم پدری بحدود مشرق شمال رفتہ بنا نہاد در آں ملک او را فرزندان پیدا آمدند۔ ارشد اولاد "ترک" نام داشت و جمیع ترکان روزگار از "مغل" و "اوزبک" و "چغتائی" و "ترکمانان" ایران از نسلِ اوست۔ و پسر دوم یافث چین نام داشت کہ ملک چین بدو موسوم است۔" (تاریخِ فرشتہ" جلد ا، صفحہ ا، سطر ۵)۔ اسی بات کی تائید حافظ ابن کثیر نے بھی فرمائی ہے۔ حضرت محمود خلقشندی بھی یہی خیال ظاہر کرتے ہیں، مگر بعض لوگوں نے اس بات کو صحیح تسلیم نہیں کیا۔ اور حضرت چین تو کیا حضرت یافث کو بھی نسلِ نوحؑ سے نہیں مانتے۔ مگر اس باب میں توراۃ کو نظر انداز کرنا بھی مشکل ہے جس میں واضح طور پر حضرت یافث کو حضرتِ نوحؑ کا بیٹا قرار دیا گیا ہے۔ ملاحظہ ہو:۔

"نوح ۵۰۰ برس کا تھا جب اس سے حام، سام اور یافث تھے۔ یہی تینوں نوحؑ کے بیٹے تھے اور انہیں سے نسلِ انسانی زمین پر پھیلی" (توراۃ آیت ۱۸ باب ۹ صفحہ ۱۱)۔

ان حوالوں کے بعد یہ ماننے میں تامل نہیں ہونا چاہئے کہ چین کا نام حضرت نوحؑ کے پوتے کی وجہ سے ہی پڑا اور یہ کہ وہاں نسلِ آدم کے بسنے اور بڑھنے کا سلسلہ ان ہی کی وجہ سے شروع ہوا۔ پھر یہ سلسلہ ہمارے وقت تک پہنچتا ہے تو ہم دیکھتے ہیں کہ حضرت ابو وقاص، صحابیِ رسولؐ حضرت عثمان رضؓ کے زمانہ میں اپنے قافلے کے ساتھ یہاں پہنچے۔ یہ قافلہ ایک وفد کی شکل میں تھا جو اس وقت کے فغفورِ چین کے دربار میں اسلام کا پیغام لے کر گیا۔ اس بات کی تصدیق کے لئے مشہور چینی تاریخ "ہوئی ہوئی ان والہ" کا حوالہ کافی ہے — اہلِ چین حضرت ابو وقاصؓ کو پہلا عرب مسلمان تسلیم کرتے ہیں۔ اس زمانہ میں شہنشاہ "یون ہوئی" حکمران تھا (۶۵۱ء)۔ حضرت ابو وقاصؓ کا انتقال بھی اسی سرزمین پر ہوا اور ان کا مزارِ مبارک شہرِ کنٹین میں موجود ہے اور اس وقت مرجعِ خلائق ہے۔

پچھلے دنوں جب پاکستان اور چین کا سرحدی معاہدہ ہوا اور اس کی توثیق کے لئے ہمارے وزیرِ خارجہ جناب ذوالفقار علی بھٹو چین گئے تو ان صحابیِ رسولؐ کے مزارِ مبارک پر بھی پہنچے اور فاتحہ خوانی کا شرف حاصل کیا۔ اس پر ایک کتبہ نصب ہے جو ۶۵۲ء کی تاریخ ظاہر کرتا ہے جو بادشاہ یون ہوئی کا تیسرا سال جلوس تھا۔

(بحوالہ ترجمہ تاریخ "ہوئی ہوئی ان والہ" صفحہ ۴۲)۔

حضرت ابو وقاصؓ کے ساتھ جو عرب مسلمان چین میں داخل ہوئے انہوں نے
اسلام کا پیغام دُور دُور پہنچایا اور ہزاروں کیا لاکھوں انسان اس دینِ حق
کی روشنی سے فیضیاب ہوئے۔ اس وقت مسلمانوں کی آمد کا حال مشہور
چینی مؤرخ "چاؤ جوخوی" اپنے ایک مکتوب میں لکھتا ہے: "کینٹن میں
اجنبی لوگ بہت ہیں۔ ان کے کھانے بھی وہی ہیں جو ہم بھی کھاتے ہیں۔
لیکن سؤر کا گوشت ان کے نزدیک سخت ممنوع ہے"۔ کتاب
THE STORIES OF NANG HAI میں مرقوم ہے کہ کینٹن میں
عربوں نے ایک مینار تعمیر کیا تھا جس کا نام "دی سینگ" (مینار یادگار نبیؐ)
رکھا گیا تھا۔ اس کی بلندی ۱۶۰ فٹ ہے ہر صبح وہاں سے اذان کی آواز بلند
ہوتی ہے۔ اس میں نعرے لگائے جاتے ہیں اور اس مینارہ کے نیچے
ان لوگوں کی عبادت گاہ ہے"۔ ایک دوسری کتاب "تاریخ یو کان"
کے مؤلف نے بھی چینی مسلمانوں کی بابت لکھا ہے کہ "خان یونگ
میں دریائی مسافروں نے آکر سکونت اختیار کی ہے۔ عبادت کے لئے
منہ ہاتھ دھوتے ہیں اور ایک دوسرے کے ساتھ صف بہ صف کھڑے
ہو کر عبادت کرتے ہیں۔ ان کا اپنا الگ ہی عبادت خانہ ہے مگر
یہ بات معلوم ہے کہ اس میں کوئی ترشا ہوا بُت یا مورت وغیرہ نہیں
ہوتی بلکہ وہ آیا آیا (اللہ! اللہ!) پکارتے ہیں۔ معلوم نہیں یہ
کیا ہے۔ عبادت خانے میں لمبے لمبے کتبے بھی ہیں جن کی زبان عجیب
ہے۔ جب عبادت کرتے ہیں تو ایک ہی آواز ملا کر نکالتے ہیں اور ایک
طرف اپنا رخ رکھتے ہیں۔ اس سے ہمارے دلوں پر ان کی ہیبت طاری
ہو جاتی ہے"۔ ایک اور تاریخی حوالہ کتاب "ٹائی پینگ" میں ملتا ہے جو
۹۷۶ء میں لکھی گئی تھی۔ "جس وقت ٹیانگ زین کونگ کے لشکر
نے یانگ چاؤ میں بغاوت کر دی۔ اس وقت جتنے آدمی ہلاک ہوئے
ان میں سے کئی ہزار مسلمان تھے"۔ اسی سے اندازہ ہو سکتا ہے کہ
جب اس چھوٹے سے شہر میں مسلمانوں کی اتنی کثیر تعداد تھی تو سارے
چین میں ان کی آبادی کس قدر ہوگی۔

چین کے حکمران خاندان ٹانگ نے بیرونی مسلمان سلطنتوں
سے بڑے اچھے تعلقات قائم کر لئے تھے اس کی ایک بڑی وجہ یہ
تھی کہ خود دربار چین میں مسلمان مشیر بڑی کثرت سے تھے۔ ان کی
وجہ سے ہی خارجہ پالیسی ایسی بنتی تھی کہ مسلمان سلطنتوں کے ساتھ
خوشگوار تعلقات برابر قائم رہتے اور یہ باہمی مراسم اخلاق اتنے
بڑھے کہ اندرونی بغاوتیں دبانے کے لئے مسلمان حکمرانوں سے مدد
لی جاتی تھی۔ چنانچہ خاندان ٹانگ کے بادشاہ، جدینگ یونگ کے دوسرے
سال جلوس میں دربار کے ایک مسلمان سپہ سالار "مستیجی"، کو باہر کے مسلم
حکمرانوں سے مدد مانگنے کے لئے بھیجا گیا۔ درخواست کا مضمون ظاہر
کرتا ہے: "ممالک مغرب میں مسلمان سب سے زیادہ طاقتور ہیں۔
ان کی سلطنت بحیرۂ روم سے کاشغر تک پھیلی ہوئی ہے۔ دنیا کے
اکثر حصے ان کے قبضے میں ہیں۔ ہمارے ملک میں بغاوت ہو رہی ہے
جنہیں فرو کرنے کے لئے ہمارے پاس لشکر بہت کم ہے۔ ہم مسلمانوں
سے مدد کی توقع رکھتے ہیں" (بحوالہ شاہی تذکرۂ چین")۔

ٹانگ بادشاہ کے عہد میں ایک مسلمان کو جس کا نام ضیان شینگ
تھا، چنشی (ڈاکٹر) کا خطاب دیا گیا تھا۔ ۹۲۳ء میں اور دو عالم جو
مسلمان تھے ملک چین میں بڑی شہرت کے مالک ہوئے۔ ایک کا نام تھا،
لی شیلانگ، اسے آئی ٹینی بھی کہتے ہیں۔ یہ اپنے وقت کا مشہور اور جلیل القدر
حکیم تھا دوسرا مسلمان دانشور "ہوکونگ یون" تھا جو بڑا زبردست شاعر
تھا۔ غرض بے شمار تاریخی حوالوں سے یہ بات ثابت ہے کہ ٹانگ
اور سونگ بادشاہانِ چین کے زمانوں میں اسلامی سلطنتوں کے ساتھ
اس ملک کے بڑے اچھے دوستانہ تعلقات قائم رہے۔ مسلمان اپنے
ملک کے بڑے وفادار تھے اور اسلام کی تبلیغ کے ساتھ ساتھ خدمت
وطن میں بھی دل و جان سے شریک رہتے تھے۔ مسلمانوں نے اس ملک
میں اس قدر عزت حاصل کی اور اسلام کا پیغام ایسا عالمگیر ہوتا
چلا گیا کہ ۱۹۲۴ء تک ان کی تعداد ایک کروڑ سے بھی متجاوز ہو گئی۔

جس وقت ملک چین میں سونگ بادشاہوں کا زمانہ آیا تو
مسلمانوں اور چینیوں کے تعلقات اور بھی مضبوط ہو گئے، اور
بادشاہ سونگ کے ساتویں سال جلوس (۱۱۳۶ء) میں ایک مالدار
عرب تاجر ابو علی، کینٹن میں آکر آباد ہوئے اور کینٹن کے ایک
تحصیلدار، چن بلا، نے اپنی حقیقی بہن کا رشتہ بھی ان سے کر دیا اور
یہ کوئی اکیلی مثال نہ تھی بلکہ مسلمانوں کے ساتھ ازدواجی تعلقات
برابر بڑھتے رہے۔

عہد یونگ میں کوبلے خاندان کو خاص شہرت ملی اور
مسلمانوں کا اثر و رسوخ بڑھا۔ تولی خان، چنگیز خان کا پوتا اور
ہلاکو خان کا بھائی تھا، اس تولی خان کا ایک لڑکا تھا جس کا نام

کوبلے خان تھا اور وہ چین پر ۳۵ سال تک بڑی شان و شوکت کے ساتھ حکمراں رہا۔ (وفات ۶۹۳ھ) اس کے عہد میں سید اجل بخاری کا خاندان وزارت کے عہدہ پر فائز تھا۔ ان بزرگ کے طفیل ہی کوبلے خان کا پوتا "آئندہ سلطان" وائی فتاح مع اپنی ڈیڑھ لاکھ فوج کے مسلمان ہوگیا اور تقریباً سارے چینی ترکستان میں اسلام پھیل گیا۔ کوبلے خان کے بعد اس کا پوتا انجائی تو خان تخت چین پر جلوہ آرا ہوا جس کے اکثر امراء مسلمان تھے۔ اسی کے عہد میں وزیر رشید الدین فضل اللہ نے فارسی زبان میں اپنی مشہور تاریخ "جامع التواریخ" مرتب کی۔ ان تمام سرگرمیوں سے پتہ چلتا ہے کہ مسلمان سیاسی اور سماجی لحاظ سے ترقی کی بڑی منزلوں تک پہنچ گئے تھے جس کا ایک ثبوت یہ بھی ہے کہ تقریباً ایک سو سے زائد مسلمان چین کی مرکزی حکومت میں بڑے بڑے منصبوں پر فائز تھے اور دانش و فرہنگ میں بھی ان کا ایک ممتاز مقام تھا چنانچہ اس دور کے عظیم مسلمان شاعر "ینگ فونیا لگ" کا دیوان آج تک چینی زبان میں موجود ہے اور شوق سے پڑھا جاتا ہے۔ مسلمان سیاست و ادب کے ساتھ فن تعمیر کے بھی دلدادہ تھے اور انہوں نے کئی اہم یادگار عمارات بنوائیں۔ ان تعمیرات میں سب سے ممتاز بینا خود شہر پیکن ہے جس کا بانی "بختیار" تھا (ملاحظہ ہو "جوامع التواریخ" رشید الدین فضل اللہ)

اس سلسلہ میں یہ بھی مناسب معلوم ہوتا ہے کہ چینی زبان میں اسلام اور مسلمان کے الفاظ کی بھی تحقیق کی جائے۔ یہ دونوں نام چینی زبان کے ہر دور میں مختلف رہے ہیں مگر مطلب ایک ہی رہا ہے۔ ان الفاظ کی کتابت میں بھی فرق پایا جاتا ہے اور اس کا صحیح تعین کبھی نہیں ہوا۔ اس کا نتیجہ یہ ہے کہ چینی زبان میں اسلام اور مسلمان کے طرح طرح کے تلفظ و املا نظر آتے ہیں مگر ان کو جس طرح بھی ادا کریں مفہوم ادا ہو جاتا ہے۔ اس اختلاف کی وجہ یہ ہے کہ بعض نے لفظوں کی طرف دھیان رکھا اور بعض نے معنوں کا لحاظ کیا مگر کچھ لوگ قوم کے لحاظ سے اس کا تلفظ کرتے ہیں اور معنی مراد لیتے ہیں۔

یہاں لفظ اسلام کا لفظی ترجمہ اور معنوی مطلب پیش کرتا ہوں۔ نسلی اعتبار سے اسلام کے یہ نام مشہور ہیں: ہوئی ہوئی جاؤ۔ ہوئی جاؤ۔ نیانگ نانگ چا۔ مگر جب لفظی ترجمہ کی طرف خیال کریں تو یہ "اشلام" "آشلا" "آسلام" "اسلم" ہو جاتا ہے۔ معنوی لحاظ سے "واشفا" اور "واشفی جاؤ" کہلاتا ہے۔

عہد نانگ میں حضور سرورِ کائنات صلعم کو "ملو" یا "محامو" اور "ماؤ" کہتے تھے۔ مگر اس کا صحیح ترجمہ ۱۲۴۸ء میں ہوا۔ کینٹن کی مسجد النبی میں یہ اسم مبارک "محامو" کی صورت میں کندہ ہے۔

یہ دعویٰ کہ اسلام بزور شمشیر نہیں پھیلا اب کسی حجت کا محتاج نہیں رہا ہے اور اس کے بے شمار دلائل موجود ہیں۔ دور کیوں جائیں خود چین کی مثال لیجئے جہاں اسلام کو احترام کی نظر سے دیکھا جاتا ہے اور مسلمان عزت و وقار کی جگہوں پر فائز رہے ہیں۔ اس وقت بھی چین میں کروڑوں مسلمان بسے ہوئے ہیں۔ پیکن اور شنگھائی میں بے شمار مسلمان موجود ہیں اور عزت کی زندگی بسر کر رہے ہیں۔ میں اس سلسلہ میں خود اپنے ایک بزرگ کا واقعہ لکھتا ہوں۔

میرے یہ بزرگ ۱۹۲۶ء میں سرد یہ شنگھائی سے تشریف لائے جو وہاں عرصہ سے مقیم تھے انہوں نے فرمایا کہ اس شہر میں مسلمان بہت اچھی حالت میں ہیں اور اپنی ترقی کے لئے کوشاں رہتے ہیں۔ یہاں بڑی بڑی مسجدیں بھی بنی ہوئی ہیں جو بہت خوبصورت اور صاف ستھری ہیں۔ یہاں مسلمانوں کے اپنے ہوٹل بھی ہیں اور علامت کے طور پر اپنے سائن بورڈ پر ایک کوزہ کی شکل بنا دیتے ہیں جس کا مطلب یہ ہوتا ہے کہ اس ہوٹل میں حلال اشیائے خورد و نوش پیش کی جاتی ہیں۔ ۱۹۲۳ء میں "تان کینگ" کی مرکزی مجلس میں بھی مسلمانوں کی کافی بڑی تعداد شریک تھی اور اس سے مسلمانوں کی سماجی حیثیت کا علم ہو سکتا ہے۔ تعلیمی میدان میں بھی مسلمان کسی سے پیچھے نہیں اور ۱۹۲۳ء میں وزیر تعلیم مسلمان تھے اور چینی ترکستان کا گورنر بھی حلقہ بگوش اسلام ہو چکا تھا۔ موجودہ چین میں جب سے ماؤزے تنگ اور چو این لائی کی قیادت مستحکم ہوئی ہے مسلمانوں کی سیاسی، فوجی، معاشرتی اور اقتصادی ترقی کی رفتار بڑی نمایاں رہی ہے اور امید ہے کہ اس میں اضافہ ہوتا رہے گا۔

*

دعائے خلیلؑ و نویدِ مسیحاؑ

کی

حیاتِ طیبہ پر

"ماہِ نو"

کا

شمارۂ خصوصی

یہ شمارہ جولائی اور اگست ۱۹۶۳ء کا مشترکہ شمارہ ہوگا جو عید میلاد النبیؐ کی تقریبِ سعید کے موقع پر

شائع ہو رہا ہے

> "ہم نے تمہارے لئے رسول اللہ میں بہترین اسوہ اور
> قابلِ تقلید مثال قائم کی" (احزاب)

- ملک اور بیرونِ ملک کے نامور علمائے کرام اور ممتاز اہلِ قلم کے مضامینِ نظم و نثر۔
- روضۂ مبارک کی رنگین شبیہہ۔
- مقاماتِ مقدسہ کی باصرہ نواز تصاویر۔

حضور سرورِ کائناتؐ کی زندگی ہمارے لئے، اور کُل عالم کے لئے
ہر عہد و زمانہ میں، ایک ایسی مشعلِ راہ ثابت ہوئی ہے اور ہوتی
رہے گی کہ جس کی روشنی میں ہم دین اور دنیا کی ساری نعمتیں، فلاح
اور فیوض حاصل کر سکتے ہیں۔

ہمیں اس عہد میں روحانی بلندی اور دنیاوی برکات کے حصول میں اسوۂ نبویؐ کے روشن و انقلاب آفریں پہلوؤں کو اور بھی زیادہ جاننے اور ان پر عمل کرنے کی ضرورت ہے۔ اس موضوع پر "ماہِ نو" کا شمارۂ خصوصی بصیرت افروز اور ایمان پرور مضامین نظم و نثر کی ایک سلک مروارید پیش کر رہا ہے۔

یہ شمارۂ خصوصی جو جولائی اور اگست ۱۹۶۳ء کی مشترکہ اشاعت ہے، جولائی کے وسط میں شائع ہوگا۔ قارئین اور ایجنٹ حضرات نوٹ فرمالیں اور مطلوبہ تعداد "سیرت رسولؐ نمبر" سے فی الفور مطلع کریں۔

ضخامت تقریباً دو سو صفحات، قیمت ۲ روپیہ

ادارۂ مطبوعاتِ پاکستان، پوسٹ بکس ۱۸۳ کراچی

ما و شما

سید قدرت نقوی (ملتان)؛

فروری کا پرچہ ملا تھا۔ پڑھا، دل خوش ہو گیا، بیساختہ داد دینے کو جی چاہا۔ اب کے تو پورا غالب نمبر بنا دیا ہے۔ اللہ کرے جوشِ عمل اور زیادہ! عنوان نرالے، مضمون انوکھے، نظمیں لاجواب، شمارہ دامن دل می کشد کہ جا اینجاست کا مصداق! مولانا مہر کا مضمون مشعلِ راہ کا کام دے سکتا ہے۔ واقعی ہمیں یہ پہلو بھی نظر انداز نہیں کرنا چاہیئے کہ غالب نے اسلاف کے سرمایہ سے کیا فائدہ اٹھایا اور اس پر کیا اضافہ کیا ہے۔

مالک رام صاحب کو "مولانا آزاد بنام غالب" اچھا مضمون سوجھا۔۔۔۔ مگر پہلو دار جملوں سے ذم ہی کا پہلو کیوں نکالا جائے۔ "نظر اپنی اپنی خیال اپنا اپنا"۔ ہم کیوں کسی کی نیت پر حملہ کریں۔ اگر یہی بات ہے تو آبِحیات میں اس پہلو داری کا شکار کون نہیں ہے۔ مولانا آزاد کے خلوص میں شک کی گنجائش نہیں، غالب کی وفات پہ قطعۂ تاریخ اس پہ دال ہے جو غالباً آگرہ یا دہلی کے کسی اخبار میں شائع ہوا تھا اور پھر اس دور کے حالات، تہذیب، ذہنی افتاد اور تاریخی عوامل کو سامنے رکھ کر دیکھا جائے تو مولانا آزاد نے حقیقت کے خلاف نہیں لکھا ہے۔

آزاد کا مرتبہ اس سلسلہ میں اس لئے بلند ہے کہ مولانا آزاد ہی کے تذکرہ نے مولانا حالی کو "یادگارِ غالب" لکھنے کی طرف متوجہ کیا۔ مولانا حالی نے تذکرۂ آزاد سے کماحقہٗ فائدہ اٹھایا ہے۔ بیشتر باتیں آبِحیات ہی سے لی گئی ہیں۔ رہا زبان کا معاملہ تو مرزا کی زبان پر دلّی والوں نے ہمیشہ ناک بھوں چڑھائی ہے۔ حالی یادگار میں زبان کے مسئلہ کو بالکل ہی گول کر گئے ہیں۔ اگر زبان کے متعلق انہیں لکھنا پڑتا تو وہ بھی دہلی کی محاوراتی زبان سے غالب کی زبان ممیز دکھاتے۔

۔۔۔"گنجینہ باز خیال" کی گنجینہ بازی نے نہ معلوم کتنی محفلیں برہم کر دیں، نہیں، بلکہ پیش کر دیں۔ نیرنگ یک بتخانہ کی ورق گردانی تو نہیں البتہ تصور میں بالکل پردۂ سیمیں کی طرح فلمی نمائش کا سا نقشہ جم گیا۔ بیساختہ زبان سے نکل گیا "دیتے ہیں دھوکا یہ بازیگر کھلا" واہ رے ابہام و اشاریت کا کمال! بقدر۔ بالست رازداں پر سب کا سب دفتر کھلا، مگر غیر پر کچھ بھی نہ سرتا سر کھلا۔

"اک بزرگ ہمیں ہمسفر ملے" خوب! اچھا غالب اور امریکہ کی سیر! اچھی سوجھی! لطف آ گیا۔ جمیل نقوی صاحب اور آفاق صاحب کو کس لئے شریک نہیں؟ کیا ستھے نہیں چڑھے؟

•

غالب نمبر کے سلسلے میں آپ سے داد پائی۔ ہم تو اس کوشش میں تھے کہ اسے اور بھی دقیع و وسیع بناتے مگر تنگنائے صفحات اور لکھنے والوں کی کوتاہ قلمی عارض ہوتی تھی اس لئے جو کچھ دال دلیا میسر آیا حاضرین کی ضیافتِ طبع کے لئے پیش کر دیا۔ آپ جیسے خوش ذوق حضرات نے اسے الوانِ نعمت کا مصداق سمجھا، یہ ادارہ کے لئے باعث صد شکر ہے۔

(مدیر)

رشید امجد (راولپنڈی)

"ماہِ نو" ستمبر ۶۲ء میں میری مطبوعہ لوک کہانی "للّہ" سے متعلق سلیم خاں گمی صاحب نے بعض انکشافات کے بعد فرمایا ہے کہ للّہ لوک کہانی نہیں بلکہ مضمون ہے۔

غالباً معترض نے للّہ کے شروع میں دیئے ہوئے نوٹ کو بغور نہیں پڑھا۔

لوک کہانی کا رابطہ عوام سے ہے اور لوک کہانی کہنے والے لغت داں، مؤرخ یا محقق نہیں ہوا کرتے بلکہ جو سنتے آتے ہیں

انہیں آئندہ نسلوں کو سنا دیتے ہیں۔

میں نے بھی اسے جس طرح سنا، لکھ دیا۔ میں نے یہ لوک کہانی تحریر کی ہے کوئی مضمون یا "جواب مضمون" نہیں لکھا۔ اگر میں ایسا کرتا تو نہ صرف للہ کے نام سے متعلق بلکہ اس کی تاریخِ پیدائش و وفات کے بارے میں بھی بحث و تمحیص کرتا۔

دنیا کی بیشتر لوک کہانیوں سے متعلق اختلاف رائے ہے۔ للہ ہی کو لیجئے۔ "تذکرۃ العارفین"، "اسرار الابرار" "تاریخ کشمیر اعظمی"، "تاریخ کبیر کشمیر"، "تاریخ جدول کشمیر" میں اس کے متعلق حوالے ملتے ہیں۔

منشی محمد الدین فوق (مرحوم) نے بھی اپنی کتاب "للہ عارفہ" میں تفصیلاً ذکر کیا ہے لیکن تذکرہ نویس اس کی تاریخ پیدائش و وفات سے متعلق یا تو خاموش ہیں یا اختلاف رکھتے ہیں۔ آج تک پتہ نہیں چل سکا کہ للہ مسلمان تھی یا ہندو۔ کچھ لوگوں کا خیال ہے کہ للہ نے سید حسین سمنانی رح کے ہاتھ پر اسلام قبول کر لیا تھا۔ ایک نظم میں مشہور اولیائے کرام اور عارفان حق کے ساتھ للہ کا ذکر بھی موجود ہے:

ازاں جملہ للہ عارفہ
کہ اسرار حق را بود کاشفہ
ز سید حسین منفعت یافتہ
سوئے مرکزِ صدق بشناختہ

لیکن اکثر تذکرہ نویسوں نے اسے ہندو ہی لکھا ہے۔ اسی طرح للہ کے نام کا مسئلہ ہے۔ فوق نے اس کے کئی نام لکھے ہیں مثلاً لل دد، لل شوری، للہ الیشوری۔ للہ عارفہ، وغیرہ۔ معلوم نہیں اس میں سے کونسا نام درست ہے۔

للہ کا کردار دراصل ہندوستانی معاشرت کی نمائندگی کرتا ہے اور یہ کہانی علامتی ہے اور اس لئے سنائی جاتی ہے کہ عورتوں میں فرماں برداری اور فرض کا احساس پیدا ہو۔

للہ ساس کے ظلم صرف اسی لئے برداشت کرتی ہے کہ وہ اس کے شوہر کی ماں ہے۔ کیا کسی ایسی بیوی سے، جو ساس کی اتنی عزت کرتی ہو، یہ توقع نہیں کی جا سکتی کہ وہ اپنے خاوند سے بھی بے پناہ محبت کرتی ہوگی۔ سمجھ میں نہیں آتا بیوی کا خاوند کے گلے میں بازو حمائل کرنا کیوں قابلِ اعتراض ہوا؟

اسی طرح چاولوں کی طشتری میں بانٹ کی موجودگی سے متعلق میں اتنا ہی عرض کر سکتا ہوں کہ کہانی اسی طرح سنی ہے۔ اگر بانٹ للہ کے سسر نے ہی دیکھا تو اس سے کہانی کے پلاٹ پر کوئی اثر نہیں پڑتا۔

شاہ ہمدانی رح کا نام محمد الدین فوق نے سید علی ہمدانی لکھا ہے (للہ عارفہ۔ فوق: صفحہ ۳۳)۔

مختصر یہ کہ للہ صرف لوک کہانی ہے اور اسے اسی طرح سنا دیا گیا ہے یہ کوئی تحقیقی چیز نہیں ہے۔ رہ گئی کہانی تو وہ ٹیکنیک پر پوری اترتی ہے۔ اس میں نقطۂ عروج وغیرہ موجود ہے۔ لہٰذا اسے افسانہ ہی کہنا زیادہ موزوں ہے۔ مدیر ماہ نو نے بھی اسے ترتیب دیتے ہوئے افسانہ ہی لکھا ہے:

آپ کا خط کچھ عرصہ سے ہمارے پاس محفوظ تھا اور اب شائع کیا جا رہا ہے جس میں آپ نے ... صاحب کے کچھ اعتراضوں کا جواب دیا ہے۔ بظاہر یہ بحث طوالت طلب نہیں معلوم ہوتی اور آپ کا یہ مؤقف کہ للہ محض ایک لوک کہانی ہے اور اسے ایسا ہی سمجھنا بھی چاہئیے، درست معلوم ہوتا ہے۔ بہت سی لوک کہانیاں تحقیق اور تدقیق کی خوردبین کے نیچے آکر جزیات میں پراگندہ نظر آتی ہیں اور تاریخی شواہد کی آنچ تو انہیں اور بھی زیادہ پگھلا دیتی ہے اس لئے ان کا حسن بس یہی ہے کہ انہیں اساطیر الاولین کے ذیل ہی میں رہنے دیں اور جو راوی اسے جس طرح بیان کر دے، مان لیا جائے تاکہ حکایت بے مزا نہ ہو۔

(مدیر)

مرگِ شوکت: — "حقیقی معنوں میں ایک قومی سانحہ۔"
— "مجھے ان کی وفات سے بیحد صدمہ پہنچا ہے"
— "ان کی خدمات ناقابلِ فراموش ہیں۔" (صدرِ پاکستان)

وہ عدم کے پہاڑ سے چلا گیا۔
وہ اپنے پیچھے کچھ یادیں اور اپنی کچھ باتیں چھوڑ گیا۔ مگر کس قدر ناتمام۔ شاید ناقابلِ تمام۔
ایک مشاق صحافی، ایک بے بدل نکاہ نویس، اور ایک متعلق دوست ہم سے جدا ہو گیا —— اور کیسا بے وقت!
اس کی ادبی شہرت "سودیشی ریل" سے شروع ہوئی اور پھر تو اس کے باغ و بہار کھلانے والے قلم نے مضامین کے ایسے تو پہ تو انبار لگائے کہ اس کی سودیشی ریل بھی بہت پیچھے رہ گئی۔ وہ قاضی جی بنکر بھی آیا اور ہر شام کیا کیا ادائیں نہ دکھا گیا —— اس کی باتیں یاد رہیں گی، اس کی ہنسانے والی باتیں ہمیں کیا کیا نہ رلائیں گی۔

ادب میں ظرافت سب سے ٹیڑھی کھیر ہوتی ہے اور اگر آدمی یہ حس قدرتاً لیکر پیدا نہ ہوا ہو تو اسے نبھانا مشکل ہو جاتا ہے اور آدمی اگر لکھتا ہی رہے تو خود اک اضحوکہ بن جاتا ہے۔ یہی وجہ ہے کہ ہمارے ہاں اس صنف میں ممتاز مقام پیدا کرنے والے چند ہی نام نظر آتے ہیں۔ افسوس کہ یہ کھیپ کی کھیپ جس قدر جلد پیدا ہوئی تھی، اتنی ہی جلد ختم بھی ہو گئی۔
فرحت اللہ بیگ گئے، عظیم بیگ چغتائی پردہ کر گئے۔ پطرس، حسرت، مجید، سالک، —— غرض کس کس کی یاد اس وقت نہیں آرہی ہے، اور آج ہم شوکت کا پرسا دے رہے ہیں، اس شوکت کا جو ساری عمر ہمارے سامنے نشاطِ فکر، تبسم اور قہقہوں کی دولت لٹاتا رہا۔ آج ہم اس کا قرض چکا بھی رہے ہیں تو آنسوؤں کے خراج سے! زندگی کا یہ زہر خند بھی کیسا قاتل ہے!

شوکت تھانوی (—— آہ —— مرحوم!) کے پسماندگان کے ساتھ ادارہ ان کے غم میں شریک ہے اور اپنے دلی قلق کا اظہار کرتا ہے۔ (ادارہ)

"نوائے دوش" بقیہ صد۱

یوں کھینچا ہے،

بہ کثرت ریاحین و گل ہائے رنگیں
بہ افراط شمشاد و سرو و صنوبر
درختوں پہ پھل اور پھلوں پر پرندے
زمیں پر دھرے دیتی ہیں ٹہنیاں سر
ہوئے ہیں مگر چہچہے سنتے سنتے
شب و روز و صبح و مساگوشِ گُل کو
ہراک قطعہ پھولوں کے تختے کے تختے
ہراک حوض پانی کی چادر کی چادر
تعالیٰ اللہ فوّاروں کی سر بلندی
کہ قطرے بنے انجم چرخ چنبر
فواکہ اگر کھائیے رزق طیب
شگوفے اگر سونگھیئے مشک و عنبر
سنے ہوں گر اوصاف جنت کے تم نے
اسی کا نمونہ تھا روئے زمیں پر

نذیر احمد طنز و مزاح میں اپنا جواب نہیں رکھتے تھے۔ ان کی یہ خصوصیت ان کی شاعری میں بھی موجود ہے۔ یوں تو ہر نظم میں ایک آدھ "شوخ" شعر موجود ہے، لیکن مندرجہ ذیل مختصر سی نظم سے نذیر احمد کے کلام کا یہ پہلو بڑی خوبصورتی سے واضح ہوتا ہے، یہ نظم سینٹ اسٹفین کالج دہلی کے کسی جلسے میں پڑھی گئی تھی :

آؤ ڈیکھوشن کے لڑکوں نے   جھولتے جھولتے بڑھائی پینگ
سب کو جلسے میں کھینچ بلوایا   اس کو شیخی قرار دو یا ڈینگ
یعنی بچھڑوں میں کتنے بوڑھے بیل   آن شامل ہوئے کٹا کر سینگ
یہ جو لیکچر ہے، اپنے گھر جاکر   اس کو چاٹا کرو لگا کر ہینگ

اس مختصر سے مضمون میں نذیر احمد کا ان کے معاصروں سے موازنہ کرنے کی کوشش نہیں کی گئی ہے۔ اس کی ضرورت بھی نہیں، اس لئے کہ نذیر احمد کی شاعری موازنہ و مقابلہ کی متحمل نہیں ہوسکتی۔ یہ صحیح ہے کہ وہ بڑے شاعر نہ تھے، لیکن یہ صحیح نہیں کہ ایک بڑے ادیب کے ذہنی رجحانات کو سمجھنے کے لئے اس کی شاعری کو وہ اہمیت نہ دی جائے جس کی وہ مستحق ہے ‌٭

" اک طرفہ تماشا تھی....." بقیہ صد۱۸

لطف کی ان سے التجا نہ کریں   ہم نے ایسا کبھی کیا، نہ کریں
مل رہے گا جواں سے ملنا ہے   لب کو شرمندہ دعا نہ کریں

حسرت نے غزل کے میدان میں وزیر، صبا، امانت اور قلق کی ہمقدمی سے اپنے ادبی سفر کا آغاز کیا۔ اُدھر معاصرین میں داغ اور امیر جیسے اساتذہ بھی موجود تھے جن کا کلام پیش نظر رہتا تھا، مگر جوں جوں ان کا سفر آگے بڑھتا گیا غزل میں ایک نئی راہ نکالی اور مضامینِ تازہ کے ایسے نمونے پیش کئے کہ اُردو غزل میں ان کا ایک منفرد و ممتاز مقام پیدا ہوگیا جسے رنگ حسرت کہنا بالکل بجا ہے۔ ان کی غزل میں عشق، خلوص، معصومیت، دردمندی اور سپردگی خاص طور پر نمایاں ہے۔ فراق کا یہ کہنا کہ حسرت اپنے پیشروؤں کے اندازِ بیان، وجدان اور فنِ شعر کی انتہا و تکمیل ہے، کوئی مبالغہ نہیں اُن کی حسیات کا یہ رُخ بھی اک طرفہ تماشا ہی ہے کہ جیل میں کافی طویل زمانہ گزارنے کے باوجود انہوں نے کلام پر اس کا کوئی براہ راست اثر پیدا نہیں ہونے دیا۔ چند اشعار کو چھوڑ کر ان کے کلام کے تیور اور انداز بیان ایسا ہے کہ اسے حبسِ فرنگ کی دین نہیں کہا جاسکتا۔ غزل سے ان کی شیفتگی مشہور تھی اور وہ اسی رنگ میں کہتے رہے۔ سب سے بڑی بات انہوں نے یہ کی کہ غزل کو درباریت کے رنگ سے آزاد کیا اور وارداتِ دل کی شرح و بیاں کو ہی اپنا شیوۂ سخن بنایا جو ان کے عشق اور خلوص و نیاز کا ایک آئینۂ مصفّا معلوم ہوتا ہے۔

غرض حسرت کی زندگی کے کسی پہلو کو بھی دیکھیں ایک انفرادیت اور انوکھاپن اس میں ضرور نظر آئے گا، خواہ وہ سیاست کا خارزار ہو یا شعر کا گلستاں ‌٭

عالم یک شہر جستجو: ——— بقیہ صفحہ ۳۰

دوخ سے دوغ (چاچہ) بنا اسی سے انگریزی (DAUGHTER) ڈاٹر ہے جس کی املا میں غ کی آواز (GH) موجود ہے مگر تلفظ سے ساقط ہو چکی ہے۔ خ کا تبادل ش سے بھی ہوتا ہے دوخ سے دوش بنا ہے

علامت تانیث "ٹیرک" لگا کر پہلے دوخیرک بنا، اس کے بعد دوشیزک" دوشیزہ کی شکل اختیار کی مگر اس کے معنی میں ذرا تغیر آیا ہے، یعنی دوشیزہ صرف نوجوان لڑکی کے لئے مخصوص ہے۔

خون میں سرایت کئے ہوئے فاسد مادے برسات
میں پھوڑے پھنسی بنکر نمودار ہوتے ہیں۔ ان موسمی
عوارضات سے محفوظ رہنے کیلئے صافی استعمال کیجئے۔
یہ خون کی صفائی اور تقویت کا بہترین ذریعہ ہے۔
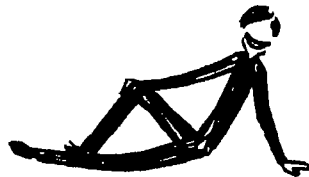
ہمدرد

ہمدرد دواخانہ (وقف) پاکستان
کراچی۔ ڈھاکہ۔ لاہور۔ چٹاگانگ

united H.S. 4/393

جلد ۱۶ شمارہ ۱۲

ماہِ نو

مدیر: ظفر قریشی
دسمبر ۱۹۶۳ء

سالانہ چندہ: ساڑھے پانچ روپے
شائع کردہ: ادارۂ مطبوعات پاکستان۔ پوسٹ بکس ۱۸۳ کراچی
فی کاپی ۵۰ پیسہ

روکشِ منزل

(قائدِ اعظم بارگاہِ باری تعالیٰ میں)

سیماب اکبرآبادی (مرحوم)

باری تعالیٰ :

ہم نے دنیا میں مثالی جاہ و عظمت دی تجھے — جو حریفِ اہلِ شہرت تھی، وہ شہرت دی تجھے

اک نئی جودت عطا کی، اک اچھوتا اجتہاد — اک بڑی قوت بفیضِ علم و حکمت دی تجھے

مشرق و مغرب ترے افکار سے مرعوب تھے — خود معلّم بن کے تعلیمِ سیاست دی تجھے

صرف "پاکستان" ہی تجھکو نہیں بخشا گیا — پاک نیت، پاک طینت، پاک سیرت دی تجھے

"قائدِ اعظم" تجھے سارا جہاں کہنے لگا — کاروانِ اہلِ ملت کی قیادت دی تجھے

اب جو ہو کر فائزِ منزل یہاں آیا ہے تو

پیشکش کو کیا ہمارے سامنے لایا ہے تو؟

باری تعالیٰ ،

ملتِ مرحوم کا ہم خوں بہا دیں گے تجھے — تیرے ایثارِ مسلسل کا صلا دیں گے تجھے

خونِ ناحق سے رنگے جن وحشیوں نے اپنے ہاتھ — کیا مآل اُن کا ہوا، یہ بھی بتا دیں گے تجھے

تجھکو تاریخِ جہانِ نو بھلا سکتی نہیں — ارضِ پاکستاں کے ذرّے بھی دعا دیں گے تجھے

اب چراغِ رہگذر ہوں گے نقوشِ پا ترے — ہم منارِ روشنیٔ منزل بنا دیں گے تجھے

قوتِ عزم و عمل بخشیں گے تیری قوم کو — مدعائے دل بقدرِ التجا دیں گے تجھے

حال بھی روشن ہے پاکستان کا، استقبال بھی

اس کو استحکام بھی قسمت ہے، استقلال بھی

قائدِ اعظمؒ :

ہدیۂ منت بہ درگاہِ خدا لایا ہوں میں — اُمتِ ختمِ رسلؐ کا شکر یا لایا ہوں میں

اپنے کافوری کفن کے گوشۂ محدود میں — خون بھر کر ملتِ مظلوم کا لایا ہوں میں

پیش کرنے کے لئے منجانبِ قومِ ضعیف — استغاثہ مشتمل بر خونِ بہا لایا ہوں میں

دفترِ مستقبلِ ملت ہے شایانِ کرم — دستخط کو محضرِ اہلِ وفا لایا ہوں میں

دستِ لرزاں میں مرے نقشہ ہے پاکستان کا — اور اس کے ساتھ ہی یہ التجا لایا ہوں میں

بسکہ ہے آغاز تیرے ہاتھ اور انجام بھی

سلطنت دی ہے تو اب دے اس کو استحکام بھی

قائدِ اعظمؒ ،

میں ہوں یارب تنگ داماں تیری رحمت کم نہیں — اپنے مرجانے کا اب مجھکو ذرا بھی غم نہیں

اب میں اپنی قوم "پسماندہ" کو دیتا ہوں پیام — ہے یہ وقتِ شادمانی موقعِ ماتم نہیں

کُلُّ نَفۡسٍ پڑھنے والے کیوں ہیں مجھ پر نوحہ خواں — میرا مرجانا خلافِ فطرتِ عالم نہیں

زندگی نو دماغوں میں مچلنی چاہئے — یہ قنوط و یاس شایانِ بنی آدم نہیں

اُس کا مسلک اس کا نصب العین تو موجود ہے — تم میں گو باقی تمہارا "قائدِ اعظم" نہیں

گر نہیں قائد، نہ ہو، کونین کا آقا تو ہے

زندہ و باقی محمدِ اعظم و اعلا تو ہے

(۵ دسمبر ۴۸ء)

طبعِ بلندے، مشربِ نابے

(بیادِ قائدِ اعظمؒ)

یوسف عبداللہ

بابائے ملت، محمد علی جناحؒ کی شخصیت میں چند باتیں خصوصیت سے نمایاں ہیں ــــ ان کی زبردست ذہنی توانائی، ان کی وسیع النظری اور بلندیٔ کردار۔ یہی خصوصیات ہیں جن کی وجہ سے وہ تاریخ کی عظیم ترین ہستیوں میں شمار ہوتے ہیں۔ صرف اپنے کارہائے نمایاں ہی کی وجہ سے نہیں بلکہ اس لئے بھی کہ وہ خود کس قدر پُرعظمت تھے۔

یہ حقیقت ہے کہ ہمارے بابائے ملت بڑی ہی اعلیٰ درجے کی قیادت کی خوبیوں سے بہرہ ور تھے۔ اور ان کی تنظیمی صلاحیت تو بے پناہ تھی۔ چنانچہ جب ۲۳-۱۹۱۹ء میں تحریکِ خلافت ناکام ثابت ہوئی اور مسلمانوں کا کوئی ایسا رہنما نہ رہا جسے حقیقی معنوں میں سربراہِ ملت کہا جاسکے تو برطانوی استعمار پسندوں کو لے دے کر یہی بدنصیب قوم نظر آئی جسے وہ اپنے غیظ و غضب کا تختۂ مشق بنائے۔ یہ وہ دن تھے جب گاندھی جی نے مولانا محمد علی کو بُری طرح کاوا دیا تھا۔ اور وہ یوں کہ فروری ۲۲ء میں چوری چورا کا مشہور واقعہ پیش آیا۔ گاندھی جی نے اسی کو بہانہ بنا کر تحریک کو واپس لے لیا، اور پھر لگے کانگرس کی قیادت کو مسلمانوں پر زبردستی مسلط کرنے۔

مسلمان، قدرتی طور پر، اس تحریک کی ناکامی سے بہت ہی بددل اور مایوس ہوئے۔ یہ بددلی و مایوسی دوسری دہائی کے آخری دنوں اور تیسری کے شروع میں انتہا کو پہنچ گئی۔ اس لئے انہوں نے یہی مناسب خیال کیا کہ وہ زندگی کی اصلیتوں سے روگرداں ہو کر ملکی مسائل و معاملات سے الگ تھلگ رہیں۔

وہ پُرخلوص مسلمان جنہوں نے مولانا محمد علی کا سیاسی انجام دیکھا تھا، کانگرس سے کنارہ کش ہونے لگے یہ بڑا نازک مرحلہ تھا بڑا آڑا وقت تھا، جب ۳۷ء میں قائداعظمؒ نے مسلم لیگ کی عنانِ قیادت اپنے ہاتھوں میں لی۔

ظاہر ہے کہ مسلم لیگ کی تنظیم اس وقت کس قدر ناقص تھی اور مسلمانوں کو ذرا بھی علم نہ تھا کہ اس کا پروگرام کیا ہے، بلکہ سچ پوچھا جائے تو اس کا سرے سے کوئی پروگرام تھا ہی نہیں اور تھا بھی تو بالکل برائے نام اور اسے کوئی بھی کارِ نمایاں دکھانے کا شرف حاصل نہ تھا۔

غرض وہ سیاسی جماعت جس سے یہ توقع کی جاتی تھی کہ مسلمانانِ ہند کی قیادت کا حق ادا کرے گی، اس کی کیفیت یہ تھی اور جب سربراہ کی یہ حالت ہو تو تصور کیا جاسکتا ہے کہ خود مسلمانوں کا حال کیا ہوگا۔ جن کا شیرازہ بُری طرح درہم برہم تھا۔ حوصلے پست، حالت زبوں، امید موہوم۔ یہ دل شکن حالات تھے جب قائداعظمؒ نے ان کی قیادت کا بارِ امانت اٹھانے کا فیصلہ کیا۔

اس قیادت کے نتائج بھی جلد مرتب ہونے شروع ہوگئے۔ نواب اسمٰعیل خان ان کے معاون کار رہے۔ ان کی بہترین خوبی ان کا اعلیٰ اخلاقی کردار اور حسنِ نیت تھا۔ انہوں نے قائداعظمؒ کا ہاتھ بٹایا اور مسلم لیگ کی کایا پلٹ ہوگئی۔ یہاں تک کہ ۴۰ء میں اس کا ایک معین مقصد، ایک واضح سمت متعین ہوگئی۔ مسلمانوں کے دل میں ایک ولولۂ تازہ پیدا ہوا اور ان کی ازسرِنو تنظیم معرضِ عمل میں آئی۔ بیورلی نکلس کے الفاظ میں صورت حال یہاں تک پہنچ گئی تھی کہ قائداعظم مسلم لیگ کو جیسے اور جس طرف بھی چاہتے لے جاسکتے تھے۔

ایک موقع پر قائداعظم نے فرمایا:

"میرے دس کروڑ ہم مذہب میرے اور صرف میرے کہنے پر دائیں بائیں، سامنے، پیچھے، غرض جدھر بھی حکم دیا جائے، جانے کو تیار ہیں" اور یہ بالکل سچی بات اور تسلیم شدہ حقیقت تھی۔ اس زبردست عوامی عقیدت سے بابائے ملت نے بڑا تعمیری کام لیا۔ سب سے پہلے انہوں نے پوری ملت کی شیرازہ بندی

کی اور ان کو اس طرح راہِ عمل پر لگایا گیا وہ "راہِ مختصر" کے وسیلے سے اپنی منزل تک پہنچ سکیں۔ چنانچہ ۲۳ مارچ ۱۹۴۰ء کو یہ منزل طے ہوگئی اور کاروانِ ملت اس طرف روانہ ہوا اور صرف سات سال کی قلیل مدت میں منزل کو جالیا۔

واضح رہے کہ قائداعظمؒ کے ہاتھ میں کمال اتاترک کی طرح کوئی بے اندازہ قوت نہ تھی جس کا وہ جیسے چاہیں استعمال کر سکیں۔ ان کے ساتھ بسمارک یا ہنڈن برگ کی طرح کوئی لشکر جرار بھی نہ تھا۔ پھر بھی وہ اپنا نصب العین حاصل کرنے میں کامیاب ہوگئے، جسے لوگ ناممکن خیال کرتے تھے۔ بیشک انہوں نے تاریخ کا رخ بدل دیا۔ بلکہ ایک برجستہ بات تو یہی ہے کہ قائداعظم نے تاریخ کو تخلیق کیا۔ بے شک وہ ایک بہت بڑے سیاست داں، صاحبِ تدبیر قائد اور بے اندازہ تنظیمی صلاحیت کے مالک سربراہ تھے۔

مگر ساتھ ہی یہ بھی حقیقت ہے کہ قائداعظمؒ ایک بہت بڑے حقیقت پرست بھی تھے اور وہ اسی وجہ سے بڑے ٹھنڈے دل کے ساتھ، منطق و استدلال سے کام لیتے ہوئے بالکل درست نتائج تک پہنچتے تھے اور حالات کا صحیح ادراک کرکے نہایت صحیح نکات اخذ کرتے تھے۔ یہی عظیم صلاحیت تھی جس نے انہیں خواب و خیال کی دنیا میں گم ہوجانے سے باز رکھا اور ہمیشہ زندگی کی کڑی اصلیتوں پر نظر رکھنے اور ان سے دوبراہ ہونے کی تحریک دلائی۔

اس سے پہلے سید احمد شہیدؒ بریلوی تھے، جنہوں نے سابق پنجاب و صوبہ سرحد میں مسلمانوں کی آزادی کے لئے بے باکی و بے جگری کے ساتھ جہاد کا علم بلند کیا تھا، اور ان میں اپنے نصب العین کی جدوجہد کے لئے بڑا عظیم جذبہ ابھرا تھا۔ لیکن ان کی تحریک نے قوم کے نوجوان افراد کو اپنی طرف اس قدر راغب نہ کیا تھا جیسا قائداعظم کی ولولہ انگیز قیادت نے کیا۔ یہ تاریخی حقیقت ہے۔ اور آپ جانتے ہیں کہ قوم کا نوجوان و فعال اور باشعور طبقہ ہی کسی ایسی عظیم تحریک کا اصل روحِ رواں اور پشت پناہ ہوتا ہے۔ پھر اس کے بعد سر سید احمد خان کی تحریک نے قوم کو جدید راہِ عمل دکھائی، ایک تمام تر جدید تحریک۔ انہوں نے حالات کے تقاضے کا صحیح ادراک کیا اور برطانوی ملوکیت سے فوراً کوئی جنگ نہیں چھیڑی بلکہ حالات سے مفاہمت کو ہی تدبیر منزل بنایا۔ مولانا محمد علی کی تحریک خلافت علانیہ برطانیہ کے خلاف تھی اور جرأتِ رندانہ کی آئینہ دار۔ مگر اس کی جڑیں بھی حقیقت کی زمین میں پیوست نہ تھیں۔ اس کا واحد مقصد ترکی میں خلافت کا استقرار تھا اور اُن کا مؤقف یہ معلوم ہوتا ہے کہ ترکوں کی آزادی و بقائے خلافت کے طفیل ہندوستان بھی خود بخود آزاد ہوجائے گا۔ حالانکہ حالات ایک اور ہی طرف اشارہ کررہے تھے اور وہ یہ کہ عرب، جو کلیۃً مسلمان ہی تھے، خلافت کی قبا کو چاک چاک کر دینے پر تلے ہوئے تھے۔

جب قائداعظم نے مسلمانوں کی قیادت سنبھالی تو ان تمام عظیم تحریکوں کو بھی پیش نظر رکھا۔ انہوں نے سید احمد شہیدؒ کی اسلامی ریاست کے تصور کو قبول کیا مگر سر سیدؒ کی تلاشِ جدید کی روشنی میں اپنا نیا نقشۂ عمل تیار کیا جس میں حامیانِ خلافت کے جذبۂ "پان اسلام ازم" کو بھی اپنے نصب العین سے ہم آہنگ رکھا۔ اس طرح قائداعظم نے اسلامیانِ ہند کے لئے جو مطمحِ نظر قائم کیا اور جس طرح اس کے حصول کے لئے جدوجہد کی وہ ان کی اصابتِ رائے کی دلیل محکم ہے اور ہم نے خود دیکھ لیا کہ دس سال کے اندر اندر ان کا نصب العین حاصل ہوگیا اور دنیا کے نقشے پر پاکستان جیسی عظیم اسلامی مملکت ابھر آئی۔

قائداعظمؒ کا سرچشمۂ فیضان اسلام تھا اور اسی نے پاکستان کی بنیاد مہیا کی۔ ان کا تصور ایک ایسی اسلامی مملکت تھی جس میں نظریۂ اسلام ہی کو بالادستی حاصل تھی۔ اب یہ ہمارا کام ہے کہ مسلمانوں کے لئے جو وطن بنا ہے اسے حصارِ اسلام بنالیں۔

قائداعظم پہلے شخص تھے جنہوں نے اسلامیانِ ہند کو ایک ملت قرار دیا اور انہیں ایک "فرقہ" کی کمتر حیثیت سے اٹھا کر ایک عظیم اور جداگانہ ثقافت کی حامل ملت کے طور پر تسلیم کرایا۔ میری مراد ان کے دو قومی نظریہ سے ہے۔ یہ صحیح ہے کہ دو قومی نظریہ کا تصور کسی نہ کسی عنوان پہلے بھی موجود تھا مگر مبہم، جب منزل سامنے آگئی تو یہ ابہام دور ہوگیا اور یہ قائداعظم کی سب سے بڑی قائدانہ کامیابی تھی۔

ان کا ایک مشہور اعلان ہے: "ہم ایک قوم ہیں، جس کا ایک اپنا مخصوص تہذیبی مزاج ہے، ایک جداگانہ ثقافتی مؤقف، زبان، ادب، فنِ طریقۂ تعمیر، نام، اصطلاحیں، اقدار و مناسبات

ماہِ نو، کراچی، دسمبر ۱۹۷۶ء

فقہ، مناکحت، اخلاق، رسوم و رواج، تقویم، تاریخ، روایات، صلاحیتیں، ہماری امنگیں، کیا چیز ہے جو اپنا ایک علٰحدہ و منفرد وجود نہیں رکھتی — حقیقت یہ ہے کہ زندگی کے بارے میں ہمارا ایک اپنا ہی خمیر اور زاویۂ نظر ہے"۔

بے حد اولوالعزم اور اپنے ارادوں میں راسخ جیسے کہ وہ تھے، اپنا نصب العین حاصل کر کے رہے۔ ان کے متعلق ایک واقعہ بھی مشہور ہے کہ جب انہوں نے مجسٹریٹی کے عہدہ سے (جس کا مشاہرہ ۱۵۰۰ روپے ماہانہ تھا) علٰحدگی کا فیصلہ کیا تو ان سے اس کی وجہ پوچھی گئی۔ انہوں نے کہا تھا کہ میں تو ڈیڑھ ہزار روپے یومیہ کمانا چاہتا ہوں۔

یہ بھی مانا کہ اس وقت انہیں ایک سر پھرا نوجوان تصوّر کیا گیا ہوگا — بے حد بر خود غلط اور دنیا کی اونچ نیچ سے بے خبر مگر یہ حقیقت ہے کہ ایک ایسا زمانہ ضرور آگیا جب قائد اعظم نے واقعی ڈیڑھ ہزار روپیہ یومیہ کیا، اس سے کہیں زیادہ کمایا۔

تعجب ہے کہ ایک انسان جس کی زندگی اتنی بوقلموں، توانا اور کارہائے نمایاں سے بھرپور ہو، اس کی اب تک کوئی مستند و جامع سوانح حیات مرتّب نہ ہوئی ہو۔ ایک ایسی واحد سوانح عمری جس میں قائد اعظم کے آخری دنوں تک کے حالات منضبط کر دیئے گئے ہوں۔ ہیکٹر بولائیتھو کی تصنیف یوں تو بجائے خود بڑی اچھی ہے (اور کچھ نہیں تو اپنے دلکش اسلوب تحریر کے اعتبار سے ہی سہی) مگر قائد اعظم کے عقیدتمندوں کے دل میں پھر بھی یہ تمنّا باقی رہ جاتی ہے کہ وہ ان کے بارے میں اور بہت کچھ معلوم کریں — اور پھر ایک اور اشد ضرورت یہ بھی ہے کہ قائد اعظم کی سوانحعمری اپنے ملک کے لوگوں کے لئے بہت کم قیمت پہ فراہم ہو تاکہ ہر ایک کے پاس اس کی کاپی پہنچ سکے۔ حق یہ ہے کہ اکثر لوگوں کی نظروں میں بابائے قوم اب بھی زیادہ سے زیادہ ایک ایسا ابر گہربار ہیں جس نے برصغیر ہندو پاکستان کے مسلمانوں کو ایک جداگانہ ملّت کی نعمت ارزانی کی اور بس ؟

حُسنِ فیضان

(قائدِ اعظمؒ کے بعد)

منظر صدیقی

یہ فطرت کی عنایت ہو رہی ہے — کہ پھر بیدار قسمت ہو رہی ہے

فروزاں شمعِ وحدت ہو رہی ہے — جہاں سے دور ظلمت ہو رہی ہے

نئی تنظیمِ ملّت ہو رہی ہے — روایت پھر حقیقت ہو رہی ہے

نئے سورج اُبھرتے جا رہے ہیں — اندھیری رات رخصت ہو رہی ہے

ہمیں اپنی تباہی کا نہیں غم — زمانے کو تو عبرت ہو رہی ہے

ہمارا ہی چمن لوٹا گیا تھا — ہمیں سے اب شکایت ہو رہی ہے

وہی دُنیا جو دوزخ بن چکی تھی — حریفِ باغِ جنّت ہو رہی ہے

وقارِ آدمیت کیوں نہ بڑھتا — کہ قدرِ آدمیت ہو رہی ہے

نکھرتی جا رہی ہے زندگانی — ہر اک شے ماہِ طلعت ہو رہی ہے

یہ فیضِ قائدِ اعظمؒ تو دیکھو — جہاں میں اپنی شہرت ہو رہی ہے

زمانے میں ہمارے پھر ہیں چرچے — خدا کی پھر عنایت ہو رہی ہے

نہ کیوں تقدیر پر ہوں اپنی نازاں — شریکِ حال فطرت ہو رہی ہے

اندھیرے دور ہوتے جا رہے ہیں

نئی اک صبحِ عظمت ہو رہی ہے

منزل نا آشنا

عبدالغنی شمس

عظیم قائد!
سلام لے دس کروڑ اُن بیٹے بیٹیوں کا
جنہیں عطا کی ہے تیرے عزم و یقیں نے کچھ ایسی سرفرازی
کہ اب ہمالہ کی بھی بلندی نظر میں ان کے نہیں سماتی
عظیم قائد!
سلام لے دس کروڑان بیٹے بیٹیوں کا
جو تیرے نقشِ قدم کو مشعل بنائے بافخر و ناز دمکیں
منازلِ ارتقا کی پُرپیچ شاہراہوں پہ گامزن ہیں
عظیم قائد!
سلام لے دس کروڑان بیٹے بیٹیوں کا
جو تیری اس کشورِ حسیں پر نثار کرنے کو اپنی جانیں
قطار اندر قطار، خنجر بدست، آمادۂ وغا ہیں
نظر اٹھا کر ذرا تو دیکھ اُس اُبھرتے سورج کی ضوفشانی
کہ جس کی ہیبت سے، قلبِ ظلمت کی دھڑکنیں تیز ہو گئی ہیں۔
نہ جانے کتنے ہی ان میں ایسے جیالے ہوں گے، جو نام روشن کریں گے طارق کا شش جہت میں۔
نہ جانے کتنی ہی ان میں ہوں گی، غیور و جاں باز، مثلِ خولہ
کہ جن کی جرأت کی داستانیں سنائیں گی مائیں بیٹیوں کو

میں سوچتا ہوں، جو تو نہ ہوتا، تو تیرے گردوں کے ماہ و انجم
بصورتِ ریگہائے صحرا، خراب و آوارہ و پریشاں
خلا کی انجانی وسعتوں میں، نہ جانے کب تک بھٹکتے رہتے
کہاں کی منزل؟ نشانِ منزل کی بھی انہیں کچھ خبر نہ ہوتی
شبِ سیہ کی سحر نہ ہوتی

حُسنِ کلام آئینہ

انور سعید گیلانی

اب کے پہلی تاریخ کچھ دن پہلے ہی یاد دوبار آئی! اس لئے کہ صدر پاکستان، فیلڈ مارشل محمد ایوب خان، نے حسب معمول یکم کو ملت سے خطاب فرمایا، مگر اس سے کچھ ہی روز پہلے ۲۷ اکتوبر کے یادگار دن کو بھی وہ ملت سے خطاب کرنا نہیں بھولے۔ ریڈیو کی لہریں ان کی ہر دلعزیز، حیات افروز آواز لئے گھر گھر پہنچیں۔ عین اس وقت جب اس کی اشد ضرورت تھی۔ جبکہ وطن دشمن، ملک کے اندر بھی اور باہر بھی — پھر پاکستان کے خلاف سر اٹھا رہے ہیں اور دن رات نت نئے منصوبے کرنے میں مشغول ہیں۔

صدر پاکستان کی آواز اب جیسے کاملاً صدائے ملت بنتی جا رہی ہو، اس کے پیش نظر میں اور میری طرح ہزاروں افراد، خانہ بہ خانہ کو بہ کو برابر گوش بر آواز رہتے ہیں۔ اس لئے اب کے میں اپنے دوسرے پاکستانی بھائیوں کی طرح دونوں تقریروں کو سننے کے لئے پہلے ہی سے تیار تھا۔

پہلے اکتوبر کا ذکر بہتر ہے۔ کیونکہ یہ انقلاب کی پانچویں سالگرہ کی بات ہے۔ جب ہم اور ہمارے ساتھ پاکستان نے ایک نئی زندگی پائی اور آزادی حقیقی معنوں میں آزادی بنی۔

بے شک جو لوگ اپنی تاریخ سے سبق حاصل نہیں کرتے انہیں تاریخ میں کوئی جگہ بھی نہیں ملتی۔ اس لئے ہمیں لازم ہے کہ ہم اپنی بے پرواہی اور غفلت سے پرانی غلطیوں کو نہ دہرائیں اور ان میں سب سے بڑی غلطی مغربی طرز کے پارلیمانی نظام کو بحال کرنا ہے جس نے ہمیں تباہی کے کنارے لا کھڑا کیا تھا۔ اور اب بھی اس سے یہی خطرہ لاحق ہونا لازم ہے۔ مگر انقلاب بار بار تو نہیں برپا کئے جا سکتے اور نہ وہ ملک و قوم کی نجات کا آخری علاج بن سکتے ہیں اس کی جگہ عوام کی منشا کو نظام مملکت میں شریک کرنا چاہئے مگر دانش کا تقاضا یہی ہے کہ ہم ایسی آوازوں پر کان نہ دھریں جو "کعبہ" کی بجائے "ترکستان" کی طرف بلا رہی ہوں۔ ہمارے لئے سب سے پہلی اور بنیادی شرط تو ملک کی سلامتی ہے۔ حق یہ ہے کہ کوئی بدیسی نظام ہمارے لئے کارآمد ثابت نہیں ہو سکتا۔ ہمیں خودغرض لوگوں کو یہ موقع ہی نہیں دینا چاہئے کہ وہ اپنے فائدے کے لئے ہم عوام کو اپنا آلۂ کار بناتے رہیں۔

صدر پاکستان کا یہ ارشاد سو فیصد صحیح ہے کہ صدارتی نظام قطعاً غیر جمہوری نہیں بلکہ اسلامی روایات سے بے حد قریب ہے۔ اس سے حکومت کو کئی سال تک اطمینان سے عوام کی سچی خدمت کی مہلت مل جاتی ہے اور کوئی وزارتی افراتفری برپا نہیں ہوتی۔ نہ حکومت کا نظام درہم برہم ہوتا ہے۔ یہ بالکل بجا ہے کون ہے جو اس رائے سے اتفاق نہ کرے گا؟ آخر محض چند لوگوں کی تفریح کی خاطر یہ کیسے برداشت کیا جا سکتا ہے کہ آئے دن حکومتیں بدلنے کا تماشہ دیکھا جائے۔ خدا ہمیں ۵۸-۱۹۵۱ء کے دور سے محفوظ ہی رکھے!

پارلیمانی نظام کے کیا کہنے۔ چند ہی دن بعد صدر پاکستان نے بڑی پتے کی بات کہی کہ دنیا کی قدیم ترین پارلیمنٹ جو "پارلیمنٹوں کی ماں" کہلاتی ہے، خود اس کی اولاد اب اس کو بوڑھا اور سٹھیایا ہوا سمجھنے لگی ہے۔ اس کا رنگ روپ بگڑ چکا ہے اور یہ ایک نئی اور اولوالعزم قوم کی ضرورتیں پوری کرنے سے معذور ہو چکی ہے۔

جناب صدر نے بہت اچھا کیا کہ اس ضمن میں لارڈ ہیلشم جیسے فاضل اور جہاں دیدہ سیاس کا حوالہ دیتے ہوئے بتایا کہ برطانوی نظام حکومت ایک ایسی بوسیدہ مشین ہے جو چرمرا کر ٹوٹنے ہی والی ہے اور موجودہ دور کے لئے ہرگز موزوں نہیں۔

جناب صدر نے پھر کہی ہے اور بڑی ہی کھری بات کہی ہے کہ پارلیمانی حکومت کو بحال کرنے کا نعرہ در اصل انہی سیاست دانوں کا نعرہ ہے جو سیاست کی بازی ہار چکے ہیں اور پھر کسی حیلے بہانے وہی کھیل کھیلنا چاہتے ہیں جو انہوں نے پہلے کھیلا تھا تاکہ قوم کا بیڑا پھر تباہ ہو جائے۔ سچ پوچھا جائے تو ان لوگوں کے ہتھکنڈوں کا جواب انقلاب ہی تھا اور اس انقلاب کے کام کو اس وقت تک جاری رکھنا چاہیئے جب تک وہ اصلاحات جو اس کے تحت رائج ہوئیں ملک میں پوری طرح نشوو نما پاکر بارآور نہ ہو جائیں۔ اور یہ سب کچھ اسی صورت میں ممکن ہے کہ ملک میں سیاسی و اقتصادی استحکام برقرار رہے۔ صدر پاکستان کی یہ آواز یقیناً بڑی توجہ اور سنجیدگی سے سنی جائے گی۔ ایسی سیاست بھی کیا جو کسی مسئلہ کا حل نہ پیش کر سکے اور عوام کے لئے کسی طرح بھی سود مند ثابت نہ ہو۔ آخر ان سیاست دانوں نے پارلیمانی حکومت کی بحالی، بنیادی حقوق اور "بالغ حق رائے دہی" کی رٹ لگانے کے سوا اور کیا بھی کیا ہے؟ ان سے قوم کے امراض کا کیا مداوا ہوا اور ہو بھی کیا سکتا ہے ان سے تو الٹا اصلاحات اور عوامی رفاہ و بہبود میں رکاوٹ ہی پیدا ہو سکتی ہے، اس کے سوا کچھ نہیں ہو سکتا۔ ساتھ ساتھ یہ بھی تو ہے کہ خود غرض سیاست داں محض حکومت کی مخالفت پر اُدھار کھائے بیٹھے ہیں اور حزب اختلاف کے کردار کا بہت ہی غلط تصور رکھتے ہیں جنہیں بغض للّٰہی اور اندھا دھند مخالفت کو چھوڑ کر اصل تعمیری کام کرنے کی طرف متوجہ ہونا چاہیئے، تاکہ حکومت کی تعمیری اور مفید سرگرمیوں کو ان کی بھی تائید حاصل ہو اور ان کے خلوص نیت کا لوگوں کو بھی علم ہو۔ صدر پاکستان کی اس رائے سے کون اتفاق نہ کرے گا کہ کیا ذاتی و سیاسی مقصد برآری کے لئے ملک میں انتشار اور بے چینی پھیلانا کوئی نیکی ہے، خصوصاً جبکہ باہر دشمن اپنے دندان آز تیز کئے بیٹھا ہے؟ سیاست دانوں کو ہرگز زیب نہیں دیتا اور نہ یہ حب وطن ہی ہے کہ عوام کی سادگی اور ان کے مذہبی لگاؤ سے ناجائز فائدہ اٹھایا جائے۔ کیا یہ کوئی دینی خدمت ہے کہ مذہب کی آڑ میں اپنا الّو سیدھا کیا جائے؟

یہ تو ہوئے اپنے اور بیگانے؟ ان کے ہتھکنڈے بھی کچھ کم نہیں۔ آسام اور تری پورہ کے بدنصیب مسلمانوں کا انخلا جاری ہے۔ اور جموں و کشمیر کی سنگین صورت حال کے ساتھ یہ بھی ہمارے لئے مسلسل پریشانی کا باعث رہا ہے اور ہے۔

ان ایام میں جو کچھ در پردہ تھا برافگندہ نقاب سامنے آگیا ہے۔ یہ کہ جس چیز کا قانوناً و اخلاقاً استحقاق نہیں وہ اس ترکیب سے ضم ہو جائے۔ اخلاقی قدریں، مسلّمہ بین الاقوامی وعدے، عالمی رائے عامہ اور دوست ملکوں کے مشورے سب اس لئے ہیں کہ انہیں گلدستۂ طاق نسیاں بنایا جائے اور زیر دستوں کے جذبات افواج کے پاؤں تلے کچل دیئے جائیں۔ ایسی جارحانہ کارروائیاں کس کے ماتھے پر کلنک کا ٹیکہ نہ ہوں گی، خواہ وہ کوئی ہو۔ اس سے اس کو کوئی فائدہ نہیں پہنچ سکتا۔ دوسری طرف ایسے اقدامات سے ہمارے اس عزم صمیم میں ذرہ برابر فرق نہیں پڑے گا کہ ہم عوام کو ان کا حق دلائیں تاکہ جو بھی فیصلہ ہو حق و انصاف کے مطابق ہو۔ معلوم نہیں ہمارے 'یاران عزیز' ہمیں دنیا میں اپنا سب سے بڑا دشمن کیوں سمجھتے ہیں، حالانکہ ہم ہر تنازعہ کو پُرامن اور منصفانہ طور پر حل کرنے کی ہر ممکن کوشش کرتے رہے ہیں اور اب بھی اس پر کاربند ہیں۔

قدرتی بات ہے کہ جب کسی کو دھڑا دھڑ عسکری امداد حاصل ہوتی جائے تو وہ من مانی کرنے پر تُل جاتا ہے اور بظاہر ہدف خواہ کچھ بھی ہو مگر اصل ہدف کوئی اور ہی ہوتا ہے۔ شاید وہ غلطی سے اسی کو حقیقی غنیم سمجھ لیتا ہے۔ یقین جانیئے۔ یہ سلاح پوشی اس غنیم کے ساتھ کبھی جنگ پر منتج نہیں ہوگی اور پھر وہ دن آجائے گا جب 'بھائی بھائی' کا راگ الاپا جائے گا۔ ایسے حالات میں جنگ مغلوبہ ہی کی طرح ڈالی جا سکتی ہے اور وہ یوں کہ ہم اپنی صفوں ہی کو مستحکم کریں اور ہر جارحانہ اقدام کا ترکی بہ ترکی جواب دیں۔

سب سے بڑی ضرورت حقیقت پسندی ہے۔ ہمارے دانشوروں کو لازم ہے کہ وہ عوام کی فلاح و بہبود کی باتیں سوچیں اور خواہ مخواہ فضول نظریوں، نعروں اور جذباتی اپیلوں سے کام نہ لیں۔ ضرورت یہ بھی ہے کہ زمین پر قدم جمائے جائیں نہ کہ خلاؤں میں خیالی پرواز سے کام لیا جائے۔ مطلب یہ کہ ہمیں قوم کے حقیقی مسئلوں کا جائزہ لینا اور ان کے حل سوچنا ہے۔

پچھلے دنوں ہمارے اخبار نویسوں نے اسی حقیقت پسندی کا ثبوت دیا ہے جو ان کے موجودہ نسبتہً بہتر معیار میں منعکس ہے۔

(باقی صفحہ ۵۸ پر)

معاشری خدمات کی حوصلہ افزائی
(جوبلی اسلامیہ کالج پشاور)

لیاقت میموریل : مجوزہ عمارت کا نقشہ (راولپنڈی)

اراکین بنیادی جمہوریت و عمائدین شہر سے خطاب (نواب شاہ)

مشائخ کانفرنس کراچی : معمار حرم باز بہ تعمیر جہاں خیز

اے آمدنت : قبائلی طلبہ کی طرف سے خیر مقدم

جوبلی

اسلامیہ کالج پشاور
اولین جدید درسگاہ،
سابق صوبۂ سرحد۔
(تاسیس: ۱۹۱۰ء)

روحانی تعلیم کا سرچشمہ

کالج سے متعلق شفاخانہ

ب سر صاحبزادہ عبدالقیوم خان
وم (سیاسی اصلاحات اور ترویج
تعلیم کے محرک اعظم)

اسلامیہ کالج، جو اب ترقی کر کے یونیورسٹی بن چکا ہے

۱۰ ۔ ۹ ۔ ۹

تصوّر:

مسافرانِ شب

(قائدِ اعظمؒ اور انقلاب کی روشنی میں)

الطاف پروانہ

یہ شبِ تیرہ و پُرہول، یہ خاموش سماں
وقت تھمتا تو نہیں ہے لیکن۔
وقت جیسے کہ تھما جاتا ہے
کوئی دریا نہ درخت،
کوئی جھرنا نہ پہاڑ
ایک چپ، سکھ سے بہت دور
دکھوں سے بھرپور!
ایسی تنہائی کہ سایہ بھی جدا ہے مجھ سے!

(وقفہ)

آئی تنہائی کی رات
رات، بھیانک رات
مرا دل ڈرتا ہے
جیسے طوفان، گھپ اندھیارا
ٹوٹی نیّا۔ دور کنارا
ہاتھ کو دے نہ سجھائی ہات
آئی تنہائی کی رات
پل پل بڑھتے غم کے سائے
کوئی نہیں جو دھیر بندھائے
پیار میں دکھی ہات ہی مات
آئی تنہائی کی رات
ایک اکیلا نیر بہاؤں
آپ ہی اپنا دھیان بٹاؤں
کوئی نہ سمجھے میری بات

آئی تنہائی کی رات
تو مالک، تو داتا سب کا
تو والی، تو آقا سب کا
تو منزل تو راہِ نجات
آئی تنہائی کی رات

آہ، دل ڈرتا ہے
ہر بات پہ، ہر آہٹ پہ
گو یہاں کچھ بھی نہیں
بات، نہ آہٹ، نہ اجالا نہ دھواں
پھر بھی دل ڈرتا ہے یاں کوئی نہیں
اور نہ کوئی آئے گا۔
کہ یہ صحرا، یہ ٹھکانہ غم کا
زیست کے سایۂ الطاف سے ہے دور بہت،
اس قدر دور کہ امید کی رو
پَر لگا کر بھی جو چاہے تو نہیں آ سکتی
لیکن اے ربِ علیٰ! خالقِ ہر انس و ملک!
تو رگِ جاں سے بھی رہتا ہے قریب
میں نہ گر دیکھ سکوں تو تو مجھے دیکھتا ہے
تو شناسا ہے مرے دردِ نہاں سے آقا!
تو جو چاہے تو یہ ویرانۂ پُرہول ابھی
شورشِ زیست کا گہوارہ بنے
اور یہ رات کہ ہیبت کا مکاں ہے گویا

صبح رنگیں سے بدل جائے کہ تو قادر ہے۔
رات اور دن بھی مری طرح ہیں تیری مخلوق
وقت بھی تیرا ہی شہکار دوام
اب خموشی کا بھی جادو ٹوٹے
یہ خموشی، یہ مری تنہائی
کسی ہنگامۂ رنگیں سے بدل جائے کہ میں
اپنے ارمانوں کا خوں دیکھ نہیں سکتا
میرے آقا! کوئی آواز،
کسی دوست کی آواز سنوں
لطف فرما کہ یہ کانٹے نہ رہیں، پھول چنوں

اللہ اکبر، اللہ اکبر
تُو راہ رو ہے رکنے نہ پائے
یہ رات دن تو ہیں تیرے سائے
حیرت ہے، ان سے تو خوف کھائے!
تقدیر تیری صبحِ منوّر
اللہ اکبر، اللہ اکبر
بڑھتا چلا جا منزل بہ منزل
ہے وہم تیرا گرداب و ساحل
مولیٰ ہے کیوں آنکھ ڈرتا ہے کیوں دل
سو دونیاں ہیں دولت ابھر کر
اللہ اکبر، اللہ اکبر

باغ اور بن ہیں دھوکا نظر کا
یہ تیرگی پیش خیمہ سحر کا
ہے عشق سلطان بحر اور بر کا
ہے عشق تیرا ہر آن رہبر
اللہ اکبر اللہ اکبر

خورشید نو ہے مشرق سے ابھرا
پھولوں سے پُر ہے دامانِ صحرا
تو وقت کو دے بڑھ کر سہارا
تو بحرِ الفت کا ہے شناور
اللہ اکبر اللہ اکبر

پھول ہی پھول، اجالا ہی اجالا
وہ شبِ تیرہ و پُر ہول، وہ خاموش سماں
میری تقدیر نہ تھا!
کیا یہ سب وہم تھا
خود میری نظر کا دھوکا؟
پر یہ آواز
الٰہی یہ صدا کس کی تھی؟
کیا میں تنہا بھی نہ تھا؟
تھا کوئی اور بھی اس دکھ بھرے ویرانے میں؟
کون تھا؟ اب وہ کہاں ہے؟
اسے کس جا دیکھوں؟
اب تو شب بیت گئی
صبح تو آبھی گئی لے کے اجالوں کا پیام
پھر وہ روپوش ہے کیوں؟
میں پکاروں نہ اسے؟ دوالہانہ

آواز دینے والے!
آواز دے دوبارا
تو کون ہے کہاں ہے
کس کنج میں نہاں ہے
اک بے کلی ہے دل کو
پھر آرزو جواں ہے

کوئی نہیں سہارا
آواز دینے والے!
آواز دے دوبارا
جادو جگا گیا ہے
حیران بنا گیا ہے
میں بے نوا مسافر
تو رہ دکھا گیا ہے
آ، سامنے خدارا
آواز دینے والے!
آواز دے دوبارا

تجھ سے ہوا اجالا
تو نے دیا سنبھالا
میں گھر گیا تھا غم میں
تو نے مجھے بچا لا
تو صبح کا ستارا
آواز دینے والے!
آواز دے دوبارا

اور پھر میں نے پکارا اُسے یوں جیسے کوئی
رنج و مصیبت کا اسیر
ہر آڑے وقت پہ مایوس جہاں سے ہو کر
دل کی ہر ٹیس کو آواز بنا لیتا ہے
میری آواز، مرے دل کی غم آمیز پکار
صبح کے نور میں تحلیل ہوئی، پھیل گئی
دور تک دشت و جبل گونج اٹھے
بازگشت آئی تو یوں جیسے وہ خود
نغمہ فشاں، رقص کناں آ پہنچا
گھنٹیاں بجنے لگیں،
کارواں دامنِ صحرا میں جو خوابیدہ تھے بیدار ہوئے
ایک آواز بنی، عشقِ فرومایہ کا اعجاز بنا
حسن، سامانِ نظر، دعوتِ نظارہ بنا
بے کلی مٹ گئی،
اس کی آواز
مرے دل کی صدا، ایک ہوئی
اور دوئی مٹ گئی، تنہائی کا غم دور ہوا

جاگا پیار کا جادو
بیت گئے اندھیارے
کرن کرن سے آن ملی ہے
کلی کلی مسکا کے کھلی ہے
مہک اٹھے نظارے
جاگا پیار کا جادو
بیت گئے اندھیارے

اجلی اجلی پیار کی راہیں
پھیلی ہوئی جیون کی باہیں
امرت رس کے دھارے
جاگا پیار کا جادو
بیت گئے اندھیارے

بانٹ لئے غم سارے اپنے
آس کے بندھن، سندر سپنے
گیت سلونے پیارے
جاگا پیار کا جادو
بیت گئے اندھیارے

منزل منزل ساتھ چلیں گے
غم سے سدا ہم دور رہیں گے
اک دوجے کے سہارے
جاگا پیار کا جادو
بیت گئے اندھیارے

★

شخصیات:

افق تاب

(صاحبزادہ سر عبدالقیوم مرحوم)

احسان اللہ دانش

انیسویں صدی کے وسط میں جب درانیوں کی قوت کمزور پڑ گئی اور ان کی سلطنت کا جو دلّی اور کشمیر تک پھیلی ہوئی تھی، شیرازہ بکھر گیا تو اس کا سب سے زیادہ اثر ان لوگوں پر بالخصوص پڑا جو کوہِ سلیمان کے مشرقی جانب رہتے تھے۔ بعد کو جب انگریزوں اور روسیوں کے مابین افغان دربار میں اثر و رسوخ بڑھانے کا مقابلہ شروع ہوا تو افغنوں کی حالت اور بھی خستہ ہو گئی۔ رنجیت سنگھ اور اس کے جانشینوں نے سرحد کے بعض علاقوں کو جی بھر کر لوٹا، بلکہ ہری سنگھ نلوہ کی بربریت تو آج بھی پشتو میں ایک کثیر الاستعمال ضرب المثل کی طرح موجود ہے۔ غرض سابق صوبہ سرحد ایک عجیب انتظامی افراتفری کا شکار رہتا جس میں نہ کسی کی جان محفوظ تھی اور نہ مال۔ جابجا لڑائیوں نے قحط کی صورت پیدا کر دی تھی۔ انگریزوں نے جب زمامِ اقتدار سکھوں سے اپنے ہاتھ میں لی تو حالات کچھ سنبھل گئے لیکن غیور پٹھانوں نے تسلط فرنگ کو کبھی پوری طرح قبول نہ کیا اور برابر آزادی حاصل کرنے کی کوششوں میں مصروف رہے۔ نتیجتاً حاکم اور محکوم کے درمیان ایک خلیج بھی پیدا ہو گئی جو روز بروز بڑھتی رہی برادرانِ وطن نے حسبِ معمول اس صورتِ حال سے خوب فائدہ اٹھایا اور ایوانِ حکومت میں داخل ہو کر مسلمانوں کی اس شجاع قوم کو اپنی زبان و قلم کے تیروں اور انگریزوں کی سنگینوں کا نشانہ بناتے رہے۔ کچھ یہی صورتِ حال تھی جو سر سید کو اپنے زمانے میں دلّی کے زوال کے بعد درپیش آئی تھی۔ سابق صوبۂ سرحد میں بالخصوص اس صورتِ حال کے مقابلہ کی ضرورت تھی اور ادھر بھی ایک سر سید کے لئے آنکھیں متلاشی تھیں۔ ایسی ہی شخصیت عبدالقیوم خاں (نواب سر صاحبزادہ) کی تھی۔ غرض یہ ہے کہ اس عظیم شخصیت سے ہماری قوم آشنا ہو، بالخصوص وہ ہونہار نوجوان جو ان کی بابت بہت ہی کم یا کچھ بھی نہیں جانتے۔

نواب سر صاحبزادہ عبدالقیوم خاں ۱۸۶۴ء میں پیدا ہوئے قرائن سے ظاہر ہوتا ہے کہ انہوں نے اپنے لڑکپن میں سر سید رحمہ کا شہرہ ضرور سنا ہو گا اور ان حالات سے بھی آگاہی ہو گئی ہو گی جو اس عظیم ہستی کے ساتھ ہمارے ذہن میں آتے ہیں۔ سر صاحبزادہ عبدالقیوم خاں پٹھانوں کے مشہور لودھی خاندان سے تعلق رکھتے تھے۔ ۱۵۲۶ء میں جب سلطان ابراہیم لودھی نے شہنشاہ بابر کے ہاتھوں پانی پت کے مقام پر شکست کھائی تو بعض لودھی شہزادے افغانستان میں پناہ لینے پر مجبور ہو گئے۔ بعد میں جب احمد شاہ ابدالی نے مرہٹوں کا قلع قمع کرنے کے لئے ہندوستان پر حملہ کیا تو انہی لودھی شہزادوں کے خاندان کا ایک فرد عبدالکریم غازیوں کے لشکر کے ساتھ جہاد کی غرض سے ادھر آیا۔ احمد شاہ تو پانی پت فتح کرنے کے بعد لوٹ گیا۔ مگر عبدالکریم نے یوسف زئی علاقے کے ایک چھوٹے سے گاؤں ٹوپی میں سکونت اختیار کر لی۔

عبدالکریم ایک صوفی منش بزرگ تھے اور زیادہ تر عبادت و ریاضت ہی میں مصروف رہتے۔ یہی وجہ تھی کہ مقامی پٹھانوں میں ان کی قدر و منزلت بہت بڑھ گئی۔ لوگ ان کی روحانی عظمت کے باعث "بابا" کہہ کر پکارتے تھے ان کی اولاد کو، جو تین لڑکوں پر مشتمل تھی اسی نسبت سے "صاحبزادہ" کہتے تھے۔ بڑے لڑکے صاحبزادہ شمس الدین کی اولاد میں سے ایک صاحبزادہ قطب عالم (پ ۱۸۰۰ء) تھے جنہوں نے اپنے زمانے کے ایک مشہور صوفی و مصلح حضرت سید امیر رحمہ سے، جو ٹوپی سے تھوڑی ہی دور ایک گاؤں کوٹھے کے رہنے والے تھے، بیعت کی تھی۔ بعد میں حضرت صاحب نے اپنی ہمشیرہ کا نکاح بھی صاحبزادہ قطب عالم سے کر دیا تھا۔ اس طرح علاقے کے دو جلیل القدر خاندان متحد ہو گئے۔

صاحبزادہ قطب عالم کے لڑکے صاحبزادہ عبدالرؤف بھی اپنے والد کے نقش قدم پر چلے اور اپنے ماموں حضرت سید امیر رحمہ سے ارادت اختیار کی۔ ۱۸۵۸ء میں صاحبزادہ عبدالرؤف کی شادی حضرت سید امیر

کی صاحبزادی سے ہوئی، جن کے بطن سے ان کی تین لڑکیاں اور ایک لڑکا پیدا ہوا۔ دو لڑکیاں تو بچپن ہی میں وفات پا گئیں مگر ایک لڑکی خیر النسا اور ایک لڑکا زندہ رہا۔ یہی لڑکا بعد میں شہرت و ناموری کے آسمان پر مہرِ عالمتاب بن کر چمکا اور خان بہادر نواب سر صاحبزادہ عبدالقیوم خان (کے۔سی۔آئی۔ای، سی۔آئی) کے نام سے روشناسِ خلق ہوا۔

صاحبزادہ موصوف ابھی نو سال ہی کے تھے کہ والدہ کا انتقال ہو گیا۔ تھوڑے ہی عرصے بعد ان کے والد شہید ہو گئے۔ اب یہ دونوں بہن بھائی یتیم ہو چکے تھے۔ حضرت سید امیرؒ نواسوں کو کوٹھہ لے آئے اور یہیں صاحبزادہ صاحب نے اپنی ابتدائی تعلیم حاصل کی۔ ثانوی درجے کی تعلیم کے لئے موصوف کو پشاور کے مشن ہائی اسکول میں داخل کرا دیا گیا۔ یتیمی اور گھر سے دوری نے انہیں بڑی مشکلوں میں پھنسا دیا مگر انہوں نے بڑے تحمل سے تمام سختیاں جھیلیں۔ میٹرک پاس کرنے کے بعد صاحبزادہ صاحب کمشنر کے دفتر میں مترجم کی اسامی پر متعین ہوئے اور تھوڑے ہی عرصے میں ضلع ہزارہ کے ڈپٹی کمشنر کے معتمدِ خاص اور میر منشی کے عہدے تک پہنچ گئے۔ ۱۸۹۱ء میں سیالکوٹ میں بندوبست کی تربیت حاصل کرنے کے بعد نواب صاحب نائب تحصیلدار مقرر کئے گئے اور کوہ سمانہ پر میران زئی مہم کے ساتھ خدمات انجام دیں۔ اگلے سال تحصیلدار بنائے گئے۔ تیس سال کی عمر میں اسسٹنٹ پولیٹکل آفیسر کے عہدے تک پہنچے اور کرم ایجنسی میں پولیٹکل ایجنٹ میجر جارج روس کیپل کے ساتھ متعین ہوئے۔ میجر روس کیپل بہت سمجھدار اور علم دوست آدمی تھا۔ اس کی اور صاحبزادہ کی بہت دوستی تھی۔ اسلامیہ کالج پشاور کا قیام اسی زمانے کے مراسم کا نتیجہ تھا۔

اسی زمانے میں برطانوی اور افغان حکومتوں کے درمیان سرحدی معاہدہ بھی ہوا تھا۔ حکومت نے سر صاحبزادہ کو "انڈو افغان باؤنڈری کمیشن" کا رکن مقرر کیا جہاں انہوں نے بڑے تدبر کا ثبوت دیا۔ جب ۱۸۹۲ء میں مہمندوں اور انگریزوں میں ان بن ہوئی تو صاحبزادہ صاحب کی ہی کوششوں سے ان کے درمیان باعزت سمجھوتہ ہوا۔ اگلے سال تیراہ کے آفریدی قبائل اور انگریزوں کے درمیان جنگ چھڑی۔ انگریزی فوج نے تیراہ پر یلغار کی لیکن صاحبزادہ صاحب نے اس کو بھی رکوا دیا اور آفریدیوں کی آزادی سلب ہونے سے محفوظ ہو گئی۔ ۱۸۹۸ء میں انہیں خیبر ایجنسی کا اسسٹنٹ پولیٹکل ایجنٹ مقرر کیا گیا۔ کچھ ہی عرصے کے بعد پولیٹکل ایجنٹ مقرر ہوئے اور ۱۹۱۹ء تک اس عہدۂ جلیلہ پر فائز رہ کر سبکدوش ہو گئے۔

یہ تو داستان تھی اُن کی شخصی ترقی اور عزت و توقیر کی اب کچھ ذکر ان کی ملی و تعلیمی خدمات کا پیش کیا جاتا ہے:

بیسویں صدی کے آغاز میں ہند و پاکستان میں انگریزوں کی حکومت مستحکم ہو چکی تھی۔ اور صرف اغیار ملازمتوں پر فائز، نظم و نسق پر قابض تھے۔ مسلمانوں بالخصوص پٹھانوں کو انگریز ہندوں کا دشمن ثابت کر کے اپنی ترقی کے خواہشمند رہتے تھے۔ نتیجہ یہ ہوا کہ وہ سیاسی، معاشرتی، تعلیمی، ہر میدان میں پیچھے رہے جا رہے تھے۔ صاحبزادہ صاحب کی دوررس نظریں ان تمام ناگفتہ بہ حالات کو دیکھ رہی تھیں۔ مگر انہوں نے تہیہ کر لیا تھا کہ وہ اپنی قوم کو اس گڑھے میں گرنے سے ضرور بچائیں گے۔ چنانچہ اس مقصد کے حصول کے لئے وہ عرصے تک برابر سوچتے رہے۔ قومی ادبار کو دور کرنے کا واحد علاج تعلیم ہی تھا اور وہ چاہتے تھے کہ ہمارے پٹھان بھائی بھی تعلیم کی طاقت حاصل کریں۔ اس ضمن میں ان کے سامنے سر سیدؒ کے تعلیمی مشن کی مثال موجود تھی۔ چنانچہ انہوں نے "دارالعلوم اسلامیہ سرحد" جسے آج کل اسلامیہ کالج کے نام سے یاد کیا جاتا ہے کی تشکیل کا ارادہ کیا۔ سر جارج روس کیپل نے اس سلسلے میں نواب صاحب کی بہت ہمت افزائی کی حقیقت یہ ہے کہ اگر اس وقت روس کیپل جیسا ہمدرد شخص مدد نہ کرتا تو اس ادارے کے قیام میں بہت دیر لگتی اور بڑی مشکلات پیش آتیں۔

دارالعلوم کا قیام فروری ۱۹۰۹ء میں ہوا۔ سر جارج روس کیپل اور سر صاحبزادہ دونوں ہی کسی کام سے کلکتہ جا رہے تھے۔ علی گڑھ راستہ میں پڑتا تھا۔ وہاں پٹھان طالب علموں سے بھی کچھ دیر گفتگو کرنے کا موقع ملا۔ انہوں نے سو روپے کی ایک تھیلی سر جارج کی نذر کی تاکہ ان کے لئے علی گڑھ میں ایک پٹھان ہوسٹل کی تاسیس کی جا سکے لیکن سر جارج نے انہیں بتایا کہ نواب صاحب ان کے اپنے ہی وطن میں ایک ایسے ادارے کے قیام کا ارادہ رکھتے ہیں اور ان کی کوششوں میں سب کو مدد کرنی چاہیئے۔ طلباء اس خبر سے بہت خوش ہوئے اور انہوں نے یہ رقم دارالعلوم فنڈ میں بطور چندہ دے دی

یہ پہلا عطیہ تھا جو دارالعلوم فنڈ کے لئے موصول ہوا اس لئے تاریخی اہمیت کا حامل ہے۔

اسلامیہ کالج پشاور کی خشتِ اول ۲۱ مارچ ۱۹۱۲ء کو سر صاحبزادہ کی ایما پر حضرت فضل واحد صاحب (حاجی ترنگ زئی) نے اپنے مبارک ہاتھوں سے رکھی۔ پہلا طالب علم جس نے اس ادارے میں داخلہ لیا، حضرت سید امیر کا نواسا اور نواب صاحب ہی کے خاندان کا ایک نامور فرد، صاحبزادہ محمد خورشید تھا۔ یہی وہ صاحبزادہ خورشید صاحب ہیں جو ۱۹۴۹ء میں سرحد کے اولین پاکستانی گورنر مقرر ہوئے۔

ملازمت سے سبکدوش ہونے کے بعد سر صاحبزادہ اپنے دوست سر جارج روس کیپل سے ملنے لندن گئے۔ واپسی میں سائبیریا، چین، جاپان، ہانگ کانگ اور ملایا بھی گئے۔ مگر جب واپس آئے تو وطن کی سیاسی فضا بدلی ہوئی تھی۔ ہندوستان میں خلافت اور ہجرت کی تحریکوں کا زور تھا۔ نواب صاحب ہجرت کی اس تحریک کو مسلمانانِ ہند کے سیاسی مفاد کے لئے مضرت رساں سمجھتے تھے اور اس کے اصولاً موافق نہ تھے۔ مگر جوش کے سامنے سوجھ بوجھ کی بات نہ چلی اور صاحبزادہ صاحب کو عملی سیاست سے کچھ عرصے کے لئے کنارہ کش ہونا پڑا۔

نواب صاحب اس دوران میں زیادہ تر اسلامیہ کالج کے کام ہی میں منہمک رہے۔ لیکن اس کے ساتھ ساتھ اپنے ہم وطنوں کی سیاسی اور معاشرتی بہبود بھی ان کے مدِ نظر رہی۔ ۱۹۰۹ء اور ۱۹۱۹ء کی دستوری اصلاحات میں کانگرس اور حکومت برطانیہ دونوں ہی صوبہ سرحد کو حقوق دینے کے مخالف رہے جس سے سرحد کے باشعور طبقوں میں شدید ردِ عمل پیدا ہوا۔ نواب صاحب سرحد کے لئے حقوق حاصل کرنے میں سب سے پیش پیش تھے۔ مگر جب ۱۹۲۱ء میں وہ شمالی افریقہ کے راستے دوبارہ لندن گئے یہ سرگرمیاں تعویق میں پڑ گئیں۔ واپسی کے سفر میں وہ امریکہ، اسپین، شام و بیت المقدس ہی نہیں گئے بلکہ مدینہ منورہ پہنچ کر دربار نبویؐ میں بھی حاضری دی۔

۲۳-۱۹۲۲ء میں حکومت نے سر ڈینز برے کی صدارت میں ایک کمیٹی صوبۂ سرحد کے مسئلہ حقوق کا جائزہ لینے کے لئے مقرر کی۔ اس کمیٹی کے ارکان کو سر صاحبزادہ اسلامیہ کالج بھی لے گئے۔ برصغیر کے اس دور افتادہ علاقہ میں اتنا شاندار ادارہ اور اس قدر صحت مند ماحول دیکھ کر سر ڈینز برے دنگ رہ گئے۔ انہوں نے حکومت ہند سے سفارش کی کہ اس مفید کام کو ترقی دینے کے لئے نواب صاحب کو مرکزی قانون ساز کونسل کا رکن نامزد کیا جائے۔ مجلس قانون ساز میں نواب صاحب نے ۱۹۲۳ء سے ۱۹۳۲ء تک کام کیا۔ اور اصلاحات کے لئے میدان ہموار کرتے رہے۔ مرکزی اسمبلی میں بھی کانگرس سرحد کو اصلاحات دینے کی مخالف رہی۔ قائداعظم اور علامہ اقبال نے برابر سر صاحبزادہ کے مؤقف کا ساتھ دیا۔

اس زمانے میں پہلی جنگِ عظیم ختم ہو چکی تھی اور ہندوستانی رہنما حکومت برطانیہ کو مجبور کر رہے تھے کہ وہ برصغیر میں مزید آئینی اصلاحات نافذ کریں۔ چنانچہ اس سلسلہ میں ایک گول میز کانفرنس منعقد ہوئی جس میں صوبہ سرحد کی نمائندگی کے لئے نواب صاحب ہی کو منتخب کیا گیا۔ کانگرس کے لیڈر وہاں بھی مسلمانوں خاص کر پٹھانوں کو نقصان پہنچانے کے درپے رہے۔ لیکن نواب صاحب نے اپنی استقامتِ کردار اور سلاستِ گفتار دونوں سے کام لیا اور مخالفین کے منہ بند کر دیئے۔ چنانچہ حکومت کو مجبور ہو کر سرحدی اصلاحات کا مطالبہ تسلیم کرنا پڑا۔

اس موقع پر سر عبدالقیوم نے خوب کہا تھا: "مجھے علم نہیں کہ آپ نے مجھے اپنی اس پگڑی کی وجہ سے تقریر کرنے کی اجازت دی ہے۔ یا انصاف کے اس تقاضے کے تحت کہ جنوب کے رہنے والوں کی طرح شمال مغرب کے پسماندہ صوبوں کو بھی اپنے معروضات پیش کرنے کا حق ہے۔ بہرکیف، جناب والا! اس روشن دور میں فقط آپ ہی ہیں جو اچھوت پر چار کر رہے ہیں۔ مگر ہم پسماندہ صوبوں کے رہنے والوں کو زندگی کے عام حقوق بھی نہیں دیتے۔ ہماری قوم عرصے سے اصلاحات کے لئے چیخ پکار کر رہی ہے لیکن کوئی نہیں سنتا۔ آخر یہ کمتری کا دھبہ ہماری پیشانیوں پر کب تک رہے گا؟" آخر میں انہوں نے فرمایا: "میں اپنی تقریر کو اپنی زبان پشتو کے ایک محاورے پر ختم کرتا ہوں جس میں کہا گیا ہے کہ ایک پسو بھی اگر آپ کے جامہ میں گھس جائے تو آپ کو عذاب میں مبتلا کر دے گا۔" برطانوی وزیر اعظم مسٹر ریمزے میکڈانلڈ پر نواب صاحب کی تقریر کا بڑا اثر ہوا، اور انہوں نے سر صاحبزادہ کو ایک ناممکن الحصول مطالبہ تسلیم کرا لینے پر دل سے مبارکباد بھی دی۔

۱۸ اپریل ۱۹۳۲ء کو اس مجاہد ملت کی کوششیں بار آور

باقی صفحہ پر

ڈراما:

اے روشنیوں کے شہر!

احمد فراز

(گھڑیال سات بجاتا ہے اور پھر کسی آباد بازار کی
مختلف آوازیں فیڈ اِن ہوتی ہیں۔ ان آوازوں میں بعض
کاروں کے ہارن، گھنٹیاں، قہقہے، اور بال روم کی
موسیقی ہے۔)

بوڑھا: (کھانستے ہوئے، اپنے آپ سے)
اف یہ جاڑے کی خنک شام،
یہ ٹھنڈے جھونکے — جسم مفلوج ہوا جاتا ہے
جیسے شریانوں میں تھم جائے لہو کی گردش
یہ بڑھاپا، یہ خزاں کا موسم
دونوں بے رنگ، حرارت سے تہی — دونوں محرومِ تپش
جل چکا کب سے بڑھاپے کے جہنم میں گنہگار بدن کا ایندھن
اب تو اک پیکرِ خاکستر ہوں
زندگی راکھ کا ڈھیر
اب کوئی آگ اسے حدتِ جاں تاب نہیں دے سکتی
اف یہ جاڑے کی خنک شام
یہ ٹھنڈے جھونکے
(لہجہ بدل کر) خالدہ!
بند کر دے یہ دریچے کے کواڑ
کتنی بے رحم ہے بیٹی تو بھی،
میں چراغِ سحری، اور تجھے
طلبِ بادِ شمال
کیا اسی دن کے لئے تجھ کو جواں ہونا تھا!
(اپنے آپ سے)
کاش اس دخترِ بے فیض کے بدلے قدرت
بے ثمر رکھتی مرا نخلِ حیات! بے ثمر رکھتی مرا نخلِ حیات

آمنہ: (قدرے دور سے، سن رسیدہ آواز)
کیا ہوا؟ کیوں بلا وجہ پریشان ہوئے جاتے ہو؟
اک ذرا صبر کرو
آگ روشن کئے دیتی ہوں ابھی
تم کو زیبا نہیں ہر وقت جواں بیٹی کو
ایسے مطعون کرو
خالدہ بیٹوں سے بڑھ کر ہی پیاری بیٹی
کس قدر نیک ہے، معصوم ہے، سنجیدہ ہے
ہم کہ اب ٹوٹتی گرتی ہوئی دیواریں ہیں
اس کا معصوم سہارا بھی بہت ہے ہم کو
جو شب و روز جوانی کے تقاضوں کو نچھاور کر کے
ہم پہ قربان ہوئی جاتی ہے
بوڑھے ماں باپ کی خدمت پہ کمربستہ ہے

بوڑھا: آمنہ کتنی کم فہم ہے تو
تیری کوتاہ نظر
صرف امروز کی محرم ہے مگر
تجھ کو فردا کی خبر کچھ بھی نہیں
آہ میں کیسے کہوں، کیسے تجھے سمجھاؤں
خالدہ کس لئے ہر شام کئی پہروں تک
اپنے ماحول سے بیگانہ کسی دھیان میں گم
اس دریچے میں کھڑی رہتی ہے۔

آمنہ: یوں اگر ہے بھی تو پھر
کون ظلم ہوا

دن بھر اسکول پڑھانا بھی تو کچھ سہل نہیں
نوکری ایک اذیت ہے، کوئی کھیل نہیں
اور وہ بیچاری تھکن کی ماری
شام کے وقت کبھی اپنے دریچے میں کھڑی
خود کو بہلائے اگر شہر کے نظاروں سے
تو یہ معصوم سی تفریح بھی ہے جرم عظیم
کتنے خود غرض ہیں احسان فراموش ہیں ہم
کتنے بے درد ستم کوش ہیں ہم
(دھیمے اور اداس لہجے میں)

خالدہ!
کتنی بدبخت ہے تو
کتنی بے رنگ ہے معصوم جوانی تیری
تیری قسمت میں نہیں ہے شاید
کہ تری مانگ میں افشاں کے ستارے چمکیں
کہ ترے ہاتھوں میں گلزار حنا کے مہکیں
تیری تقدیر میں محنت کے بیاباں ہیں فقط
اور ماں باپ کی بوڑھی لاشیں
کتنی بدبخت ہے تو!
(سسکیاں لینے لگتی ہے۔ دور سے خالدہ کے گنگنانے کی آواز آتی ہے)

بوڑھا: سُن۔ سُن یہ آواز کہ اس میں ہے نہاں
تیری بیٹی کا سسکتا فردا
غم فشاں نوحہ کناں!
خالدہ میری نظر میں بھی ہے معصوم مگر
مجھ کو اس ہنستے ہوئے شہر سے خوف آتا ہے
اس کے ہنگاموں سے، رعنائیوں سے
جگمگاتی ہوئی راہوں سے، چمکتے ہوئے بازاروں سے
قہقہوں اور مہکتی ہوئی خوشبوؤں سے
اس کے نغموں سے حسیں رنگوں سے
اس کی دیواروں سے نظاروں سے خوف آتا ہے...
تو نہیں جانتی
اس شہر کی یہ روشنیاں
چھین لے جائیں گی اک روز ترے اور مرے گھر کا یہ ننھا سا
یہ معصوم چراغ
آنکھ کا نور، بڑھاپے کا سکوں۔ خالدہ
(خالدہ کی آواز اوپر حاوی ہو کر ابھرتی ہے)

خالدہ: اے روشنیوں کے شہر
اے روشنیوں کے شہر!
سورج ڈوب چلا تو کتنے دیپ جلے
شام کے سائے روشنیوں میں ڈوب چلے
یہ خوشبو کے بوجھل جھونکے
یہ کرنوں کی نہر
اے روشنیوں کے شہر
اے روشنیوں کے شہر
یہ لوگوں کے ہنستے ارمانوں کے روپ
رات ہوئی تو دمک اٹھی چہروں کی دھوپ
میرے دل میں کیوں ہے اک
انجانے درد کی لہر
اے روشنیوں کے شہر
اے روشنیوں کے شہر
تیرے ہنگاموں کی دنیا نور ہی نور
میرے دھیان میں تاریکی ہے میں مجبور
میں کیا جانوں میں کیا سمجھوں
تو امرت یا زہر
اے روشنیوں کے شہر
اے روشنیوں کے شہر
(نغمہ فیڈ آوٹ ہو جاتا ہے اور موسیقی
سے منظر بدلنے کا تاثر پیدا ہوتا ہے۔
ہال میں ایک مصوّر کی تصویروں کی
نمائش ملے ہجوم کی ملی جلی آوازوں کے
اثرات)

آواز ۱: خوب تصویریں ہیں
۲: کتنی ترتیب سے آویزاں ہیں۔

۱: ہاں کسی فن کی نمائش بھی تو اک فن ہے
۲: ذرا دیکھو تو
۱: اس طرف دیکھو یہ تصویر۔
۲: "غزالِ صحرا" فن کی معراج ہے یہ۔ جس طرح قاف کی آوارہ
پری ہو کوئی۔
۱: اے مصور ترے ہاتھوں کی بلائیں لے لوں
۲: خوب تصویر بنائی مرے بہلانے کو
۱: "صبح نو"
۲: قابل داد ہے ان رنگوں کی آمیزش بھی
۱: کتنے موزوں ہیں یہ باریک خطوط
۲: نور و ظلمت کی کشاکش کا عجب منظر ہے
۱: جس طرح شب کی قبا چاک ہوئی جاتی ہو
۲: آبشار۔ کلۂ کوہ سے گرتا ہوا دریا، توبہ!
۱: کتنی بپھری ہوئی ہر موج نظر آتی ہے
۲: جیسے ہر سنگِ گراں ٹوٹ کے بہہ جائے گا
۱: جو بھی تصویر ہے شہکار ہے، فن پارہ ہے۔

(یہ آوازیں رفتہ رفتہ دور ہوتی
جاتی ہیں اور دو نسوانی آوازیں
ابھرتی ہیں)

سلمیٰ: ارے زاہدہ، تم بھی موجود ہو
زاہدہ: کون؟ سلمیٰ ... یونہی بس چلی آئی تھی
اس مصور کے فن سے عقیدت ہے مجھ کو
سلمیٰ: بڑی خوبصورت تصاویر ہیں
زاہدہ: واقعی فن کے شہکار ہیں
سلمیٰ: جس کو دیکھو وہی نقش ہائے مصور میں گم بت بنا ہے
ارے! خالدہ اور یہاں۔
زاہدہ: کیوں، اسے دیکھ کر تم کو حیرت ہوئی ہے۔
سلمیٰ: بچاری کی تقدیر میں صرف اسکول ہے اور گھر ہے۔
زاہدہ: مگر آج تو وہ نمائش میں آئی ہوئی ہے
خدا جانے کیسے بچاری کا مفلوج باپ اور معذور ماں
دونوں اس کے سہارے پہ زندہ ہیں ....

اور خالدہ خود بھی اس عمر میں فلسفی بن چکی ہے
کہ جیسے کسی اور دنیا کی باسی یہاں آ گئی ہو
اسے آرٹ سے ہے لگاؤ
مگر زندگی کے کسی اور رخ سے محبت نہیں ہے
زاہدہ: بچاری اکیلی کھڑی ہے .....
چلو اس سے باتیں کریں
سلمیٰ: زاہدہ، تم نہیں جانتیں ...
اس کی دنیا انہیں سرد تنہائیوں ہی سے آباد ہے
دیکھ لو ایک تصویر کے سامنے۔ کیسے مبہوت ہے
زاہدہ: اور ہاں اس کے ہونٹوں کی جنبش کہ جیسے کوئی خود سے
محوِ سخن ہو۔
سلمیٰ: چلو اب چلیں لوگ جانے لگے ہیں۔

(ہجوم کی ملی جلی آوازیں
آہستہ آہستہ فیڈ آؤٹ ہو جاتی ہیں)

خالدہ: (اپنے آپ سے): یہ تصویر کس شہر کی ہے؟ سماں
کتنا مانوس ہے
جیسے میری نگاہیں اسے روز و شب دیکھتی ہوں
یہ اونچی عمارات یہ جگمگاتے در و بام۔ روشن دریچے
یہ شفاف سڑکیں، بھڑکتے لبادوں میں خوش باش انسان
حسیں رقص گاہوں میں یہ قمقمے، قہقہے،
زندگی۔ روشنی۔ زندگی۔ روشنی ....
اور یہ ایک گوشے کے سائے میں ڈوبا مکاں
نیم وا اک دریچہ
یہ کیوں روشنی کے سمندر کی قربت میں بھی
اک کرن سے بھی محروم ہے — کیوں؟
نہیں، یہ چمکتا ہوا شہر ...
اور یہ اندھیروں میں ڈوبا مکاں
جیسے میرا ہی شہر اور۔ میرا مکاں ہو
مصور! —
مصور! یہ کس کا مکاں ہے؟
مصور: یہ کس کا مکاں ہے، یہ کس کا مکاں ہے،

مجھے خود نہیں علم یہ روشنی سے چمکتا ہوا جگمگاتا ہوا شہر کس کا ہے
اور یہ اندھیرے میں ڈوبا مکاں خود مرے واسطے اجنبی ہے۔

خالدہ: (چونک کر) کون؟

مصوّر: خاتون! میں ہی وہ مجرم مصوّر ہوں جس کی پریشان تصویر نے
آپ کے ذہن کو اتنا الجھا دیا ہے۔
سبھی لوگ میری بنائی ہوئی ان تصاویر کو دیکھ کر جا چکے ہیں
مگر ان کی آنکھیں
فقط شوخ رنگوں، چمکتی لکیروں، فسوں کار قوسوں میں
کھوئی رہی ہیں
سبھی نے فقط جگمگاتے ہوئے شہر کا نور دیکھا
مگر بھول کر بھی کوئی اس اندھیرے مکاں تک نہ پہنچا
یہ سایوں کی دنیا، اندھیروں کا مسکن
مصوّر کا اک نقشِ نوحہ کناں ہے
یہ ناکام کاوش!
مری نا تمام آرزو اس ہجومِ فراواں میں بھی
اک نگاہِ کرم کو ترستی رہی ہے
یہ توہینِ فنکار کی موت ہے
ہاں یہ توہین — فنکار کی موت ہے

خالدہ: مصوّر مگر اس کی ..... قیمت؟

مصوّر: فقط قدر دانی۔

خالدہ: مرا مدعا ہے ... اگر میں اسے لینا چاہوں

مصوّر: نہیں یہ ابھی نا مکمل ہے

خالدہ: وہ کس طرح؟

مصوّر: اس اندھیرے مکاں کا دریچہ
ابھی منتظر ہے کسی ایسے پیکر کا
جس کے رگ و پے میں یہ جگمگاتا ہوا شہر طوفاں اٹھائے
مگر اس کے قدموں میں ساحل کی زنجیرِ ظلمت پڑی ہو
یہی نور و ظلمت کی پیہم کش مکش
مرے شاہ پارے کو تکمیل کا رنگ دے گی
مجھے اس خیالی ہیولے کی، اس پیکرِ خواب کی جستجو ہے۔
نہ جانے یہ تصویر کب تک ادھوری رہے گی

نہ جانے یہ تصویر کب تک ادھوری رہے گی
(اپنے آپ سے کھوئے ہوئے لہجے میں)
یہ خاتون تصویر میں کس قدر کھو گئی ہے
یہ بکھری ہوئی زلف — جیسے زمانے کا دکھ اس پہ سایہ فگن ہو
یہ غمگین آنکھیں — کہ جیسے کسی خواب گوں جھیل میں
دو کنول شامِ ہستی کے کہرے میں لپٹے ہوئے ہوں۔
یہ گلنار لب جیسے باغِ جوانی کی کلیاں بہاروں کے انجام
سے باخبر ہوں
یہ معصوم چہرہ — کہ جیسے کسی جگمگاتے ہوئے شہر پر دھند سی
چھا گئی ہو
مسلسل اداسی میں ڈوبی ہوئی نوجوانی
خموشی میں بھی نوحہ گر ہے
یہ پیکر وہی ہے جسے میں نے
مغموم صبحوں میں، خاموش شاموں میں ویران راتوں میں
ڈھونڈا
مجھے مل گیا — میرے تاریک و تنہا مکاں کا مکیں
(قریب آتے ہوئے) اجنبی نیک خاتون! میں آپ کی قدر دانی
کا مشکور ہوں
میرے فن کا تقاضا بھی یہ ہے کہ میں آپ کی نذر کر دوں یہ تصویر
لیکن، اگر آپ کچھ روز اس نا مکمل ہیولے کی تکمیل تک ایک
زحمت اٹھائیں

خالدہ: وہ کیسے؟

مصوّر: مری آرزو ہے ... کہ میں اس اندھیرے مکاں کے دریچے میں
اس روشنی کی کرن کھینچ لاؤں
جو اس جگمگاتے ہوئے شہر کی تابناکی سے تابندہ تر ہو
اگر آپ کچھ روز تک شام کو چند لمحے
مرے سامنے آ کے بیٹھیں
تو میں آپ کو اپنی تصویر کے اس دریچے کی زینت بنا دوں
یہ شہکار جس دن مکمل ہو — بس آپ کا ہے۔

خالدہ: مصوّر — مجھے تیرے فن سے عقیدت ہے
گو میری موجودگی تیرے فن کے کسی کام آئے

تو میں .... خواہ کچھ ہو۔ یہاں روز آتی رہوں گی ...
اب یہ شام ڈھلنے کو ہے ... لوگ سب جا چکے
مجھ کو لازم ہے .. اب میں بھی جاؤں

مصوّر: تو کل شام ؟

خالدہ: ہاں. میں ضرور آؤں گی

(موسیقی)

بوڑھا: آمنہ !
ہو چکی شام مگر خالدہ اسکول سے اب تک نہیں واپس آئی
وسوسے مجھ کو پریشان کئے دیتے ہیں

آمنہ: آج کچھ دیر سے آنے کے لئے اس نے کہا تھا مجھ سے
اس کے اسکول کے پاس
اک نمائش تھی۔ وہیں آج اسے جانا تھا
ابھی آتی ہوگی

بوڑھا: ہوں. تو اب۔
اس کو بھی شہر کی رنگینیاں بہکانے لگیں
آخر اس پر بھی یہ پرچھائیاں اب چھانے لگیں
آہ اس شہر کی یہ روشنیاں!
کتنے معصوم چراغوں کو بجھا دیتی ہیں
کتنے تاریک مکانوں کو لٹا دیتی ہیں
آہ اس شہر کی یہ روشنیاں!

آمنہ: جانے کیوں واہمے بدظن کئے دیتے ہیں تمہیں
خود سے، ماحول سے، بیٹی سے، سبھی دنیا سے!
واہمے کتنے گناہوں کو جنم دیتے ہیں
آدمی اپنے تراشے ہوئے بت پوجتا ہے ...
ہم کہ اب عمر کی اس منزلِ تاریک میں ہیں
جس میں اک شمع کی موہوم سی ضو
ایک ہلکی سی کرن
خیرہ کر دیتی ہے آنکھوں کو۔ وہاں
تابِ نظارگیٔ مشعلِ خورشید کسے
اپنی محرومی کا احساس ہے، اس تنگ نگاہی کا سبب،
خود نہیں رکھتے تو اوروں کے بجھاتے ہیں چراغ

بوڑھا: ٹھیک کہتی ہو مگر
یہ مرے واہمے وہ تلخ حقائق ہیں جنہیں
میری بے نور نگاہیں ہی فقط دیکھتی ہیں
یہ نظرسوز نظارے یہ بھڑکتے منظر
یہ چکاچوند یہ جلوؤں کا ہجوم
رنگ و آہنگ کا طوفان۔ یہ سیلِ انوار
اک ملمع ہے. نمائش ہے، دکھاوا ہے جسے
اک فسوں کار نے ہر سمت سجا رکھا ہے
ہائے اس سادہ و معصوم نظر کی قسمت
جو نقط ظاہری جلوؤں سے ہو مسحور مگر
موت کے دام سے بیگانہ رہے
اپنے انجام سے بیگانہ رہے

(خالدہ کے قدموں کی چاپ سنائی دیتی ہے)

آمنہ: خالدہ آگئی۔ بہتر ہے کہ خاموش رہیں

بوڑھا: میں تو خاموش ہوں، خاموش ہی ہو جاؤں گا
میں تو خاموش ہوں، خاموش ہی ہو جاؤں گا

(موسیقی)

(مصوّر کا کمرہ)

(تصویر بنانے میں گم۔ اور اپنی آواز سے خود بے خبری کا)

مصوّر: تیری تصویر کہ خوابوں کا جہاں ہو جیسے
میرا دل میری تمنا، مری جاں ہو جیسے
چشمِ نرگس کو میں کچھ اور بھی حیراں کر دوں
زلفِ آوارہ کو کچھ اور پریشاں کر دوں
جھیل میں پرتوِ مہتاب رواں ہو جیسے
تیری تصویر کہ خوابوں کا جہاں ہو جیسے
جلوہ افروز ہو پردوں میں بھی افسونِ شباب
جس طرح شیشۂ مے سے نہ چھپے عکسِ شراب
آپ سے آپ کھلے جاتے ہیں ہونٹوں کے گلاب
آمدِ صبحِ بہاراں کا سماں ہو جیسے
تیری تصویر کہ خوابوں کا جہاں ہو جیسے
کس قدر سادہ و رنگیں ہے جوانی تیری

میرے ہر نقش میں پنہاں ہے کہانی تیری
فن کی معراج ہے تصویر بنانی تیری
ہر مصوّر تری جانب نگراں ہو جیسے
تیری تصویر کہ خوابوں کا جہاں ہو جیسے

(خالدہ کے قدموں کی چاپ۔
کمرے کا دروازہ کھلتا ہے اور
مصوّر خاموش ہو جاتا ہے)

مصوّر: کون؟ تم خالدہ، آؤ بیٹھو

خالدہ: مصوّر، بڑے خوش نظر آ رہے ہو
کہ جیسے جہاں بھر کی دولت تمہیں مل گئی ہو

مصوّر: بہت خوش ہوں میں، واقعی جس طرح ایک دریوزہ گر کو
کوئی بخش دے ہفت اقلیم کی بادشاہت

خالدہ: ذرا ہم بھی جانیں کہ وہ کون حاتم ہے اور کونسی بادشاہت
ہے جس کے سبب تم وفورِ مسرت سے نغمہ بہ لب تھے۔

مصوّر: سخاوت اگر ہو تو ایسی
کہ دستِ کرم اپنی بخشش سے خود بے خبر ہوں
مرے سامنے ہیں وہ بخشندہ و بادشاہت

خالدہ: (مسرت سے) مصوّر!

مصوّر: مری ناتمام آرزو آج پوری ہوئی ہے
یہ تصویر میری تمنّا کی معراج
دیکھو — اندھیرے مکاں کے دریچے میں
یہ روشنی کی کرن کس قدر ضو فشاں ہے

خالدہ: تو کیا یہ اندھیروں میں ڈوبا ہوا ہی مکاں تھا۔
جہاں آج تابانیاں موجزن ہیں؟

مصوّر: نہیں تم تو خود روشنی ہو
ستاروں کے گھر کب اندھیرے ہوئے ہیں
یہ ظلمت میں ڈوبا مکاں
ایک فنکار کا غمکدہ، اک مصوّر کا تصویر خانہ تھا جس پہ
زمانے کی بے اعتنائی کے سائے پرافشاں رہے ہیں
کسی نے تمہارے سوا یہ نہ دیکھا
کہ اس سیلِ رنگ و طرب میں بھی آخر کوئی نوحہ گر ہے۔

تمہارا کرم تھا کہ تم حسبِ وعدہ
مرے فن کی تکمیل کو میرے ظلمت کدے میں کئی روز تک
روشنی لے کے آتی رہی ہو۔

خالدہ: تو کیا اے مصوّر، تمہارا مکاں بھی اندھیروں میں گم تھا؟
تو کیا ہر مکاں تیرہ و تار سایوں میں ڈوبا ہوا ہے؟
یہ سب روشنی پھر کہاں کھو گئی ہے؟
کہاں ہے وہ خورشید ۔۔۔ وہ منبعِ نور؟
وہ روشنی کا سمندر
کہ جس کے لئے تیرہ و تار دنیائیں شام و سحر منتظر ہیں،
مصوّر تمہیں روشنی کی ضرورت نہیں ہے،
تمہیں روشنی کی ضرورت نہیں
میرا تاریک گھر اک کرن کو ترستا ہے
اور یہ کرن ۔۔۔ یہ کرن؟

مصوّر: ہاں تمہاری ہے اور حسبِ وعدہ یہ تصویر حاضر ہے۔
اب اس مکاں میں اندھیرا نہیں
یہ بھی اس جگمگاتے ہوئے شہر کا ایک حصہ ہے
یہ تو دہ تیرگی سیلِ انوار میں کھل گیا، مل گیا
روشنی تو ملی ۔۔۔ روشنی تو ملی

خالدہ: اچانک تمہاری نگاہوں میں کس سوچ کے دائرے تیرنے
لگ گئے ہیں؟
یکایک مسرت کی لہروں میں کن حسرتوں کے بھنور پڑ گئے؟
جس طرح تم سے پل بھر میں ہی چھن گئی ہفت اقلیم کی بادشاہت
کہو.. چپ ہو کیوں ... کچھ تو بولو، مصوّر

مصوّر: نہیں، کچھ نہیں، سوچتا ہوں کہ جب چاند تارے بھی محتاج
ہیں روشنی کے

تو پھر میں اندھیروں کا باسی
کہ جس کے مقدر میں تاریکیاں ہیں اندھیرے ہیں
کیوں آرزو دے ضیا میں — اجالوں سے شکوہ کناں ہوں
مجھے میری تاریکیاں چاہئیں، صرف تاریکیاں۔ صرف تاریکیاں
مجھے جگمگاتے ہوئے شہر نے کتنا دھوکا دیا ہے
کہ میں اپنے فن کا گلا گھونٹ کر سیلِ انوار میں بہہ چلا تھا۔

مصوّر کی دنیا تو ظلمت کدہ ہے
اسے جگمگاتے ہوئے شہر سے کیا؟
تو ... خاتون ... کل شام میں آپ کے شہر کو چھوڑ جاؤں گا
کل شام، اسی وقت

خالدہ: تو کیا واقعی تم مرے شہر کو چھوڑ کر جا رہے ہو؟
مصور نہ جاؤ ... نہ جاؤ مصوّر،

مصوّر: مجھے صرف فن سے محبت ہے۔
شہروں سے، لوگوں سے، صبحوں سے، شاموں سے نسبت
نہیں ہے،
مجھے آپ سے آپ کا عکس پیارا ہے
جو میں نے خونِ جگر سے سجایا ہے روشن کیا ہے
اسی کے لئے میں یہاں چند دن رک گیا تھا
اور اب جب مکمل ہے یہ نقش۔ میں جا رہا ہوں
ابھی جانے کتنے ہیولے مرے منتظر ہیں
ابھی جانے کتنے ہیولے مرے منتظر ہیں

(موسیقی)

بوڑھا: آمنہ! ہو چکی شام مگر خالدہ گھر آئی نہیں
جانے کیا بات ہے، کیوں آج پریشاں ہے طبیعت میری

آمنہ: ابھی آتی ہوگی

بوڑھا: ابھی آتی ہوگی
اب تو یہ روز کا معمول ہوا۔
خالدہ شام سے پہلے کبھی گھر آتی نہیں
اور گھر آئے تو اپنے ہی خیالوں میں مگن رہتی ہے
نہ اسے باپ کا غم ہے نہ اسے ماں کا خیال
طور بے طور ہوئے جاتے ہیں۔

آمنہ: جانے یہ واہمے کب ختم تمہارے ہوں گے
تم کو معلوم تو ہے
خالدہ ان دنوں اسکول میں مصروف بہت رہتی ہے
صبح سے شام تلک
اک اذیت میں گرفتار رہے نازک بچی

بوڑھا: چاہے تم کچھ بھی کہو (تلخ لہجے میں) کل سے اب خالدہ اسکول نہیں جائے گی

(خالدہ کے قدموں کی چاپ)

آمنہ: خالدہ آ گئی

بوڑھا: کل سے اب خالدہ اسکول نہیں جائے گی

خالدہ: کیا ہوا؟

بوڑھا: خالدہ! کل سے تم اسکول نہیں جاؤ گی
سن لیا! کل سے تم اسکول نہیں جاؤ گی

خالدہ: ماں ... مگر

بوڑھا: بس نہیں جاؤ گی تم۔

آمنہ: لیکن اتنا سوچو
خالدہ نوکری چھوڑے گی تو ہم کیسے جئیں گے آخر؟
تم بھی معذور ہو ... میں بھی مجبور
دوسرا کوئی سہارا بھی نہیں۔

بوڑھا: وائے محرومیٔ تقدیر کہ جس کے باعث
آج میں اپنی جواں بیٹی پر
بار ہوں۔ بارِ گراں
پھر بھی میں یہ کبھی برداشت نہیں کر سکتا
خالدہ، باپ کی محتاجی و معذوری کے پردے میں مرا
اتنی تذلیل کرے
اس سے پہلے کہ یہ افلاس مرا
میری غیرت، مری ناموس کا نیلام کرے
میں بجھا دوں گا ہر اک شمعِ حیات
زندگی، موت سے بدتر ہے اگر غیرت و ناموس نہیں ...
کچھ بھی ہو
مجھ کو منظور ہے ہر ایک عذاب
مجھ کو منظور ہے ہر ایک عذاب
(شدت سے کھانستا ہے)

(موسیقی)

(شام کا منظر۔ گھڑیال سات بجاتا ہے کہیں
آباد شہر کا بازار۔ بار، گھنٹیوں، قہقہوں
اور بال روم کی موسیقی کے اثرات)

خالدہ: (اپنے آپ سے): آہ یہ شام کس درجہ اندوہگیں ہے
مگر آج بھی شہر کا ہے یہ عالم

کہ ہر سمت جیسے چراغاں ہوا ہو
وہی روز کے زمزمے۔ قہقہے۔ قہقہے جیسے جشن طرب ہو
وہی جگمگاتے در و بام، روشن دریچے
وہی رقص گاہوں کے منظر
یہ نغموں کا سیلاب، گیتوں کی کرنیں
بھڑکتے بازوں میں خوش باش، رنگیں، خوش بخت پیکر
وہی زندگی روشنی۔ روشنی زندگی

اور میرا مکاں۔ اے مصور، یہ تصویر میری نہیں ہے
نہیں۔۔ میری دنیا میں اب تک اندھیرے بسے ہیں
یہاں ظلمتیں اب بھی نوحہ کناں ہیں مصور!

مصور کی خیالی آواز: نہیں تم تو خود روشنی ہو
ستاروں کے گھر کب اندھیرے ہوئے ہیں
مجھے جگمگاتے ہوئے شہر نے کتنا دھوکا دیا تھا
کہ میں اپنے فن کو سسکتا ہوا چھوڑ کر
سیل انوار میں بہہ چلا تھا
مصور کی دنیا تو ظلمت کدہ ہے
میں یہ جگمگاتا ہوا شہر کل چھوڑ جاؤں گا
کتنے ہیولے مرے منتظر ہیں

خالدہ: مجھے چھوڑ کر تم کہاں جا رہے ہو
مگر۔۔۔ ہاں۔۔۔ تمہیں اپنے فن سے غرض
اپنے بے جان رنگوں، ادھوری لکیروں سے۔
خاموش سایوں سے ساکن ہیولوں سے الفت ہے
تم نقش گر ہو، تمہارے لئے زندگی میں
دھڑکتے دلوں، گنگناتے لبوں، جھلملاتے چراغوں، بہکتی
شعاعوں میں

کچھ بھی نہیں ہے!
فقط کاغذی بت۔ خیالی صنم، سرد لاشیں
تمہاری نگاہوں کے مرکز۔ مگر بولتی زندگی سے گریزاں

بوڑھا (خیالی آواز):
خالدہ، کل سے تم اسکول نہیں جاؤ گی
خالدہ، کل سے تم اسکول نہیں جاؤ گی

آمنہ: (خیالی آواز): خالدہ نوکری چھوڑ دے گی تو ہم کیسے جئیں گے آخر
تم بھی معذور ہو میں بھی مجبور
دوسرا کوئی سہارا بھی نہیں
دوسرا کوئی سہارا بھی نہیں

خالدہ: نہیں میری دنیا بھی لاشوں کا گھر ہے
میں کب تک یہ لاشیں اٹھائے اندھیروں میں بھٹکوں
مری زندگی سرد لاشوں کے بار گراں سے سسکنے لگی ہے
مصور، مجھے اب تمہاری ضرورت نہیں
کہ تم بھی اسی جگمگاتے ہوئے شہر کی اک کرن تھے
تمہارا وجود ایک زرتاب ذرہ تھا جو
اپنے مرکز سے کچھ جا ملا
تم بھی اس شہر کے ایک جگنو تھے
جو ان اندھیروں میں اک پل کا مہمان تھا اور بس
اک کرن، ایک جگنو سے ظلمت کی دیوار کب گر سکی ہے
یہ لاشیں
کہ جن کے لئے میں نے اپنی دھڑکتی جوانی کو مفلوج رکھا ہے
اب وہ بھی مجھ کو فقط باعث ننگ گردانتی ہیں
تو کیا وہ مقدس فریضہ مرا جرم تھا جس کی خاطر
میں اک لاش بن کر اندھیروں میں ڈوبی رہی ہوں
تو کیا یہ مری زندگی شپرک کی طرح
تا ابد روشنی سے گریزاں رہے گی؟
مرے سامنے اک طرف یہ چمکتا ہوا شہر ہے۔
روشنی کا سمندر ہے
جو سرد لاشوں سے بیگانہ ہنستی ہوئی زندگی کا جہاں ہے
اور اک سمت ساحل کی زنجیر ظلمت۔ مری آرزوؤں کی قاتل
ادھر روشنی۔ زندگی
اور ادھر۔۔ موت۔ اور موت کی تیرگی
اگر یہ اجالے مری دسترس میں نہیں ہیں
تو پھر۔ موت کی مستقل تیرگی کو ہی کیوں اپنا مسکن بنا لوں؟
میں اس نور و ظلمت کے اب توڑ دوں گی۔
فقط موت ہی میری اس کشمکش کا مداوا ہے

باقی ص۳۹ پر

"جہاں میں تھا"

لفٹیننٹ کرنل خواجہ عبدالرشید

دعوتیں کھانے کا اتفاق، تو اکثر ہوا ہے، پاکستان میں بھی اور پاکستان سے باہر بھی کبھی وزیروں کے ساتھ، کبھی بڑے بڑے رؤسا کے ساتھ، مگر جو لطف پہلوانوں کے ساتھ کھانا کھانے میں ہے وہ کسی بڑی سے بڑی محفل طعام میں بھی کہاں؟ یہ میری خوش قسمتی تھی کہ مجھے ایک ایسا موقع میسر آیا اور محفل بھی وہ جو پاکستان کے مایۂ ناز پہلوان، رستم ہند امام بخش، اور ان کے فرزندانِ رشید کے اعزاز میں منعقد ہوئی تھی۔ دعوتِ شیراز تو ظاہر ہے یہ ہو ہی نہیں سکتی تھی، پھر بھی اتنا ضرور ہے کہ اس میں نہ کوئی تکلف تھا، نہ نمود۔ سادگی، خلوص خاموشی، انہماک[1] اس دعوت کے نمایاں خواص تھے۔ نہ کوئی ہنگامہ، نہ اعلیٰ وادنیٰ کی تخصیص، نہ لباس کا امتیاز، بلکہ دعوتی رقعوں کا جھنجھٹ تک نہ تھا۔ نشست فرشی اور بلا تکلف۔ عام لباس، سیدھا سادا کہ سمٹنے کی ضرورت ہی پیش نہ آئے جیسے کوئی چاہے آرام سے بیٹھے جس طرح چاہے کھائے پیئے، بات چیت کرے۔ کوئی کیل کانٹوں سے لیس ہو کر نہیں آیا تھا! مطلب یہ ہے کہ دعوت کے لئے زمین پوری طرح ہموار کر دی گئی تھی، اور بس، تاکہ کھانا پورے ذوق و شوق سے کھایا جا سکے۔

ہونے کو تو ہم بھی اس محفل میں شریک تھے، لیکن کہاں وہ رستم و اسفندیار کے جانشین اور کہاں ہم۔ آپ کو یہ تو معلوم ہی ہوگا کہ لفظ "پہلوان" غالباً "پارتھین" سے ماخوذ ہے جس کے بہادروں نے روما کے بڑے بڑے فاتحین، انٹونی وغیرہ کے دانت بھی کھٹے کر دیئے تھے تب ہی سے انگریزی میں PARTHIAN SHOT (قادر اندازی، تیر بہ ہدفی) بطور ضرب المثل مشہور ہو گیا ہے۔ انہی "پارتھیوں" نے "فارسی" کو "پہلو (شہر)" اور "پہلوان"

کے الفاظ بھی دیئے۔ پہلوی تو مشہور ہے ہی جس کی یاد اعلیٰحضرت محمد رضا شاہ پہلوی مرحوم نے تازہ کی تھی۔ خیر حصہ بقدر جثہ۔ یہ دیو پیکر لازماً خوش خوراک ہوں گے۔ کشتی کا اکھاڑہ نہ سہی کھانے کا اکھاڑہ ہی سہی۔ یا آپ پہلوانوں کی رعایت سے "ہفت خواں" کہہ لیجئے۔ یہ "پیل سیستان" رستم ہی تو تھا جس نے قوی ہیکل دہقان، اولاد کے کان انگیز کر خونا خون اس کی ہتھیلی پر رکھ دیئے تھے! ــــ اس لئے میرے جیسے غیر پہلوان[2] پہلے ہی سے ڈر رہے تھے۔ بہر حال جب وقت آیا تو ہم اپنے لحیم و شحیم، شہ زور، ہم نوالہ، ہم پیالہ، دوستوں کا نہایت بے چینی سے انتظار کرنے لگے۔

اس دعوت کا سہرا ہم سب کے مشترک دوست الحاج، میاں منظور حسین کے سر تھا۔ آپ انہیں جانتے ہی ہوں گے۔ "گجرات بس سروس" "کراچی روڈ ٹرانسپورٹ کارپوریشن" جیسے اداروں کے صدر۔ ان کے والد میاں کرم الٰہی بھی گجرات سے تشریف لائے ہوئے تھے۔ بڑے مہمان نواز، اہلِ گجرات کی زندہ دلی کا نمونہ عزت بیگ نے اسی سرزمین پر پہنچ کر "حاصل عمر نثار رہِ یارے کردم" کے مصداق اپنا سارا دھن دولت سب کچھ لٹا دیا تھا۔

موصوف کے رستم ہند امام بخش کے ساتھ بڑے گہرے دوستانہ مراسم ہیں، اس لئے جب وہ کراچی تشریف لائے تو یہ کیسے ممکن تھا کہ وہ اپنے یار سے ماحضر تناول کرنے کی زحمت نہ دیتے! چلئے ہنگامۂ شادی نہ سہی، تقریب بہر ملاقات ہی سہی مگر معلوم نہیں کیا سمجھ کر ہمیں بھی ان باون گزوں کے

---

[1] کھانے پینے میں! (ادارہ)

[2] تصویر سے تو یہ گمان نہیں ہوتا! (ادارہ)

[3] لنکا میں سب باون گز کے ہوتے ہیں بلکہ یوں بھی سنا ہے کہ ہر چیز کہ در کان نمک رفت نمک شد! شاید اس لئے آپ بھی اس میں دھر لئے گئے ہوں! (ادارہ)

ساتھ شامل کر لیا گیا۔ قد و قامت میں ہم ان کے حریف کیا ہوں گے۔

چونکہ پہلے کبھی ایسی صحبت میں شریک ہونے کا اتفاق نہیں ہوا تھا اس لئے بڑی بے تابی کے ساتھ وقت کا منتظر رہا۔ طرح طرح کے خیالات ذہن میں گھومتے رہے۔ یہ میرے لئے پہلا موقع ہوگا کہ میں پاکستان کے مایۂ ناز اور عالمی شہرت رکھنے والے ان سپوتوں کو یکجا دیکھ سکوں گا۔ ان کے ساتھ کھانا بھی کھاؤں گا، اور سب سے بڑھ کر یہ کہ وہ جو کھانے کے ساتھ "انصاف کریں گے" بلکہ یوں کہئے کہ کھانے کی کشتیوں سے "کشتی" لڑیں گے، اس معرکہ کے دیکھنے کا بھی موقع ملے گا۔ یوں پہلوانوں کی خوش خوری کے متعلق میں بہت کچھ سن چکا تھا۔ مگر آج اس کی تصدیق ہونے والی تھی۔

میرے اشتیاق کا یہ عالم تھا کہ میں نے فون پر اپنے میزبان سے درخواست کی کہ اس موقع پر ایک فوٹو گرافر کا بھی انتظام کیا جائے تو بہتر ہے کیونکہ ایسے نادر مواقع کم ہی ہوتے ہیں۔ یہ فوٹو بطور یادگار محفوظ ہو جائیں گے۔ اس سے قبل یہ خواہش کبھی پیدا نہ ہوئی تھی۔ خیر، خدا خدا کر کے وہ وقت آ ہی پہنچا۔ اور ہم "میدانِ عمل" میں پہنچ ہی گئے۔ مگر ابھی اصل مہمان، یعنی پہلوان صاحبان تشریف نہیں لائے تھے۔ ان کو لانے کے لئے ایک لاری بھیجی گئی تھی اور یہی سواری ان کے لئے موزوں بھی تھی۔ اڑھائی بجے کے قریب سب لوگ تشریف لے آئے۔ معزز مہمانوں کا بڑے زور شور سے استقبال کیا گیا۔ امام بخش کو سرخ اور سبز نوٹوں کے ہار بطور اعزاز پہنائے گئے جس نے اور بھی بہار پیدا کر دی۔ پھر سب لوگوں کو "میدانِ کارزار" یعنی "گجرات ہاؤس" کے ایوانِ طعام میں پہنچایا گیا جو بالائی منزل پر تھا۔ ہمارا بھی یہی گمان تھا کہ اسی جگہ اصل معرکہ و ہنگامہ گرم ہوگا۔ امام بخش کے ساتھ ان کے تین صاحبزادے بھی تھے۔ سب یکساں نامور ــــ بھولو، اسلم، گوگا۔ اور دو کمسن پوتے بھی۔ ایک پوتا، جو سات برس کے قریب لگ رہا تھا، ماشاء اللہ "پوت کے پاؤں پالنے میں نظر آتے ہیں" کا نمونہ تھا۔ اس کا ڈیل ڈول اور پہلوانی دم خم کی شروعات صاف اعلان کر رہی تھیں کہ یہ اس خاندان کی روایات کو خوب برقرار رکھے گا ــــ ہونہار بروا کے چکنے چکنے پات۔

سب سے پہلے شربت کا دور چلا۔ پہلی مرتبہ پہلوانی شربت بھی پیا۔ کتنا فرحت بخش! اس کا ایک ایک بڑا، قد آور، ہاتھ بھر لمبا گلاس، سب کو دیا گیا۔ مجھے تو یوں لگا جیسے نا و نوش کی یہی انتہا ہو۔ یعنی مزید کچھ کھانے پینے کی نوبت شاید ہی آسکے۔ شربت مہمانوں کی فرمائش پر ہی تیار کیا گیا تھا اور "نسخہ" کے مطابق تھا ــــ یوں ہم غیر پہلوان بھلا کیا جانیں کہ پہلوانوں کی غذا کیا ہے۔

کھانا تھا تو مختصر مگر چنا گیا بڑے سلیقے سے۔ سبحان اللہ خوشبوؤں کی کیا کیا لپٹیں اٹھ رہی تھیں۔ مرغ پلاؤ، قورمہ، شیرینی، پھل۔ قورمے میں گوشت کے ساتھ ابلے ہوئے انڈے جس سے کھانا دو آتشہ ہو گیا۔ ساتھ ہی بڑے بڑے پراٹھے۔ کھانا بڑا مرغن، کسی استاد کا پکایا ہوا جو کراچی میں ذرا کم ہی نصیب ہوتا ہے۔ یہ کھانا تو واقعی لکھنؤ کے روایتی رکابداروں کی یاد دلاتا تھا۔ خالص گھی میں پکا ہوا اور اسی میں شرابور، بلکہ تر تراتا ہوا۔ مہک ایسی کہ خواہ مخواہ کھانے کو جی للچائے۔ میں بڑے اشتیاق سے، کنکھیوں سے دیکھنے لگا کہ اب کھانے کا پہلوانی محاذ کیسے قائم ہوتا ہے اور کیا کیا استادانہ ہاتھ، کیسے کیسے داؤ پیچ دکھائے جاتے ہیں۔ بار بار ہاتھ کی روانی کا وہ نقشہ سامنے آتا جو کبھی فکاہی شاعر، خضر تمیمی نے کھینچا تھا۔ امام بخش تنہا معرکہ سر کرنے نہیں آئے تھے۔ ان کے ساتھ تقریباً بیس کار آزمودہ شاگردوں کا پرا بھی تھا تاکہ جنگل میں منگل کی طرح منزل میں دنگل کا بھی کچھ سماں بندھ جائے۔

پہلوانوں کا یہ ٹولہ بڑی بے تکلفی کے ساتھ وارد ہوا۔ سیدھا سادا لباس دیکھ کر حیرت ہوتی تھی۔ ہمارے ملک کا بہترین لباس ہے تو یہی۔ کرتہ اور تہمد۔ مہمان جوتے اتار کر قالین پر آلتی پالتی مار کر بیٹھ گئے۔ بھلا انہیں کالروں، نکٹائیوں کی نوک پلک کے جھنجھٹ سے کیا واسطہ۔ پتلون میں شکن پڑ گئی، اس کا انہیں غم کہاں۔ بیٹھتے ہی سامنے دسترخوان بچھ گئے۔ یعنی صفِ طعام برپا ہو گئی۔ کھانا بھی چن دیا گیا۔ اِدھر اُدھر کی باتیں بھی ہو رہی تھیں۔ کہیں زیر لب بات چیت، کہیں قہقہے پر قہقہہ ــــ اور پھر قہقہہ بھی پہلوانی، کہ صاعقہ کا گماں ہو۔ اُدھر دھیمی آواز میں ریکارڈ بھی بج رہے تھے۔

---

[1] علامہ حسین کشمیری نے مدت ہوئی لکھا تھا ؎

کٹیں جو چند گردنیں تو قوم کی ہو زندگی

لہو جو ہے خدس کا وہ قوم کی زکوٰۃ ہے (ادارہ)

جوڑوں کے ساتھ کام و دہاں کو بھی تیار کر رہے تھے۔ ماہرین خوراک کا نظریہ تو یہی ہے۔ پہلوان گانوں کے لئے ہمہ تن گوش — اتنے ذوق! اس کا تو ہمیں وہم وگمان بھی نہ تھا۔ دھیان کھانے کی طرف، کان گانے کی طرف۔ خصوصاً اسلم اور بھولو تو دھیرے دھیرے پاؤں کے ساتھ تال بھی دیتے جاتے تھے۔ امام بخش نے تو ایک دو مرتبہ سم پر سر بھی جھٹکا! پہلوان اور موسیقی۔ مجھے یہ تال میل بڑا ہی عجیب لگا۔ مگر ایسا ہی عجوبہ یہ بھی ہے کہ اکثر ریاستوں میں جہاں پہلوانوں کی بڑی قدر ہوا کرتی تھی، اچھی اچھی ڈیرہ دارنیاں بھی ان کے فن کی بیحد قدر دان ہوتیں۔ بہرحال مجھے یہ دیکھ کر بڑی خوشی ہوئی کہ ہمارے پہلوان صرف پہلوان ہی نہیں — خشک اور بے ذوق — بلکہ بڑے خوش مذاق اور زندہ دل بھی ہیں۔

لباس جتنا مختصر اور صاف ستھرا اتنا ہی چال میں وقار، اور خود اعتمادی، جسم گٹھے ہوئے، کسرتی، جیسے فولاد۔ مگر کیا مجال جو چہرے پر غرور کی ذرا بھی جھلک ہو۔ سب بڑی خاموشی اور خوش تمیزی کے ساتھ بیٹھے کھاتے رہے، آہستہ آہستہ باتیں بھی کرتے جاتے۔ میں برابر کنکھیوں سے ان کی شہ خوراکی کا منظر دیکھتا رہا۔ کھانے کا سلسلہ تقریباً سوا گھنٹے جاری رہا۔ سب نے حسب توقع کھانے کے ساتھ خوب انصاف کیا۔ اور حصہ بقدر جثہ کی صداقت پر پوری طرح صاد۔ اپنے پہلوان بھائیوں کو کھاتے دیکھ کر بے حد خوشی ہوئی۔ جیسے اس مظاہرہ میں ہم بھی شریک ہوں اور اپنے آپ پر ناز کر سکیں۔ زیادہ تر خوشی اس لئے ہوئی کہ آج بھی ہم میں ایسے لوگ موجود ہیں جو حقیقی معنوں میں "کھا سکتے ہیں" ورنہ آج کل تو جہاں دیکھیں "ڈائیٹنگ" یعنی خوراک کم کرنے اور جسم کو گھلاتے جانے کا چرچا ہو رہا ہے۔ اور مشرق ہو یا مغرب، لوگ اسی پر فخر کرتے ہیں، بلکہ پھولے نہیں سماتے کہ ہم "ڈائیٹنگ" پر کاربند ہیں۔ اِلّا ماشاء اللہ۔ میرا خیال ہے ماہرین طب کو چاہئے پہلوانوں کی خوراک کا سائنسی جائزہ لیں اور اس پر تحقیق کریں۔ وہ تو آئے دن یہی پٹی پڑھاتے رہتے ہیں کہ گھی کم کھاؤ مکھن کم کرو۔ یہ نہ کھاؤ، وہ نہ کھاؤ — مگر یہ نہیں دیکھتے کہ یہ لوگ جو اتنا گھی مکھن، میوے ہضم کر لیتے ہیں تو کیسے، بلکہ اتنا کچھ کھا کس طرح سکتے ہیں؟

امام بخش کی عمر اس وقت ۸۵ سال ہے۔ وہ خدا کے فضل سے چلتے پھرتے، کھاتے پیتے اور خوب ڈنڈ پیلتے ہیں۔ بالکل تندرست توانا، اور عادی بھی صرف مرغن غذاؤں کے۔ سنا ہے وہ اب بھی لگاتار پورا ایک گھنٹہ ورزش کرتے ہیں۔ یہی ان کی صحت و توانائی کا راز ہے۔ ہم لوگوں کو خوراک کیسے ہضم ہو جب ورزش کی عادت ہی نہیں رہی بلکہ اس سے کوسوں دور بھاگتے ہیں۔ "بیڈ ٹی" کے بغیر بات نہیں کرتے، ورزش تو پھر دور کی بات ہے۔ پیدل چلنا باعث عار سمجھتے ہیں۔ مشہور مقولہ ہے: قیصر کا حق قیصر کو ادا کرو اور خدا کا حق خدا کو۔ مطلب یہی کہ تن کا حق تن کو دیتے رہو اور مَن کا مَن کو۔ اگر ہم تن کا حق ادا نہ کریں گے تو وہ بغاوت کیوں نہ کرے؟

نوجوانوں کے لئے کراچی میں کھیل کے میدان کتنے ہیں، اور ہوں بھی تو وہ کھیلتے کب ہیں؟ اگر ہمارے نوجوان کام کریں اور کھیلتے کھیلتے پوری طرح تھک جائیں تو ان کی خوراک بھی بڑھے اور فضول شرارتیں بھی کم سوجھیں۔ نوخیزوں کی ورزش تو بس رقص تک محدود ہو گئی ہے — اور آپ جانیں رقص کے ساتھ اور کیا کچھ نہیں۔ ورزش ضبط اور تاب و توان کا تحفظ سکھاتی ہے اور یہی ہم میں ناپید ہے۔ ہم لوگ جسمانی محنت سے بھی جی چراتے ہیں کہ اس سے تکلیف ہوتی ہے! جس طرف دیکھئے "صاحب بہادر" کرسیوں پر جمے بیٹھے ہیں۔ دفتر سے نکلے تو موٹر، یا رکشا، ٹیکسی، بس پر سوار۔ جسم میں طاقت آئے تو کیونکر؟ جبھی تو وہ ہیں اور طرح طرح کے امراض۔ ڈاکٹر بیچارے بھی ان کی بڑھتی ہوئی تعداد دیکھ کر گھبرا جاتے ہیں، اور ان کا علاج نہیں کر پاتے۔ معدے ناکارہ ہو چکے ہیں، صحتیں بگڑ گئیں۔

آپ بھی کہیں گے کہ یہ کیا رنگ میں بھنگ ملا دی۔ کھانے اور گانے بجانے میں یہ کھڑاگ کیسا! وہ کھانے کی بات تو بیچ ہی میں رہ گئی۔ خیر، کھانا ختم ہوا تو پھلوں پر حملہ ہوا۔ انہیں بھی بڑے ذوق شوق سے کھایا گیا۔ ایک پہلوان کو کہتے سنا "کل ۱۲۶ کیلے کھا گیا تھا"[1] دوسرے نے مصرع طرح لگایا کہ "اب بھی اتنا کچھ کھانے پینے کے بعد بارہ درجن کیلے گھوٹ کر لاؤ تو نوش کر جاؤں!" میں تو سن کر ہوش اڑ گئے۔ خدا ہمارے ان پہلوانوں کو سلامت

---

[1] آپ نے دوسری تفصیلات تو بیان ہی نہیں کیں۔ مگر اجناس کا اندازہ بھی اسی سے کیا جا سکتا ہے۔ (ادارہ)

باقی ص ۷۴ پر

رپورتاژ:

جنگل جنگل، پربت پربت

اللہ بخش راجپوت

پچھلے اپریل میں میں نے پھر رختِ سفر باندھا۔ ایسا معلوم ہوتا ہے کہ سیاحی میرے خون میں ملی ہوئی ہے یا پاؤں میں سنیچر ہے، کہ میں ایک عرصہ تک کسی جگہ بھی نہیں رہ سکتا اور دنیا کا کوئی نہ کوئی خطہ ضرور مجھے دعوتِ نظارہ دیتا ہے اور میں پھر آمادۂ سفر ہو جاتا ہوں یہ سوال کہ شہر اچھے یا بن؟ بہت پرانا ہے۔ انسان کے مدنیت اختیار کرنے کے وقت سے ہی یہ سوال بھی سامنے ہے اور حضریت و بدویت کی بحث بھی ان ازلی بحثوں میں سے ہے جن کا کوئی آخری فیصلہ نہیں ہو سکتا۔ شہر کے کوچہ و بازار اور بام و سقف۔ ایوان و منازل کا اپنا ہی ایک روپ اور بلاوا ہے جنہیں نظر انداز نہیں کیا جا سکتا۔ ادھر جنگل، بیابان ہیں، باغ و راغ ہیں صحرا اور دمنے ہیں، جن کا اپنا ہی ایک جادو ہے۔ بعض جگہیں تو خود اپنے ہی ملک میں ایسی ہیں کہ کم لوگوں نے دیکھی ہیں اور میں ایسے ہی مقامات کی روح سے قریب ہونے اور ان کی عکسی و ذہنی تصویریں حاصل کرنے کے لئے جایا کرتا ہوں۔ یہی لگن مجھے مشرقی پاکستان کے بندرابن کی طرف لے گئی۔

چاٹگام کے پہاڑی علاقوں کی سیر کئی بار کر چکا ہوں مگر وہاں تمدنِ حاضرہ سے بہت دور بسے ہوئے اب بھی ایسے قبائل ہیں جن کو خود آس پاس کے لوگ بھی نہیں جانتے اور میں تو ہزاروں کوس سے یہاں پہنچا تھا۔ سفر جتنا مشکل اور راہ کی صعوبتیں جسقدر زیادہ ہوں اتنا ہی لطفِ سیاحت بڑھتا ہے ورنہ آدمی اس وادی میں قدم ہی کیوں رکھے شہر میں آیا ہوا کوئی "جنگل فلم" دیکھ لے یا کسی سفرنامہ کا مطالعہ کرلے۔ چنانچہ جب میں بندرابن کے سفر اور ایک طلسمی جنگلی قبیلہ تک پہنچنے کی تیاری کر رہا تھا تو معلوم ہوا کہ روانگی کا انتظام فوراً ہونا چاہیئے ورنہ بارشیں شروع ہو جائیں گی اور وہ ایسی قیامت کی بارشیں ہوتی ہیں کہ آسمان کا طبق پھٹ جاتا ہے اس لئے سفر ناممکن ہوگا۔ سنا ہے صرف بارشیں ہی نہیں ہوتیں زناٹے کے بگولے بھی اٹھتے ہیں جن سے بستیاں کی بستیاں اڑ کر سمندر میں جا پڑتی ہیں۔

چاٹگام کے پہاڑی علاقے کی سرسبزی، ہریاول اور خوبصورتی کا اندازہ دیکھنے سے ہی ہو سکتا ہے۔ یہ کوئی پانچ ہزار مربع میل کو محیط ہے گھنے جنگلوں سے پٹا ہوا، خوفناک وحشی جانوروں کا مسکن۔ تنگ، سکڑی وادیاں حدِ نظر تک پھیلی ہوئی۔ بے شمار ندیاں، تیکھی چٹانیں، مہیب پہاڑ کہ انسان مارے رعب کے آنکھیں نیچی کر لے۔

یہاں کی آبادی کا حال کیا پوچھتے ہیں۔ مجھے اتنا ہی معلوم ہے کہ یہاں ۳،۱۱۲،۹۲ نفوس جگہ جگہ بسے ہوئے ہیں۔ یہاں کے پہاڑی لوگ منگولی نسلوں میں سے ہیں۔ زیادہ تر بودھ دھرم کے ماننے والے ہیں جیسے موگھ اور چاکمہ۔ ان میں سب سے زیادہ غیر متمدن مورنگ لوگ ہیں۔ ان کی اپنی ہی ایک تہذیب ہے۔ بالکل ناتراشیدہ اور ابتدائی حالت میں۔ دنیا کو ان کا حال سب سے کم معلوم ہے۔ چند بستیاں ہیں، ہر ایک میں سو سوا سو آدمی: مرد، زن و بچہ، رہتے ہیں۔ انہیں "بن جوگی" اور "نیکو" بھی کہتے ہیں۔ ان کے چہروں کو دیکھنے سے ایک فرق معلوم ہوتا ہے "اقوامِ زرد" کے دیگر نمونوں کے مقابلہ پر ان کے رخساروں کی ہڈیاں زیادہ ابھری ہوئی نہیں ہوتیں نہ آنکھیں ہی اتنی اندر کو دھنسی ہوئی ہیں۔ مورنگ قبیلہ کے لوگ ۱۶ تا ۲۰ ہزار ہوں گے

مجھے پہلے ہی بتا دیا گیا تھا کہ راستہ پُرخطر ہے، چنانچہ میں نے سفر کا آغاز کیا ہی تھا کہ صرف ایک منزل تک پہنچنے میں مجھے کوئی تیس ندیاں پار کرنی پڑیں حالانکہ فاصلہ صرف تین میل کا تھا! ستواں پہاڑوں کو عبور کرنا، جنگلی وادیوں میں سے ہو کر گذرنا میرے لئے کوئی نئی بات نہ تھی مگر اس سفر میں ایک عجیب طرح کی تھرتھری ضرور محسوس ہوئی۔

سب سے بڑا قصبہ بندرابن ہے اور یہ جنگلی علاقہ صرف ۲ میل دور تھا۔ اسے مقامی لوگوں میں دیوانی پاڑہ کہا جاتا ہے۔

یہاں کوئی سردار دیوانی نام کا تھا جس نے یہ پاڑہ بسایا تھا۔ جو اسکا رکھوالا تھا۔ اس رقبے میں کوئی دس گیارہ مورنگ بستیاں تھیں جب اس مقام تک پہنچا تو حسب معمول زبان نہ جاننے والی دشواری پیش آئی مگر انسانوں کے پاس خلوص کی زبان ایسی ہے جس کا سکہ ہر جگہ رواں ہے اور وہ ادائے مطالب میں بڑی مدد دیتی ہے۔ ویسے ایک مقامی ترجمان کا بندوبست بھی کر لیا تھا تاکہ جہاں گاڑی بالکل ہی اٹک جائے تو اس سے مدد لیں اور وہ رہنمائی کرتا رہے۔ میرا خیال تھا کہ سب سے پہلے یہاں کے سردار سے ملا جائے۔ پھر ان لوگوں کے گھر گرہستی کو جا کر دیکھوں اور جتنی باتیں مجھے معلوم ہوں ان کی کہانی آپ کو سناؤں۔

ان کے پاڑہ میں پہنچ کر معلوم ہوا کہ یہ عجیب زبان بولتے ہیں، ہر چیز عجیب، انوکھی اور جدا ہے۔ میں ان عجائبات کو ہی دیکھنے آیا تھا۔ گاؤں کے مکھیا سے ملاقات ہوئی۔ سب سے پہلے اس نے کھیتی باڑی دکھائی۔ یہاں زراعت کا وہ طریقہ رائج ہے جسے "جھومنگ" کہتے ہیں۔ اس کا حال آگے بیان کروں گا۔

مورنگ لوگ اپنی ضرورت کی سب چیزیں بستی ہی میں پیدا کر لیتے ہیں اور صرف دو ایک ہی چیزوں کا باہر سے انتظام کرتے ہیں جیسے مٹی کا تیل، نمک وغیرہ۔ مجھے گاؤں میں نہ کوئی درزی دکھائی دیا، نہ موچی، نہ بڑھئی، نہ لوہار، کمہار، جولاہا۔ اس کی وجہ یہ معلوم ہوئی کہ یہ لوگ خود ہی اپنا کام کرتے ہیں۔ اب میں مورنگ گھر میں بھی پہنچا۔ اس کا حال سناتا ہوں۔

گھر کافی کشادہ تھا۔ شادی شدہ جوڑے کے لئے رہنے کی الگ جگہ بنی ہوئی تھی، یوں مشترکہ خاندان کا رواج یہاں بھی ہے۔ مورنگوں کی دنیا بانس کی دنیا ہے جیسے عربوں کی دنیا کھجور کے گرد گھومتی ہے۔ مورنگوں کا گھر زمین سے دس بارہ فٹ بلند بلیوں پر بنتا ہے تاکہ جنگلی جانوروں وغیرہ کے گزند سے محفوظ رہے۔ اتنی اونچائی پر مکان بنانے کی وجہ مورنگ کچھ اور ہی بتاتا ہے۔ اس کا قصہ بھی سن لیجئے۔ کہتا ہے ہزاروں سال گذرے ایک دفعہ کسی مورنگ کے گھر میں بچہ پیدا ہوا۔ جنگل میں چیونٹیاں، کیڑے مکوڑے اور وہ بھی ایسے جنگلوں میں بہت ہوتے ہیں، وہ اس ننھے سے بچے کو لپٹ گئے اور انہوں نے اس بچے کو کھا لیا۔ تب سے یہ لوگ اونچی کرسی کے مکان بناتے ہیں۔ ہر گھر کا نقشہ ایک سا نظر آئے گا۔ بیچ میں ہال کمرہ جسے صحن بھی کہہ لیجئے۔ ادھر ادھر کئی حجرے اور کھڑکیوں میں جھلملیاں لگی ہوئی۔ اس "پنجرہ" تک پہنچنے کے لئے عجیب طرح کا زینہ لیتے ہیں۔ "زنان خانہ" میں کوئی نہیں جا سکتا۔ "صحن" میں جہاں عرشے کا سا لطف آتا ہے، اٹھا ہوا دالان، دور دور کا نظارہ۔

میں نے یہاں چولھا بھی دیکھا۔ بس ویسا ہی جیسا ہمارا ہوتا ہے۔ گھڑے کی جگہ میٹھے کدو کا خول برتا جاتا ہے، یہی ان کا "ڈرائینگ بکس" بھی ہوتا ہے۔ بید کا بنا ہوا ایک عجیب [illegible] نظر آیا۔ معلوم ہوا کہ اس میں دھان بھرا جاتا ہے۔ بلا مبالغہ [illegible]ٹن غلہ اس میں آ جاتا ہوگا۔ اب ان کی زراعت کا حال سنئے۔ بونے سے پہلے کسی زمین کو چھانٹ لیا، صاف کیا اور جھاڑ جھنکاڑ زمین پر جمع کر کے سوکھنے دیا۔ یہ کوڑا ساری گرمیوں سوکھتا رہتا ہے۔ اس کے بعد اسے آگ لگا کر زمین کو کاشت کے لئے تیار کرتے ہیں اور سارے اناج اکثر کاریوں کے بیجوں کی "کاک ٹیل" پھیلا دیتے ہیں۔ دھان، روئی، مکا، سرسوں، میٹھا کدو، خربوزہ اور تمباکو، سب ایک جگہ بودئے جاتے ہیں۔ ان کی سب سے بڑی کاشت چاول ہے اور آگ جلنے کے بعد جو راکھ بنی تھی وہ کھاد ثابت ہوتی ہے۔

ان لوگوں میں بھی تقسیم کار کا اصول جاری ہے مرد عورتوں کے جدا جدا کام ہیں۔ مرد جھومنگ کرتے ہیں اور شکار کرتے ہیں، ٹوکریاں بننا، چٹائیاں بنانا، روئی اونٹنا، گھر بڑھئی کے کام۔ گائے کا دودھ بھی مرد ہی نکالتے ہیں۔ عورتیں پانی لاتی ہیں، دھوتی نما لنگوٹ اور دریاں بنتی ہیں۔ منڈی بھی اٹھا کر لے جاتی ہیں۔ جھاڑو بہارو، بچوں کی دیکھ بھال، پکانا وغیرہ تو خیر عورتوں کے کام ہی ہیں۔

میں نے ان کے علاقے میں چل پھر کر شادی بیاہ کی [illegible] معلوم کیں۔ شادی کے وقت لڑکی کی عمر لڑکے کی عمر سے زیادہ ہوتی ہے۔ جلد شادی ہو جاتی ہے کیونکہ ایسی لڑکی شوہر کی عمدہ [illegible] گھریلو ذمہ داریوں کو اٹھانے کے لئے زیادہ موزوں ہوتی ہے۔ لڑکا لڑکی آپس میں ملتے جلتے رہتے ہیں جب سے شادی کر[illegible] لڑکا اس کے گھر شام کو آتا اور کافی دیر تک گھر میں رہتا۔

کی موجودگی میں ہنسنا بولنا اور گیت گانا عام مشغلہ ہوتا ہے۔ لیجئے ان کے ایک گیت کے بول نہیں تو مطلب آپ بھی سن لیں:

"اے لڑکی، تیرا روئے زیبا کنول کے مانند ہے۔
ہرچند کہ تو جدا ہو رہی ہے مگر میں تجھے کنول میں
ڈھونڈ ہی لوں گا اور تیری یاد میں اسے پیار کئے
جاؤں گا، اے شیریں، اے شیریں!"

اپنے حبیب کی یہ بات سن کر لڑکی یوں جواب دیتی ہے:

"اے دلنواز، تو کیسا بانکا ہے، اے میری سرخ مکھی،
تیرا بدن چمکدار ملائم مثل مخمل ہے، اے میرے جنگل
باسی، اے میرے دلنواز۔"

ان کے مردوں میں بہترین حسن یہ مانا جاتا ہے کہ جسم گٹھا ہوا ہو، رنگ گندمی ہو، سر کے بال لٹوں کی صورت میں بکھرے ہوئے نہ ہوں بلکہ چٹے کی طرح گدی پر باندھ رکھے ہوں۔ اس نے اپنے گالوں کو سرخ قرمزی رنگ لیا ہو، کانوں میں جو سوراخ ہیں ان میں رنگین پھول اٹکے ہوئے ہوں۔ دانت ایسے کالے ہوں جیسے کوئلہ وہ بانسری پر پریم گیت سنا سکتا ہو۔ شادی اس طرح ہوتی ہے کہ ایک دم وہ اپنے منگیتر کے ساتھ بھاگ جاتی ہے۔ لڑکے کی سسرال پہنچکر جہیز کی رقم طے کی جاتی ہے۔ (تقریباً تین سو روپے پر شادی طے ہو جاتی ہے) ان تین سو روپے کا حساب بھی ذرا سن لیجئے۔ دس روپے دلہن کی اپنی "قیمت"، دس روپے دودھ پلائی کا حق مادرِ عروس کو، باقی رقم دیگر مصارف کے لئے۔ چادریں، چٹائیاں، کلہاڑی، گنڈاسا، تیر، تلوار خریدنے کے لئے الگ خرچ لڑکے والے کو دینا پڑتا ہے پہلے تو صرف کھنکتے ہوئے روپوں میں ہی یہ حق ادا کیا جاتا تھا مگر اب سنا ہے نوٹ بھی چلنے لگے ہیں کیونکہ جنگلوں تک یہ کھنکتے روپے اب کم پہنچتے ہیں۔ یہ نوٹ نصف قیمت پر بدلے جاتے ہیں! اگر اس رشتے پر کوئی اعتراض ہو تو بڑوں کی مجلس شوریٰ میں اعتراض سنا جاتا ہے اگر لڑکی کو بہلا پھسلا کر لڑکا لے گیا تھا تو ۷۰ روپے کا تاوان دینا پڑتا، اگر بزرگوں کا فیصلہ یہ ہو کہ نہیں لڑکی نے لڑکے کو ورغلایا تھا تو لڑکی والوں پر تیس روپے جرمانہ کیا جاتا ہے۔ اگر لڑکا قصوروار مانا جائے تو اسے ایک سؤر پکڑ کر لانا ہوگا۔ اسے وہی ذبح کرے گا اور ہر گھر پر پہنچ کر اس کا گوشت بانٹ کر معافی مانگے گا۔ عام طور پر یہ معافی قبول کر لی جاتی ہے۔ دلہن کے گھر صرف مرد جاتے ہیں۔ دلہن کوئی خاص جوڑا بھی شادی کے روز نہیں پہنتی بس ایک گھاگرا نما چادر ٹانگوں سے لپیٹ لیتی ہے۔ ہاں رخساروں اور پیشانی پر بندیاں اور نقش و نگار ضرور بنائے جاتے ہیں۔ لبوں اور دانتوں کو سرخ گلابی رنگ میں رنگا جاتا ہے۔ منکوں کی مالا، چوڑیاں، بازو بند جھانجن اور کمر کا پٹکہ ضرور ہوتا ہے پٹکہ المونیم کا ہوتا ہے۔

یہ سب سامان غیر پہاڑی لوگ لاتے ہیں اور ان کے گاؤں کے پاس جب ہاٹ لگتا ہے تو وہاں فروخت کرتے ہیں یا ان کے جنگلی سامان وغیرہ سے تبادلہ کر لیتے ہیں۔

مورنگوں کے علاقے میں پہنچکر مجھے یہ معلوم کرنے کی بھی جستجو ہوئی کہ ان کے مذہبی خیالات معلوم کروں۔ معلوم ہوا کہ یہ لوگ کسی دیوی دیوتا کو نہیں مانتے، کچھ پرانی رسوم اور عقیدوں کا تانا بانا ہے اور انہی کو اپنا دھرم کہتے ہیں۔

مورنگ موسیقی کے بڑے دلدادہ ہوتے ہیں۔ رقص بھی کرتے ہیں۔ ذرا ان کے سازینہ کا حال سنئے۔ ایک دو ڈھول، جسے وہ خوب پیٹتے ہیں، عجیب عجیب شکلوں کے باجے، کوئی نفیر نما، کوئی ۱۰ فٹ دیو زاد۔ رقص کا نقشہ یہ ہوتا ہے کہ دو جن بھر بن بیاہی لڑکیاں ایک طرف کھڑی ہو جاتی ہیں اور اتنے ہی باجے والے ہوتے ہیں شادی شدہ لڑکیاں کسی موقع پر بھی رقص میں حصہ نہیں لے سکتیں۔ بیچ میں ایک آدمی بیٹھ جاتا ہے اور رقص شروع ہوتا ہے۔ تال دینے کے لئے المونیم کے جھانجھ عجیب طرح کا آہنگ پیدا کرتے ہیں۔ رقص کرنے والیاں پیروں سے اس کے ساتھ سنگت کرتی ہیں۔ میک اپ کیلئے پھول، کوڑیاں اور جسم کو رنگنے کے مختلف طریقے استعمال کئے جاتے ہیں۔ یہ محفل رقص و سرود صرف خاص خاص موقعوں پر منعقد ہوتی ہے جیسے جھوم کی فصل تیار ہونے کے وقت امیر آدمی گائے ضرور ذبح کرتا ہے۔

غرض مورنگوں کے شب و روز اسی طرح گذرتے ہیں ان لوگوں میں زندگی کی چونچالی بہت ہے۔ یہ لوگ جسمانی توانائی، جیالے پن اور جفاکشی میں بھی ممتاز ہیں مگر چاول زیادہ کھانے اور جوہڑوں کا گندا پانی پینے کی وجہ سے مرد عورت سب کی

توندیں نکلی ہوئی نظر آتی ہیں، ان کی عمریں ۷۰۔ ۸۰ برس تو معمولی بات ہے۔ کسی خاص بیماری میں بھی مبتلا نہیں ہوتے۔ جڑی بوٹیوں سے علاج کر لیتے ہیں ورنہ مرغ یا سؤر کی قربانی دے کر وبا یا بیماری بھگانے کا ٹوٹکا کرتے ہیں۔ دوسرے قبائلیوں کے ہاں تو مندر یا استھان جیسی کوئی چیز مل جائے گی مگر مورنگوں میں نہ دیوی ہے نہ دیوتا ۔ اسپتال جیسی کوئی چیز ان کے ہاں نہیں۔ ہاں رنگامتی کے صدر مقام پر سول اسپتال ضرور موجود ہے کچھ ڈسپنسریاں بندر ابن اور رام گڑھ کے ذیلی صدر مقامات پر بھی بنی ہوئی ہیں جو تھانوں کے ساتھ ہی ہوتی ہیں۔ وبا وغیرہ کی اطلاع کرنے کے لئے گاؤں کا نمائندہ نزدیکی تھانہ پر آتا ہے اسے یہاں "کاربارئ" کہتے ہیں۔ جھگڑے وغیرہ کی اطلاع بھی یہی کاربارئ جا کر دیتا ہے۔ ویسے کوشش یہ کی جاتی ہے کہ پنچایت ہی میں فیصلہ ہو جائے۔ کیونکہ مورنگ عام طور پر امن پسند ہوتے ہیں۔ وہ حکومت سے مدد اس وقت مانگتے ہیں جب فصلیں تباہ ہو جائیں یا دریاؤں میں طغیانی آنے کے باعث ان کے گھر گرہستی بہہ جائیں۔ حکومت انہیں "جھوم" اگانے کیلئے ۵۰ روپیہ فی کنبہ دیتی ہے۔ مورنگ کے پاس گھر گرہستی کے سامان، تھوڑی بہت نقد پونجی اور چند پالتو جانوروں کے علاوہ کوئی خاص املاک نہیں ہوتی۔ وہ ترکاریاں اور تمباکو خود ہی بوتے اور گھر کے لوگ اسے استعمال کرتے ہیں۔ مورنگوں میں بچے کی پیدائش پر کوئی خاص رسم ادا نہیں کی جاتی۔ زچگی کے دوران ماں نو دن تک گھر کے کمرہ سے باہر نہیں نکلتی۔ مرنے پر مورنگوں میں چند رسوم ادا کی جاتی ہیں۔ میت ایک ہال میں سات دن تک رکھی رہتی ہے اور اگر کنبہ داروں میں استطاعت ہو تو چند سؤر اور مرغے کاٹ کر رشتہ داروں کو کھلا دئے جاتے ہیں۔ سات دن گذرنے کے بعد میت کو نزدیکی ندی پر لے جا کر جلاتے ہیں۔ اس "شمشان" یا مردہ گھاٹ کو ان کی بولی میں "چینگ رنگ" کہتے ہیں۔ میت کی راکھ بانس کے ایک بکس میں رکھ کر جلانے کی جگہ پر دفن کر دی جاتی ہے اور اس پر ایک سفید جھنڈا گاڑ دیا جاتا ہے۔ اگر کوئی وبا میں مرا ہے تو اس کی لاش دور دراز جنگل میں لے جا کر دفن کرتے ہیں ورنہ میت کو جلانے ہی کا رواج ہے۔

رسوم کی طرح مورنگوں کے لباس میں بھی انوکھا پن ہے۔ عورتیں اور چھوٹی بچیاں اپنی کمر میں ۹ انچ لمبی کپڑے کی تاگڑی یا پٹی سی باندھتی ہیں۔ اس دھجی کو "دنگی" کہتے ہیں۔ عام طور پر یہ کپڑا کالا ہوتا ہے اور گھر پر بنایا جاتا ہے۔ مرد بھی ایک چھوٹی سی لنگوٹی ستر پوشی کے لئے استعمال کرتے ہیں "کاربارئ" چونکہ گاؤں سے باہر بھی جاتے ہیں اس لئے ان کو زیادہ اچھا لباس پہننا بھی ضروری ہوتا ہے اور یہ تکلف ایک لنگی کے ذریعے پورا کیا جاتا ہے۔ اوپر برمی وضع کی ایک بش شرٹ جیسی چیز پہنتے ہیں اور سر پر سفید پگڑی بھی باندھتے ہیں۔

کہتے ہیں کہ یہ لوگ برما کے علاقے اراکان سے یہاں آ کر آباد ہو گئے تھے۔ ان کی زندگیوں میں آج تک کوئی تبدیلی نہیں ہوئی ہے۔ ایک روایت یہ بھی کہتی ہے کہ مورنگ لوگ ہندگنگائی علاقوں سے ہجرت کر کے یہاں پہنچے تھے۔ بہر حال مشرقی پاکستان آج جس تیز رفتاری کے ساتھ ترقی کی منزلوں کی طرف گامزن ہے اس کی وجہ سے یہاں کے پہاڑی علاقوں کے باشندوں میں بھی ترقی کی لہر دوڑے گی اور وہ بھی ان ترقیاتی منصوبوں سے بہرہ ور ہوں گے جو پورے مشرقی پاکستان میں اب عام ہو رہے ہیں پہاڑی علاقے کے عین وسط میں ترقی کی لہر دوڑ گئی ہے۔ کاپتی کا برقابی منصوبہ اور کرنا فلی کا کارخانہ کاغذ سازی نے چکمہ اور موگھ قبائل کے لئے ترقی و معاش کی بہت سی نئی راہیں کھول دی ہیں۔ اسی طرح ضلع بندربن میں سانگو ڈیم بنانے کی تجویز ہے۔ اس کے مکمل ہونے پر مورنگوں کے بھی دن پھر جائیں گے اور اب تک ان جنگل باسیوں کی طرف سے جو غفلت برتی گئی تھی وہ توجہ سے بدل جائے گی اور صدیوں پرانا جمود دور ہو جائے گا ــــ مشرقی پاکستان کے ان پہاڑی علاقوں میں جب نئی لہر دوڑے گی تو قدرتی بات ہے کہ مورنگ بھی اس سے متاثر ہوئے بغیر نہیں رہیں گے۔ اس وقت ان مورنگوں کی زندگی اور تمدنی نظام میں کیا کیا تبدیلیاں آ گئی ہوں گی اس کی کہانی بھی بڑی دلچسپ ہوگی۔ امید ہے اس کا آنکھوں دیکھا حال جلد پیش کر سکوں گا ؛

ـانہ:

"ایسا گماں نہ تھا"

(ایک نفسیاتی مطالعہ)

وجاہت حسین سونی پتی

نغمہ ؟

ہاں ماں اور کون ؟

میں کیسے باور کر لوں ؟ . . . . . . وہ اور . . . .

یعنی چہ ؟ ناممکن ! اُسے تو . . . . . .

نفرت تھی، وحشت تھی، . . . . . سب کچھ تھا مگر اب وہ تنہا نہیں !

مجھے وہ دس سال یاد ہیں۔ اپنی عمر کے ابتدائی سال جو میں نے اس کے ساتھ گذارے۔ وہ پانچ برس کی تھی جب اس کا باپ فوت ہوگیا، ایک کار کے حادثے میں اور اس حادثے سے ایک اور حادثہ بھی پیدا ہوگیا جو عموماً ہوتا ہی ہے۔ اس کی ماں نے دوسری شادی کر لی اور سوتیلے باپ تو سوتیلے ہی ہوتے ہیں۔ تھا تو کافی پڑھا لکھا، ترقی یافتہ، مگر بے حد تنگ نظر۔ نغمہ پروان چڑھے، تعلیم پائے، اسے اس سے کیا۔ وہ بڑی پیاری ہی سہی، بڑی ذہین، مگر وہ اس کی کنف میں تو نہ تھی۔ کوئی خون کا رشتہ تو نہ تھا۔ ننھی منّی نغمہ، اس کا رشتہ تو کچھ دور سے ہمارے ہی ساتھ جا ملتا تھا۔ نغمہ کی ماں میری والدہ کی بہن لگتی تھیں اس لئے میرا اس کا بھی ایسا دور --- اور قریب کا رشتہ بھی طے ہوگیا۔ میری ماں اس لئے اسے اپنے یہاں لے آئی۔ اس وقت میں بھی سات آٹھ سال کا تھا۔ اکلوتا بچہ۔ اور جب اس گھر میں ایک اور اکلوتی آگئی تو وہ قدرتی طور پر میری ہمجولی بن گئی۔ پہلے پہل تو میں یہ سن کر چونک پڑا کہ وہ اکلوتی نہیں۔ اکلوتے کی طرح بات کرتی ہے۔ بالکل میری طرح۔ جیسے وہ لڑکی ہوتے ہوئے بھی لڑکی نہیں کہلانا چاہتی۔ بالکل مردوں کا سا عزم، خود اعتمادی۔ وہ بے دھڑک کہتی "جاوید بھیا! میں یہ کام کر سکتی ہوں۔" میں اس کے منہ سے یہ سن کر مسکرا دیتا اور چھیڑنے کے لئے کہتا "ہاں تو جاوید بھیا میں . . . ." وہ اس پر ذرا بھی نہ گھبراتی اور میں اس کی ہمت و جرأت کی داد دئے بغیر نہ رہ سکتا۔ شاید یہ مردانہ پن تھا جس کے باعث وہ ایسے ایسے مشکل کام انجام دے لیا کرتی جن سے مرد بھی پہلو بچائیں۔

لباس! ارے یہ کیا؟ مذاق تو نہیں کر رہی ہیں؟ پتلون، کوٹ، مگر وہ ذرا بھی ٹس سے مس نہ ہوتی۔ رفتہ رفتہ میں بھی اور گھر کے سب لوگ ان باتوں کے عادی ہوگئے۔ لطف یہ کہ وہ پوری طرح مرد بننے کے لئے سر پر دوپٹے کو پگڑی کی طرح باندھ لیتی۔ جیسے ہیر کسی ناٹک میں رانجھا بن گئی ہو۔ اتنی چھوٹی سی عمر میں! جو دیکھتا حیران ہوتا۔ شاید بچپن میں جنس کا امتیاز اور جنسی شعور اتنا زیادہ نہیں ہوتا۔ ان کے ڈانڈے کچھ کچھ آپس میں ملے ہوتے ہیں۔ اس لئے ایسی باتیں عجیب ہوتے ہوئے بھی عجیب نہیں ہوتیں۔ میں اس کی اس [illegible] روش پر کوئی مذاق کر بیٹھتا تو وہ جھٹ جواب دیتی: "میرا نام نغمہ جو ہے"

امّی جان نے شروع ہی سے نغمہ کے لئے اپنی بہن کا روپ دھار لیا تھا۔ بیحد حساس اور ہمدرد۔ ایک پروان چڑھتے ہوئے پودے کی ہر حالت سے دلچسپی رکھتے ہوئے، وہ ان باتوں پر اسے نصیحت کرتیں، بڑے پیار سے سمجھاتیں۔ ابّا کی تو ایک سے دو بلکہ دو سے تین ہو جانے میں جیت تھی۔ اس لئے جب کبھی ابّا جان کے سامنے امّی ناصح مشفق کا کردار ادا کرتیں تو وہ کھلکھلا کر ہنس پڑتے اور کہتے کہ یہ ہم مردوں کی تعداد میں ایک اور اضافہ ہے۔ ہماری اکثریت تمہاری اقلیت۔ ابّا جان کی یہ ہنسی نغمہ کے اس جذبے کی تسکین کا باعث بنتی جس کی رو میں وہ بہے جا رہی تھی --- سمند احساس کو تازیانہ۔

ہم دونوں کھیلا کرتے۔ کبھی لڑ بھی پڑتے۔ نغمہ یہاں بھی باز نہ رہتی۔ اور تاؤ میں آکر مجھے ایسا دھنک ڈالتی کہ میں چیختا چلاتا امّی کے پاس شکایت لے کر جاتا۔ وہ الٹی مجھے ملامت کرتیں: "توبہ! مرد ہوتے ہوئے یہ چیخ پکار! یہ دنیا آگے چل کر کیا ہوگا؟"

ظاہر ہے اس میں ایک خاص اشارہ ہوتا جس سے امّاں کے ارادوں کی جھلک صاف دکھائی دیتی اور جسے میں سمجھتے سمجھتے ہی سمجھ لیتا ابا بھی نغمہ ہی کا ساتھ دیتے، "واہ بیٹا! پٹ گئے نا۔ ایں کار از تو آید و مرداں چنیں کنند! اس سے ڈرتے ہو۔ بالشت بھر گرلز سے؟ ماشاء اللہ ابھی سے ٹریننگ!" دراصل وہ ان الفاظ سے مجھے شہ دیتے اور واقعی میرے دل میں حوصلہ و ہمت پیدا ہو بھی جاتی۔ مگر جونہی حریف سامنے آتا میری ساری اولوالعزمی اور جرأت ہوا ہو جاتی اور میں یوں کانپ اٹھتا جیسے کوئی مجرم جابر حاکم سے سنگین سزا پانے کے بعد۔

ہمارا گھریلو ماحول ہم دونوں کی زندگیوں کو الگ الگ ڈگر پر ڈالتا جا رہا تھا۔ حریف ـــ ضدی، شوخ، تند مزاج اور میں اس کے برعکس احساس کمتری کا شکار۔ دونوں طبعاً ایک دوسرے سے مختلف۔ پھر بھی ہمیں ایک دوسرے سے جدائی گوارا نہ تھی۔ جتنی شدت سے لڑتے اتنی ہی شدت سے پیار بھی کرتے تھے۔ ہماری نوعمری کا یہ زمانہ بھی کتنا معصوم تھا۔ جب کبھی مجھے سکول سے دیر ہو جاتی یا میں کسی دوست سے ملنے کے لئے چلا جاتا تو واپسی پر گھر آکر پتہ چلتا کہ نغمہ نے ادھم مچا رکھی ہے۔ امّی، ابا سے لڑتی، نوکرانیوں کے پیچھے پڑتی کہ جاؤ ابھی ڈھونڈ کر لاؤ، میں یہ دیکھ کر جی ہی جی میں بہت خوش ہوتا۔ نغمہ ان موقعوں پر "نقشِ فریادی" بھی تیار کرتی اور اپنی شوخیٔ تحریر یا شوخیٔ طبع کا ثبوت دیتی۔ وہ اپنے غم و غصہ کا اثر انہیں نقوش میں ظاہر کرتی یعنی کہیں کپڑے الٹے سیدھے پھینکے ہوتے، کہیں اوندھی کرسی توڑے پھوڑے ہوئے قلم، کہیں الٹ پلٹ کتابیں اور کہیں چینی کے پیالوں کے ٹکڑے۔ گھر میں اسے ٹوکتا تو کون ٹوکتا، جو بھی اس کی لاابالی طبیعت میں آتا وہ کر گذرتی اور جو کچھ چاہتی بے دھڑک کر ڈالتی۔ میرے ماضی کے اوراق ایسے ہی نقوش سے بھرے پڑے ہیں کسی گہرے سمندر میں غرق اور حافظے کے نہاں خانے میں محفوظ۔ کتنا حسین تھا یہ سنہری زمانہ اور کتنی دلآویز ہیں اس کی معصوم یادیں۔

وقت گذرتا چلا جا رہا تھا۔ درختوں کے سائے ابھرتے رہے، پھیلتے رہے، سمٹتے رہے، گم ہوتے رہے۔ زندگی کے سینہ پر خوبصورت عمارتیں کھڑی ہو گئیں اور کہیں زمین کے دہن نے خستہ عمارتوں کو نگل لیا۔ روشنی بارش کی طرح برستی رہی اور اندھیرے خاموشی سے رات کی کشتی میں بیٹھ کر کائنات کے دریاؤں میں تیرتے رہے۔ یہ کیفیتیں، یہ صبح و شام کے ملاپ، یہ بہار و خزاں، آتی جاتی رُتیں۔ یہ تعمیر و تخریب کے مناظر، یہ ابھرتے ڈوبتے سائے ہماری زندگی میں طرح طرح کے اضافے کرتے چلے گئے۔ ہم جوانی کی حدوں کو چھونے لگے۔ ان حدوں کی ابتدا ایک ایسی باڑھ سے ہوئی جسے اعتدال کی نرمی اور احتیاط کی قوت نے تعمیر کیا تھا۔ اب ہم بالکل لڑتے جھگڑتے نہ تھے۔ اب ہم میں کوئی بے تکلفی بھی نہیں رہی تھی۔ کمرے الگ الگ۔ میں آرٹس کا طالب علم، وہ علم نباتات کی طالبہ اس کی وہ شوخیاں جو بچپن کا امتیازی نشان تھیں، بالکل ختم ہو گئیں۔ اب اس کے چہرے پر غور و فکر کی روشنی نظر آتی تھی۔ بے حد سنجیدہ۔ ایسا نظر آتا تھا جیسے شوخیوں شرارتوں کا وہ سرمایہ جو قدرت نے نغمہ کو دیا تھا، وہ اسے پوری طرح اپنے بچپن میں صرف کر چکی تھی اور اسے اب سنجیدگی کے خزانے مل چکے تھے۔ اکثر دیکھا گیا ہے کہ جو بچے بچپن میں بے حد شرارتی ہوں، وہ شباب میں داخل ہوتے ہی نہایت سنجیدہ ہو جاتے ہیں۔ نغمہ بھی میری نظر میں اس حقیقت کی واضح مثال تھی۔ اس کا کمرہ اچھا خاصا معمل بن چکا تھا۔ وہ دن رات اپنے کام میں منہمک رہتی۔ طرح طرح کے تجربے کرنا۔ ان سے نتائج مرتب کرنا، اس کے علمی شعور کا حصہ بن چکا تھا۔ وہ میری طرف بہت کم توجہ دیتی اور تعجب یہ کہ ہم ایک ہی گھر میں رہنے کے باوجود کئی کئی دن ایک دوسرے کی شکل تک نہ دیکھتے تعلیم کی راہگذر پر چلے۔ ہم بہت دور نکل چکے تھے۔ میں ایم۔ اے میں داخلہ لے چکا تھا اور وہ اسی تناسب سے علمی دوڑ میں تیز رفتاری کا اظہار کر رہی تھی۔ اب اس کا معمل کمرے ہی تک محدود نہ تھا، بلکہ اس نے گھر سے باہر ایک پھلواری بھی بنا رکھی تھی، جس میں وہ دن بھر پھولوں، پتوں، پھلوں اور سبزیوں کو کاٹتی، تراشتی اور ان کا کیمیاوی یا خوردبینی تجزیہ کرتی رہتی۔ ہوتے ہوتے اسے اتنی مہارت ہو گئی کہ وہ آنکھیں بند کر کے کسی چیز کو محض سونگھنے سے اس کا نام بتا سکتی تھی۔ میں اس کی قوت شامہ پر اکثر حیران رہ جاتا جیسے اس کے ذہن میں ایک ایسا صحیفہ کھل گیا تھا جس کے اوراق میں کل کائنات کی خوشبوئیں محفوظ تھیں۔

ایک دن ہم سب نے مل کر اسے سٹ پٹانے کے لئے پلاٹ بنایا۔ صبح کا وقت تھا۔ وہ باغیچہ میں کچھ نئے پودوں کا تجزیہ کر رہی تھی جو باہر سے منگوائے گئے تھے۔ اس نے ان کی پرورش کا خاص اہتمام کر رکھا تھا۔ یہ پودے زمین سے ڈیڑھ فٹ کے قریب ابھر آئے تھے۔ مجھے یوں لگا جیسے ان کا تجزیہ کرتے وقت نغمہ اس زمانے کی طرف

ٹوٹ گئی ہے جہاں اس کا بچپن خود انہیں پودوں کی طرح معصوم اور دوسروں کی امداد کا محتاج تھا۔ جب وہ پھلواری سے باہر نکلتی تو اس کے چہرے پر ایک خاص قسم کی چمک ہوتی۔ میں نے پودوں سے نظر ہٹا کر پھلواری میں لگے ہوئے، اونچے نیچے پودوں کو دیکھا اور مسکرائے بغیر نہ رہ سکا۔ نغمہ نے میرے چہرے پر اس مسکراہٹ کو نہیں دیکھا۔ میں سامنے کھڑے ہوئے درختوں کے تصور میں کھویا ہوا تھا اور اس کا ذہن ابھی پودوں کی نرم نرم کونپلوں سے باہر نہیں نکلا تھا۔

میں پلاٹ کا ذکر کر رہا تھا۔ ہم نے نغمہ کی آنکھوں پر پٹی باندھ دی۔ اتفاق سے ان دنوں ایک صاحب جنہیں "سیاح چچا" کہتے تھے اور جنہوں نے ہمالیہ کے ایک ایک پہاڑ کی سیر کی تھی، ایک بڑے ہی نایاب قسم کے پھول کا عطر تحفتہً لائے تھے۔ ہم نے یہ تھوڑا سا عطر گل نیلوفر کے ایک منہ بند غنچے پر چھڑک دیا اور کہا بتاؤ یہ کونسا پھول ہے؟ ہمارا خیال تھا وہ جھٹ کہہ دے گی یہ فلاں پھول ہے۔ لیکن وہ خاموش رہی۔ اس نے تین چار مرتبہ غنچہ کو سونگھا۔ مگر منہ سے کچھ نہ بولی۔ ہر بار اس کے لبوں پر ایک پُرمعنی مسکراہٹ اُبھر آتی۔ ابا کہتے بس بس، تم اسے بوجھ چکیں۔ آخر نغمہ کے لبوں کو جنبش ہوئی اور اس نے کہا: "پھول ایک نہیں دو ہیں۔ ایک تو نیلوفر لگتا ہے اور دوسرا ......" اباجان جھٹ بولے "ہونہہ! دو کہاں ایک ہی تو ہے۔ بس جی بس، معلوم شد۔" نغمہ کا جواب بڑا دلچسپ تھا۔ وہ بولی "ہے تو خیر وہ نیلوفر مگر ہے پہاڑی۔ اس میں کسی نایاب پھول کی باس بھی مل گئی ہے۔ اوہو! یہ کوئی عطر تو نہیں مل دیا آپ نے؟ دونوں خوشبوئیں ایک دوسرے کو دبا رہی ہیں۔ دیکھوں تو ....."

ہم سب حیران رہ گئے اور اباجان نے تو بہت ہی شاباش دی۔

ایسے قصے ہمارے گھر کی مستقل رونق بن گئے تھے۔ زندگی کی کشتی اب شباب کے دریا میں پوری طرح اتر چکی تھی۔ شباب کی لہریں جذبات کے ساحل سے مستانہ وار ٹکرا رہی تھیں۔ نغمہ جوان ہو چکی تھی۔ امی کو اس کی شادی کی فکر دامنگیر ہوئی۔ لیکن جونہی اس کا تذکرہ کیا گیا، نغمہ پر جیسے سکتہ طاری ہو گیا۔ اتنا شدید ردِ عمل! اس کا وہم و گمان بھی نہ ہو سکتا تھا۔ وہ کئی دن بخار میں پھنکتی رہی۔ مجھے بے اختیار "ضدی" کا ہیرو یاد آ گیا۔ میرے ذہن میں نغمہ کا ایک تصور تھا اور وہ مجھے دھندلاہٹوں کی آغوش میں کھوتا ہوا محسوس ہوا۔

نغمہ کو اس لفظ سے شدید نفرت تھی۔ جب کبھی اس کا سوال اٹھتا وہ خبر نہیں کس نفسیاتی ردِ عمل کے تحت بیمار ہو جاتی۔ ایسا کئی بار ہوا۔ یہاں تک کہ اس بات کو ہمیشہ کے لئے ختم کر دینا پڑا۔ اس کے معنی تھے اس کی زندگی کو معرضِ خطر میں ڈال دینا۔ اور امی کو نغمہ کی زندگی میری مسرت سے زیادہ عزیز تھی۔

نغمہ خوشبوؤں کی دنیا میں بڑھتی چلی گئی۔ پودوں، پھولوں، پتوں، شاخوں، سبزیوں غرض ہر نباتاتی شے کا تجزیہ اس کی زندگی کا مقصود بن گیا۔ میں نے ایم۔ اے کا امتحان بھی پاس کر لیا اور میری زندگی .... خیر، اب اس کا تذکرہ ہی کیا۔ میں نے محسوس کیا اس کی سب سے زیادہ خوشی نغمہ کو ہو گی حالانکہ میرا خیال تھا وہ اس کا بہت گہرا اثر لے گی۔

زندگی بار آور ہوئی اور ایک غنچہ کھلا۔ نغمہ بہت خوش تھی۔ وہ اس نو شگفتہ غنچے سے کھیلتی رہتی۔ اس کی توجہ پھلواری کے غنچوں سے اس نئے غنچے کی طرف منتقل ہو گئی۔ خبر نہیں اس کو واقعی غنچہ کہہ بھی سکتے ہیں یا نہیں۔ ہم کیا اور ہماری قوت شامہ کیا۔ مگر نغمہ تو ہر پھول کی خوشبو سونگھ لیتی تھی۔ شاید اسی کے تحت الشعور کو اس سے بھی کوئی خوشبو آتی ہو۔ ایک نامعلوم پیام۔ وہ اسی غنچۂ نو شگفتہ کو نہلاتی، دھلاتی اور خوب پیار کرتی۔ میں نے یہ بھی دیکھا کہ وہ کیسے دیوانہ وار اس ہنستے کھیلتے غنچے کا منہ چومتی جاتی۔ میں نے غور کیا۔ بچے کے بال بھٹوں کے بالوں کی طرح سنہرے سنہرے، چمک دیتے ہوئے، تر و تازہ تھے۔ جیسے ان کو چھونے سے کوئی سچ مچ کسی ہری بھری سوندھی سوندھی سیلی گھاس کو چھو رہا ہو۔ آنکھیں رس بھری کی طرح اور پپوٹے جیسے رس بھری ہی کا نرم نرم چھلکا۔ گال گلاب کی طرح لہکتے ہوئے اور ہونٹ پھولوں کی نرم و نازک پتیاں۔ بھلا اس سے بہتر غنچہ اور کیا ہو سکتا تھا جس کا روز و شب مطالعہ کیا جا سکے۔

چنانچہ وہی پرانا سوال ایک بار پھر ابھرا۔ اب کے بزرگ پیچھے ہٹ گئے اور خورد یعنی بہو آگے بڑھی۔ اس نے باتوں باتوں میں کہا بچے بھی تو پھول ہی ہوتے ہیں۔ کیسے کومل، کیسے پیارے! کیسے اچھے لگتے ہیں یہ۔ نغمہ نے کہا کیوں نہیں۔ کائیاں بھاوج بولی زندگی کی بہار تبھی ہے کہ گود ہری بھری ہو اور اس میں ایسا ہی کوئی غنچہ، رنگین ہنستا کھیلتا مہکتا نظر آئے۔ نغمہ کے چہرے پر سرخی کی لہر دوڑ گئی اور دیکھنے والی

(باقی صفحہ ۸۰ پر)

ثقافت:

سوندھی مٹی

طاہر احمد

شکر کا مقام ہے کہ اب کچھ عرصہ سے ملک کے دانشور اور ادیب بھی کھلم کھلا قومی کلچر کی اصطلاح استعمال کر رہے ہیں اور انہوں نے بھی بالآخر اس کے اپنے علیحدہ وجود کو تسلیم کر لیا ہے۔ آج اُن فنکاروں کی طرح جن کی ننھی ننھی انگلیوں نے ہماری دھرتی کے حسن اور اس کی بالیدگی کی پرورش کی ہے، ہمارے اہلِ علم و اہلِ قلم بھی اب سربلندی کے ساتھ اپنے "قومی کلچر" کے الفاظ استعمال کر رہے ہیں۔ یہ ہمارے قومی نشوونما اور خود داری کی ایک واضح علامت ہے۔ اس سے پہلے اکثر یہ سنا جاتا تھا کہ "ہمارا کوئی واضح کلچر نہیں ہے" "ہمیں ایک قومی کلچر کی ضرورت ہے" وغیرہ۔ اب کچھ اداروں نے، بالخصوص رائٹرز گلڈ، آرٹس کونسل آف پاکستان اور نذرل اکیڈمی کی کوششوں سے یہ صورتِ حال روشن تر ہوتی جا رہی ہے کہ ہماری زرخیز زندگی جو خیبر سے چاٹگام کی پہاڑیوں اور بحیرۂ عرب سے قراقرم کی وادیوں تک پھیلی ہوئی ہے، ایک زبردست تہذیب اور واضح کلچر کی امین ہے۔

یہ احساس اتنا ہی انوکھا ہے جیسے بعض لوگ شہروں میں رہتے ہوئے اچانک سمجھ جائیں کہ وہ اکیلے نہیں رہتے۔ یہ حقیقت بڑی آہستگی سے طلوع ہوئی ہے۔ لیکن اس کی وضاحت بڑی ضروری اور مبارک ہے۔ کیا ہمارا قومی کلچر کوئی نئی علامت ہے؟ کیا یہ صرف چند سال کے اندر ہی ظہور میں آیا ہے؟ میرا خیال ہے کہ ایسا نہیں ہے۔ بلکہ صرف اس احساس کی جڑیں مضبوط ہوئی ہیں اور اگر اب بھی کہیں احساسِ کمتری یا جھنجھلاہٹ پائی جاتی ہے تو وہ بھی یقیناً آہستہ آہستہ دور ہو جائے گی۔ کیونکہ واقعہ یہ ہے کہ ہماری قومی ثقافت اتنی ہی قدیم ہے جتنا اباسین، جتنا چناب اور ان کی ٹھنڈی زرخیز زمین اور مشرقی پاکستان کے جنگلوں میں رقص کرنے والی خوشبودار ہوا۔ ہمارا یہ قومی ورثہ ایک وسیع، متنوع اور گمبھیر دنیا ہے جس کے کنارے دلوں سے دلوں تک پھیلے ہوئے ہیں اور جس کی علامتیں اب واضح تر ہوتی جا رہی ہیں۔ شاید اب اس دعوے کے لئے کسی دلیل کی بھی حاجت نہیں رہی ہے۔

ہر قوم اپنے ثقافتی آثار و علائم کی زندہ مثالوں سے ہی ممتاز ہوتی ہے اور اقوامِ عالم میں پہچانی جاتی ہے۔ یہ علامتیں رسم و رواج، زبان و ادب، قدیم کہانیوں، گیتوں، روایات میں ملتی ہیں یا قوم کی اُمنگوں اور دین و ملت کی گاڑھی سوندھی مٹی سے تیار ہوتی ہیں۔ ان کی توانائی کی سب سے بڑی علامت یہ ہے کہ وہ نئے ماحول اور نئی رفتار کے ساتھ خود کو زندہ رکھ سکتی ہیں اور ان کا حسن ماند نہیں پڑتا نہ ان کی تاب مدھم پڑتی ہے۔ ہمارا قومی کلچر اس روشنی میں یقیناً نیا نہیں، بہت پرانا ہے، بڑا مانوس اور گہرا۔ اس کی علامتیں گندھارا کی وادیوں سے لے کر سندھ کے ڈیلٹا تک بکھری ہوئی ہیں اور آج کی مشینی زندگی بھی اس کی اصل توانائی، کشش اور روح کو نقصان نہیں پہنچا سکی ہے۔ یہی زندہ تہذیب کی علامت ہے۔ ہماری ثقافت جس کے ڈانڈے گندھارا کے مجسموں، موئن جو دڑو کے گلی کوچوں، یہاں کے ظروف اور ٹیکسلا کے عظیم معبدوں اور دانشکدوں سے ملے ہوئے ہیں اور ہڑپا سے اس کا قدیم رشتہ ہے۔ اسے شالامار کے مرمریں دریچوں سے بھی مناسبت ہے۔ اس نے قصہ خوانی بازار کو صرف ایک بازار ہی نہیں رہنے دیا ہے اور نہ ڈھاکہ کی طلسمی گلیاں صرف گلیاں ہی ہیں۔ ان میں جو زندگی، رنگا رنگی اور ہمہ گیر کیفیت نظر آتی ہے وہ ایک طویل قومی داستان کا حصہ ہے۔ یہ تاریخ، تہذیب اور ثقافت کی ان مختلف طاقتور تحریکوں کا امتزاج ہے جو اس سرزمین میں پھیلتی رہی ہیں اور اپنا نقش چھوڑ گئی ہیں۔ اَن مٹ نقش۔ یہ تہذیبی نقوش فن کارانہ بھی ہیں، نسلی و سماجی بھی اور تعمیراتی بھی۔ ان کے قدیم اور مقدس وجود سے ہم کو اپنی سرزمین کی زندگی، اس کی قدامت، عظمت اور ٹھہراؤ کا پتہ چلتا ہے۔ یہ تہذیب دنیا کی عظیم ترین تہذیبوں کی طرح انسانی عظمت و حسن کا ایک سرمدی نقش ہمارے دلوں پر چھوڑتی ہے، خواہ آپ محسوس کریں یا نہ کریں۔

دوسرے الفاظ میں یہ کہوں گا کہ ہماری قومی تہذیب دراصل مختلف علاقائی عناصر اور عوامی روایات سے مل جل کر گندھی ہے۔ یہ اتنی ہی قدیم ہے جتنی پن چکی، کسان کا ہل، جولاہے کا کرگھا چلانے والی انگلیاں اور قالین بننے والے کے ہاتھ۔ یہ اتنی ہی عظیم ہے جتنی سفال گر کی ہتھیلیاں، اور ٹوکریاں بننے والی آنکھیں۔ یہ وہی قدیم تہذیب ہے جس کی تعمیر میں معمار کی محنت، کسان کا پسینہ، بڑھئی کی کاوش، ڈھاکہ ململ بنانے والوں کی روایات، نقاشوں کی عرق ریزی اور سنگ تراشوں کا خونِ جگر ملا ہوا ہے۔ ہماری تہذیب کی اساس ایک زرعی معاشرت پر قائم ہے جس کو صدیوں تک دھرتی نے پروان چڑھایا ہے اور جو وقت کے ساتھ ساتھ زیادہ توانا اور دلکش ہوتی چلی گئی ہے۔ آج مٹی کا برتن، اونٹ کی کھال کا لیمپ، اونی قالین، رنگین تنکوں کی ٹوکری اور پتھر کی مورتی سب ہماری تہذیب کی علامتیں بن گئی ہیں۔ ہم نے ان کو زندگی میں ایک نئے انداز سے شامل کیا ہے۔ آج ہمارے سجے ہوئے ڈرائنگ روم کی زینت بھی ہیں اور معمولی سے گھر کی آرائش بھی۔ ہمیں ان سے محبت ہے کیونکہ یہ سب چیزیں ہماری ہیں۔

اس گفتگو سے یہ تو معلوم ہو گیا کہ ہماری تہذیب قدیم ہے اور اتنی قدیم جتنی کہ زندگی، لیکن ہماری تہذیب صرف اپنی قدامت کے بل بوتے پر ہماری بقا و حفاظت کی حق دار نہیں بن جاتی بلکہ اس میں افادیت بھی ہے اور وجدانی تہذیب کا سامان بھی۔ اس میں قومی امنگوں اور آرزوؤں کا اظہار بھی ہوتا ہے، نیز آگے بڑھتی ہوئی ارتقا پذیر زندگی کی بیباکی اور اخذ و جذب کی صلاحیت بھی۔ کیا ہماری تہذیب ان مظاہر کو پیش نہیں کرتی؟ میرا جواب تو اثبات میں ہے۔ آپ کا کیا خیال ہے؟

ہماری تہذیب صرف قدیم ہی نہیں ہے بلکہ اس نے ہر دور میں نئی باتوں کی توانائی اور حسن کو بھی اپنے اندر سمویا ہے۔ مغلوں اور ترکوں کی تہذیب نے اسے بہت کچھ دیا ہے۔ غور سے دیکھئے اس تمام سرمایہ میں عجم کا حسنِ طبیعت بھی ہے اور عرب کا سوزِ دروں بھی۔ ایک اور خوبی یہ کہ اس نے ادب اور فن کے میدانوں میں بھی مقامی اثرات کو قبول کیا ہے اور بڑی بلاغت و چابکدستی کے ساتھ ارتقائی عمل کا ساتھ دیا ہے۔ اسی قومی مزاج نے ہم سے شالامار بنوایا، بادشاہی مسجد بنوائی، قصہ خوانی بازار آباد کرایا۔ دیکھئے مہابت خاں کی مسجد، مسجد ست گنبد اور جہانگیر کے مقبرہ کی نازک مرمریں نقاشی کیا داستان سنا رہی ہے۔ کیا ڈھاکہ کی ململ، گجرات کے نازک ظروف، ٹھٹھہ کی عظیم عمارتیں اس دھرتی کے جادو نہیں۔ مہران اور پدما کے شاداب پانیوں سے زرخیز، علاقائی گیتوں میں ابھرنے والا جذبہ اور اس کی مٹھاس کون بھول سکتا ہے۔

ہمارا قومی کلچر عوام کے دلوں میں اتنا ہی قدیم ہے جتنی زمین کی چھایا اور اس کا حسن ہم اس سے اپنا رشتہ کیسے توڑیں؟ کیا ماضی کی ہر شے ناکارہ ہی ہوتی ہے؟ ماضی سے ہی زندہ اور توانا کلچر کی روایت آگے بڑھتی ہے۔ ایسا کلچر جو ابھی تک انمٹ ہے، کیا وہ کبھی نابود ہو سکے گا؟ حقیقت تو یہ بتا رہی ہے کہ وہ زندگی کے ساتھ جینے کی کوشش میں کامیاب رہا ہے۔ یہ کلچر بھٹیالی گیتوں، بوڑھی گنگا اور پدما کے ملاحوں، چناب و جہلم کے کسانوں، نذرل، وارث شاہ اور شاہ لطیف کی دھرتی کی پیداوار ہے اس لئے سدا بہار ہے۔ یہ دھان کے کھیتوں، پٹ سن کی فصلوں، چاٹگام کے چائے کے باغات میں پیدا ہوتا ہے اور ان کے باسیوں کے گیتوں سے زنگار رنگ بنا ہے۔ اسے کافیوں اور ٹپوں نے سوز و ساز دیا ہے۔ سندر بن اور کھلنا کے ساحلوں کے دامن رقص و نغمہ نے اسے پروان چڑھایا ہے۔ اسے سرحد کی چٹانوں، سوات کی وادی اور راوی کی موجوں نے دلکش بنایا ہے، جوانی بخشی ہے۔ یہ صرف ڈھاکہ، جیسور اور کاکس بازار میں ہی نہیں پہچانا جاتا اس کی نمود ملتان، پاک پٹن، لاہور، بہاولپور اور لنڈی کوتل میں بھی اپنا روپ دکھاتی ہے۔ یہ اقبال، نذرل، وارث شاہ، فرید، لطیف اور خوشحال خاں کے فکر کی آنچ سے تابانی پاتا ہے۔

کیا ہمارا کلچر حال سے بے خبر یا بے نیاز ہے؟ کیا وہ مر گیا ہے؟ کیا وہ نئی علامتوں کو جذب کرنے سے قاصر ہے؟ نگاہِ امتیاز سے دیکھئے تو وہ ہر طرح مالا مال نظر آتا ہے۔ ان اہم سوالوں کے اقرار یا انکار پر ہمارے قدیم کلچر کے مستقبل کا فیصلہ ہے، مگر خوش قسمتی سے ان سوالوں کا جواب نفی میں ہے۔ ہمارا قومی کلچر تمام زندہ کلچروں کی طرح ماضی سے بے نیاز نہیں۔ نہ وہ مردہ ہے نہ وہ نئے دور کی نئی صحت مند علامتوں کے جذب سے بے خبر یا تہی مایہ۔ یہ صحیح ہے کہ ہمارا قومی کلچر بھی صنعتی دور کی زد میں ہے۔ مگر دنیا کے کون سے تہذیبی عناصر ہیں جو اسی طرح مشینی عہد کی زد میں نہیں۔ آج صدیوں پرانے عقائد، رسوم اور روایات پر نئی زندگی کی ضرب لگ رہی ہے۔ یقیناً نئی زندگی اور اس کے مطالبات

قدیم ٹھہری ہوئی زندگی اور اس کے مطالبات سے بے پروا یا لاتعلق نہیں ہو سکتی اس لئے نئے دور میں قدیم معاشرہ کا رنگ روپ بدلنے کی بات نہ چونکا دینے والی ہے نہ مایوس کن۔ روایات شکست و ریخت کی زد میں ضرور آئیں گی، مگر نیا چولا بدل کر پھر سامنے بھی آجائیں گی۔ عام مشاہدہ ہے کہ کوئی شے کاملاً نہیں مٹتی، ہاں روپ ضرور بدلتی ہے۔ کسی علامت اور نشان کو ہم کیسے مٹا سکتے ہیں۔ وہ نقش اگر مدھم پڑ جائے تو کوئی دوسرا نقش اس کے چھوڑے ہوئے نشان پر اُبھر آتا ہے۔ مشینی طاقتوں نے بھی قدیم نقوش کے ساتھ ایسا ہی کچھ کیا ہے۔

مگر کیا پرانی تہذیب کی نمود، تاریخی عمارات، پرانی بستیوں کے گلی کوچے یکسر فنا ہو گئے؟ ریل، تار، برقی طاقت اور ریڈیو نے ہم سے کیا چھین لیا؟ پلوں کی تعمیر، سڑکوں کا جال اور گاؤں گاؤں بجلی پہنچ جانے سے ہمیں فائدہ اور آرام پہنچا ہے یا نہیں؟ ان جدید آسائشوں نے ہمارے صنعت کاروں اور فنکاروں سب ہی پر اثر ڈالا ہے اور ان کی تخلیقات کو متاثر کیا ہے۔ بعض چیزوں کی قلب ماہیت ہو گئی ہے مگر کسی چیز کی نمود کلیتہً فنا نہیں ہوئی ہے۔ نئی روایات اور نئی زندگی میں تبدیلیاں آجانا ناگزیر تھا مگر یہ بھی حقیقت ہے کہ جدید صنعتی دور نے پیداوار اور سماجی رشتوں کو نئی طاقت بھی دی ہے اور نئی زندگی ابھر رہی ہے۔ لیکن کیا اس نئی برق و باد کی قوت میں اتنا بوتا ہے کہ وہ آپ کے کلاسیکی ادب کو بدل ڈالے، آپ کے گیتوں کا رس چھین لے؟ کوئی سائنس، کوئی قوت آتش و آہن روایات کی دھڑکن اور ان کا حسن نہیں چھین سکتی، نہ انہیں ہمیشہ کے لئے مٹا سکتی ہے۔ وہ کبھی کبھی دلوں کی پہنائیوں میں چھپ ضرور جاتی ہیں مگر ایک وقت میں پھر دلوں سے ہی ان کے سوتے پھوٹتے ہیں اور اپنی سرزمین کو لالہ زار بنا دیتے ہیں۔ اس کی بڑی گہری نفسیاتی وجہ ہے۔ مثلاً آپ اپنے گاؤں کا نقشہ بھی بدل سکتے ہیں۔ اس میں کنوئیں کی جگہ نل لگوا سکتے ہیں، بیل گاڑیوں کی جگہ موٹریں دوڑ سکتی ہیں۔ اور یہ سب کچھ ہو بھی رہا ہے مگر کیا دلوں سے ہمیں اپنی تہذیبی روایات کے چھن جانے کا خدشہ لاحق ہوا ہے؟ ہمارے گیت، ہمارے رقص، ہماری داستانیں، مادی تبدیلیوں کے دائرہ سے خارج کبھی نہیں ہوتیں اور اپنا جادو پھر بھی جگاتی ہیں۔

آج ہم کو چاہیئے کہ برق و باد اور آہن و آتش کے جابر عناصر سے اپنی قومی تہذیب کے دفاع کا کام لیں۔ ان سے نئی توانائی، طاقت اور اشاعت علم و فن کا کام لیں۔ پرانی کتابوں، ادب پاروں، تصویروں، زبانوں، داستانوں، ناٹکوں سے ہم کیا کچھ کام نہیں لے سکتے۔ قومی تعمیر نو میں سب کوششوں کو بلیغ اور مؤثر بنانے کے لئے انہیں عوام تک پہنچانا ہے، اسے عام پسند و عام فہم بھی بنانا ہے۔ مختصر یہ کہ ہماری دھرتی ثقافتی اقدار کی نشوونما کے لئے بہت زرخیز ہے۔ بس اسے اپنے عمل اور جذبہ سے پروان چڑھانا ہے۔ اگر یہ مٹی اس طرح ذرا نم ہو جائے تو اس کی زرخیزی کو چار چاند لگ سکتے ہیں۔ اس دعوت فکر و عمل کے لئے ہمارے ذہین و دانشور طبقہ ہی پر زیادہ ذمہ داری عائد ہوتی ہے اور کام کرنے کے لئے اس دور میں پہلے کی نسبت کچھ زیادہ ہی سر و ساماں میسّر ہیں، اس لئے ضرورت ہے کہ ہم اس ہی ضمن میں کچھ سوچیں اور کام کرنا شروع کریں ؛

"اے روشنیوں کے شہر" بقیہ ص ۲۵

میں توڑ دوں گی یہ زنجیر ظلمت۔ شعاعوں بھرے شہر!
(دریچے سے چھلانگ لگاتی ہے)

بوڑھا: غالدہ! غالدہ!

(غمگین موسیقی)

آہ اے شہر۔ چمکتے ہوئے ہنستے ہوئے شہر
کتنا بے رحم ہے سفاک ہے تو
ترے بے خواب دریچوں کے اجالے — جلاد
تیرے شب تاب ستونوں کی ضیا — تیغ ستم
تیرے انھوں کی کھنک — ساغر سم
تیری ضو بار عمارات ہیں مقتل گاہیں
تیری رعنائیاں۔ آنکھوں کا فریب
یہ ترا حسن ملمع ہے۔ نمائش ہے فقط
ریگ رواں، موج سراب! ؛

غزل

جمیل نقوی

محبت میں سزا و نا سزا کی یاد کیوں آئے
مشامِ عشق کو گل کی، صبا کی یاد کیوں آئے

نمودِ آگہی توہین ہے دینِ محبت میں
لبِ اظہار کو دستِ دعا کی یاد کیوں آئے

خرد بھی ہے شریکِ خندۂ گلہائے بدنامی
تبسم ہائے نمکیں آزما کی یاد کیوں آئے

حریمِ ناز میں حسنِ نظر کی آزمائش ہے
تو پھر ایسے میں اَن دیکھے خدا کی یاد کیوں آئے

نظر گم ہے طلسمِ لذّتِ محشر خرامی میں
جبینِ بندگی کو نقشِ پا کی یاد کیوں آئے

چمن میں سرو بھی آزاد ہے سبزہ بھی بیگانہ
جنوں کو آشنا، نا آشنا کی یاد کیوں آئے

نشاطِ ضبطِ غم جب عشق کا مقسوم ہی ٹھہرا
جمیلؔ اس دشمنِ مہر و وفا کی یاد کیوں آئے

عبداللہ خاور

ہوائے شوق کو اپنی روش پہ چلنے دو
جنوں کو راہگذاروں کا رخ بدلنے دو

کسی کے وعدۂ فردا کا انتظار سہی
اسی حسین سہارے پہ غم کو ٹلنے دو

نگاہِ شوق سے پھوٹے گی صبحِ نو کی کرن
افق پہ تیرگیٔ شامِ غم مچلنے دو

کبھی تو آئے گا گم گشتہ کاروانِ سحر
روش روش پہ دلوں کے چراغ جلنے دو

جہاں میں اہلِ سیاست بہار لا نہ سکے
سبو کشانِ محبت کا دور چلنے دو

افق کی اوٹ میں سَو آفتاب ہیں خاورؔ
کچھ اور حوصلۂ تیرگی نکلنے دو

غزل

شیدا گجراتی

سنائی وقت نے یارانِ غم کی داستاں کیا کیا
ہوئے ہیں دیدۂ کونین سے آنسو رواں کیا کیا

لئے ہیں زندگی نے اہلِ دل کے امتحاں کیا کیا
ہوئے ہیں ہم حریفِ انقلابِ آسماں کیا کیا

یہ کس نے بربطِ دل پر سرودِ آرزو چھیڑا
اُٹھے ہیں روئے فطرت سے حجابِ میاں کیا کیا

سراغِ منزلِ قلب و نظر ملتا گیا جوں جوں
فزوں ہوتی گئی رعنائیٔ فکر و بیاں کیا کیا

اٹھی تو ہے ادھر بھی وہ نگاہِ مہرباں اکثر
مگر حائل ہوئی ہیں راہ میں محرومیاں کیا کیا

ازل سے تا ابد اک منزلِ بے نام کی دھن میں
ہیں سرگرداں سرِ دشتِ تمنا کارواں کیا کیا

جوابِ جلوۂ صد رنگ ہے داغِ جگر اپنا
چمکنے کو تو چمکے مہر و ماہ و کہکشاں کیا کیا

ہم اپنی عظمتِ گفتار سے بیگانہ تھے جب تک
کھلے اس انجمن میں جوہرِ طبعِ رواں کیا کیا

بہر صورت ہم اپنی وضع پر قائم تو ہیں شیداؔ
بدلتا ہی رہا یاروں کا اندازِ بیاں کیا کیا

غزل

حشم لکھنوی

ہمہ تن جانِ تمنا ہے ذرا دیکھ کہ کن راہوں سے مجھ کو لئے جاتی ہے مری گردشِ ایامِ حیات
اُفقِ زیست کے غمناک و غم انگیز دھندلکوں میں سمانے کے لئے کتنی ہے بے چین مری شامِ حیات

اے مرے دوست مرے ہمدم و ہمراز مرے عہدِ گزشتہ کی بہاروں کی المناک حکایات نہ چھیڑ
جرعۂ تلخ شفق رنگ سہی پھر بھی مرے دل کے لئے کتنی سم آلود ہے یہ دُردِ تہِ جامِ حیات

دیکھ کر پائے عمل جادۂ تاریک کے ذرات سے اس طرح نکلتی ہے بہ ہر گام امیدوں کی کرن
حلقۂ ظلمتِ شب توڑ کے جس طرح نکل آتا ہو خورشیدِ ضیا پاش جہاں تاب سرِ بامِ حیات

تیز چل تیز کہ اے راہروِ ملکِ عدم سیلِ حوادث کے تھپیڑوں میں نہیں کوئی ٹھہرنے کا مقام
وقت کے دکش پہ ان ٹوٹے ہوئے سقف و در و بام کے آثارِ قدیمہ ہیں یہ عبرت گہِ انجامِ حیات

آج جو ماہ رُخ و ماہ وش و ماہ جبیں سوتے ہیں بستی سے بہت دور بہت دور تہِ خاکِ مزار
یہ وہی غنچۂ نوخیز ہیں کل جن کے تبسم سے گلستاں کی بہاروں کو ملا کرتا تھا پیغامِ حیات

حوصلے دل میں اگر ہوں تو مرے ذوقِ نظر ذوقِ طلب کے لئے یہ اوجِ ثریا بھی کوئی چیز نہیں
غم و آلامِ جہاں سے ملے فرصت تو دکھاؤں میں زمانے کو پہنچا ہے کہاں تک یہ مرا گامِ حیات

اے حشم ہے چمنستانِ جہاں میں کہیں کوئل کہیں بلبل کہیں تتلی کہیں جگنو کہیں بدبخت چکور
یعنی اس عالمِ فانی کے ہر اک گوشۂ رنگیں میں ہر اک سمت ہے پھیلا ہوا اک سلسلۂ دامِ حیات

ماہ نو، کراچی، دسمبر ۱۹۶۳ء

مقامات:

"کانی گرم"

اقبال بنوی

آپ کا فرمانا صحیح ہے کہ آپ نے یہ بولی اس سے قبل کبھی نہ سنی تھی مگر ہمارے ملک میں، خاص کر مغربی پاکستان میں، آپ ایسے بہت سے مقامات پر پہنچیں گے جہاں کی دنیا ہی بدلی ہوئی نظر آئے گی اور بولی بھی پہلے کبھی نہ سنی ہوگی، مگر حقیقت میں وہ ہمارے ہی وطنی بھائی ہیں اور یہ جگہیں بھی ہماری ہی سرزمین کا حصہ ہیں۔ اپنی دھرتی کے مختلف علاقوں کا تعارف بہم پہنچانا ہمارا قومی و ملی فریضہ ہی نہیں یوں بھی ایک بڑا دلچسپ ثقافتی مشغلہ ہے۔ آپ جگہ جگہ جائیں تو بہت سی باتیں نئی ملیں گی بلکہ لباس، بول چال اور رہن سہن بھی کچھ جدا معلوم ہوگا گو پھر بھی ان میں بہت سی مشترک قدریں آپ کو ملیں گی اور انہیں معلوم کر کے ہم میں یگانگت کا اور بھی قوی احساس پیدا ہو جاتا ہے۔ یہی وجہ ہے کہ آج آپ اتنے دور دراز سفر کے بعد یہاں تک پہنچے ہیں۔ یہ ہمارے علاقے اور اس کے باشندوں سے تعارف کی لگن ہی ہے جو آپ کو کھینچ کر یہاں لائی ہے۔ جیسا کہ میں نے عرض کیا، آپ نے یہ بولی پہلے نہ سنی ہوگی، پشتو کو تو خیر آپ جانتے ہی ہیں مگر یہ برکی لوگوں کی بولی ہے۔ برکی حضرات اور ان کی بولی کا مزید تعارف میں ابھی کراتا ہوں۔ آپ نے راستہ میں جگہ جگہ "برکی کریانہ سٹورز" "برکی جنرل مرچنٹس" وغیرہ کے بورڈ لگے ہوئے دیکھے ہیں، تو اس سے یہ تو معلوم ہو گیا ہوگا کہ یہاں برکی حضرات کثرت سے آباد ہیں۔ اب تو برکی حضرات کا تعارف برکی مشاہیر کی وجہ سے ویسے بھی ہر جگہ ہو چکا ہے، یوں مختصراً میں بتاتا چلوں کہ یہ لوگ یہاں کے خاص باشندے ہیں اور بڑی پرانی تاریخی و ثقافتی اہمیت کے مالک ہیں۔ ان لوگوں کی اپنی زبان ہے جس جگہ آپ پہنچے ہیں اسے کوہستان شوڑ کا سلسلہ کہا جاتا ہے۔ یہیں وہ جگہ واقع ہے جسے دیکھنے کی کشش آپ کو لائی ہے یعنی کانی گرم۔ یہ بھی ہمارے کوہستانی شمال کا ایک بڑا پُرفضا اور صحت افزا مقام ہے مگر ابھی اس کے نام کا چرچا کم ہوا ہے اس لئے ضرورت ہے کہ ہم لوگ ارضی بہشت کے اس گوشے سے بھی اچھی طرح واقف ہو جائیں۔

کانی گرم کا علاقہ سطح سمندر سے ۶۴۲۹ فٹ بلند ہے۔ ٹانک سے ۸۳ میل دور اور یہاں کے مشہور صحت افزا مقام وانا سے ۲۵ میل کے فاصلے پر واقع ہے۔ رزمک کا نام تو مشہور چھاؤنی ہونے کی وجہ سے دور دور مشہور رہے، یہ بھی بڑا نفیس علاقہ ہے اور کانی گرم اس سے بس کوئی ۲۰ میل دور ہی تو ہے۔ وانا اور رزمک کے درمیان ۵۵ میل لمبی سڑک سانپ کی طرح بل کھاتی چلی جاتی ہے۔ اس کا کچھ حصہ اچھی حالت میں نہیں ہے مگر حکومت اسے اب درست کر رہی ہے اور امید ہے کہ جلد حکومت کی مساعی اور عوام کے تعاون سے یہ سڑک پختہ اور عمدہ ہو جائے گی اور سفر مزے سے کٹے گا۔ آزادی سے پہلے اس سڑک پر صرف ٹرکیں چلا کرتی تھیں مگر اب سات آٹھ میل تک بسیں بھی جانے لگی ہیں اور جوں جوں فلاحی کام بڑھتے جائیں گے اس علاقے کی ترقی بھی ہوتی جائیگی۔ اور بسیں بھی دور دور تک جانے لگیں گی۔ اگر آپ وانا سے بس یا ٹرک پر سوار ہو کر چلیں تو راستہ میں کوئی ۱۰ میل کے فاصلے پر آپ کو ایک بڑا مضبوط قلعہ نظر آئے گا۔ اسے تیارزہ کا قلعہ کہتے ہیں۔ اس میں پہاڑی علاقے کا حفاظتی دستہ تعینات ہے جو خاصے دار کہلاتے ہیں۔ یہاں سے کوئی سات آٹھ میں دور چلیں تو بڑا سرسبز و شاداب علاقہ آجاتا ہے، بڑا دلفریب پہاڑی منظر ہے۔ سڑک کے کنارے اور پہاڑوں پر چیڑ کے سدا بہار درختوں کا سلسلہ دور تک چلا گیا ہے۔ یہ جھوم جھوم کر آنے والے مہمانوں کو خوش آمدید کہتے ہیں۔ اخروٹ، خوبانی، چلغوزہ کے شاندار درختوں کی کثرت ایک الگ پُربہار و جاں فزا نظارہ ہے۔ کانی گرم کا قصبہ اب ذرا سے فاصلے پر رہ گیا ہے، لیجئے وہ قصبہ کے مکانات کا طلسمی نظارہ سامنے آگیا۔ دور سے ایسا لگ رہا ہے جیسے "الف لیلہ" کا کوئی مصور صفحہ ہو!

کانی کی وجہ تسمیہ کے سلسلے میں بھی بہت سی روایتیں مشہور ہیں۔ یہاں ارمڑ یا برکی حضرات زیادہ تر آباد ہیں۔ یہاں کے لوگوں کا کہنا ہے کہ گرم "گرام" (گاؤں) کا بگڑا ہوا تلفظ ہے جیسے بلگرام، نگرام وغیرہ مقامات میں

"گرام" کا لفظ بھی شامل ہے۔ یہاں پہاڑی علاقوں میں اسے "کانڑی گرام" (پتھروں کا قریہ) کہتے تھے، وہ کثرت استعمال سے "کانی گرام" بن گیا۔ ایک دفعہ کسی پڑھے لکھے دوست نے مجھے بتایا تھا کہ اصل میں یہاں معدنیات کی کثرت ہے۔ اس لئے یہ "کانِ گرم" کہلاتا تھا، اب عوامی بولی میں اس کا عنوان "کانی گرم" ہوگیا ہے پشتو میں "کانڑی" کے معنی بیشک پتھر یا چٹان ہی کے ہیں۔ آس پاس لوہا ملتا ہے اور سونا موجود ہونے کے بھی آثار ہیں کیونکہ برسات میں اکثر ندیوں کے پانی میں سونے کے ننھے ننھے ذرات کا بہنا عام مشاہدہ ہے۔ بہرنوع یہ قصبہ بڑا پرانا آباد ہے۔ یہاں تک کہتے ہیں کہ راجہ اشوک و کنشک کے زمانہ میں بھی موجود تھا، چنانچہ یہاں ان راجاؤں کے زمانے کے سکے بھی برآمد ہوئے ہیں۔ مسلمان یہاں ساتویں صدی سے ہی آباد ہیں۔ اکثر ارمڑوں کا دعویٰ یہ ہے کہ ان کے آباواجداد یمنی تھے اور محمود غزنوی کے زمانہ میں یہاں آکر آباد ہوئے تھے۔ محمود نے اپنی فوج میں پانچ سو یمنی جنگجو بھی بھرتی کئے تھے۔ فتح سومنات کے بعد یہ یمنی سپاہ محمود کی اجازت لے کر اسی جگہ مستقلاً آباد ہوگئی۔ ان ہی کی نسل کے حضرات ارمڑ یا برکی کہلاتے ہیں۔ یہ حضرات پشتو بھی بولتے ہیں اور اپنی مخصوص برکی بولی بھی۔

مغلوں کے عہد میں یہ لوگ بڑے خوشحال تھے، آبادی بھی اتنی کثیر نہ تھی اور ان کے پاس زمینیں بھی بہت تھیں مگر جب معاشی حالات کا تقاضا ہوا تو وہ لوگ یہاں سے نکل کر دوسرے مقامات پر بھی جا بسے۔ چنانچہ آجکل یہ حضرات ملتان، پشاور، ورنا، ٹانک، کابل میں بھی بسے ہوئے ہیں اور غیر منقسم ہند میں جالندھر تک جا کر آباد ہو گئے تھے۔ آزادی کے بعد بہت سے گھرانے پھر پاکستان میں آکر آباد بس گئے ہیں۔ خود پشاور میں ارمڑ پایاں اور ارمڑ بالا ان کی مشہور بستیاں ہیں۔ اور آپ کو سن کر تعجب ہوگا کہ یہاں بھی ایک جگہ جالندھر کے نام سے مشہور چلی آتی ہے۔ یہ کافی پرانی جگہ ہے اور کانی گرم سے ذرا ہی فاصلہ پر چھوٹا سا گاؤں ہے جو حضرات باہر جا کر بس گئے انہوں نے بہت ترقی کی اور اس علاقہ کی شہرت کا باعث بنے۔

اب آپ پوچھتے ہیں کہ ان کی زبان کا حال کیا ہے، تو عرض ہے کہ ان لوگوں کی اپنی بولی ارمڑ کہلاتی ہے مگر مسعود پٹھانوں کی طرح پشتو بھی اسی روانی و فصاحت کے ساتھ بولتے ہیں۔ یہ لوگ بھی افاغنہ میں شمار ہوتے ہیں اور ان کی مادری زبان ارمڑ ہی ہوتی ہے، مگر پشتو کے علاوہ ہندکو بھی خوب بولتے ہیں۔ جب ان کے علاقے میں زبردست برف باری ہوتی ہے تو یہ لوگ پناہ لینے کے لئے ٹانک کی طرف ہجرت کر جاتے ہیں۔ وہاں ہندکو کا رواج بھی ہے اس لئے ہندکو بھی خوب بولنے لگتے ہیں مگر ضرورت کے وقت پشتو ہی زیادہ بولتے ہیں۔ مگر ان کی اپنی بولی، ارمڑ، کئی زبانوں کا آمیزہ ہے۔ جو بھی بیرونی لفظ، یا دخیل الفاظ ملیں گے وہ زیادہ تر بگڑی ہوئی شکل میں ملیں گے۔ اس زبان کا کوئی بڑا ادبی ذخیرہ میرے علم میں نہیں مگر یہاں کے ادب دوست حضرات کے پاس اس زبان کے جو چند رسالے مجھے دیکھنے کا اتفاق ہوا ہے وہ کافی دلچسپ ہیں۔ ایک صاحب اس زبان میں غزلیں بھی خوب کہتے ہیں۔ پشاور یونیورسٹی کے کتب خانہ میں اس زبان کی گرامر کا بھی ایک رسالہ موجود ہے۔

کانی گرم میں کچھ زیادہ آبادی تو نہیں ہے، یہی کوئی چھ سات ہزار کے قریب ہے۔ مکانات کی روش ایسی ہی نظر آئے گی جیسی کالا باغ میں ہے۔ درجہ بدرجہ بلندیوں پر بنے ہوئے مکانات ہیں۔ کہیں کہیں مورچے بھی بنے ہوئے نظر آئیں گے۔ بنگلے بھی بنے ہوئے ہیں جو بہت اچھی پناہ گاہیں بھی بن سکتی ہیں۔ ان بنگلوں سے عام طور پر رباب کی دلکش آواز سنائی دیتی ہے۔ ضروریاتِ زندگی سب ہی مل جاتی ہیں، زیادہ تر لوگ تجارت پیشہ ہیں۔ یوں تو کاشتکاری اور مویشی بانی بھی کرتے ہیں۔ یہاں کی پیداوار میں جوار، آلو اور کھیرا بہت عمدہ ہوتا ہے۔

ہاں، ایک اور ضروری بات بھی بتاؤں، یہاں بھی درۂ آدم خیل کی طرح بڑا اچھا اسلحہ بنتا ہے بلکہ یہاں کے لوگ تو یہ بھی کہتے ہیں کہ ہماری اسلحہ سازی استادانہ ہے، اور درہ والوں نے ہم ہی سے سیکھی ہے۔ ارمڑ بہت تنومند، وجیہہ اور قدآور ہیں۔ مردوں کا لباس قمیص، شلوار، واسکٹ اور پگڑی ہے۔ کبھی کبھی سواتی ٹوپی بھی پہنتے ہیں جو اب دور دور مشہور ہو چکی ہے۔ پٹھانوں کا زیور بندوق ہے۔ یہاں کے لوگ انہیں بڑے چاؤ سے رکھتے اور صبح شام لے کر نکلتے ہیں۔ عورتوں کا لباس وہی شلوار قمیص یا سرخ پھولدار چھینٹ کا گھاگرا ہے، کالا دوپٹہ بھی اوڑھتی ہیں جس پر شیشہ ٹکا ہوتا ہے۔ ان کپڑوں پر ریشم کے تاروں اور رنگین دھاگوں سے بہت عمدہ کشیدہ کاری کی جاتی ہے۔ زیور کا رواج یہاں کم ہے۔ یہاں کی عورتیں بڑی قوی، بڑی صحت مند اور محنتی ہوتی ہیں۔ کٹھن چڑھائیاں چڑھنا، کھیتوں میں مردوں کا ہاتھ بٹانا، ندی سے پانی بھر کر لانا اور گھر کے سارے دھندے اپنے ہاتھ سے کرتی ہیں۔

اور اسی وجہ سے ان کی صحت قابل رشک ہوتی ہے۔

دوسرے قبائل کی طرح آرمڑ (یا بری) حضرات بھی بڑے دیندار ہوتے ہیں اور پاکستان کے انتہائی وفادار و توانا باشندے ہیں۔ جہاں تک مذہب میں ان کو جتنا غلو ہے وہ آپ نے ابھی دیکھ ہی لیا۔ ارمڑ نوجوانوں کو موسیقی سے بھی بڑا لگاؤ ہے اور الغوزہ تو بڑا اچھا بجاتے ہیں۔ شادی بیاہ کی رسومات زیادہ تر وہی ہیں جو سابق صوبہ سرحد کے دیگر علاقوں میں پائی جاتی ہیں۔ ایسے موقعوں پر مرد پہاڑی رقص پیش کرتے اور بڑے سریلے سازوں کے ساتھ پشتو لوک گیت گاتے ہیں۔ موسم سرما کے دوران لوگ زیادہ تر حجروں میں وقت گزارتے ہیں۔ آگ دہکتی رہتی ہے اور لوگ ارد گرد جمع ہو جاتے ہیں۔ کوئی خوش فکر نوجوان الغوزے پر ایک ایسی دھن بجانے لگتا ہے جس سے ہر شخص مسحور ہو جاتا ہے۔ آگ میں لکڑیاں چٹختی رہتی ہیں، بوڑھے عمر رفتہ کے تصور میں گم اور نوجوان ان دیکھے خواب میں محو ہوتے ہیں، غرض عجب سماں ہوتا ہے۔ ارمڑوں کی زبان میں حلاوت بہت ہے اور جذبہ و خیال میں رفعت و صداقت بھی۔ یہاں کے چند مقبول گانے کسی وقت سنواؤں گا۔ اس وقت مجھے یونہی ایک گیت یاد آ گیا۔ بطور نمونہ پیش کرتا ہوں۔ کہنے والا کہتا ہے۔

"میں آجاؤں گا، مگر تم نہ ہو گے، تمہاری ٹوٹی ہوئی

دیواروں پر میں پھوٹ پھوٹ کر روؤں گا"

ایک اور شعر کا مفہوم ہے:

"میرے حبیب اب تم ندی پہ آنا چھوڑ دو، میری ماں

نے میرا گھڑا توڑ دیا ہے"

یا پھر کسی گیت کا یہ ٹکڑا:

"یہ روشن چہرہ، یہ چکور سی آنکھیں، یہ مشکیں بال

ان کا مالک وہی ہے جو جنگ میں کبھی پیٹھ نہ دکھائے

فرض اگر ایک بار ادا نہ ہو تو اس کو لوٹایا جا سکتا ہے

مگر دیدار محبوب کا لمحہ گذر جائے تو وہ نہیں لوٹتا"

آپ نے مری بھی دیکھی ہے اور سوات بھی گھومے ہیں۔ اب آپ ہی بتلایئے کہ اس مقام کی قدرتی خوبصورتی ان جگہوں سے کچھ کم تو نہیں ہے؟ دیکھئے سامنے چیڑ کے جنگلات ہیں۔ صاف شفاف میٹھے پانی کی مترنم ندیاں گذر رہی ہیں۔ ذرا غور سے دیکھیں، جب سورج کی کرنیں ان پر پڑتی ہیں تو پانی کیسا لگتا ہے، جیسے پارہ بہہ رہا ہو۔ چاندنی رات میں ان طلسمی ندیوں کا نظارہ تو غضب کا ہوتا ہے۔ چیڑ، خرمانی، اخروٹ، شفتالو، چنار اور چلغوزہ تو یہاں کثرت سے ہے، مگر کہیں کہیں زیتون بھی ملتا ہے۔ مگر ابھی لوگ اس مفید درخت کی پرورش کرنے اور اس سے فائدہ اُٹھانے سے واقف نہیں ہوئے ہیں۔ کانی گرم کے شمال میں "پیری غل" کا بلند و بالا پہاڑ ہے جو جنگلات سے ڈھکا ہوا ہے۔ یہ پہاڑ ۱۱۵۷۶ فٹ اونچا ہے اور جنگل بہت گھنا جس میں وحشی بکروں کے علاوہ خوفناک درندے بھی پائے جاتے ہیں۔ اگر آپ اس کی کسی چوٹی پر چڑھ کر ادھر ادھر نظارہ کریں تو رات کو بنوں، ٹانک، اور میران شاہ کی روشنیاں جھلملاتی نظر آئیں گی۔ کانی گرم کے جنگلوں میں خرگوش عام ہے اور گھاٹیوں میں چکور کا شکار بھی کیا جا سکتا ہے۔ چکور یہاں بہت کثرت سے ہے اور خوبصورت شہابی آنکھوں کو یہاں کے لوگ چکور کی آنکھوں سے تشبیہہ بھی دیتے ہیں۔ جیسا کہ میں نے آپ کو پہلے ہی بتا دیا تھا یہاں معدنیات کثیر ہیں۔ خام لوہا بھی نکلتا ہے جس سے مقامی اسلحہ ساز بہت اچھے ہتھیار بناتے ہیں۔ موسم سردیوں میں بڑا سخت ہوتا ہے مگر گرمیوں میں نہایت خوشگوار۔ دسمبر اور جنوری میں برف باری ہوتی ہے اور اس قدر زیادتی کے ساتھ کہ دیکھتے ہی دیکھتے شجر و حجر سفید قباؤں میں غرق ہو جاتے ہیں۔ اپریل سے ستمبر تک ان پہاڑوں کا حسن رونق پر ہوتا ہے اور حد نگاہ تک خوبصورت ہریاول ہی ہریاول نظر آتا ہے۔ کھیتوں میں مکئی کی شاداب فصلیں لہلہاتی نظر آتی ہیں اور جنگلی پھولوں کی بھینی بھینی خوشبو مشام جاں کو تازہ کرتی ہے۔

پہاڑی لڑکیاں ندی کنارے بیٹھ کر دھیمی دھیمی آوازمیں گنگناتی ہیں اور ان کی بھیڑیں ہری ہری دوب چرتی پھرتی ہیں۔ ندیاں سارے سال بہتی رہتی ہیں۔ کہیں کہیں پہاڑوں میں سرنگیں بنائی گئی ہیں اور ان کے ذریعے بھی پانی لانے کا انتظام کیا گیا ہے۔ جس طرح زندگی میں نشیب و فراز نہ ہوں تو وہ بے کیف ہو جاتی ہے اسی طرح کانی گرم بھی ہے۔ پہاڑی راستے خطرناک ہیں مگر یہاں کے لوگ ایسے بے خطر چلتے ہیں جیسے لاہور کی مال روڈ پہ چلے جا رہے ہوں۔

کانی گرم میں ایک ہائی اسکول اور سرکاری ڈسپنسری بھی ہے۔ حکومت دق کے مریضوں کے علاج کے لئے یہاں ایک صحت گاہ بھی بنانا چاہتی ہے۔ یہاں کے قابل دید مقامات میں پیر روشن کا مزار بھی ہے جو ارمڑ نسل کے ایک بزرگ تھے۔ دوسری مشہور زیارت گاہ میاں شکاندن صاحب کی کہی جاتی ہے۔ اب ذکر آ گیا ہے تو ان کا واقعہ بھی سن لیجئے جو لطف سے

باقی صفحہ ۔۔ پر

فن:

ستارۂ مشرق

(حفاظت حسین: ایک تعارف)

سید زاہد الرحیم

یوں تو پاکستان میں کتنے ہی فنکار پیدا ہوئے جو اپنے فن کے ذریعہ زندگی کے ہر شعبہ پر روشنی ڈال چکے ہیں تاہم جو بات سید حفاظت حسین کی تصویروں میں نظر آتی ہے وہ کسی اور کے یہاں مشکل ہی سے ملے گی۔ "زندگی کی کشمکش" اور "طوفان کے بعد دعوت" جیسی تصاویر اس کی فنکارانہ صلاحیتوں کا بین ثبوت ہیں۔ ان تصاویر میں تخیل اور مشاہدہ کا بڑا حسین امتزاج نظر آتا ہے۔ سب سے زیادہ قابلِ توجہ بات یہ ہے کہ اس کے فن میں نفاست کے ساتھ نزاکت بھی ملتی ہے اور یہی دونوں خصوصیات اس بات کی دلیل ہیں کہ وہ فن کی رفعتوں تک پہنچنے کی کتنی صلاحیت رکھتا ہے۔

بنگال کا یہ تیس سالہ نوجوان ۱۵ راگست ۱۹۳۲ء میں کلکتہ میں پیدا ہوا اور وہیں اکتساب فن کیا۔ اس کا ذوق و شوق اساتذہ کے زیر سایہ برابر پروان چڑھتا رہا۔ زندگی کی تگ و دو نے ہزاروں کلاکار ابھارے جنہوں نے فن کو پایۂ تکمیل تک پہنچایا اور حقیقت کے آئینہ میں زندگی کے نشیب و فراز کے نت نئے روپ دکھائے۔ حفاظت حسین بھی نئی نئی خوابیدہ رعنائیوں کو بیدار کرتا ہوا ۱۹۴۷ء میں ڈھاکہ پہنچا۔ آزادی کی سحر طلوع ہوتے ہی اس کی زندگی بھی روشن ہو گئی اور وہ مشہور فنی درسگاہ "گورنمنٹ انسٹی ٹیوٹ آف آرٹس" میں زین العابدین کے زیر نگرانی اپنے خوابوں کو صفحۂ قرطاس پر منتقل کرنے لگا۔ پانچ سال کے پیہم ریاض سے اس کی زندگی میں ایک ہلچل سی مچ گئی اور وہ ماضی کے دھندلکوں سے نکل کر حال کی روشن فضا میں پرواز کرنے لگا۔ آج یہی جواں سال حفاظت حسین فن کی اس بلندی پر ہے جہاں صفی الدین، قمر الحسن اور کبریا جیسے فنکاروں کے سلسلے آکر ملتے ہیں۔

مشرقی پاکستان کے دوسرے مصوروں کی طرح حفاظت حسین کو بھی فطرت سے گہرا لگاؤ ہے۔ وہ فطرت کی بوقلموں رنگینیوں کو اپنے موقلم سے صفحۂ قرطاس پر زندہ جاوید بنا دینے کا بڑا ملکہ رکھتا ہے۔ فطری مناظر کے علاوہ اس کو مچھیروں کی زندگی، چڑھتے اترتے دریاؤں اور ان کی طوفانی موجوں، طلوع اور غروب ہوتے ہوئے سورج کی کرنوں اور ایسے ہی دوسرے مناظر سے بے پناہ محبت ہے۔ چنانچہ اس نے اپنے احساسات کا اظہار مختلف عنوانات سے کیا ہے۔ مثلاً "بوڑھی گنگا میں غروب آفتاب"، "مچھیروں کی روانگی"، "غضبناک دریا"۔ یہ تینوں تصاویر آبی رنگوں سے تیار کی گئی ہیں۔ پہلی تصویر میں سورج کے جلال و جمال کا منظر پیش کیا گیا ہے۔ پچھم کے افق سے اس کی رنگین کرنیں پھوٹ پھوٹ کر بوڑھی گنگا کی چنچل لہروں کو جوانی کے مدھر گیت سنا رہی ہیں اور دریا اس گیت پر رقص کرتی ہوئی موجیں مانجھیوں کے قریب ہو کر گنگناتی ہیں جن سے مانجھیوں کی "منگورہ" کی کشتیاں تن من میں ہچکولے کھانے لگتی ہیں۔ وہ بھٹیالی کے گیت گا کر اس کا اظہار کرتے ہیں جن میں کوی کے کویتا کا رنگ بھی ہے اور مشہور شاعر جسیم الدین کے خیالات کا پرتو بھی۔ حفاظت حسین کی دوسری تصویر "مچھیروں کی روانگی" میں معاشرتی زندگی کی جھلک نظر آتی ہے۔ اس میں دو نوجوان مچھیروں کے جوش و خروش کا نقشہ کھینچا گیا ہے جو پو پھٹتے ہی زندگی کی جدوجہد شروع کر دیتے ہیں اور کشتیوں میں بیٹھ کر دریا کی تہ سے مچھلیاں تلاش کرنے میں مصروف ہو جاتے ہیں۔ مچھلیوں کی دستیابی پر ان کی زندگی کا انحصار ہے۔ دن بھر کی تھکن سے جب ان کی کمر ٹوٹنے لگتی ہے تو کبھی وہ دریا کی گہرائیوں کی طرف دیکھتے ہیں اور کبھی چاروں طرف پھیلے ہوئے آسمان کی سمت۔ لیکن جب دریا میں دفعتاً طوفان آ جاتا ہے تو مانجھیوں کی زندگی بھی ہچکولے کھانے لگتی ہے اور ان کی چھوٹی چھوٹی بانس کی کمزور کشتیاں سیلاب کی نذر ہو جاتی ہیں۔ حفاظت حسین نے اسی ڈراؤنے منظر کی جھلک اپنی تیسری تصویر "غضبناک دریا" میں دکھائی ہے۔ الغرض حفاظت حسین اپنی تصویروں میں مشرقی پاکستان کی زندگی کو وہاں کی مخصوص فضا میں حقیقت سے ہمکنار کر کے پیش کرتا ہے۔

حفاظت حسین کو قدرتی مناظر سے بڑی دلچسپی ہے۔ اس کی تصاویر "شانِ مشرق" اور "جب فطرت مسکراتی ہے" فطرت سے والہانہ شیفتگی کا مظہر ہیں۔ "شانِ مشرق" میں روغنی رنگ استعمال کئے گئے ہیں اور دوسرے تصویر میں آبی رنگ مگر دوسری تصویر مقابلتاً زیادہ دلکش ہے۔ یہ دونوں تصویریں حفاظت حسین کی ژرف نگاہی کا زندہ جاوید ثبوت ہیں۔ "بارش میں چند لمحے" تو اس کا شاہکار ہے۔ برسات میں مشرقی پاکستان ایسا نظر آتا ہے جیسے کائنات کی تمام رعنائیاں ایک ہی جگہ سمٹ آئی ہوں۔ حدِ نگاہ تک ہریالی ہی ہریالی، رنگ برنگے پھول ہی پھول۔ ہرے بھرے دھانوں کے کھیت، زردی مائل سرسوں کی رعنائی، گلہائے رنگ رنگ سے بھرے ہوئے لہرشنا چوراہ۔ آسمان سے باتیں کرتے ہوئے تال اور ناریل قطار اندر قطار، دور دور تک پھیلی ہوئی جھیلیں، پانی میں حسین کنول کے عکس، تالابوں میں نہانے کا سماں۔ اور پھر ان سب کا مجموعی تاثر ؎

اگر فردوس بروئے زمین است
ہمین است وہمین است وہمین است

حفاظت حسین نے ان تمام رعنائیوں کو اپنی ایک ہی تصویر "بارش کے چند لمحے" میں سمیٹ لیا ہے۔ اس تصویر سے مصوّر کی ژرف نگاہی کا اندازہ ہوتا ہے۔ اس میں رنگوں کی آمیزش بھی فنی اعتبار سے بے عیب ہے۔

آبی اور روغنی رنگوں کے علاوہ حفاظت حسین کو پنسل اور چارکول کے استعمال پر بھی قدرت حاصل ہے۔ اس سلسلے میں اس کی تصاویر "غسل کے بعد"۔ "آئینے کے سامنے"۔ "سنگھار"۔ "گپ شپ" کمال فکر و فن کا مظہر ہیں۔ ان تصویروں کو دیکھ کر اندازہ ہوتا ہے کہ حفاظت حسین نے گاؤں کی معصوم دوشیزاؤں اور ان کے رہن سہن کا بڑی گہری نظروں سے مطالعہ کیا ہے۔ اس کی ایک تصویر "عناصر کی بے ترتیبی" کا عنوان ہی زندگی پر ایک تازیانہ سے کم نہیں۔ اس تصویر کا تعلق مشرقی پاکستان کے قیامت خیز طوفان سے ہے۔ اس بلائے بے درماں نے چاٹگام، نواکھالی اور دوسرے ساحلی علاقوں میں زندگی کی رمق تک نہ چھوڑی۔ اس نے ہر جاندار کا ایک ایک قطرۂ لہو نچوڑ کر موت کی گرسنہ آنتوں کی بھینٹ چڑھا دیا۔ دم توڑتے ہوئے بے بس انسان گدھوں کا شکار بن رہے تھے۔ اس میں آبی رنگ استعمال کئے گئے ہیں۔ طوفان کی ہلاکت آفرینیوں کا جو ہیبتناک منظر اس تصویر میں پیش کیا گیا ہے اسے دیکھ کر رونگٹے کھڑے ہو جاتے ہیں۔

حفاظت حسین کے فن کی ایک نمائش ڈھاکہ میں منعقد ہوئی اور دوسری پاکستان امریکن کلچرل سینٹر کراچی میں۔ موخرالذکر نمائش میں مغربی پاکستان سے متعلق تصاویر بھی تھیں۔ اس طرح وہ صرف مشرقی پاکستان ہی کا نہیں بلکہ مغربی پاکستان کا بھی نمائندہ مصوّر ہے اور اس کے موقلم سے وہی زندگی کینوس پر آتی ہے جسے ہم چلتی پھرتی دیکھتے ہیں۔

حفاظت حسین کی ایک بڑی خصوصیت روایت سے انحراف ہے۔ مسلمان مصوّروں میں غالباً حفاظت حسین ہی پہلا فنکار ہے جس نے مذہبی موضوع کو مرکز توجہ بنایا اور چند ایسی تصویریں تخلیق کیں جو اس کے ماہرِ فن ہونے کی بیّن دلیل ہیں۔ اس کی ایک تصویر "خدا سے حضرت موسیٰ کی گفتگو" جدّت کے علاوہ روایت سے بغاوت کی بھی نشاندہی کرتی ہے۔ اس تصویر میں روغن استعمال کیا گیا ہے۔ "حضرت عیسیٰ کی والدہ ماجدہ" بھی اس کے فنی شعور کا بڑا اچھا نمونہ ہے۔ اس میں پنسل اور روشنائی استعمال کی گئی ہے۔

یہ مصوّر کے حسین تخیل، وسیع مطالعہ اور مشاہدہ کا نادر شاہکار ہے۔ یہ کہنا بیجا نہ ہوگا کہ مصوّر نے نہایت چابکدستی سے ان روایات کو از سر نو تازہ کیا جو ہمارے آئے دن کے واقعات سے ہٹ کر صحائف آسمانی میں قلمبند کی گئی ہیں۔ مصوّر کا خیال ہے (جیسا کہ اس تصویر سے اندازہ ہوتا ہے) کہ وہ بحرِ تخیل میں غوطہ زن رہ کر انواع و اقسام کے لعل و گہر تصویر کی صورت میں پیش کرتا رہے گا اگر دنیا اس سے فائدہ اٹھانا چاہتی ہے تو اٹھائے ورنہ وہ خود تو اس سے سکونِ قلب حاصل کرتا ہی رہے گا۔ حفاظت حسین حقیقت کی روشنی میں مذہب کا روشن چہرہ دیکھنا چاہتا ہے اور یہ واضح کرنا چاہتا ہے کہ آج کی "تیز تر ترک گامزن" کی دنیا میں قدیم رفتار سست اور بہت سست ہے۔ "جہاں امت محمد سکون کی نیند سوتی ہے" اسی سلسلہ کی ایک اور کڑی ہے۔ یہ روغنی رنگوں کی آمیزش سے تیار کی گئی ہے اور اس کا منظر بہت پر درد ہے۔ فضا میں ہر طرف خاموشی ہے، پتیاں زمین پر بکھری پڑی ہیں۔ درخت کی شاخیں بالکل خشک اور قبروں کا ایک سلسلہ لامتناہی حدِ نگاہ تک چلا گیا ہے۔

یہ تصویر حفاظت حسین کے شدید احساس کا بے ساختہ ردِ عمل معلوم ہوتی ہے۔

اب تک حفاظت حسین کے فن پر جو کچھ لکھا گیا ہے وہ حرفِ آخر نہیں کیونکہ وہ ہر لحظہ ترقی پذیر ہے۔ اس کا مشاہدہ نئی نئی چیزوں کو اپنے فن کی گرفت میں لینے کے لئے بے چین ہے شاید اپنے تخیل کی رفعتوں کا اندازہ لگانا خود اس کے بس کی بات بھی نہیں۔ وہ اپنے کام میں مصروف ہے اور جیسے جیسے اس کی تصویریں سامنے آتی رہتی ہیں اس پر رائے زنی کی جاتی ہے۔ اس کے ریاض، کاوش اور فنی تحقیق و جستجو کا یہی سلسلہ چند برس اور رہا تو وہ دن دور نہیں جب وہ صفِ اول کے ماہرین فن میں شمار ہونے لگے گا۔

"جہاں میں تھا" بقیہ صـ۲۵

رکھے۔ جن کی بدولت خوش خوری کا یہ مظاہرہ دیکھنا نصیب ہوا۔ یہ مایۂ ناز طبقہ ہماری قومی صحت کا قابل قدر سرمایہ ہے۔ اگر ہم اس کے نقشِ قدم پر چل کر اس کی صحت و توانائی کو واقعی ساری قوم میں عام کر سکیں تو بڑا کام ہوگا۔

آخر میں جب میزبان نے "چائے پیائی" پر تان توڑی تو سب پہلوانوں نے یک زبان ہو کر معذرت چاہی، بلکہ صاف انکار کر دیا۔ چائے آج کل ہر کھانے کا تتمہ سمجھی جاتی ہے، بلکہ لوازمہ۔ گو یہ سنا تھا کہ نمکین کشمیری چائے پہلوانوں کو بڑی مرغوب ہے — اور ہمارے پہلوان زیادہ تر کشمیری ہی ہیں۔ کیونکہ یہ کھانے کو ہضم کرتی ہے مگر یہ لوگ تو اپنی جسمانی قوت سے ہی کھانا ہضم کرنے کے قائل ہیں۔ مشروبات اور چائے وغیرہ کی لاگ سے نہیں۔ کون ہے جو ان باتوں سے سبق لے۔ سب یہی کہیں گے، نئے زمانے میں آپ ہم کو پرانی باتیں سنا رہے ہیں! یہاں تو دن رات چائے یا ایسی ہی اور چیزوں کا دور ہے اور بس +

"کانی گرم" بقیہ صـ۴۴

خالی نہیں۔ کہتے ہیں کہ یہ بزرگ شکار کے بہت شائق تھے اور اسی وجہ سے ان کا یہ نام پڑا۔ ایک دفعہ وہ شکار پر گئے تو اتفاق سے کوئی شکار ہاتھ نہ آیا اور وہ تہی دست لوٹے، ان کے فرزند بھی ہمراہ تھے، اور انہوں نے ایک جنگلی بکرا شکار کر لیا تھا۔ اس واقعہ پر صاحبزادے بار بار کہتے رہے کہ بابا! آپ تو کچھ بھی نہیں لائے۔ بابا کو اس پر جلال آگیا اور ایک نعرۂ مستانہ بلند کیا جس سے ساری وادی گونج اٹھی اور لوگوں کا کہنا ہے کہ وادی میں جس قدر بکرے تھے ان کے سر تن سے کٹ کر گر گئے۔ اس واقعہ کی صحت پر یقین کرنا نہ کرنا تو خیر اور بات ہے مگر میں خود ان کے مزار پر گیا ہوں اور وہاں یہ ضرور دیکھا ہے کہ مقبرہ کی دیواروں کے ساتھ جگہ جگہ جنگلی بکروں کے ان گنت سر سینگوں سمیت، پڑے ہوئے ہیں۔ کہتے ہیں کہ یہ وہی سر ہیں۔ سنا ہے بعض سر اچھی حالت میں تھے اور انگریز اپنے ساتھ بطور یادگار لے گئے۔ اللہ بہتر جانتا ہے کہ اس بات میں کہاں تک صداقت ہے۔

بہرکیف کانی گرم ایک قابل دید جگہ ہے اور سیاح کے لئے دلچسپی کا یہاں بہت کچھ سامان ہے۔ دیکھئے اب سورج ڈوب رہا ہے اور اس کی قرمزی کرنیں پہاڑوں کی برف پوش چوٹیوں پر پڑ رہی ہیں۔ ایسا دکھائی دے رہا ہے طلسمی شہزادیاں سنہرے تاج پہنے جمع ہو رہی ہیں۔ ہوا کے ساز پر ندیاں مدھر راگ گا رہی ہیں، ادھر دیکھئے ایک نوجوان الغوزہ لبوں کو لگائے زیتون کے پیڑ سے ٹیک لئے بیٹھا ہے اور وہ اب اپنا دل پسند نغمہ چھیڑے گا اور یہ وادی موسیقی کے رس سے بھر جائے گی۔ اب شام کا دھندلکا بڑھ رہا ہے، رنگین قبا پرندے بھی اپنے اپنے آشیانوں کی طرف جا رہے ہیں، پیڑ اور پہاڑ ایسے نظر آ رہے ہیں جیسے ان پر کسی نے جادو کر دیا ہے اور وہ دم بخود کھڑے ہیں۔ آئیے اب ہم بھی دھندلکے کی اس واجد حالی سے رخصت ہوں ؛

گرد و پیش:

"جام اور ہے، جم اور"

(حقوق انسانی)

آجکل جسے دیکھئے طرح طرح کے مطالبے کرنے اور حقوق مانگنے پر تلا ہوا ہے۔ اس حقوق طلبی میں مصلحت بینی، عقل سلیم کے تقاضے، آئینِ حیات کا پاس، شعور و شائستگی کا احساس کچھ بھی قابلِ اعتنا نہیں۔ یہی وجہ ہے کہ طالبین حقوق آئین و انسانیت دونوں کے حدود سے گذر جاتے ہیں جس سے نہ معاشرہ کو کوئی فائدہ پہنچتا ہے اور نہ فرد کو۔ ضرورت اس امر کی ہے کہ مہذب و شائستہ انسان سب سے پہلے حقوق و فرائض کے مسئلہ سے آگاہی حاصل کرے۔ یوں تو حقوق طلبی کسی انسانی معاشرہ کے زندہ و فعال ہونے کی سب سے بڑی علامت ہے مگر حقوق اسی وقت طلب کئے جا سکتے ہیں جب کسی منظم و مہذب معاشرہ کے افراد خود بھی کچھ پابندیاں، فرائض اور ذمہ داریاں اپنے اوپر عائد کرلیں۔ حقوق و فرائض کے اس توازن کی بدولت نہ صرف معاشرہ کے بہت سے مسائل حل ہو سکتے ہیں بلکہ مختلف انسانی گروہوں کے باہمی تنازعات بھی پرامن طریقہ پر طے کئے جا سکتے ہیں۔ لیکن مشکل یہ ہے کہ ہم فرائض ادا کرنے یا کچھ ذمہ داریاں قبول کرنے کے لئے یا تو تیار ہی نہیں یا انہیں صرف زبانی طور پر قبول کر لیتے ہیں اور ان پر عمل نہیں کرتے۔ افراد ہی نہیں اقوام کا بھی کچھ ایسا ہی حال ہے۔ اسی لئے انسانوں کو اپنے انفرادی و اجتماعی حقوق کے حصول میں دشواریاں پیش آتی ہیں یا وہ ان حقوق سے بالکل ہی محروم رہتے ہیں۔

حقوق و فرائض کے سلسلے میں ہمیں یہ بات بھی یاد رکھنی چاہیئے کہ اجتماعی حقوق کے مطالبہ کے لئے ہم پہلے صرف چند بنیادی اصولوں پر متفق ہوں اور ان ہی کے حصول کے لئے کوشش کریں ورنہ یہ تو آپ جانتے ہی ہیں کہ انفرادی خواہشات کی طرح اجتماعی مطالبوں کی بھی کوئی حد نہیں ہوتی۔ تاہم بعض نکات ایسے ضرور ہوتے ہیں جن کی ہر شخص تائید کرتا ہے۔ اب سوال یہ ہے کہ دنیا کے ہر انسان کے لئے یہ حقوق کون اور کس طرح حاصل کرے۔ دنیا کی تاریخ ہمیں بتاتی ہے کہ طلب حقوق ہمیشہ اور ہر زمانہ میں رہی مگر اس سلسلے میں جب بھی تشدد و ناانصافی سے کام لیا گیا یہ حقوق حاصل نہیں ہوئے۔ اس لئے صلح جو لوگوں کی ہمیشہ یہی کوشش رہی کہ انسانوں کو ان کے بنیادی حقوق ملیں۔ ساری دنیا کے قابل ذکر چھوٹے بڑے ممالک مل جل کر ان حقوق کو یہاں عام کریں تاکہ لاکھوں انسان بدد لی، بیزاری اور محرومی کا شکار نہ بن سکیں۔ لوگوں کو جیسے جیسے حقوق ملیں گے اُن کی زندگیاں بھی بہتر اور زیادہ خوشگوار بنیں گی۔ انہیں اپنے فرائض ادا کرنے اور ذمہ داریاں پوری کرنے کا احساس بھی زیادہ ہوگا۔ وہ اپنے ملک کی حکومتوں اور اجتماعی نظاموں کے ساتھ زیادہ سے زیادہ تعاون بھی کریں گے۔ اسی طریقہ سے معاشری و سیاسی مقاصد کا کچھ سدباب اور عالمگیر انصاف کا حصول ممکن ہے۔

نیک نیتی کے ساتھ مقصد کتنا ہی جلیل ہو تو اس پر تمام قوموں کا کامل اتفاق نہ ہونا حیرت انگیز امر ہے۔ کیسی عجیب بات ہے کہ دنیا کے سارے ملک انسانوں کو ان کے بنیادی حقوق آسانی سے دینے کے لئے تیار نہیں۔ کیوں؟ اس سوال کے کئی پہلو ہیں جن پر تفصیلی بحث یہاں ممکن نہیں۔ اس سلسلے میں صرف اسی قدر کہا جا سکتا ہے کہ دنیا میں صرف ایسا بڑا عالمی ادارہ، 'اقوام متحدہ' ہے جس کے منشور میں ابتدا ہی سے حقوق انسانی کے تحفظ و حمایت کا نکتہ شامل ہے اور وہ ہر سال دُنیا کے ضمیر کو یاد دلاتا رہتا ہے کہ انسانوں کو ان کے بنیادی حقوق ملنے چاہئیں اور اس نیک مقصد کو حاصل کرنے کے لئے انفرادی و اجتماعی طور پر افراد و اقوام کو کیا کچھ کرنا ہے۔

اقوام متحدہ ہر سال تمام رکن ممالک کے تعاون سے جن میں پاکستان بھی شامل ہے، ایک عالمی یوم حقوق انسانی مناتی ہے۔ اس دن ان تمام باشعور انسانی طبقوں کو یہ یاد دلایا جاتا ہے کہ مخلوق خدا کی ترقی، آرام، مسرت اور اطمینان کے لئے ہمیں کیا کرنا چاہیئے۔ جہاں یہ مقاصد حاصل

سینہ سپر !

طوفان کی آغوش میں

پانی کی تہہ میں چشم گرداب سو گئی ہے !

طوفان بھی سکون بھی

دو انتہاؤں کی سر زمین

مشرقی پاکستان

اس دھرتی کے ایک مصور کی نظر میں

سید حفاظت حسین

(۱۹۳۳ء۔۔۔)

گردوپیش:

"جام اور ہے، جم اور"

(حقوقِ انسانی)

آجکل جیسے دیکھئے طرح طرح کے مطالبے کرنے اور حقوق مانگنے پر تلا ہوا ہے۔ اس حقوق طلبی میں مصلحت بینی، عقلِ سلیم کے تقاضے، آئینِ حیات کا پاس، شعور و شائستگی کا احساس کچھ بھی قابلِ اعتنا نہیں۔ یہی وجہ ہے کہ طالبینِ حقوق آئین و انسانیت دونوں کے حدود سے گذر جاتے ہیں جس سے نہ معاشرہ کو کوئی فائدہ پہنچتا ہے اور نہ فرد کو۔ ضرورت اس امر کی ہے کہ مہذب و شائستہ انسان سب سے پہلے حقوق و فرائض کے مسئلے سے آگاہی حاصل کرے۔ یوں تو حقوق طلبی کسی انسانی معاشرہ کے زندہ و فعال ہونے کی سب سے بڑی علامت ہے مگر حقوق اسی وقت طلب کئے جا سکتے ہیں جب کسی منظم و مہذب معاشرہ کے افراد خود بھی کچھ پابندیاں، فرائض اور ذمہ داریاں اپنے اوپر عائد کر لیں۔ حقوق و فرائض کے اس توازن کی بدولت نہ صرف معاشرہ کے بہت سے مسائل حل ہو سکتے ہیں بلکہ مختلف انسانی گروہوں کے باہمی تنازعات بھی پُرامن طریقہ پر طے کئے جا سکتے ہیں۔ لیکن مشکل یہ ہے کہ ہم فرائض ادا کرنے یا کچھ ذمہ داریاں قبول کرنے کے لئے یا تو تیار ہی نہیں یا انہیں صرف زبانی طور پر قبول کر لیتے ہیں اور ان پر عمل نہیں کرتے۔ افراد ہی نہیں اقوام کا بھی کچھ ایسا ہی حال ہے۔ اسی لئے انسانوں کو اپنے انفرادی و اجتماعی حقوق کے حصول میں دشواریاں پیش آتی ہیں یا وہ ان حقوق سے بالکل ہی محروم رہتے ہیں۔

حقوق و فرائض کے سلسلے میں ہمیں یہ بات بھی یاد رکھنی چاہئے کہ اجتماعی حقوق کے مطالبہ کے لئے ہم پہلے صرف چند بنیادی اصولوں پر متفق ہوں اور ان ہی کے حصول کے لئے کوشش کریں ورنہ یہ تو آپ جانتے ہی ہیں کہ انفرادی خواہشات کی طرح اجتماعی مطالبوں کی بھی کوئی حد نہیں ہوتی۔ تاہم بعض نکات ایسے ضرور ہوتے ہیں جن کی ہر شخص تائید کرتا ہے۔ اب سوال یہ ہے کہ دنیا کے ہر انسان کے لئے یہ حقوق کون اور کس طرح حاصل کرے۔ دنیا کی تاریخ ہمیں بتاتی ہے کہ طلبِ حقوق ہمیشہ اور ہر زمانہ میں رہی مگر اس سلسلے میں جب کبھی تشدد و ناانصافی سے کام لیا گیا یہ حقوق حاصل نہیں ہوئے۔ اس لئے مصلح بزرگوں کی ہمیشہ یہی کوشش رہی کہ انسانوں کو ان کے بنیادی حقوق ملیں اور ساری دنیا کے قابلِ ذکر چھوٹے بڑے ممالک مل جل کر ان حقوق کو اپنے یہاں عام کریں تاکہ لاکھوں انسان بددلی، بیزاری اور محرومی کا شکار نہ بن سکیں۔ لوگوں کو جیسے جیسے حقوق ملیں گے ان کی زندگیاں بھی بہتر اور زیادہ خوشگوار بنیں گی۔ انہیں اپنے فرائض ادا کرنے اور ذمہ داریاں پوری کرنے کا احساس بھی زیادہ ہوگا۔ وہ اپنے ملک کی حکومتوں اور اجتماعی نظاموں کے ساتھ زیادہ سے زیادہ تعاون بھی کریں گے۔ اسی طریقہ سے معاشری و سیاسی مقاصد کا کچھ سدباب اور عالمگیر انصاف کا حصول ممکن ہے۔
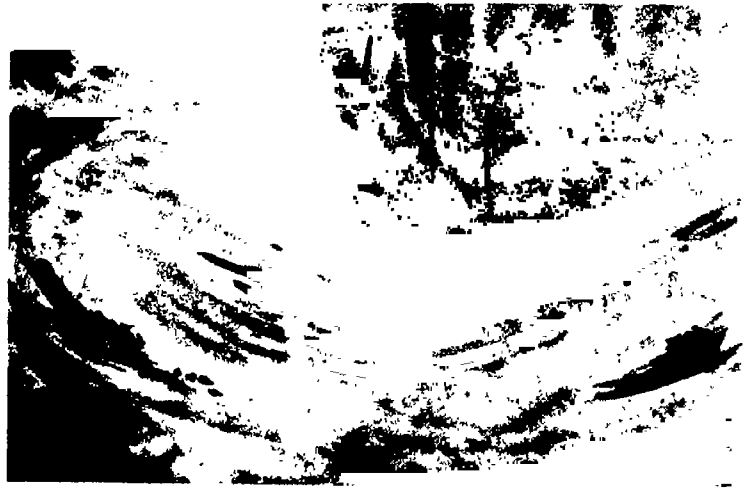
نیک نیتی کے ساتھ مقصد کبھی جلیل ہو تو اس پر تمام قوموں کا کامل اتفاق نہ ہونا حیرت انگیز امر ہے۔ کیسی عجیب بات ہے کہ دنیا کے سارے ملک انسانوں کو ان کے بنیادی حقوق آسانی سے دینے کے لئے تیار نہیں۔ کیوں؟ اس سوال کے کئی پہلو ہیں جن پر تفصیلی بحث یہاں ممکن نہیں۔ اس سلسلے میں صرف اسی قدر کہا جا سکتا ہے کہ دنیا میں صرف ایسا بڑا عالمی ادارہ، اقوامِ متحدہ، ہے جس کے منشور میں ابتدا ہی سے حقوقِ انسانی کے تحفظ و حمایت کا نکتہ شامل ہے اور وہ ہر سال دنیا کے ضمیر کو یاد دلاتا رہتا ہے کہ انسانوں کو ان کے بنیادی حقوق ملنے چاہئیں اور اس نیک مقصد کو حاصل کرنے کے لئے انفرادی و اجتماعی طور پر افراد و اقوام کو کیا کچھ کرنا ہے۔

اقوامِ متحدہ ہر سال تمام رکن ممالک کے تعاون سے جن میں پاکستان بھی شامل ہے، ایک عالمی یومِ حقوقِ انسانی مناتا ہے۔ اس دن ان تمام باشعور انسانی طبقوں کو یہ یاد دلایا جاتا ہے کہ مخلوقِ خدا کی ترقی، آرام، مسرت اور اطمینان کے لئے ہمیں کیا کرنا چاہئے۔ جہاں یہ مقاصد حاصل

سینہ سپر !

طوفان کی آغوش میں

پانی کی تہہ میں چشم گرداب سوگئی ہے !

طوفان بھی سکون بھی

دو انتہاؤں کی سر زمین

مشرقی پاکستان

اس مٹی کے ایک مصور کی نظر میں

سید حفاظت حسین

(۱۹۳۳ء ...)

کھانے سے پہلے ؟ کھانے کے بعد ؟

صف اول : لوکا ، رستم ہند امام بخش، میاں کرم الٰہی (میزبان) بھولو ۔ اسلم ۔
بچھلی صف میں : لفٹیننٹ کرنل خواجہ عبدالرشید (میزبان کے عقب میں)

کالی قمیص باریک قمیص دبیز قمیص
گوگا اسلم بھولو
بھولو لقمہ بقدر جثہ !

افسانہ ہیں یہ لوگ

پاکستان کے مایۂ ناز بلند بالا پہلوان جنہوں نے ہر معرکہ میں کامیاب رہ کر پاکستان کا نام دوبالا کیا ہے اور جن کے ساتھ کھانا کھانا باعث فخر و مسرت ہے ایک یادگار واقعہ

کلوا و اشربوا ! اے کاش ہم بھی ہوتے !

نہیں ہوئے ہیں یا جزوا حاصل ہوئے ہیں وہاں جاری کاوش و مساعی کا کیا انداز ہونا چاہئے۔

اقوام متحدہ نے شروع ہی میں حقوق انسانی کو اپنے منشور کا ایک جزو بنا لیا تھا اور اس ادارہ کی جنرل اسمبلی نے ۱۰ دسمبر ۴۸ء کو اسے ایک قرارداد کی شکل میں منظور بھی کر لیا تھا۔ عالمی تاریخ میں انسان کے لئے سب سے بڑا چیلنج یہی حقوق انسانی کا مسئلہ رہا ہے۔ اس کی اہمیت کا اندازہ یوں لگایا جا سکتا ہے کہ جنرل اسمبلی نے یہ قرارداد منظور تو کر لی مگر چند ہی ملک اس بات پر آمادہ ہوئے کہ قرارداد میں شامل انسانی حقوق دینے کے سلسلے میں کوئی آئینی پابندی قبول کریں۔ اس میں سب سے بڑی رکاوٹ سیاسی و اقتصادی حقوق کا معاملہ تھا جس کی وجہ سے کئی ممالک پس و پیش کر رہے تھے۔ ہر ملک کے مسائل و مشکلات کی نوعیت جداگانہ تھی۔ ان دشواریوں کو دور کرنے کے لئے جنرل اسمبلی نے حقوق انسانی کے دو حصے کر دئے۔ ایک حصہ کا تعلق شہری و سیاسی حقوق سے تھا اور دوسرے میں اقتصادی، سماجی اور ثقافتی حقوق شامل تھے۔ پھر یہ طے کیا گیا کہ انہیں کس طرح بروئے کار لایا جائے۔ جنرل اسمبلی میں ان حقوق کے تسلیم کرانے کے لئے بین الاقوامی معاہدے کی طرح ڈالی گئی تاکہ سب ملک ان مقاصد کے حصول کے لئے اپنے ہاں کام کریں۔ مگر جنرل اسمبلی میں جب اس سلسلے میں تقریریں ہوئیں تو یہ معلوم ہوا کہ مختلف ممالک کو انہیں تسلیم کرنے یا ان پر عمل پیرا ہونے میں کیوں تامل ہے۔ انہیں عملی جامہ پہنانے میں کیا دقتیں لاحق ہیں۔

حقوق انسانی سے متعلق چار اہم نکات تھے: خوف سے آزادی، احتیاج سے نجات، عبادت اور اظہار خیال کی آزادی۔ جب اقوام متحدہ نے ان باتوں اور دیگر متعلقہ اجزاء کو اپنے منشور میں شامل کیا تو سب سے پہلے اس بنیادی اصول کو تسلیم کیا گیا کہ "ہر انسان آزاد پیدا ہوتا ہے۔ وقار و حقوق کے باب میں سب یکساں ہیں۔ وہ شعور و ضمیر کے اوصاف سے بھی متصف ہیں۔ اس لئے انہیں ایک دوسرے سے برادرانہ جذبہ کے ساتھ سلوک کرنا چاہئے۔" اقوام متحدہ نے یہ بھی اعلان کیا کہ ان آزادیوں اور حقوق کا اطلاق نسل، مذہب، جنس یا مذہب کے اختلاف کے باوجود ہر فرد پر ہوگا خواہ وہ کسی آزاد یا خود مختار علاقہ میں یا کسی ایسے حصہ میں رہتے ہوں جسے حق خود اختیاری حاصل نہیں۔ ساتھ ہی یہ نہایت اہم شرط بھی لگا دی گئی کہ ان حقوق اور آزادیوں کا حصول و تحفظ اسی وقت ممکن ہے جب معاشرہ اپنے آئین و قانون کا معقول طریقہ پر احترام کرے۔

حقوقِ انسانی کے متعلق اقوامِ متحدہ کے اس اعلان کو اگر دنیا کا "منشورِ اعظم" کہا جائے تو بیجا نہ ہوگا کیونکہ اس میں صرف سیاسی و شخصی حقوق ہی نہیں بلکہ اقتصادی، سماجی اور ثقافتی حقوق بھی شامل ہیں کیونکہ آخر الذکر تین آزادیوں کے بغیر سیاسی و انفرادی آزادی کے کوئی معنی ہی نہیں۔

پچھلے پندرہ سال میں ان حقوق کی حفاظت اور ترویج کے لئے بہت کچھ کام کیا گیا ہے اور اس ضمن میں اقوامِ متحدہ کی مساعی کی سب سے بڑی کامیابی تو یہی ہے کہ انسانوں کے ذہن و ضمیر اس سے متاثر ہوئے ہیں اور دنیا کے ہر ملک کے مرد و زن اب اس منشور کی روح کو سمجھتے جا رہے ہیں۔

کنبہ معاشرۂ انسانی کی بنیاد ہے۔ اس لئے خاندان کے مسائل و تعلقات اور حقوق و فرائض کو ہی ہمیں سب سے پہلے دیکھنا چاہئے۔ اقوام متحدہ نے یہ اصول بھی تسلیم کیا کہ اس کی حفاظت بہت ہی ضروری معاشرتی نکتہ ہے۔ اس حفاظت کا فرض معاشرہ اور حکومت دونوں پر عائد ہوتا ہے۔ چنانچہ طے کیا گیا کہ شادی، اس کے دوران اور علیحدگی سب حالتوں میں جملہ متعلقہ افراد کو مساوی حقوق حاصل ہونے چاہئیں نیز یہ کہ میاں بیوی کی ذمہ داریاں بھی یکساں ہونی چاہئیں تاکہ کام "رفتگا" قومیت اور انسانی معاشرہ میں ان کے بے شمار تعلقات و روابط کے پیش نظر ان مساوی حقوق و فرائض کا تحفظ ہو سکے۔

دنیا میں انسانوں کے دکھوں کی کہانی یوں تو بڑی طویل ہے مگر بعض چیزیں ایسی ہیں کہ ان کے تدارک و تحفظ کے لئے ضمیر انسانی بیدار ہوتا جا رہا ہے۔ حریتِ نفس، آزادیٔ فرد اور وقار انسانی کو طرح طرح کے حملوں سے بچانا انسانی معاشرہ کی سب سے بڑی ضرورت بھی ہے اور خدمت بھی۔ مثلاً ابھی تک دنیا کے بعض حصوں میں غلامی کا مسئلہ بدستور موجود ہے، عورتوں، نوجوانوں اور بچوں سے ناجائز فائدے اٹھانے کی لعنت الگ ہے۔ مزدوروں کے سیاسی و اقتصادی حقوق ہڑپ کرنے کی ہوس بھی موجود ہے۔ اس سے قطع نظر اب نسلی، تعلیمی اور دیگر بنیادوں پر امتیازی سلوک روا رکھنا کسی طرح جائز نہیں سمجھا جا سکتا۔

اقوام متحدہ نے ان تمام مفاسد کی روک تھام کے لئے بہت اہم خدمات انجام دی ہیں۔ ہر ملک ان معاشرتی و سیاسی عفریتوں کو ختم کرنے

کے درپے ہے، گو جس قدر کامیابی حاصل ہونی چاہیے تھی اتنی نہیں ہوئی ہے۔ یہی وجہ ہے کہ دنیا سے غلامی کا کلیتہً خاتمہ نہیں ہوا۔ احتیاج اور انفرادی آزادی سے محرومی کا مسئلہ بھی معقول طریقہ پر حل نہیں ہو سکا ہے۔ مگر ایسا سب جگہ نہیں ہے، حالات سدھرتے جا رہے ہیں اور ضمیر انسان بیدار ہو کر مطالبہ کر رہا ہے کہ ان داغوں کو انسانیت کی پیشانی سے دور کیا جائے۔ اب جہاں کہیں بھی یہ برائیاں زور پکڑتی ہیں، ساری دنیا میں ہلچل مچ جاتی ہے اور ہر جگہ نہایت شدید احتجاج و ردِ عمل ہوتا ہے۔ اتنا کام بھی انسانی حقوق کے لئے بڑا کام ہے اور اس سے امید بندھتی ہے کہ آخر کار انسانیت ان برائیوں کو یکسر ختم کرنے میں ضرور کامیاب ہو جائے گی۔

اب ہمیں یہ دیکھنا چاہئے کہ ہمارے ملک میں "حقوقِ انسانی" کا مسئلہ کس منزل پر ہے، اور اس کا ہماری قومی زندگی میں کیا مقام ہے؟ ایک اسلامی مملکت ہونے کی حیثیت سے حقوق انسانی کی طرفداری اور حمایت ہمارا انسانی فرض ہے۔ انسانوں کو یہ حقوق دینے کے لئے اسلام نے ہی سب سے پہلے آواز اٹھائی اور عملاً ان حقوق کو معاشرہ میں تسلیم و رائج کیا۔ حضور صلعم کے آخری خطبہ کے الفاظ و معانی پر غور کیجئے۔ اس کو اگر حقوقِ انسانی کا اوّلین منشورِ اعظم کہا جائے تو بالکل بجا ہے۔ ہمارا فلسفۂ دین و حیات ان حقوق کو نہ صرف تسلیم کرتا ہے بلکہ اسے لوگوں کو تفویض بھی کرتا ہے۔ معاشری مفاسد پیدا ہو جانے کے باعث اگر ان پر کہیں کہیں پوری طرح عمل نہ ہو رہا ہو تو وہ دوسری بات ہے مگر جہاں تک ان حقوق کو بطور عقیدہ تسلیم کرنے کا تعلق ہے ایک اسلامی مملکت ہونے کی حیثیت سے ہمارا مؤقف بالکل واضح ہے۔ سب سے بڑی بات تو یہ ہے کہ ہمارے ہاں ذات پات کے بندھن نہیں ہیں جو انسانوں کے درمیان امتیاز پیدا کرنے والی سب سے بڑی لعنت ہے۔ ہمارے ہاں معاشری انصاف، عورتوں مردوں کے مساوی حقوق، تعلیم، ورثہ، عفو و رحم، خیرات و زکوٰۃ کے ادارے صدیوں سے موجود ہیں۔ ہم حقوقِ انسانی کے احترام کی روح سے بخوبی آشنا ہیں اور ان کا دائرۂ عمل بھی بہت وسیع ہے، کیونکہ اسلام نے ہماری زیست کے جو اصول عطا فرمائے ہیں ان میں ہر جگہ ان حقوق و فرائض پر ہی زور دیا گیا ہے۔ ان اسباب کی بنا پر ہماری حکومت، عوام اور اہل الرائے طبقہ حقوقِ انسانی کی وکالت و حفاظت کا دل سے خیر مقدم کرتا ہے۔

صحت، ترقی اور تعلیم و مساوات کے لئے ہمارے ہاں برابر کام ہو رہا ہے اور ایک نوزائیدہ مملکت ہونے کے باوجود اس معاملہ میں ہماری کامیابی کی رفتار تیز ہے۔ مثلاً تعلیم کا معیار ۵ و ۳ یا ۴ فیصد سے بڑھ کر ۱۵ فیصد تک پہنچ چکا ہے۔ ہمارے ترقیاتی منصوبوں نے اس پر خاص توجہ دی ہے۔ ادھر دورِ انقلاب میں ایک تعلیمی کمیشن کا تقرر بھی اسی نیت سے کیا گیا تھا اور اس کی سفارشات پر پوری تندہی سے عمل ہو رہا ہے۔ صحت عامہ کا معیار بڑھانے اور بیماریوں کے سدِ باب کے لئے بھی کوشش کی جا رہی ہے۔ نئے اسپتالوں اور مراکز صحت کا قیام، گاؤں گاؤں خیراتی شفاخانوں، گشتی طبی امداد اور دیگر طبی سہولتوں کا فروغ اس عہد کا خاص کارنامہ ہے۔ ملیریا کے انسداد کی مساعی جاری ہیں جس کی وجہ سے مشرقی پاکستان کے باشندوں کو اس موذی بیماری سے کلیتہً نہیں تو بڑی حد تک نجات مل چکی ہے۔ ملک کے بجٹ میں دق اور جذام جیسے منحوس امراض کے استیصال اور علاج کے لئے کافی بڑی رقوم رکھی گئی ہیں اور عوام کو اس سے جو فائدہ پہنچ رہا ہے وہ اب کسی دلیل کا محتاج نہیں۔ یہ سب کام انسانی حقوق کی پذیرائی کے لئے ہی ہو رہے ہیں اور عوام و خواص کا باہمی تعاون جیسے جیسے بڑھتا جائے گا ہم اس ضمن میں کامیابی کے مزید مراحل بھی طے کرتے جائیں گے۔ اصل میں ضرورت اس امر کی ہے کہ ہم ہر معاملہ میں حکومت کی طرف نہ دیکھیں بلکہ خود بھی منظم ہو کر کچھ کام کریں۔ حکومت تو مدد و تعاون کر ہی رہی ہے لیکن معاشرہ کے اہل عمل لوگوں کا بھی یہ فریضہ ہے کہ جگہ جگہ سماجی کارکنوں کی مدد کریں۔ یہ فرض سماجی کارکنوں کا ہے کہ وہ مقامی حالات کا جائزہ لے کر، وسائل کا اندازہ کر کے کام شروع کریں اور ہر جگہ محلہ میں، گاؤں میں، بستی میں تعلیم، صحت، امن و امان اور معاشری بہبود کے دوسرے کاموں کی داغ بیل ڈالیں۔ اس طرح جو فرائض اداروں، سرکاری امداد اور توجہ سے انجام پا رہے ہیں، اس میں ہاتھ بٹائیں۔ صرف اسی طریقہ سے ہم اسلام کے دئیے ہوئے سبق پر عملاً کاربند ہو سکتے ہیں۔ ہمارے ہاں سماجی حقوق دینے پر کوئی نظریاتی قدغن نہیں ہے۔ لہٰذا انسانی حقوق کو عام کرنے میں ہمارے معاشرہ کو خاص طور پر زیادہ عمل کرنا چاہئے کیونکہ ہمارے ہاں جیسے سازگار حالات ہیں وہ کم جگہوں پر پائے جاتے ہیں۔ ہمیں کوشش کرنی چاہئے کہ اقوامِ متحدہ کے منشور کی حمایت میں ہمارا ملک بھی کسی سے پیچھے نہ رہے کیونکہ یہ ہماری ملکی بہبود اور ہمارے عوام تک ان حقوق کے فوائد

اور دور تک پہنچانے کا سوال ہے، اس لئے ہم اپنے معاشرہ میں ان حقوق کو پامال نہ ہونے دیں اور جہاں ان کے حصول و تحفظ میں دقتیں حائل ہوں ان کو مل جل کر دور کریں کیونکہ تعمیر انسانیت کے لئے اس خدمت کی بڑی ضرورت ہے اور اس خدمت ہی میں انسان و پاکستانی ہونے کی حیثیت سے ہماری عظمت ہے ۔

★

"افقِ تاب" بقیہ صـ۱۷

ہوئیں اور صوبہ سرحد کو ایک لفٹیننٹ گورنر کی تحویل میں دے دیا گیا۔ ۲۸ اپریل کو ہی صاحبزادہ عبدالقیوم خان وزیر برائے محکمہ جات منتقلہ مقرر کئے گئے اور سرحد میں ایک نئے دور کا آغاز ہوا۔ وزارت عظمیٰ کے پہلے پانچ سال میں نواب صاحب ہی نے پشاور میں ایک ریڈیو اسٹیشن بھی قائم کیا۔ ملاکنڈ کی برقی قوت کا منصوبہ شروع کرایا۔ اور قانون انتقال اراضی بھی منظور کرایا۔ اس کی رو سے مسلمانوں کی غیر منقولہ جائداد غیر مسلموں کے ہاتھ میں جانے سے محفوظ ہو گئی۔ اسلامیہ کالج پشاور کی رفتار ترقی بھی تیز تر ہو چکی تھی۔ کیونکہ تعلیم کا محکمہ خود ان کے پاس تھا۔

انہوں نے زندگی میں اپنی کوئی سیاسی جماعت قائم نہیں کی۔ وہ سیاست میں غیر جانبداری کے قائل رہے۔ اس کے بعد کانگریس کی ریشہ دوانیوں کا عہد آیا اور اس علاقے میں طرح طرح کے سیاسی گل کھلے۔ کانگریس پارٹی ان کے خلاف عدم اعتماد کی تحریک منظور کرانے میں کامیاب ہو گئی۔ صاحبزادہ صاحب نے وزارت سے استعفیٰ دے دیا۔ اور دل شکستہ ہو کر گھر بیٹھ رہے۔ مگر اسلامیہ کالج کی وہ اب بھی خدمت کرتے رہے۔ اور خدمت ملت ہی کے دوران ۴ دسمبر ۱۹۳۷ء کو ان کا انتقال ہوا۔

صاحبزادہ عبدالقیوم خان آج ہمارے درمیان نہیں لیکن ان کی یاد اب بھی اسلامیہ کالج پشاور کی صورت میں تازہ و تابندہ ہے۔ جس نے حال ہی میں اپنی زندگی کے پچاس سال پورے کئے ہیں۔ ان کے تعلیمی مشن اور ملت کے وسیع تر مفاد کے لئے ان کی مساعی بار آور ہو رہی ہیں۔ اب کئی مقامات پر کالج کھل رہے ہیں مثلاً صوابی ہی میں ایک کالج قائم کیا گیا ہے۔ ان کا یونیورسٹی بنانے کا خواب بھی اب پورا ہو چکا ہے۔ اور اُمید ہے کہ ملک و ملت کے اس نامور فرزند سرحد کی خدمات جلیلہ ہمیشہ یاد رہیں گی اور موجودہ نسل ان کی مساعی کو اور آگے بڑھائے گی۔ جو ان کا مطمح نظر تھا۔

کارٹون : ریحان

اپنا نہیں وہ شیوہ...

مصباح الحق

کہ آرام سے بیٹھیں - واہ صاحب واہ! آپ بھی خوب سمجھے - سخن فہمئی عالم بالا معلوم شد - مصباح صاحب! واللہ ہم تو آپ کو بہت سیانے بیانے سمجھتے تھے - مگر آپ تو، معاف کیجئے، بڑے ''وہ'' نکلے - ورنہ فوراً کہتے: اپنا ہے یہی شیوہ کہ آرام سے بیٹھیں - اور بیٹھے ہی رہیں، بیٹھے ہی رہیں - نہ ہلیں نہ جلیں - زمیں جنبد نہ جنبد گل محمد - کام کرنا، ہاتھ پاؤں ہلانا بھلا کہاں کی دانائی ہے - وہ جو تھے نا لسان العصر، آ ہا ہا ہا! سبحان اللہ! کیا کہہ گئے ہیں - قربان جائیے:

موت سے ڈرنا بشر کا اک خیال خام ہے
اصل فطرت میں فقط آرام ہی آرام ہے

ذرا غور کیجئے - کیا آج تک کسی نے کام کی خواہش ظاہر کی ہے؟ جسے دیکھو آرام ہی آرام چاہتا ہے - کام؟ واہ صاحب ہوش کے ناخن لیجئے - یہ کس حکیم نے مشورہ دیا ہے کہ کام کیجئے - وہ حکیم نہیں ہوگا کوئی اور ہوگا جس نے کوئی ایسی بات کہی ہو - ''غالب'' کو بھی تو بعض لوگوں نے ''حکیم فرزانہ'' کہا ہے - اور اس حکیم فرزانہ نے ساری عمر میں ایک ہی کام کی بات کہی:

عشق نے غالب نکما کردیا - ورنہ ہم بھی آدمی تھے کام کے

ہائے ہائے ہائے! کیا لفظ گھڑے گھڑنے والوں نے - سو جان سے قربان جائیے - حق یہ ہے کہ کام نہ اینجانب کے نگڑ دادا کے نگڑ دادا نے کیا اور نہ اس سے بھی آگے خانوادی سلسلے کی آخری کڑی باوا آدم نے کیا - کیونکہ وہ ٹھہرے بہشت کے باسی - اور بہشت کے متعلق سدا سے فیصلہ یہ ہے کہ:

بہشت آنجا کہ آزارے نبا شد
کسے را با کسے کارے نبا شد

اور یہاں کسے را با کسے 'کارے' پر زور نہیں بلکہ صرف ''کارے'' پر زور ہے کیونکہ مشہور ہے بلکہ یہاں تک سنا ہے، کہ بہشت میں رہنے والے حاشا و کلا کوئی کام نہیں کریں گے - بیٹھے بٹھے سب کام خود بخود ہو جائیں گے - سبحان اللہ! لیٹے ہی لیٹے خوشۂ انگور آپ ہی آپ منہ میں! اور جنت کے تمام رسیلے رسیلے میوے اور نعمتوں پر نعمتیں کام و ہاں کی خاطر تواضع کے لئے آمادہ - نہ ہاتھ ہلاؤ نہ پیر، بلکہ منہ بھی چلانے کی ضرورت نہیں، کیا بات ہے! کتنا نکما شخص تھا، کیا کہتے ہیں اسے؟ --کار لائل - سخت گاؤدی - خوجی سے بھی کہیں بڑھ چڑھ کر - رات دن ''کام کام کام'' کی رٹ - جیسے کام اس کی اماں جان نے گھٹی میں ڈال رکھا تھا - آخر تھا کہاں کا؟ یورپ کا - جس کا باوا آدم ہی نرالا ہے - جو الٹا ہے اوندھی کھوپڑی لئے - الٹی گنگا بہانے پر تلا ہوا - اور یہ کار لائل بھی تو اسی تھیلی کا چٹہ بٹہ تھا - کوئی شاعر ہوتا تو بٹہ کے ساتھ وہ قافیہ ملاتا کہ عمر بھر یاد رکھتا - وہ نہ سہی اس کے جانشیں الہ آباد تک یاد رکھتے - کہاں مغرب کہاں مشرق - ٹھیک ہے مغرب والے کام کریں - مشرق والے عیش منائیں - اور ہم دیسوں کے دیس، دیار پاک، کے رہنے والے - بھئی اللہ میاں ہمارا حاجت روا - ہمیں کام کرنے کی ایسی ہلکت ہی کیا پڑی ہے؟ اپنی

بلا سے بیٹھ رہے گر فقیر ہو ـ ہمارا بس چلے تو کام کا لفظ ہی لغت سے نکال دیں ـ ' کام بہت ہے ' ' کام بہت ہے ' ــ وہ ہمارے '' حکیم فرزانہ '' بولے خاک کام ہے ـ ہم لوگ تو جنم جنم کے شاعر ہیں ـ اور شاعر تو ویسے ہی کام کے دھنی ہیں جیسے آج کل کی بیگمات ــ زباں پہ بار خدایا یہ کس کا نام آیا ! اگر کوئی بیگمات سنتی ہوں تو بخش دیں ، غصہ تھوک ڈالیں !

کسی نے کہا تھا دن کام کے لئے ، رات آرام کے لئے ـ مگر ہماری بات اور ہے ـ نہ دن کام کے لئے نہ رات بلکہ دونوں آرام ہی آرام کے لئے ! مانا ہم عاشق نہیں ـ مگر عاشقوں سے کم کیا ہیں ـ رات بھر زیر بام آسماں ، صحن میں بڑی شان سے لیٹے ہوئے ، پاؤں کسی پشتینی نواب کی طرح پسارے " گن گن تارے " گنگنا بھی رہے ہیں اور تارے بھی گنتے جا رہے ہیں کہ دل کے بجائے وقت کو خون کرنے کی کوئی تو صورت ہو ـ اور دن ؟ اس میں ہم کسی سے کب پیچھے رہنے والے ہیں ـ آپ ہی کہئے کوئی ڈیڑھ دو انچ موٹا لحاف تان کر سوجائیے تو سورج کی کیا مجال جو کبھی طلوع ہو ـ مارے شرم کے طلوع ہوتے ہی ڈوب جائے گا ـ اور بھئی ، جاگ بھی اٹھیں گے تو کیا تیر مار لیں گے ـ علی الصباح کہ مردم بہ کاروبار روند ـ اور بلا کشان محبت بہ کوئے یار روند کی بات تو بعد میں آئے گی ـ فی الحال اتنا ہی کہہ دینا کافی ہے کہ جیسے پرہیزگار لوگ صبح سویرے نماز با جماعت ادا کرتے ہیں ، اسی طرح ہم کام چور اکٹھے ہوکر سوئے آسماں دیکھتے رہتے ہیں ـ

اب چاہے اس کے جو بھی معنی لے لیجئے ـ یہ کہ :

تھیں بنات النعش گردوں شب کو نظروں پر عیاں
دن کو ان کے جی میں کیا آئی کہ پنہاں ہوگئیں؟

یا پھر یہ کہ اللہ جل شان ، کی شان کریمی کے طفیل آسمان سے من و سلویٰ اتر آئے ـ اور ، اور کچھ نہیں تو Penguin بننے ہی کی مشق کی جائے ـ رات بھر سونے کا مزا ، اور دن بھر پینے کا ـ لگے دم پر دم ! مطلب یہ کہ ایک بڑا سا سماوار ، ویسا ہی جیسا ہمارے دوست ، ابراہیم جلیس کے گھر سے کوئی منچلا چور چرا کر لے گیا تھا اور انہیں اس کا بڑا دلدوز مرثیہ لکھنا پڑا ـ اس سماوار میں من بھر نہیں تو آدھا من پانی تو ضرور آیا ہوگا ـ اسے ابالا اور پھر اس میں سلہٹ کی ہری پتی کو کھلا یا ـ یا اصفہانی کو جوشایا ـ بن گیا سنہرا پانی ـ پھر کیا ـ یہ کہ

گو ہاتھ میں جنبش نہیں آنکھوں میں تو دم ہے
رہنے دو ابھی ساغر و مینا مرے آگے

یہ ہے تو ساری دنیا آگے ـ ساقی نہ ہو تو کیا ـ ٹونٹی کے نیچے رکھی پیالی اور اسے دم بھر میں خالی کرکے وہی قصہ

سوئے آسماں دیکھا کئے ــــــ!

جب تلک بس چل سکے......!

اپنی تو جہاں آنکھ پڑی پھر وھیں دیکھو
آئینے کو لپکا ھے پریشاں نظری کا

میاں مجنوں تم بھی لیلیٰ پر فریفتہ ھو - وفا نباھنا اسی کو کہتے ھیں - سمجھے ؟

ہاں صاحب ، اب مجنوں کا ذکر آگیا تو ھمارے شاعروں کی طرح دشت کا ذکر کیوں نہ آئے ؟ وقت کشی کے لئے دشت نوردی سے بہتر تدبیر اور کیا ھوسکتی ھے ؟ اور دشت بھی ,, بوھری بازار ،، کا ، جہاں لیلیٰ سے لے کر ٹیڈی تک ھر جلوہ مفت نظر - صبح ھوئی ، چائے پی کر گرم ھوئے اور چل پڑے سفر شوق پر - آنکھیں مبری جلوہ ان کا - اور کبھی ان میں سے کوئی مہرباں ھو جائے تو کیا کہنے !

میں جا نوں اس زمین پر آسماں سے ماھتاب آیا - چنانچہ ایک دن اس دشت نوردی کا صلہ مل ھی گیا -

ھم تھے کہ گھومتے خاں پھرتے خاں کا پورا پورا روپ - آنکھ جھپکی تو مجنوں کو لیلیٰ کے سوا اور کیا دکھائی دے سکتا تھا ؟ — وھی مگر ذرا بزرگ - ترت پھرت چلتی ھوئی سلائیاں اور اون کا پنڈا وزنی دو سیر - اشارہ ھوا یہ اٹھالو - مدت سے سن رکھا تھا کہ :

رشتۂ اندر گلو افگندہ دوست
می برد ہر جا کہ خاطر خواہ اوست

سو اس کا تجربہ بھی ھوگیا - یا ھم نے خود ھی خود کو اس تجربہ کے لئے یار مہرباں کے حضور پیش کردیا - یہ بھی سن رکھا تھا کہ — کچے دھاگے سے بندھی آئیں گی سرکار مری - اون کا دھاگہ کچا ھوتا ھے یا پکا ، یہ تو نہیں کہہ سکتے مگر ھم اس سے بندھ ضرور گئے - ھمارا کیا ھم تو بغیر دھاگے کے بھی بندھے چلے آتے ھیں - کچھ یہ بھی ڈر کہ بے چوں و چرا ساتھ نہ ھولئے تو بیگم صاحبہ کہیں تاؤ میں آ کر سلائیاں ھی نہ آنکھوں میں بھونک دیں - ان کا کیا جائے گا - اندھے کانے ھوں گے تو ھم - کسی کی جان گئی آپ کی ادا ٹھہری ! اس لئے ,, یس میڈم ،، کہہ کر پنڈا اٹھا لیا اور بڑے طمطراق سے ساتھ ساتھ چلنے لگے - جیسے ھم ان ھی کے ساتھ ھوں - اور چلتے گئے ، چلتے ھی گئے - جیسے کسی فرنگی شاعر کا وہ ھیرو جو اپنی محبوبہ کے ساتھ برابر گھوڑا سواری کئے جاتا رھا تھا - بیگم صاحبہ کی بھی تو یہی ,, ھابی ،، ٹھہری - دکان دکان پر شاپنگ ، چاھے خریدیں کچھ بھی نہیں - یہ رھی لیلیٰ کی دشت نوردی - کوئی کسی سے کم نہیں - ہاں تو صاحب لیلیٰ کے حسن سیاہ کی آب و تاب سے یوں لگا جیسے وہ پنڈا گورا گورا چاند ھو اور اس سے ایک اجلی اجلی کرن برابر لڑھکتی چلی آرھی ھو - حضرت انشاء اللہ خاں انشا ,, تصور عرش پر ھے اور سر ھے پائے ساقی پر ،، کیا کہہ گئے ھیں - کہاں ھمارے ابن انشا جو چاند نگر ھی میں کھو کر رہ گئے -

ببیں تفاوت رہ از کجاست تا بکجا !

ھم دل ھی دل میں جانتے تھے کہ پھنس گئے یعنی ان بیگم صاحبہ نے ھمیں بیگار میں دھر لیا - مگر مرتے کیا نہ کرتے - ان کی نوج کا ڈر سوھان روح ! مگر رہ رہ کر اس جان روماں کو کنکھیوں سے دیکھتے جاتے اور میرا جی کی طرح کہتے چلو سرراہ میرا سین کے ساتھ اتنا ھی راز و نیاز غنیمت — یعنی کہ ھوں تو کسی کی نگاہ میں - ,, جچا ،، غالب نے یوں ھی تو نہیں کہا تھا کہ :

عشرت صحبت خوباں ھی مناسب سمجھو
نہ ھوئی غالب اگر عمر طبیعی نہ سہی

سبحان اللہ ! ,, میرا سین ،، کے سر پر وہ پیچاک کا پیچاک کہ اون کے پنڈے سے کسی طرح کم نہ تھا - اون کے پنڈے کے مقابلہ میں اون کا پنڈا ! مطلب یہ کہ جتنی دیر شاپنگ جاری رھی بڑا مرا رھا - لوگ یہی سمجھتے ھوں گے کہ یہ ان کے تابع میاں ھیں - تابعدار اس لئے نہیں کہا کہ حضرت جوش ملیح آبادی اس پر معترض ھیں کہ تابع خود ھی تابع ھے ، تابعدار کیا ھوا - ,, دار ،، بالکل تابع مہمل - خیریت گذری - اس دوران

ادھیڑ — بن

ں کہیں اپنی بیگم صاحبہ ہی نہیں مل گئیں - ورنہ جان
ے لالے پڑ جاتے - یقین جانئے رات کو جب ہم کسی کی
د میں ,, گن گن تارے،، کا ورد کرتے ہیں تو خواب
ں بھی رہ رہ کر کسی کافر ادا کے سپنے ہی دیکھتے
ں - ہائے ہائے !

کیا چاند سی صورتیں بنائیں
قربان اے نیلی چھتری والے !

، شعر ! اے کاش! عبدالعزیز خالد ہمارا سارا دیوان
ے لیں اور اپنا یہ شعر دیدیں - بہر حال، یہ سفر خوب
ٹا - اور جب تک یہ مشغلۂ شوق جاری رہا، بڑا لطف
ا - ادھر ادھیڑ آدھر بن - اور ہم برابر ادھیڑ بن ہی
ں رہے - بے کارم و با کارم کے مصداق -

ہمیں تو وقت کی گردن مارنے سے غرض ہے، چاہے
یسے بھی ہو - خدا کارپوریشن کا بھلا کرے - ہر سڑک
ر کیا تیز روشنی دینے والے سو سو، دو دو سو کینڈل پاور
ے قمقمے لگا رکھے ہیں جن کے سائے میں بیٹھ کر یار لوگ
ت رات بھر پچیسی کھیلتے رہیں - ہم بھی بڑے بڑے
یاستدانوں اور ریاست والوں سے کیا کم ہیں - وہ بھی تو
یسے ہی ہیں - یہ گوٹ مار، وہ گوٹ مار، یہ چال چل،
، چال چل کا کھیل ہی کھیلتے رہتے ہیں - کبھی چین،
بھی پاکستان، کبھی یہ، کبھی وہ - کسی پر بھی
''دندان آز تیز'' غرض یہ کہ قمقمہ ان کا، کھیل ہمارا !

قمقمہ اُن کا کھیل ہمارا !

کوئی بہت ہی ہمارے جیسا با ذوق ہے جس نے کہا ہے کہ :

دیکھ پاتے ہیں جو ٹانگے پر حسیں
گھر پہ پہنچانا ہمارا کام ہے

واہ واہ کیا کام ہے ! کام سا کام ! یہ بھی ایک مشغلۂ دلچسپ ہے بیکاروں کا - اور یقین جانئے، یہ محض غپ نہیں، ٹانگا تو کیا وہ تو آٹو رکشاؤں کے پیچھے بھی ریس لگانے سے کبھی نہ چوکیں اور جوں توں کر کے کام شوق حاصل کر کے ہی رہیں -

کیا عورتیں کیا مرد، وقت کا تیا پانچا کرنے میں سب ایک جیسے - لو صاحب، گھر والیاں تو کچھ کرنے سے رہیں - وہ تو گریباں چاک کرنا جانتی ہیں، سینا کیا جانیں - اس لئے مرمت ہو یا رفوگری، یا پھر سارے کا سارا کوٹ پتلون سینا، سب آپ ہی کرنا پڑتا ہے - یعنی مردوں کو - اور سچ پوچھئے تو ویسے بھی عورتیں کب سیتی پروتی ہیں - یہ دھندا بھی تو مرد ہی کرتے ہیں - اور ہم بیگمات کے ہتھکنڈوں سے ایسے لاچار ہو گئے ہیں کہ سربازار بیٹھ کر مرمت، پیوند، سب کچھ آپ ہی کرتے ہیں - خود بخیہ و خود بخیہ گر و خود . . . .

لاچار ہم ہوئے !

ارے صاحب ٹھیرئیے تو . . . سنئیے تو . . . ؟ . . . . خدا کے لئے صرف ایک بات اور . . . چیں بول گئے نا ؟ ہاہاہا . . . . سارے رے رے رے گا گا ما ما دھا دھا دھانی . . . . ہپ ہپ ہرا ! !

نئی مطبوعات

اصلِ حیات:

مصنّف : ضامن نقوی
ناشر : ادارۂ معارف ادب
۲/۱۳۱ - ڈی - دی - کولونی کراچی
قیمت : ایک روپیہ
ضخامت : ۷۷ صفحات

یہ کتاب جتنی مختصر ہے، موضوع و مضمون کے اعتبار سے اتنی ہی بسیط بھی ہے۔ مقصدِ تخلیق جس کا حیاتِ انسانی سے بڑا گہرا اور قریبی تعلق ہے، صرف مذاہب ہی نہیں فلسفہ اور سائنس کے مطالعات میں بھی بڑی اہمیت رکھتا ہے۔ اگر بعض کا یہ نقطۂ نظر تسلیم کر لیا جائے کہ زندگی کا کوئی مقصدِ تخلیق نہیں اور وہ صرف عناصر میں ظہورِ ترتیب کا نام ہے اور موت ان کے پریشاں ہو جانے سے عبارت، تو پھر نیکی و بدی، مآل کار اور حیاتِ مابعد کا تصوّر ہی خاک میں مل جاتا ہے۔ خود حیاتِ مابعد کے تصوّر کو بھی اب اس دور میں رد کر دینا کچھ ایسا آسان نہیں رہا ہے اور ہم لامحالہ "آگے چلیں گے دم لے کر" کے عقیدتاً ہی نہیں عقلاً بھی قائل ہوتے جا رہے ہیں۔

"اصلِ حیات" میں بہ دلائل یہ ثابت کرنے کی کوشش کی گئی ہے کہ حیاتِ انسانی ایک دائمی موجِ ارتقا ہے جس کے بے شمار نظام، سلسلے اور مظاہر ہیں اور یہ کہ حیاتِ مابعد بھی دراصل ایک نظام و سلسلۂ حیات ہی ہے، نہ کہ کسی غیر مرتب دیوانِ بے شیرازہ کا جزو۔ اس کتاب کے مطالعہ سے اربابِ تشکیک کو کافی مایۂ فکر مہیا ہوتا ہے۔ جو لوگ اب بھی ریب و شک کے شکار ہیں اور ان کے ذہنوں پر مکڑی کا سا جالا تنا ہوا ہے وہ پھر ایک بار تلاشِ حق کی جستجو کریں تو فکر و نظر کے لئے بہت کچھ سامان اس چھوٹی سی کتاب میں مل سکتا ہے۔

یہ کتاب ۱۹۳۴ء میں شائع ہوئی تھی اور اب یہ اس کا دوسرا اڈیشن ہمارے سامنے آیا ہے۔ (و-ا)

★

اجو کی کہانی:

ایک عرصہ بعد پھر ایک کھیپ کی کھیپ ۔

قیامِ پاکستان کے ساتھ دیگر علاقائی زبانوں

(آجکل کے افسانے (پنجابی)) کی طرح پنجابی میں بھی ایک نئے دور کا آغاز ہوا ہے جس میں نظم و نثر کو یکساں دخل ہے۔ کلاسیکی دور تو شاعری ہی کا دور تھا۔ جدید دور میں شاعری نے بھی نیا رنگ اختیار کیا جس کا نمونہ شرف، سر شہاب الدین (مرحوم) عبدالمجید بھٹی، اور احمد راہی کے کلام میں دکھائی دیتا ہے۔ اب ان میں اور سلسلے بھی شامل ہو گئے ہیں جن میں غزل کو بھی نمایاں حیثیت حاصل ہے۔ اس باب میں بعض استاد اب بھی پیش پیش ہیں۔ ان میں پیر فضل گجراتی کا نام سرِ فہرست ہے۔ انہوں نے اپنے مقبول عام مجموعے "ڈونگھے پینڈے" (لمبی مسافتیں) میں غزل کا حق بہت خوش اسلوبی سے ادا کیا ہے۔ اور اس صنف میں وہ تمام تیور پیدا کر دئے ہیں جو اس سے مخصوص ہیں۔ ان کے زیرِ اثر دیگر شعرا نے بھی اس صنف کو اپنایا ہے اور توقع ہے کہ بہت جلد پنجابی شاعری اس صنف میں بھی مالامال ہو جائے گی۔

ایک اور استاد جناب عبدالکریم ثمر ہیں۔ ان کی نظموں، غزلوں اور گیتوں کا مجموعہ "لگراں" کے نام سے موسوم ہے۔ "لگراں" اصل میں وہ کونپلیں ہوتی ہیں جو درخت کو کاٹ دینے کے بعد از خود پھوٹ آتی ہیں اور ان میں بیحد تر و تازگی پائی جاتی ہے۔ اسی لئے ٹاہلی (شیشم) کی طرح سہی قد ٹیاروں کو بھی "لگراں" کہا جاتا ہے۔ "اک لگراں جئی مٹیار" ظاہر ہے کہ اس لہکتے ہوئے نام کے ساتھ نظموں، غزلوں، گیتوں کی کیا کیفیت ہوگی۔

یارنامہ ایک اور استاد کی تصنیف ہے جسے پنجابی ادبی بورڈ لاہور نے حال ہی میں شائع کیا ہے اور یہ بھی کتابوں کے ایک جدید عمدہ سلسلے کی تمہید ہے۔

ولکنیاں (چیخیں)، تنویر بخاری کی پنجابی غزلوں کا مجموعہ ہے۔ گو مجموعہ مختصر ہے مگر اس نوعمر شاعر نے تھوڑے ہی عرصہ میں پنجابی نظم

میں غزل کی صنف میں جو اضافہ کیا ہے اس کا ذکر نہ کرنا ناانصافی ہوگی۔ تنویر بخاری گو پیر فضل گجراتی اور استاد عبدالکریم ثمر سے متأثر نہیں، پھر بھی انہوں نے اپنے پیش رو اساتذہ کے رنگ کو بڑی حد تک اپنایا بھی ہے اور نبھایا بھی۔ اس نوجوان شاعر سے بہت سی توقعات وابستہ کی جا سکتی ہیں۔

بہرکیف، پنجابی نظموں سے زیادہ دلچسپی کا باعث اس کی نثری کتابیں ہیں جن کی طرف اہلِ قلم حال ہی میں زور شور کے ساتھ متوجہ ہوئے ہیں۔ اور یہ واقعہ ہے کہ تھوڑے ہی عرصہ میں تقریباً ہر صنف میں انہوں نے کئی منزلیں طے کر لی ہیں۔ "چانن" کا ذکر قبل ازیں ان صفحات میں کیا جا چکا ہے۔ عبدالمجید بھٹی کا ناول "ٹھیڈا" (ٹھوکر) ادبی انعام بھی حاصل کر چکا ہے۔ اس کا طرۂ امتیاز ناول کی نہایت چٹیلی زبان ہے۔

پنجابی افسانے نے چند ہی سالوں میں جو گریزپا ترقی کی ہے وہ خاصی حیرت افزا ہے۔ "اجو کی کہانی" (آجکل کے افسانے) پنجابی افسانوں کا نہایت عمدہ اور دلچسپ مجموعہ ہے۔ مرتبین پنجابی ادب کے چوٹی کے ادیب ہیں۔ محمد آصف خان، خالد لاہوری اور شہباز ملک۔ لکھنے والوں میں برِصغیر کے کم و بیش پچیس بلند پایہ افسانہ نگار اس مجموعہ میں نظر آتے ہیں۔ ان میں خود مرتبین کے علاوہ صوفی غلام مصطفےٰ تبسم، راجندر سنگھ بیدی، افضل احسن، نواز، غلام علی چودھری، کرتار سنگھ دگل، امریتا پریتم، رشیدہ سلیم سیمیں، شفقت تنویر مرزا، حنیف چودھری وغیرہما خاص طور پر قابلِ ذکر ہیں۔ افسانوں کا معیار خاصا بلند ہے اور یہ امر بھی تعجب انگیز ہے کہ تھوڑے ہی عرصہ میں اس نئی صنف نے بھی اس قدر اعلیٰ مدارجِ ترقی طے کر لئے۔ ان گوناگوں امور سے اس زبان میں آئندہ ترقی کے بڑے وسیع امکانات نظر آتے ہیں۔ (ر۔ خ)

ایسا گماں نہ تھا: ——— بقیہ صفحہ ۳۵

نظروں نے اسے بھانپ لیا۔ کوئی ردِّ عمل! وہ اب پرانی بات ہو چکی تھی، شاید۔

اور آخر ——— وہ بات جس کا کسی کو گمان نہ تھا! نہ ابا جان کو نہ امی کو نہ مجھے۔ میں حیران تھا۔ اور میرے دل میں سوال اٹھا: کیا قدرتی اور انسانی پھول دونوں ایک ہی ہیں؟ دونوں کا رنگ روپ، بو باس، کیف اور ان کے ساتھ پیار بھی وہی! ——— یا نہیں جو اس تپاک سے، چاؤ سے، ایک کی طرف جاتی ہیں دوسرے کی طرف بھی.... مگر اب اس سوال کا محل ہی کیا تھا! مجھے اپنے بچے سے بے حد پیار ہے۔ اس لئے نہیں کہ وہ میرا ہے، بلکہ اس لئے کہ اس کی خوشبو نے ایک زندگی کی کایا پلٹ دی۔ وہ اسے تصور کی دنیا سے نکال کر حقیقت کی دنیا میں لے آئی ہے، ایک باغ و بہار دنیا۔

حسنِ کلام آئینہ: ——— بقیہ صفحہ ۱۲

اگر سیاست داں اور عوام بھی انہی کی پیروی کریں تو کیا اچھا ہو۔ مدعا تو بالآخر ہم سب کا یہی ہے نا، کہ پاکستان کو مضبوط و مستحکم اور ترقی پذیر بنایا جائے۔ پس اس سلسلے میں جو بھی حقیقت پسندانہ قدم اٹھایا جائے مستحسن ہوگا۔

پہلے کی طرح اب بھی جس توجہ اور بیش از بیش انہماک سے صدرِ پاکستان کے ان دلنشیں خطابات کو سنا گیا اس کا ثبوت اس امر سے بھی ملتا ہے کہ کوچہ و بازار میں کتنے لوگوں کے ٹھٹ کے ٹھٹ لگے ہوئے تھے۔ صدر کی روز افزوں عوامی مقبولیت، ان کی صداقتِ گفتار اور صائب الرائے ہونے کی بیّن علامت۔

یقین ہے کہ اب کے پھر میری طرح دوسرے بھی اپنے ساتھ گوناگوں تاثرات لے کر گئے ہوں گے۔ اور یہ سوچ رہے ہوں گے کہ ہمارے محترم سربراہ نے جو کچھ کہا ہے ٹھیک کہا ہے اور ان باتوں پر عمل کیا جائے تو ہم اپنے قومی مقاصد میں جلد از جلد فائز المرام ہو سکتے ہیں۔

زمانہ کسی کا انتظار
نہیں کرتا!
وقت گزرنے پر اور چیزوں کی طرح تیل بھی خراب ہوجاتے ہیں
اور انہیں تبدیل کرنا پڑتا ہے۔ لیکن تبدیلی کتنے وقفہ سے
کی جائے! ریسرچ کہتی ہے اس کا مدار مخصوص حالات
اور کارکردگی پر ہے۔ اس لئے صحیح جواب صرف تجربہ گاہ
سے مل سکتا ہے۔
یہی وجہ ہے کہ برماشیل نے اپنے خریداروں کی آسانی کے لئے
جدید قسم کی تجربہ گاہ قائم کر رکھی ہے۔ تاکہ خریدار صاحبان پابندی
کے ساتھ اپنے تیل کی جانچ کرا سکیں۔ اور تیل کو پوری طرح استعمال
کرکے کفایت کر سکیں۔
یہ تجربہ گاہ کی خدمت برماشیل کی جملہ خدمات کا ایک پہلو ہے۔ آپ
جس قسم کی بھی مشینری استعمال کرتے ہوں برماشیل آپ کی ہر
خدمت کیلئے حاضر ہے۔ وہ تمام تیل کی اشیاء جو اس کمپنی کے ذریعے
فراہم ہوتی ہیں سب ہی اعلیٰ قسم کی ہوتی ہیں۔
خدمت اپنا افتخار : برماشیل پر اعتبار
برماشیل آئل اسٹوریج اینڈ ڈسٹری بیوٹنگ کمپنی آف پاکستان لیمٹڈ (انگلستان میں قائم شدہ) کمپنی کے ممبران کی ذمہ داری محدود
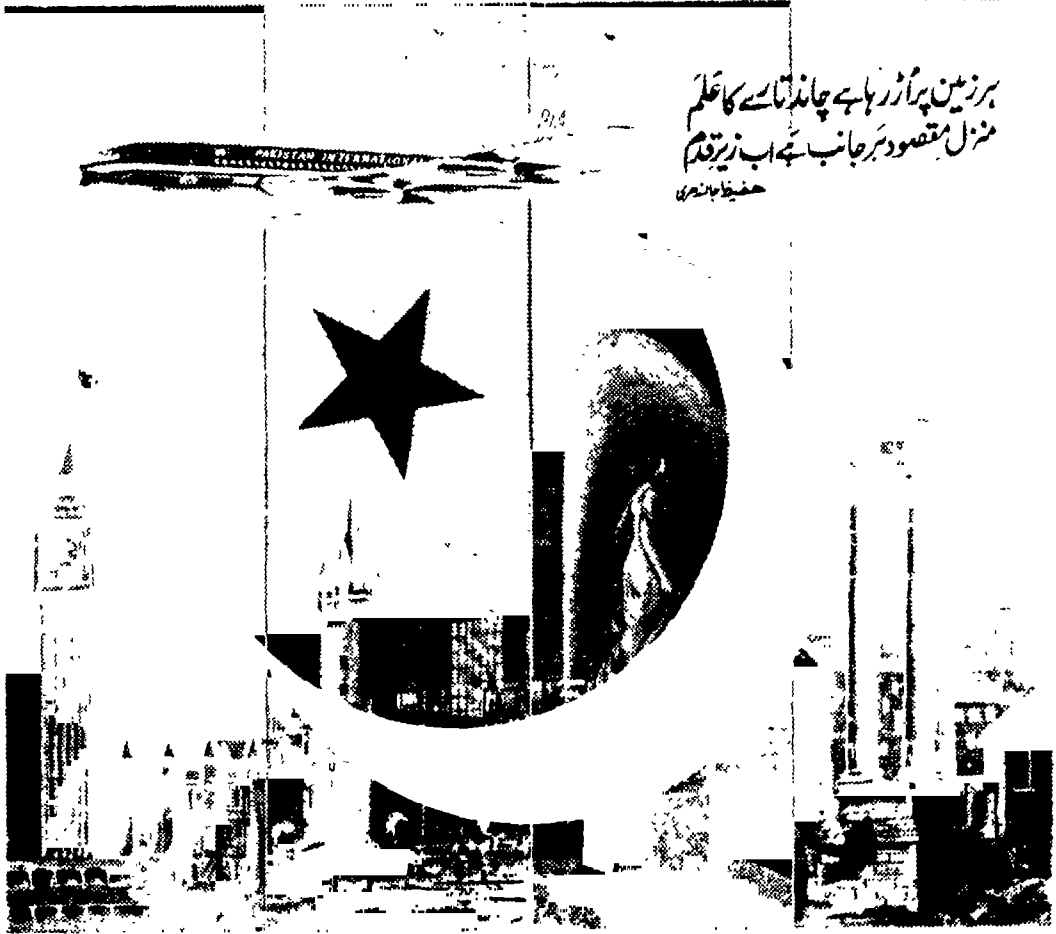
ہر زمیں پر اُڑ رہا ہے چاند تارے کا علَم
منزلِ مقصود ہر جانب ہے اب زیرِ قدم
حفیظ جالندھری

"ماہ نو" میں مضامین کی اشاعت کے متعلق شرائط

۱—"ماہ نو" میں شائع شدہ مضامین کا معقول معاوضہ دیا جائے گا جس کے بعد وہ ادارہ کی ملکیت ہوں گے اور وہ حسب منشا ہر طور سے استعمال کرنے کا مجاز ہوگا۔

۲—مضامین بھیجتے وقت مضمون نگار حضرات "ماہ نو" کے معیار کا خیال رکھیں اور یہ بھی تحریر فرمائیں کہ مضمون غیر مطبوعہ ہے اور اشاعت کے لئے کسی اور رسالہ یا اخبار کو نہیں بھیجا گیا ہے۔

۳—ترجمہ یا تلخیص کی صورت میں اصل مصنف کا نام اور دیگر حوالہ جات دینا ضروری ہیں۔

۴—ضروری نہیں کہ مضمون موصول ہوتے ہی شائع ہوجائے۔

۵—مضمون کے ناقابل اشاعت ہونے کے بارے میں ایڈیٹر کا فیصلہ قطعی ہوگا۔

۶—ایڈیٹر کو مسودات میں ترمیم و تنسیخ کرنے کا مجاز ہوگا مگر اصل خیال میں کوئی تبدیلی نہ ہوگی۔

۷—مضامین صاف اور خوشخط کاغذ کے ایک طرف تحریر کئے جائیں۔

۸—پتہ بہت صاف اور مکمل درج کیجئے۔

۹—اپنے مضامین نظم و نثر کی نقول اپنے پاس بھی رکھئے۔ غیر طلبیدہ ناقابل اشاعت مضامین کی واپسی کے لئے ڈاک کے مناسب ٹکٹ روانہ کیجئے۔

(ادارہ)

مسلم بنگالی ادب

(بنگلہ سے ترجمہ)

ڈاکٹر انعام الحق ایم ـ اے ـ پی ـ ایچ ـ ڈی

اس کتاب میں بنگالی زبان و ادب کی مکمل تاریخ اور اس کے ثقافتی، ملی و تہذیبی پس منظر کا جائزہ لینے کے بعد بتایا گیا ہے کہ اس زبان کی نشو و نما اور ترقی و تہذیب میں مسلمان حکمرانوں، صوفیا، اہل قلم، شعرا اور ادبا نے کسقدر حصہ لیا ہے ـ یہ جائزہ بہت مکمل اور تحقیق و تفصیل کا شاہکار ہے ـ

پوری کتابت نفیس اردو ٹائپ میں چھاپی گئی ہے اور مجلد ہے ـ

سرورق دیدہ زیب اور رنگین ـ ضخامت ۴۰۰ صفحات

قیمت چار روپے (علاوہ محصول ڈاک)

"ماہ نو"

کے لئے غیر طلبیدہ مضامین

۱ـ غیر طلبیدہ مضامین نظم و نثر صرف اس حالت میں واپس کئے جائیں گے جب کہ ان کے ساتھ ڈاک کے مناسب ٹکٹ روانہ کئے گئے ہوں ـ

۲ـ مسترد مضامین کے سلسلے میں غیر ضروری خط و کتابت کرنے سے ادارہ کو معذور سمجھا جائے ـ

۳ـ ایک ہفتہ تک اطلاع موصول نہ ہونے پر مرسلہ مضمون کو ناقابل اشاعت تصور کیا جائے ـ

۴ـ ادارہ ڈاک میں کسی مسودہ کے گم ہوجانے کا ذمہ دار نہیں ـ

(ادارہ)